प्रथम संस्करण, १९६८

कल्हणकृत राजतरंगिणी

कश्मीर-भूमि

वेरीनाग से निकली हुई नदी झेलम को प्राचीन कश्मीरी लोग 'व्यथ' कहते थे, और संस्कृत ग्रन्थो मे उसे **वितस्ता** कहा जाता था। **व्यथ** की घुमावदार ऊपरी द्रोणी ही कश्मीर भूमि है जहाँ कवि और केसर पैदा होते रहे हैं। हिमालय पर्वत की अन्त.शृखला से एक पर्वत-श्रेणी फूटकर **व्यथ** और **कृष्णगगा** का पानी अलग-अलग करती हुई पहले पूरब की ओर जाती है, फिर पश्चिम की ओर मुड जाती है और इसके बाद दक्षिण को घूम जाती है वही कश्मीर मे **हरमुक** की पहाडी और **काजनाग पर्वत** कहलाती है। थोडा और पूरब से एक और पर्वत-शृखला दक्खिन की ओर जब मुडती है तो उसके उस मोड पर कश्मीर का **अमरनाथ तीर्थ** है।

अमरनाथ पर्वत-शृङ्खला **व्यथ** नदी की दक्षिणी-पूर्वी धाराओ को घेरती हुई उत्तर-पश्चिम की ओर घूम जाती है और वह शृङ्खला **परिपंचाल** पर्वतमाला की सज्ञा ग्रहण करती है।

हिमालय पर्वत की अन्त.शृङ्खला के उपर्युक्त पर्वत ८४ मील लम्बी, २५ मील चौडी कश्मीर की द्रोणी को चारो ओर से घेरे हुए है। इस शृङ्खला के उस पार .सिन्धु नदी की दून मे और सिन्धु-पार गिलगित और हुन्जा की द्रोणियो तक **दरद** देश की बस्तियाँ हैं। यह देश भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त में है और भारत का एक प्रदेश था।

अमरनाथ पर्वतमाला के पूर्व, उत्तर से दक्षिण **मसर्द्‌वुघा** नदी की जो द्रोणी **काष्ठवाट** पर **चिनाब** नदी की दून मे खुलती है, वह भी कश्मीर का एक अग थी।

झेलम और चिनाव के बीच की उपत्यका पहले **अभिसार** कहलाती थी और कश्मीर का अग थी। चिनाव तथा रावी की मध्यवर्ती उपत्यका **दार्व** या **दार्वाभिसार** के नाम से विख्यात थी जो कश्मीर के अन्तर्गत थी। **अभिसार** को आजकल **छिभाल** कहा जाता है। उसके अन्तर्गत **पुन्च**, **राजौरी** और **भिम्भर** हैं। दार्व को आजकल **डुगर** या **डोगर** कहा जाता है। इसके अन्तर्गत जम्मू, बल्लावट की बस्तियाँ हैं। डुगर के ऊपरी भाग मे **धौलाधार** के उस पार डुगर और **काष्ठवाट** के बीच **भद्रावकाश** प्रदेश है जो कश्मीर के ही अन्तर्गत रहा है।

काफिरिस्तान जो आजकल अफगानिस्तान के अन्तर्गत है पहले **कपिश** कहलाता था और कश्मीर-भूमि का अग था। काबुल नदी के दक्षिण निग्रहार कपिश का एक अंग था। कपिश के पूरब **बाजौर**, **बुनेर** और यूसुफजई का क्षेत्र पहले गान्धार कहलाता था। कपिश (काफिरिस्तान, चितराल और कोहिस्तान पहले कश्मीर के ही अग थे। काफिरिस्तान, चितराल, कोहिस्तान दर्दिस्तान, कश्मीर और काष्ठवार सब मिलकर कपिश-कश्मीर कहलाते थे। दरद से पूर्व का भाग और लद्दाख तथा उसी से पूर्व सस्पोला तक कश्मीर की ही भूमि थी। लद्दाख, जङ्स्कर, रूपशू, हानल और **चुमूर्त्ति** कश्मीर के अन्तर्गत थे। उपर्युक्त कश्मीर के भूगोल को केन्द्र-बिन्दु मानकर कल्हण ने **राजतरगिणी** लिखी है।

राजतरंगिणी

कश्मीरी कवि कल्हण की रचना राजतरंगिणी भारतीय वाङ्मय की अनुपम कृति है। इसकी भाषा-शैली सीधी, सरल और सजीव है। सबसे बड़ी विशेषता लाजवाब स्पष्टवादिता है। ईस्वी सन् ११४८ मे आरम्भ कर सन् ११५० मे कल्हण ने राजतरंगिणी इतिहास को समाप्त किया। इसका सर्वप्रथम फारसी अनुवाद बहर-उल-अस्मार के नाम कश्मीर के सुल्तान जान-उल अब्दीन ने कराया। जान-उल-अब्दीन का शासन-काल सन् १४२१ से १४७२ ई० तक माना गया है। फारसी के इस अनुवाद को जोनराज ने किया था। इसके बाद १६वी शती मे प्राज्यभट्ट ने तीसरी राजतरंगिणी और शुक ने चौथी राजतरंगिणी लिखकर कश्मीर के अकबर द्वारा जीते जाने तक का इतिहास जारी रखा। जिन दिनो राजतरंगिणी पर कार्य हो रहा था उन्हीं दिनो बादशाह अकबर ने इतिहासकार अब्दउल-कादिर-अल बदायुंनी को एक दिन अपने शयनागार मे बुलाया और कहा कि राजतरंगिणी की सभी तरंगो को सवेरा होने तक सुनाओ ? जब अकबर ने प्रत्येक तरंग की कथाएँ सुन ली तब उससे फिर कहा कि चूँकि इससे पहले लिखी गई किताब राजतरंगिणी पुरानी कठिन फारसी मे है, इसलिए तुम उसका नया अनुवाद ऐसी सरल भाषा मे करो जो जनसाधारण के लिए उपयोगी हो सके। इसके बाद अबुल फजल ने आईने-अकबरी मे भी कश्मीर के इतिहास का एक अंश सम्मिलित किया जो कल्हण की राजतरंगिणी पर ही आधारित है।

राजतरंगिणी का एक संक्षिप्त फारसी संस्करण कश्मीर के एक अमीर हैदर मलिक ने तैयार किया था। उसमें उसने नवीनता यह की थी कि हिन्दू-सम्वत् के स्थान पर हिजरी सन् का प्रयोग किया था। उसने भूमिका मे लिखा है कि जहाँगीर के शासन के बारहवे वर्ष मे इस संक्षिप्त फारसी अनुवाद का प्रारम्भ हुआ था। अर्थात्, हिजरी सन् १२०७ तदनुसार ई० सन् १६१७ मे उसने लिखना प्रारम्भ किया।

सन् १६६४ मे एक फ्रांसीसी चिकित्सक फ्रांको बर्नियर ने कश्मीर की यात्रा पर एक सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया था। उसमे उसने यह भी लिखा है कि कश्मीर के प्राचीन राजाओ का इतिहास जहाँगीर के आदेश से फारसी भाषा में लिखा जा चुका है। उस फारसी पुस्तक का मैं अनुवाद कर रहा हूँ। बर्नियर का संकेत हैदर मलिक के अनुवाद की ओर ही है। एक शताब्दी बाद जीपेरी टिफेन्थलर नाम के एक पादरी ने भारत का विवरण लिखते हुए कश्मीर के प्राचीन राजाओ के इतिहास का सार भी सम्मिलित किया है। वह भी हैदर मलिक के फारसी अनुवाद पर ही आधारित है।

उन्नीसवी सदी के प्रथम चरण मे सर विलियम जोन्स का ध्यान राजतरंगिणी की ओर आकृष्ट हुआ। उन दिनो सन् १८१९ मे कश्मीर महाराजा रणजीतसिंह के राज्य के अन्तर्गत था। महाराजा के आदेश से सर मूरक्राफ्ट १८२३ मे श्रीनगर जाकर राजतरंगिणी की मूल प्रति ले आए। उसी के आधार पर बंगाल की एसियाटिक सोसाइटी ने सन् १८३५ मे राजतरंगिणी का अनुवाद प्रकाशित कराया। इससे पूर्व सन् १८२५ मे डॉ० विल्सन ने हिन्दू-राजाओ के इतिहास पर एक निबन्ध लिखा था जिसमे कल्हण की राजतरंगिणी की छः तरंगो का सारांश था। मूल संस्कृत की राजतरंगिणी का सर्वप्रथम अनुवाद फ्रेंच भाषा मे हुआ था।

कलकत्ता संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल एम० ट्रायर ने सन् १८४० में बंगाल एसियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित राजतरंगिणी के संस्करण के आधार पर छः तरंगो का अंग्रेजी अनुवाद किया।

उस अनुवाद को पेरिस की एसियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया। सन् १८८७ मे योगेशचन्द्रदत्त ने राजतरंगिणी का अंग्रेजी अनुवाद कलकत्ता से प्रकाशित कराया। एक वर्ष बाद सन् १८८८ ई० मे श्रीयुत शंकर पाण्डुरग पंडित ने विद्वानो का ध्यान कलकत्ता वाले संस्करण की ओर आकृष्ट किया। कारण यह था कि उन्ही दिनो उन्होंने वाक्पति के गौडवहो नामक काव्य को प्रकाशित कराया था। उसमे उन्होंने वाक्पति तथा उनके आश्रयदाता यशोवर्मा का समय निर्धारित करने के लिए राजतरंगिणी को ही मुख्य आधार बनाया था। प्रसगात् उन्होंने राजतरंगिणी के लेखक कल्हण की विशेष चर्चा करते हुए राजतरंगिणी के कुछ श्लोको का अनुवाद भी उसमे प्रस्तुत किया था। साथ ही यह भी कहा था कि जब तक राजतरंगिणी जैसे अद्वितीय ग्रन्थ का कोई प्रामाणिक संस्करण न प्रकाशित हो तब तक उसके सम्बन्ध मे कुछ भी न निश्चित किया जाए।

उनकी इस चेतावनी का इतना व्यापक प्रभाव पडा कि विद्वान् लोग राजतरंगिणी का प्रामाणिक संस्करण प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्नशील हो गए। सन् १८९२ मे सर ओरेल स्टाइन ने बबई से राजतरंगिणी का एक सटिप्पण संस्करण प्रकाशित कराया और लगभग उसी समय महामहोपाध्याय दुर्गाप्रसाद द्विवेदी ने बम्बई के निर्णयसागर प्रेस से अपना ही सम्पादित संस्करण प्रकाशित कराया। द्विवेदीजी के पाठानुशीलन से लाभ उठाते हुए सर स्टाइन ने सन् १९०० मे राजतरंगिणी का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया। इसके बाद सन् १९२९ मे माधव व्यङ्कटेश लेले ने मराठी अनुवाद चित्रशाला प्रेस, पूना से प्रकाशित कराया। तदनन्तर सन् १९३५ मे श्री रणजित् सीताराम पंडित ने कल्हण-कृत राजतरंगिणी की मूल प्रति से एक अत्यन्त सुन्दर और प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित कराया।

फ्रेंच, फ़ारसी, अंग्रेजी और मराठी भाषाओ मे अनुवाद प्रकाशित हो जाने के बाद माधव कालेज, उज्जैन के प्रो० गोपीकृष्ण द्विवेदी और पंडित पुस्तकालय, वाराणसी से प्रकाशित पंडित रामतेज पाण्डेय के हिन्दी अनुवाद देखने को मिले हैं। इन दो हिन्दी अनुवादो के बाद यह हिन्दी राजतरंगिणी तीसरा प्रयास है।

विषय-सार

यह असंदिग्ध है कि पूर्वमध्य युग मे सबसे अधिक क्रमबद्ध राजनीतिक इतिहास कहीं का मिलता है तो वह कश्मीर का ही है। इसका श्रेय महाकवि कल्हण को है, जिसने बडी जाँच-पडताल करके बारहवी शताब्दी मे संस्कृत मे पद्यबन्ध राजतरंगिणी नाम का ऐतिहासिक महाकाव्य लिखा है। अति प्राचीन काल के विषय मे उसने जो कुछ लिखा है, अधिकतर कर अनुश्रुतिगम्य इतिवृत्त पर आधारित है, परन्तु आठवी शताब्दी से वह कश्मीर का क्रमबद्ध इतिहास देता है। आठवी शताब्दी मे राजा चन्द्रपीड और मुक्तापीड ललितादित्य पूर्ण स्वतन्त्र शासक थे। कश्मीर के राजाओ मे ललितादित्य सबसे अधिक प्रतापी राजा हो चुका है। उसने कश्मीर-राज्य मे साहित्य, कला और संगीत को प्रोत्साहन दिया तथा मार्तण्ड का भव्य मन्दिर बनवाया, जिसका एक बडा भाग आज भी वर्तमान है। उसने सभी दिशाओ मे युद्ध किया, भूटियो का मान-मर्दन किया, तिब्बत को पराजित किया, सिन्धु के किनारे लडकर विजय प्राप्त की। उत्तरी भारतवर्ष के मैदानो मे उसने कन्नौज के राजा यशोवर्मन को ठहराया। उसके बाद जयापीड ने भी कश्मीर को भारतवर्ष की बड़ी शक्ति बनाये रखने का प्रयत्न किया किन्तु, उसका आन्तरिक शासन निर्दयता एव अत्याचार का था।

उसके बाद अवन्तिवर्मन का समय आया। यह समय ईसवी सन् ८५५ से ८८३ तक का माना जाता है। अवन्तिवर्मन ने राज्य के अन्तर्गत कृषि की उन्नति के लिए सिंचाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। इसके बाद अनेक राजा हुए, जिनमें से कुछ ने प्रजावर्ग का बड़ा उपकार किया और कुछ तो अत्याचार और पाप की सजीव मूर्त्ति प्रमाणित हुए। ईसवी सन् ६५० से १००३ ई० तक कश्मीर मे रानी दिद्दा ने शासन किया। उसने भी प्रजा पर मनमाना अत्याचार किया। धीरे-धीरे समय बीतता गया और सन् १३३६ मे कश्मीर मे मुसलमानो का अधिकार हो गया। प्राचीन मध्य युग के कश्मीर के इतिहास का यही साराश है।

सामाजिक और राजनीतिक स्थिति

राजतरंगिणी से ज्ञात है कि उस समय कश्मीर मे ब्राह्मण और शूद्र, दो ही मुख्य जातियाँ थी। कुछ थोडी अस्पृश्य जातियाँ भी थी। ब्राह्मण अधिकतर पुरोहित का काम करते थे। उनकी विभिन्न श्रेणियाँ बन गई थी। पूजा, पाठ, व्रत, अनुष्ठान उनका मुख्य पेशा था। कल्हण के काल मे और सम्भवत. दसवी सदी से ही जातियो के बनने की प्रवृत्ति बढ गई थी। दसवी सदी से बारहवी सदी तक विचारो की प्रगति अवरुद्ध हो जाने के कारण सम्पूर्ण भारत का सामाजिक जीवन शिथिल हो गया था और उसमे सकीर्णता तथा अनुदारता का पूर्णतया प्रवेश हो चुका था। श्रमिक वर्ग और कुलीन वर्ग के बीच गहरी खाईं बन गई थी। जिस प्रकार नदी का प्रवाह रुक जाने से छोटे-छोटे पानी के चुहडे और बडे-बडे दर बन जाते हैं उसी प्रकार उस समय भारत मे जातियाँ बन रही थी। कायस्थ नाम की जाति कल्हण के समय तक नही बन पाई थी। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि अपने अन्तिम समय मे ललितादित्य उत्तर की तरफ आक्रमण कर कई वर्ष तक वहाँ फँसा रहा। उस समय वह अपने मन्त्रियो के पास बराबर यह सन्देश भेजता रहा कि सुशासन मे त्रुटि न आने पाये। प्रजा सुख का ध्यान रखा जाए। देश का सुशासन नष्ट करने वाले अनेक कारणो को गिनाते हुए उसने यह भी बताया कि

> अन्योऽन्योद्वाह सम्बन्धे कायस्था सहतायदि।
> तदा नि.सशय ज्ञेय. प्रजाभाग्य विपर्यय॥

अर्थात्, परस्पर विवाह-सम्बन्धो द्वारा कायस्थ (छोटे राजकर्मचारी) यदि सहत हो जायँगे तो निश्चिय ही प्रजा का दुर्भाग्य होगा। इससे स्पष्ट है कि कायस्थ नाम की जाति उस समय तक नहीं थी, किन्तु उसके बनने के लक्षण दिखाई पडने लगे थे जिसके लिए बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ सशकित हो उठे थे।

राजा और राजदरबारियो मे से बहुतो के चरित्र गिरे हुए थे। जनसाधारण मे अन्धविश्वास फैला हुआ था। कुछ राजा बौद्धो, ब्राह्मणो को समान रूप से मानते थे। मन्दिरो, विहारो और मठो का निर्माण करते थे। दान-दक्षिणा देते थे, बाढ, अकाल से पीडित प्रजा की रक्षा और सुख-सुविधा के लिए राजकोष से सहायता की जाती थी। धर्मशालाएँ, चैत्य बनवा कर उनमे सदाव्रत चलाया जाता था। भूमि की उपज बढाने के अनेक उपाय किए जाते थे। विद्या और धर्म के प्रचार के अनेक उपाय किये जाते थे। जयापीड ने देश-देशान्तर के विद्वानो को अपने यहाँ बुलाकर रखा था और राजाओ से बढकर उनका सम्मान किया करता था। ८५५ ई० के बाद कश्मीर में शैव सम्प्रदाय के सुधार की

एक लहर उठी, किन्तु नवी शती के अन्त मे राजा शकरवर्मा ने देव-मन्दिरो के विरुद्ध जेहाद बोल दिया । देवस्थानो मे लगी हुई जायदादे उसने जब्त कर ली ।

ग्यारहवी शती के अन्त मे जिस समय कर्णाटक मे वीरशैव नाम का सुधारवादी पन्थ चला, उसी समय कश्मीर के राजा हर्ष ने अपने राज्य मे **देवोत्पाटन** नायक, अर्थात् देव-मन्दिर उखाडने वाला अधिकारी की नियुक्ति की । उस अधिकारी का केवल एक ही काम था देव-मन्दिरो को भ्रष्ट करना, उनको नेस्तनाबूद करा देना और उनकी सपत्तियाँ जब्त कर लेना ।

राजा की ओर से जब प्रजा को अत्यधिक त्रास पहुँचाया जाता था तो उनके अत्याचार और कुशासन के विरुद्ध कश्मीरी ब्राह्मण सत्याग्रह करते थे, अनशन व्रत करते थे । ब्राह्मणो के सत्याग्रह से राजाओ के सिंहासन डगमगाने लगते थे, उन्हे प्रजा के सामने झुकना पडता था ।

राजा जलौक ने राजकाज चलाने के लिए अठारह कर्मस्थान बनाए थे जो न्याय, कर, सेना, पुलीस, स्वराष्ट्र, परराष्ट्र, धर्म, वित्त आदि का प्रबन्ध करते थे । कर्मस्थान एक प्रकार के मन्त्रालय थे । राजा ललितादित्य ने मन्त्रि-स्तर के पाँच अधिकारियो की नियुक्ति की थी जिन्हे **पचमहाशब्द** कहा जाता था । वे **महाप्रति पीड, महासंधिविग्रहिक,** महाश्वशाल, **महाभाण्डागार** और **महासाधन-भाग** कहलाते थे । मन्त्रालय (सेक्रेटेरिएट) मे कार्य करने वाले कर्मचारी **दिविर** और **कायस्थ** कहलाते थे । दिविरो और कायस्थो का वर्णन अत्याचारी कहकर कल्हण ने किया है । गाँव के प्रधान को **ग्रामकायस्थ** कहा जाता था । नगर का प्रधान नगराध्यक्ष कहलाता था । उस समय भी बेगार लेने की प्रथा का प्रचलन था । नवी शताब्दी के अन्त में राजा शकरवर्मा ने युद्ध के अवसर पर **रूढभारोढि**, अर्थात् प्रजा के लिए भार ढोने की बेगार चलाई थी ।

राजतरगिणी से पता चलता है कि कल्हण के काल मे जनता का सामूहिक जीवन क्षीण होने लगा था । वह अन्याय, अत्याचार को चुपचाप सहन कर लेती थी । उसकी इस विवशता से राजकर्मचारी, शासक तथा जागीरदार और भी अधिक उच्छृङ्खल हो उठे थे । कश्मीर के इतिहास मे दसवी शताब्दी से **डामर** सिर उठाने लगते हैं और धीरे-धीरे वे इतने उच्छृङ्खल और बर्बर हो गए कि राज की शक्ति उनके हाथो मे बँटकर छिन्न-भिन्न हो गई । डामरो को कल्हण ने **तस्कर** और **दस्यु** कहकर उनकी निन्दा की है । डामरो के भीषण अत्याचार के कारण राजा सग्रामदेव (१२३६-५२ ई०) को केवल राजसिंहासन ही नही छोडना पडा, बल्कि अपना देश भी छोड देना पडा ।

राजतरगिणीकार ने डामरो की तुलना खून पीने वाले, आँत खाने वाले सियारो से करते हुए लिखा है कि

तस्मिन् दण्डधरे दूर याते डामर केरव.
अन्त्राण्यपि विशामाशुरशेष समपायिन

'डामर' शब्द सस्कृत भाषा मे अवश्य मिलता है किन्तु इसका अर्थ तत्र विशेष है । जाति या वर्ग का बोधक नही है । कुछ इतिहासकार डामर का अर्थ जागीरदार लगाते हैं, किन्तु हमारी समझ मे डामर-सेना के सैनिको का एक वर्ग है । सातवी सदी मे हर्ष के काल मे सेना के **चारभट** सैनिक होते थे । वे बहुत ही उच्छृङ्खल, ऊधमी और विवेकशून्य होते थे । अनैतिक व्यापार, अकारण विद्रोह और हलचल करना उनका स्वभाव था । सम्भवत बारहवी सदी मे वही **चारभट** सैनिक डामर कहलाने लगे । ब्रिटिश सेना में भी टामी सैनिक इसी स्वभाव और प्रवृत्त के हुआ करते थे ।

कल्हण के काल मे कश्मीर मे विद्या की पर्याप्त उन्नति हुई थी। भारत-मजरी, रामायण-मजरी, वृहत्कथा-मजरी और वोधिसत्वादान-कल्पलता आदि अनेक उच्चकोटि के ग्रन्थो की रचना इसी समय हुई थी।

कल्हण और उसका कृतित्व

राजतरगिणी के प्रत्येक तरग मे कल्हण ने अपने को 'कारमीरिक-महामात्य-चम्पक-प्रभु-सुत-कल्हण' ने लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि कल्हण के पिता का नाम चम्पक था और वह कश्मीर के राजा हर्षदेव का महामात्य था। उसका समय १०८६ ई० से ११०१ ई० तक रहा। राजा हर्षदेव के शासन के प्रथम अर्धभाग मे चम्पक की कोई विशेष बात उल्लेखनीय नही है, किन्तु अन्तिम अर्धभाग मे द्वारपति के पद पर काम करते हुए उसने दुग्धधात नाम के दुर्ग को घेर लिया था। उस समय चम्पक प्रभु द्वारा प्रदर्शित की गई कार्यकुशलता की विशेष प्रशसा कल्हण ने की है।

राजा हर्षदेव के अतिम युद्ध तक चम्पक उसी के साथ रहा। राजा की विभ्रान्त एव सकट-ग्रस्त स्थिति को देखकर चम्पक ने तटस्थ और निर्भय होकर राजा को उपदेश दिया था, और उस समय की सारी घटना उसने कल्हण से अवश्य वता दी होगी।

राजा हर्ष के राजत्याग, प्राणरक्षा के लिए पलायन, और उसकी शोचनीय, दयनीय मृत्यु का आंखो-देखा वर्णन कल्हण ने अपने पिता चम्पक के सेवक मुक्तक से सुनकर राजतरगिणी मे लिखा है। महामात्य चम्पक शैवधर्म का अनुयायी था। नन्दितीर्थ और हिन्दू देवी-देवताओ पर उसकी अटूट श्रद्धा थी, इसीलिए कल्हण ने नन्दि-क्षेत्र तथा उसके आसपास के प्रदेशो का विशद वर्णन किया है। कल्हण ने लिखा है कि राजा हर्षदेव ने कनक से सगीतशास्त्र की विशेष शिक्षा लेकर उसे गुरुदक्षिणा के रूप मे एक लाख दीनार (स्वर्णमुद्रा) प्रदान की थी। राजा हर्षदेव की मृत्यु के बाद कनक ने अपने जीवन का शेष भाग काशी मे विताया।

कनक का जन्म-स्थान उसने परिहासपुर वताया है और यह भी लिखा है कि राजा हर्षदेव के उपद्रव से उसने बुद्ध की एक भव्य प्रतिमा की रक्षा की थी। इससे सिद्ध होता है कि कनक धार्मिक विचारो मे उदार था। हिन्दू धर्म के समान बौद्ध धर्म पर भी उस की श्रद्धा थी। अपनी तथा अपने पिता, पितृव्य की जन्मभूमि होने के कारण परिहासपुर का विशेष वर्णन कल्हण ने किया है। कल्हण जाति का ब्राह्मण था और सस्कृत भाषा का प्रकाण्ड विद्वान् था। जहां कही तपोरत ब्राह्मणो का प्रसग आया है, वहां कल्हण की लेखनी से सात्विक अभिमान और गौरव झलक उठा है। कल्हण शैव धर्मानुयायी था। इसलिए उसने राजतरगिणी के हर तरग मे अर्धनारी नटेश्वर की वन्दना की है, और कारमीरिक शैवागम के प्रधान आचार्य भट्ट कल्लट के प्रति विशेष श्रद्धाभाव व्यक्त किया है। कल्हण शैवागम तथा तन्त्रशास्त्र के सिद्धान्तो का प्रकाण्ड पण्डित था, किन्तु अन्धविश्वासी कतई नही था। इसलिए बकवचरे और पाखण्डी तान्त्रिको का उसने उपहास भी किया है

कल्हण उदार दृष्टिकोण और सहिष्णु भाव का शैव था, इसलिए उसने बौद्ध धर्म के प्रति सर्वत्र आदर-भाव व्यक्त किया है। अशोक से लेकर उसके समय तक जितने बौद्ध धर्मानुयायी राजा हुए हैं उन सब की उसने कड़ी प्रशसा की है। वह बौद्ध धर्म का विशेषज्ञ था और उसकी दन्तकथाओ का पूर्ण ज्ञाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय भारत मे, खासकर कश्मीर

में, शैव, बौद्ध, जैन, वैष्णव आदि विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों के मानने वालों में परस्पर सहिष्णुता के भाव जागरित हो चुके थे।

एक प्रतिभासम्पन्न कवि में साहित्य-ज्ञान की जितनी अपेक्षा होनी चाहिए, वह कल्हण में विद्यमान थी। वह एक महान् कवि था। राजतरंगिणी में उसके महाकवि होने का परिचय पदे-पदे मिलता है। राजतरंगिणी की वर्णन शैली से ज्ञात होता है कि कल्हण ने इसे अपनी प्रौढ़ावस्था में ११४८ ई० से ११५० ई० के बीच लिखा है। सन् १११२ से ११२० ई० तक राजा सुस्सल के राज्य-शासन का वर्णन और सन् ११२१ में उसके सैनिकों द्वारा भिक्षाचर को धोखा दिए जाने का वर्णन ही यह सिद्ध करता है कि कल्हण की बुद्धि परिपक्व थी और वह प्रौढ़ वय का था। सम्भवतः उसका जन्म ११०० ई० के आसपास हुआ था।

ईसवी बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कश्मीर में एक भयंकर राज्य-क्रान्ति हुई थी। उस क्रान्ति ने कश्मीर में एक नये राजवंश को जन्म दिया। राजा हर्षदेव ने १०८९ से ११०१ ई० तक राज्य किया था। उसके शासन-काल का पूर्वार्द्ध शान्ति और सुख के बीता था, किन्तु उत्तरार्द्ध पूर्ण रूप से अव्यवस्थित और उच्छृंखल रहा। उसके मर जाने के बाद उच्चल कश्मीर का राजा हुआ। उसने सन् ११०१ से ११११ ई० तक राज्य किया। उसके बाद उसका छोटा भाई राजा हुआ। उसने १११२ से ११२८ ई० तक राज्य किया। तदनन्तर सुस्सल के पुत्र जयसिंह ने शासन भार ग्रहण किया। जयसिंह के शासन-काल में भी ११४३ ई० तक उसके सबंधियों द्वारा उत्पात और उखाड़-पछाड़ होते रहे। बाद में भी छोटे-मोटे उपद्रव बने ही रहे। कल्हण जब राजतरंगिणी लिख रहा था, उस समय जयसिंह का ही शासन-काल था और लेखन-काल में राज्य उपद्रवग्रस्त था। इसमें सन्देह नहीं कि कल्हण का सारा जीवन कश्मीर में होने वाली भयंकर क्रान्ति, उथल-पुथल तथा विविध प्रकार के विचित्र झगड़ों के देखने में ही बीता था। यह उथल-पुथल ही राजतरंगिणी लिखने में प्रेरक बनी।

जिस राज्य-क्रान्ति ने राजा हर्षदेव का विनाश किया था, उसी ने कल्हण के कुटुम्ब को भी ध्वस्त किया था, इसीलिए राजतरंगिणी के आठवें तरंग में जहाँ बहुत से मंत्रियों की नामावली दी गई है वहाँ कल्हण ने अपने पिता चम्पक का नाम नहीं दिया है। केवल भूतेश्वर तीर्थ के वर्णन प्रसंग में ही चम्पक का उल्लेख उसने किया है। चम्पक का उल्लेख न होने में उस समय का राज्य-विप्लव वहीं मुख्य कारण था, क्योंकि चम्पक राजा हर्षदेव का विश्वस्त और कृतज्ञ मंत्री था। राजा हर्ष-की मृत्यु के बाद स्वामिभक्त अमात्य ने अपनी स्वामिभक्ति चरितार्थ करते हुए तीर्थवास में ही अपने जीवन को बिता देने का संकल्प कर लिया था।

कल्हण निर्भीक, ईमानदार और निष्पक्ष इतिहासकार था। उसने अपने समय के शासक जयसिंह की राज्य-व्यवस्था का वर्णन अपूर्व स्पष्टता के साथ किया है। राजा के गुण और दोष के वर्णन में उसने बड़ी निर्भीकता और निष्पक्षता दिखाई है। जयसिंह के प्रतिपक्षियों के सद्गुणों की प्रशंसा दिल खोल कर की है। जयसिंह के पिता सुस्सल की कटु आलोचना करने में कल्हण ने तनिक भी कोर-कसर नहीं रखी है। जो भिक्षाचर जयसिंह और सुस्सल की नींद हराम किए था, उसके शौर्य की प्रशंसा कल्हण ने उदात्त शब्दों में की है। राज्य-क्रान्ति के समय कश्मीरियों की स्वार्थपरता, राजद्रोह, स्वामिद्रोह और कायरता का नग्न चित्र खींचने में कल्हण ने

कमाल कर दिया है। बात-बात में सत्याग्रह, प्रायोपवेशन करने वाले ब्राह्मण, रिश्वतखोर राजकर्मचारी, राजकोष का अपहरण करने वाले धूर्त कायस्थ और सूदखोर वैश्य कल्हण की आँख में काँटा की तरह चुभते थे। उसने इन सब की बड़ी तीखी आलोचना की है। प्राचीन पुरोहित-मंडली से कल्हण बेहद नाराज था, इसलिए कि वे कश्मीर की प्रगति के बाधक थे।

कवि और इतिहासकार के रूप में कल्हण मानव-स्वभाव का महान् पारखी था। उसने भिन्न-भिन्न स्वभाव और प्रकृति के मनुष्यों के गुण-दोष का विवेचन बड़ी बारीकी से किया है। फिर भी, अन्त तक अपने विषय में वह मौन ही रहा है। अपने देश के इतिहास का विशेषज्ञ होने के साथ ही अपने समय की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान भी उसे था। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि प्राचीन इतिहास के अन्वेषण में पूर्ण सहायक थी। वह स्वाभिमानी कवि और निष्पक्ष इतिहासकार था। उसने राजाश्रय या राजपुरस्कार प्राप्त करने की लालसा रखकर राजतरंगिणी जैसे अप्रतिम इतिहास एवं महाकाव्य की रचना नहीं की है, बल्कि उसने अपने कवि-कर्म और इतिहासकार-कर्म का निर्वाह किया है अपना कर्त्तव्य समझकर। इसमें सन्देह नहीं कि उसने बड़ी ईमानदारी से इतिहास का तथ्य प्रस्तुत किया है।

यद्यपि कल्हण ने इतिहास के रूप में ही राजतरंगिणी लिखी है और प्रारम्भ में उसने अपने संकल्प को स्पष्टतया व्यक्त भी किया है, किन्तु आजकल के इतिहासकार उसे इतिहास न कह कर महाकाव्य कहना अधिक पसंद करते हैं। कदाचित् कविता में लिखा जाना ही इस का कारण हो।

वस्तुतः इतिहासकार का दृष्टिकोण न्यायाधीश के समान पक्षपातशून्य होता है। इसलिए राजतरंगिणी की रचना करते हुए कल्हण ने वास्तविक स्थिति और पक्षपातशून्यता, इन दोनों गुणों को विशेष रूप से अपनाया है। उसने अपने समय का इतिहास लिखने में ऐसी स्पष्टवादिता का परिचय दिया है कि इस प्रकार की स्पष्टवादिता भारत में अंग्रेजी शासन-काल के समय लिखे गये इतिहासकारों में नहीं है।

'इतिहासकार को चाहिए कि वह वंशावली (शजरा) पर पूरा ध्यान दे।' इस सिद्धान्त का पूर्णतया पालन कल्हण ने किया है। उसकी दी हुई वंशावली प्रामाणिक और विश्वस्त है। प्रत्येक नवीन व्यक्ति के वंश का परिचय उसने बड़ी सावधानी से दिया है।

जहाँ कहीं विचित्र घटनाएँ घटित हुई उनका कारण कल्हण ने विधि की विडम्बना बताया है। राजा हर्षदेव महान् राजनीतिज्ञ, नीतिनिपुण, विद्वान् एवं गुणवान् था, किन्तु उसका अन्त में वह भ्रष्ट हो गया। कष्ट और अनाथावस्था में उसकी दयनीय मृत्यु हुई। कल्हण ने इसे भाग्य की प्रतिकूलता कहा है। कल्हण की धारणा थी कि पवित्र तीर्थ, पवित्र क्षेत्र, देवालय आदि धार्मिक स्थानों में अत्याचार करने पर, राजा ईश्वरीय कोप का भाजन बन कर नष्ट हो जाता है। हर्षदेव का अन्त इन्हीं कारणों से हुआ। इसी प्रकार सुश्रवा नाग के कोप से ही नरपुर का विनाश हुआ। ऐसी भाग्यवादी बातों से तथा शुभ-अशुभ शकुन पर विश्वास रखने से कल्हण का इतिहासकार-व्यक्तित्व भिन्न बन गया है।

राजतरंगिणी में कल्हण द्वारा की गई काल-गणना दो भागों में विभक्त की जा

सकती है। पहले भाग मे प्रारभ की तीन तरगे और दूसरे भाग मे शेष पाँच तरगे रखी जा सकती हैं। इस विभाजन के अनुसार पहले भाग मे प्राचीन गोनन्दादि वशो के राजाओ का शासन-काल लगभग २०५० वर्षों का लिया जा सकता है। प्रारभ की तीन तरगे और चौथी तरग के अधिक भाग मे स्थूल मान से प्रत्येक राजा का शासन-काल कितने वर्षों का था, इतना ही विवरण दिया गया है। चौथी तरग के थोडे से अतिम भाग से लेकर आठवी तरग तक प्राय सभी घटनाओ का वर्ष, मास और तिथियो के साथ विवरण दिया गया है। कल्हण द्वारा बताई गई तिथियाँ लौकिक शक के ३८८९ से, अर्थात् ७ मार्च सन् ८१३ ई० से लौकिक शक ४२२४, अर्थात् ई० ११४५-५० तक दी गई हैं। इनमे प्रारभ की तिथि मे राजा चिप्पट और **जयापीड** का निधन हुआ था और शेष तिथियो मे राजतरगिणी का लेखन-कार्य पूरा हुआ था। लौकिक शक का वर्षारम्भ चान्द्र और सौर दोनो मानो के योग से, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को होता है और शुद्ध चान्द्र मान के अनुसार पूर्णिमा को महीना समाप्त होता है।

वराह मिहिरने वृहत्सहिता मे राजा युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का समय कलियुग के ६५३वे वर्ष का प्रारभ निश्चित किया है। कल्हण ने भी राजतरगिणी मे अपने इतिहास का प्रारभ युधिष्ठिर के राज्याभिषेक-काल से किया है। कल्हण के मत से कश्मीर के आदि राजा **गोनन्द** का राज्याभिषेक उसी दिन हुआ है जिस दिन युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ है। कल्हण ने इस विषय मे **नीलमत** पुराण को प्रमाण माना है। तात्पर्य यह कि युधिष्ठिर और गोनन्द को वह समकालिक मानता है।

कल्हण का यह कथन कि अधिक प्रमाण न मिलने से एक ही वश मे उत्पन्न हुए राजाओ ने २२६८ वर्ष तक राज्य किया और उस वश के ५२ राजा प्राचीन ग्रथकारो के मत से विस्मृति-सागर मे निमग्न हो गए सत्य जान पडता है।

"इस प्रकार किसी भी प्रमाण के बिना तीसरे गोनन्द से लेकर कल्हण के समय तक के राजाओ के शासन-काल के वर्षों की सकलित सख्या २३३०।" कल्हण का यह कहना भी सत्य के समीप जान पडता है।

राजतरगिणी की पहली तरग मे कल्हण द्वारा की गई काल-गणना का पौराणिक मान्यताओ पर आधारित हैं। और यही बात दूसरी, तीसरी तरग की काल-गणना के सबध मे भी कही जा सकती है। इसके बाद जब हम चौथी तरग को देखते हैं तो उसमे कर्कोटक-वश के राजाओ की काल-गणना मे २५ वर्ष का अन्तर मिलता है और पाँचवी तरग से आठवी तरग के राजाओ के शासन-काल की काल-गणना क्रमबद्ध प्रामाणिक है।

समस्त सस्कृत-साहित्य मे प्राय इतिहास कहे जाने वाले ग्रथो मे काल-गणना की दृष्टि से राजतरगिणी अद्वितीय ग्रथ है। भारत के जिन राज्यो का विवरण सहितइतिहास नहीं मिलता है, उनके इतिहासो की मुख्य-मुख्य घटनाओ का काल निश्चित करने के लिए यह एक सर्वोत्तम विश्वास करने योग्य साधन राजतरगिणी है।

हमारी दृष्टि मे कल्हण-कृत राजतरगिणी अप्रतिम ऐतिहासिक काव्य है। इसमें महाभारत काल से लेकर बारहवी सदी तक के कश्मीरी राजाओ के शासन का क्रमबद्ध इतिहास है। यह ग्रथ

मध्यकालीन पाश्चात्य इतिहास-ग्रंथों और मुस्लिम तारीखों की तुलना में किसी भी प्रकार न्यून नहीं कहा जा सकता है। संस्कृत-साहित्य में यही एकमेव अद्वितीय इतिहास-ग्रंथ है जो इतिहास की शैली में लिखा गया है।

वस्तुत: राजतरंगिणी में राजाओं के स्तवन-गीत नहीं हैं, बल्कि निष्पक्ष तटस्थ भाव से लिखा गया कश्मीर का राजनैतिक इतिहास है।

अनुवादिका

१

१ मंगलाचरण और प्रस्तावना

जिन आशाओ और अभिलाषाओ को लेकर मैं इस राजतरंगिणी को लिखने जा रहा हूँ, वे बिना किसी विघ्न के पूर्ण रूप से सफल हो; इस उद्देश्य से मैं सब से पहले उन शिवजी को प्रणाम करता हूँ, जो मन-चाहा फल देने वाले कल्पवृक्ष के समान हैं, ससार के समस्त बन्धनो से मुक्ति पाये हुए पुरुष जिनकी नित्य सेवा किया करते है और आभूषण बने हुए सर्पों के फनों पर रहने वाली मणियो की कान्ति का प्रकाश जिनके शरीर की शोभा बढाया करता है।

साथ ही साथ मैं यह भी चाहता हूँ कि जो कोई भी इस राजतरंगिणी को पढे, उसके लिए अर्धनारी-नटेश्वर का बायाँ भाग अथवा दाहिना भाग नित्य कल्याण करने वाला हो। यदि दाहिना भाग हुआ तो तीसरे नेत्र वाली अग्नि की ज्वाला, खेलते हुए सर्पों के चचल मुख, हलाहल विष के कारण शख के समान कान्ति वाला नीलकठ और बैल पर सवार पुरुष का स्वरूप; और यदि बाँया भाग हुआ तो केसर के तिलक से शोभा पाने वाला ललाट, झूलते हुए कुण्डलो से शोभा पाने वाले कान, शख के समान कान्ति वाला गौर वर्ण का कठ और बैल पर सवार स्त्री का स्वरूप पाठको का अवश्य कल्याण करे।

चाहता तो मैं यह भी हूँ कि सुकवि के गुण को समझा दूँ, किन्तु इस कार्य मे मै अपने को असमर्थ-सा पा रहा हूँ। किन शब्दो और उपमाओ के सहारे मैं समझाऊँ यह भी निश्चय करने मे मैं समर्थ नही हो रहा हूँ। बहुत कुछ सोचने के बाद मैंने यह निश्चय किया कि अमृत के रस से इसकी उपमा देकर समझा दूँ, किन्तु उसी समय यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि ऐसा करना क्या उचित होगा? सत्य तो यह है कि अमृत का रस तो केवल उसी पुरुष के भौतिक शरीर को अमर करता है जो उसे पीता है किन्तु सुकवि के गुण से उत्पन्न होने वाले काव्यामृत के रसास्वादन से कवि और उसके काव्य मे लिखे गये राजा तथा अन्य पुरुषो का कीर्ति-रूप शरीर अमर हो जाता है, ऐसी दशा मे काव्य तो अमृत के रस से भी कही श्रेष्ठ है अथवा यो कहना चाहिए कि अपने और दूसरे के यश-रूप शरीर को अमर करने वाला सुकवि का गुण अमृत के रस का तिरस्कार कर सकने में पूर्ण रूप से समर्थ है। इन्ही सब कारणो से कहना पडता है कि सुकवि का गुण वर्णन से परे है और सभी के लिए वन्दना के योग्य है।

वह कवि भी धन्य है जो काव्य की रचना के लिए मनोहर कल्पना की सृष्टि कर लेने का सामर्थ्य अपने मे रखता है। अतीत की घटनाओ को प्रत्यक्ष कराने वाला कवि ही होता है, अतएव उसमे वह सामर्थ्य होना आवश्यक है। बिना उस सामर्थ्य के भूत को कौन प्रत्यक्ष करा सकता है? कवि के लिए दूरदर्शी भी होना आवश्यक है। यदि कवि अपनी तीव्र और तीक्ष्ण बुद्धि के प्रभाव से मानव-हृदय मे सरलता से प्रवेश कराने योग्य पदार्थों को न देख सका, तो यही समझ लेना चाहिए कि उसमे अभी दूरदर्शिता की बडी कमी है। साराश यह कि कवि की कल्पना मनोहर और उसकी रचना का विषय मानव-हृदय मे स्थान पाने योग्य हो।

यह सब जानते हुए भी मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि मैं इस ग्रंथ मे विचित्र अर्थात् आश्चर्य उत्पन्न करने वाली रचना को स्थान नही दे सका हूँ। यदि ऐसा करता तो इस ग्रंथ की कथाओ को इतना विस्तार मिल जाता कि ग्रन्थ को ही पूर्ण करने मे कठिनाइयो का सामना करना पड़ता। कुछ भी हो, यह ग्रन्थ पाठको के लिए अरुचिकर न होगा क्योकि उनकी रुचि को ध्यान मे रखते हुए मैंने स्थान-स्थान पर हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने वाला थोडा-सा इतिहास रख ही दिया है।

२. ग्रंथ लिखने का उद्देश्य

मुझे इस बात का पूर्ण रूप से ज्ञान है कि राग और द्वेष को लेकर जितने भी कवि काव्य की रचना करते हैं, वे न तो प्रशसा पाते है, और न उनके ग्रथो का ही आदर होता है। जिन कवियो ने अपने हृदय से राग और द्वेष को दूर कर दिया है तथा काव्य के वास्तविक गुणो को अपना कर सच्चे इतिहास को बतलाने मे अपनी वाणी को दृढ रखा है, ससार ने उन्ही कवियो की प्रशसा की है।

इसमे सन्देह नही कि मैं फिर से उसी इतिहास को लिखने जा रहा हूँ जिसे प्राचीन काल के कवि बहुत पहले लिख चुके हैं और पाठको मे से अनेक उसे पढ भी चुके हैं। फिर भी मैं सज्जनता के नाते पाठको से निवेदन करता हूँ कि जब तक वे मेरे फिर से लिखने का उद्देश्य न जान लें तब तक मेरे इस ग्रन्थ से अपना मुँह न फेरने की ही कृपा करें।

मैं अपने प्रिय पाठको से ही यह पूछना चाहता हूँ कि प्राचीन काल के इतिहास-लेखको ने बडे विस्तार के साथ राजाओ का जो वर्णन लिखा है उसमे सत्य और असत्य का अश कितना है? उन इतिहास-लेखको के वर्णनो को पढने के बाद यदि मैंने यह समझ लिया है कि सत्य और असत्य की मात्रा इस सीमा तक है तो क्या अनुचित किया है? इतना ही नही, यदि मैं प्राचीन इतिहास की सत्यता और असत्यता को जानकर सत्य इतिहास पाठको के सामने रखने जा रहा हूँ तो क्या मेरी यह चतुरता प्रशसनीय नही है?

मै यह जानता हूँ कि आप सब यही कहेगे कि कदापि नही। इसी प्रकार की आशाओ और अभिलाषाओ को लेकर मैने ऐसा उद्योग करना निश्चय कर लिया है जो कि पूर्ण रूप से दोष रहित और वास्तविक इतिहास के लिखने मे मुझे सफल बना सके।

इसी प्रसग मे मैं यह भी कह देना उचित समझता हूँ कि कुछ समय पहले सुव्रत नाम के एक कवि हो गये हैं। प्राचीन इतिहास के ग्रन्थो का बडा विस्तार देखकर उन्होने उन सब को सक्षेप मे लिखने का प्रयत्न किया था। इसमे सन्देह नही कि उनका वह ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसके कारण प्राचीन इतिहास के ग्रन्थ ही लुप्त हो गये। किन्तु बडे खेद के साथ कहना पडता है कि सुव्रत कवि की रचना मे कठोर पाण्डित्य की मात्रा इतनी अधिक है कि उसकी भाषा का मिठास ही नष्ट हो गया है और आज यह कहना पड रहा है कि वाणी की नीरसता के कारण सुव्रत कवि की रचना पाठको को इतिहास के यथार्थ वृत्तान्त जानने मे न सहायक हुई और न होती ही है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने भी 'नृपावलि' नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की है। काव्य-कला के दृष्टिकोण से उनकी वह रचना उच्चकोटि की कही जा सकती है किन्तु यदि सत्य कहना अपराध न समझा जाय तो कहना पडता है कि उन्होने भी अपनी उस रचना मे अपने

उत्तरदायित्व का कुछ भी विचार नही किया है। परिणाम यह हुआ है कि उनकी असावधानता के कारण 'नृपावलि' नाम का ग्रन्थ किसी भी दशा मे निर्दोष नही कहा जा सकता।

मैने राज-कथा से सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन विद्वानो के लिखे हुए ग्यारह ग्रन्थ तथा नीलमत पुराण पढा है। प्राचीन राजाओ द्वारा बनवाये गये देव-मन्दिर, नगर, ताम्र-पत्र, शासन तथा प्रशस्ति-पत्र, और सामयिक काव्य-ग्रन्थो के अध्ययन से मेरा भ्रम नष्ट हो चुका है। यदि किसी भी प्रकार का भ्रम रहा होता, तो मैं इस ग्रन्थ को लिखने का दुस्साहस न करता।

यहाँ मुझे यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले प्रमाण न मिलने से प्राचीन बावन राजाओ का वृत्तान्त मैं नही जान सका हूँ। जानने के लिए मैंने प्राचीन ग्रन्थो की बडी छान-बीन की, किन्तु प्राचीन ग्रन्थकारो को उन राजाओ के विषय मे कुछ भी ज्ञान नही रहा है, यही कहना पडता है। कुछ भी हो, उन बावन राजाओ मे से गोनन्द आदि चार राजाओ का इतिहास मैंने नीलमत पुराण के आधार पर लिखना उचित समझा है।

'पार्थिवावलि' नामक एक और ऐतिहासिक ग्रथ है। यह बारह हजार श्लोको का ग्रन्थ है। महाव्रती अर्थात् पाशुपत नाम वाले व्रत की दीक्षा से युक्त हेलाराज नामक ब्राह्मण कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की है। इसी ग्रथ के आधार पर पद्ममिहिर कवि ने अपने ग्रथ मे अशोक के पूर्वज लव आदि आठ राजाओ के नामो का उल्लेख किया है।

इसी प्रकार छविल्लाकर नामक महाकवि ने अपने ग्रथ मे उन बावन नरेशो मे से अशोक से लेकर अभिमन्यु तक पाँच राजाओ के नामो का उल्लेख किया है। 'अशोकादाभिमन्योर्ये प्रोक्ता पच महीभुज'। ते द्वापचाशतोमध्यादेवलब्धा पुरातनै ॥' अर्थात् अशोकादि अभिमन्यु पर्यन्त पाँच नरेशो के नाम प्राचीन कवियो ने अप्रसिद्ध बावन नरेशो मे से ही लिये है।

इतना सब कहने के बाद मैं यह भी विश्वास दिलाता हूँ कि प्राचीन ग्रथो से राजाओ के देश-काल की उन्नति और अवनति के विषय मे जो भ्रम उत्पन्न हुआ है उसे नष्ट करने मे राज-तरंगिणी की यह कथा उपयुक्त होगी। इतना ही नही, अनेक प्राचीन व्यवहारो का वर्णन इस सुन्दरता के साथ किया गया है कि ऐसा ही कोई सहृदय पाठक होगा, जिसे यह ग्रन्थ आनद देने वाला न हो।

मैंने भली-भाँति यह देख लिया है कि ससार मे जितने भी प्राणी है, सभी का जीवन क्षणभगुर है। कोई भी पूर्ण रूप से सुखी नही है। जिसे देखता हूँ वही किसी न किसी कष्ट मे पडा हुआ है इसीलिए मैंने अपने इस ग्रथ मे समस्त प्राणियो को चिरकाल तक सुख देने वाले शान्त रस को ही प्रधान स्थान देना उचित समझा है।

अतएव अपने सहृदय पाठको से मेरा यही निवेदन है कि वे उसी शान्त रस के प्रबल प्रवाह वाली इस राजतरंगिणी की कथा को पढकर परम सुख-लाभ करें और समस्त प्रेमी श्रोतागण जीवन को सुखमय बनाने के लिए शान्त रस वाली इस रमणीय कथा को कानो की कटोरी से जी भर कर पान करने की कृपा करें।

३. काश्मीर का वर्णन

महाप्रलय के बाद जब से ब्रह्मा ने फिर से नये संसार की रचना का कार्य आरम्भ किया है तब से लेकर छ मन्वन्तर तक हिमालय के भीतरी भाग मे सतीसर नामक एक महासरोवर था। एक मन्वन्तर तीस करोड सडसठ लाख बीस हजार वर्ष का माना गया है। इस प्रकार के जब छ. मन्वन्तर बीत गये और वैवस्वत नामक यह सातवाँ मन्वन्तर आया, तब कश्यप ने ब्रह्मा,

विष्णु, महेश, आदि देवताओं को अपने पास बुलाकर कहा 'सतीसर नामक महासरोवर के भीतर जलोद्भव नाम का एक असुर रहता है। तुम सब मिलकर उस सरोवर का भेदन करो और उस असुर को मार डालो।'

कश्यप के आदेश से समस्त देवताओं ने महासरोवर का भेदन कर उस असुर को मार डाला। इसके बाद कश्यप ने महासरोवर की भूमि मे काश्मीर नामक सुप्रसिद्ध मण्डल को स्थापित किया। यह देश वितस्ता नदी के प्रवाह रूपी दण्ड से युक्त और कुण्ड रूपी छत्र को धारण किये हुए नाग-राज श्रीनीलनाग से पालन किया जाता है।

कार्तिकेय को आश्रय देने वाली और गणेश को दूध पिलाने वाली पार्वती कन्दराओं मे रहने के कारण गुहाश्रिता और सर्पों को जलपान कराने के कारण नागपीतपया कही जाती है, इसीलिए वितस्ता का रूप धारण कर लेने पर भी उसने अपने उचित गुणो का त्याग नही किया, अर्थात् जिस प्रकार पार्वती मे गुहाश्रिता और नागपीतपया होने के गुण-धर्म पाये जाते हैं, उसी प्रकार वितस्ता नदी मे भी वे सब गुण-धर्म प्रत्यक्ष मिल रहे हैं। सारांश यह कि पार्वती ने ही वितस्ता नदी का रूप धारण कर काश्मीर की भूमि को पवित्र किया है।

जिस प्रकार नाना प्रकार के रत्नो से अलंकृत, शख, पद्म आदि नागो से युक्त कुवेर के नगर शोभा पाते हैं, उसी प्रकार यह काश्मीर भी शोभा पा रहा है। इस नगर के चारो ओर ऊँचे-ऊँचे शिखर वाले पर्वत है। उन्हे देखकर कहना पडता है मानो गरुण के भय से शरण मे आए हुए सर्पों की प्राण-रक्षा के लिये इस नगर ने प्राकार-रूपी अपनी भुजाओ को ऊपर उठा दिया हो।

यहाँ पाप का नाश करने वाला पाप-सूदन तीर्थ है। इस तीर्थ मे काष्ठ-रूप उमेश विराजमान हैं। उनके दर्शन और स्पर्शन से भोग तथा मोक्ष दोनो ही फलो की प्राप्ति होती है। यहाँ कुछ पर्वत ऐसे हैं जहाँ पूर्ण रूप से जल का अभाव है। उन पर्वतो पर सन्ध्या देवी पाप और पुण्य का निर्णय जल-रूप से करती हैं, अर्थात् जो पुण्यात्मा होते हैं उन्हें जल मिल जाता है और जो पापी होते हैं वे यो ही रह जाते हैं।

यहाँ धरती से आग स्वयं निकलती है और ज्वाला-रूपी अपनी भुजाओ से हवन करने वाले पुरुषो द्वारा समर्पित हव्य को ग्रहण करती है। यहाँ गगा के प्रादुर्भाव से पवित्र भेड पर्वत पर सरोवर मे हँसरूप-धारणी श्रीशारदा दिखाई पडती है। यहाँ आज भी नन्दि क्षेत्र के शिवालय मे देवार्पित पूजा के चन्दन-बिन्दु दिखाई पड रहे हैं। इतना ही नही, यह वह स्थान है जहाँ श्रीशारदा के दर्शन-मात्र से कवि-सेवित मधुर वाणी और मधुमती नदी दोनो की प्राप्ति होती है। इस चक्रधर, विजयेश, आदिकेशव, ईशान आदि पवित्र देवालयो से युक्त काश्मीर देश का ऐसा कोई भी स्थान नही है, जिसे तीर्थ होने का गौरव न प्राप्त हो। यहाँ के सभी स्थान तीर्थ कहे जाने योग्य है।

इस काश्मीर देश के निवासी शत्रुओ से कभी नही डरते। यदि कोई शस्त्र-बल से इस देश को जीतना चाहे तो वह अपने उद्देश्य मे कभी सफल नही होगा। यहाँ के निवासी यदि डरते है तो परलोक से ही, ऐसी दशा मे पुण्य के बल से ही इस देश को जीता जा सकता है। शीत-काल मे स्नान करने योग्य यहाँ ऐसे नदी-तट हैं जहाँ स्नानागारो मे गरम जल मिलता है। गर्मी के दिनो मे स्नान करने योग्य ऐसे नदी-तट भी हैं जहाँ किसी भी प्रकार के जल-जन्तुओ का भय नही है और नित्य स्वच्छ शीतल जल भरा रहता है।

यह समझ कर कि कश्यप मेरे पिता है और उन्होने ही इस काश्मीर देश का निर्माण

किया है इसलिए यह कठोर उष्ण किरण-समूह से तपाने के योग्य नही है। सूर्य गौरवपूर्ण हृदय से यहाँ ग्रीष्म मे भी तीव्रता नही प्रगट करता है। यह वह देश है जहाँ बड़े-बड़े विद्या-भवन, बर्फ के समान शीतल जल और अमृत के समान मधुर द्राक्षाफल आदि स्वर्ग-दुर्लभ पदार्थ भी साधारण ही गिने जाते हैं।

तीन लोक मे भूलोक श्रेष्ठ है और भूलोक मे उत्तर दिशा की शोभा ऐसी है जिसका कि वर्णन हो नही सकता। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उत्तर दिशा का हिमालय नाम का पर्वत अतिशय प्रशसनीय है और उस परम प्रशसनीय हिमालय पर भी काश्मीर देश प्रत्येक दृष्टिकोण से परम मनोहर है।

४. कालगणना के विषय में

कलियुग में इस काश्मीर देश के राजसिंहासन पर कौरव-पाण्डव के समकालीन तीसरे गोनन्द तक बावन नरेश बैठ चुके हैं। किन्तु वे सब नरेश इतने भाग्यहीन थे कि उनके समय मे यश-रूप शरीर के निर्माता कवि-स्रष्टाओ का अभाव था। महाप्रतापशाली जिन राजाओ की भुजा-रूपी वन की छाया मे यह समुद्र से घिरी हुई पृथिवी सर्वथा निर्भय थी, ऐसे राजाओ का नाम भी जिसके अनुग्रह के बिना याद तक नही आता है, उस स्वाभाविक महत्वशालिनी कवि-रचना को मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

जिनके चरण हाथियो के गण्डस्थलो पर रखे जाते थे और जो अखण्ड साम्राज्य-लक्ष्मी का उपभोग करते थे, जिनके विशाल और ऊँचे-ऊँचे राजभवनो मे दिन मे भी चमकने वाली चाँदनी के समान रूपवती युवतियाँ स्वच्छन्द विहार करती थी, कवि-रचना के बिना उन भूपालो को भी यह ससार स्वप्न मे उत्पन्न हुए भी नही मान सकता। ससार तो अतीत के भूपालो को कवि-रचना मे ही देखना चाहता है। अतएव हे भाई कवि-कृत्य! हम आपके गुणो का कहाँ तक वर्णन करें। केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि आपके बिना यह ससार अन्ध है।

कलियुग मे गोनन्द आदि बावन राजाओ ने २२६८ वर्ष तक काश्मीर देश का शासन किया। लोग कहते है कि महाभारत युद्ध द्वापर युग के अन्त मे हुआ। इस कहावत के कारण लोगो मे भ्रम उत्पन्न हो चुका है। परिणाम यह हो रहा है कि मेरी इस कालगणना को भी बहुत-से भ्रान्तचित्त ऐतिहासिक गलत मानते हैं। किन्तु मैं यह निश्चयपूर्वक कह रहा हूँ कि काश्मीर के राजसिंहासन को भूषित करने वाले राजाओ का शासन-काल और बीता हुआ कलि-काल बराबर ही है।

कलियुग के ६५३ वर्ष बीत जाने पर कौरव-पाण्डव हुए है। आजकल शककाल के चौबीसवें लौकिक वर्ष मे १०७० वर्ष बीत चुके हैं। प्राय तीसरे गोनन्द के समय से आज तक २३३० वर्ष बीत गये हैं। उन बावन राजाओ का शासन-काल १२६६ वर्ष ऐतिहासिक सम्मति से सिद्ध है। अतएव इस सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार का सन्देह नही होना चाहिए।

ज्योतिष-सहिताकारो का ऐसा मत है कि चित्र-शिखण्डि अर्थात् ध्रुव-तारा की परिक्रमा करने वाले सप्तऋषि-गण एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र पर एक सौ वर्ष मे सचार करते हैं। जिस समय राजा युधिष्ठिर पृथ्वी पर शासन करते थे, उस समय ये सप्तऋषि-गण मघा नक्षत्र पर थे। राजा युधिष्ठिर का शककाल २५२६ माना गया है। इसी को लेकर मैंने कालगणना की है।

५ प्रथम गोनन्द आदि राजाओं की कथा

गोनन्द अथवा प्रथम गोनन्द नामक महाप्रतापी राजा काश्मीर देश का पहला शासक हो चुका है। चचल गङ्गा के प्रवाह-रूपी श्वेत वस्त्र को धारण करने वाली जो उत्तर दिशा नित्य कैलाश पर्वत की धवलिमा का उपहास किया करती है वह हर समय उस पराक्रमी राजा की सेवा मे लगी रहती थी। उस महाप्रतापी राजा की शासन-व्यवस्था इतनी कुशलतापूर्ण थी कि कही भी किसी को किसी भी बात का डर न रह गया था। ऐसा जान पडता था मानो विष से डर कर पृथ्वी ने शेषनाग के मस्तक को त्याग दिया है और इन्द्रनील रत्न-खचित आभूषणो से सुशोभित राजा गोनन्द की भुजाओ का आश्रय पाकर नि शक रहने लगी है।

उसी राजा गोनन्द का मित्र जरासध था। एक बार जरासध ने भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए राजा गोनन्द को आमन्त्रित किया। मित्र के आमन्त्रण को स्वीकार कर राजा गोनन्द ने युद्ध करने के लिए यात्रा कर दी। जब वह यमुना के तट पर पहुँचा तब कुछ सेना को वही ठहरा कर शेष सेना के साथ आगे बढा। आगे बढकर उसने चारो ओर से मथुरा नगरी को घेर लिया। जो सेना यमुना के तट पर ठहरी हुई थी वह ठहरी ही रह गई। जितनी सेना लेकर वह आगे बढा था उतनी ही सेना से युद्ध करने लगा। वह उस युद्ध मे इतनी वीरता से लडा कि यादवो की सेना पर उसका प्रबल आतक छा गया। युद्ध मे यादवी सेना के बडे-बडे वीर मारे गये और उन वीरो के मारे जाने से यादव-रमणियो का सारा मनोविनोद समाप्त हो गया। वे सब बिलख-बिलख कर विलाप करने लगी।

जब भगवान् श्रीकृष्ण के बडे भाई बलराम ने देखा कि युद्ध मे यादवो की सेना हार रही है, तब वे उसकी रक्षा के लिए उठ पडे और आगे बढकर उस वीर राजा गोनन्द को घेर लिया। वे दोनो ही समान बलशाली थे इसीलिए उन दोनो मे अधिक समय तक युद्ध होता रहा। उन दोनो का युद्ध-कौशल देखकर यह निश्चय करना कठिन हो रहा था कि उन दोनो मे कौन विजयी होगा। कहना यो चाहिए कि किसी की भी विजय को निश्चित न देखकर जयश्री के कर-कमलो मे रखी हुई विजय-माला भी मुर्झाने लगी।

युद्ध करते-करते जब अधिक समय बीत गया तब भयानक रूप से शस्त्र-प्रहार किया जाने लगा। कुछ समय के बाद शस्त्र के प्रहारो से राजा गोनन्द ऐसा घायल हुआ कि वह अधिक समय तक युद्ध न कर सका। शस्त्र-प्रहारो से जर्जरित होने के कारण उसे विवश होकर पृथ्वी का आलिगन करना पडा अर्थात् वह परलोक सिधार गया और बलराम को विजय-लक्ष्मी के आलिगन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। राजा गोनन्द को वीरोचित सद्गति मिल जाने के बाद उसका पुत्र दामोदर काश्मीर देश की भूमि पर शासन करने लगा।

राजा दामोदर बडा स्वाभिमानी था। जब-जब वह अपने पिता के वध का स्मरण करता तब-तब वह शत्रुओ से बदला लेने के लिए उत्तेजित हो उठता था। सम्पूर्ण भोग और सम्पत्ति से युक्त राज्य मिलने पर भी उसे शान्ति नही मिलती थी। ऐसे ही समय मे गाधार देश के राजा ने अपनी राजकुमारी का स्वयवर रचा और सभी देशो के राजकुमारो को निमन्त्रण भेजा। इसी उपलक्ष मे यादवो को भी निमन्त्रण भेजा गया।

इस समाचार को सुनकर यादवो से युद्ध करने के लिए राजा दामोदर की भुजाएँ फडकने लगी। अपनी उन भुजाओ की खुजलाहट को मिटाने के लिए वह युद्ध की तैयारी करने लगा। थोडे

ही समय मे उसने अपनी समस्त सेना को जमा कर लिया और फिर घोडो की टाप से उडने वाली धूलि से आकाश को आच्छादित करती हुई सेना को साथ लेकर वह युद्ध करने के लिए चल पडा।

गाधार देश की राजकुमारी के उस स्वयवर मे युद्ध-रूपी भयानक विष उत्पन्न हो गया। राजकुमारी का स्वयंवर तो यो ही रह गया और युद्ध मे शस्त्र-प्रहारो से आहत हुए वीरो के साथ स्वर्गीय रमणियो का स्वयवर होने लगा। इतना ही नही, शत्रु की सेना पर आक्रमण करने वाला वह वीर श्रेष्ठ दामोदर श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र से आहत होकर वीरगति को प्राप्त हुआ। दामोदर के न रहने पर यादव-कुल श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने उसकी गर्भवती स्त्री यशोमती देवी का ब्राह्मणो के द्वारा राज्याभिषेक कराया।

श्रीकृष्ण ने इस कार्य से मन्त्रि-मण्डल रूठ गया। उस मन्त्रि-मण्डल के मनोगत भावो को समझकर श्रीकृष्ण ने कहा "यह बात लोक-प्रसिद्ध है कि काश्मीर देश पार्वती का स्वरूप है और वहाँ का राजा साक्षात् शिव है। ऐसी दशा मे वह दुष्ट होने पर भी कल्याण को चाहने वाले विद्वानो के लिए सभी प्रकार से मान्य है।" श्रीकृष्ण के मुख मे इस पौराणिक वचन को सुनकर रूठा हुआ मन्त्रि-मण्डल शान्त हो गया। जितने भी विरोधी भाव थे, वे सभी बात की बात मे दूर हो गये।

इस घटना के पहले जो लोग स्त्रियो को उपेक्षा की दृष्टि से देखा करते थे, समाज मे उनका कोई भी महत्व नही समझते थे, अपने भोग्य पदार्थ के समान उन्हे गौरवहीन दृष्टि से देखना ही उचित समझते थे, वे सभी रानी यशोमती को माता समझ कर आदरपूर्ण दृष्टि से देखने लगे। धीरे-धीरे समय बीतने लगा। उचित समय के बाद जले हुए वश-वृक्ष के अकुर के समान दसवें महीने मे यशोमती के गर्भ से एक दिव्य पुत्र उत्पन्न हुआ।

उस पुत्र के जन्म का समाचार सुनकर समस्त काश्मीर देश आनन्द-सागर मे मग्न हो गया। राज्य के समस्त श्रेष्ठ ब्राह्मण आ गये। राज्याभिषेक के लिए जितनी भी सामग्रियाँ चाहिए, वे सब परम हर्ष के साथ एकत्र की जाने लगी। जब समस्त सामग्रियाँ आ गईं तब श्रेष्ठ ब्राह्मणो द्वारा उस बालक का जात-कर्म-सस्कार और राज्याभिषेक एक साथ ही किया गया।

उस बालक राजा ने राज्य की श्री के साथ ही गोनन्द द्वितीय ऐसा नाम भी प्राप्त कर लिया। उस बालक राजा के उचित पोषण के लिए पयस्विनी वितस्ता नदी और सभी प्रकार की सम्पत्ति उत्पन्न करने वाली धरती, दोनो ही उप-माताओ का कार्य प्रसन्नतापूर्वक करने लगी। उस बालक राजा के अकारण हास्य को देखकर भी उसकी प्रसन्नता को राजोचित मर्यादा के अनुसार सफल बनाने के लिए मन्त्रि-मण्डल सेवको को पारितोषिक देकर सतुष्ट करता था।

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि मन्त्रि-मडल उस बालक राजा की अव्यक्त वाणी को नही समझ पाता था, परिणाम यह होता कि अव्यक्त वाणी के आशय को न समझ सकने के कारण आज्ञा-पालन करने मे असमर्थ मन्त्रि-मडल अपने को अपराधी समझता था। पिता के सिंहासन को सुशोभित करते हुए उस बालक राजा के चरण पाद पीठ तक नही पहुँच सकते थे अतएव उस पाद पीठ की निराशा ज्यो की त्यो बनी रहती थी। उस समय का राजभक्त मन्त्रि-मडल चामरो की मन्द-मन्द पवन से चचल काकपक्षधारी उस बालक राजा को राजसिंहासन पर बैठाकर राज्य का कार्य किया करता था।

कौरव और पाण्डव दोनो ही यह जानते थे कि काश्मीर का शासक बालक राजा है, इसलिए महाभारत के युद्ध मे सहायता करने के लिए उनमे से किसी ने भी उसे निमन्त्रण नही

भेजा। यदि वह राजा बालक न होता तो, क्षत्रिय-नियमों के अनुसार उसे महाभारत में भाग लेने के लिए युद्ध का निमंत्रण अवश्य मिलता। उस बालक राजा के बाद जो पैंतीस राजा हुए उनका इतिहास नष्ट हो गया है, इसलिए वे विस्मृति के सागर में डूब गये हैं, अर्थात् इतिहास का अभाव होने के कारण उन्हें कोई नहीं जानता।

६. जलौक और उसके पूर्वजों की कथा

इसके बाद लव नामक राजा काश्मीर का शासक हुआ। वह बड़ा प्रतापी और पराक्रमी शासक था। जिस ओर वह दृष्टिपात करता उधर की ही जयश्री उसको अपनाकर अपने को धन्य कर लेती। उसके विमल सुयश से काश्मीर देश बड़ा ही गौरवान्वित हुआ। उसके सैनिक इतने वीर थे कि अपनी अद्भुत् वीरता से उन सबों ने संसार की निद्रा भङ्ग कर दी थी और सामने आने वाले शत्रुओं को चिरनिद्रा के वशीभूत कर दिया था।

ऐसे प्रतापी और यशस्वी राजा लव ने चौरासी लाख पत्थर के मकान बनवाकर लोलोर अथवा लोलेर नामक नगर बसाया। फिर लेहरी नदी के तट पर बसे हुए लेवर नामक ग्राम को ब्राह्मणों को दान कर दिया। वह जब तक राज्य करता रहा तब तक उसके राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था बनी रही। पराजित शत्रु और आश्रित मित्र सभी उसके अखण्ड राज्य-वैभव और कलकहीन वीरोचित सद्भावों से नित्य प्रसन्न रहा करते थे। जब राजा लव का स्वर्गवास हो गया तब उसका पुत्र कुशेशय राज्य का अधिकारी हुआ। वह भी अपने पिता के ही समान परम प्रतापी शासक था। जिस तरह उसके पिता ने लेवर नामक ग्राम ब्राह्मणों को दान कर दिया था उसी तरह उसने भी कुरुहार नामक अग्रहार ब्राह्मणों को दे दिया। उसके बाद उसका पुत्र खगेन्द्र काश्मीर देश का राजा हुआ। खगेन्द्र बड़ा पराक्रमी और वीरों में सर्वश्रेष्ठ था। वह सर्पं-वश का कुशल घातक था। उसने खागि और खोनमुष नामक दो, अग्रहारों को स्थापित किया था। इन सब कार्यों से उसकी कीर्त्ति सर्वत्र फैल गई। सभी मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा करने लगे।

खगेन्द्र के स्वर्गवासी हो जाने के बाद उसका पुत्र सुरेन्द्र काश्मीर देश के राज्य-सिंहासन को सुशोभित करने लगा। जिस प्रकार उसका पिता प्रतापशाली था उसी प्रकार वह भी प्रतापशाली राजा था। राजा सुरेन्द्र से देवताओं का राजा इन्द्र भी लज्जित होता था क्योंकि इन्द्र शतमन्यु था और वह शान्तमन्यु था। इन्द्र गोत्रभिद् कहलाता था और राजा सुरेन्द्र गोत्र रक्षक था। शतमन्यु कहते हैं महाक्रोधी को और शान्तमन्यु कहते हैं शान्त क्रोध वाले पुरुष को गोत्रभिद् कहते है गोत्रनाशक को और गोत्ररक्षक कहते है उस पुरुष को जो गोत्रों की रक्षा करता है। मन्यु का अर्थ यश और क्रोध दोनो ही है तथा गोत्र का अर्थ पर्वत और वश दोनो ही है। इसलिए काश्मीर का राजा सुरेन्द्र देवताओं के राजा सुरेन्द्र से कहीं अधिक श्रेष्ठ था। जब तक राजा सुरेन्द्र काश्मीर देश पर राज्य करता रहा तब तक न तो कहीं शत्रुओं ने मस्तक उठाया और न कहीं किसी प्रकार का उपद्रव ही खड़ा हुआ। परम सुख और शान्ति के साथ प्रजा के दिन बीता करते थे। इस अखण्ड यशस्वी और परम पुण्यशाली राजा सुरेन्द्र ने दरद देश की सीमा पर सोरक नामक प्रसिद्ध नगर बसाया। इतना ही नहीं, नरेन्द्र भवन तथा सौरभ नामक दो विहार भी बनवाये। इतना सब कुछ होने पर भी उसके कोई सन्तान न थी। इसलिए उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरे वश का राजा गोधर काश्मीर के राज्य-सिंहासन पर बैठा। काश्मीर देश का राजा गोधर इतना प्रतापी था कि पर्वत सहित समस्त पृथ्वी उसके सामने मस्तक नत किये खड़ी रही और वह भी धर्म के अनुसार उन सबों का पालन करने लगा। उसने

भी गोधर और हस्तिशाला नामक दो अग्रहार ब्राह्मणो को दिया था। इस प्रकार दान और पुण्य के कार्य कर वह स्वर्गवासी हुआ।

उसके बाद उसका पुत्र सुवर्ण काश्मीर देश का शासक हुआ। उसने याचको को इतना सुवर्ण दान मे दिया कि उन सबकी याचकता ही नष्ट हो गई। फिर उसने कराल नामक देश मे ऐसा सुवर्ण बहाया कि लोगो ने उसके उस उदारतापूर्ण दान के कार्य को सुवर्ण भीष्म कुल्या अर्थात् सुवर्ण की ही कृत्रिम नदी कहना आरभ कर दिया। दानशीलता मे वह सर्वश्रेष्ठ मान लिया गया।

उसके बाद उसका पुत्र जनक अपने पिता के राज-सिंहाजन का अधिकारी हुआ। वह भी अपने पिता के ही समान राज-धर्मानुसार प्रजा का पालन करने लगा। उसने विहार तथा जालौन नामक अग्रहार निर्माण किया।

उसके स्वर्गवासी हो जाने के बाद उसका पुत्र शचीनर सिंहासन पर बैठा। वह बडा दयालु और क्षमाशील था। वह इतना नीति-निपुण और विचारशील था कि कोई भी उसकी आज्ञा का उल्लघन नही कर सकता था। उसने भी शमागार और शनार नामक दो अग्रहार स्थापित किये। कुछ समय तक पूर्ण शान्ति और व्यवस्था के साथ काश्मीर देश का गौरव बढाता हुआ वह राजा शचीनर स्वर्गधाम को चला गया।

राजा शचीनर के कोई पुत्र न था, इसलिए शकुनी का प्रपौत्र अशोक काश्मीर देश का राजा हुआ। अशोक परम सत्यवादी और पवित्र चरित्र का शासक था। उसने जैन धर्म को स्वीकार कर शुष्कलेत्र और वितस्तात्र नामक दो स्थानो मे अनेक स्तूप बँधवाये। वितस्तात्रपुर के धर्मारण्य नामक विहार मे उसने इतना ऊँचा चैत्य अर्थात् जैन-मन्दिर बनवाया था कि जिसकी ऊँचाई का निर्णय दर्शको के नेत्र नही कर सकते थे। उस परम प्रतापी और अति धनाढ्य राजा अशोक ने धनपूर्ण छानबे लाख दिव्य भवनो से सुशोभित परम प्रसिद्ध श्रीनगर नामक नगर बसाया तथा चूने के बने हुए श्रीविजयेश्वर मन्दिर के जीर्ण प्राकार को तुडवाकर उस स्थान पर पत्थरो का सुदृढ प्राकार बनवाया। राजा अशोक बडा कर्मशील था। आलस्य उससे कोसो दूर रहता था। उसने विजयेश्वर के समीप अशोकेश्वर के परम सुन्दर दो मन्दिर बनवाये। इसी समय काश्मीर देश पर म्लेच्छो के आक्रमण होने लगे। उसने आक्रमण करने वाले म्लेच्छो को समूल नष्ट करने का विचार किया। अपने इस विचार को सफल बनाने के लिए उसने कठोर तपस्या द्वारा भगवान् शकर को प्रसन्न करना चाहा। जैसे ही भगवान् शकर उसकी कठोर तपस्या से प्रसन्न हुए वैसे ही उसने एक पुत्र-रत्न प्राप्त किया। उसका नाम जलौक रखा गया।

जलौक बडा प्रतापी और पुण्यवान् था। साथ ही साथ अपने पिता के समान योग्य और पराक्रमी भी था, इसीलिए अशोक के पश्चात् वही काश्मीर देश का शासक हुआ। उसने अपनी निर्मल कीर्त्ति के प्रभाव से समस्त ससार को उज्जवल कर दिया था। उस दिव्य प्रभावशाली महात्मा के पवित्र चरित्रो को सुनकर देवता भी आश्चर्य करने लगते थे। वह कोटिवेधी रस की सिद्धि से पारदादि धातुओ द्वारा पर्याप्त मात्रा मे सुवर्ण बनाता था। यही एक कारण था कि वह समस्त ससार को भी सुवर्णमय बनाने की शक्ति रखता था। उसने नाग-सरोवर का जल स्तम्भन कर नाग-कन्याओ के साथ क्रीडा किया और इस प्रकार अपने यौवन को सफल बनाया। उसका गुरु परम विरक्त था। बुद्धिमान्, तेजस्वी और अवधूत होने के कारण उसके उसी गुरु ने अन्त मे अनेक बौद्धो को परास्त किया। सत्यवादी तथा परम भक्त वह राजा प्रतिदिन नियम से नन्दीश क्षेत्र मे स्वयभू श्रीज्येष्ठेश्वर नामक शकर की पूजा करता था। जिस समय वह नन्दीश क्षेत्र

को जाता उस समय उसकी सहायता से लिए एक नाग तुरन्त आ जाता और वह बडी भक्ति के साथ उसे वहाँ तक पहुँचा देता। इसीलिए उतनी दूर पहुँचने मे उसको प्रत्येक ग्राम मे अश्व का प्रबन्ध करने की आवश्यकता नहीं होती थी। वह राजा जलौक बडा धैर्यवान् था और इतना प्रतापी वीर था कि उसने सर्वव्यापी दुष्ट म्लेच्छ दल को सर्वत्र परास्त कर दिया। इतना ही नही उसने अपनी विजयशील सेना की अद्‌भुत् सहायता से सम्पूर्ण पृथ्वी को ही जीत लिया। राष्ट्र पर आक्रमण करने वाले म्लेच्छ दल को उसने जिस स्थान से मारकर भगा दिया था उस स्थान का नाम ससार मे उज्झटडिम्ब प्रसिद्ध हुआ।

उसने कान्यकुब्ज, आदि देशो को जीत कर वहाँ के चारो वर्णों को तथा धार्मिक विद्वानो को काश्मीर देश मे लाकर बसाया और राज्य-प्रबन्ध का सुधार किया। सुधार होने के पूर्व वहाँ साधारण राज्य के समान धर्माध्यक्ष, धनाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष, परराष्ट्र-सचिव, पुरोहित और ज्योतिषी ये सात अधिकारी थे। सुधार के बाद उसने अठारह कर्म स्थान अर्थात् कार्य-विभाग स्थापित कर राजा युधिष्ठिर के समान अपने राज्य का प्रबन्ध किया

वह बडी कुशाग्र बुद्धि वाला राजा था। उसने अपने पराक्रम तथा प्रभाव से जितनी भी सम्पत्ति उपार्जित की थी उसी के द्वारा वारवाल आदि अग्रहार ब्राह्मणो को दे दिये। उसकी पटरानी ईशान देवी ने काश्मीर और अन्य देशो के द्वारो पर प्रभावशाली मातृ-चक्रो की स्थापना की।

उसने व्यास के एक शिष्य से नन्दीपुराण का श्रवण किया था इसीलिए वह नन्दीश तीर्थ की स्पर्धा से सोदरादि तीर्थों की सेवा करने लगा। यद्यपि उसने श्रीनगर मे भगवान् ज्येष्ठयेश की स्थापना की थी तथापि सोदरादि तीर्थ के बिना उसके हृदय मे जगी हुई नन्दीश क्षेत्र की स्पर्धा को दूर करना सर्वथा असम्भव था। सोदर तीर्थ उसके निवास-स्थान से बहुत दूर था। एक दिन कार्य मे अधिक व्यग्र रहने से कारण वह वहाँ न जा सका। इसलिए उसके हृदय मे बडा क्लेश उत्पन्न हुआ। इतने ही मे सहसा धरती मे दरार हो गई और उसी दरार से सोदर तीर्थ के समान निर्मल और मधुर जल निकलता हुआ उसे दिखाई दिया। अकस्मात् भू-गर्भ से निकलते हुए उस पवित्र तीर्थ के जल मे स्नान करने से राजा जलौक को सोदर तीर्थ मे स्नान करने के समान हर्ष प्राप्त हुआ। इसके बाद परीक्षा करने के लिए उसने सोदर तीर्थ मे एक पात्र डाल दिया था। दो दिन के बाद वही पात्र उस नवीन भू-गर्भ से निकलते हुए तीर्थ के जल मे निकला। इसी विचित्र घटना से राजा जलौक को निश्चय हो गया कि यह जल सोदर तीर्थ का ही है। इसीलिए कहना पडता है कि राजा जलौक निस्सन्देह नन्दीश का ही अवतार था, अन्यथा ऐसे आश्चर्यजनक कार्य उसके द्वारा नही हो सकते थे।

एक समय वह विजयेश्वर के दर्शन करने जा रहा था। रास्ते मे एक स्त्री ने उससे भोजन माँगा। जब राजा जलौक ने यथेष्ठ भोजन देने की प्रतिज्ञा की, तब उस स्त्री ने भयानक रूप धारण कर नर-मास खाने की इच्छा प्रकट की।

जब अहिंसा-व्रतधारी उस राजा ने उस स्त्री को अपने शरीर का मास खाने की आज्ञा दे दी तब वह कहने लगी "राजन्! आप सच्चे व्रत के पालक बोधिसत्व है। हे महात्मन्! मैंने आज आपकी भूत-दया का महत्व देख लिया है।"

शैव होने के कारण राजा जलौक यह न समझ सका कि यथार्थ मे बोधिसत्व शब्द का अर्थ क्या है? इसलिए उसने उस स्त्री से पूछा—"भद्रे! तू मुझे बोधिसत्व शब्द से सबोधित कर रही है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस शब्द के कहने से तेरा अभिप्राय क्या है?" उस स्त्री ने

कहा "महाराज ! आप ध्यानपूर्वक समस्त वृत्तान्त को सुन लीजिए। मैं आदि से लेकर समस्त घटना का वर्णन कर देना उचित समझती हूँ। जिन बौद्धो को आपने परास्त कर दिया है, मुझे उन्ही बौद्धो ने यहाँ भेजा है। मैं लोकालोक पर्वत के समीप रहने वाली कृत्या हूँ। लोकालोक पर्वत के समीप का प्रदेश अन्धकारमय है। वहाँ मैं अपने किये हुए दुष्कर्मजन्य पापो से मुक्त होने के लिए बोधिसत्वो पर दृढ विश्वास रखकर उनकी सेवा मे लगी रहती हूँ। बोधिसत्वो मे सर्वप्रथम भगवान् बुद्ध से लेकर आज तक जो महात्मा अविद्या, अस्मिता आदि क्लेशो से मुक्त हैं, वे बोधिसत्व कहलाते हैं। बोधिसत्व अपराधियो पर क्रुद्ध नही होते, उनके अपराधो को तुरन्त क्षमा कर देते है और सदैव उपकार ही करते हैं। ससार का कल्याण करना ही वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

एक समय की घटना है। विहार मे बाजे बजाये जा रहे थे। बाजो के बजने से आपकी नीद टूट गई थी। इसीलिए आपको क्रोध आ गया था। ऐसे ही समय मे कुछ दुष्ट स्वभाव के मनुष्यो ने बौद्धो के प्रति आपको अधिक उत्तेजित कर दिया और उन दुष्टो की प्रेरणा से प्रभावित होकर आपने सम्पूर्ण विहारो को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था। आपके इसी कार्य से क्रुद्ध हुए बौद्धो ने मुझे आपका नाश करने के लिए यहां भेजा है। आते समय बोधिसत्वो ने मुझसे कहा भी था कि हे कल्याणी ! वह राजा महाशाक्य है। अतएव तू उसे पीड़ा नही दे सकती। उसके दर्शन से तेरे समस्त पातको का अन्त हो जायगा और तुझे सद्गति प्राप्त होगी। कुछ दुष्टो ने उसके चित्त मे मालिन्य उत्पन्न कर रखा है। तेरे पास असख्य सुवर्ण सचित है। हम सबो की आज्ञा मानकर तू उस राजा के पास जा और अपना समस्त सुवर्ण उसे देकर काश्मीर देश मे पुन. विहार बनवाने की सूचना दे। इस कार्य से उस राजा के तथा विहार-विध्वस का अनुमोदन करने वाले दुष्टो के पापो का प्रायश्चित्त हो जायगा।' इसीलिए मैंने आपसे भोजन मांगकर आपके सत्य की परीक्षा की है। मेरा पाप नष्ट हो चुका है। आपका कल्याण हो। अब मैं बडी प्रसन्नता के साथ जा रही हूँ। ऐसा कहकर और पुन' विहार बनवाने के लिए राजा से वचन लेकर वह कृत्या अन्तर्धान हो गई।"

उसके जाने के बाद राजा जलौक ने वहाँ कृत्याश्रम नामक एक विहार बनवाया और फिर उस निष्पाप कृत्यादेवी की आराधना आरभ कर दी। इसके साथ ही साथ नन्दी-क्षेत्र मे भगवान् भूतेश का पाषाणमय सुदृढ मन्दिर बनवाया और फिर नाना प्रकार के रत्नो से उनका पूजन किया। इतना ही नही, उस राजा जलौक ने ज्येष्ठेश की पूजा के समय नृत्य-गीत-कुशल अन्त पुर की सौ स्त्रियो को नृत्य करने के लिए नियुक्त किया था।

वह सब कर लेने के बाद वह चीरमोचन तीर्थ मे गया। वहाँ ब्रह्मासन लगाकर वह ध्यानमग्न हो गया और ऐसी तपस्या की कि कनकवाहिनी के हृदय से नन्दीश के स्पर्श की उत्कण्ठा भी कुण्ठित हो गई। इस प्रकार अपनी धर्मपत्नी के साथ वह राजा चीरमोचन तीर्थ मे अपना शरीर त्याग कर शिव-रूप मे लीन हो गया।

७ सिद्धश्रेष्ठ राजा सिद्ध की कथा

जलौक के बाद राजा दामोदर काश्मीर का शासक हुआ। यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि वह अशोक-वंशोत्पन्न था अथवा किसी दूसरे वंश का था। यदि कुछ कहा जा सकता है तो इतना ही की वह सर्वश्रेष्ठ शैव था और परम धनाढय भी था। तेज और विक्रम मे वह अद्वितीय था इसीलिए उस राजा दामोदर का आश्चर्यजनक प्रभाव आज भी ससार मे प्रसिद्ध है।

कहा जाता है कि राजा दामोदर पर भगवान् शंकर की विशेष कृपा रहा करती थी और इस विशेष कृपा का मुख्य कारण यह था कि वह स्वयं उत्तम चरित्रवाला था तथा चरित्रवानो का बड़ा सम्मान किया करता था। इसीलिए स्वयं कुवेर ने भी उससे मित्रता कर ली थी। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार कुवेर के पास अपार धनराशि थी उसी प्रकार राजा दामोदर के पास भी थी। ऐसे कुवेर के समान राजाओ मे श्रेष्ठ उस राजा दामोदर ने अपने आज्ञाकारी यक्षो को नियुक्त कर गुड्ड नामक एक सेतु वनवाया। उसने दामोदरसूद नामक प्रदेश मे एक नगर वसाया था। वह उसी सेतु द्वारा वहाँ जल पहुँचाना चाहता था। निस्सन्देह उसका वह कार्य वड़ा ही लोकोपकारी था किन्तु लोगो के कल्याण के लिए लोकातिशय कार्य करने वाले उदार पुरुषो के कार्यों मे जव मनुष्यो के पुण्यो मे अल्पता होती है तव विघ्न अवश्य उपस्थित होते है। यह मानी हुई वात है कि वह राजा अपने राज्य मे जल के उपद्रव को दूर करने के लिए ही यक्षो के द्वारा पाषाणमय सुदृढ सेतु वनवाना चाहता था।

उग्रतपस्वी ब्राह्मणो के तप की विभूतियाँ भी वर्णना से परे है क्योकि ब्राह्मण लोग अपने समान प्रभावशाली राजा के प्रभाव का भी नाश कर सकते है। शत्रु-द्वारा हरण की गई राज-लक्ष्मी किसी समय फिर भी मिल सकती है, परन्तु ब्राह्मणो के अपमान से नष्ट हुई सम्पत्ति का पुन प्राप्त होना असभव है।

किसी समय श्राद्ध करने के निमित्त वह राजा वितस्ता नदी के तट की ओर स्नान करने के लिए जा रहा था। इतने मे ही वहुत से क्षुधातुर ब्राह्मण उसके समीप आकर स्नान करने के पूर्व ही भोजन माँगने लगे। जव राजा ने उनकी वात पर ध्यान नही दिया तव उन्होने अपने तपोवल से वितस्ता नदी को उसके सामने लाकर रख दिया और कहा—"राजन्! यही वितस्ता नदी है। इसे देखकर हमे भोजन दीजिए।" उन ब्राह्मणो के इतना कहने पर भी राजा ने विश्वास न किया और इस घटना को जादू समझा और कहा "स्नान किये विना मैं आप लोगो को भोजन नही दे सकता। आप सव यहाँ से चले जाइए।" राजा दामोदर की इन तिरस्कारपूर्ण वातो को सुनकर उन ब्राह्मणो ने क्रोध से उसे शाप दिया कि तू सर्प होगा। फिर राजा की विनवीत प्रार्थना को सुनकर उन्होने "एक दिन मे सम्पूर्ण रामायण सुनने से तुम्हारी मुक्ति होगी" इस प्रकार शाप का प्रतिकार वतलाया। आज भी शापग्रस्त वह राजा दामोदरसूद मे तृष्णा से व्याकुल होकर इधर-उधर घूमता हुआ लोगो को दिखलाई देता है।

उसके वाद हुष्क, जुष्क, और कनिष्क नामक तीन राजा हुए। उन्होने अपने नाम के अनुसार हुष्कपुर, जुष्कपुर और कनिष्कपुर नामक तीन पुर वसाये। जुष्क ने जुष्कपुर तथा जयस्वामिपुर मे वहुत से विहार वनवाये। वे तीनो तुरुष्क होते हुए भी वडे पुण्यात्मा थे। उन्होने शुष्कलादि क्षेत्र मे मठ एव चैत्यो का निर्माण किया।

ये सव उस समय की वातें है जिस समय काश्मीर देश धन-धान्य से परिपूर्ण था और समस्त देश मे सन्यासाश्रम के तेज से जाज्वल्यमान वौद्ध-भिक्षुओ का वोलवाला था। उस समय तक शाक्यसिंह अर्थात् भगवान् वुद्ध के निर्वाण होने के डेढ सौ वर्ष वीत चुके थे और इस देश मे षडर्हद्वन-निवासी नागार्जुन भी सर्वेश्वर तथा वोधिसत्व माना जाता था।

पूर्वकथित राजाओ के वाद अभिमन्यु नामक राजा काश्मीर देश का शासन करने लगा। वह इन्द्र के समान तेजस्वी और निर्भीक था। उसके शासन-काल मे कही भी कोई कष्ट नही था। उसने कण्टकोत्स नामक अग्रहार ब्राह्मणो को दिया। ऐश्वर्य-सम्पन्न उस राजा ने अपने नाम से अभिमन्युपुर नामक नगर वसा कर उसमे भगवान् शंकर का मन्दिर भी वनवाया।

चन्द्राचार्य आदि महापण्डितो ने लुप्तप्राय व्याकरण महाभाष्य का उसके आदेश से पुन प्रचार किया और अपने नाम से भी चान्द्र व्याकरण की रचना की। बोधिसत्व नागार्जुन के द्वारा पाले गये बौद्ध उस समय काश्मीर देश मे अधिक प्रबल हो रहे थे। उन आगमद्वेषी बौद्धो ने शास्त्रार्थ के द्वारा बडे-बडे तार्किक पण्डितो को परास्त कर नीलमत पुराण के सिद्धान्तो को छिन्न-भिन्न कर डाला था।

उस सदाचारशून्य देश मे बलिदान-पूजा आदि शास्त्रोक्त कर्मों के लुप्त होने से क्रुद्ध होकर नागो ने बर्फ बरसाते हुए प्रजा का सहार करना आरम्भ कर दिया। तब वह राजा अभिमन्यु शीतकाल मे छ महीने तक दर्वाभिसार प्रान्त मे रहने लगा। उस स्थान मे भी बडे भयानक रूप से बौद्धो का नाश हो रहा था। इस भयानक आपत्ति-काल मे भी बलिदान और होमादि धार्मिक कार्य करने वाले ब्राह्मणो को सत्कर्म के प्रभाव से नाममात्र को भी त्रास नही होता था। केवल बौद्ध ही मरते थे।

काश्यप गोत्री चन्द्रदेव नामक ब्राह्मण काश्मीर देश के सरक्षक नील नामक नागराज को प्रसन्न करने के लिए उग्र तपस्या करने लगा। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर नीलनाग ने उसको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और बर्फ के उपद्रव को शान्तकर नीलमत पुराण मे कही गई विधि का उपदेश दिया। सबसे पहले प्रथम चन्द्रदेव ने काश्मीर देश मे यक्षो का उपद्रव शान्त किया था और इस द्वितीय चन्द्रदेव ने भी बौद्ध-भिक्षुओ का उपद्रव शान्त किया।

राजा अभिमन्यु के बाद तृतीय गोनन्द काश्मीर का शासक हुआ। उसने पहले के ही समान नाग-पूजन, नाग यज्ञ, नाग-यात्रा आदि उत्सव आरम्भ कर दिये। राजा के द्वारा नीलमत पुराण मे कही गई विधि के अनुसार धार्मिक कार्यों के प्रारम्भ होते ही बौद्ध-दोष और हिम-दोष दोनो ही नष्ट हो गये।

समय-समय पर ऐसे प्रतापी और पुण्यात्मा राजा उत्पन्न हो जाते हैं जिनके प्रभाव से प्रजा के कष्ट नष्ट हो जाते है। जो राजा प्रजा को कष्ट देते है वे परिवार सहित नष्ट हो जाते हैं और जो बिगडे हुए राष्ट्र मे सुख-शान्ति की स्थापना करते हैं उनकी कई पीढियो तक राज-लक्ष्मी स्थिर रहती है। इस प्रकार काश्मीर के प्राचीन राजाओ के वृत्तान्त से उनकी विशेषता को समझकर भावी राजाओ के सदसद् भाग्य का निर्णय विद्वानो को कर लेना चाहिए। नवीन सभ्यता के प्रचार से देश का उद्धार करने वाले उस राजा गोनन्द के वशज प्रवरसेन आदि राजाओ ने अपने सत्कर्मों के प्रभाव से वसुन्धरा के ऐश्वर्य का चिरकाल तक उपभोग किया।

जिस प्रकार रघुवशियो के प्रथम राजा रघु ने परम प्रताप और विक्रम के साथ राज्य किया था उसी प्रकार गोनन्दवशियो मे सर्वप्रथम उस प्रतापशाली राजा प्रवरसेन ने पैंतीस वर्ष तक पृथ्वी का पालन किया। उसके बाद उसके पुत्र विभीषण ने तिरपन वर्ष और छ॰ महीने तक काश्मीर देश का शासन किया। उसके बाद उसके पुत्र इन्द्रजीत ने पैंतीस वर्ष तक राज्य किया। उसके पुत्र रावण ने सैंतीस वर्ष तक पृथ्वी का उपभोग किया।

राजा रावण बटेश्वर नामक शिवलिंग की नित्य पूजा करता था। उस लिंग की रेखा तथा बिन्दुओ की कान्ति से भावी शुभाशुभ का ज्ञान होता था। राजा रावण ने उस शिवलिंग को चतु॰शाल मठ के अन्दर स्थापित कर सम्पूर्ण काश्मीर राज्य उसे समर्पण कर दिया। उसके बाद उसका पुत्र द्वितीय विभीषण पृथ्वी का पालन करने लगा। उसने पैंतीस वर्ष छ महीने तक काश्मीर देश मे राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र किन्नर काश्मीर देश का

राजा हुआ। युद्ध में किये गये उसके आश्चर्यजनक पराक्रम को किन्नरों का समूह नित्य गाया करता था। सर्वप्रथम राजा किन्नर बड़ा सदाचारी था। किन्तु थोड़े ही दिनों में प्रजा के दुर्भाग्य से वह विषयी और लम्पट हो गया। फिर वह राज्य में अनेक प्रकार के अनर्थ करने लगा। ऐसे ही समय में किन्नरपुर के विहार में रहने वाले एक श्रमणक अर्थात् बौद्धभिक्षु ने जादू से उसकी स्त्री को हर लिया था। अतः उसने क्रुद्ध होकर सैंकड़ों विहार जला दिये और उन विहारों को दिए हुए गाँव भी छीन लिये।

राजा किन्नर ने दिग्विजय कर जितना धन एकत्रित किया था उस धन से बड़े-बड़े राजमार्गों से सुसज्जित और अनेक उद्यानों से सुशोभित एक नवीन नगर वितस्ता नदी के किनारे पर बसाया। उस नगर के किसी एक उद्यान में निर्मल जलपूर्ण एक सरोवर था। उसमें सुश्रवा नाम का एक नाग रहता था।

किसी दिन उस उद्यान में दोपहर के समय विशाखा नाम का एक ब्राह्मण-युवक पहुँच गया। चूँकि बड़ी देर से भ्रमण करने के कारण वह थक चुका था इसलिए सघन छाया में बैठने की इच्छा से सरोवर के किनारे आकर बैठ गया। सघन वृक्ष की छाया में बैठने से उसका श्रम दूर हो गया। फिर उसने हाथ-मुँह धोकर सत्तू खाना आरम्भ किया। ज्यों ही उसने सत्तू के ग्रास से युक्त हाथ को अपने मुँह की ओर बढ़ाया त्यों ही पूर्व में नीर-वासी हंस द्वारा सुनी गई सुमधुर नूपुरों की ध्वनि उसे सुनाई पड़ी। वह बड़े आश्चर्य के साथ इधर-उधर देखने लगा। क्षण भर में ही उसने समीप के लता-कुंज से निकलती हुई नील वस्त्रों से सुसज्जित सुन्दर नेत्रों से सर्वत्र देखती हुई दो परम सुन्दरी नाग-कन्याएँ देखीं। काजल की रेखा से उनके नेत्र बड़े ही आकर्षक थे। उनके कर्णपाश में शोभा देने वाले माणिक्यजटित आभूषण कमल-पुष्पों की समानता कर रहे थे और उनके कटाक्ष मृणाल-नाल होने का गौरव प्राप्त कर रहे थे। मन्द-मन्द पवन से हिलते हुए नेत्राचल उनके स्कन्ध पर पताका की शोभा बढ़ा रहे थे। इन दोनों सुन्दरियों को देखकर वह तरुण ब्राह्मण मोहित हो गया और उसने भोजन करना छोड़ दिया। लता-कुँज से निकलकर वे नाग-कन्याएं कच्छगुच्छ अर्थात् तृण-धान्य की मंजरियाँ खाने लगीं। यह देखकर उस तरुण ब्राह्मण के मन में आश्चर्य उत्पन्न हुआ और वह अपने मन में विचार करने लगा—"अहो! इस सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य के लिए ऐसा दरिद्र भोजन! जीवन की विषम परिस्थिति से सम्बन्ध रखने वाली कितनी विचित्र घटना है।" इस प्रकार अपने मन में सोच-विचार कर उसने उन दोनों नाग-कन्याओं को अपने पास बुलाया। जब वे बिना किसी संकोच के उसके पास आ गईं तब थोड़ा-सा सत्तू खाने को दिया और कोमल पत्तों का दोना बनाकर उसमें निर्मल जल भर दिया। इस प्रकार उसने उन दोनों नाग-कन्याओं को खिलाया-पिलाया।

जब वे भोजन कर चुकीं और उसी के समीप बैठी रहीं तब वह कमल के पत्तों से उनको हवा करता हुआ कहने लगा—"पूर्वजन्म के पुण्य-फल से ही मैंने आप दोनों के शुभ दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। सत्य कहता हूँ कि मैंने अपने आपको आप दोनों का ही दास समझ लिया है फिर भी ब्राह्मण-सुलभ चंचलता से प्रेरित होकर आपसे कुछ पूछने की धृष्टता करना चाहता हूँ। आशा है कि एतदर्थ आप क्षमा करने की विशेष कृपा अवश्य करेंगी।"

जब उन दोनों नाग-कन्याओं ने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान कर दी तब उस तरुण ब्राह्मण ने प्रश्न किया—"आप दोनों ने अपने पवित्र जन्म से किस वंश को अलंकृत किया है?

साथ ही साथ आप दोनों यह भी बतलाने की कृपा करें कि ऐसी दरिद्र वस्तु खाने का क्या कारण है ?" उस तरुण ब्राह्मण के इन प्रश्नों को सुनकर उनमें से एक ने कहा—"हम दोनों ही सुश्रवा नामक नाग की कन्याएँ हैं। यदि अच्छा भोजन न मिले तो क्या ऐसा भोजन भी न खाया जाय ? मेरा नाम इरावती है। पिता जी ने मुझे विद्याधर चक्रवर्ती को देने का निश्चय किया है और मेरी इस बहिन का नाम चन्द्रलेखा है।" इतना सुन लेने के बाद उस तरुण ब्राह्मण ने फिर प्रश्न किया—"आप सब इतनी दरिद्रता के साथ अपना जीवन-निर्वाह क्यों किया करती हैं ?" नाग-कन्या इरावती ने कहा—"इसका कारण हमारे पिता जी जानते हैं। आप उन्हीं से पूछिये। वे आप को अवश्य बतला देंगे। वे ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी को तक्षक नाग की यात्रा में यहाँ आवेंगे। उनके मस्तक से सर्वदा जल-धारा बहा करती है। इसी से आप उन्हें पहचान सकेंगे और हम दोनों को भी उन्हीं के समीप बैठी हुई देखेंगे।" ऐसा कहकर वे दोनों नाग-कन्याएँ अदृश्य हो गईं।

कुछ दिनों के बाद नट, चारण, गायक आदि मनोरंजक पुरुषों से व्याप्त और दर्शकों की भीड़ से परिपूर्ण तक्षक नाग का यात्रोत्सव प्रारम्भ हुआ। इस अनुपम यात्रा के उत्सव को देखते ही उस तरुण ब्राह्मण के हृदय में बड़ा कुतूहल उत्पन्न हुआ। वह भी अपने मनोरंजन के लिए ईधर-उधर भ्रमण करने लगा और नाग-कन्याओं द्वारा कहे गये लक्षणों से सुश्रवा नाग को पहिचान कर उसके समीप पहुँच गया। उसके वहाँ पहुँचते ही नाग-कन्याओं ने अपने पिता से उसका सारा वृत्तान्त कह दिया। सुनते ही नागराज बड़ा प्रसन्न हुआ, अतएव उसने भी उस तरुण ब्राह्मण का बड़े समादर के साथ स्वागत किया। कुछ देर मौन साधकर बैठे रहने के बाद तरुण ब्राह्मण ने नागराज से उसकी उस आपत्ति का कारण पूछा। पहले तो नागराज ने बड़े दुःख के साथ दीर्घ निश्वास लिया, फिर किसी प्रकार अपनी मानसिक स्थिति को सम्भालकर अपना वृत्तान्त कहना आरम्भ किया। "हे ब्राह्मण-कुमार! जो पुरुष भलाई और बुराई का पूर्ण विवेचन स्वयं कर लेते हैं और यथार्थ में स्वाभिमानी होते हैं उनके जीवन में जितने भी अनिवार्य दुःख आते हैं, वे कभी किसी के सम्मुख प्रकट नहीं होते क्योंकि वे अपने दुःख को किसी से भी नहीं कहते। वे यह भली भाँति जानते हैं कि संसार में जितने भी सज्जन पुरुष हैं, वे जब दूसरों का दुःख सुन लेते हैं और दुःख-निवारण कर उपकार करने में अपने को असमर्थ पाते हैं तब अपने हृदय में अतिशय कष्ट का अनुभव करते हैं। साथ ही साथ जो साधारण पुरुष होते हैं वे उन दुखियों की करुण कथा को सुनकर अपने को उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझने लगते हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से दया का प्रदर्शन करते हुए भी परोक्ष रूप से उनके क्लेश को ही बढ़ाने लगते हैं। इतना ही नहीं, वे साधारण पुरुष दुःख में पड़े हुए स्वाभिमानी पुरुषों की निन्दा भी करने लगते हैं और दुःख-निवारण के लिए उन्हें कुत्सित कार्यों में प्रवृत्त कर देते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वे साधारण पुरुष अपनी बातों से आपत्ति की स्थिरता दिखलाकर उन स्वाभिमानी पुरुषों के क्लेश को द्विगुणित कर देते हैं। इसलिए विचारशील और स्वाभिमानी पुरुषों के दुःख यावज्जीवन हृदय में रहकर अन्त में चिन्ता की अग्नि में जल जाते हैं। गम्भीर प्रकृति के पुरुषों की आपत्तियों को कौन जान सकता है ? दूसरा पुरुष उसी समय जान सकता है जिस समय छोटे बालक अथवा मूर्ख सेवक प्रकट कर देते हैं। इसीलिए कहना पड़ रहा है कि आप इन कन्याओं के बाल-सुलभ सरल स्वभाव से मेरी वास्तविक स्थिति को जान चुके हैं। ऐसी दशा में मैं भी आप से कुछ गुप्त नहीं रख सकता अतएव हमारे हित के लिए आप से यदि कुछ प्रयत्न

हो सकता हो तो परोपकार की दृष्टि से आप जैसे सरल स्वभाव वाले पुरुष को अवश्य करना चाहिए।

उधर देखिए, उस वृक्ष के नीचे तपस्वी के समान वह जो जटाधारी बैठा है, उसी ने हमको अत्यन्त दुखित कर रखा है। वास्तव मे बात यह है कि जब तक मान्त्रिक नया अन्न नही खाते तब तक नाग भी नवीन अन्न को नही खा सकते हैं। इसी एक मात्र कारण से हम अत्यन्त दुखी हैं। जिस प्रकार प्रेत द्वारा सुरक्षित नदी के निर्मल जल को देखकर भी मनुष्य उसे नही पी सकता, ठीक उसी प्रकार जब तक यह मान्त्रिक खेती की रक्षा करने मे दत्तचित्त है तब तक नवीन अन्न से परिपूर्ण खेतो को अपने सामने देखकर भी हम सब अन्न भक्षण करने मे सर्वथा असमर्थ हैं। इसलिए आप ऐसा कोई उपाय कीजिए जिससे यह व्रती अपनी मर्यादा से भ्रष्ट हो जाय। इस स्थान पर मैं यह भी कह देना उचित समझता हूँ कि मैं उपकार के उपलक्ष्य मे योग्य प्रत्युपकार करना भी भली भाँति जानता हूँ।"

नागराज सुश्रवा की समस्त बातो को सुनकर उस तरुण ब्राह्मण ने "तथास्तु" कह दिया और फिर उस मान्त्रिक को व्रत की मर्यादा से गिराने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

कुछ दिन बीत जाने पर एक दिन उस तरुण ब्राह्मण ने अवसर पाकर खेत के भीतर रहने वाले उस मान्त्रिक के अन्न पकाने के पात्र मे गुप्त रीति से नवीन अन्न डाल दिया। उस मान्त्रिक के नवान्न भक्षण करने से उसका सारा व्रत भङ्ग हो गया। उसके इस प्रकार व्रत भङ्ग होते ही नागराज ने हिम-वृष्टि द्वारा उसके खेत का समस्त अन्न नष्ट कर दिया। फिर दरिद्रता से मुक्त होकर वह नागराज उस तरुण ब्राह्मण के उपकार से अधिक सन्तुष्ट हुआ, इसीलिए उसे सरोवर के मार्ग से अपने घर ले गया। वहाँ पर उस तरुण ब्राह्मण के पहुँचते ही नागराज सुश्रवा ने उसे श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर बडा स्वागत किया और वे दोनो नाग-कन्याएँ अपने पिता के आदेश से अत्यन्त आदर के साथ दिव्य उपभोगो द्वारा उस तरुण ब्राह्मण को प्रसन्न करने मे लग गई। इस प्रकार उन नाग-कन्याओ द्वारा सन्तुष्ट किया जाने वाला वह तरुण ब्राह्मण अपने को परम सुखी समझने लगा।

जब कुछ दिन बीत गये तब उसने अपने घर जाने की इच्छा प्रकट की। नागराज ने उसे आग्रहपूर्वक रोक लिया। जब उस तरुण ब्राह्मण ने पुन घर जाने के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया तब उसे जाने की आज्ञा देते हुए नागराज ने उससे वरदान माँगने के लिए कहा। उस तरुण ब्राह्मण ने उससे उसकी कन्या चन्द्रलेखा के लिए प्रार्थना की। यह सत्य समझकर भी भी कि वह तरुण ब्राह्मण उसकी कन्या चन्द्रलेखा के लिए योग्य नही है, फिर भी उसके द्वारा किये गये उपकार को स्मरण करते हुए नागराज ने उसे अपनी कन्या चन्द्रलेखा दे दी। साथ ही साथ अतुल धनराशि भी दी। फिर वह तरुण ब्राह्मण किन्नरपुर मे आकर नागराज की विशेष कृपा से अनेक प्रकार के सुख भोगने लगा।

वह नाग-कन्या अत्यन्त रूपवती और परम शीलवती थी। उसने अपने सदाचरणो से पति को अत्यन्त सन्तुष्ट किया। किसी समय वह भवन की अट्टा पर खडी थी। इतने मे ही धूप मे सूखते हुए अन्न को एक अश्व आकर खाने लगा। उस समय मकान पर एक भी सेवक न था। सभी किसी न किसी काम मे बाहर चले गये थे। इसीलिए उसने स्वयं उसे हटाने के लिए प्रयत्न किया। जैसे ही वह चलने लगी वैसे ही उसकी चादर गिरने लगी। किसी प्रकार गिरती चादर को एक हाथ से

सम्हालती हुई वह शीघ्र गति से आगे बढ़ी और उस अश्व के पृष्ठ-भाग पर दूसरे हाथ से प्रहार किया। उसके प्रहार करते ही अश्व ने धान्य खाना बन्द कर दिया और वहाँ से भाग गया। किन्तु आश्चर्य की बात यह हुई कि उस नाग-कन्या के हस्त का स्पर्श होते ही उस अश्व के पृष्ठ-भाग पर सुवर्णमय हस्त-चिह्न अंकित हो गया। उन्ही दिनो मे वहाँ के राजा किन्नर ने भी अपने गुप्तचरो के द्वारा उस नाग-कन्या के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी थी। इसीलिए उस राजा के हृदय मे काम अंकुरित होने लगा था। जिस प्रकार भागते हुए उन्मत्त हाथी को अंकुश द्वारा वशीभूत कर सुपथ पर चलाया जाता है उसी प्रकार लोकापवाद से उत्पन्न होने वाले भय से मनुष्य अपने अन्त करण के उच्छृंखल आवेगो को वशीभूत कर सदाचार की ओर ले जाता है किन्तु उस राजा किन्नर ने लोकापवाद से उत्पन्न होने वाले समस्त भयो को ठुकरा दिया और अपने अन्त करण के उच्छृंखल आवेगो को ही प्रबल करता रहा।

जिस प्रकार अग्नि को अधिक जलाने के लिए पवन सहायक होता है उसी प्रकार उसके हृदय मे धधकती हुई कामाग्नि को दूनी करने के लिए उस अश्व का वृत्तान्त सहायक हो चुका था। जिस प्रकार चन्द्रोदय होने पर समुद्र क्षुब्ध होकर मर्यादा से बाहर हो जाता है उसी प्रकार सुन्दर अँगुलियो से सुशोभित उस स्वर्णमय हस्त के चिह्न को देखकर वह राजा अपनी मर्यादा से बाहर हो गया था। उस राजा ने लज्जा-रूपी जंजीर तोड दी। अपने संकेतज्ञ दूतो द्वारा वह नाग-कन्या को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए अनेक प्रकार से प्रयत्न करने लगा। इसके बाद वह उसे अधिक त्रास देने लगा।

जब वह अपने समस्त प्रयत्नो मे असफल हो गया तब उसने लज्जा को तिलांजलि देकर उसके पति के सम्मुख अपना मनोरथ प्रकट किया और इस कार्य से यह भी स्पष्ट कर दिया कि कामान्धो को लज्जा नही हुआ करती। उसके निर्लज्ज मनोरथ को सुनकर उस ब्राह्मण ने उसे बडे कठोर शब्दो मे फटकारा। तब राजा ने क्रुद्ध होकर बलात्कार करने की इच्छा से अपनी सेना द्वारा उसके मकान को चारो ओर से घेर लिया। राजा की सेना के द्वारा अपने घर को घिरा हुआ देखकर वह ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ किसी गुप्त मार्ग से निकल कर नागराज के समीप अपनी रक्षा की इच्छा से गया।

सपत्नीक ब्राह्मण को आता हुआ देखकर और उसके आने पर समस्त वृत्तान्त को सुनकर नागराज बडे क्रोध के साथ सरोवर से बाहर निकला। मेघ-गर्जन के समान फूत्कार छोडते हुए उसने हिम के बडे-बडे पत्थरो की वृष्टि कर राजा समेत उस नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। विध्वस्त प्राणिवर्ग के शरीर से निकले हुए रक्त, मज्जा, वसा और मास आदि के सम्मिश्रण से बहती हुई वह वितस्ता नदी बडी विचित्र दिखाई देने लगी। उसके जल मे मयूर-पिच्छ के समान रङ्ग दिखाई देने लगे। अपने प्राणो की रक्षा के लिए भगवान् चक्रधर के मन्दिर मे छिपे हुए असंख्य मनुष्य मन्दिर के भीतर ही दबकर मर गये।

जिस प्रकार सृष्टि के आरम्भ मे भगवान चक्रधर विष्णु की जंघाएँ मधु और कैटभ दैत्य के रक्त से लिप्त हुई थी, उसी प्रकार अर्द्ध नष्ट मृतको के रक्त, मज्जा, वसा तथा मास आदि से भगवान चक्रधर की सम्पूर्ण प्रतिमा लिप्त हो गई।

उस नागराज की बहिन का नाम रमण्या था। जिस समय उसने अपने भाई के क्रोध करने का समाचार सुना उस समय वह भी उसकी सहायता के लिए पत्थरो के समूह को लेकर पर्वत-गुहा से बाहर निकली। मार्ग मे ही उसे अपने भाई की विजय मालूम हो गई। एक योजन

रास्ता बाकी रह गया था तब उसने वहाँ पत्थरो की वृष्टि करके कई ग्रामो को नष्ट कर दिया। इससे पाँच योजन तक का प्रदेश पाषाणमय हो गया। आज भी उस प्रदेश का नाम 'रमण्याटवी' कहलाता है। उस घोर कृत्य से तथा लोकापवाद से उद्विग्न होकर वह नाग वहाँ से चला गया। उसने वहाँ से बहुत दूर जाकर एक सुन्दर पर्वत पर रहने के लिए क्षीरसागर के समान एक दिव्य सरोवर बनाया। वह सरोवर आज भी अमरेश्वर के मार्ग मे वर्त्तमान है। श्वसुर की दया से नागत्व को प्राप्त हुए उस ब्राह्मण का निवास-स्थान भी जामातृ-सरोवर के नाम से उसी सरोवर के पास विद्यमान है। प्रजा-पालन के बहाने शकारहित होकर प्रजा को कष्ट देने वाले राजाओ का नाश करने के लिए अकस्मात् ऐसे ही कारण उपस्थित हुआ करते हैं। आज भी उस नष्ट नगर को और चक्रधर-मन्दिर के समीप उस सरोवर को देखते ही दर्शको के हृदय मे इस वृत्तान्त का स्मरण हो आता है। "राजा का उस ब्राह्मण-पत्नी पर अनुराग होना कोई बडी बात नही थी। इस प्रकार के बहुत ही साधारण से कारण को लेकर सम्पूर्ण नगर का नाश कर दिया गया, इतने अत्यल्प अपराध का इतना अधिक दण्ड कही भी नही देखा गया है।" इस प्रकार अनेक सकुचित बुद्धिवाले मनुष्य कहा करते है। वास्तव मे यह कोई आश्चर्य की बात नही है क्योकि पति-व्रता स्त्री, देवता और तपस्वी ब्राह्मण के क्रोध से त्रैलोक्य का भी विप्लव हो सकता है। कुछ भी हो, उस राजा किन्नर ने उन्चालीस वर्ष तथा नौ महीने तक राज्य किया और अपने दुष्कर्म से उसका ऐसा भयानक अन्त हुआ।

अनेक अट्टालिकाओ एव प्राकारो से सुसज्जित वह किन्नरपुर गन्धर्व-नगर के समान देखते ही देखते नष्ट हो गया। ऐसे भयकर आपत्ति-काल मे भी उस राजा का एक पुत्र अपनी उपमाता के साथ भाग्यवश विजयेश्वर की यात्रा के लिए विजयक्षेत्र गया हुआ था। इसीलिए वह जीवित रह गया था। उसका नाम सिद्ध था। राजा किन्नर के बाद वही राज्य का उत्तरा-धिकारी हुआ। जिस प्रकार दावानल से जली हुई भूमि मे नवीन वृष्टि से पुन अकुरो को उत्पन्न किया जाता है उसी प्रकार राजा सिद्ध ने भी नगर तथा प्रजा को पुन नवजीवन प्रदान किया। वह बुद्धिमान राजा अपने पिता के विचित्र वृत्तान्त को सुनकर ससार की असारता से पूर्णतया परिचित हो गया। ससार मे रहकर सुख-भोग करता हुआ भी वह राजा मूर्तिमान चन्द्रमा के समान विषय-पक से सर्वथा निर्लिप्त रहता था।

प्राय देखा गया है कि नरेश अपने पराक्रम के उन्माद से सर्वदा उन्मत्त रहते है किन्तु वह राजा शान्तचित्त होकर भगवान चन्द्रशेखर के ध्यान मे सर्वदा मग्न रहा करता था। रत्नो को तृण के समान देते हुए उस गुणवान राजा ने भगवान शंकर के नित्य पूजन को ही अपना अमूल्य तथा अखण्ड आभूषण समझा। उसी राजा की राज्य-लक्ष्मी उसके साथ परलोक भी चली गई क्योकि उस चतुर राजा ने उसे धर्म से युक्त कर दिया था। उसने साठ वर्ष तक निष्कण्टक राज्य किया। फिर वह अपने कुछ सेवको के साथ सदेह कैलास को गया। उसके बाद एक ही साथ और एक ही समय मे उसके सेवको ने तीव्र शोक का तथा उसके पुत्र ने राज्य का भार ग्रहण किया।

इस स्थल पर यह भी कहना पडता है कि भली और बुरी तरह स्वामी के साथ वर्ताव करने वाले सेवक अपने को इस लोक तथा परलोक मे वन्दनीय अथवा निन्दनीय बना सकते है। जिस प्रकार घास की रस्सी घट के संयोग से कूप मे नीचे गिरती है और पुष्पो के आश्रय से देवताओ के मस्तक पर चढती है उसी प्रकार उपर्युक्त कथन की सत्यता को भी समझ लेना

चाहिए। जब वह राजा सिद्ध देवलोक पहुँचा तब "सिद्धश्रेष्ठ राजा सिद्ध सदेह स्वर्ग को आ रहा है" इस प्रकार जयघोष करते हुए देवताओ ने बडे हर्ष के साथ वाद्य बजाकर सात दिनो तक बडा उत्सव मनाया। समस्त देवलोक में सिद्धश्रेष्ठ राजा सिद्ध के गुण गाये जाने लगे। उस राजा के कारण स्वर्ग-लोक भी धन्य हो गया।

८ राजा सिद्ध के उत्तराधिकारियो की कथा

राजा सिद्ध के स्वर्ग जाने के बाद कमल के समान सुन्दर नेत्र वाला उसका पुत्र उत्पलाक्ष राज्य का अधिकारी हुआ। उसने तीस वर्ष और छ महीने तक राज्य किया। उसका पुत्र हिरण्याक्ष पिता के बाद राज्याधिकारी हुआ। उसने अपने शासन-काल मे अपने नाम से हिरण्याक्ष नगर बसाया और सैंतीस वर्ष सात महीने तक पृथ्वी का शासन किया।

उसके स्वर्गवास के बाद उसके पुत्र और पौत्र हिरण्यकुल तथा वसुकुल ने क्रमश साठ-साठ वर्ष तक पृथ्वी का शासन किया। उनके बाद वसुकुल का पुत्र राजा मिहिरकुल राज-सिंहासन पर बैठा। वह यमराज के समान प्रखर, प्रतापी और दुष्ट स्वभाव का था। उसके शासन-काल मे म्लेच्छो के उपद्रवो से उत्तर दिशा व्याकुल हो गई थी। म्लेच्छ-कुल-रूपी धूम से कलुषित उत्तर दिशा यम-पालित दक्षिण दिशा के समान भयानक हो रही थी। उसके सैनिको द्वारा मारे गये शत्रुओ के मृत शरीरो से झपट कर उत्कण्ठापूर्वक मास को खाते हुए तथा उडते हुए काक, गृद्धादि पक्षियो को देखकर लोग उसे अपने नगर के समीप आया हुआ समझते थे। रात-दिन मरे हुए असख्य मनुष्यो से घिरा हुआ वह राजा अन्त पुर मे भी वैताल के समान भयानक दीखता था। तात्पर्य यह कि अन्त पुर के विलास-भवन मे भी वैताल के समान उसका सहार-कार्य निरन्तर बडे वेग से चालू रहता था। उस कठोर हृदय वाले राजा के विषय मे कहाँ तक क्या कहा जाय। केवल इतना ही समझ लेना चाहिए कि उस दुष्ट के निर्दय हृदय मे बालको के लिए दया, स्त्रियो के विषय मे घृणा तथा वृद्धो के प्रति गौरव नाम-मात्र को भी नही था। किसी दिन उसने अपनी पत्नी को सिहल-द्वीप मे बने हुए सुवर्ण-पद-चिह्नित वस्त्र की कचुकी पहिने हुए देखा। उसको देखते ही वह क्रुद्ध हो गया।

इसके बाद जब उसने सुवर्ण-पद-चिह्नित वस्त्र के विषय मे जाँच की तब उसके द्वारपाल ने कहा "सिहल-द्वीप के राजा के चरण के चिह्न से युक्त यह वस्त्र बना है।" द्वारपाल की इन बातो को सुनकर उसने अपना घोर अपमान समझा और तुरन्त एक विशाल सेना लेकर सिहल-नरेश से युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर दिया।

उसकी उस विशाल सेना मे असख्य मदोन्मत्त हाथी थे। उनके कपोलो से इतना मद निकल रहा था कि ऐसा मालूम हो रहा था मानो समुद्र यमुना के आलिगन-सुख को प्राप्त कर रहा हो। सिहल-द्वीप मे पहुँचकर उस प्रभावशाली मिहिरकुल राजा ने ऐसा आक्रमण किया कि सिहल-नरेश को सम्हलना भी कठिन हो गया और अन्त मे वह ऐसा पराजित हुआ कि उसका वर्णन भी नही हो सकता।

इस प्रकार राजा मिहिरकुल ने सिहलेश्वर को राज्य से और क्रोध को अपने हृदय से उखाड कर फेंक दिया। सिहल द्वीप के ऊँचे भवनो पर चढकर वहाँ के निवासी उसकी सेना को उसी प्रकार देखने लगे जिस प्रकार लका के उच्च भवनो पर चढकर त्रेतायुग मे राक्षसो का समूह रामचन्द्र की सेना को देखा करता था, अर्थात् राजा मिहिरकुल की सेना को देखकर

सिंहल-निवासी भयभीत होकर कांपने लगे थे। जिस प्रकार रामचन्द्र ने लंका के राजा रावण को युद्ध में पराजित कर विभीषण को वहाँ का राजा बनाया था उसी प्रकार राजा मिहिरकुल ने भी सिंहल-द्वीप के राज्य पर दूसरे को राजा बनाया और उसे वहाँ के राजसिंहासन पर बैठाकर वहाँ से सूर्य-प्रतिमायुक्त यमुषदेव नामक उत्तम वस्त्र ले लिया। लौटते समय चोल, कर्नाट, लाट आदि देशों के नरेशों को परास्त कर राज्य-च्युत कर दिया।

जब वह उन देशों से चला गया तब वहाँ की राजधानियों के अर्द्धभग्न प्रासाद और नष्ट-भ्रष्ट गृहों के समूह ने अपने-अपने शासकों को उनके पराभव का संदेश दिया। जब वह काश्मीर के प्रवेश-द्वार पर आया तब वहाँ की ऊँची घाटी से फिसल कर एक हाथी चिंघाड़ता हुआ गिर पड़ा। उस हाथी के आर्तनाद को सुनकर वह दुष्ट राजा मिहिरकुल हर्ष से रोमांचित हो गया। उसी प्रकार के शब्द को सुनने के लिए उसके हृदय में अत्यंत प्रबल उत्कण्ठा जागृत हो गई। अपनी इसी उत्कण्ठा को चरितार्थ करने के लिए उसने उस घाटी पर से क्रमशः सौ हाथी और गिरवा दिए। जिस प्रकार पापियों के स्पर्श से शरीर अपवित्र होता है, उसी प्रकार पापियों के कुकृत्यों के वर्णन से वाणी भी दूषित होती है, इसीलिए हमने उसके बहुत से कठोर कृत्यों का उल्लेख नहीं किया।

यथेष्ठ अत्याचार करने वाले क्षुद्र पुरुषों के विक्षिप्त कृत्यों का कौन अनुमान कर सकता है ? राजा मिहिरकुल ने जिस प्रकार अनेक कठोर कृत्य किये थे उसी प्रकार पुण्य-संचय के लिए बहुत-से धार्मिक कार्य भी किये थे। उस दुष्ट राजा ने श्रीनगर में मिहिरेश्वर नामक शंकर की स्थापना की और होलडा प्रान्त में मिहिरपुर नामक नगर बसाया।

उसी के समान शील, गान्धार-कुलोत्पन्न ब्राह्मणाधमों ने उसके दिये हुए अग्रहार ग्रहण किये। अन्धकार से युक्त वर्षाकाल सर्प को आनन्ददायक होता है और निर्मल शरत्काल हंसों को सुख देता है। इन दोनों उदाहरणों को सामने रखकर कहना पड़ता है कि दान देने वाले और दान लेने वाले का सम्बन्ध भी समानशीलता के ही अधीन रहता है।

उस महाभयंकर राक्षस ने सत्तर वर्ष पर्यन्त पृथ्वी पर शासन किया और अन्त में साघातिक रोग से पीड़ित होकर अपने शरीर को अग्नि में जला दिया। उसके शरीर-त्याग के समय "अपने शरीर पर भी दया न करने वाला तीन करोड़ प्राणियों का घातक यह मिहिरकुल मुक्त हो गया" ऐसी आकाशवाणी हुई।

इस प्रकार से कहने वाले मनुष्यों के मत से यही प्रमाणित होता है कि अग्रहारादि दानों का आचरण करके उसने अपने पापों को नष्ट कर दिया था। दारद और भौट्ट आदि जितने भी अपवित्र कार्य करने वाले थे, उन सब को मार कर पवित्र आचार स्थापित किया। आर्य-धर्म की स्थिति को सुदृढ़ करके कठोर तपश्चर्या द्वारा उसने अपने समस्त पापों का प्रायश्चित्त किया और अपने शरीर को अग्नि में जलाकर भस्म कर डाला।

चूँकि उसने एक हजार अग्रहार गान्धार देश के ब्राह्मणों को दिये थे और यह सब दान जयेश्वर नाम के तीर्थ में किया गया था, इसके बाद उसने छुरा, तलवार आदि अनेक शस्त्रों से युक्त अग्नितप्त लोह-फलक अर्थात् लोहे के तख्ते पर अपने शरीर को रखकर जला दिया था, इसीलिए वह नरश्रेष्ठ क्रूर होने पर भी निन्दनीय नहीं हो सकता। उसके पक्ष का समर्थन करने वाले जितने व्यक्ति हैं, यह सब उन्हीं का कथन है। अनेक इतिहासज्ञों का ऐसा भी मत है

कि भूरिश्रवा नाग के द्वारा जब नगर जला दिया गया था तब वहाँ खश जाति के मनुष्यों ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उनके विनाश के लिए ही राजा ने ऐसी क्रूरता धारण की थी। चन्द्रकुल्या नदी के प्रवाह को घुमाकर लाते हुए राजा मिहिरकुल के मार्ग मे एक बडी शिला मिल गई। उस शिला ने उसके उस कार्य मे विघ्न उपस्थित कर दिया। जब सभी प्रकार के सभव प्रयत्न करने पर भी वह शिला मार्ग से हटाई नही जा सकी, तब राजा ने चिन्तित होकर तपस्या करना आरम्भ कर दिया।

एक बार उसे स्वप्न मे विदित हुआ कि इस शिला पर एक अति प्रबल और ब्रह्मचारी यक्ष बैठा हुआ है। यदि कोई पतिव्रता स्त्री इसे स्पर्श करेगी तो वह बाधक नही होगा। इस स्वप्न के आदेशानुसार राजा ने दूसरे दिन अनेक स्त्रियो से शिला का स्पर्श कराया। जब अनेक स्त्रियो द्वारा स्पर्श की जाने पर भी वह शिला अपने स्थान से किंचिन्मात्र भी विचलित न हुई तब राजा को बडी चिन्ता होने लगी। अन्त मे चन्द्रवती नाम की एक स्त्री आई। वह किसी कुम्भकार की स्त्री थी। उसने ज्यो ही उस शिला का स्पर्श किया त्यो ही वह शिला अपने स्थान से डिग गई। इस आश्चर्य से प्रभावित होकर और अन्य स्त्रियो के पतिव्रता न होने के अपराध से क्रुद्ध हो कर राजा मिहिरकुल ने पति-पुत्र-बान्धव सहित तीन करोड स्त्रियो को मरवा डाला—ऐसी भी किम्वदन्ती काश्मीर मे प्रचलित है। कुछ भी हो, मानव-सभ्यता पर अभिमान करने वाले मनुष्यो के दृष्टिकोण से किसी भी कारण को लेकर की गई भयकर हिंसा सर्वथा निन्दनीय है। प्रजा को चाहिए था कि एकत्रित होकर ऐसे कुकर्मी क्षुद्र राजा को तुरन्त मार डालती किन्तु जब उस समय की प्रजा ने उसे प्राणदण्ड नही दिया तब यही कहना पडता है कि ऐसे दुष्कृत्यो के करने की प्रेरणा करने वाले देवताओ ने ही उसकी रक्षा की होगी, अन्यथा उसका अधिक दिनो तक जीवित रहना सर्वथा असभव था। प्रजा के प्रबल पुण्य के उदय होने पर जब दुष्ट मिहिरकुल मृत्यु को प्राप्त हुआ तब वहाँ के नागरिको ने उसके पुत्र बक को काश्मीर का अधीश्वर बनाया। बक के स्वभाव और व्यवहार मे सदाचार की मात्रा अधिक थी। जिस प्रकार श्मशान भूमि मे बने हुए भग्न भवन को भी देखकर लोग भयभीत होकर काँपने लगते है उसी प्रकार उस राजा बक के सिंहासन के सामने भी प्रजा प्राचीन सस्कारो के कारण थर-थर काँपा करती थी। फिर भी भयानक और सन्तापकारी पिता से उत्पन्न हुआ वह राजा बक उसी प्रकार प्रजा मात्र को अतिशय सुखदायक हुआ जिस प्रकार मेघाच्छन्न वर्षाकाल-जनित जल-वृष्टि प्रजा को सुखदायक हुआ करती है। उसके शासन-काल मे जनता धर्म को लोकान्तर से लौटा हुआ और निर्भीकता को दीर्घ प्रवास के बाद लौटी हुई समझने लगी। उसने बकश्वभ्र मे बकेश्वर का मन्दिर बनवाया और बकवती नामक नदी तैयार कराकर लवणोत्स नामक नगर बसाया। इस प्रकार पृथ्वी पर शासन करते हुए उस राजा ने तिरसठ वर्ष और तेरह दिन व्यतीत किये।

एक दिन सन्ध्या समय भट्टा नामक एक योगिनी सुन्दरी रमणी का रूप धारण कर राजा के सम्मुख उपस्थित हुई। उसने अपने मोहक और मादक मधुर वचनो से राजा को मुग्ध कर लिया और फिर यज्ञ के उत्सव मे सम्मिलित होने के लिए निमत्रण दिया। उसके निमत्रण को स्वीकार कर जब राजा पुत्र-पौत्र समेत यज्ञ मे सम्मिलित हुआ तब उस योगिनी ने मातृ-चक्र के सामने उस राजा को बलिदान कर दिया। इस कार्य से उस योगिनी को आकाश-गमन की सिद्धि प्राप्त हो गई। आज भी उस स्थान की शिला पर उस योगिनी के जानु-चिह्न दिखाई

देते है। खेरी मठ मे शतकपालेश्वर नामक शंकर की प्रतिमा और मातृ-चक्र तथा गांगिनी जानु मुद्रांकित उस शिला को देखने से वह प्राचीन वृत्तान्त आज भी स्मरण हो जाता है। देवी की दया से उस वश-वृक्ष का अकुर राज-पुत्र क्षितीनन्द उस आपत्ति मे बच गया था। उसने तीस वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र वसुनन्द राज्य का अधिकारी हुआ। उसने काम शास्त्र का प्रसिद्ध तथा विस्तृत ग्रन्थ लिखा। उसने बावन वर्ष और दो महीने तक शासन किया।

उसके पश्चात् राजा नर राज-सिंहासन पर बैठा। उसने साठ वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र अक्ष काश्मीर देश का शासन करने लगा। उसने अक्षवाल नामक नगर बसाया और साठ वर्ष तक शासन किया। उसके बाद उसका पुत्र गोपादित्य राज्याधिकारी हुआ। उसका अधिकार सप्तद्वीपमयी वसुन्धरा पर अक्षुण्ण था। उसके शासन-काल मे शास्त्र के अनुसार ही वर्णाश्रम-धर्म के कार्य होते थे, इसीलिए प्रजा की दृष्टि मे वह समय सत्ययुग के समान ही प्रतीत होता था। उसने खोल, खागिका, हादिग्राम, स्कन्दपुर, शमाङ्गसा आदि अनेक प्रसिद्ध ग्राम ब्राह्मणो को दिये और गोपाचल पर श्रीज्येष्ठेश्वर की प्रतिमा स्थापित की तथा आर्यदेशीय ब्राह्मणो को गोप नामक अग्रहार दिये।

उसने लहसुन खाने वालो को भू-क्षीर-वाटिका नामक ग्राम मे भेज दिया और अभक्ष्यभक्षी एव दुराचारी ब्राह्मणो को खासटा नामक ग्राम मे भेजकर आर्यावर्त से सदाचार-सम्पन्न तथा धार्मिक एव विद्वान् ब्राह्मणो को बुलाया तथा उन्हे वाश्चिका आदि अग्रहार रहने के लिए दिये। उसके विषय मे लिखे गये प्रशस्ति-पत्रो मे उसे 'भुवनैकपालक' कहा गया है। वह यज्ञादि धार्मिक कार्यों को छोड कर अन्य किसी भी कार्य मे पशु-हिंसा नही करने देता था। म्लेच्छो के सम्पर्क से भ्रष्ट हुए देश को सुधारने के लिए राजा गोपादित्य ने साठ वर्ष और छः दिन तक पृथ्वी का पालन किया और उज्ज्वलतम पुण्य के प्रताप से स्वर्ग-लोक को प्राप्त किया।

उसके पश्चात् उसका पुत्र गोकर्ण पृथ्वी पर शासन करने लगा। उसने गोकर्णेश्वर की स्थापना की। उसने सत्तावन वर्ष और ग्यारह महीने तक राज्य किया। उसके बाद सूर्य के समान तेजस्वी उसका पुत्र राजा खिंखिलान्य काश्मीर का राज्याधिकारी हुआ। वह नरेन्द्रादित्य के नाम से भी प्रसिद्ध था।

उसने भूतेश्वर का मन्दिर बनवाया। अनेक स्थानो पर अन्न-क्षेत्र भी खोल दिये। देवी के अनुग्रह का पात्र एव अत्यधिक प्रभावशाली उग्र राजा का गुरु था। उसने उग्रेश तथा मातृ-चक्र की स्थापना की। उसने छत्तीस वर्ष तीन महीने दस दिन तक पृथ्वी के ऐश्वर्य का उपभोग किया और अन्त मे देवताओ के पुण्यमय लोक को चला गया।

उसके बाद युधिष्ठिर नामक उसका पुत्र काश्मीर का राजा हुआ। चूंकि उसके नेत्र बहुत ही सूक्ष्म थे इसीलिए अन्ध युधिष्ठिर के नाम से उसकी ख्याति हुई। उसने कुछ समय तक अपनी प्राचीन पद्धति के अनुसार परम्परा से प्राप्त राज्य का कार्य उत्तम रीति से किया किन्तु कुछ दिन बीत जाने पर वह राजा युधिष्ठिर दुर्भाग्यवश धन के उन्माद से कुमार्गगामी हो गया। जिन लोगो पर उसे अनुग्रह करना चाहिए था उन लोगो पर अनुग्रह करना उसने छोड दिया। वह बुद्धिमान पुरुषो का सग्रह करना अनुचित समझने लगा। सेवको के हृदय से भी उसके विनय का अनुराग हट गया। उसके यहाँ विश्वविख्यात विद्वानो का भी मूर्खों के समान तिरस्कार होने लगा, इसी से समस्त विद्वानो ने उसका त्याग कर दिया।

प्राणिमात्र मे समदर्शिता योगियो के लिए भूषण और गुण है किन्तु यही समदर्शिता राजाओ के लिए अपयश का प्रधान कारण है और महान् दोष भी है। गुणो को दोष और दोषो को गुण बतलाने वाले धूर्तों के चगुल में फँसकर वह प्रतिभा-शून्य हो गया और स्त्रियो का परम भक्त हो गया। वह मर्म-स्पर्शी वचन कहता था और चापलूस लोगो के साथ हास्य-विनोद करता था। इसीलिए उसकी समस्त क्रीडाएँ भी राजा के लिए अनुचित और भय उत्पन्न करने वाली होती थी। वह प्रत्यक्ष मे कपट से गुणो की प्रशसा करने लगता था और परोक्ष मे निन्दा करने लगता था, इसीलिए उस राजा से उसके समस्त सेवक द्वेष करने लगे थे। इस प्रकार असावधानता के कारण गिरते हुए उस राजा की राज्य-स्थिति उच्छृखल हो गई। सज्जन पुरुषो के द्वारा उपेक्षित उस चचल राजा के राज्य पर उसके द्रोही मन्त्रियो ने बलवान् बनकर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और वे उसके विनाश का प्रयत्न करने लगे। उन द्रोह करने वाले मन्त्रियो ने समीप के राजाओ को राज्य पर आक्रमण करने के लिए उत्साहित किया और उन विरक्त मन्त्रियो द्वारा उत्साहित किये गये वे राजा लोग भी बाज पक्षियो के समान राज्य-रूपी मास को खाने के लिए झपट पडे।

जिस प्रकार यन्त्र से निकले हुए पत्थर को शिल्पकार पीछे नही घुमा सकता उसी प्रकार वह राजा भी बिगडी हुई राज्य की स्थिति को नही सुधार सका। चिरकाल से बिगडे हुए राज्य को सुधारने के लिए उस राजा को एक भी उपाय नही सूझा। "राजा हमारे दोषो को भले प्रकार जानता है, अतएव जैसे ही राज्य मे स्थिर शान्ति स्थापित हो जायगी वैसे ही यह हमें अवश्य दण्ड देगा" ऐसा सोचकर उसके मन्त्रियो ने उसके सामयुक्त वचनो पर बिल्कुल ध्यान नही दिया।

बाद मे शत्रुओ ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया और सभी दिशाओ से उसे घेर लिया। जनता घबडाकर कोलाहल मचाने लगी किन्तु आक्रमण करने वाले राजाओ के रण-वाद्यो की प्रचण्ड ध्वनि ने उस कोलाहल की ध्वनि को भी दबा दिया। बडे-बडे हाथियो के ऊपर फहराती हुई पताकाओ से सूर्य का प्रखर प्रकाश आच्छादित हो गया और कृष्ण पक्ष की रात्रि के समान दिन मे भी अन्धकार छा गया। युद्ध का भयानक आयोजन कर लेने पर भी शत्रुओ ने उस राजा को युद्धक्षेत्र से रण छोडकर भाग जाने की विशेष सुविधा दे दी। वह भाग्यहीन अन्ध युधिष्ठिर उस अवसर को पाकर राजभवन तथा नगर को छोडकर भाग गया। अन्तःपुर मे परदे के भीतर रहने वाली राज-रमणियो को धूल के अन्दर भागते हुए देखकर नागरिको को बडा दुख हुआ। उन सबो ने दु.खित हृदय से अश्रु बिन्दुओ को गिराना आरम्भ कर दिया।

राज्य से च्युत हुआ वह अन्ध युधिष्ठिर भयानक जगलो मे तथा पर्वतो मे फिरते-फिरते श्रान्त हो गया। उसके शत्रुओ ने उसका धन तथा कई एक अन्तःपुर की ललनाओ को मार्ग मे ही छीन लिया। वह भागते-भागते थककर वृक्षो की छाया मे विश्राम करता था। वहाँ उसे कुछ शान्ति अवश्य मिलती थी किन्तु कभी-कभी वहाँ क्षुद्र स्वभाव वाले पर्वतीय जनों के कोलाहल से व्याकुल होकर पर्वतीय नदियो के समान शोक-रूपी गर्त मे डूबने लगता था। उसकी पत्नियाँ नाना प्रकार के तृण-धान्य और सुगन्धि द्रव्य से व्याप्त अरण्य भूमि तथा बडी-बडी शिलाओ से टकराकर रुकते हुए दुर्गम प्रवाह वाली वन-नदियो का उल्लघन करने से थककर मूर्च्छित हो गईं।

सीमा-पर्वत के तट से अपनी मातृ-भूमि की ओर चिरकाल तक स्नेह के साथ देखकर और श्रद्धापूर्वक पुष्पाजलियाँ अर्पण कर जब राज-पत्नियाँ और आगे न बढ सकी तब अपने-अपने

घोसलों में बैठे हुए पक्षियों ने भी अत्यन्त खेद के साथ अपने पंखों को फैलाकर और मस्तक नत कर करुण क्रन्दन किया। मस्तक में गिरते हुए वक्ष में स्तन-युगल को आच्छादित कर और पीछे की ओर घूमकर दूर से अपने देश को देखती हुई तथा कर-कमल से अपने मस्तक को स्पर्श कर रोती हुई राज-पत्नियों के अश्रुओं से मार्ग में झरना बहने लगा। ऐसी विपन्न अवस्था में वह राजा दूसरे राष्ट्र में पहुँच गया।

यद्यपि उसके दुष्टत्व प्रसिद्ध हो चुके थे तथापि उनके दीन वचनों को सुनकर अत्यन्त सज्जन राजा तथा राज-कर्मचारियों के हृदय में करुणा का प्रवाह उमड़ आया और वे निष्कपट प्रेम से उसका आदर-सत्कार कर राज्य भ्रंश से उत्पन्न होने वाले खेद को भुला देने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार काश्मीर देश में अड़तीस राजाओं ने एक हजार चौदह वर्ष नौ दिन तक राज्य किया।

२

१ राजा प्रतापादित्य और उसके वंशधरों की कथा

उपर्युक्त घटना के बाद उस अन्ध युधिष्ठिर ने कुछ तो वार्धक्य के कारण और कुछ मुनि-जनों के उपदेश से पुनः राज्य प्राप्त करने का उद्योग छोड़ दिया। वह ऐसा उच्चकोटि का जितेन्द्रिय हो गया कि उसने शब्द, स्पर्श आदि पाँचों विषयों को अपने चित्त से एकदम हटा दिया। कुछ इतिहासवेत्ताओं का यह भी कथन है कि वह अन्ध युधिष्ठिर पुनः राज्य की प्राप्ति के लिए इधर-उधर घूमता फिरता था। उस समय उसी के मन्त्रि-मण्डल ने श्रीनगर की दुर्ग-गलिका में उसे पकड़ कर बाँध लिया था। उसके बाद मन्त्रि-मण्डल ने विक्रमादित्य के सम्बन्धी प्रतापादित्य को देशान्तर से बुलाकर काश्मीर का शासक बनाया। कतिपय भ्रान्त लेखकों का ऐसा भी मत है कि यह विक्रमादित्य तथा शकारि विक्रमादित्य दोनों एक ही है।

इस काश्मीर देश में पारस्परिक मनोमालिन्य राजा प्रतापादित्य के शासन-काल तक विद्यमान था, किन्तु वह मनोमालिन्य हर्ष आदि विदेशी राजाओं की अधीनता के कारण नष्ट हो गया। कुछ दिनों तक उनका यहाँ अधिकार रहा। यद्यपि यह राज्य राजा प्रतापादित्य का परम्परागत राज्य नहीं था तथापि जिस प्रकार मानसिक भावों को समझने वाला बुद्धिमान पुरुष अपनी नव-विवाहिता पत्नी का प्रेमपूर्वक पालन करता है उसी प्रकार उसने भी बड़ी योग्यता के साथ पृथ्वी का पालन किया। बत्तीस वर्ष तक पृथ्वी का योग्यतापूर्वक शासन कर वह राजा स्वर्गवासी हो गया। उसके बाद उसी का पुत्र जलौक राज्य करने लगा। सूर्य से प्रकाश को प्राप्त करने वाले चन्द्र के समान उसने भी अपने पिता से प्राप्त किये गये राज्य का और प्रजा का कल्याण करते हुए बत्तीस वर्ष तक राज्य किया।

उसके बाद उसका पुत्र तुजीन भाग्यवती महारानी वाक्पुष्टा के साथ प्रजा को अपने अनुशासन से सन्तुष्ट करने लगा। जिस प्रकार चन्द्रमा की कला और गंगा की धारा से शंकर का जटा-जूट शोभा से युक्त होता है उसी प्रकार राजा तुजीन की शासन-नीति और देवी वाक्पुष्टा की उदारता से सम्पूर्ण काश्मीर देश चमकता था। जैसे बिजली और मेघ के संयोग से भिन्न-भिन्न प्रकार के रंगों से रंजित इन्द्र-धनुष धारण किया जाता है, वैसे ही राजा तथा राजपत्नी के द्वारा सम्पूर्ण काश्मीर देश पोषण किया जाता था। उन परम भाग्यशाली राज-दम्पती ने भूमि को भूषित

करनेवाले तुगेश्वर नामक शिव-मन्दिर का निर्माण कराया और कतिका नामक नवीन नगर बसाया। मडव देश एक ऐसा देश था जहाँ बीज उगता ही न था। वास्तव मे बात यह थी कि वह प्रदेश सूर्य की प्रचण्ड किरणो से जली हुई मरुभूमि के ही समान शुष्क था किन्तु किसी समय उस देश मे भी उनके पुण्य-प्रभाव से बीज बोते ही तुरन्त फल लग गये थे।

राजा तुजीन के शासन-काल मे श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास मुनि का अशावतार नाटककार चन्दक नामक महाकवि हुआ था। किसी समय मे उन राज-दम्पती के पुण्य-प्रभाव की परीक्षा करने के लिए प्रजा मे सहसा एक दुसह दैवी आपत्ति उत्पन्न हो गई। भाद्रपद मास मे जब खेतो मे शालिधान्य पक रहा था तब अकस्मात् प्रवल वेग से हिम की वृष्टि होने लगी। ससार का विनाश करने वाले काल के अट्टहास के समान उस भयानक हिम-वर्षा से प्रजा के जीवन की आशा के साथ ही साथ शालिधान्य भी रसातल को चला गया। क्षुधा से पीडित होकर मरते हुए असख्य प्रेतो से युक्त दुर्भिक्ष-विप्लव का वह समय नरक के प्राकार के समान दिखने लगा। उस दुर्भिक्ष विप्लव के काल मे क्षुधा-पीडित जन-समूह केवल उदर भरने का सहारा लेकर पत्नी-प्रेम, पुत्र-वात्सल्य तथा पितृ-भक्ति को भूल गया था। क्षुधा के कष्ट से लोक-लज्जा, स्वाभिमान तथा कुलीनता आदि सद्गुणो को भूलकर धनिक वर्ग केवल भोजन मिल जाने के अहकार से ग्रस्त होकर मिथ्या गर्व दिखाने लगे। भूख से घबडाते हुए पुत्र को देखकर भी पिता पुत्र की परवाह न कर अपना उदर पोषण करता था और पुत्र भी क्षुधा से पीडित पिता की ओर ध्यान न देकर अपना पेट भर लेता था। इतना ही नही, आगे चलकर प्रेतो के समान अस्थि मात्र अवशिष्ट शरीरधारी रक मनुष्यो का भोजन के लिए परस्पर युद्ध होने लगा। क्षुधा-पीडित होकर रूखे वचनो को कहता हुआ प्रत्येक प्राणी अपने चारो ओर देखता और अपने-अपने उदर-पोषण का ही प्रयत्न करता था। उस अत्यन्त भयानक दुर्भिक्ष के समय मे भी उस परम दयालु राजा मे ही दयार्द्रता दिखती थी।

उस राजा ने अपने द्वारपालो को ड्योढी पर से हटा दिया और रत्न-रूपी ओषधि से युक्त दर्शन मात्र से दीनो की दरिद्रता-रूपी बीमारी का नाश कर दिया। अपनी पत्नी के साथ राजा ने अपने कोष के धन से और मन्त्रियो की सम्पत्ति से अन्न मोल लेकर दीन जनता का पालन करना आरम्भ कर दिया। उस राजा ने जगलो मे, श्मशानो मे, गलियो मे और बाजारो मे घूमते हुए किसी भी भूखे मनुष्य की उपेक्षा नही की। इस प्रकार दान करने से अन्त मे उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति समाप्त हो गई और देश भर मे अन्न का कण भी न रहा। उस समय रात मे दुखित होकर राजा ने अपनी पत्नी से कहा—देवि! हमारे किसी अज्ञात दुष्कर्म से इन निरपराध प्राणियो पर ऐसी दुस्तर आपत्ति आई है। मुझ जैसे भाग्यहीन को धिक्कार है जिसकी क्षुधा-पीडित प्रजा किसी भी पुण्यात्मा सरक्षक को न पाकर देखते-देखते मर रही है उसको जितना भी धिक्कारा जाय उतना ही कम है। इस भयानक दुष्ट समय मे पारस्परिक बन्धु-भाव को त्यागकर शरणहीन इस दीन प्रजा की रक्षा करने मे असमर्थ मेरे समान मनुष्य के जीवन से क्या प्रयोजन है? आज तक मैने जिस प्रकार हो सका, इस दीन प्रजा का पालन किया, इसीलिए आज तक इनमे से कोई भी दुखी नही हुआ। यह पृथ्वी काल की करालता से पीडित होकर एकदम प्रभाव-शून्य और गौरवहीन हो गई है। अब इस दारुण दुख के सागर मे डूबी हुई इस प्रजा का उद्धार किस उपाय से हो सकेगा? दुर्दिन से सूर्य नही दीखता। सर्वत्र अधकार छाया हुआ है। समस्त ससार सभी दिशाओ से काल-रात्रियो द्वारा घिरा हुआ सा दृष्टिगोचर हो रहा

है। हिम-समूह से पर्वतीय मार्गों के अवरोध के कारण यह दुर्भिक्ष प्रजा पिंजड़े में बन्द किये गये पक्षियों के समान अत्यन्त विवश हो गई है। राज्य में जितने भी शूर-वीर, बुद्धिमान और विद्वान् पुरुष हैं, सभी उस भयानक काल की दुष्टता से बुद्धिहीन तथा तेजहीन हो गये हैं। इस भूमण्डल में कौन-सी ऐसी दिशा है जहाँ सुवर्ण-पुष्प की कलिकाएँ न मिलती हों अथवा कौन-सा ऐसा प्रदेश है जहाँ सौजन्य-रूपी अमृत की वर्षा करने वाले धनिक जन नहीं हैं? अपनी योग्यता तथा सेवा से प्रसिद्धि पानेवाले ऐसे कौन मनुष्य हैं जिन्हें अपनी उन्नति का मार्ग न दीखता हो किन्तु, इस देश के सभी गुणवान् अपने दुर्भाग्य के चक्र में फँसकर प्रतिभाहीन हो गये हैं। अब मैं निरुपाय हो गया हूँ। चूँकि मैं नष्ट होती हुई अपनी प्रजा को देख नहीं सकता इसलिए अपने शरीर को अग्नि में हवन कर दूँगा। वे नरेश धन्य हैं जो अपनी प्रिय सन्तान के समान आनन्द से सोई हुई प्रजा को देखकर सुखपूर्वक रात में सोते हैं। इस प्रकार कहकर करुणार्द्र हृदय उस राजा ने वस्त्र से अपने मुख को ढँक लिया और शय्या पर लेटकर पड़े-पड़े अश्रुपात करने लगा।

राजा के समस्त वचनों को ध्यानपूर्वक सुन लेने के बाद राज-पत्नी ने धीरज और दृढ़ता के साथ राजा को समझाते हुए कहा—राजन्! प्रजा के दुर्भाग्य से आपकी बुद्धि में यह विपरीत विचार क्यों उत्पन्न होने लगा है? सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि आप वीर पुरुष होकर भी अधीर पुरुष के समान विचार प्रकट करने लगे हैं। यदि पीड़ित की पीड़ा को देखकर बड़े लोग उसे दूर करने का उपाय न करें, तो फिर बड़ों की बड़ाई भी क्या रह सकेगी? सत्यसंध नरेन्द्रों की आज्ञा के सामने इन्द्र, ब्रह्मा और बेचारा यम अपना कुछ भी प्रभाव नहीं रख सकते। पति-भक्ति ही स्त्रियों का असाधारण व्रत है। द्रोह को त्याग कर प्रजा के व्यवहारों का विचार करना ही मन्त्रियों का व्रत है। अन्य कार्यों को छोड़कर प्रेमपूर्वक प्रजा का पालन करना राजा का परम कर्त्तव्य है। हे महाव्रत करने वाले राजन्! अपने हृदय से दुःख को समूल नष्ट कर उठ बैठिए। मेरा वचन क्या कभी असत्य हो सकता है! हे प्रजापालक! आपकी प्रजा को क्षुधा-जन्य भय नहीं होगा। इस प्रकार उस राज-पत्नी वाक्पुष्टा ने देवताओं का स्मरण करके दृढ़तापूर्वक जब ये वचन कहे तभी प्रत्येक घर में असंख्य मरे हुए कबूतर आकाश से गिरे। प्रातःकाल यह देखकर राजा ने मरने का विचार त्याग दिया और प्रजा भी प्रतिदिन आकाश से गिरे हुए कबूतरों से अपनी क्षुधा शान्त करने लगी।

उस पतिव्रता ने अपने प्रभाव से किसी दूसरी वस्तु को प्रजा की रक्षा के लिए कबूतर बना दिया था। वे वास्तविक कबूतर नहीं थे। इसे यहाँ इसलिए स्पष्ट किया गया है जिससे कि लोग रहस्य को सरलता से समझ सकें क्योंकि बिना किसी स्वार्थ के प्राणिमात्र पर दया करने वाले अहिंसा-प्रेमी महात्माओं को कदापि हिंसा का कलंक नहीं लगाना चाहिए। उस देवी के पवित्र कृत्यों से क्रमशः आकाश निर्मल होने लगा और राजा के शोक के साथ ही दुर्भिक्ष भी शान्त हो गया। उस पुण्यवती पतिव्रता राज-पत्नी ने कतीमुष और समुष नामक ऐश्वर्य-सम्पन्न दो अग्रहार ब्राह्मणों को दिये। छत्तीस वर्ष राज्य करने के बाद जब उसके पति का स्वर्गवास हो गया तब उसने जाज्वल्यमान् चिता-रूपी कमल-शय्या पर अपने विरह-ज्वर के ताप को शान्त किया। पवित्र चरित्रवती उस सती ने जिस स्थान पर पतिदेव की चिता में शरीर भस्म किया था उस स्थान का परिचय आज तक 'वाक्पुष्टाटवी' नाम से दिया जाता है। उत्तम चरित्र वाली वाक्पुष्टा देवी के द्वारा स्थापित किये गये अन्न-क्षेत्रों में आज भी अनेक अनाथ आगन्तुक भोजन करते हैं। उनके समान भाग्यशाली तथा उत्तम कार्य करने वाले दम्पती कहीं-कहीं उत्पन्न होते हैं।

इनसे अधिक उत्तम कार्य करने की शक्ति किसकी हो सकती है, इस प्रकार सोचकर सच्चे परीक्षक विधाता ने इनको नि सन्तान रखा।

ब्रह्मा सच्चा परीक्षक इसलिए कहा जाता है कि उसने ईख को अत्यन्त मधुर जानकर उसे फल नही दिये। उसे इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि अमृत रस से भी श्रेष्ठ इस ईख की अपेक्षा अब कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ हो सकती है? कई इतिहासवेत्ताओ का कथन है कि उस वाक्पुष्टा देवी ने "मेरे अज्ञात पातक से राज्य मे दुर्भिक्ष आदि उपद्रव हुए हैं" ऐसा निश्चय कर अग्नि मे प्रवेश किया था। कुछ भी हो, इस स्थल पर मानना ही पडेगा कि वाक्पुष्टा देवी प्रत्येक दृष्टिकोण से उत्तम चरित्र वाली स्त्री-रत्न थी।

२ राजा जयेन्द्र और उसके मंत्री संधिमति की कथा

उन राज-दम्पती तुजीन और वाक्पुष्टा के बाद दूसरे वश मे उत्पन्न हुए राजा विजय ने आठ वर्ष तक काश्मीर के राज-सिहासन को सुशोभित किया। उसने विजयेश्वर का सुन्दर मदिर बनवाया और उसके चारो ओर 'विजयनगर' नामक मनोहर नगर बसाया। उसके बाद उसका पुत्र राजा जयेन्द्र काश्मीर का शासन करने लगा। वह राजा जयेन्द्र राजा पृथु के समान प्रतापी तथा आजानुबाहु था। स्थिरतर कीर्ति-परम्परा-रूपी पट से अलकृत उसका भुज-दण्ड जयश्री-रूपी पुत्तलिका का आधार-स्वरूप था। परम नीतिज्ञ, पवित्र चरित्र तथा अनन्यभक्त सन्धिमति नामक उसका मत्री था। किन्तु मद से उन्मत्त राजा तथा हाथियो के चचल कानो को स्थिर करने का कोई भी उपाय इस ससार मे नही है। क्योकि "यह मत्री अत्यन्त प्रभावशाली और बुद्धिमान् है, इसलिए आपको इससे डरते रहना चाहिए" धूर्तों की इस वाणी को विशेष महत्त्व देकर राजा जयेन्द्र अपने बुद्धिमान् मत्री सन्धिमति से द्वेष करने लगा। उसको राजभवन मे आने के लिए निषेध कर दिया गया और उसका सर्वस्व छीनकर उसे जन्म भर के लिए दरिद्री बना दिया गया। राज-रोष रूपी ग्रीष्म ताप मे सूखते हुए उस बेचारे मत्री से कोई भी राजसेवक सतोष-प्रद वचन तक नही कहता था।

विचारशील राजा किसी की भी बात पर तुरन्त विश्वास नही करते किन्तु गम्भीरता के साथ विचार कर लेने पर विश्वास करते है और अविचारी राजा केवल पर्वत के समान प्रतिध्वनि कर सकते है, अर्थात् बिना सोचे-समझे और विचार किये ही अपने सेवको की सभी बातो को सत्य मानकर उन पर विश्वास कर लेते हैं। निर्विघ्नता के साथ भगवान् शकर की भक्ति से अपने चित्त को प्रसन्न रखनेवाला वह सन्धिमति मत्री राज-रोष तथा दरिद्रता से किंचिन्मात्र भी व्यथित नही हुआ। कुछ दिनो के बाद ही भावी की प्रबलता से प्रत्येक देव-मन्दिर मे "सन्धिमति को राज्य मिलेगा" ऐसी आकाशवाणी होने लगी। आप्तजनो से आकाशवाणी के वृत्तान्त को सुनकर भय से उस राजा ने उस मत्री को कारागार मे बन्द कर दिया। हथकडियो और बेडियो को पहन कर कारागार मे सडते हुए उसे दस वर्ष बीते गये और राजा के जीवन का अन्त भी समीप आ गया।

वह मरणासन्न राजा रोग-जनित वेदना से तथा उस मन्त्री के राजा होने की भविष्य-वाणी की चिन्ता से अन्त करण मे ही जलने लगा। रात-दिन हृदय मे जलती हुई विद्वेषाग्नि से सतप्त वह राजा मन्त्री के वध को ही भवितव्यता का प्रतिकार समझने लगा।

मूर्ख मनुष्य भवितव्यता के रोकने का जो उपाय करते है, वही उपाय भवितव्यता के

लिए खुला द्वार बन जाता है। बुझे हुए कोयले के भीतर नाम मात्र के चमकते हुए सूक्ष्मतर अग्निकण को यदि दैव बलात्कार से बढाना चाहता है तो उसको बुझाने का प्रयत्न करने वाले पुरुषो की दृष्टि मे वह तप कर पिघला हुआ समीप मे रहने वाला घृत-कुम्भ अथवा जल-कुम्भ दीखने लगता है। बाद मे वधिको ने राजा की आज्ञा से रात मे सन्धिमति को शूली पर चढाकर मार डाला। उसको शूली देने की बात सुनकर राजा के हृदय से शोक का कॉटा और प्राण दोनो ही एक साथ निकल गये। उस राजा ने सैंतीस वर्ष तक राज्य किया।

उस राजा के कोई पुत्र नही था। अतएव उसके सन्तानहीन होने के कारण कुछ समय तक काश्मीर मे अराजकता का साम्राज्य बना रहा। सन्धिमति के गुरु ईशान थे। थे तो वे बडे जितेन्द्रिय किन्तु जिस समय उन्होने अपने परम शिष्य की मृत्यु का सम्वाद सुना उस समय वे बडे दुखी हुए। यह ससार कोमल शिरीष-पुष्प के समान सरलता से उच्छिन्न किया जा सकता है। केवल दयालुता वृन्त के समान इसकी रक्षा करती है। अतएव योगी ईशान अपने शिष्य सन्धिमति का अन्तिम सस्कार करने के लिए श्मशान मे गये क्योकि सन्धिमति अत्यन्त विनयशील तथा अनाथ था। ईशान ने उसके मृत शरीर को शूली से निकालने की इच्छा से देखा कि शृगालो ने शव की बडी दुर्दशा की थी और शरीर की केवल हड्डियाँ शेष रह गई थी। वह नर-ककाल शूली के अग्रभाग मे अटका हुआ था। उसके मस्तक मे छेद द्वारा वायु-प्रवेश के कारण शोक-क्रन्दन के समान ध्वनि हो रही थी।

उसे देखकर "हा वत्स! तुम्हारी इस दुरवस्था को देखने के लिए ही मैं जीवित हूँ।" इस प्रकार कहते हुए योगी ईशान विलाप करने लगे। फिर उन्होने मृत शरीर को शूली से निकाला और वहाँ से जाने लगे। धूलि-धूसरित शव के केशो से उनके चरण छा गये। किसी प्रकार उन सब को सम्हालते और मार्ग के भौंकते हुए कुत्तो को हटाते हुए वे उस नर-ककाल को लेकर आगे बढे। उस शव का शास्त्र के अनुसार अन्तिम सस्कार करने के लिए उक्त ईशान योगी ने उसके मस्तक पर लिखी हुई विधाता की लिपि अर्थात् विधाता द्वारा लिखा गया श्लोक पढा। उसमे यह लिखा था कि यावज्जन्म दरिद्रता, दस वर्ष तक बन्धन और शूली पर चढकर मृत्यु-प्राप्ति, इसके बाद फिर राज्य मिलेगा।

योगी ईशान ने उपर्युक्त श्लोक के तीन चरणो का अर्थ भली भाँति समझ लिया था और उनका फल भी देख लिया था। अब चतुर्थ चरण के अर्थ का अनुभव प्राप्त करने की इच्छा उनमे प्रबल होने लगी। आश्चर्ययुक्त होकर के वे सोचने लगे कि यह किस प्रकार सत्य हो सकेगा? विलम्ब तक विचार करने के बाद वे अपने मन मे कहने लगे कि विधि की शक्ति अचिन्त्य है। प्रत्येक मनुष्य अनेक कार्यों द्वारा दैव-घटित भवितव्यता का सहसा प्रतिरोध करना चाहता है, किन्तु वहाँ भी अघटित घटना-सघटक विधाता का विलक्षण और आश्चर्यजनक प्रभाव बिना किसी रोकटोक के अपना काम कर ही देता है। मणिपुर मे आश्चर्यमय दैव ने नागकन्या के प्रभाव से मरे हुए अर्जुन को पुनर्जीवित किया था। अश्वत्थामा के शस्त्र से माता के गर्भ मे मरे हुए परीक्षित को भगवान श्रीकृष्ण के प्रभाव से विधाता ने पुनर्जीवित किया था। इसीलिए कहना पडता है कि विधि का अधिकार सर्वत्र अक्षुण्ण है। दैत्यो के द्वारा भस्मीभूत कच को तथा गरुड द्वारा भक्षण किये गये सर्पों को विधि के बिना कौन पुनर्जीवित कर सकता था! ऐसा कहकर भावी कार्य की सिद्धि को देखने की अभिलाषा से योगी ईशान वही रहकर उस नर-ककाल की रक्षा करने लगे। फिर उसी आश्चर्यमय भविष्य का अनुभव प्राप्त करने की प्रबल उत्कण्ठा से वे

निद्रारहित होकर रहने लगे और आधी रात के समय किसी दिन दिव्य सुगन्ध का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगे। इसके बाद ही उन्हे भयानक घण्टा-घोष और प्रचण्ड तथा घर्घर डमरू ध्वनि भी सुनाई देने लगी। जब उन्होने ध्यानपूर्वक देखा तब उस श्मशान-भूमि मे असख्य योगिनियाँ तेज पुज के मध्य दीखने लगी। थोडी ही देर मे वे उस ककाल के लिए परस्पर कोलाहल करती हुई लडने लगी। इसके बाद वे उसे लेकर वहाँ से चल पडी। यह सब दृश्य देखते ही ईशान आश्चर्य मे डूब गये। फिर हाथ मे खड्ग लेकर उनके पीछे-पीछे जाने लगे। फिर एक वृक्ष की ओट मे खडे हो कर तमाशा देखने लगे। उन योगिनियो ने उस नर ककाल को चारों ओर से घेर लिया और फिर सब मिलकर उसके समस्त अवयवो को जोडने लगी। चूँकि उन सबो ने मदिरा का पान किया था, अतएव उनको पुरुष-सभोग की इच्छा उत्पन्न हुई थी। किसी वीर-पुरुष के न मिलने से ही उन्होने उस नर-ककाल का अपहरण किया था। थोडे ही समय मे उसके प्रत्येक अवयव के स्थान पर अपना एक एक अवयव जोडकर और कही से पुरुषचिह्न लाकर उन सबो ने उसे पूर्णाङ्ग बना दिया। इतना सब करने के बाद उन महायोगिनियो ने इधर-उधर तथा शरीरान्तर मे अप्रविष्ट उस सधिमति के प्राणो को खोजकर उसके शरीर मे प्रवेश करा दिया और इस प्रकार उसे पुनर्जीवन प्रदान किया। सोकर उठे हुए के समान उस सधिमति के शरीर मे दिव्य लेपन लगाया गया और उन योगिनियो ने अपने मडल का नायक बनाकर उसके साथ पूर्ण रूप से सभोग किया।

"ये योगिनियाँ इसे पहले के ही समान बना कर चल देंगी" ऐसा सन्देह रात बीतने के समय ईशान के मन मे होने लगा इसलिए उसकी रक्षा करने की अभिलाषा से गर्जना करते हुए ईशान उन योगिनियो की ओर शीघ्रगति से बढे। उनके गर्जना कर बढते ही वह योगिनी-मण्डल शीघ्र ही अदृश्य हो गया। इसके बाद उन योगिनियो ने अदृश्य होने की दशा मे ही यह कहा—"हे ईशान! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। इसके समस्त अवयव पुष्ट और पूर्ण है। इस सम्बन्ध मे किसी प्रकार का धोखा नही है। हम सबो के प्रभाव से दिव्य देहधारी यह सधिमति अपनी श्रेष्ठता से इस पृथ्वी पर आर्यराज के नाम से प्रसिद्ध होगा।"

३. दिव्यदेही आर्यराज की कथा

इसके बाद दिव्य वस्त्रधारी तथा दिव्य मालाओ से अलकृत और दिव्य भूषणो से भूषित वह सधिमति पूर्व स्मृति के कारण अपने गुरु को बडी नम्रता के साथ प्रणाम करने लगा। ईशान ने भी स्वप्न मे भी दुर्लभ उस परम प्रिय शिष्य को उठाकर प्रेमपूर्वक हृदय से लगाया। उस समय उन दोनो की कैसी दशा थी, इसका वर्णन कर सकना वाणी की शक्ति के परे की बात है।

ससार की असारता तथा विचित्रता का विचार करते हुए उन दोनो की विवेकयुक्त और शान्तरस से पूर्ण परस्पर बातचीत होने लगी। कही से भी इस वृत्तान्त को सुनकर तुरन्त ही मन्त्रि-गण सहित आबाल-वृद्ध नागरिक वहाँ एकत्रित हो गये। वहाँ आते ही लोगो के मन मे "यह वास्तव मे सधिमति ही है अथवा उसके समान आकार वाला कोई अन्य पुरुष है" ऐसी शका उत्पन्न होने लगी। अपनी इस शका का समाधान करने के लिए वे उससे भिन्न-भिन्न विषयो पर प्रश्न करने लगे। उसने भी प्रतिप्रश्नो द्वारा प्राचीन वृत्तान्त को बतलाते हुए उनकी समस्त शकाओ को निर्मूल कर दिया।

जब समस्त शकाओ का पूर्ण रूप से समाधान हो गया तब उसके गुरु ईशान ने उससे

उस अराजक राष्ट्र के शासन करने को कहा। यद्यपि उसमे शासक बनने की इच्छा नाममात्र को भी न थी। तथापि गुरु की आज्ञा से उस अराजक राज्य के शासन करने की प्रार्थना को उसने बडे कष्ट के साथ स्वीकार किया। फिर समस्त नागरिक उस दिव्य देहधारी सधिमति को ब्राह्मणो के समीप उपवन मे ले गये और वहाँ ले जाकर राज्याभिषेक के नियमानुसार मगल स्नान कराया। चूँकि उसे राज्य-शासन का पूर्ण अनुभव पहले से ही था, इसीलिए नवीन शिक्षा देने की आवश्यकता नही पडी। पूर्व अनुभव के कारण ही वह समस्त कार्यो को सुचारु रूप से कर सका। उसने बडे राजसी समारोह से नागरिक और सैनिको के साथ नगर मे प्रवेश किया। प्रवेश के समय जनता की बहुत बडी भीड थी और लोग अपने-अपने मकानो की छतो पर से लावे की वर्षा कर रहे थे। उस पुण्यात्मा राजा के शासन-काल मे प्रजा को दैवी एव मानवीय किसी भी आपत्ति का सामना नही करना पडा।

वह परम विरक्त राजा था। शृगार और चेष्टा के प्रदर्शन मे चतुर नितम्बवती तथा सुन्दरता की प्रतिमूर्त्ति ललनाओ को देखकर वह कभी प्रसन्न नही होता था। पक्षियो के कलरव से गुजित पर्वत-शिखर तथा शान्तिमयी अरण्य-स्थली ही उसके मन को अधिक प्रसन्न कर सकती थी। कर्पूर-धूप से सुगन्धित शरीर वाला वह राजा वन्य कुसुमो से सुगन्धित ऋषियो के करो से स्पृष्ट होकर अत्यन्त सन्तुष्ट होता था। भूतेश, वर्द्धमानेश तथा विजयेश के दर्शन-कार्य से जो समय बचता था उतने ही समय मे वह राज्य-कार्य करता था। शिव-मन्दिर की सीढियो के धोने के समय पवन मे जो जल के तुषार उड कर आते थे, उन्ही के स्पर्श से उसके शरीर को बडा सुख मिलता था। प्रथम पूजा के समय समर्पण किये गये पुष्पमाला आदि पूजा-सामग्री-समूह दूर करने के बाद आडम्बर-शून्य तथा अभिषेक-निर्मल श्रीविजयेश्वर की मूर्त्ति का दर्शन करना वह जानता था, अर्थात् शृगार आदि बाहरी आडम्बररहित शकर के दर्शन से वह अत्यन्त सन्तुष्ट होता था। उसे मृदग और वीणा आदि वाद्यो की ध्वनि नही अच्छी लगती थी। उसको शिव-बाण पर गिरती हुई जलधारा की मधुर ध्वनि सोने के समय मे भी प्रिय लगती थी। उस राजा की राज-सभा भस्म, रुद्राक्ष-माला, जटा आदि शैव-चिह्नधारी तपस्वियो से भगवान् शकर जी की सभा के समान सुशोभित होती थी।

प्रतिदिन एक सहस्र शिव-लिग स्थापित करने का उसका व्रत कदापि भग नही होता था। एक दिन प्रमाद से पृथक् शिव-लिग स्थापित नही हुए, इसलिए समस्त शिल्पियो ने एक बडी शिला पर एक सहस्र शिव-लिग बनाये थे। वह शिला आज तक वर्त्तमान है।

उस राजा ने पुण्य-रूपी कमलो के जन्म के लिए प्रत्येक स्थान की वापियो मे शिव-लिग-रूपी कमल के बीज बो दिये थे और अनेक नदियो मे शिव-बाण स्थापित कर उसने उन नदियो को नर्मदा के तुल्य शिव-लिगमय बना दिया था उसने शिव-मन्दिरो की पूजा के लिए जो ग्राम दिये थे, काल की महिमा से आज भी उन ग्रामो का उपभोग पर्षद के कार्यकर्त्ता ब्राह्मण लोग कर रहे हैं। उस परम शैव ने बडे-बडे शिव-मन्दिर तथा बडे-बडे शिव-लिग और विशाल नदियाँ एव अनेक त्रिशूल-चिह्न स्थापित कर काश्मीर देश को परम पूज्य बना दिया था।

जिस श्मशान मे योगियो ने उसके शरीर का सधान किया था, उसने वहाँ सन्धीश्वर तथा अपने गुरु के नामानुसार ईशानेश्वर नामक दो शिव-लिग स्थापित किये। उसने थेदा नामक स्थान मे तथा भीमादेवी आदि अनेक स्थानो मे मठ, प्रतिमा, शिव-लिग स्थापित कर और अनेक सुन्दर भवन बनवा कर देश के सौन्दर्य को बढाया। स्वयभू शिव-लिग और विविध तीर्थो से पवित्र

काश्मीर-मण्डल का उपभोग करना वही भक्तराज जानता था। वह वसन्त मे वन मे रहकर पर्वतीय झरनो के निर्मल जल मे स्नान और ऋतु-कालोत्पन्न पुष्पो से शिव-लिंगो की पूजा करता था। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु मे यह राजा देव-दुर्लभ काश्मीर के पर्वतीय वनो मे रहकर बर्फ के शिव-बाणो की पूजा द्वारा अपने समय को सफल करता था। लक्ष्मीपति वह राजा असंख्य-विकसित-विमल-कमल-विराजित सरोवर के तट पर पहुँच कर वह शशि-खण्ड-मण्डन का ध्यान करता था। अगस्त्य के उदय से निर्मल तथा नील कमल-विभूषित वापियो मे स्नान कर शिव-पूजन के शुभ कार्य मे वह राजा शरद् ऋतु व्यतीत करता था। तपस्वियो के साथ रात्रि-जागरण महोत्सव को मानते हुए उस राजा के लिए माघ मास की रात्रियाँ अत्यन्त सुख-दायक थीं। इस प्रकार अद्भुत् रीति से पाये हुए राज्य को सफलता-पूर्वक उस पुण्यात्मा ने सैंतालीस वर्ष तक भोगा। उस राजा के शान्तिप्रिय और राज्य-कार्य-विरक्त स्वभाव से प्रजा भी विरक्त हो गई थी। उसके बाद प्रजा राज्य-कार्य के सचालन के लिए किसी अन्य योग्य पुरुष का अनुसन्धान करने लगी।

उन्ही दिनो अन्ध युधिष्ठर के वंश मे विजयाभिलाषी राजपुत्र था। गान्धार देश के राजा ने काश्मीर के राजा को जीतने की अभिलाषा से अन्ध युधिष्ठर के प्रपौत्र गोपादित्य का पालन किया था। वहाँ रहते हुए उस गोपादित्य को दिव्य लक्षणो से सम्पन्न मेघवाहन नामक एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। वह मेघवाहन अपने पिता की आज्ञा से विष्णु-वंश मे उत्पन्न प्राग्ज्योतिषेश्वर की कन्या के स्वयवर मे गया। वहाँ वारुण श्वेतछत्र की छाया मे बैठे हुए मेघवाहन के गले मे राज-कन्या ने वरमाला डाल दी। जिस प्रकार पश्चिम की हवा से मेघोदय का निश्चय होता है उसी प्रकार राजकन्या की प्राप्ति से ही मेघवाहन के भावी भाग्योदय का निश्चय पूर्ण रूप से हो गया। राजा नरक ने यह श्वेतछत्र वरुण से पाया था, इससे चक्रवर्ती पर ही छाया होती थी, अन्य किसी पुरुष पर नही।

इस प्रकार विवाह के बाद पत्नी समेत पिता के समीप आये हुए मेघवाहन को काश्मीर देश के मन्त्रि-गण राज्य-शासन के लिए आमन्त्रित करने लगे। आर्यराज को अपने राज्य का भेद भली भाँति विदित हो गया था और वह वहाँ के समस्त षड्यन्त्र को नष्ट भी कर सकता था, परन्तु वह भी राज्य को त्यागने के लिए उत्सुक था। वह अपने मन मे सोचने लगा—"वास्तव मे भगवान् शकर मेरे ऊपर अधिक प्रसन्न हुए हैं इसीलिए इन गुरुत्तर विघ्नो को दूर करने के लिए वे सदैव उद्यत रहते है। अभी मुझे बहुत बडा कार्य करना है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर मानव-जन्म को सफल करना है। यह सत्य है कि राज्य के सुख को भोग करने मे मैंने कुछ आलस्य का सहारा अवश्य लिया है, फिर भी वर्षाकाल मे भ्रमण करने वाले पथिक के समान निद्रा से मोहित नही हुआ हूँ। विरक्तो के द्वारा रक्षिता सम्पत्ति के समान राज्य-लक्ष्मी को अपनी इच्छा से ठीक समय पर छोड देने से ही मुझे बलात्कार से राज्य-च्युत होने की लज्जा का अनुभव नही करना पडेगा। नट के समान मैंने इस राज्य-रूपी रगभूमि पर अपना अभिनय दिखाया और अधिकार चलाया है। अब मैं इन दर्शको के सामने ही यवनिका से प्रच्छन्न हो रहा हूँ। यह भी अत्यन्त हर्ष का ही विषय है। साथ ही साथ यह भी बडे हर्ष का विषय है कि बार-बार मैं लक्ष्मी के विषय मे वैराग्य दिखलाता हुआ त्याग के समय मे भी अपने विचार पर पूर्ववत् दृढ हूँ। वीरता का मिथ्या अभिमान करने वालों की जैसी अपमानजनक दशा युद्ध की भूमि मे होती है वैसी मेरी दशा आज तक नही हुई है।

इस प्रकार अपने मन मे विचार करता हुआ वह राजा मन मे ही राज्य करने वाले दरिद्र मनुष्य के समान प्रसन्न होने लगा। इसके बाद दूसरे ही दिन समस्त प्रजा को राज-सभा मे एकत्रित कर धरोहर के समान उनका सुरक्षित राज्य बडी प्रसन्नता के साथ लौटा दिया। प्रजा की ओर से अत्यन्त आग्रह होने पर भी उसने छोड़े हुए राज्य को फिर से ग्रहण नही किया। जिस प्रकार सर्प छोडे केचुल को पुन ग्रहण नही करता उसी प्रकार उसने भी सबके विशेष रूप से कहने पर भी राज्य-भार को ग्रहण नही किया। उसने तुरन्त समस्त राज्य-चिह्नो और राजसी आभूषणो को त्याग दिया और धौत वस्त्र धारण कर लिया। फिर नित्य पूजा के शिववाण को हाथ मे लेकर खुले सिर पैदल ही उत्तर दिशा की ओर प्रयाण करना आरभ किया। उस समय नीची दृष्टि किये हुए और मौन हो कर जाते हुए उस राजा के पीछे-पीछे प्रजा-गण भी चुपचाप आंसू गिराते हुए जाने लगे। दो कोस चलने के बाद उसने एक वृक्ष के नीचे बैठकर रोते हुए प्रत्येक मनुष्य को प्रेमपूर्वक समझाया। मार्ग मे वह प्रत्येक पर्वत के निम्न प्रदेश मे विश्राम करता था और साथ आने वालो को समझा-बुझाकर लौटाने का प्रयत्न करता था। कुछ लौट जाते और कुछ साथ रह जाते। थोडी देर विश्राम कर और लोगो को समझा कर वह धीरे-धीरे पर्वतो पर चढने लगा। फिर उसने वहाँ के गहन अरण्य मे प्रवेश किया और साथ आए हुए शोक-गद्गद् स्निग्ध जनो को भलीभाँति समझा कर लौटा दिया।

उन सबके चले जाने पर फिर उस निर्जन वन मे प्रवेश किया जहाँ गिरि-गुहा निवासी भोजपत्र की शीतल और मर्मर शब्दवाली वायु से सुप्त सिद्धजनो के आभूषण-स्वरूप रत्नो का प्रकाश नित्य उज्ज्वल बना रहता है। उसके बाद सूर्य के अस्त हो जाने पर कोमल पत्तो के दोने से जल पान कर कोमल पत्तो की शय्या पर शयन किया। उस समय पर्वतो के शिखरो पर सूर्य की किरणें फैल रही थी। हरी-हरी घास के सौन्दर्य से छायायुक्त पर्वतीय प्रदेश बडा ही आकर्षक हो रहा था। विकसित मल्लिका-लताकुजो मे गोपो की ललनाएँ सानन्द सो रही थी। पर्वतीय झरनो की मधुर ध्वनि गोप गण द्वारा बजाई गई मधुर मुरली की ध्वनि से मिलकर सभी ओर गूँज रही थी। इस प्रकार सुन्दरता से युक्त पर्वतो के दृश्य से उस आर्यराज को निद्रा के वशीभूत होना पडा। फिर भेरी शब्द के समान जगली हाथियो के भयकर शब्दो से तथा विहगो के मधुर कलरव से उसे रात्रि-समाप्ति का निश्चय करना पडा। उसने उठकर समीप के सरोवर मे स्नान किया फिर विधिपूर्वक प्रात -सन्ध्या आदि धार्मिक कृत्य किये। इतना सब करके पूर्व परिचित नन्दीश क्षेत्र के समीप सोदर तीर्थ की ओर चल पडा और चलते-चलते वहाँ पहुँच गया। वहाँ भगवान् कैलाशपति शङ्कर के सामने वह खडा रहा। उसके पूर्व चिन्तित समस्त मनोरथ पूर्ण रूप से सफल हुए। भस्म लपेटे हुए, रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए और जटा-जूट से अपनी शोभा बढाते हुए उस राजा को बडे-बडे ऋषि-मुनि आदरपूर्वक देखने लगे। शैव-व्रत-दीक्षा के कारण सर्वत्र अत्यन्त अधिक सत्कार पाता हुआ वह राजा जब भिक्षा के लिए आश्रमो मे जाता था तब ऋषियो की सभी पत्नियाँ उसे बडे आदर के साथ भिक्षा देती थी किन्तु ऐसा अवसर उसे बहुत कम मिलता था क्योकि वृक्ष ही अपने फल-फूलो से उसके भिक्षा के पात्र को पूर्ण कर देते थे। इसलिए उसे दूसरो से प्रार्थना करने की आवश्यकता नही होती थी।

इस प्रकार इस दूसरी तरग मे काश्मीर देश मे शासन करने वाले सुप्रसिद्ध छ. राजाओ का वर्णन है। उन राजाओ ने एक सौ बानवे वर्ष तक काश्मीर मे राज किया है।

३

१ राजा मेघवाहन की कथा

आर्यराज के महाप्रयाण के पश्चात् समस्त प्रजा को साथ लेकर मंत्रि-मण्डल गान्धार देश मे गया। वहाँ से परम यशस्वी मेघवाहन को लाकर उसे काश्मीर राज्य का अधिकारी बनाया। जिस प्रकार बार-बार धुलने से वस्त्र क्रमश अधिक से अधिकतर स्वच्छ होने लगता है उसी प्रकार उस राजा का प्रजा के विषय मे प्रेम क्रमश बढने लगा और उसके बढते हुए प्रेम को जानकर प्रजा भी उस पर अनुरक्त हो गई।

उस राजा ने प्राणिमात्र पर दया करने वाले बोधिसत्वो को भी गम्भीरता से अलकृत उत्तम उदात्त चरित्र से जीत लिया। उसके राजसिंहासन पर बैठते ही मन्त्रियो ने राज्य की सीमा के भीतर जीव-हिंसा बन्द कर देने की घोषणा करा दी और कसाई आदि हिंसा द्वारा जीवन-निर्वाह करने वालो को अपने राज-कोष से पर्याप्त धन दे कर उन्हें पापरहित जीविका द्वारा जीवन-निर्वाह करने के लिए बाध्य किया। भगवान् जिनदेव के समान हिंसा-विद्वेषी उस राजा के यज्ञो मे भी सजीव पशुओ के स्थान पर पिष्ठ-पशु और मृत पशुओ से कार्य चलाया जाता था। उसने मयुष्ट नाम का एक नवीन ग्राम बसाया और मेघवन नामक अग्रहार ब्राह्मणो को दिया तथा परम पवित्र मेघमठ नामक मठ की स्थापना की। उसकी धर्मपत्नी अमृतप्रभा देवी ने विदेशी भिक्षुओ के परम सुविधापूर्वक निवास करने के लिए अमृतभवन नामक परम मनोहर और उच्चतम विहार बनवाया। उस विहार में अमृतप्रभा के पिता का गुरुलोह नामक सिद्ध आया था उस सिद्ध ने वहां लोस्तोन्या नामक यूप बँधवाया। उस यूप को काश्मीर-निवासी अपनी भाषा मे स्तुन्या कहते हैं। राजा मेघवाहन की दूसरी पत्नी यूकदेवी ने अपनी सपत्नी के विषय मे स्पर्द्धा दिखलाते हुए नडवन मे एक अद्भुत् विहार बनवाया। उस विहार के एक भाग मे सदाचार-सम्पन्न भिक्षुओ के रहने की व्यवस्था की गई थी और शेष आधे भाग मे स्त्री-पुत्र-पशु सहित गृहस्थाश्रमी लोग रखे गये थे। इसी प्रकार उसकी तीसरी पत्नी इन्द्रदेवी ने भी इन्द्रदेवी-भवन नामक चतु शाल विहार तथा स्तूप बनवाया। ऐसे ही बहुत से विहार खादना, सम्भा आदि उस राजा की अन्य पत्नियो ने भी अपने-अपने नामो के अनुसार खादना, सम्भा आदि नाम रखकर बनवाये।

यह सत्य है कि राजा मेघवाहन आधुनिक था, फिर भी उसका शासन-काल इतना आनन्दमय और प्रजा मात्र को सुखदायक था कि उसके सामने प्राचीन काल के प्रजाप्रिय श्रेष्ठ राजाओ का शासन-कालीन इतिहास तुच्छ प्रतीत होता था।

किसी समय वह राजा नगर के बाहर विहार कर रहा था। उसी समय सहसा किसी भयभीत मनुष्य की "यह चोर है" ऐसी वाणी समीप ही सुनाई पडी। तब राजा ने क्रुद्ध होकर "कौन है, पकडो बाँधो" ऐसी आज्ञा तुरन्त दी। राजा की आज्ञा सुनते ही वह कोलाहल एकदम बन्द हो गया और चोर का भी कुछ पता न लगा। इस घटना के दो या तीन दिन बाद भ्रमण करते हुए राजा के सामने आकर दो-तीन दिव्य सुन्दरियां अभय याचना करने लगीं। उस परम दयालु राजा ने घोडे को रोक कर उन्हे अभय वचन दिया। तब वे अपने मस्तक पर अजलि रखकर कहने लगी—"करुणानिधे! राजन्! जब आप दिव्य प्रभाव से संसार की रक्षा का कार्य सफलतापूर्वक कर रहे है तब फिर आपके राज्य मे अन्य व्यक्ति का भय कैसे हो सकता है? भगवन्! हमारे पति नाग निर्भय हो कर मेघ के रूप मे आकाश मे भ्रमण कर रहे थे। उसी

समय शालि-रक्षक कृषकों ने शालियों की रक्षा के लिए वर्फ की वृष्टि को रोकने की अभिलाषा से उन नागों को आपका कोप-पात्र बना दिया। इसीलिए उन कृषकों ने हमारे पतिदेवों को चोर शब्द से सम्बोधित किया था और आपने उन्हें पकड़ कर बाँधने की आज्ञा दे दी थी। तभी से वे बँधे हुए है, अतएव क्षमा प्रदान कर उन्हें बन्धनमुक्त कर दीजिए।" उन दिव्य सुन्दरियों की विनम्र प्रार्थना को ध्यानपूर्वक सुनकर राजा मेघवाहन ने हँसते हुए उन नागों के बन्धनमुक्त किये जाने की आज्ञा तुरन्त दे दी। उसकी आज्ञा से वे नाग शीघ्र ही बन्धन से मुक्त हो गये और उसके चरणों मे प्रणाम कर परिवारसहित परम प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चले गये।

इसके थोड़े ही दिनों के बाद कपट से रहित धर्म के आचरणों मे तत्पर रहने वाला वह राजा सम्पूर्ण राज-वृन्द से अहिंसा के व्रत का पालन कराने के उद्देश्य से दिग्विजय करने को रवाना हुआ। उसका वह परम पवित्र विजय सम्बन्धी उद्योग समस्त संसार के प्राणिमात्र को अभयदान द्वारा शंकारहित करने के लिए ही था। इसी सद्भावना के अनुसार उसने समस्त राजाओं को अपने अधीन कर उन्हें अहिंसा व्रत का पालन करने के लिए सभी प्रकार से बाध्य कर दिया। इस प्रकार क्रमश दिग्विजय करता हुआ वह राजा समुद्र के तट पर पहुँच गया। वहाँ पर पहुँचते ही ताल-वृक्षों की छाया मे उसके सैनिक विश्राम करने लगे और वह अपने मन-समुद्र को लाँघ कर द्वीपान्तरों मे भ्रमण करने के लिए किसी न किसी सुन्दर उपाय को निश्चय करने वाले विचार पर मनन करने लगा।

ठीक ऐसे ही समय मे सहसा समुद्र-तट के वन-प्रदेश से "हाय? महान् धार्मिक राजा मेघवाहन के राज्य मे भी निरपराध मैं मारा जा रहा हूँ" इस प्रकार किसी का आर्तनाद सुनाई पड़ा। इस आर्तनाद को सुनते ही राजा का हृदय दया से द्रवीभूत हो गया। वे शब्द उसके हृदय मे तपी हुई लौह-शलाका के समान चुभने लगे। छत्र को धारण किए हुए वह राजा उसी समय उस वन की ओर चल पड़ा।

वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि एक पुरुष मस्तक नत किये हुए देवी के सामने खड़ा हुआ है और एक शबर सेनापति हाथ मे खड्ग लिए हुए उसे देवी के आगे बलिदान करने के लिए उद्यत है। क्रुद्ध हो कर राजा ने उस शबर-सेनापति से कहा—"रे नीच! इस रोमांचकारी घृणित कार्य को करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती? तेरे समान नर-राक्षसों को शतशः धिक्कार है।"

इस प्रकार राजा की तर्जना को सुनकर भय से काँपता हुआ वह शबर-सेनापति कहने लगा—"राजन्! मेरा पुत्र सांघातिक रोग से ग्रसित होकर मरणासन्न हो रहा है। उसके बचने का उपाय देवताओं ने मनुष्य का बलिदान ही बतलाया है। यदि बलिदान न किया गया तो मेरा पुत्र अवश्य मृत्यु के अधीन हो जायगा। महाराज! उसी बालक के जीवन के अधीन मेरा तथा मेरे आप्तजनों का जीवन है। राजन्! जब निराश्रय होकर अरण्य मे भ्रमण करने वाले मनुष्य की आप रक्षा करते हैं तब अनेक मनुष्यों के जीवन का सहारा वह कोमल बालक आपकी दयापूर्ण दृष्टि मे उपेक्षा का पात्र क्यों हो रहा है?"

शबर-सेनापति के इन दीनतापूर्ण वचनों को सुनकर और उस वध किये जाने वाले पुरुष की आशामयी कातर दृष्टि से विवश होकर राजा मेघवाहन ने कहा "हे शबर! तुम किसी भी बात की चिन्ता न करो। जिस प्रकार अनेक बान्धवों द्वारा रक्षित तुम्हारे पुत्र की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है उसी प्रकार इस असहाय बान्धव-विहीन वध किये जाने वाले पुरुष के

जीवन की रक्षा करना भी मेरा कर्त्तव्य है। अतएव मैं अपने शरीर को ही देवी के सामने बलिदान किये देता हूँ। तुम शंकारहित होकर मुझ पर खड्ग से प्रहार करो। इस समय मेरी यही अभिलाषा है कि मेरे इस तुच्छ शरीर से इन दोनो प्राणियो का जीवन सुरक्षित हो जाय।

इस प्रकार उस महासत्व राजा की विलक्षण भूतदया तथा उदारता को देखकर वह शबर-सेनापति विलम्ब तक आश्चर्य मे डूबा रहा। फिर वह सहर्ष कहने लगा "पृथ्वीनाथ! मुझे मालूम होता है कि आपकी बुद्धि मे दया की अत्यधिक मात्रा के कारण कुछ भ्रम-सा हो गया है। आप समस्त विश्व के जीवो के प्राण-व्यय से भी रक्षा करने योग्य और समस्त ससारिक ऐश्वर्य-परम्परा के उपभोग करने वाले इस अमूल्य शरीर की उपेक्षा क्यो कर रहे हैं? राजा लोग अपने प्राणो की रक्षा करने के लिए यश, मान, धन, धर्म, स्त्री और पुरुष आदि की भी पर्वाह नही करते। अतएव हे प्रजानाथ! आप वध किये जाने वाले इस पुरुष पर व्यर्थ कृपा मत कीजिए। आप को ऐसा करना चाहिए जिससे आप जीवित रहे तथा आप, प्रजा, हम और हमारा बालक भी जीवित रहे।

शबर-सेनापति की बातो को सुनकर उस राजा मेघवाहन ने निर्मल हास्य-रूपी जल से देवी के चरण-युगल मे अर्घ्य प्रदान करते हुए तथा अपने शरीर का उपहार देने की इच्छा करते हुए कहा—"शवर! जिस प्रकार मरुदेश के निवासी मनुष्य गगा-जल के निर्मल, शीतल तथा मधुर स्वाद को और गगा-स्नान के परम आनद को नही जान सकते, उसी प्रकार तुम वनचरो को भी सदाचरण-रूपी अमृत का स्वाद स्वप्न मे भी नही विदित हो सकता। हे मूढ! इस अवश्य नश्वर भौतिक शरीर से अनश्वर निर्मल यश को खरीदते हुए मुझे तेरा दुराग्रह विघ्न के समान प्रतीत हो रहा है। ऐसी दशा मे मैं चाहता हूँ कि अब तू कुछ मत कह। शान्त होकर देख। यदि मेरा वध करने मे तुझे घृणा होती हो तो क्या मेरी यह तलवार इस कार्य को नही कर सकती?" ऐसा कहकर राजा मेघवाहन ने अपने हाथ से अपना मस्तक काटने के लिए तलवार को म्यान से निकाला और अपने मस्तक को शरीर से भिन्न कर देने का उपक्रम किया। राजा के इस प्रकार दुस्साहसपूर्ण उपक्रम करते ही उसके ऊपर आकाश से दिव्य पुष्पो की वर्षा होने लगी। सभी बडे आश्चर्य मे मग्न हो गये। इतने मे ही विचित्र से भी विचित्र घटना यह हुई कि अदृश्य रूप से एक दिव्य पुरुष ने तुरन्त उसका हाथ पकड लिया।

राजा की समझ मे कुछ भी न आया। वह चिन्तित होकर बडे दुःख का अनुभव करने लगा। फिर राजा ने अपने सामने किसी एक दिव्याकार पुरुष को देखा। वहाँ उसने चण्डिका, किरात, बालक तथा वध किये जाने वाले पुरुष किसी को भी न देखा। उस दिव्य पुरुष ने राजा से कहा "हे करुणा के सागर राजन्! मैं वरुण हूँ। तुम्हारे इस विलक्षण धैर्य से चकित हो गया हूँ। हे भूपालशिरोमणे! आपके पास जो श्वेत छत्र है, वह मेरा ही है। आपके श्वशुर वीरश्रेष्ठ भौमासुर ने उस छत्र को मुझसे छीन लिया था। वह छत्र मेरे देश रसातल का एक अमूल्य रत्न है। उसके अभाव से मेरे नगर मे सैकडो प्रकार की दैवी और मानवी आपत्तियाँ हो रही हैं। हे दयानिधे! उसी छत्र को आप से लेने के लिए मुझे आपकी उदारता की परीक्षा करने की इच्छा से यह मायाजाल तैयार करना पडा। हे राजन्! आप अपने इस अपूर्व और विलक्षण भूत-दया द्वारा अपने पूर्वज राजा मिहिरकुल के पापो का प्रायश्चित्त कर रहे हैं।"

जिस पृथ्वी को धारण करने मे समर्थ शेषनाग के शरीर मे हलाहल विष और फणो के

रत्न-समूह भय एव लोभ को क्रमश उत्पन्न करते हुए देखे जाते है, जिस प्रकार तेज से दिगन्तर मे आक्रमण करने वाली अग्नि मे अन्धकार और प्रकाश के जन्मदाता धूम-पुज तथा ज्वाला-जाल साथ-साथ दीख पडते हैं, जिस प्रकार सूर्य-मण्डल को अभ्र-पटल से आच्छादित करने वाले वर्षा-काल के दिनो मे ग्लानि और शान्ति को क्रमश उत्पन्न करने वाले सताप अर्थात् गर्मी तथा जलवृष्टि दोनो प्राप्त होते है, उसी प्रकार एक ही अतिश्रेष्ठ वश मे तीन करोड प्राणियो की हत्या करने वाले मिहिरकुल तथा आपके समान दयालु पुरुष का जन्म देखा जाता है। यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक है।" इस प्रकार वरुण के विनीत वचनो को सुनकर उस राजा मेघवाहन ने छत्र तथा स्तोत्र द्वारा प्रणामपूर्वक वरुण का सत्कार किया। इतना ही नही, उस राजा मेघवाहन ने प्रेम से छत्र को ग्रहण करते हुए वरुण को पुन प्रणाम किया और कहा—"भगवन्! याचना के पश्चात् याचको के मनोरथ को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष और याचना की प्रतीक्षा किये बिना ही अभीष्ठ फल को देने वाले सज्जनो की समानता का वर्णन किसी भी दशा मे उपयुक्त नही है।"

"यदि आप दु खितो के दु ख दूर करने के लिए इस छत्र की याचना नही करते तो मेरा यह छत्र इतना पुण्य देने वाला किस प्रकार हो सकता था? जिस प्रकार वृक्ष, आश्रित मनुष्य को छाया द्वारा शीतल करता है और फल देकर तृप्त करता है, उसी प्रकार उदार पुरुष भी याचको पर पूर्ण रूप से अनुग्रह करते हैं। इसलिए आपकी उदारता से प्रेरित होकर यह सेवक भी आप से कुछ वरदान मांगना चाहता है। यह सत्य है कि आपकी ही अनुकम्पा से मैंने इस सम्पूर्ण भारतवर्ष की भूमि को अपने वश मे कर लिया है किन्तु समुद्र के मध्य मे स्थित द्वीप अभी शेष रह गये हैं। अब आप कृपापूर्वक समुद्र को पार करके समुद्र के मध्यवर्ती द्वीपो को जीतने की सरल युक्ति बतलाने का कष्ट अवश्य स्वीकार कीजिए।"

राजा मेघवाहन की इस याचना को सुनकर वरुण ने कहा—"राजन्! जब-जब तुम समुद्र का उल्लघन कर द्वीपान्तर मे जाना चाहोगे, तब-तब मैं समुद्र के जल का स्तम्भन करूँगा।" राजा ने भी सन्तुष्ट होकर कृतज्ञता प्रकाशित की और वरुण को विशेष रूप से धन्यवाद दिया। इसके बाद छत्रसहित वरुण अदृश्य हो गया। दूसरे दिन वरुण के प्रभाव से स्तम्भित समुद्र के जल के ऊपर से सेनासहित वह राजा समुद्र के पार चला गया। उस गुण-रत्नाकर राजा ने रत्नाकर शेखर और नाना रत्नाकर रोहण पर्वत पर आरोहण किया। उस पर्वत पर राजा के आदेश से सैनिक-गण विशाल वृक्षो की शीतल छाया मे आनन्दपूर्वक विश्राम करने लगे और लंका का विभीषण आकर सप्रेम राजा से मिला।

उस समय नर-राज तथा राक्षस-राज के प्रेम-मिलन की शोभा अत्यन्त दर्शनीय थी। वन्दीजनो ने उभय वश की प्रशस्ति के वर्णनात्मक कर्ण-मधुर गीतो द्वारा उस आनन्दमय समागम को अत्यन्त मधुर बना दिया था। विभीषण ने आदरपूर्वक उस राजा को लका मे ले जाकर वहां उसका दिव्य उपचारो द्वारा आतिथ्य किया। यद्यपि राक्षसो के लिए "पिशिताशन" नाम सार्थक है तथापि उस राजा के आदेशानुसार अहिंसा-व्रत के ग्रहण करने से वह नाम केवल रूढ हो गया। सर्वदा के लिए नम्रता को सूचित करने वाली शिखर-प्रदेश मे राक्षसो के मस्तको से अकित असख्य ध्वजाएँ विभीषण ने राजा को समर्पित की। वे समस्त ध्वजाएँ समुद्र के पार से काश्मीर देश मे लाई गई थी, इसीलिए उन सब का नाम पारध्वज रखा गया था। आज भी वे पारध्वज काश्मीर मे राजा के आगे सवारी मे निकाले जाते हैं।

इस प्रकार राक्षसो को भी अहिंसा-व्रत का आदेश देकर वह बुद्धिमान राजा मेघवाहन अपने देश काश्मीर को लौट आया। उस दिन से उस सार्वभौम राजा के अहिंसा-व्रत की आज्ञा का उल्लघन कोई भी नही करता था। उसके राज्य मे ग्राह आदि जलचर जीवो ने तथा सिंह आदि थलचर पशुओ ने और बाज आदि नभचर पक्षियो ने भी हिंसा को त्याग कर दयापूर्ण जीवन बिताना आरभ कर दिया था।

कुछ समय के बाद एक ब्राह्मण अपने रुग्ण बालक को राजद्वार पर लाया और शोक प्रकट करता हुआ राजा से कहने लगा—"श्रीदुर्गा देवी ने मुझसे पशु का बलिदान माँगा है। यदि मैं श्रीदुर्गा की आज्ञा का उल्लघन करूँगा तो मेरा यह अकेला बालक ज्वर से पीड़ित होकर मर जायगा। अतएव हे राजन्! यदि आप अपनी अहिंसा का आग्रह नही छोड़ेंगे, तो यह मेरा बालक अवश्य काल का कवल बन जायगा। ऐसी दशा मे इसकी मृत्यु का कारण आप को छोड़ कर दूसरा और कौन होगा? आप थोड़ा भी विचार करके देखिए कि ब्राह्मण के बालक और क्षुद्र पशु मे कितना अन्तर होता है! जब आप इस समय के वर्णाश्रम-गुरु कहलाते हैं तब तो आपको इस विषय मे अवश्य सोचना चाहिए। हे भगवति वसुन्धरे! जिन राजाओ ने ब्राह्मणो के प्राणो की रक्षा करने के लिए तप करते हुए मनुष्यो को भी मार डाला था, वे प्रजापालक राजा अब इस ससार मे नही रहे!"

जब उस शोकग्रस्त ब्राह्मण ने इस प्रकार के आक्षेपयुक्त कठोर वचन कहे तब वह राजा अत्यन्त विचार-मग्न हो गया। वह सोचने लगा "मैंने प्राणियो का वध न करने के लिए जो प्रतिज्ञा यावज्जन्म के लिए की है उसे इस ब्राह्मण के बालक के लिए कैसे त्याग दूँ? साथ ही साथ यदि इस ब्राह्मण का बालक मेरी प्रतिज्ञा के कारण मर जायगा तो भी मेरा व्रत भग हो जायगा। इन दोनो सकटो से मेरा मन दो नदियो के सगम-तरगो मे फँसे हुए पुष्प के समान भ्रान्त होकर किसी भी एक पक्ष का अवलम्बन करने मे असमर्थ हो रहा है। इसलिए मुझे अपना शरीर बलिदान के रूप मे श्रीदुर्गा को अर्पण कर सन्तुष्ट करना चाहिए और प्रतिज्ञा के साथ-साथ इन दोनो प्राणियो की भी रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार विलम्ब तक सोच-विचार कर राजा ने शरीर-दान करना ही निश्चय किया और फिर उस ब्राह्मण से कहा—"कल तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा।" ऐसा कहकर राजा ने उस ब्राह्मण को विदा किया। फिर दूसरे दिन रात्रि के समय देवी के सामने अपने शरीर का बलिदान करने को उद्यत हुए उस राजा को देवी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उस कार्य से रोका और ब्राह्मण के बालक का भी रोग दूर किया।

इस प्रकार इस आधुनिक राजा के विचित्र चरित्र का वर्णन करते हुए हमे पाठको के हृदय मे अविश्वास उत्पन्न होने के भय से लज्जित होना पड़ता है। इस स्थल पर इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि ऋषियो के समान किसी भी विषय को लिखने वाले कवि, श्रोताओ और पाठको की चित्त-वृत्ति को अपने अनुकूल करने का प्रयत्न कदापि नही करते। वे जो उचित समझते हैं सत्य के नाते उसका वर्णन अवश्य करते है।

इस प्रकार राज्य का शासन और प्रजा का पालन करने वाले राजा मेघवाहन ने चौंतीस वर्ष तक काश्मीर मे राज्य किया। उसके परलोक-गमन से इस ससार से एक सूर्य अस्त हो गया।

२ राजा विक्रमादित्य की कथा

राजा मेघवाहन के बाद उसका पुत्र श्रेष्ठसेन काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठा। वही प्रथम प्रवरसेन और द्वितीय तुजीन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका प्रवल पराक्रम ऐसा था कि उसका सामना करने वाला उस समय कोई भी वीर पुरुष नही था। उसकी भुजाओ मे आश्रय पाने वाली तीनो लोक की राज्य-लक्ष्मी उसकी चमचमाती हुई तलवार-रूपी मणि-दर्पण मे प्रतिविम्वित होकर सुशोभित होने लगी। उसने सर्वप्रथम प्रवरेश्वर की प्रतिष्ठा करा कर पुराणाधिष्ठान मे मातृ-चक्र की स्थापना की और अनेक देवालय भी वनवाये। वह सम्पूर्ण पृथ्वी को गृह के प्रागण के ही समान समझता था। उसने अनेक ग्रामसहित त्रिगर्त देश प्रवरेश्वर को समर्पण किया। समस्त पृथ्वी को अपनी पैतृक सम्पत्ति समझने वाले राजाओ का शासक होने पर भी अत्यन्त सौम्य स्वभाव वाले उस राजा ने तीस वर्ष तक पृथ्वी पर शासन किया।

उसके वाद उसके दो पुत्र राजा हिरण्य और युवराज तोरमाण दोनो मिलकर अपने सुशासन द्वारा प्रजा को सन्तुष्ट करने लगे। तोरमाण ने "बालाहत" नामक पुराने सिक्को के स्थान मे अपने अधिकार से स्वनामाकित "दीनार" नाम के नये सिक्के चलाये। उसके इस व्यवहार से उसके ज्येष्ठ भ्राता हिरण्य ने "इसने मेरा अनादर कर अपने को राजा समझते हुए ऐसी अनुचित धृष्टता की है" ऐसा अपने मन मे विचार किया और फिर क्रुद्ध होकर उसे कारावास का दण्ड दिया।

वहुत दिनों तक कारावास मे रहते-रहते तोरमाण अपनी दु खमय अवस्था को भूल गया था। इक्ष्वाकुवशीय वज्रेन्द्र राजा की कन्या तोरमाण की पत्नी अजना देवी उस समय सगर्भा थी। जव उसके प्रसव का समय आया तव वह अपने पति की आज्ञा से कारावास को छोड़कर एक सज्जन कुमकार के यहाँ रहने लगी। वहाँ उसके पुत्र हुआ।

जिस प्रकार कौवे की स्त्री कोकिला की सन्तान को प्रेमपूर्वक पालती है उसी प्रकार उस कुंभकार की स्त्री ने अपनी सन्तान के समान उस वालक का लालन-पालन किया और वह बालक भी धीरे-धीरे वड़ा होने लगा। इस रहस्य को उस वालक की माता अजना देवी तथा उस कुभ-कार की स्त्री दोनो ही जानती थी क्योंकि पृथ्वी मे छिपी हुई रत्न-निधि को रत्न-प्रसव करने वाली वसुधरा और रत्न की रक्षा करने वाली नाग-पत्नी ही जान सकती हैं। रानी की आज्ञा से उस वालक को उसके पितामह के नामानुसार कुभकार की पत्नी ने प्रवरसेन के नाम से प्रसिद्ध किया।

वढता हुआ वह वालक अपने वीच कुलोत्पन्न सहवासियो के सहवास को पसन्द नही करता था। जिस प्रकार कमल सूर्य से प्रेम करता है, वैसे ही वह वालक भी तेजस्वी मित्रो की मित्रता का रसिक होने के कारण नीच सम्पर्क को नही चाहता था। लोग कुलीन, शूर तथा विद्या-प्रेमी वालकों के साथ खेलते हुए उस वालक को वडे आश्चर्य के साथ देखा करते थे। जिस प्रकार सिंह के वच्चे को वन मे क्रीडा करने वाले मृगो के वच्चे अपना राजा मानते हैं, उसी प्रकार साथ के खेलने वाले सभी वालको ने उस तेजस्वी वालक को अपनी मण्डली का नायक वना लिया। वह वालक भी पाई हुई वस्तु को अपने साथियो में वाँट देता था और वह अपने समस्त मित्रो पर दया तथा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि सदैव रखता था। साथ ही साथ जो कार्य किसी राज-पुत्र के लिए अनुचित दिखाई दे, ऐसा कार्य वह भूलकर भी नही करता था। गृहस्वामी

कुंभकार कुंभ बनाने के लिए जो मिट्टी तैयार करता था, उससे वह बालक भगवान शंकर के पार्थिव बाण बनाकर पूजन करता था।

एक दिन उस विचित्रचरित्र वाले बालक को खेलता हुआ देखकर उसके मामा जयेन्द्र ने प्रेमपूर्वक उसका अभिनन्दन किया। उस बालक ने अपने समीप के मित्रो से जयेन्द्र का परिचय सुनकर जयेन्द्र की ओर राजकुमार के समान प्रौढ दृष्टि से देखा। जयेन्द्र ने उस बालक की प्रौढता को ध्यानपूर्वक देखकर उसे उच्च वश का समझा और अपने बहनोई के समान उस बालक की मुखाकृति को देखकर उसे अपना भानजा मान लिया।

उस रहस्य को शीघ्र जानने की इच्छा से जयेन्द्र उस बालक के पीछे-पीछे कुंभकार के घर मे गया और वहाँ उसने अपनी बहन को देखा। दोनो विलम्ब तक परस्पर देखते हुए दीर्घ निश्वास लेकर आँसू बहाते रहे। जब उस बालक ने कुंभकार की स्त्री से पूछा कि माता जी! ये कौन हैं ? तब उसने कहा हे वत्स ! यह तेरी माता हैं और ये तेरे मामा हैं।"

अपने पिता के कारावास वाले वृत्तान्त को सुनकर वह बालक वीरोचित भावना के साथ अधिक क्रुद्ध हुआ। उसके मामा जयेन्द्र ने उसे समझाने की चेष्टा करते हुए कहा—"अभी तुम बालक हो। छोटी अवस्था के कारण तुम अभी अपने कार्य मे सफल नही हो सकोगे।" इस प्रकार समझाकर वह अपने कार्य के लिए वहाँ से चला गया।

कुछ समय के बाद प्रवरसेन ने राजा हिरण्य को परास्त करने लिए षड्यन्त्र रचना आरंभ किया। ऐसे ही समय मे राजा हिरण्य ने तोरमाण को अपनी इच्छा से बन्धनमुक्त कर दिया किन्तु दुर्भाग्य से वह नर-सूर्य तोरमाण शीघ्र ही अस्त हो गया।

पिता की आकस्मिक मृत्यु से प्रवरसेन बडा ही शोकाकुल हुआ। साथ ही साथ जब उसकी माता ने असहनीय विधवा होने के क्लेश से पीडित होकर प्राण-त्याग देने का सकल्प किया तब प्रवरसेन के सामने भयानक अधकार-सा छा गया। प्राण-त्याग के लिए उद्यत हुई माता को किसी प्रकार सान्त्वना द्वारा रोक कर वह उसी के साथ तीर्थयात्रा के लिए चला गया। सन्तान-हीन वह राजा हिरण्य भी तीस वर्ष दो मास तक राज्य करने के पश्चात् स्वर्गवासी हो गया।

उन्ही दिनो उज्जयिनी मे श्रीमान् विक्रमादित्य चक्रवर्ती जिसका दूसरा नाम हर्ष था, राज्य करता था। उस समय लक्ष्मी चारो समुद्र तथा भगवान् विष्णु की चारो भुजाओ को त्याग-कर उस अभूतपूर्व भाग्यशाली राजा की अनन्य प्रेमिका हो गई थी। उस गुणज्ञ ने लक्ष्मी-रूपी साधन से गुणो को बढाने का अधिक प्रयत्न किया था अतएव आज भी गुणी पुरुष धनशाली पुरुषो के सम्मुख अपना मस्तक ऊँचा करके ही रहते हैं।

म्लेच्छो के उच्छेद के लिए पृथ्वी पर अवतार लेने वाले भगवान् कल्कि के कार्यभार को पहिले से ही जिसने शको का पराभव करके हलका कर दिया था वह राजा विक्रमादित्य सर्वत्र प्रसिद्ध था। उसके पास गुणवान् पुरुष बिना किसी रोक-टोक के पहुँच सकते थे। इसीलिए उसके पास मातृगुप्त नामक एक महाकवि रहता था।

उस मातृगुप्त ने विक्रमादित्य के यहाँ आने के पूर्व अनेक राजाओ की राजसभाओ मे अपनी विशेष योग्यता के प्रभाव से सम्मान प्राप्त किया था। वह राजा विक्रमादित्य की गभीरता और आश्चर्यजनक महानुभावता आदि सद्गुणो को सोचकर ही उसके पास रहने लगा था तथा नित्य अपने मन मे यही सोचा करता था कि मैंने इस गुणज्ञ राजा को अपने जन्म-जन्मान्तरो

के पुण्यो के कारण ही पाया है। इसके पहिले मैंने जिन राजाओ की सेवा की है, उनकी स्थिति को सोचने से इसकी सर्वश्रेष्ठता पूर्ण रूप से स्पष्ट विदित हो जाती है। इसके समीप विद्वान् और गुणवानो को मान तथा धन पाने के लिए अधिक समय तक हाथ जोडकर प्रार्थना करने की आवश्यकता नही पडती। इसके सामने अपने हृदय के विचारो को आलकारिक भाषा मे प्रकट करने के लिए कहने वाले की बुद्धि को कुलवधू के समान लज्जित नही होना पडता। यह राजा दुष्ट स्वभाव के मनुष्यो द्वारा किये गये प्रलाप की ओर ध्यान नहीं देता और योग्यायोग्य का विचार भली भाँति करता है अतएव ऐसे राजा की सेवा करने से अपना एक भी सद्गुण निरर्थक नही होता। इसके सामने विद्वान् तथा मूर्ख की समानता न होने से विद्वान् को मरण-तुल्य कष्ट कदापि नही उठाना पडता। यह राजा अत्यन्त बुद्धिमान् है। इसीलिए इसके समीप योग्य सम्मान की आशा से आये हुए बडे-बडे विद्वानो को कदापि निराश होकर जाने का अवसर नही आता। प्रत्येक के गुणो के तारतम्य को समझ कर यह राजा उनकी योग्यता के विषय मे ठीक परामर्श करके यथोचित सत्कार द्वारा उनके उत्साह को बढाता रहता है। इसके सेवको को इसे प्रसन्न करने के लिए जो कष्ट उठाना पडता है उससे इस राजा के हृदय मे दु ख होता है, सेवको को नही होता। क्योंकि उनका प्रयत्न हिमालय पर हिम-विक्रय के समान व्यर्थ नही होता। इसने जिन पुरुषो को अपनाया है वे मिथ्या गुणो को कदापि प्रकट नहीं करते। इसके मन्त्री और सेवक कलह-प्रिय और असत्य बोलने वाले नही हैं। इसके दासजन परस्पर अश्लील भाषण करने वाले तथा हास्य द्वारा मर्मभेदी वाक्यो के कथन मे निपुण और दूसरो को राजभवन मे प्रवेश करने मे बाधक तथा आपस मे मिलकर एक सङ्घ बनाकर प्रजा को क्लेश देने वाले नही हैं। यह राजा अपनी हाँ मे हाँ मिलाने वाले तथा आत्म-प्रशसक और अपने आप को सर्वज्ञ मानकर अभिमान से बधे हुए मनुष्यो का मुख तक देखना नही चाहता। इसके साथ वार्तालाप करने के समय मूर्खों को बीच-बीच मे चोच मारकर चचलता करने का अवसर नही मिल सकता। पूर्वजन्म के पुण्य से ही दोषहीन तथा सेवा के योग्य ऐसा राजा मुझे प्राप्त हुआ है। अब मेरा स्वार्थ शीघ्र ही सिद्ध होगा। सेवा के कारण उत्पन्न होने वाले कष्ट से व्याकुल न होकर इस गभीर, गुणज्ञ तथा स्थिर-मति राजा की सेवा अवश्य करना चाहिए। अन्य राजाओ के समान इसको भी प्रसन्न कर पारितोषिक लाभ करने के बाद दूसरे की सेवा मे उपस्थित होना किसी भी दशा मे उचित नही है क्योंकि इससे बढ़कर सेवा के योग्य उत्तम पुरुष और कही भी नही मिल सकेगा।

ऐसा दृढ निश्चय करके उसने राजसभा को नवीन समझ लिया और गुणवानो की गोष्ठी मे सम्मिलित होकर मनोरजन करना आरम्भ कर दिया। उसके व्यवहार से राजा ने यह समझ लिया कि यह पुरुष विशेष योग्यता प्रदर्शित करने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है।

राजा अपने मन में सोचता था कि यह केवल गुणवान् ही नही है, अपितु अत्यन्त उच्च-हृदय वाला पुरुष है। इसकी गभीरता से इसकी उदारता और इसकी सत्कार-योग्यता भली प्रकार विदित होने लगी है। ऐसा सोचकर राजा ने भी उसकी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता की परीक्षा करने के विचार से योग्य सत्कार नहीं किया। राजा के इस व्यवहार से मातृगुप्त ने राजा की सत्यप्रियता को पहिचान कर स्नेहपूर्वक सेवा करना आरम्भ किया। क्रमशः बढते हुए मातृगुप्त के सेवाभ्यास से राजा को थोडा भी उद्वेग नही हुआ।

वह मातृगुप्त शरत्काल की रात्रि के समान राजा के समीप अति विशेष समय तक तथा

अतिशय अल्प समय तक नही रहता था, इसीलिए मध्यम स्थिति से उसने राजा को प्रसन्न कर लिया था। वह अन्तःपुर के सेवकों की कुचेष्ठाओं से, द्वारपालो की चचलता से पूर्ण विचित्र व्यवहारो से तथा धूर्तों की मिथ्या प्रशसा आदि से और अन्य प्रकार के आश्चर्यपूर्ण दृश्यो से अल्पमात्र भी विचलित नही होता था। राजा के प्रसन्नतायुक्त भाषण को सुनकर भी वह छाया-मध्यस्थ ग्रह के समान स्थिर रहता था और राजा की अवज्ञा से भी क्षुद्र पुरुष के समान क्रुद्ध नही होता था। समय के महत्व को जानने वाले उस कवि ने राज-सेविकाओ की ओर देखना, राजा के द्वेषियो के साथ बैठना और राजा के सामने निम्न श्रेणी के लोगो से बातें करना, आदि कार्य कभी नही किये।

राजा की अनुपस्थिति मे राज-सेवको के हृदय मे छिपे हुए अभिप्राय को जानने की अभिलाषा से उनके सम्मुख राजा की निन्दा करने वाले चुगलखोरो ने मातृगुप्त के मुख से राजा की निन्दा कभी भी नही सुनी। "राजसेवा मे तत्पर होकर अपने शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है" इस प्रकार विपरीत उपदेश देने वाले धूर्तों के कथन से वह मातृगुप्त अपनी सेवा-तत्परता मे कदापि न्यूनता नही आने देता था। प्रसगवश उसने पर-गुण-प्रशंसा तथा दुराग्रह-त्याग और आत्म-गुण-प्रकाशन आदि सद्‌गुणो से राज-सभा के समस्त सभासदो को प्रसन्न कर रखा था। इस प्रकार निरालस्य होकर उस राजा की सेवा करते हुए उसने छः ऋतु अर्थात् एक वर्ष बिता दिया।

किसी समय बाहर जाते समय राजा ने अत्यन्त दुर्बल तथा मलिनवस्त्र और मलिनदेह मातृगुप्त को देखकर अपने मन मे सोचा "इस परदेशी, गुणवान्, शरणहीन तथा अपने बन्धु-बान्धवो से बिछुडे हुए बेचारे मातृगुप्त की अग्नि परीक्षा करते हुए मैंने इसे अधिक कष्ट दिया है। अपने ऐश्वर्य के मद से अन्धे होकर मैंने 'यह कहाँ रहता है ? क्या खाता है ? और क्या पहिनता है ?' इस विषय पर कुछ भी विचार नही किया। शीत, वात एव आतप से सूखते और कांपते तथा मलिन होते हुए इस पुरुष-रूपी वृक्ष को वसन्त ऋतु के समान मैंने आज तक भी प्रफुल्लित कर सुशोभित नही किया। इस निर्धन को रुग्णावस्था मे औषधि, थकावट के समय विनोद आदि जीवनोपयोगी वस्तुओ का लाभ कहाँ से और किस प्रकार हो सकता है ? मैंने उन्मत्त होकर जिस प्रकार इसकी परीक्षा की है और इसने भी आवश्यकता से अधिक मेरी सेवा की है किन्तु अब मेरी समझ मे यह नही आ रहा है कि इस उपलक्ष्य मे इसे कौन-सा चिन्तामणि-रत्न अथवा अमृत पाने की आशा ने इसको मेरे यहाँ इस प्रकार बांध रखा है ? और मैं भी यह निश्चय नही कर पा रहा हूँ कि इसकी वास्तविक योग्यता और दृढ सेवा-परायणता का प्रत्युपकार कैसे कर सकूँगा।" इस प्रकार सोचते हुए राजा विक्रमादित्य की दृष्टि मे अपने उस सेवक के लिए अपनी प्रसन्नता के योग्य कोई भी सत्कार दृष्टिगोचर नही हुआ।

कुछ समय के बाद ओस के चचल बिन्दुओ से युक्त शीतलतम पवन के स्पर्श से शरीर की त्वचा को रूखा करने वाला शिशिर ऋतु का समय आ गया। तीव्रतर शीत से जडीभूत समस्त दिशाएँ रात्रि के सघन अन्धकार-रूपी काले वस्त्र से अपनी देह को आच्छादित करती सी सुशोभित होने लगी। भगवान सूर्य भी शीत के भय से भीत होकर सागर मे रहने वाले वडवानल का आश्रय प्राप्त करने की अभिलाषा से शीघ्र ही समुद्र मे प्रवेश करेंगे, इस समाचार की सूचना देते हुए से दिन भी क्रमशः छोटे होने लगे।

इस प्रकार के प्रबलतर शीतकाल मे जलते हुए मजुलतम दीपको के मनोहर प्रकाश से

समुज्ज्वल और जलती हुई अँगीठी से युक्त राजभवन के शयनागार में सुखपूर्वक सोया हुआ राजा विक्रमादित्य सहसा आधी रात के समय जाग उठा। उस समय राजा ने शयनागार के भीतर प्रवेश करते हुए हेमन्त के शीतल पवन के झकोरों से दीपकों की शिखाओं को काँपते हुए देखा। उनको भली भाँति प्रज्वलित करने के लिए राजा ने "द्वारपाल कौन है ?" इन शब्दों से द्वारपाल को पुकारा। उस समय समस्त द्वारपाल निद्रा के वशीभूत हो चुके थे। केवल मातृगुप्त जाग रहा था। राजा की पुकार को सुनकर उसने कहा—"महाराज! मैं आपका सेवक मातृगुप्त हूँ।" तब राजा ने उसको भीतर आने के लिए कहा और वह राजा के आदेशानुसार उस मनोहर शयनागार में जाकर खड़ा हो गया। फिर समस्त दीपकों को उत्तम रीति से प्रज्व-लित करने की आज्ञा पाकर तदनुसार समस्त कार्य सन्तोषजनक रीति से कर दिया। इसके बाद जब वह उस शयनागार से बाहर आने लगा तब राजा ने उससे कुछ देर तक वहीं ठहरे रहने के लिए कहा।

एक तो शीत के कारण मातृगुप्त पहिले से ही काँप रहा था, अब राज की आज्ञा सुनकर वह मारे भय के और भी अधिक काँपने लगा तथा "राजा क्या कहेगा ?" इस प्रकार सोचता हुआ अपने स्वामी के समीप ही पृथ्वी पर बैठ गया। फिर राजा ने उससे पूछा कि रात कितनी शेष रह गई है ? नम्रता के साथ उत्तर देते हुए उसने कहा कि महाराज! रात अभी डेढ़ प्रहर शेष रह गई है। तब राजा ने फिर कहा कि तुम्हें निश्चित समय किस प्रकार मालूम हुआ ? क्या तुम्हे रात मे नींद नही आती है ?

राजा के इन प्रश्नों को सुनकर मातृगुप्त ने अपने मन में सोचा—"अपनी करुण कथा कहने की यही एक मात्र अच्छा अवसर है। इसे भली-भाँति उपयोग में लाना चाहिए।" बाद में उसने आशा अथवा दीनता से छुटकारा पाने का दृढ़ निश्चय करके उसी समय श्लोक की रचना द्वारा अपनी दरिद्रावस्था को कह सुनाया।

श्लोक का अर्थ था कि माष की फली के समान शीत से पीड़ित, चिन्तामग्न और शान्त अग्नि को शीत के कारण फटे हुए ओठ से फूँकते हुए तथा क्षुधा से सन्तप्त मेरी निद्रा अपमानित प्रेमिका के समान मुझे त्याग कर दूर चली गई है और सत्पात्र को दी हुई पृथ्वी के समान रात्रि अभी तक समाप्त नहीं हो रही है। राजा ने उस कवि के वचन को सुनकर धन्यवाद द्वारा उसके परिश्रम की सराहना की फिर उसे अपने स्थान पर जाने की आज्ञा दे दी।

कवीन्द्र के जाने पर राजा, अपने मन में विचार करते हुए कहने लगा—मुझे धिक्कार है जो कि इस खिन्न-चित्त विद्वान के मुख से ऐसे दुःखमय वचनों को सुनकर भी मैं अभी तक तटस्थ के समान बैठा हुआ समय नष्ट कर रहा हूँ। साधारण मनुष्य के समान मेरे प्रशंसा-वचनों को भी निरर्थक समझ कर मेरे हृदय की बात को न जानता हुआ यह कवि बाहर दुःखी हो रहा है। चिरकाल से इसकी योग्यता के अनुसार सत्कार को खोजते हुए इतने दिन बीत गये किन्तु इसके योग्य कोई बहुमूल्य पारितोषिक मेरे ध्यान में नहीं आ रहा है। इसने भी कई बार प्रसंगवश मुझसे कहा है कि आजकल काश्मीर देश का कोई राजा नहीं है। यद्यपि अनेक राजा होने योग्य पुरुषों ने काश्मीर देश के शासक बनने की अभिलाषा से कई बार मुझसे प्रार्थना की है तथापि इस समय उन सबों की प्रार्थना को ठुकराकर सर्वोत्तम काश्मीर देश इसी को देना ही उचित होगा। इस प्रकार रात्रि में ही दृढ़तापूर्वक निश्चय करके राजा ने काश्मीर देश के

मन्त्रि-मण्डल के पास अपने गुप्तदूत भेज दिये और उनके द्वारा यह सदेश भेजा कि मातृगुप्त नामक जो पुरुष आपको मेरा आदेश पत्र दिखलावेगा उसे तुरन्त काश्मीर देश का शासक मानकर राज्याभिषेक कर दीजिए। इस सदेश को भेजने के बाद उसी समय राजा ने शासन-पत्र लिखा और अपने को कृतकृत्य मानते हुए उसने शेष रात्रि आनद से व्यतीत कर दी।

उधर वह बेचारा मातृगुप्त भी राजा के साथ की गई बातो को निष्फल समझकर और निराशा का अवलम्बन कर अपने को भारमुक्त के समान समझने लगा। साथ ही साथ अपने मन मे सोचने भी लगा कि-आज मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर चुका हूँ। अब मेरे हृदय का समस्त सशय दूर हो गया। आज मुझे आशा-रूपी डाइन से मुक्ति मिल गई। अब मैं पूर्ण स्वतत्रता के साथ सुख से विचरण कर सकूँगा। मैंने भी दूसरो की देखा-देखी को ही अपने लिए उचित समझकर और साधारण सेवको के समान भ्रान्त-चित्त होकर इतने दिनो तक इस राजा को सेव्य मान लिया था।

बाहरी मायाविनी आशा की भ्रान्ति! मुझ जैसे व्यक्ति की बुद्धि को भी कैसे विचित्र भ्रम ने घेर रखा है। भ्रमपूर्ण ससार भी है, अतएव इसमे आश्चर्य का कोई विशेष कारण नही है। अनर्गल रूप से प्रलाप करने वाला ससार सम्पूर्ण वस्तुओ को विपरीत रूप से प्रसिद्ध करता ही है इसीलिए केवल वायु को खाकर समय बिताने वाले सर्पों को भोगी कहता है, कल-गुंजन करते हुए मधुकरो को अपने कर्णों से ताडन कर दूर हटाने वाले उन्मत्त हाथी को विस्तृत-कर्ण कहता है और भीतर भयानक अग्नि को धारण करने वाले वृक्ष को शमी कहता है। तो क्या मैंने भी ऐसा ही राजा को समझ रखा है? जो गुण राजा मे नही हैं क्या उनको ही उसमे देखने लगा हूँ। कदापि नही। इस राजा ने अपने कृपा-पात्रो को धन-धान्य से समृद्ध किया है। इसके समीप प्रत्येक मनुष्य जा सकता है। अतएव मेरे सम्बन्ध मे इस कलकहीन त्यागशील राजा का क्या दोष है? मेरा ही अदृष्ट पाप मेरे भाग्योदय का प्रतिबन्धक बन रहा है।

रत्नो से चमकती हुई तरगो को इधर-उधर सचालित करने वाला समुद्र रत्नाकर कहलाता है किन्तु यदि विपरीत पवन के वेग से ग्राहक रत्नो को न ले सकते हो, तो इसमे उनके भाग्य का ही दोष है क्योकि याचित वस्तु के लाभ मे दाता की अपेक्षा याचक का भाग्य ही अधिक उपयोगी होता है।

उत्तम फल के चाहने वालो के लिए राजा के सेवक ही अच्छे होते हैं राजा लोग नही, क्योकि वे बडी कठिनाई से फलदायक होते हैं। अपने इस विचार के समर्थन मे मुझे यही कहना पडता है कि शकर के चरणो मे रहने वालो को भस्म के अतिरिक्त कुछ भी नही प्राप्त होता और नन्दिकेश्वर के भक्तो को सर्वदा सुवर्ण मिला करता है। भली भाँति विचार करने पर भी मुझ मे ऐसा कोई भी दोष नही दिखाई पड रहा है जिससे इतनी सेवा करने पर भी यह उदाराशय राजा सन्तुष्ट न हुआ अथवा इन गतानुगतिक राजाओ से वह पुरुष आदर नही पा सकता जो कि दूसरे स्थानो से सत्कार प्राप्त कर न आया हो।

समुद्र अपने अन्तर्गत जल का आदर नही करता किन्तु जब मेघ उस जल को पी जाते हैं और फिर बिन्दुओ के रूप मे उसे गिराने लगते हैं तब वही समुद्र उन बिन्दुओ को उज्ज्वल मोतियो के रूप मे परिणत कर देता है। इसी प्रकार साधारण मनुष्य भी यदि अन्यत्र सामान प्राप्त कर लेता है तो राजा लोग भी उसका सम्मान करने लगते है। इस प्रकार सोचते हुए उस

एकत्रित होने से कोलाहल के कारण अल्प समय मे ही क्षुब्ध महासागर के समान प्रतीत होने लगा।

फिर समस्त मन्त्रियो ने मिलकर मातृगुप्त को पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठाया और यथाविधि उसका राज्याभिषेक किया। उस समय उसके विशाल वक्षस्थल से बहता हुआ अभिषेक जल विन्ध्याचल के तट से सशब्द बहते हुए नर्मदा नदी के प्रवाह के समान शोभायमान हो रहा था। स्नान के बाद उसके भव्य शरीर पर दिव्य गन्ध का अनुलेपन किया गया और बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण धारण कराये गये। इस प्रकार पूर्ण रूप से अलकृत होकर जिस समय वह राजसिंहासन पर बैठा उस समय उसे अपना राजा मानकर प्रजा ने उससे प्रार्थना करते हुए कहा—"हम सबो ने इस काश्मीर देश की रक्षा के लिए महाराज विक्रमादित्य से प्रार्थना की थी, तदनुसार उन्होने आपको अपने समान मानकर इस कार्य के लिए नियुक्त किया है अतएव आप इस देश पर शासन कीजिए। प्रभो! इस काश्मीर देश के शासक बनने से प्रतिक्षण भिन्न-भिन्न देशो पर अधिकार प्राप्त करने का अवसर मिला करता है अतएव आप इस राज्य को किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त मत समझिए। अपने पूर्वजन्म के कर्मो के अनुसार जन्म लेने वाले प्राणी के माता-पिता जिस प्रकार केवल जन्म के निमित्त-मात्र होते हैं उसी प्रकार अपने पुण्य कर्म के प्रभाव से राज्य प्राप्त करने वाले राजा के लिए भी दूसरे लोग केवल प्रवर्तक होते हैं। ऐसी दशा में 'मैं आपका हूँ' इस प्रकार के शब्दो का उच्चारण कर आप स्वय को तथा राज्य और हम सबो को लघुता का बोध कराने का प्रयत्न कदापि न कीजिये।"

इस प्रकार उन समस्त मन्त्रियो के सत्यता और विद्वत्ता पूर्ण वचनो को सुन लेने के बाद भी अपने स्वामी महाराज विक्रमादित्य के द्वारा किये गये सत्कार को स्मरण करता हुआ वह मातृगुप्त मुस्कराने लगा। नवीन राज्य की प्राप्ति के महोत्सव के अनुरूप दान आदि सत्कर्मो से उस मगलमय दिवस को सफल करता हुआ वह उस दिन वही रहा। दूसरे दिन नगर मे प्रवेश करने के लिए मन्त्रियो की प्रार्थना को सुनकर उसके पूर्व ही अपने राज्य-दाता महाराज विक्रमादित्य के समीप उसने अद्भुत् उपायन अर्थात् भेंटसहित दूत भेजा।

देश की उन्नति के अनुसार श्रेष्ठ उपहारो को महाराज विक्रमादित्य की सेवा मे भेजते समय अपने को स्पर्धा करता हुआ समझ कर वह परम अपराधी के समान लज्जित होने लगा। फिर उसने दूसरे सेवको को बुलवाकर अपने स्वामी की सेवा का स्मरण और कृतज्ञता-प्रकाशन के लिए अल्पमूल्य होने पर भी लाभप्रद उपायन उसने महाराज विक्रमादित्य के समीप भेजे और उनके असाधारण गुणो का स्मरण कर आँसू बहाते हुए मातृगुप्त ने स्वय एक श्लोक लिखकर भेज दिया

"हे राजन्! आप आकार से तथा गर्वयुक्त भाषण से दान की इच्छा प्रकट किये बिना ही दे दिया करते हैं। शब्दरहित मेघ के द्वारा की गई वृष्टि के समान आप की प्रसन्नता फल से ही जानी जाती है।"

इसके बाद उसने क्षितिज पर्यन्त फैलने वाले सैनिको के साथ बडे समारोह से नगर मे प्रवेश किया और परम्परा से प्राप्त किये गये राज्य के समान बडी चतुरता से राज्य का पालन करना आरम्भ कर दिया। उसने उदारता तथा शूरता मे किसी भी दृष्टिकोण से कृपणता नहीं दिखलाई। यद्यपि वह उदारता के कारण दान-दक्षिणा देने की इच्छा से यज्ञ करने का विचार

करता था, तथापि पशु-हिंसा को स्मरण करते ही करुणा से द्रवीभूत हो गया और यज्ञ के विचार को छोड दिया। उससे सम्पूर्ण राज्य मे हिंसा बन्द करा दी और यज्ञ मे पशु-वध के स्थान पर करम्भक नामक सुवर्ण-मुद्रा का उपयोग किया।

जिस समय राजा मातृगुप्त मुक्त हस्त से यज्ञ मे दक्षिणा के रूप मे करम्भक नामक सुवर्ण-मुद्रा बाँटने लगता था उस समय वहाँ से कोई भी याचक सन्तुष्ट हुए बिना नही जाता था। इसीलिए सर्वगुण-सम्पन्न और दरिद्रता के कष्टो का अनुभवी तथा दानवीर वह मातृगुप्त याचको के लिए महाराज विक्रमादित्य की अपेक्षा भी अधिक सुखदायक तथा लोकप्रिय था।

उस राजा की अत्यन्त प्रशसनीय विचारशीलता के कारण अधिक हृदयग्राही ऐश्वर्य विद्वानो के लिए आनन्दप्रद होते थे। एक समय मेठ नामक कवि स्वरचित 'हयग्रीव-वध' नामक नवीन काव्य उसके सामने पढने लगा। जब तक उसने उस काव्य को आदि से लेकर अन्त तक पढकर समाप्त न किया तब तक राजा मातृगुप्त ने उसके विषय मे एक अक्षर भी नही कहा। जब वह उस पुस्तक को समेट कर बाँधने लगा तब राजा ने टपकता हुआ काव्यामृत रूपी रस पृथ्वी पर गिरने न पाए, ऐसी अभिलाषा से उस पुस्तक के नीचे सुवर्ण-पात्र रखवा दिया। राजा के द्वारा किये गये ऐसे आदर से सन्तुष्ट कवि को उस रचना के उपलक्ष मिला हुआ बहुमूल्य परितोषिक व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगा।

उस राजा मातृगुप्त ने अपने नाम के अनुसार मातृगुप्त स्वामी का मदिर बनवाया और उसमे मधुसूदन भगवान् की स्थापना की। उसके पूजन के लिए कुछ ग्राम भी दिये जिन्हे कुछ समय के बाद माम ने अपने मदिर के लिए ले लिये। इस प्रकार राज्य करते हुए उसको चार वर्ष नौ मास तथा एक दिन व्यतीत हो गया। उसके शासन-कार्य से सभी प्रसन्न थे। दान के कार्यों से उसका नाम प्रसिद्ध होने लगा था। विद्वान् उसकी विद्वत्ता के सामने अपना मस्तक झुकाना अपने लिए बडे गौरव का विषय समझते थे। साराश यह कि राजा मातृगुप्त ने व्यवहार और उदारता के कार्य से काश्मीर की जनता परम प्रसन्न थी।

४ राजा प्रवरसेन की कथा

उसी समय काश्मीर के प्राचीन राजवश मे उत्पन्न हुआ प्रवरसेन नामक राजपुत्र पितृ-मरण से उद्विग्न होकर अपनी माता अजना के साथ पितरो के उद्धार के लिए तीर्थयात्रा कर रहा था। तीर्थयात्रा करते हुए उसने अपने देश मे मातृगुप्त के शासक होने का समाचार सुना। उस समाचार को सुनते ही उसका पितृ-मरण से उत्पन्न हुआ प्रबल शोक तात्कालिक तीक्ष्णक्रोध के वेग से उसी प्रकार मिट गया जिस प्रकार सूर्य की तीक्ष्ण धूप से रात्रि मे गिरे हुए ओस के जल-बिन्दु सूख जाते हैं।

उसी समय श्रीपर्वत पर रहने वाला पाशुपत-व्रतधारी अश्वपाद नामक सिद्ध आगन्तुक प्रवरसेन को भोजन के लिए कन्द-मूल अर्पण कर कहने लगा—"हे राजपुत्र। मैं पूर्वजन्म मे सिद्ध था और तुम मेरे शिष्य थे। सिद्धि प्राप्त कर लेने के बाद मैंने तुमसे तुम्हारी अभिलाषा पूछी थी और तब तुम्हे राज्य पाने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित जानकर मैंने तुम्हारी अभिलाषा को पूर्ण करने का वचन दिया था। तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करने के लिए मुझे प्रयत्नशील देखकर भगवान् शकर ने मुझे दर्शन देकर कहा—"यह तेरा शिष्य मेरा गण है और मैं स्वय आगामी जन्म

मातृगुप्त के हृदय मे उस सेव्य भूपति के लिए अनादर के भाव उत्पन्न होने लगे क्योंकि प्राय देखा गया है कि बुद्धिमान पुरुष भी हताश होकर भ्रान्ति के चंगुल मे फँस जाते हैं।

इधर सवेरा होते ही राजा सभाभवन मे गया और मातृगुप्त को बुला लाने के लिए उसने द्वारपाल को आज्ञा दी। आज्ञानुसार द्वारपाल मातृगुप्त के पास गया। फिर अनेक द्वारपालो के साथ उसने राजसभा मे प्रवेश किया और बडी निराशा के साथ राजा के समीप जाकर खडा हो गया।

जब उसने राजा का यथोचित अभिवादन कर लिया तब राजा के सकेत को पाकर अधिकारी ने उसे आज्ञापत्र दे दिया। फिर राजा ने स्वय उससे कहा—"भाई! क्या तुम काश्मीर देश को जानते हो? मेरा विश्वास है कि तुम अवश्य जानते हो। अतएव वहाँ जाकर वहाँ के अधिकारियो को यह मेरा आज्ञापत्र दे देना। इसको रास्ते में खोलकर पढने वाले को मेरी शपथ है। तुम्हे मेरी शपथ को कदापि नहीं भूलना चाहिए। मातृगुप्त की समझ मे कुछ भी न आया। वह राजा के मनोगत अभिप्राय का लेश-मात्र भी न समझ सका। काश्मीर जाने के आदेश से उसे बड़ा क्लेश होने लगा। अतएव वह मातृगुप्त उस राजाज्ञा को रत्न-किरण शोभा न समझ कर अनल की ज्वाला ही समझने लगा। फिर भी उसने राजा के आदेश को शिरोधार्य कर काश्मीर देश के मार्ग को ग्रहण कर लिया। उसके वहाँ से चले जाने पर राजा भी पहिले के ही समान अभिमान-शून्य होकर अपने आप्तजनो के साथ बातें करने लगा।

राजा के यहाँ सभी लोग यह भली भाँति जानते थे कि मातृगुप्त अब और अधिक क्लेश सहने के योग्य नही है इसीलिए जब वह दुर्बल मातृगुप्त पाथेय से भी रहित होकर राजा के आदेशानुसार काश्मीर देश के मार्ग पर चला गया तब सभी लोग राजा की निन्दा करने लगे और परस्पर कहने लगे कि बडे आश्चर्य की बात है कि यह राजा कभी कभी बिना सोचे-समझे काम कर डालता है क्योंकि यह आदर करने योग्य व्यक्तियो को भी साधारण सेवको के करने योग्य कार्य मे नियुक्त कर देता है। इस ज्ञान-शून्य राजा ने झूठी आशा से क्लेशो को सहकर रात-दिन सेवा करते हुए इस विद्वान् मातृगुप्त को इस प्रकार के क्लेश सहने योग्य ही समझा है। कोई भी सेवक जिस उपाय को राज-परिचय का साधन समझ कर राजा की सेवा करने लगता है, सेवको के तारतम्य से सर्वथा अनुभवहीन अज्ञानी राजा उस सेवक को उसी कार्य के योग्य समझ लेता है।

गरुड़ के भय से मुक्त होने के लिए अपना शरीर शय्या के रूप मे विष्णु को अर्पण कर शेषनाग ने अपने को दु खी बना लिया क्योंकि विष्णु ने शेषनाग की देह को बोझ धारण करने मे समर्थ जानकर उस पर सम्पूर्ण पृथ्वी का ही बोझ सर्वदा के लिए रख दिया। वैसे ही इस मातृगुप्त ने राजा के अन्य सेवको की अपेक्षा अपने को अधिक गुणवान् समझ कर इसका आश्रय किसी विशेष आशा से ग्रहण किया। ऐसे गुणी पुरुष का ऐसा सम्मान करने वाले इस राजा से बढकर ससार मे दूसरा गुणग्राही और कौन होगा?

चमकीले पदार्थों से प्रेम करने वाला यह मेघ सारहीन इन्द्र धनुष को देख कर ही आनन्दित हो जाता है, ऐसी दशा मे अनेक रगो को धारण किये हुए मेरे पखो को देखकर अवश्य सन्तुष्ट होगा और अन्य प्रिय कार्यों से मुझे प्रसन्न करेगा। इस प्रकार अपने मन मे विचार कर मयूर अपने रंगदार पखो को फैलाकर मेघ के सामने नृत्य करने लगता है किन्तु एक या दो

बूंद-पानी गिराकर ही वह मेघ उसे निराश कर देता है। अतएव उस मेघ से अधिक हृदय-शून्य दूसरा और कौन होगा ?

कुछ भी हो, दीनता के समस्त भावो को त्याग कर बडी प्रसन्नता के साथ काश्मीर को जाने वाले मार्ग के पथिक मातृगुप्त के मन मे भावी भाग्योदय के माहात्म्य से किसी भी प्रकार के संकल्प-विकल्प नही उत्पन्न हो रहे थे। मार्ग मे एक से बढकर एक शुभ शकुन उसे दीखते गये और वह उन्ही के भरोसे पर विश्राम करने के लिए भी कही न रुका तथा निरन्तर चलता ही रहा। उसने मार्ग मे सर्प के फण पर बैठे हुए खजन पक्षी को देखा और जहाज पर बैठकर समुद्र पार जाने का स्वप्न भी देखा। इस शुभ शकुनो को देखकर शास्त्र के जानने वाले मातृगुप्त ने सोचा कि यह राजाज्ञा मेरे लिए अवश्य लाभदायक है। यदि मुझे काश्मीर मे थोडा भी लाभ हुआ तो भी उस सर्वोत्तम देश के माहात्म्य से अनेक उत्तम फलो की सम्भावना की जा सकती है।

मार्ग मे जाते हुए मातृगुप्त को चलने मे अधिक कष्ट नही हुआ और आतिथ्य-निपुण सद्‌गृहस्थो के द्वारा प्रत्येक स्थान पर सत्कारपूर्वक उसकी पूजा की गई। इस प्रकार मार्ग को पार करने के बाद ही वायु-वेग से चचल वृक्ष तथा हरित तृणो से सुशोभित मागलिक दधिपूर्ण पात्र के समान सुशोभित हिमालय पर्वत उसे दृष्टिगोचर हुआ।

वहाँ गङ्गा के शीतल जल-कणो से युक्त तथा देवदारु वृक्षो के ससर्ग से सुरभित काश्मीर देश के पवन ने भावी नरेश मातृगुप्त का प्रथम स्वागत किया। वह क्रमावर्त प्रदेश मे पहुँचकर काम्बुक नामक घाटी के द्वार पर गया जिसे आजकल शूरपुर कहा जाता है।

३ राजा मातृगुप्त की कथा

उन दिनो किसी आवश्यक कार्य से काश्मीर का अमात्य-मण्डल वहाँ आया था और अनेक विदेशी लोग भी वहाँ एकत्रित हुए थे। यह सब वृत्तान्त मातृगुप्त ने पहिले से ही सुन लिया था। इसलिए उसने अपने मैले कपडे उतार डाले और धुले हुए स्वच्छ कपडे पहिन लिये। फिर, महाराज विक्रमादित्य का आज्ञापत्र उनको देने के लिए वह उनके समीप गया।

जब वह मार्ग मे जा रहा था तब उसे जो शुभ शकुन हुए उनसे उसका भावी भाग्योदय स्पष्ट सूचित हो रहा था, इसी बात को देखने के कौतुक से कई पथिक रास्ते से ही उसके साथ चले आये थे। मातृगुप्त के वहाँ पहुँचते ही द्वारपालो ने महाराज विक्रमादित्य के दूत के आने की सूचना मत्रियो को दी। "आइए! पधारिए!" इस प्रकार के शब्दो द्वारा सत्कारपूर्वक बुलवाये जाने पर वह बेरोक-टोक उनके पास चला गया। मन्त्रियो ने अपनी योग्यता के अनुसार उसका स्वागत किया और उसे उच्चतम आसन पर बैठाया। यथोचित सत्कार करने के बाद मन्त्रियो ने महाराज विक्रमादित्य के आज्ञापत्र के विषय मे उससे पूछा। उसने बडी लज्जा के साथ वह पत्र उनको दिया।

उन सबो ने बडे आदर के साथ उस पत्र को लिया और एकान्त मे ले जाकर उसको पढा। फिर नम्रतापूर्वक मातृगुप्त से कहा "क्या आपका ही शुभ नाम मातृगुप्त है?" प्रसन्नता-पूर्वक मातृगुप्त ने कहा "हाँ मेरा ही नाम मातृगुप्त है।" ऐसा उत्तर सुनते ही तुरन्त "यहाँ कार्य करने वाले कितने है ?" इन शब्दो की ध्वनि से वह स्थान गूंज उठा और उसी समय वहाँ राज्याभिषेक की सामग्री एकत्रित होने लगी। उसके बाद वह प्रदेश असख्य लोगो के

मे इसकी अभिलाषा को पूर्ण करूँगा।' अतएव हे प्रवरसेन ! तुम्हारी मनोकामना को भगवान् शंकर स्वयं पूर्ण करेंगे।' ऐसा कहकर वह अश्वपाद सिद्ध वहाँ से अन्तर्धान हो गया ।

साम्राज्य-प्राप्ति की अभिलाषा से वर्ष भर तपस्या करने के बाद अश्वपाद की सूचना से भगवान् शंकर ने उस राजकुमार प्रवरसेन को दर्शन दिया। सन्यासी के रूप मे आये हुए तथा वांछित फल देने को तत्पर शंकर से उसने जगद्विजय से सुशोभित साम्राज्य की याचना की। उसकी याचना को सुनकर शंकर ने उसकी परीक्षा करने की इच्छा से कहा—"हे राजकुमार ! अविनाशी मोक्ष के सुख को छोड कर तू इस क्षणभंगुर राज्य-सुख की क्यो इच्छा करता है ?"

यह सुनकर राजकुमार प्रवरसेन कुछ रुष्ट-सा हो गया और कहने लगा "महात्मन् ! मैने आपको यतिवेषधारी शंकर समझ कर अपनी इच्छा प्रकट की थी किन्तु आपकी बातो से विदित हो रहा है कि आप वास्तविक शंकर नही हैं। जो महापुरुष होते हैं वे थोडा माँगने पर भी अधिक दे देते हैं। जल की याचना करने पर प्यासे उपमन्यु को भगवान् शंकर ने क्षीरसमुद्र दे दिया था। मोक्ष को प्राप्त करने की लालसा इस समय मेरे चित्त मे किंचिन्मात्र भी नही है। केवल गत वैभव के लाभ से ही मेरी मर्मव्यथाकारक अभिभूति अथवा पराभव दूर होगा। इस बात को क्या आप नही जान सके हैं ?"

राजकुमार प्रवरसेन की इन बातो से सन्तुष्ट होकर जगन्नायक भगवान शंकर ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उसको इच्छानुसार वरदान दिया तथा कहा—"जब तू राज्य-सुखो के जाल मे फँस जायगा तब मेरी आज्ञा से अश्वपाद नामक सिद्ध उचित समय पर तुझे सायुज्य-प्राप्ति के लिए सावधान होने का संकेत कर देगा।" इस प्रकार कहकर भगवान् शंकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। फिर राजकुमार प्रवरसेन ने अपने व्रत को समाप्त कर उसकी पारणा की और अश्वपाद से अनुमति लेकर अपने अभीष्ट प्रदेश को रवाना हो गया।

जब वह अपने देश की सीमा मे पहुँचा तब उसके मन्त्रियो ने उससे काश्मीर का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर वे सब एकमत होकर मातृगुप्त पर आक्रमण करने का विचार करने लगे। उन सबो के विचार को सुनकर और यह समझकर कि वे उस पर अवश्य आक्रमण करने को उद्यत हैं तब राजकुमार प्रवरसेन ने उन सबो को रोककर समझाया और कहा—

"उस उद्दण्ड विक्रमादित्य को पराजित करने की मेरी इच्छा है। मैं इस बेचारे मातृगुप्त को किंचिन्मात्र भी कष्ट देना नही चाहता। क्लेश सहने मे सर्वथा असमर्थ कोमल शत्रुओं को पीस देने मे वीरता का कुछ भी महत्त्व नही है। हाँ, जो उनका विध्वंस करने मे पूर्ण रूप से समर्थ हो, उन सब शत्रुओ को जीतने की इच्छा रखना ही वीरो के लिए शोभा देता है।"

"कमल चन्द्रमा के उदय से द्वेष रखते हैं किन्तु चन्द्रमा उनको कदापि नष्ट नही करता-किन्तु उनका नाश करने वाले हाथियो को भग्नदन्त करना ही उचित समझता है। जो संसार मे अपना विशेष महत्त्व रखते हैं वे हीन शत्रुओ को कष्ट देने की अपेक्षा उनसे अधिक बलिष्ठ और श्रेष्ठ शत्रु को पद-दलित कर संसार को अपनी वास्तविक वीरता का परिचय देते हैं अर्थात् बलशाली के क्रोध का शिकार बलशाली ही होता है।"

इस प्रकार अपने मन्त्रियो को समझाकर उसने सेना एकत्रित की और फिर दिग्विजय करना आरम्भ कर दिया। त्रिगर्त देश को जीतकर आगे बढते हुए प्रवरसेन को विक्रमादित्य का मरण-वृत्तान्त विदित हुआ। उस दिन राजा प्रवरसेन ने शोकपूर्ण उष्ण निश्वास लेते हुए न तो स्नान किया, न भोजन किया और न वह सोया ही। केवल मस्तक झुकाये बैठा ही रहा।

दूसरे दिन काश्मीर के राज्य का त्याग कर जाते हुए मातृगुप्त को अपने समीप के प्रदेश मे ठहरा सुनकर वह शका करने लगा कि कही मेरे पक्ष के लोगो ने इसे कष्ट देकर राज्य से च्युत तो नही कर दिया। ऐसा सोचकर वह थोडे से आप्तजनो के साथ उसके समीप गया। मातृगुप्त ने प्रवरसेन का यथोचित सत्कार किया। फिर सुखपूर्वक बैठे हुए मातृगुप्त से प्रवरसेन ने बडी नम्रता के साथ राज्य के त्याग करने का कारण पूछा।

पहिले तो थोडी देर के लिए मातृगुप्त मौन रहा। फिर दीर्घ निश्वास लेते हुए हँस कर कहा—"राजन्! जिस पुण्यात्मा के प्रताप से मै राजा बना था, वह आज इस ससार को त्याग कर चला गया है। जब तक भगवान् सूर्य की किरणावली दिशाओ को प्रकाशित करती है तभी तक सूर्यकान्त-मणि चमकता है, अन्यथा क्या वह पाषाण नही हो जाता?"

मातृगुप्त की बातो को सुन कर प्रवरसेन ने कहा—"राजन्! आपको किसने कष्ट पहुँचाया है? आप क्यो इतने उद्विग्न होकर उस विक्रमादित्य को स्मरण कर रहे है?"

मातृगुप्त ने कुछ क्रुद्ध होकर हँसते हुए कहा—"राजन्! मुझे कोई भी विशेष शक्तिशाली सता नही सकता किन्तु उस विशेष गुणज्ञ राजा ने मेरा जो विशेष रूप से अधिक सम्मान किया है, वह भस्म मे घृत का हवन नही किया है अथवा ऊसर भूमि मे बीज नही बोया है। अचेतन पदार्थ भी उपकार करने वालो के उपकारो को स्मरण रखकर तथा उनको नष्ट हुए देख कर स्वयं भी उनका अनुसरण करते हैं। सूर्य के अस्त होने पर सूर्यकान्त-मणि शान्ति धारण कर लेता है और चन्द्रमा के अस्त होते ही चन्द्रकान्त-मणि भी सूख जाती है।

अब मैं मोक्षपुरी श्रीकाशी मे जाकर ब्राह्मण-धर्म के अनुसार सन्यास ग्रहण करूँगा और शान्तिपूर्वक अपनी शेष आयु को बिता दूंगा। इस संसार के रत्न-दीपक के समान उस राजा विक्रमादित्य के अभाव से सर्वत्र अधकारपूर्ण इस पृथ्वी को देखते ही मेरा हृदय भयभीत होने लगता है। ऐसी दशा मे राज्य के सुख की बात अपना कुछ भी महत्व नही रख सकती।

इस प्रकार उस महापुरुष मातृगुप्त के त्यागयुक्त वचनो को सुनकर परम बुद्धिमान प्रवरसेन आश्चर्य करता हुआ कहने लगा—"राजन्! आपके समान निरपेक्ष, धर्मात्मा एव कृतज्ञ पुरुषो के जन्म से सुशोभित यह वसुन्धरा यथार्थ रूप से ही रत्न-प्रसविनी है। आपके समान गुणवान् पुरुष की परीक्षा करने वाले विक्रमादित्य के अतिरिक्त इस जड ससार मे और किसकी गुणग्राहकता इतनी प्रशसनीय हो सकती है? यदि इस पृथ्वी पर आपके समान कृतज्ञता के मार्ग-प्रदर्शक उत्पन्न न होते तो न जाने कब से कृतज्ञता-प्रदर्शन का मार्ग बन्द हो गया होता। आजकल यदि कोई दयावान् पुरुष किसी साधारण स्थिति के मनुष्य पर उपकार करता है तो उस उपकार किये गए पुरुष को यह अभिमान हो जाता है कि यह मेरे पूर्वजन्म के पुण्य कर्मों का ही फल है। यदि ऐसा न होता तो इसने कुछ समय पूर्व मुझ पर ऐसा उपकार क्यो नही किया अथवा इस उपकार मे उपकार करने वाले का कुछ न कुछ स्वार्थ अवश्य होगा, अन्यथा यह अपने दीन बान्धवो पर उपकार क्यो नही करता अथवा चूंकि इसकी मैं समस्त गुप्त बातो को भली भाँति जानता हूँ इसीलिए यह मुझ पर उपकार कर रहा है, नही तो इस लोभी से ऐसी आशा कहाँ हो सकती है। अत्युत्तम गुणवानो पर पुण्यात्मा पुरुषो द्वारा किये गये उपकार के कार्य उर्वर भूमि मे लगाये गये लतामूल के समान अल्प होने पर भी शीघ्र ही पल्लवित और पुष्पित होकर शतशाखामय हो जाते हैं। इसलिए हे राजन्! आप पूर्ण रूप से परीक्षा किये गये

रत्न के समान श्रेष्ठ तथा धन्य हैं और प्रत्येक दृष्टिकोण से माननीय हैं। मुझ पर कृपा करके आप इस राज्य का त्याग मत कीजिए। मेरी गुणिजन-पक्षपातिता इस ससार मे पूर्णतया प्रकट होने दीजिए। प्रथम विक्रम द्वारा समर्पित और वाद मे मेरे द्वारा पुन समर्पण किये गये इस राज्य को अवश्य सनाथ कीजिए।"

इस प्रकार प्रवरसेन के निष्कपट तथा उदार वचनो को सुनकर मातृगुप्त ने मुस्कराते हुए कहा—"जिन अक्षरो को कहे विना मनुष्य अपने हृदय के भावो को व्यक्त कर ही नही सकता, उनको कहने मे विवश होकर मर्यादा का उल्लघन करना पड रहा है। अतएव मुझे अब आप से कुछ कटु शब्द कहने पड रहे हैं। सभ्यता के लक्षण अव्याज माधुर्य का भी तिरस्कार करना पड़ रहा है।"

"प्रत्येक मनुष्य अपनी अवनत अवस्था की लघु स्थिति का स्मरण जिस प्रकार उस अवस्था मे रखता है, उसी प्रकार उन्नत अवस्था मे भी गौरवयुक्त स्थिति का स्मरण तथा ज्ञान उसे रहता ही है। आपको तथा मुझको अपनी-अपनी पूर्वस्थिति का स्मरण इस समय भी ज्यो का त्यो वना हुआ है, इसीलिए मोहित होकर हम दोनो अपने अभिप्राय को परस्पर समझ नही सकते। राजा होकर मेरे जैसा पुरुष दूसरे की दी हुई सम्पदा को किस प्रकार स्वीकार कर सकता है और एक क्षण मे मनुष्यता को किस प्रकार भुला सकता है। मेरे समान कृतज्ञ मनुष्य उस राजा विक्रमादित्य की उदारता की अलौकिक महिमा को भोग-तृष्णा के वशीभूत होकर साधारण श्रेणी मे किस प्रकार रख सकता है?"

"राजन्! यदि मेरे हृदय मे भोग-तृष्णा ही होती, तो मैं अपने स्वाभिमान को पूर्ण रूप से सुरक्षित रख सुखो का भोग कर सकता था। मुझे कोई नही रोक सकता था। राजा विक्रमादित्य ने मुझ पर उपकार किया है, यदि मैं उसका प्रत्युपकार नही करूँगा तो वह मुझ मे जीर्ण हो जायगा। मुझे उसका अनुसरण कर ससार के सामने उसकी सत्पात्र-परीक्षा की प्रौढता को प्रसिद्ध करना चाहिए। अपने इतने कर्त्तव्य को समाप्त कर तथा समस्त सासारिक विषयो के सुखो को त्याग कर जिसकी अव कीर्त्ति मात्र ही अवशेष रह गई है उस राजा विक्रमादित्य के अनुसरण द्वारा मैने सत्य-सघ होने का निश्चय किया है।"

मातृगुप्त के इन वचनो को सुनकर प्रवरसेन ने कहा—"आपके जीवन पर्यन्त मैं काश्मीर राज्य की सम्पत्ति को नही ग्रहण करूँगा।" इसके वाद उस धर्मात्मा मातृगुप्त ने सब त्याग कर काशी मे सन्यास-दीक्षा ग्रहण कर गेरुए वस्त्र धारण कर लिये। राजा प्रवरसेन भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार काश्मीर की वार्षिक आय को प्रति वर्ष मातृगुप्त के पास भेजता था।

भिक्षा द्वारा अपना जीवन व्यतीत करते हुए मातृगुप्त ने भी अनायास प्राप्त सम्पत्ति का याचको को दान देकर सदुपयोग करते हुए दस वर्ष व्यतीत किये। परस्पर यथोचित स्वाभिमान रखने वाले तथा उदार हृदय विक्रमादित्य, मातृगुप्त और प्रवरसेन इन तीनो राजाओ की कथा त्रिपथगा गगा के समान परम पवित्र है।

राजा प्रवरसेन ने भी अपने प्रखर प्रताप से राजाओ को पराजित कर दशो दिशाओ मे अपने सुयश का विस्तार किया। समुद्र का शोषण करने वाले तथा विन्ध्याचल को लाँघने वाले महर्षि अगस्त्य के प्रताप से जिस प्रकार जल निर्मल होता है, उसी प्रकार राजा प्रवरसेन के प्रचण्ड प्रताप से समस्त भुवन प्रसन्न हो गये थे।

उसकी सेना ने समुद्रतट वाले प्रान्तों के तमाल, ताल आदि वृक्षों के पत्रों को गिरा दिया और उसी के प्रभाव से शत्रुओं की स्त्रियों के ललाट-प्रान्त से तमस्न-तिलक तथा कर्ण-युगलों से ताटक-युग्म गलित हो गये। उसकी सेना के असख्य मदोन्मत्त हाथियों के कपोलों से बहते हुए काले रङ्ग के मदजल से गगा से मिले हुए पूर्व समुद्र को यमुना-सगम की अपूर्व शोभा प्राप्त हुई। उसके दिग्विजयी सैनिकों ने पश्चिम समुद्रतट के सौराष्ट्र देश पर आक्रमण कर वहाँ के राजाओं का समूल नाश कर डाला।

यश मात्र के अभिलाषी तथा रागद्वेष से शून्य राजा प्रवरसेन की दिग्विजय धर्म-विजय थी। उसने शत्रुओं द्वारा राज्य से च्युत किये गये विक्रमादित्य के पुत्र शिलादित्य अथवा प्रतापशील को पूर्ण रूप से सहायता देकर फिर से उज्जयिनी का शासक बना दिया और जो सिंहासन विक्रमादित्य के समय में काश्मीर से उज्जयिनी चला गया था, उसे वह वहाँ से फिर काश्मीर में मँगवा लिया क्योंकि वह सिंहासन उसके पूर्वजों का ही था।

मुम्मुनि नामक एक राजा था। राजा प्रवरसेन ने उसे कई बार पराजित किया, किन्तु वह किसी न किसी बहाने से पराजय को अस्वीकार कर देता। इस प्रकार प्रवरसेन ने उसे सात बार पराजित किया और फिर उसे छोड दिया। जब वह छोड दिया जाता तभी वह उद्धत हो जाता। जब आठवीं बार भी वह किसी न किसी बहाने से उद्धत होने लगा तब राजा प्रवरसेन ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इस पशु को बाँध कर मार डालो।

जब वह बाँधकर लाया गया तब "हे वीर! पशु होने के कारण मैं वध के योग्य नहीं हूँ" ऐसा कह कर राजसभा में मयूर के समान नृत्य करने लगा। मयूर के समान केका (मयूर का शब्द) तथा नृत्य करते देख कर राजा प्रवरसेन ने उसे अभय दान किया और पर्याप्त धन भी दिया। साथ ही साथ नर के पहिनने योग्य वस्त्र तथा नृत्य और गायनोपयोगी अनेक वस्तुएँ भी दीं।

इस प्रकार ससार को जीत कर अपने पितामह के नगर में राज्य करते हुए प्रवरसेन के मन में अपने नाम के अनुसार नगर बसाने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। उसके लिए उपयुक्त उत्तम स्थान तथा शुभ मुहूर्त को खोजने की इच्छा से सूर्य के समान तेजस्वी वह राजा वीरचर्या के लिए निकला। उस समय जाते हुए राजा के किरीट में जडे हुए रत्नों में प्रतिबिम्बित होने वाले तारक-वृन्द रक्षा-सर्षपों की शोभा को धारण कर रहे थे।

भ्रमण करता हुआ वह राजा प्रवरसेन एक नदी के तट पर पहुँचा। वहाँ बहुत-सी चिताएँ धधक रही थीं और उसके प्रकाश में वहाँ के वृक्ष बडे ही भयावने मालूम होते थे। वहीं उसको नदी के उत्तर तट पर भुजाओं को उठाये हुए गरजता हुआ एक भयानक पिशाच दिखाई पड़ा। उस पिशाच के नेत्रों से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही थीं और उन ज्वालाओं से वह राजा उल्का-ज्योति से घिरे हुए कुल-पर्वत के समान प्रतीत हो रहा था।

थोडी ही देर के बाद भयकर गर्जना की प्रतिध्वनि से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रतिध्वनित करता हुआ वह पिशाच हँसकर उस निर्भीक प्रवरसेन से कहने लगा—"राजन्! सत्यशाली राजा शूद्रक और महाराज विक्रमादित्य तथा आपको छोडकर किसी के भी हृदय में इतना दृढ धैर्य नहीं देखा गया। राजन्! आप इस नदी के सेतु को लाँघ कर इस पार आ जाइए। मैं आपके मनोरथ को पूर्ण कर दूँगा।" ऐसा कहकर उस पिशाच ने अपना पैर नदी के ऊपर फैला

दिया। उस सेतु से नदी का जल दो भागो मे विभक्त हो गया। उस वीर प्रवरसेन ने पिशाच के पैर से बनाये गये सेतु को देखकर म्यान से छुरी निकाल ली। उस छुरिका से पिशाच के पैर के मांस को काट-काट कर सीढियो के समान रास्ता बना लिया और उसी रास्ते से नदी के पार चला गया। उसी स्थान को आज भी छुरिकाबल कहते हैं। राजा को अपने समीप खड़ा देखकर पिशाच ने उसको शुभ लग्न बताते हुए कहा कि मेरे लगाये सूत्रपात के अनुसार आप अपना नगर बसाइएगा। ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया।

इसके बाद प्रातःकाल होते ही सूत्रपात शारीटक नामक ग्राम के समीप राजा ने देखा कि वहाँ शारिकादेवी तथा अट्ट नामक यक्ष के मन्दिर थे। उसी स्थान पर राजा ने भक्ति के साथ प्रवरेश्वर नामक शिवलिंग को स्थापित करने का प्रयत्न किया। ठीक ऐसे ही समय मे शिव-स्थापना के लिए बनाये गये यन्त्र का भेदन कर जयस्वामी नामक विष्णु उस पर बैठे हुए दीख पड़े। राजा ने पिशाच द्वारा बतलाये गये शुभ लग्न को जानने वाले जय नामक शिल्पकार के नाम से उस विष्णु-प्रतिमा को जयस्वामी के नाम से ख्याति प्रदान की।

उस राजा की श्रद्धा और भक्ति से प्रसन्न होकर भीम स्वामी नामक गणेश ने राजा के नगर मे विपरीत न रहने की इच्छा से पश्चिम की ओर किये गए अपने मुख को तुरन्त पूर्व की ओर कर लिया। इससे समस्त श्रद्धालु और भक्तिमान् पुरुषो को परम प्रसन्नता हुई।

इन्द्र के समान तेजस्वी प्रवरसेन ने उस नगर मे सद्भावश्री इत्यादि श्रीशब्दयुक्त नाम वाले देवताओ के मन्दिर बनवाये। वितस्ता नदी पर नौकाओ का एक विशाल सेतु बनवाया। उसी समय मे नौकाओ के पुल बनवाने की योजना संसार मे आरम्भ हुई। प्रवरसेन के मातुल जयेन्द्र ने मन्दिर बनवा कर उसमे भगवान् बुद्ध की प्रतिमा स्थापित की तथा जयेन्द्र-विहार बनवाया।

उसका मोराक नामक मन्त्री सिंहल आदि द्वीपो पर शासन करता था। उसने अपने नाम से परम सुन्दर मोराक-भवन नामक प्रासाद बनवाया। उस नगर की सीमा पर विश्वकर्मा और वर्द्धमान् स्वामी का मन्दिर था। ऐसा सुना जाता है कि किसी समय उस नगर की गृह-संख्या छत्तीस लाख थी। वह नगर वितस्ता नदी के दक्षिण तट पर बसा था, उसमे अनेक प्रकार के शोभापूर्ण बाजार वितस्ता के तट पर लगे हुए थे। उसमे गगनचुम्बी प्रासाद बने थे। उनके अति ऊँचे शिखरो पर चढ़कर निदाघ के अन्तिम दिनो मे वृष्टि से शीतल और हरित तृणो से पूर्ण तथा चैत्र मे विकसित कुसुम-पुंजो से चित्ताकर्षक मैदानो की शोभा देखी जाती थी। इस पृथ्वी पर उस नगर के अतिरिक्त और कहीं भी बाजार तथा उद्यानो के मार्गों पर दोनो ओर सुन्दर तथा निर्मल जल से पूर्ण बहती हुई नहरें नही देखी गईं।

इस नगर को छोड़कर दूसरे किसी भी नगर के ठीक मध्य भाग मे क्रीडा-पर्वत नही था। पर ऐसा मनोहर पर्वत था जिसके शिखर पर से नगर के सम्पूर्ण गृहो की अनुपम छटा विहंगम दृष्टि से देखी जाती थी। वहाँ के निवासियो को गर्मी के दिनो मे बर्फ के टुकडो से युक्त वितस्ता का शीतल जल बिना किसी प्रयत्न के पीने को मिलता था। ऐसा सुख अन्यत्र कहाँ मिल सकता है।

काश्मीर के राजाओं ने देव-मन्दिरो मे जो धन व्यय किया था वह इतना अधिक था कि असंख्य बार उतने धन से समुद्र से घिरी हुई समस्त पृथ्वी मोल ली जा सकती है। उस नगर के निर्माण का अनुसरण करते हुए, नवीन सृष्टि-निर्माण के रसिक राजा प्रवरसेन ने ६० वर्ष

साम्राज्य-लक्ष्मी के उपभोग मे व्यतीत कर दिये। शकर के त्रिशूल से अकित उस राजा के भव्य ललाट पर मस्तक से फैलते हुए श्वेत केशो को देखकर प्रत्येक दर्शक के मन मे गङ्गा के प्रवाह से विभूषित तथा भव्य जटाजूटधारी भूत-भावन भगवान् शङ्कर का भ्रम होता था।

फिर अश्वपाद ने शङ्कर के आदेश से काश्मीर-निवासी जयन्त नामक ब्राह्मण को अपने निकट आया देखकर उस से कहा—"हे पथिक! तुम थके-से दिखाई पड रहे हो। तुम्हारा कार्य अन्यत्र कही भी सिद्ध नही होगा। तुम इस पत्र को राजा प्रवरसेन के समीप पहुँचा दो। वही तुम्हारा कल्याण होगा।"

जब अश्वपाद ने उसे पत्र दे दिया तब उस ब्राह्मण ने बडे ही विनीत भाव से उससे कहा—"महात्मन्! मैं घूमते-घूमते थक गया हूँ। अब मुझ से इतनी दूर का प्रवास नही हो सकेगा।" इसके उत्तर मे अश्वपाद ने कहा कि मैं कापालिक हूँ और आप ने ब्राह्मण होकर मेरा स्पर्श किया है, इसलिए स्नान कीजिए। ऐसा कहकर उसने उसे समीप के कुण्ड मे फेंक दिया।

जब उस ब्राह्मण ने नेत्र खोलकर देखा तो अपने को अपनी मातृभूमि काश्मीर मे खडा पाया और राजा प्रवरसेन के सेवको को पूजा की सामग्री एकत्रित करने मे तत्पर देखा। फिर उसने पूजा के लिए नदी से लाये गये स्नान-कलश के जल मे बडी चतुरता के साथ वह पत्र डाल दिया।

प्रवरेश्वर को स्नान कराते समय राजा ने वह पत्र देख लिया और उसे पढकर जयन्त को अपने पास बुलवाया। उस पत्र मे लिखा था "राजन्! जो कुछ करना था वह सब आपने कर लिया। जो कुछ देना था वह भी पूर्ण रूप से दे चुके। सासारिक विषय-सम्बन्धी सुखो का भी भोग कर लिया। अब यौवन भी आपका साथ छोडकर चला गया है। अब करना ही क्या है? आओ अब कैलाश चलें।

उस पत्र के लेख से शङ्कर के सन्देश को जानकर राजा ने उस ब्राह्मण को यथेष्ठ द्रव्य दिया। द्रव्य के पाते ही वह ब्राह्मण परम प्रसन्नता का अनुभव करने लगा। इसके बाद राजा ने योग के बल से उस पाषाणमय प्रासाद की छत फोड कर निर्मल गगन-मण्डल मे प्रवेश किया। आकाश-मार्ग से कैलाश-विभूषित उत्तर दिशा की ओर जाते हुए राजा प्रवरसेन को समस्त लोगो ने निर्मल नभ मे द्वितीय सूर्य के समान चमकते हुए देखा।

इस विचित्र घटना द्वारा पाई हुई सम्पदा का जयन्त ने अग्रहार-निर्माण आदि शुभ कर्मों से सदुपयोग किया। इस प्रकार वह राजा प्रवरसेन पृथ्वी लोक मे अनन्त ऐश्वर्य को भोग कर इसी शरीर से कैलास पहुँच गया और वही भगवान् भूतेश्वर की सभा को विभूषित करने लगा। आज भी सिद्ध क्षेत्र मे श्रीप्रवरेश्वर के मन्दिर मे उस राजा का गमन-द्वार स्वर्ग के द्वार के समान विद्यमान है।

५ राजा रणादित्य की कथा

प्रवरसेन की पत्नी रत्नप्रभा देवी से उत्पन्न हुए राजा युधिष्ठिर ने उन्तालीस वर्ष और तीन मास तक काश्मीर देश का शासन किया। सर्वरत्न, जय, स्कन्दगुप्त नामक राज-मत्रियो ने विहार, चैत्य आदि उत्तम स्थानो का निर्माण किया। चैत्य आदि शुभ स्थानो से युक्त भवच्छेद नामक ग्राम को बसाने वाला राजा जयेन्द्र का पुत्र वज्रेन्द्र भी युधिष्ठिर का मत्री था। दिग्वधुओ के

मुखारविन्दो को यश-रूपी चन्दन से अलकृत करने वाले कुमारसेन आदि उस राजा के प्रधान मन्त्री थे ।

उसके बाद उसकी पत्नी पद्मावती देवी का पुत्र नरेन्द्रादित्य अथवा लखण काश्मीर का शासक हुआ । उसने नरेन्द्र स्वामी की स्थापना की । वज्रेन्द्र के पुत्र वज्र और कनक उसके मन्त्री थे और उसकी पत्नी का नाम विमलप्रभा था । उसने लेखो को सुरक्षित रखने के लिए एक नवीन विभाग स्थापित किया था । तेरह वर्ष राज्य करने के पश्चात् वह स्वर्गवासी हो गया ।

उसके बाद उसका छोटा भाई रणादित्य काश्मीर के राजसिंहासन का अधिकारी हुआ । लोग उसे तुजीन भी कहा करते थे । शख की मुद्रा से अकित उसका विलक्षण मस्तक सूर्य के मण्डल से मिश्रित चन्द्रमा के बिम्ब के समान सुशोभित था । उस रणादित्य के खड्ग का तीक्ष्ण प्रहार शत्रुओ के कण्ठ-रूपी अटवी पर लगते ही उनकी पत्नियो के नेत्र-रूपी कुण्ड जल से पूर्ण हो जाते थे । उसका विलक्षण प्रतापानल शत्रुओ के देशो मे प्रवेश करते ही शत्रुओ की स्त्रियो के नेत्रो में अश्रु-जल-तरग और शत्रुओ के राजभवनो पर नवीन हरित तृणो के अकुर उत्पन्न कर देता था । उसके हाथो मे तलवार लेने पर युद्ध के क्षेत्र मे शत्रु के पक्ष से कबन्धो के अतिरिक्त और कोई भी नृत्य नही कर सकता था ।

उसकी पत्नी रणरम्भा देवी अखिल महात्म्य धारण करने वाली साक्षात् वैष्णवी शक्ति थी । वह राजा पूर्वजन्म मे पक्का द्यूतकार अर्थात् जुआरी था । वह अपने प्रतिपक्षी द्यूतकारो से सर्वस्व-हरणपूर्वक परास्त कर दिया गया । इससे उसके मन मे ग्लानि उत्पन्न हो गई । फिर भी कहर द्यूतकार मरते दम तक अपने स्वार्थ-साधन का विचार नही छोडते । अत उसने भी प्राण-त्याग द्वारा स्वार्थ-साधन का विचार किया ।

वरदान प्राप्त करने की अभिलाषा से उसने अपने जीवन की पर्वाह न कर अमोघ-दर्शना भ्रमरवासिनी विन्ध्यवासिनी देवी के दर्शन का निश्चय किया । भ्रमरवासिनी के मन्दिर का मार्ग पाँच योजन लम्बा तथा बडा भयकर था । वज्र के समान तीखे डक वाले भ्रमरों से उस मार्ग मे जाने वाले मनुष्य का शरीर छेद दिया जाता था, इसीलिए वह मार्ग सर्वथा दुर्गम था ।

उस बुद्धिमान ने शरीर के त्याग देने को आवश्यक समझकर वज्र के समान डक वाले भ्रमरो से बचने का उपाय दुष्कर नहीं माना । उसने सब से पहिले लोहे के कवच से अपने शरीर को आच्छादित किया और उस पर भैंस का चमडा मढा । फिर उस पर गोबर मे मिट्टी मिलाकर लेपन कर दिया । उसको धूप मे सुखाकर चलते-फिरते मिट्टी के पुतले के समान वह दीखने लगा ।

उसने सब से अधिक सरल मार्ग को छोड दिया और अपने जीवन की कुछ भी पर्वाह न करते हुए घने अन्धकार से परिपूर्ण भयानक गुहा मे प्रवेश किया । वहाँ मृत्यु के बाद्यो की भयानक ध्वनि के समान शब्दयुक्त पक्षो से कानो को पीडा पहुँचाने वाले भ्रमर उडने लगे । उन्होने राजा के शरीर पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया । किन्तु सूखे हुए मिट्टी के लेप की धूल से उनके नेत्रो मे पीडा होने लगी इसीलिए वे अपने सहसा आक्रमण मे सफल न हो सके और न उसे अधिक कष्ट ही पहुँचा सके । जो धूल के कारण अन्धे हो गये थे, वे तो वहाँ से तुरन्त चले गये और जो नये-नये भ्रमर आने लगे उन सबो ने उसके मिट्टी के लेपन को नष्ट करना आरम्भ कर दिया । उन भयानक भ्रमरो के आक्रमण को सहन कर तीन योजन के मार्ग को पार करते हुए उसका वह कवच खडित हो गया ।

इसके बाद वे सब भ्रमर फिर से उसके महिष-चर्म वाले कवच पर आक्रमण का प्रहार करने लगे और उनके उन भयानक प्रहारो से चट-चट शब्द होने लगा। चतुर्थ योजन के आधे हिस्से को पार करने के बाद उसे मालूम हुआ कि उन भयानक दानवी भ्रमरो ने उसके महिष-चर्मवाले कवच को काटकर लोहे वाले कवच पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। अतएव अत्यन्त वेग से दौडते हुए उसके लोहमय कवच ने भी भ्रमरो से खडित होकर उसका साथ छोड दिया किन्तु फिर भी धैर्य ने उसका पूरा साथ किया। जब देवी का मन्दिर केवल दो कोस दूर रह गया तब तो उस धैर्यशाली राजा ने अपने दोनो हाथो से उन भ्रमरो को उडाते हुए दौडना आरम्भ कर दिया। इसके बाद भ्रमरो के आक्रमण से स्नायु तथा अस्थिमात्र शेष देहधारी उस राजा ने अपने हाथो से नेत्रो की रक्षा करते हुए देवी के मन्दिर मे प्रवेश किया।

भ्रमरो के उपद्रव के शान्त हो जाने के बाद उसने प्रकाश का दर्शन किया और व्याकुल होकर देवी के चरणो पर गिर पडा। उसके चरणों पर गिरते ही देवी ने मनोहर रूप धारण कर उस अल्प अवशेष प्राणधारी भक्त को आश्वासन देने के लिए अपने हाथ से उसके शरीर को स्पर्श किया। उस अमृत-वर्षी दिव्य कर-स्पर्श से शीघ्र ही पहिले के समान स्वास्थ्य लाभ कर उसने चारो ओर देखना आरम्भ किया। प्रवेश करते समय जिस भयानक आकार वाली सिंह-वाहिनी देवी की मूर्त्ति को उसने देखा था, वह मूर्त्ति इस समय उसके सामने न रही। उसने सरोवर के तट पर उद्यान मे लता-मण्डप के भीतर क्रीडा करती हुई कमलनयनी के दर्शन किये। मुक्ता-हार-रूपी अर्घ्य से और कान्ति-रूपी कुसुमो से यौवन उसके शरीर की पूजा कर रहा था। स्तनो की ओट छिपे हुए मुख के दर्शन के लिए उसके महावर से रजित चरण महाव्रत धारण कर मानो तप कर रहे थे। उसके ओष्ठ बिम्बफल के समान रक्तवर्ण के थे। केश-जाल भ्रमरो के समान कृष्ण-वर्ण था। पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख और सिंह के समान पतली कमर थी। उसकी वह भव्य मूर्त्ति सर्वदेवमयी-सी प्रतीत हो रही थी। समस्त अग-प्रत्यगो से सुन्दर तथा यौवन-विकसित कमनीय स्वरूप को देखकर उस द्यूतकार का मन कामदेव के वशीभूत हो गया। उसकी दृष्टि मे रूप और माधुर्य की छटा से सुशोभित वह देवी के रूप मे प्रतीत नही हो रही थी। वह तो उसे अप्सरा के रूप मे देख रहा था।

देवी ने दयापूर्वक उससे कहा कि हे वत्स! तुझे रास्ते मे भयानक से भी भयानक दारुण कष्ट उठाने पडे हैं अतएव क्षण भर विश्राम लेकर योग्य वरदान माँग ले। उसने कहा कि आपके दर्शन से मेरा श्रम दूर हो गया है किन्तु आप तो देवी नही है इसलिए वरदान किस प्रकार दे सकेंगी। देवी ने कहा—"हे भद्र पुरुष। मैं देवी होऊँ या न होऊँ किन्तु तुझे यह भ्रम किस लिए हुआ? कुछ भी हो, मैं तुझे तो वरदान दे सकती हूँ।" इस प्रकार पूर्ण रूप से आश्वासन पाते ही उसने समस्त मर्यादाओ को त्यागकर वर माँगा कि मैं तुम्हारा प्रणय-सगम चाहता हूँ। तब देवी ने उससे कहा कि हे बुद्धिहीन! तू यह क्या विचित्रता कर रहा है? दूसरा वरदान माँग। मैं ही भ्रमरवासिनी देवी हूँ।

देवी के वचनो से पूर्ण निश्चय होने पर भी उसने उस बात पर ध्यान देकर अपना निश्चय नही बदला। ठीक भी है क्योकि जन्मान्तर से सम्बन्ध रखने वाली वासनाओ को कौन रोक सकता है। उसने देवी से कहा "यदि आप अपने वचनो को सत्य प्रमाणित करना चाहती हो तो मुझे मुँह-माँगा वरदान देने की कृपा करें क्योकि मैं और कुछ नही चाहता।"

उसी अमृतप्रभा ने मेघवाहन राजा की मिन्ना नामक पत्नी के द्वारा वनवाये गये प्राचीन विहार मे भगवान् बुद्ध की एक परम मनोहर मूर्त्ति को स्थापित किया ।

रणरम्भा देवी पर राजा रणादित्य अधिक अनुरक्त था, इसलिए उस देवी ने अपने मिलन को अन्वर्थ सिद्ध करने के लिए और राजा को पाताल-वासियो पर भी अधिकार जमाने के लिए हाटकेश्वर-मत्र प्रदान किया । उस राजा ने भी उस मत्र के साधन मे कई वर्ष व्यतीत कर दिये । उसने सबसे पहिले इष्टिकापथ नामक स्थान मे जाकर कठोर तपश्चर्या की । फिर नन्दिशिला को गया । वहाँ उसको अनेक वर्षों तक उस सिद्ध मत्र का आनन्द मिलता रहा ।

मागलिक स्वप्न तथा दैवी चमत्कारो से दृढ निश्चय कर वह राजा चन्द्रभागा नदी मे प्रवेश कर गया और वहाँ नमुचि दैत्य की गुफा मे पहुँच गया । इस प्रकार गुफा के मार्ग के खुल जाने पर इक्कीस दिन मे अपने नगर-निवासियो को भी वहाँ ले गया । फिर उन्हे वहाँ अनेक दैत्य सुन्दरियो के सम्भोग का आनन्द प्राप्त हुआ । इस प्रकार उसने तीन सौ वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य किया । उसके बाद पाताल के ऐश्वर्य का उपभोग कर अन्त मे निर्वाण-पद प्राप्त किया । वह वैष्णवी शक्ति रणरम्भा देवी भी राजा रणादित्य के रसातल प्रयाण के बाद श्वेतद्वीप को चली गई ।

अनेक प्राचीन राजवशो मे केवल दो ही राजवश श्रेष्ठ हुए । एक तो रघुवंश और दूसरा गोनदवश । उनमे भी रघुवश मे भगवान् रामचन्द्र और गोनदवश मे राजा रणादित्य, इन दोनो ने अपने साथ अपनी प्रजा को भी स्वर्ग के वास्तविक सुख का यथार्थ सुख दिखाया । इसी-लिए इन दोनो प्राचीन राजवशो की प्रजा-वत्सलता को ससार के इतिहास मे उच्चकोटि की प्रसिद्धि प्राप्त हुई और आज भी लोग इन दोनो राजाओ के आदर्श को मानव-समाज के सामने बडी श्रद्धा के साथ उपस्थित करते है ।

६ राजा बालादित्य की कथा

राजा रणादित्य के बाद उसका पुत्र विक्रमादित्य काश्मीर देश के राजसिंहासन का अधि-कारी हुआ । उसने त्रिविक्रम भगवान् के समान अपने विक्रम से सम्पूर्ण पृथ्वी पर अधिकार स्था-पित कर लिया था । उसने ही विक्रमेश्वर नामक शकर की स्थापना की थी । इन्द्र के समान प्रतापशाली उस राजा ने ब्रह्म तथा गलून नामक दो मत्रियो की सहायता से चालीस वर्ष तक पृथ्वी का शासन किया था । ब्रह्म नामक मत्री ने ब्रह्ममठ का निर्माण कराया था और परम पवित्र गलून मत्री ने अपनी पत्नी रत्नावली के नाम से एक विहार निर्माण कराया था ।

राजा विक्रमादित्य के बाद उसका छोटा भाई बालादित्य काश्मीर देश का शासक हुआ । उस बलशाली राजा के नाम से ही शत्रुओ का हृदय कॉपने लगता था । क्षार समुद्र के जल-पान से तृष्णा की अधिकता को धारण करने वाला-सा उसका प्रबल प्रताप शत्रुओ की ललनाओ के अश्रुपूर्ण मुख-कमलो का सेवन करता था । उसके द्वारा निर्माण किये गये जयस्तम्भ पराजित शत्रुओ के हार्दिक क्लेशो के मानदण्डो के समान आज भी पूर्व समुद्र के तट पर खडे हैं । उसने अपने प्रताप-रूपी अकुश से बगाल देश को जीतकर वहाँ काश्मीर-निवासियो के निवास के लिए कोलम्ब्य नामक स्थान का निर्माण कराया । इसी प्रकार उस राजा ने काश्मीर मे भी मडव-राज्य के अन्तर्गत सुसमृद्ध भेडर ग्राम ब्राह्मणो को अग्रहार मे दिया । बिम्बफल के समान आकर्षक ओष्ठ वाली उसकी पत्नी महारानी बिम्बा ने अरिष्टोत्सादन नामक स्थान मे जनता के अरिष्टो को

नष्ट करने वाले भगवान् विश्वेश्वर का सुरम्य मन्दिर बनवाया। खख, शत्रुघ्न और मालव नामक राज-मन्त्रियों ने क्रमश मठ, मन्दिर तथा सेतु का निर्माण कराया।

उस राजा के यहां विचित्र विलास-विभूषिता और शृंगार-रूपी समुद्र को तरंगित करने वाली अनंगलेखा नामक कन्या हुई। एक समय वह कन्या राजा के समीप बैठी हुई थी। इतने मे ही वहां एक सत्यवादी ज्योतिषी आ गया और राजा के पास उस मृगनयनी को बैठी देखकर उसने राजा से स्पष्ट शब्दो मे कहा—"राजन्! गोनन्द-वंश के साम्राज्य का उपभोग करने वाले अन्तिम पुरुष आप ही हैं। आपके बाद आपके जामाता इस राजसिंहासन के अधिकारी होगे।

इस प्रकार उस सत्यवक्ता दैवज्ञ के वचनो को सुनकर राजा बालादित्य ने अपना साम्राज्य कन्या के अधीन होना सर्वथा अनुचित समझा और फिर अपने पुरुषार्थ द्वारा भाग्य को जीतने का दृढ निश्चय किया। अपने मन मे उसने सोचा, "यदि इसे किसी-राज वंश मे न देकर साधारण वंश के युवक को दिया जाय तो इसे किसी भी दशा मे राज्य का अधिकार नही मिल सकेगा।" ऐसा सोचकर उसने किसी भी राजकुमार के साथ उस कन्या का विवाह नही किया और अधिक सुन्दरता के महत्व को सामने रखकर साधारण कुल मे उत्पन्न हुए दुर्लभवर्धन नामक घोडे की घास का प्रबन्ध करने वाले कायस्थ के साथ राजकुमारी अनंगलेखा का विवाह कर दिया। उस राजा को यह बात मालूम नही थी कि स्नान करती हुई दुर्लभवर्धन की माता के साथ कर्कोटक नाग ने संभोग किया था और उसी से दुर्लभवर्धन का जन्म राज्य-सुख को भोगने लिए ही हुआ था।

अपने को पण्डित समझने वाले लोग सहसा जिसे अयोग्य कहने लगते है, दैव भी उन्ही लोगो को नितान्त मूर्ख सिद्ध करने के लिए उसी व्यक्ति को परम भाग्यशाली और अधिक सुपात्र बना देता है। अस्ताचलगामी सूर्य समस्त ग्रहो का तिरस्कार कर अग्नि को ही अधिक योग्य समझ लेता है, इसीलिए अपना तेज उसे प्रदान कर अन्त मे उपहास का पात्र बन जाता है क्योकि उसे दैव की अघटित घटना-पटीयसी महामहिमता का कुछ भी ज्ञान नही रहता। बाद मे अग्नि तो दूर रहा, किन्तु छोटे-छोटे साधारण दीपक जो कि अग्नि से ही उत्पन्न है अपनी ज्योति मे सूर्य को भुला देते है। अनंगलेखा के साथ विवाह हो जाने के बाद वह दुर्लभवर्धन भाग्य का अनुगमन करने वाली बुद्धि के प्रभाव से नीतियुक्त आचरण करता हुआ लोकप्रिय हो गया। बुद्धि से चमकते हुए उसको राजा बालादित्य ने प्रज्ञादित्य के नाम से सम्मानित कर कुबेर के समान धनाढ्य बना दिया।

माता-पिता को अधिक प्रिय होने के कारण उद्धत तथा यौवन के मद से मत्त राजकन्या अनंगलेखा दुर्लभवर्धन के साथ उचित व्यहार नही करती थी। भ्रष्ट चरित्र वाली स्त्रियो का समागम, स्वर्ग-दुर्लभ सुखो का उपभोग, तरुण पुरुषो का सहवास, पिता का भवन और पति की सरलता आदि शील से च्युत करने वाली सभी वस्तुएँ उसके लिए उपस्थित थी। अतएव वह अनंगलेखा नित्यमलिन और परस्पर अवलोकन आदि उत्तेजक कारणो से राजमन्त्री खख पर आसक्त हो गई। गुप्त प्रेम, समागम के सुख का अनुभव होने से ही उस राजकन्या को कुल-कन्याओ के योग्य लज्जा, भय, सम्भ्रम आदि गुणो को छोडकर धृष्ठतापूर्वक प्रेम का अभ्यास हो गया और वह धीरे-धीरे उसी प्रेम मे तल्लीन हो गई। खख ने अन्त पुर मे अपने प्रभाव से तथा धन देकर दास-दासियो को अपने वश मे कर लिया था और राजकन्या के साथ स्वच्छन्द विहार

जीवधारियो के जन्मान्तरीय पूर्व-संस्कार या सम्मोह शरीर पर दीखने वाले तिल-चिह्न के समान आगामी जन्मान्तर मे भी स्थिर रहते हैं । उसने कहा—"आप देवी हो या साधारण स्त्री हो अथवा कोई भयकरी हो या कोई भी । चाहे आप कैसी भी हो, मुझे तो पहले के ही समान प्रतीत हो रही है ।" इस प्रकार बार-बार कहने से उसे दृढ-निश्चयी समझ कर देवी ने कहा "तेरे आगामी जन्म मे ऐसा ही होगा क्योकि दिव्य देहधारी जीव मनुष्यो को स्पर्श करना नही चाहते हैं अतएव हे क्रूर संकल्प करने वाले ! तू यहां से चला जा ।" ऐसा कहकर देवी उस स्थान से अतर्धान हो गई ।"

"आगामी जन्म मे मुझे देवी के प्रणय का सौभाग्य प्राप्त होगा" ऐसी आशा से उसने प्रयाग मे जाकर अक्षयवट की शाखा से कूदकर प्राणो का त्याग कर दिया । वही राजा रणादित्य हुआ और देवी रणरम्भा नामक राजकन्या हुई । देवी को अपने पूर्व-जन्म का स्मरण था ।

समुद्र की पूजा करते हुए चोल देश के राजा रतिसेन को रत्न-राशि के समान सागर की तरगो मे वह मिली थी । उसमे शैशव-काल से ही दिव्य चिह्न झलकते थे और जब वह यौवन की अवस्था को सुशोभित करने लगी तब अनेक राजाओ ने उसके लिए याचना करना आरम्भ किया किन्तु राजा रतिसेन ने उन राजाओ की याचना पर तनिक भी ध्यान न दिया ।

इसी प्रकार राजा रणादित्य का मत्री भी रतिसेन के समीप याचना के लिए दूत बनकर आया । राजा ने उसे भी अस्वीकार करने का विचार किया किन्तु रणरभा ने उसी के साथ विवाह करना उचित समझा और अपने विचार को अपने पिता रतिसेन से कह भी दिया । साथ ही साथ यह भी कहा —"राजा रणादित्य के लिए ही मैंने जन्म लिया है ।" इतना कह कर उसने पूर्व-जन्म का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ।

उस वृत्तान्त को सुनकर राजा रतिसेन ने तुरन्त ही अपने मित्र कुलुत देश के राजा के पास उस कन्या को भेज दिया । रणादित्य ने भी प्रसन्न होकर दूर देश-स्थित उस राजकन्या से विवाह कर लिया और फिर अपने अन्त पुर की अधिष्ठात्री देवी बनाया ।

वह राजपत्नी होने पर भी मनुष्य के स्पर्श से भयभीत होकर उसे माया से मोहित कर देती और उसका कभी स्पर्श नही करती थी । प्रतिदिन राजा की शय्या पर माया के प्रभाव से अपने समान सुन्दरता से युक्त एक ललना को सुला देती और स्वय भ्रमरी का रूप धारण कर रात्रि मे भ्रमण करने के लिए बहिर्देश को चली जाती थी ।

उस राजा रणादित्य ने अपने और राजपत्नी रणरम्भा के नाम से एक सुयोग्य शिल्पी द्वारा दो सुन्दर मन्दिर बनवाकर उनमें स्थापित करने के लिए दो शिव के बाण भी बनवाये । फिर उनकी प्रतिष्ठा के लिए नियत किये गये दिवस के एक दिन पूर्व किसी विदेशी ज्योतिषी ने उन दोनो शिव-बाणो की विशेष महत्त्वपूर्ण आलोचना करते हुए यह सिद्ध कर दिया कि वे दोनो बेजोड हैं तथा अनुभव द्वारा विश्वास उत्पन्न कराते हुए उसने कहा—"इन शिव-बाणो के भीतर मेढकसहित पत्थर विद्यमान हैं ।"

इस प्रकार की अदभुत् घटना से प्रतिष्ठा मे विघ्न उपस्थित हो गया । इसलिए वह राजा रणादित्य व्याकुल होकर किंकर्तव्यता से विमूढ हो गया । तब दिव्य दृष्टिमयी महादेवी रणरम्भा ने राजा रणादित्य से कहा "आर्यपुत्र ? प्राचीन समय मे पार्वती जी के विवाह के मगलमय अवसर पर ब्रह्मा जी को पुरोहित का कार्य करना पडा था । उस समय उन्होंने अपने पूजन के

सामान से विष्णु की एक मूर्त्ति को निकाल कर वहाँ रख दिया किन्तु शकर ने उसको 'यद्यपि यह विष्णु की मूर्त्ति शक्तिरूप है तथापि शिव के बिना शून्य है' इस विचार से अपूर्ण समझा और विवाह के उत्सव मे आये हुए देवता तथा असुरो के द्वारा उपहार मे अर्पण किये गये रत्नो को एकत्रित करके उनका एक शिव-लिंग बनाया गया और उस जगत्पूज्य शिव लिंग की स्थापना की गई फिर विष्णु की प्रतिमा तथा शिव-लिंग दोनो एक ही साथ पूजे गये।

कुछ दिनो के बाद काल की महिमा से शिव-पूजित वह लिंग तथा प्रतिमा रावण को मिल गए। उसने उन दोनो को लका मे स्थापित कर कई वर्षों तक उनकी पूजा की। उसके बाद वानरो ने लंका से उसका हरण किया। वानर तो पशु ही ठहरे, इसलिए उन सबो ने अपने स्वभाव के अनुसार हिमालय पर्वत के उत्तर मे मानसरोवर के तट पर क्रीडा-करते हुए उन दोनो देव-प्रतिमाओ को सरोवर मे डाल दिया। मैंने पहले से ही उत्तम शिल्पियो द्वारा उन्हे सरोवर से निकलवाने का प्रबन्ध कर लिया है। कल प्रात काल वे शिल्पी उन दोनो प्रतिमाओ को लेकर यहाँ आ जायँगे और आप भी उन्हे अवश्य देख लेंगे। आप उन दोनो प्रतिमाओ की ही प्रतिष्ठा कीजिएगा। ऐसा राजा रणादित्य से कहकर रणरम्भा देवी अन्त पुर मे चली गई और वहाँ जाकर उसने आकाशगामी सिद्धो का स्मरण किया। उस देवी के ध्यान करते ही वे सब उसके सामने आकर उपस्थित हो गये। फिर देवी के आदेश से मानसरोवर के जल से उन दोनो प्रतिमाओ को बडी शीघ्रता के साथ निकल कर राजभवन मे ले आये। दूसरे दिन प्रभात होते ही दिव्य सुमनो से युक्त उन हरि-हर-प्रतिमाओ का दर्शन कर लोग विशेष रूप से आश्चर्य करने लगे।

राजा रणादित्य परम माहेश्वर था इसीलिए उसने शुभ मुहूर्त मे रणेश्वर नामक शिव-लिंग की स्थापना करने का दृढ सकल्प किया था। इतने मे ही रणरम्भा देवी के आश्चर्यजनक प्रभाव से सब को चकित करती हुई रणस्वामी नाम के विष्णु की प्रतिमा उस यत्र का भेदन कर स्वय प्रकट हो गई। उसके प्रभाव को व्यक्त करने के लिए रणरम्भा देवी ने बहुत-सी सम्पत्ति मन्दिर को समर्पित की। उसी सम्पत्ति से रणस्वामी के भक्तो को अनेक अग्रहार दिये गये।

वहाँ ब्रह्म नामक एक सिद्ध पानी लाने वाले ब्राह्मण के रूप मे रहता था। महारानी ने उसकी वास्तविकता को पहिचान कर उसके द्वारा ही उन दोनो देवताओ की प्रतिमा को प्रतिष्ठित कराया। रणेश्वर की प्रतिष्ठा करते ही उसने अपनी सिद्धता को प्रकट हुई देखकर शीघ्र ही आकाश-मार्ग से प्रयाण किया और गुप्त रूप मे रहकर रणस्वामी की प्रतिष्ठा कराई। इस सिद्ध के सम्बन्ध मे कुछ लोगो का ऐसा भी मन्तव्य है कि वह सिद्ध अपनी इच्छा से ही स्वय उस पीठ पर मूर्त्ति के रूप से अवतरित हुआ था और यह मन्तव्य अथवा कथानक आज भी जनता मे प्रचलित है। रणरम्भा देवी ने परम ब्रह्मज्ञानी उस सिद्ध के नाम पर अधिक द्रव्य-व्यय से ब्रह्म-मण्डप नामक भवन तैयार कराया। इस प्रकार उन दोनो ने रणरम्भा-स्वामी और रणरम्भा-देव के दो मन्दिर बनवाए और पाशुपत-यतियो के निवास के लिए प्रद्युम्न-शिखर पर एक मठ भी तैयार कराया।

रोगियो को निरोग करने के उद्देश्य से और सेनामुखी नामक राजपत्नी के भय को दूर करने के निमित्त उस राजा ने एक उत्तम आरोग्यशाला की स्थापना की तथा सिहरोत्सिका नामक ग्राम मे रणपुरस्वामी के नाम से सुप्रसिद्ध श्रीसूर्यनारायण का भव्य मन्दिर बनवाया। उसकी द्वितीय पत्नी अमृतप्रभा ने रणेश्वर के दक्षिण पार्श्व मे अमृतेश्वर की स्थापना की और

करना आरम्भ किया था। उस परम बुद्धिमान दुर्लभवर्धन ने भी अनंगलेखा के तिरस्कार-सूचक रूखे व्यवहार से उसके शीलभ्रष्ट होने के रहस्य को जान लिया था। वह एकान्त मे सखियो के बीच हँसा करती थी और पति को देखते ही विपन्नता के भावो को धारण कर मुँह लटका लेती थी। सहसा उठकर हँसती हुई मार्ग की ओर देखने लगती थी। पति के क्रुद्ध होने पर भी उसकी कुछ भी पर्वाह न करती थी और स्वयं भी अपनी भौहे टेढी कर लेती थी। पति की ओर नेत्रो को मिचकाने लगती थी और चिबुक हिलाती थी। उसके अप्रिय भाषण को सुनकर हँसने लगती थी। उसके समान गुणो मे वैराग्य प्रकट करती थी और उसके प्रति स्पर्धा करने वालो की प्रशसा को बडे प्रेम से सुनती थी। उसकी प्रेम-लालसा को देख कर वह उधर से अपना ध्यान हटा लेती थी और सखियो से प्रेमालाप करने लगती थी। उसे चुम्बनोद्यत देखकर वह अपना मस्तक नीचा कर लेती थी और आलिंगन के समय शरीर को शिथिल कर लेती थी। सम्भोग के समय दु.खित होती थी और निद्रा का बहाना करती थी। ठीक भी तो है कि उपपति को प्रेम तथा शरीर अर्पण करने वाली स्त्री के शरीर मे रहने वाली अनीति-रूपिणी पिशाची का प्रभाव प्रकट हुए बिना नही रहता।

इस प्रकार अनंगलेखा के असह्य गुप्त दुराचरणो से खिन्न होकर वह दुर्लभवर्धन दिन-प्रति-दिन दुर्बल होने लगा। दैवयोग से किसी दिन रात्रि के समय वह अन्त पुर मे गया। उसने वहाँ अनंगलेखा को खख के साथ विविधरति-विलासोपभोग के पश्चात् उसके शरीर पर गिरकर गाढ निद्रा मे मग्न हुए देख लिया। कुच के अग्र भाग को कम्पित करते हुए श्वास से यह बात स्पष्ट विदित हो रही थी कि सम्भोग की क्रिया अभी कुछ क्षण पहिले ही समाप्त की गई है। ऐसी परिस्थिति मे जब उदासीन पुरुष को भी क्रोध आ सकता है तब वह कैसे क्षमा करेगा! उस दृश्य को देखकर वह क्रोध से अग्नि के समान जलने लगा और म्यान से तलवार निकाल कर प्रहार करने को उद्यत हुआ किन्तु उसके विवेक ने उसे उस कार्य के करने से रोक लिया। इसी प्रकार वह तलवार से प्रहार करने की इच्छा करता था और फिर रुक जाता था।

उसके बढते हुए क्रोध-रूपी समुद्र को विवेक-रूपी वेला ने रोक दिया। उस महापुरुष को प्रणाम हो और उससे बढकर कौन जितेन्द्रिय हो सकता है जिसने ईर्ष्या, क्रोध आदि विष-विषूचिकाओ को जीत लिया है। उसने अपने मन मे सोचा कि मनोविकारो के वश मे रहने वाली ये स्त्रियाँ बडी बुरी हैं। इन्हे विवेक से किंचिन्मात्र भी स्नेह नही होता। अपने साथ ये पुरुषो को भी नरक मे घसीट ले जाती है। इन्द्रियो द्वारा भोग किये जाने वाले अन्यान्य विषयो के समान स्त्री भी किसी एक इन्द्रिय के लिए उपभोग्य-विषय है। अतएव इनके सम्बन्ध मे सयमी पुरुषो को क्रोध नही करना चाहिए। स्त्री-जाति स्वभाव से ही चपल है अतएव इसका नियन्त्रण कौन कर सकता है अथवा नियन्त्रण करने पर भी सज्जनो को स्मरण करने योग्य कौन-सा बडा लाभ होता है एवं कुतिया के पीछे घूमते हुए अनेक कुत्तो के समान एवं स्त्री पर लुब्ध होने वाले दो पुरुषो के पारस्परिक सघर्ष को यदि मान कहा जाय तो अपमान किसे कहना चाहिए।

ज्ञानवान् पुरुष के हृदय मे मृगनयनियो के विषय मे ममता अथवा स्नेह क्यो होना चाहिए? जब कि अपने ही शरीर पर प्रेम अथवा अभिमान करना सर्वथा व्यर्थ है और प्रत्येक दृष्टिकोण मे अयोग्य भी है तब वह प्रेम अथवा अभिमान अन्यत्र कैसे अव्यर्थ और योग्य हो सकता है? मैं क्रोध तथा उद्वेग के वशीभूत होकर इस ललना को वध करने के योग्य समझता हूँ

किन्तु उद्वेग के प्रधान कारण राग को भी मुझे नही भूलना चाहिए। इस प्रेम-रूपी तरु का मूल सप्तपातालो को भेदन कर नीचे तक चला गया। अतएव उसको नष्ट करने के लिए उसके आधार बनने वाले द्वेष को ही सर्वप्रथम नष्ट करना अधिक आवश्यक है। जिसने अपने निर्मल विवेक के बल से द्वेष रूपी प्रबल शत्रु को जीत लिया है, वह क्षणार्ध प्रेम को भी नि शेष कर सकता है। इस दैवी अनुग्रह से प्राप्त ओषधि से सर्वप्रथम ईर्ष्या को, उसके बाद राग को जीत लेने से ही आशाएँ स्वय नष्ट हो जाती हैं।

इस प्रकार सोच कर वह खंख के वस्त्र पर "खख! तू सर्वथा वध्य है, परन्तु मैं दया कर के तुझे छोडे देता हूँ।" ऐसा लिखकर वहाँ से चुपचाप चल दिया। इस प्रकार गुप्त रूप से दुर्लभ-वर्धन के चले जाने के बाद जब खख सोकर उठा और अपने वस्त्र पर लिखे हुए दुर्लभवर्धन के वचनो को पढा तब वह अपने मन मे सोचने लगा, "आज उस उदार-हृदय दुर्लभ वर्धन की दया से ही मेरे प्राण बचे हैं। ऐसा सोचकर उसी क्षण से उसने अनंगलेखा से प्रेम करना छोड दिया और दुर्लभवर्धन का प्रत्युपकार करने की चिन्ता मे मग्न हो गया। उसी दिन से उसका मन प्रत्युपकार की चिन्ता से विदीर्ण होने लगा, न कि कामदेव के बाणो से और उसकी दृष्टि उन्निद्रता से व्याप्त रहती थी, न कि राजकन्या अनगलेखा से।

उज्जवल सत्कर्म करने वाला वह राजा बालादित्य छत्तीस वर्ष तथा आठ मास राज्य कर अपने पुण्य के प्रताप से कैलासवासी हुआ। गोनन्द-वश का अन्तिम पुरुष वही था। उसके पहिले ही निकट सम्बन्धियो के यहाँ भी पुरुष-सन्तान नष्ट हो चुकी थी। जिस प्रकार कोई उन्मत्त हाथी सरोवर मे प्रवेश कर कमलो को नष्ट कर देता है और फिर महायूर के आने से समस्त मृणाल-नाल तथा कमल-कन्द नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार गोनन्द-वश भी दु खद परिस्थिति की परम सीमा मे पहुँच चुका था।

उसके बाद प्रत्युपकार की प्रबल अभिलाषा से प्रेरित होकर उग्र खख मत्री ने अन्य मत्रियो के मतभेद को अपनी प्रखर बुद्धि के प्रभाव से दूर कर राज-जामाता दुर्लभवर्धन को राज्याधिकारी बना दिया और यथाविधि कनक-कलशो से उसके मस्तक पर अभिषेक किया गया। कर्कोटक नाग-कुलोत्पन्न, मुकुट-मौक्तिको की किरणावली से समुज्ज्वल फणाकुर के समान शोभायमान दीर्घ बाहु-युगल-विभूषित वह राजा दुर्लभवर्धन अपने वशज के राज्यधिकार से प्रसन्न हुए शेषनाग के हर्षोत्फुल्ल दो सहस्र नयन-पल्लवो के समूह की सुवर्ण कमल-मालिका से विभूषित होने लगा। जिस प्रकार भगवती गगा ने अपने आकाश-मार्ग को त्यागकर त्रैलोकपति भगवान् शकर के जटाजूट का आश्रय ग्रहण किया, उसी प्रकार काश्मीर-भूमि ने भी पवित्र गोनन्द वश को त्याग कर परम निर्मल कर्कोटक वश का आश्रय ग्रहण किया।

इसी तीसरी तरग मे दस राजाओ ने पाँच सौ सत्रह वर्ष और चार मास तक काश्मीर देश मे राज्य किया।

४

१ राजा प्रतापादित्य की कथा

राजा दुर्लभवर्धन को एक ही गोनन्द-वश से राज्य तथा राजकन्या दोनो का ही लाभ हुआ था। धीरे-धीरे यथासमय नाना प्रकार के रत्नो तथा अनेक पुत्रो की प्राप्ति उन दोनो के

सयोग से हुई। राजकन्या अनंगलेखा के पति दुर्लभवर्धन ने उसका एक भी अवगुण जनता के सामने कभी भी प्रकट नही किया। इसीलिए उसकी भी प्रतिष्ठा और सौभाग्यशालीनता विश्व मे विशेष रूप से विख्यात हो गई। उस राज-वल्लभा अनगलेखा ने अनग-भवन नामक विहार बनवाया। उस राजा के मल्हण नामक पुत्र को ज्योतिषियो ने अल्पायु बतलाया था, इसलिये छोटी अवस्था मे ही उसके द्वारा मल्हण-स्वामी का मदिर बनवाया गया। राजा दुर्लभवर्धन ने कतिपय विद्वान और सत्पात्र ब्राह्मणो का सत्कार कर उन्हे परिविशोक नामक दुर्ग के पास चन्द्रग्राम तथा अन्य अनेक ग्राम दिये और श्रीनगर मे भी दुर्लभ-स्वामी नामक विष्णु की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार छत्तीस वर्ष तक पृथ्वी पर शासन कर वह राजा स्वर्गवासी हुआ।

उसके बाद अनगलेखा से उत्पन्न हुआ इन्द्र के समान प्रतापशाली उसका पुत्र दुर्लभक राज्य करने लगा। उसकी माता अनगलेखा ने दौहित्र समझकर उसे अपने पिता बालादित्य का उत्तराधिकारी बनाया था, इसलिए उसे परम्परागत राज्य प्राप्त हुआ। आगे चलकर वही दुर्लभक राजा प्रतापादित्य के नाम से ससार मे प्रसिद्ध हुआ। उसका एक मत्री था। उसका नाम हनुमान था। वह ऊड का पुत्र था। उसे कुबेर से पर्याप्त धन प्राप्त हुआ था। उन धन से पुण्य-लाभ करने के लिए उसने अनेक अग्रहार स्थापित किये। राजा प्रतापादित्य अपने प्रबल प्रताप से समस्त शत्रुओं को सन्तप्त कर चुका था। उसका सामना कर सके ऐसा उस समय उसका कोई भी शत्रु न था। समस्त शत्रुओ का दमन कर राजा प्रतापादित्य ने प्रतापपुर नामक एक उत्तम नगर बसाया। सुख-सुविधा तथा सुन्दरता के दृष्टिकोण से वह नगर देवताओ की पुरी अमरावती से स्पर्धा करने के योग्य हो गया था। उसके उस परम सुन्दर नगर मे अनेक देशो से अनेक सम्पत्तिशाली, श्रीमान, व्यापारी, सेठ, साहूकार आदि व्यापार के लिए आकर रहा करते थे। उन समस्त व्यापारियो मे रोहित देश का रहने वाला नोण नामक व्यापारी भी रहता था। चूंकि उसके पास धन की अधिकता थी इसलिए उसने रोहित देश मे उत्पन्न होने वाले ब्राह्मणो की सुख-सुविधा का ध्यान रखकर उन सबके निमित्त नोणमठ नामक एक उत्तम मठ बनवाया।

किसी समय राजा प्रतापादित्य ने उस नोण व्यापारी को आदरपूर्वक राजभवन मे बुलवाया और उसके आने पर राजोचित मर्यादा तथा रीति के अनुसार उसका आदर और सत्कार किया। इसके बाद आग्रहपूर्वक उसे एक दिन के लिए अपने राजभवन मे रख लिया। दूसरे दिन प्रात काल होते ही राजा प्रतापादित्य ने अपने अतिथि नोण व्यापारी से पूछा—"कहिए महाशय! रात्रि मे निद्रा तो सुखपूर्वक आई थी?" राजा को नम्रतापूर्वक उत्तर देते हुए नोण ने कहा—"राजन्! सत्य बात तो यह है कि राजभवन मे जलने वाले दीपको के धुएँ से मुझे रात्रि भर शिरोवेदना ने कष्ट दिया है।"

कुछ दिन बीत जाने पर उसने राजा को अपने भवन पर निमत्रित किया। जब राजा उसके उस भवन मे पहुँचा तब आश्चर्य से चकित हो गया। राजा ने उसके भवन मे रत्नमय दीपको का प्रकाश देखा। उसकी विलासिता तथा अपार सम्पत्ति को देखकर राजा के आश्चर्य की सीमा न रही। इसके बाद नोण व्यापारी के विशेष रूप से अधिक आग्रह करने पर वह दो-तीन दिन वहाँ रह भी गया। वहाँ रहते हुए राजा ने चन्द्रमा के समान मुखवाली और अत्यन्त रूपवती उसकी पत्नी नरेन्द्रप्रभा को देखा। कुच-रूपी कलश-युगल से युक्त एव सुन्दर जघाओ से सुशोभित वह ललना उस भवन मे अनग के पूर्वांकुरयुक्त मनोरम कलशसहित मंगल-तोरण के

समान चमक रही थी। वह उस भवन मे एकान्त होने के कारण नि शक होकर विहार कर रही थी। उस परम सुन्दरी ललना को देखकर राजा प्रतापादित्य मोहित हो गया और नोण की पत्नी नरेन्द्रप्रभा ने भी अपनी सखियो के द्वारा दिखाये गये राजा को अपने कर्णतक विस्तृत तथा विशाल नेनो से अत्यन्त कौतुक के साथ देखा। पूर्वजन्म के सस्कार से उत्पन्न होने वाले प्रेम-बन्धन से अथवा कामदेव के अलघनीय आदेश से उस परम सुन्दरी कोमलागी नरेन्द्रप्रभा ने केवल क्षणिक दृष्टि मात्र से ही राजा प्रतापादित्य के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसका स्पर्श न होने पर भी राजा को उस सौभाग्य-सुधामयी के आलिगन का भ्रमात्मक आनन्द का अनुभव होने लगा। भवन के स्तम्भ की ओट मे अपने मोहक शरीर को छिपाकर और मुख-कमल को थोड़ा-सा घुमाकर राजा को बार-बार देखती हुई वह सुन्दरी वहाँ से चली गई।

इस क्षण मात्र के विभ्रम से उसने राजा के चित्त को हर लिया था। वह राजा भी अपना हृदय उसे समर्पित कर उसके दर्शन के लिए लालायित नेत्रो से तथा मिलने के लिए चिन्ताग्रस्त दशा मे अपने राजभवन को चला गया। वहाँ उसका हृदय रात-दिन उस सौन्दर्यमयी ललना की मनमोहिनी मूर्ति के ध्यान मे तल्लीन रहता था। राजभवन मे जितनी भी सुन्दरी ललनाएँ थी उन सब के प्रति उसमे वैराग्य उत्पन्न होने लगा और साथ ही साथ उसमे दुर्बलता के लक्षण मे दिखाई पडने लगे।

इसके बाद वह अपने मन मे विचार करने लगा- "अभी तक मेरा मानस-रूपी उद्यान परम पवित्र था किन्तु अब इसमे कामानुराग-रूपी विष का वृक्ष उत्पन्न हो गया है। यह वास्तव मे अधिक अनर्थ ही हुआ है। इस आश्चर्यजनक रागवृत्ति अन्त करण की विचारधारा मे सहायता पहुँचाने वाले विवेक आदि सद्गुणो को हृदय से निकाल कर दूर फेंक दिया है। मैंने राजा होकर भी आज तक सभ्यता-विरोधक एक भी अविचार को अपने समीप नही आने दिया है, इतना ही नही उसकी छाया तक का भी स्पर्श नही किया है और मैं सभ्यता-विरोधक समस्त अविचारो से नित्य डरता रहा हूँ। ऐसी दशा मे मेरे मन मे अनर्थकारी दुराचरणो की भावना क्यो इतनी प्रबलता से उत्पन्न हो रही है? यदि राज्य का शासन करने वाला प्रतापी राजा ही प्रजा की स्त्रियो को अपनी काम-वासना को चरितार्थ करने का लक्ष्य बनावेगा, तो अधर्म का आचरण करने वाले पर स्त्री-गामियो का धर्म और न्याय के अनुसार दण्ड-विधान कर उचित शासन कौन करेगा? इस प्रकार विचार करने पर वह राजा न तो सदाचार को भूलता था और न उस परम सुन्दरी मनमोहिनी नरेन्द्रप्रभा की मूर्ति को ही भूल सकता था।

धीरे-धीरे राजा के अचानक अस्वास्थ्य के जाल मे पडने का कारण लोगो को विदित होने लगा। जिस समय परम सज्जन नोण को लोगो के द्वारा यह सब समाचार विदित हुआ उस समय वह बडी चिन्ता मे पड गया। फिर वह राजा के पास गया और उसे एकान्त मे ले जाकर कहने लगा—"महाराज! आपकी दशा अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई है। इस समय आपको धर्म और अधर्म की समस्या मे नहीं पडना चाहिए। जिस समय प्राण निकल रहे हो उस समय प्राणो की रक्षा के लिए किया गया कोई कर्म अधर्म नही कहा गया है। जिन सयमी महापुरुषो के वचनो को हम प्रमाण-रूप से स्वीकार करते हैं, उन्होने भी सकट-काल के अवसरो पर निर्वाह न होते देख अपने सयम को तिलाजलि दे दी है। स्वामिन्! केवल सुख्याति को ही ध्यान मे रखकर शरीर की उपेक्षा करना उचित नही है। और इसलिए कि समस्त दिशाओ के अतिम छोर तक

फैलने वाली सुख्याति भी मरने के बाद किसी के भी कर्णों को अमृत के समान तृप्ति प्रदान नही कर सकी है, अर्थात् मृत्यु के बाद हम अपना सुयश कानो से नही सुन सकते। मेरे सम्बन्ध मे शंकित होकर आप अपने कल्याण के मार्ग से विमुख न हो। आपके हित के लिए मैं अपने प्राणो को भी तुच्छ समझ रहा हूँ। ऐसी दशा मे जिस किसी के द्वारा भोग किये जाने वाले पदार्थ का क्या महत्व हो सकता है? इतने पर भी यदि उसको स्वीकार करने मे आपत्ति हो, तो मैं उसे देवमंदिर मे नृत्य-गीत के लिए देवदासी के रूप मे अर्पण किये देता हूँ और आप वहाँ से बिना किसी आपत्ति के उसे ले सकते है।"

इस प्रकार उस सज्जन नोण व्यापारी के विशेष रूप से आग्रह करने पर तथा कामदेव की प्रबल प्रेरणा से उस राजा ने प्रथम किंचित् लज्जित होकर उस परम सुन्दरी सुलोचना नरेन्द्रप्रभा को एक प्रकार स्वीकार-सा कर लिया। इस कार्य से उस सुन्दरता की मूर्ति नरेन्द्रप्रभा के चरित्र मे कुछ कलंक अवश्य लगा परतु उसने उदारतापूर्ण दयालुता आदि सद्गुणो के प्रभाव से उसे बड़ी उत्तमता के साथ धो डाला और फिर राज-रानी होकर उसी नरेन्द्रप्रभा ने नरेन्द्रेश्वर नामक शंकर की स्थापना की।

फिर कुछ समय के बाद जिस प्रकार वसुन्धरा से अमूल्य रत्न-निधि का लाभ होता है, उसी प्रकार प्रजा के पुण्य प्रताप से उस राजपत्नी नरेन्द्रप्रभा के गर्भ से चन्द्रापीड नामक पुत्र-रत्न प्रकट हुआ। जिस प्रकार खनिजरत्न यंत्र पर घिसने से निर्मल हो जाते हैं उसी प्रकार उस बालक का उत्पत्ति-विषयक दोष भी उसके उज्ज्वलतम सद्गुणो के कारण नष्ट-सा हो गया। जिस प्रकार अत्यन्त मलिन धूम्र से बना हुआ काले-काले मेघो का समूह निर्मल जल को बरसाता है और कुडौल पत्थरो से परिपूर्ण पर्वत से तीक्ष्ण लोहा निकलता है तथा अत्यन्त जड और शीतल जल से प्रज्वलित बडवानल की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार श्रेष्ठ और भाग्यशाली पुरुषो के स्वभाव उनके उत्पत्ति स्थान के अवलम्ब पर नही रहते। चन्द्रापीड के बाद क्रमश उसके तारापीड, मुक्तापीड तथा अविमुक्तापीड नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। प्रतापादित्य के ये तीनो पुत्र कुछ समय के बाद क्रम से वज्रादित्य, ललितादित्य तथा उदयादित्य के नाम से ससार मे प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार पचास वर्ष तक राज्य-भोग कर वह राजा दुर्लभक अर्थात् प्रतापादित्य अपने पुण्य कर्म-रूपी सोपानो से स्वर्ग को चला गया। उसके स्वर्ग चले जाने से प्रजा-वर्ग को बड़ा दुःख हुआ। राज्य के सभी लोग उसके वियोगजनित शोक-सागर मे मग्न हो गये।

२ राजा चन्द्रापीड की कथा

राजा प्रतापादित्य के बाद उसके स्थान पर राज-चूडामणि चन्द्रापीड सिंहासन का अधिकारी हुआ। पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति को भी लज्जित करने वाली कीर्ति के द्वारा उसने कलियुग को अत्यन्त पीडित कर दिया। प्राचीन समय के नरेशो ने श्लोक की समस्या के समान धर्म का केवल एक चरण सुरक्षित रख दिया था किन्तु उस परम पवित्र यशस्वी राजा ने उसके साथ प्रथम के तीन चरण जोडकर धर्म को चतुष्पाद अर्थात् चारो चरणो से युक्त कर दिया।

दिव्य उपवन की अविरुद्ध ऋतुओ के समान परस्पर विरुद्ध क्षमा और पराक्रम आदि गुण अविरुद्ध होकर राजा चन्द्रापीड की सेवा करने लगे। जिस प्रकार उपवन मे प्रवाहित होने वाली नहर स्थान-स्थान पर खडे हुए प्रत्येक वृक्ष को अपने जल से तृप्त करती है उसी प्रकार उस राजा चन्द्रापीड की सम्पत्ति भी स्थान-स्थान पर प्रत्येक अनुजीवी अर्थात् आश्रित अथवा शरणागत को

सन्तुष्ट करती थी। जिस प्रकार नदियाँ अपने प्रवाह के कूडे-कर्कट को पीछे के पर्वतों पर छोडकर और निर्मल बनकर समुद्र से मिलती हैं उसी प्रकार लक्ष्मी भी अपने समस्त अवगुण अन्य राजाओ के पास छोडकर और स्वयं निर्दोष रूप धारण कर उस राजा के आश्रय मे आ चुकी थी।

राजा चन्द्रापीड अत्यन्त कार्य-कुशल था। इसीलिए वह ऐसे कार्य कदापि नही करता था जिनके करने से उसे भविष्य मे कुछ भी चिन्तित होना पडे। उसकी वास्तविक प्रकृति तो ऐसी थी कि उत्तम कार्यों के करने से जब जनता अधिक प्रसन्न होती और मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा करने लगती तब वह जनता के ही सामने अधिक लज्जित होने लगता।

जिस प्रकार वज्र सम्पूर्ण रत्नो का भेदन कर सकता है किन्तु वज्र का भेदन कोई भी रत्न नही कर सकता, उसी प्रकार वह राजा समस्त मंत्रियो को उत्तम रीति से राजनीति सिखा सकता था किन्तु उसे किसी भी मन्त्री से राजनीति सीखने की आवश्यकता नही पडती थी। जिस प्रकार वज्र के भय से गरुड ने अपने पक्ष का त्याग किया था उसी प्रकार वह राजा भी धर्म-संशय मे अधर्म के भय से अपने पक्ष का त्याग कर देता था। जिस प्रकार अपने उदय-काल मे सूर्य मन्देह नामक दैत्यो का नाश करते हैं उसी प्रकार वह राजा भी न्याय-मार्ग से अग्रसर होकर प्रतिदिन अपने व्यावहारिक संशयो को नष्ट करता था।

कथा की शृंखला मे विच्छेद होने के भय से अब मैं उसके गुणो का इतना ही वर्णन कर आगे का वृत्तान्त लिखता हूँ। इस स्थल पर पाठको को यह न समझना चाहिए कि उसमे इतने ही गुण थे।

एक बार राजा चन्द्रापीड की आज्ञा से त्रिभुवन स्वामी का मन्दिर बन रहा था और उस मन्दिर की सीमा मे एक चर्मकार की झोपडी थी। मंदिर की सीमा मे होने के कारण उसे लेना अत्यावश्यक था किन्तु वह चर्मकार अपनी झोपडी को देने के लिए तैयार न था। मंदिर के कार्य मे नियुक्त किये गये नवीन कर्मचारीगण बार-बार उसे समझाते थे और उसका मुँह-माँगा मूल्य भी देने को तैयार थे किन्तु अत्यन्त आग्रह करने पर भी वह स्वीकार तो कर लेता किन्तु फिर भी अपनी झोपड़ी नही देता था। विवश होकर उन कर्मचारियो ने समस्त वृत्तान्त राजा से कहा। सुनते ही राजा ने उन समस्त कर्मचारियो को ही अपराधी ठहराया और उस चर्मकार के सम्बन्ध मे उसकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध कुछ भी नही कहा। राजा ने अपने कर्मचारियों से कहा, "मैं समझ गया कि तुम सब विचार-शून्य हो। यदि तुम मे से एक भी विचारवान् होता तो उस चर्मकार की अनुमति के बिना मंदिर का कार्य कदापि आरम्भ न करता। अतएव तुम सब को असंख्य बार धिक्कार है। अब तो उचित यही होगा कि या तो मंदिर का काम बन्द कर दो अथवा किसी दूसरे स्थान पर प्रारंभ करो। दूसरे की भूमि का अपहरण कर अपने सुकृत को कलंकित कोई नही करना चाहेगा। धर्म और अधर्म के विचारक हम लोग भी यदि ऐसे अधर्म के कर्म करने मे प्रवृत्त होने लगेंगे तो फिर न्याय के मार्ग पर कौन चलने का साहस कर सकेगा।"

राजा के इन धार्मिक और न्यायपूर्ण विचारो को ध्यानपूर्वक सुन लेने के बाद मंत्रि-मण्डल ने उस चर्मकार के पास दूत भेजा और वह दूत उसके पास से लौट आकर कहने लगा—"वह महाराज से मिलना चाहता है और कहता है कि यदि मैं राजभवन मे न आ सकूँ, तो महाराज जब कही अन्यत्र जायेंगे तब उनकी सेवा मे उपस्थित होने का प्रयत्न करूँगा।"

दूसरे दिन उस चर्मकार को किसी बाहर के स्थान मे दर्शन देकर राजा ने उससे कहा—"तू मेरे पुण्य कार्य मे क्यो विघ्नरूप हो रहा है ? यदि तुझे वह घर ही अच्छा लगता हो, तो मैं उससे उत्तम भवन तुझे देता हूँ और यदि धन की लालसा हो, तो धन भी पर्याप्त मात्रा मे दे दूंगा।"

इस प्रकार कहकर जब राजा ने मौन धारण कर लिया तब वह चर्मकार अपने दांतो की किरण-रूपी डोरी से राजा के धर्म को नापता हुआ सा प्रार्थना करने लगा—"महाराज ! मैं अपने मन की बात का आपसे निवेदन कर रहा हूँ। इसमे यदि कटु सत्य से युक्त वचन कहे जायं तो आप को गर्व से अथवा आवेश से रुष्ट न होना चाहिए। श्रीमन् ! मैं कुत्ते की अपेक्षा किसी भी दशा मे कम नही हूँ और आप राजश्रेष्ठ काकुत्स्थ अर्थात् श्रीरामचन्द्र से अधिक नही हैं। ऐसी दशा मे आपके साथ के सभ्य हमारे पारस्परिक सम्भाषण को सुनकर किसलिए क्षुब्ध हो रहे हैं ! इस ससार मे उत्पन्न प्राणियो का विनाशशील शरीर-रूपी केचुल अहतत्व और स्वाभिमान रूपी दो कीलो पर ही आधारित है। भुजबन्द, कगन और हार आदि रमणीय आभूषणो से भूषित आप जैसे राजाओ को जिस प्रकार स्वाभिमान है, उसी प्रकार मुझ जैसे दरिद्र मनुष्य को भी है। जिस प्रकार आपको अपना भव्य राजभवन प्यारा है उसी प्रकार मुझे भी फूटे घडे की खिडकी वाली अपनी पुरानी झोपडी प्यारी लगती है।"

"मैं जिस दिन उत्पन्न हुआ था उसी दिन से लेकर आज तक यह झोपड़ी मेरी माता के ही समान मेरे समस्त सुखो और दु खो की साक्षिणी है, अतएव मैं इस परम पूजनीया माता के समान महिमामयी झोपडी को नष्ट होते हुए नही देख सकता। घर के अपहरण होने पर जो कष्ट मनुष्य को होता है उसका अनुभव केवल दो प्रकार के मनुष्य ही कर सकते है। एक तो राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा और दूसरा विमान से गिरा हुआ मनुष्य। इतने पर भी यदि आप मेरे घर पर आकर मुझसे इसकी याचना करें, तो शिष्टाचार के अनुरोध से मुझे अपनी झोपड़ी आपको देना ही उचित है।"

चर्मकार की इन सब बातो को सुनकर राजा चन्द्रापीड उसके घर पर गया और मुँह-माँगा मूल्य देकर उससे उसकी झोपडी ले ली क्योकि जिनके हृदय मे कल्याण करने की इच्छा प्रबल होती है उनके हृदय मे मिथ्याभिमान कदापि स्थान नही पाता।

इसके बाद वह चर्मकार हाथ जोडकर राजा चन्द्रापीड से कहने लगा "राजन् ! आपकी यह धर्म-परतन्त्रता सर्वथा उचित है। प्राचीन समय मे जिस प्रकार कुत्ते के भेष मे धर्म ने महाराज युधिष्ठिर के धार्मिक भावो की परीक्षा की थी उसी प्रकार चर्मकार होकर भी मैंने आपके धार्मिक भावो की परीक्षा की है। महाराज ! आपका कल्याण हो और आप इसी भांति धार्मिक कार्यों से श्रद्धेय पवित्र आचरण-पद्धति को प्रदर्शित करते हुए चिरकाल तक पृथ्वी पर राज्य करते रहें।"

इस प्रकार निष्पाप आचरण करने वाला वह राजा चन्द्रापीड त्रिभुवन-स्वामी विष्णु की प्रतिष्ठा से पृथ्वी की पवित्रता मे उत्तरोत्तर वृद्धि करने लगा। उसकी पत्नी प्रकाशदेवी ने प्रकाश के आश्रयभूत निर्मल आकाश के समान उज्ज्वल कर्मों से ससार को प्रकाशपूर्ण कर दिया और प्रकाशिका-विहार का निर्माण कराया।

उस राजा चन्द्रापीड का गुरु मिहिरदत्त समस्त उत्तम गुणों से परिपूर्ण था। उसने गभीर

स्वामी नामक विष्णु की स्थापना की और छलितक नामक नगरपाल अर्थात् कोतवाल ने छलित-स्वामी मंदिर का निर्माण कराया।

किसी समय एक ब्राह्मणी ने प्रायोपवेशन किया था। प्रायोपवेशन आमरण भूख-सत्याग्रह को कहते हैं। उस ब्राह्मणी के ऐसा करते ही राजा के कर्मचारियो ने उसे धर्म के आसन पर बैठे हुए राजा के सामने उपस्थित किया और उससे प्रायोपवेशन का कारण पूछा। उसने राजा से कहा "राजन् इस पृथ्वी पर आपके न्यायपूर्ण शासन के समय मे भी किसी ने सुखपूर्वक सोये हुए मेरे पति का वध कर डाला है। सदाचारी राजा के लिए यही बात सबसे अधिक लज्जा-जनक है कि उसके राज्य मे प्रजा की इस प्रकार अपमृत्यु होती है। इसे हम कलियुग का दोष भी कह सकते हैं, फिर भी इस प्रकार के अत्यन्त पापमय कर्म होने पर भी आप उदासीन किस लिए हो रहे हैं? भली भांति सोच लेने पर भी मुझे अपने पति का कोई शत्रु नही दीख पड़ता क्योंकि वह निर्दोष, सच्चा प्रेमी तथा परम शान्तिप्रिय था। उस के लिए सर्वत्र सद्भावना का साम्राज्य था। वह द्वेष तथा गर्व से सर्वथा शून्य था। मधुर-भाषी, गुण-वत्सल तथा पूर्व-भाषी और निर्लोभ था। इसलिए उससे कोई भी शत्रुता नही रखता था। इस आकस्मिक हत्या के सम्बन्ध मे मुझे केवल एक व्यक्ति पर सदेह हो रहा है। वह व्यक्ति बाल्यावस्था से ही बुद्धिहीन सहाध्यायी होने के कारण मेरे पति से द्वेष करता था। वह मान्त्रिक है और माक्षिक स्वामी के समीप रहता है।"

"गुणहीन क्षुद्र पुरुष सज्जनो से सर्वदा द्वेष करते है क्योंकि वे उनकी बराबरी नहीं कर सकते। इसीलिए उन्हे नीद तक नही आती और वे अपने से श्रेष्ठ सत्पुरुषो को कष्ट देने का प्रयत्न करते रहते हैं। कभी-कभी तो उनके प्राणो की भी हानि कर देते हैं। इस ससार में वेश्या-पुत्र के अतिरिक्त दु:शील और कौन होगा और दोषी हुए बिना सर्वदा शकाशील कौन बना रहेगा तथा वाचाल के अतिरिक्त और कौन मिथ्या भाषण करेगा तथा कायस्थ को छोडकर दूसरा और कौन कृतघ्न होगा? अनुदार पुरुष के पुत्र को छोडकर कृपण कौन होगा! स्पर्धाशील पुरुष के अतिरिक्त कौन निरन्तर दु:खी होगा? स्त्री जाति को छोडकर ससार मे हास्यास्पद कौन होगा और वृद्धो के अतिरिक्त निरन्तर मधुर-भाषी कौन होगा? जारज ही पिता का द्रोह करेगा और कामुक ही निर्लज्ज होगा तथा क्षुद्र विद्वान् ही पापी होगा। यही सच्चा सिद्धान्त है।"

ब्राह्मणी की इन सब बातो को सुनकर राजा ने उस शकास्पद मान्त्रिक ब्राह्मण को बुल-वाया और उसके आने पर उससे उस पर लगाये गये कलक का उत्तर पूछा और कहा—"तुम किसी दिव्य कर्म से अपने को निर्दोष सिद्ध करो।" राजा के इस प्रकार कहते ही उस ब्राह्मणी ने राजा से कहा "देव! यह मान्त्रिक है, इसीलिए मन्त्र के प्रभाव से अनेक प्रकार के दिव्य कर्म करके दिखला सकता है।" ब्राह्मणी के इस कथन को सुनकर राजा उदास हो गया और कहने लगा—"जिसका अदृष्ट अपराध सिद्ध नही होता उसे हम किस प्रकार दण्ड दे सकते है? अपराध प्रमाणित हुए बिना जब साधारण पुरुषो तक को दण्ड नही दिया जाता, तब फिर तो यह ब्राह्मण है। अपराध सिद्ध होने पर भी हम इसे प्राणदण्ड नही दे सकते।" राजा के समस्त बातो को सुनकर उस ब्राह्मणी ने कहा "राजन्! मुझे अनशन करते हुए चार दिन बीत चुके हैं। इस हत्या के प्रतिशोध की इच्छा से मैंने सती न होकर अपने को जीवित रखा है। यदि घातक को दण्ड नही दिया जायगा तो मैं अनशन द्वारा प्राणत्याग कर दूंगी।"

उस ब्राह्मणी की इस प्रतिज्ञा को सुनकर राजा ने भी त्रिभुवन स्वामी के सामने प्रायोपवेशन प्रारम्भ किया। तीन दिन वीतने के वाद चौथे दिन भगवान विष्णु ने स्वप्न मे दर्शन देकर कहा, "राजन्! इस कलियुग मे सत्य की खोज के लिए इस प्रकार हठ करना सर्वथा अनुचित है। रात मे कौन सूर्योदय कर सकता है? फिर भी तुम्हारे प्रभाव के अनुरोध से एक वार दिव्य चमत्कार अवश्य दिखाई पडेगा। मेरे इस मन्दिर मे शालि-चूर्ण अर्थात् चावल का आटा फैला देना। उस पर अपराधी से तीन प्रदक्षिणा करने के लिए कहना। यदि उसके चरण-चिह्न के पीछे-पीछे ब्रह्म-हत्या के भी चरण-चिह्न दीखने लगें तो उसे अवश्य अपराधी समझ कर उचित दण्ड देना। यह कार्य रात्रि मे ही करना क्योंकि दिन मे भगवान् सर्वविधि पातको का नाश करते रहते हैं।"

भगवान् विष्णु के आदेशानुसार राजा ने उस ब्राह्मण की परीक्षा की और वह सदोष सिद्ध हुआ किन्तु ब्राह्मण होने के कारण उसे प्राणदण्ड के अतिरिक्त दूसरा दण्ड दिया गया। इसके वाद उस सत्यशीलवती ब्राह्मणी ने राजा के द्वारा किये गये दण्ड-विधान से प्रसन्न होकर कहा "राजन्! इस भू-मण्डल मे आज तक अनेक प्रकार के असख्य भूमि-पालक हो चुके हैं, उनमे इस प्रकार के गुप्त अपराधो का अनुसधान कर शासन-विधान या तो राजा कार्त्तवीर्य के राज्य-काल मे होता था या आपके शासन-काल मे हुआ है। आपके समान दण्डधारी शासक जव तक पृथ्वी को सनाथ कर रहा है तव तक इस भूमि पर किसी को उत्कट स्नेह अथवा वैर का उचित फल मिले विना नहीं रह सकता।"

ऐसे धार्मिक और न्याय-परायण राजा चन्द्रापीड का शासन-काल थोडे ही दिनो तक रहा किन्तु उसके अनेक सत्कार्यों से सतयुग का स्मरण होता था। ऐसा प्रतीत होता है मानो निरन्तर कमलासन पर वैठने से ब्रह्मा की वुद्धि मे अत्यन्त जड़ता उत्पन्न हो गई है, नही तो वह सदाचार द्वारा वर्णों की शोभा वढाने वाले ऐसे उत्तम शासक चन्द्रापीड को वर्ण-शोभा से युक्त इन्द्रधनुष के समान क्षण भर दिखाकर नष्ट क्यो कर देता! उस राजा चन्द्रापीड को उसके छोटे भाई दुष्ट तारापीड ने दण्ड-विधान से रुष्ट हुए उस मान्त्रिक द्वारा अभिचार कराकर कीर्त्तिशेष कर दिया। पापात्मा पुरुष दुष्कर्म से प्राप्त दुर्लभ भोगो को भोगने के लिए उन्नत गुणशाली पुरुष को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं जिस प्रकार ऊँट काँटो के वृक्ष को भक्षण करता हुआ केतकी वृक्ष को भी समूल नष्ट कर देता है।

उसी दिन से इस काश्मीर-राज्य मे राज्य लोभी राज-वशजों द्वारा अपने से वड़े अधिकारियो की अभिचारो द्वारा हत्या की जाने लगी। राज-चूडामणि श्री चन्द्रापीड देव की अत्यधिक क्षमाशीलता का स्मरण होते ही सभी का शरीर हर्ष से पुलकायमान हो जाता है क्योंकि आसन्न मृत्यु की दशा मे उस ब्राह्मण द्वारा किये हुए अभिचार का पता रहते हुए भी "दूसरे की प्रेरणा से इसने यह कर्म किया है" ऐसा सोचकर राजा चन्द्रापीड ने उसका वध नही किया।

ब्रह्मा राजा चन्द्रापीड को सत्ययुग के राजाओं मे रखना भूल गये थे, इसीलिए उस भूल को सुधारने के लिए काकपद-चिह्न लगाकर कलियुग की राज-परम्परा मे इसे रख दिया। इस राजा चन्द्रापीड ने आठ वर्ष और आठ मास राज्य करके स्वर्ग मे तथा सज्जनो के अन्त करण मे सर्वदा के लिए प्रवेश किया। सभी सत्पुरुष उसके वियोग से अधिक दुखी हुए।

३ राजा ललितादित्य की कथा

उसके वाद भ्रातृ-द्रोही दुष्ट तारापीड को उसके पाप का फल काश्मीर का राज्य प्राप्त

हुआ। वह अत्यन्त भयानक और क्रूर कर्म करने वाला पुरुष था। उसने नवीन राज्य-वैभव पाने के बाद शत्रुओ का मस्तकच्छेदन करते हुए अपने प्रताप-रूपी शिशु के जन्म-काल मे कबन्धो का नृत्य कराया। अत्यन्त दुष्ट प्रकृति वाले तथा दुष्कर्मों को करने वाले उस राजा की चमकती हुई लक्ष्मी श्मशान-भूमि मे जलने वाली अग्नि-शिखा की दीप्ति के समान उद्वेगजनक थी।

"ब्राह्मण लोग मन्त्रो के प्रभाव से देवताओ को प्रसन्न कर लेते हैं" ऐसा सोचकर उसने देवताओ से द्वेष और समस्त ब्राह्मणों का दमन करना आरम्भ कर दिया। उसने अपने गुरु से भी द्रोह करना आरंभ कर दिया। इससे उसका समस्त पुण्य क्षीण हो गया। परिणाम यह हुआ कि वह केवल चार वर्ष और चौबीस दिन राज्य कर पाया। उसके बाद ब्राह्मणो द्वारा गुप्त अभिचार से राजा चन्द्रापीड के समान उसे भी मृत्यु प्राप्त हुई किन्तु वैसी सद्‌गति नही मिली। दूसरो का नाश करने के लिए मनुष्य जिस उपाय का सहारा लेता है, उसी से उसका भी विनाश होता है। दूसरे के नेत्रो को अंधा करने के लिए अग्नि धूम्र उत्पन्न करती है किन्तु वही धूम्र मेघ का रूप धारण कर जल की वृष्टि द्वारा उसी अग्नि को शान्त कर देता है।

तारापीड के बाद उसी का छोटा भाई ललितादित्य काश्मीर के राज-सिंहासन का अधिकारी हुआ। विधाता ने तो उसे माण्डलिक राजा ही बनाया था किन्तु वह विधाता की बुद्धि से परे होकर सार्वभौम राजा हुआ। वस्त्रो को सुगंधित करने वाले चूर्ण के समान अपने प्रताप की किरणो की घटाओ के समूहो से जम्बुद्वीप-रूपी गजेन्द्र को राजा ललितादित्य ने अलंकृत कर दिया था। इस पराक्रमशाली राजा ने दिग्विजय के समय युद्ध मे राजाओ के प्रणामो से युक्त अंजलियो को देखकर क्रोध का त्याग कर दिया और उन पर दया प्रकट कर युद्ध की अभिलाषा को भी छोड दिया। उसकी रण-दुंदुभि के भयानक शब्द से भयभीत होकर भागती हुई शत्रु के नगरो की प्रजा वहाँ की रमणियो के गर्भपात के समान दिखाई पडती थी। उसने अपने शत्रुओ की पत्नियो के स्वेद-विन्दु से बहते हुए तिलकयुक्त (तिलक और तिल इन दोनो ही अर्थों मे) एवं नेत्र के जल-सहित मुखो से अपने मृत स्वामियो को तर्पणांजलि दान कराया।

प्रतिदिन पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हुए सूर्य के समान उस राजा की सम्पूर्ण तरुणावस्था दिग्विजय की यात्रा मे ही व्यतीत हो गई। प्रताप-रूपी अग्नि की समीपता मे पूर्व दिशा का कर ग्रहण करता हुआ और यश-रूपी पगडी से सुशोभित वह राजा ललितादित्य अन्तर्वेदी मे प्रकाशित हो रहा था। तात्पर्य यह कि पूर्व दिशा की विजय करते समय गङ्गा-यमुना के मध्यवर्ती अन्तर्वेद प्रदेश के राजाओ को जीतकर उसने उनसे कर ग्रहण किया और अपने प्रखर प्रताप का आतंक उन पर पूर्णरूपेण जमा दिया।

जिस गाधिपुर मे वायुदेव ने प्राचीन समय मे कन्याओ को कुब्जा कर दिया था उसी गाधिपुर मे राजा ललितादित्य ने वीर योद्धाओ को कुब्ज कर दिया था। यशोवर्मा-रूपी पर्वत से उत्पन्न हुई सेना-सरिता को क्षण भर मे सुखा देने के कारण वह ललितादित्य ही प्रतापादित्य बन गया, अर्थात् सूर्य के समान प्रखर प्रतापशाली हो गया।

यशोवर्मा ने अर्थात् कान्यकुब्ज देश के राजा ने सूर्य के समान प्रतापशाली राजा ललितादित्य से युद्ध न करके सन्धि करने का दृढ विचार कर लिया। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टिकोण से उसने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया किन्तु उस राजा ललितादित्य के कर्मचारीगण उसकी अपेक्षा भी अधिक स्वाभिमानी थे क्योंकि वसन्त की अपेक्षा भी मलय-पवन अधिक सुगन्धयुक्त

रूपी जल के भ्रम को उत्पन्न करने वाले उत्तरापथ के बालुका-समुद्र में उसके प्रचंड गजेन्द्र ग्राहों के समान दिखते थे।

स्त्री-राज्य मे उसके वीर सैनिको को स्त्री-जनो ने उत्तुंग स्तन-कुम्भों के प्रभाव से धैर्य-हीन कर दिया था, न कि हाथियो के कुम्भो से। स्त्री-राज्य की देवी अर्थात् रानी जिस समय राजा ललितादित्य के सामने उपस्थित हुई थी उस समय होने वाले कम्प भय के कारण थे अथवा प्रेमाभिलाष के कारण थे, इसका कोई भी निर्णय नही कर सका। उत्तर कुरुदेश के निवासी राजा लोग, गरुड के भय से बिलो मे छिपे हुए सर्पों के समान आपत्ति-काल मे आश्रय देने वाले जन्म-भूमि के वृक्षो मे छिप गये।

जिस प्रकार हाथियो को मारकर सिंह अपने नखो मे गजमुक्ताओं को धारण कर गुहा मे प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह राजा ललितादित्य भी विजय द्वारा उपार्जित धन लेकर अपनी राजधानी काश्मीर-मण्डल मे गया। वहाँ पहुचकर उसने अपने सेवको को पारितोषिक के रूप मे जालंधर, लोहर आदि अनेक प्रान्त प्रदान किये तथा उन सबो को भी राज शब्द से विभूषित कर दिया।

उस उग्र स्वभाव वाले राजा ललितादित्य ने पराजित राजाओ को पराजय के सूचक चिह्नों को धारण करने की आज्ञा दी थी। वे उन्हे आज भी निरभिमान होकर धारण करते हैं। तुरुष्क लोग उस राजा के आदेश से बन्धन-मुद्रा को सूचित करने के लिए अपने दोनो हाथ पीठ पर रखते हैं और आधा सिर मुंडवाते हैं। उसने दाक्षिणात्यो की पशुता को सूचित करने के लिए उन्हें अपनी धोती का भाग पीछे की ओर पूंछ के समान लटकाये रखने का आदेश दिया।

इस पृथ्वी पर ऐसा कोई भी ग्राम, नगर, नदी, समुद्र तथा द्वीप नही था कि जिसमे राजा ललितादित्य ने देवमंदिर की प्रतिष्ठा न की हो। उस स्वाभिमानी राजा ने स्थापित किये गये मदिरो को अन्वर्थक तथा समयानुकूल नामो से प्रसिद्ध किया। उसने अपने दिग्विजय के निश्चय का स्मारक सुनिश्चितपुर बसाया और दिग्विजय की समाप्ति के बाद अपने दर्प का स्मारक दर्पित-पुर बसाकर उसमे केशवदेव की स्थापना की।

इसी प्रकार उसने जहाँ फल ग्रहण किये थे वहाँ फलपुर, जहाँ पर्ण ग्रहण किये थे वहाँ पर्णोत्स बसाया। क्रीडास्थल पर क्रीडाराम नामक विहार बनवाया। उस राजा ललितादित्य ने स्त्री-राज्य मे नृसिंह का मदिर बनवाया और उसमे मूर्त्ति के नीचे तथा ऊपर लोह-चुम्बक रखकर मूर्त्ति को निराधार मध्यस्थ रखा गया। जिस समय दिग्विजय के लिए देश-देशान्तरो मे ससैन्य भ्रमण कर रहा था उस समय उस की अनुपस्थिति मे ही उसके किसी एक कर्मचारी ने राजा के नाम से ललितपुर नामक नगर बसाया और बाद मे वही राजा के क्रोध का पात्र बना। राजा ने उस ललितपुर मे आदित्य-भगवान की स्थापना कर उसके पूजन-प्रबन्ध के लिए उदारतापूर्वक विजय के द्वारा प्राप्त हुए कान्यकुब्ज देश के सम्पूर्ण ग्राम अर्पण कर दिये। उसी प्रकार उस उदार-चरित्र महापुरुष ने हुष्कपुर मे श्रीमुक्तस्वामी की स्थापना कर एक विशाल विहार तथा स्तूप बनवाया। दिग्विजय के लिए यात्रा करते समय राजा ललितादित्य एक करोड दीनार अपने साथ लेकर चला था। फिर दिग्विजय के कार्य से सफलतापूर्वक निवृत्त होकर प्रायश्चित्त करने के लिए ग्यारह करोड दीनार भूतेश को अर्पण किये। उसने वहाँ ज्येष्ठेश का पाषाणमय मदिर बन-वाया और वहाँ की पूजा के लिए बहुत से ग्राम तथा भूमि अर्पण की।

इन सब के अतिरिक्त चक्रधर नामक स्थान पर वितस्ता नदी के किनारे रेहट लगवा कर ऊँचे गाँवो मे पानी पहुँचाने का प्रबन्ध किया। उसने दृढ़तर पाषाण-निर्मित प्राकार से घिरे हुए और द्राक्षालताओ से परिपूर्ण एक भव्य नगर बसाया तथा उसके मध्य मे श्रीमार्तण्ड का मन्दिर बनवाया। उस विजयशील राजा ने लोकपुण्य नामक स्थान पर एक नगर बसाकर वहाँ के विष्णु भगवान् को अनेक ग्राम तथा उपकरण अर्पण किये।

देवताओ के राजा इन्द्र के समान प्रतापशाली उस राजा ने अमरावती का परिहास करने योग्य परिहासपुर नामक नगर बसाया और वहाँ रजतमय परिहास केशव की स्थापना की। उस स्थान पर भगवान् परिहास केशव का स्वरूप समुद्रशायी विष्णु के मोती-जडे हुए आभूषणो की किरणावली से धवल शरीर के समान चकचकता था।

उसने मुक्ताकेशव नामक विष्णु की मूर्त्ति सुवर्ण की बनवाई थी। वह मूर्त्ति विष्णु के नाभि-कमल-मध्यवर्ती किंजल्क अर्थात् कमल-केसर के समान पीतवर्ण दीखती थी और वराह भगवान् की सुवर्ण कवचधारिणी प्रतिमा पाताल-लोक के घन-तिमिर को नष्ट करने के लिए प्रकाशमान् सूर्य-मण्डल के समान चमकती थी। इसी प्रकार उस राजा ने गोकुल की गायो के दूध से धवल शरीर श्रीकृष्ण के समान रजतमय श्रीगोवर्धनदेव की मूर्त्ति स्थापित की। उसने चौवन हाथ ऊँचा एक पाषाण-स्तम्भ बनवाकर उस पर श्रीविष्णु-वाहन गरुडदेव की मूर्त्ति को स्थापित किया। उस निरभिमान राजा ने विशाल चतुःशालाएँ तथा आयत चैत्य और दीर्घकाय जिन-मूर्तियो से युक्त राजविहार नामक विहार का निर्माण किया। उसने मुक्ताकेशव की प्रतिमा मे चौरासी हजार तोला सुवर्ण लगा दिया था। उसी प्रकार निर्मल बुद्धि राजा ने परिहास केशव की मूर्त्ति भी उतनी ही चाँदी से बनवाई थी और गगन-चुम्बक विशालतम बुद्धदेव की प्रतिमा का वजन चौरासी हजार प्रस्थ था। यह विशाल प्रतिमा काँसे की थी। उसने इन समस्त मूर्तियो के वैसे ही श्रेष्ठ तथा विशाल और मनोहर चैत्य बनवाये थे। इस प्रकार उसके द्वारा निर्माण किये गये पाँचो स्थानो मे अर्थात् परिहासकेशव, मुक्ताकेशव, महावराह, गोवर्धनधर और बुद्ध मे समान द्रव्य का व्यय हुआ था।

कुबेर के समान सम्पत्तिशाली उस राजा ने प्रत्येक प्रधान देव-प्रतिमा के दोनों पार्श्वों मे उनके पार्षदो की सुवर्ण तथा रजत द्वारा निर्मित प्रतिमाओ को स्थापित किया था। उस उदार राजा ने मन्दिरो को कितने रत्न तथा ग्राम और सेवक अर्पण किये थे, इनकी गणना कौन कर सकता है। इसी प्रकार राजपत्नियाँ, राजमंत्री तथा माण्डलिक राजाओ ने भी राजा का अनुकरण करते हुए उस नगर मे शतत देवालय बनवाये थे।

उसकी रानी कमलावती ने कमलाहट्ट नामक बाजार बसाया और कमलाकेशव की एक विशाल चाँदी की प्रतिमा बनवाकर स्थापित की। प्रधानमंत्री मित्रशर्मा ने भी मित्रेश्वर नामक शंकर की स्थापना की और लाटदेश के माण्डलिक राजा कय्य ने कय्यस्वामी का एक मन्दिर बनवाया। उसी ने अपने नाम से कय्यविहार भी बनवाया था। उस विहार मे जिनदेव के समान शान्त स्वभाव वाला सर्वज्ञमित्र नामक एक भिक्षु रहता था।

तुखार देश-निवासी चिंकुण मंत्री ने चिंकुण विहार बनवाकर श्रीललितादित्य के चित्त के समान उन्नत एक स्तूप बँधवाया और सुवर्ण की जिन-मूर्त्तियाँ बनवाकर स्थापित की। उसकी पत्नी ईशानदेवी ने एक उत्कृष्ट कुण्ड बनवाया। उस कुण्ड का जल स्फटिक के समान

होता है। अतएव यशोवर्मा की ओर से लिखे गये सधि को देखकर राजा ललितादित्य का सधि-विग्रहिक मंत्री मित्रशर्मा उसमे की गई अवहेलना को क्षमा न कर सका। उस सधि-पत्र मे "यह सन्धि-पत्र यशोवर्मा एवं ललितादित्य की अनुमति से लिखा गया है" इस प्रकार की लेखन-शैली द्वारा यशोवर्मा का प्रथम नामोल्लेख कर राजा ललितादित्य का गौणत्व बतलाया गया था, इस बात से मित्रशर्मा ने काश्मीर-शासक के लिए अपमानजनक विचार मान लिया था, इसीलिए वह वाक्य मित्रशर्मा को अच्छा नही लगा।

यद्यपि यह बात युद्ध से थके हुए सेनापतियो को फिर से युद्ध के प्रारभ होने के दुःख से अप्रिय लगती थी, तथापि राजा ललितादित्य को अपनी विजय की अभिलाषा करने वाले अपने उस मत्री की दूरदर्शिता से अत्यन्त प्रसन्नता हुई। राजा ने बड़ी प्रसन्नता के साथ मित्रशर्मा को पाँच महाविरुदो का अधिकारी बना दिया और यशोवर्मा को युद्ध मे पराजित कर राज्य से च्युत कर दिया।

उसी समय से प्राचीन अठारह कार्य-स्थानो पर जो कि पहले से चले आ रहे थे, ये पाँच महाविरुदें प्रधान रूप से नियुक्त की गई। महाप्रतिहारपीडा, महासन्धिविग्रह, महाश्वशाला, महाभाण्डागार और महासाधनभाग नाम की पांच नवीन विरुदें निर्माण की गईं। इनके कार्यकर्ता शाही वश के लोग ही हुआ करते थे। वाक्पतिराज भवभूति आदि महाकवि-सेवित कवि यशोवर्मा उस दिन से स्वयं ललितादित्य राजा का स्तुति-पाठक हो गया था। यमुना नदी के उत्तर तीर से लेकर कालिका नदी के तीर तक का सम्पूर्ण कान्यकुब्ज देश राजा ललितादित्य के लिए गृहागण के समान सुगम्य हो गया था।

हिमालय पर्वत के समान मार्ग मे विघ्न-रूप यशोवर्मा को लाँघकर गङ्गा के समान विस्तृत राजा ललितादित्य की सेना पूर्व-सागर के समीप पहुँच गई। उस सेना के असख्य गजो ने अपनी जन्मभूमि कलिग देश को देखकर वही रहने की अभिलाषा प्रकट की किन्तु चतुर महावतो ने बडी कठिनता से उन सब को वहाँ से आगे बढने के लिए बाध्य किया।

आकर्षण की गई लक्ष्मी के पलग के समीप रहने वाले गजो की मित्रता के कारण गौड देश के सम्पूर्ण गज राजा ललितादित्य की सेना मे सम्मिलित होकर उसके गजो से बडी शीघ्रता के साथ मिल गये। उसकी सेना के अग्रभाग मे चलते हुए हाथियो के समूह की सूंडो द्वारा समुद्र के तरग-रूपी केशो का आकर्षण हुआ-सा प्रतीत होने लगा।

वहाँ से उसने समुद्र-वेला के विशाल और घने जङ्गली प्रदेश के मार्ग से दक्षिण दिशा के लिए विजय-प्रयाण किया और उसके शत्रुओ ने उसकी तलवार के प्रहार से तुरंत दक्षिण दिशा की ओर महाप्रयाण किया अर्थात् युद्ध क्षेत्र मे मरकर यमराज के समीप पहुँच गये। उन्नत जटा-जूटधारी कर्णाटक देश के निवासियो ने सुवर्ण-केतकी रूपी केश के भूषणो को त्यागकर राजा ललितादित्य के चरणो मे अपना मस्तक झुका दिया और उसके प्रताप को ही अपना आभूषण बना लिया।

उस समय दक्षिणापथ देश मे कर्णाटक देश मे जन्म लेनेवाली रट्टा नामक रानी राज्य करती थी। उसने दुर्गादेवी के समान अपने तीक्ष्ण प्रभाव से विन्ध्य-वन के सम्पूर्ण मार्ग को निष्कन्टक कर दिया था। वह चंचलनयनी अत्यन्त धनाढ्य थी। राजा ललितादित्य को प्रणाम करते समय राजा के चरण-नख-रूपी दर्पण मे अपने प्रति को अकित हुआ देखकर वह रानी अत्यन्त सन्तुष्ट

हुई। वहाँ राजा ललितादित्य के सैनिकों ने ताड-वृक्षो की छाया में नारिकेल फलों के सुमधुर जल को पीकर कावेरी नदी के शीतल, मन्द एव सुगन्ध पवन का सेवन करते हुए अपने श्रम को दूर किया। चन्दन-वृक्षो की शाखाओ को त्यागकर सरकते हुए कृष्ण सर्प उस राजा ललितादित्य के भय से मलयाचल के चन्दन-वृक्षो द्वारा उठाई गई तलवारो के समान शोभायमान हो रहे थे।

जिस प्रकार बनावटी नदी का उल्लघन करते समय उसके भीतर के पत्थरो पर पैर रखकर चला जाता है, उसी प्रकार छोटे-छोटे द्वीपो को लाँघता हुआ वह राजा समुद्र के द्वीपो मे सरलता-पूर्वक आवागमन करने लगा। समुद्र की बड़ी-बडी तरगो के गम्भीर घोष-रूपी जय शब्द और मागलिक गायनो से आनदित होकर वह राजा पश्चिम की ओर अग्रसर हुआ। जिस प्रकार भगवान् सूर्य का प्रखर प्रताप सप्त अश्वो पर आक्रमण करता हुआ सातो द्वीपो पर फैल जाता है, उसी प्रकार उस राजा ललितादित्य का प्रताप कोङ्कण आदि सात देशो पर आक्रमण करने से सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया।

प्रबल पवन के वेग से क्षुब्ध तरगयुक्त पश्चिम समुद्र मे दीखती हुई द्वारका नगरी में प्रवेश करने के लिए उसके वीर सैनिक अत्यन्त उत्कण्ठित होने लगे। उसकी विशाल सेना के पदाघातो से उडी हुई पृथ्वी और आकाश को एक कर देने वाली गैरिकादि धातुओ की रेणु से विंध्याचल क्रोध से रक्तलोचन होकर फिर से अपनी मर्यादा को उल्लघन करने के लिए उद्यत-सा प्रतीत होने लगा।

अवन्ती नगरी अर्थात् उज्जयिनी में प्रवेश करते हुए राजा ललितादित्य की सेना के हाथियो के दाँत श्रीमहाकाल के किरीट मे शोभा देने वाले चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से खडित होने लगे। इसके बाद उस राजा ललितादित्य ने एक प्रकार मे समस्त दिशाओ के राजाओ को जीत लिया और फिर सुविस्तीर्ण उत्तरापथ मे प्रवेश किया। वहाँ उसको पद-पद पर अत्यन्त क्रूर स्वभाववाले राजाओ से भयानक सग्राम करना पडा। उस भयानक सग्राम को देखकर पक्षो का उच्छेदन करने के लिए उद्यत इन्द्र के साथ पर्वतो के भयानक सग्राम का स्मरण हो जाता था। काम्बोज देश के राजा की अश्वशून्य अश्वशालाएँ अन्धकारपूर्ण होने के कारण महिषो द्वारा आक्रमण की गई-सी दीखने लगी।

तुखार लोग उसके भय से अपने अश्वो को छोड कर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ो पर चले गये और वहाँ अश्वमुखी किन्नरो को देखकर अपने अश्वो से हताश हो गये। मुम्मुनि नामक राजा को तीन बार परास्त कर राजा ललितादित्य ने उसे पूर्ण रूप से परास्त समझा क्योंकि सच्चे वीरो को एक बार किया गया शत्रु-पराभव आकस्मिक तथा घुणाक्षर न्याय से हुआ-सा प्रतीत होता है।

स्वाभाविक श्वेत भूटान-निवासियो के मुख पर उसके भय का प्रभाव नही दीखता था। वानरो के मुख स्वभाव से ही पिंगल अथवा लाल होते हैं, इसलिए उन्हे क्रोध आने पर भी कौन-सा विशेष अथवा नवीन चिह्न दीख सकेगा। जिस प्रकार उदयकालीन प्राभातिक सूर्य पर्वतीय गुफाओ के भीतर चमकती हुई ओषधि की किरणो को सहन नही करता, उसी प्रकार राजा ललितादित्य को भी दरद-देशवासियो का निरंतर मदिरा-पान सह्य नही हुआ।

कस्तूरी-मृगो की नाभियो के ससर्ग से सुशोभित तथा केसर-कुसुमो से सुवासित उत्तम पवन चतुर सेवक के समान उसकी सेना-सीमान्तिनियो को अलकृत करता था। उसने जनशून्य प्राग्ज्योतिषपुर मे वन मे जलते हुए कालागुरु चन्दन के धूप का सुवास ग्रहण किया। मृगतृष्णा-

निर्मल तथा सुधारस के समान मधुर था और उस जल के पीने से अनेक रोगी निरोग होते थे। राजा ललितादित्य की पत्नी श्रीमती चक्रमर्दिकादेवी ने चक्रपुर नामक नगर बसाया। उस नगर की गृह-सख्या सात हजार थी।

भप्पटाचार्य ने भप्पटेश्वर की स्थापना की। इसके अतिरिक्त और भी अनेक सज्जनो ने ने रक्कटेश आदि देवताओ की स्थापना की। मुख्य मन्त्री चिंकुण ने अन्य नगरो मे भी एक चैत्य तथा विहार बनवाकर उदारता का परिचय दिया। इस प्रकार चिंकुण के श्यालक ईशानचन्द्र नामक वैद्य ने तक्षक नाग की कृपा द्वारा प्राप्त सम्पत्ति से एक भव्य और विशाल विहार बनवाया।

इस प्रकार वह राजा पृथ्वी को सुवर्णमयी बनाता हुआ उदारता तथा शौर्य सद्‌गुणो के कारण इन्द्र से भी अधिक प्रसिद्ध और यशस्वी हो गया। उस राजा के मुख से सहज निकली हुई आज्ञा का देवता भी कभी उल्लघन नही करते थे। एक बार वह राजा अपनी सेनासहित पूर्व समुद्र के तट पर ठहरा हुआ था। वहाँ उसने अपने सेवको को कपित्थ-फल (कैथा) लाने की आज्ञा दी। उस आज्ञा को सुनकर उसके समस्त सेवक किंकर्तव्य-विमूढ हो गये क्योकि वहाँ कपित्थ-फलो का मिल सकना असंभव था। इतने मे ही, एक दिव्य पुरुष उन फलो को लेकर राजा के सामने आ गया। राजा के सकेत से द्वारपाल ने आगे बढ़कर उससे फल ले लिये और उससे बडे आदर के साथ पूछा "आप कहाँ से आ रहे हैं और किनके सेवक हैं।" उस दिव्य पुरुष ने कहा "मैं नन्दन वन का रक्षक हूँ। मुझे देवताओ के राजा इन्द्र ने राजा के परमप्रिय कपित्थ-फल देने के लिये भेजा है। अब मुझे एकान्त मे महाराज से इन्द्र का कुछ सन्देश भी कहना है।"

उस दिव्य पुरुष के इन वचनो को सुनकर द्वारपाल ने वहाँ के समस्त लोगो को दूसरे स्थान पर भेज दिया और उस समय की सभा को एकान्त मे परिणत कर दिया। तब उस दिव्य पुरुष ने राजा से कहा—"राजन्! देवताओ के राजा इन्द्र ने आपसे कहा है कि मैं आपसे आपके हित की बात कहता हूँ यद्यपि यह बात कठोर शब्दो मे कही जा रही है तथापि वह पथ्य के ही समान है अतएव आप जैसे सज्जनो को क्षमा करना चाहिये। राजन्! इस कलिकाल मे भी हम सब दिक्पाल होकर भी आपके आदेश का नम्रतापूर्वक पालन करते हैं। इसका कारण भी ध्यान-पूर्वक सुन लेने की कृपा कीजिए।"

"आप किसी गत जन्म मे किसी अत्यन्त सम्पत्तिशाली कृषक के यहाँ हल चलाया करते थे। एक बार ग्रीष्म-ऋतु मे आप हल चलाते-चलाते थक कर किसी जलहीन, अरण्य प्रान्त मे पहुँच गये थे। वहाँ आपके स्वामी के घर से एक सेवक ठडे जल की सुराही तथा अपूप (रोटियाँ) लेकर आपके पास आया था। आप भी हाथ-मुँह और पैर धोकर भोजन करने जा ही रहे थे कि इतने मे ही आपने अपने सामने एक ऐसे क्षुधा-पीडित ब्राह्मण अतिथि को खडा देखा जिसके कि प्राण तुरन्त ही निकलने वाले-से थे। उसने बडे कातर स्वर से आपसे कहा "भद्र! क्षुधा के कारण मेरे प्राण निकल रहे हैं, इसलिए आप इस अन्न को न खाकर मुझे दे दीजिये।" उस समय आपने अपने साथियो के मना करने पर भी बडे प्रेम के साथ मधुर भाषण करते हुए अपना आधा भोजन तथा सुराही का शीतल जल उसे दे दिया। इस आपत्कालिक, सप्रेम और सत्पात्र-प्रदत्त दान के उत्तम प्रभाव से 'आपकी एक सौ आज्ञाएँ अखण्डित रूप से स्वर्ग मे देवताओ द्वारा पालन की जावें' ऐसा देवताओ द्वारा निश्चय किया गया। उस समय के जलदान के प्रभाव से मरु-

भूमि मे भी आपकी इच्छा के अनुसार सुखदायिनी महानदियाँ प्रकट हो जाती हैं। सत्पात्र-रूपी उत्तम क्षेत्र मे लगाया गया तथा मधुर भाषण-रूपी आल-बाल से सुवेष्टित और निर्मल अन्तःकरण-रूपी प्रसाद-जल से सींचा गया यह छोटा दान-रूपी वृक्ष समय के अनुसार दाता को अभीष्ट फल देकर कल्पवृक्ष आदि सुप्रसिद्ध दान-कर्त्ताओ को भी तिरस्कृत करता है। राजन्! आपकी वे आज्ञाएँ अलघ्य होकर भी परिमित हैं। आज तक आपने उन आज्ञाओ का अविचारपूर्वक उपयोग किया है। अब वे बहुत थोडी रह गई हैं। आपके समान विचारशील राजा के हृदय मे साधारण और अल्पज्ञानी राजाओ के समान विचारशून्य भाव क्यो उत्पन्न होते है! राजन्! ये फल काश्मीर देश मे भी वर्षा-काल मे कुछ ही दिनो तक मिलते हैं। ऐसी दशा मे यहाँ पूर्व समुद्र के तट पर और वह भी शिशिर ऋतु मे कैसे मिल सकेंगे? फिर भी आप जिस-जिस दिशा मे जायेंगे, उस-उस दिशा के दिक्पाल को उस दान के प्रभाव से आपकी आज्ञा को मानना ही पडेगा। इस समय माहेन्द्री अर्थात् पूर्व दिशा मे आये हुए आपकी इस स्वल्प आज्ञा का भी, अकुण्ठित शक्तिशाली देवेन्द्र ने पालन किया है। अतएव आपको बिना किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के उन आज्ञाओ का उपयोग नही करना चाहिये क्योकि अब वे बहुत थोडी रह गई हैं।"

इस प्रकार राजा ललितादित्य से कहकर वह दिव्य पुरुष अन्तर्धान हो गया। उसके अन्तर्धान होने के बाद वह उदार हृदयवाला राजा दान की विचित्र महिमा को देखकर विशेष रूप से विस्मित हुआ। उस दिन से उसने दान द्वारा अनन्त पुण्य प्राप्त करने के लिए परिहासपुर मे एक बडा वार्षिक महोत्सव प्रारम्भ कर दिया। उस उत्सव मे ब्राह्मणो को ताण्डुल-चूर्ण तथा एकाधिक एक लक्ष पात्र दिये जाते थे। उस महोत्सव का नाम सहस्र-भक्त रखा गया था। इसी अभिप्राय से उसने ऊसर प्रदेशो मे नगर बसाकर उन्हे आबाद कर दिया जिससे कि वहाँ यदि कोई भी प्यासा आये तो उसे निर्मल और मधुर जल सरलता से मिल सके।

जिस प्रकार पवन अनेक वृक्षो के विकसित कुसुमो को एकत्रित करता है उसी प्रकार उस गुणग्राही राजा ने देश-देशान्तरो से बुलवाकर सुयोग्य विद्वानो का सग्रह किया था। उसने तुःखार देश से ककणवर्ष नामक महान् रासायनिक के अत्यन्त गुण-सम्पन्न सहोदर भ्राता चकुण को बुलवाकर रखा था। वह रासायनिक प्रयोग से सुवर्ण निर्माण कर राजा के कोश को सुवर्ण से पूर्ण रखता था अतः कमल के लिए तडाग के समान वह चकुण राजा ललितादित्य के लिए अत्यन्त हितकर था।

एक समय सेनासहित वह राजा पचनद अर्थात् पजाब देश मे दुस्तर नदियो के सगमो से तीर पर रुक जाने के कारण चिन्ता-मग्न हो गया और मत्रियो से पार जाने का उपाय सोचने के लिए कहने लगा। उस समय किनारे पर खडे हुए चकुण ने वहाँ के अगाध जल मे एक मणि को डाल दिया। उस मणि के प्रभाव से नदी का जल दो भागो मे विभक्त हो गया और वह राजा ललितादित्य अपनी सेनासमेत शीघ्र ही नदी के दूसरे पार चला गया। इसके बाद चकुण ने दूसरे मणि से उस मणि को नदी के अगाध जल से निकाल लिया। मणि के निकलते ही नदियो का जल पूर्ववत् हो गया। राजा ने उन मणियो के ऐश्वर्यकारी प्रभाव को देखकर प्रेमपूर्वक चकुण से उन दोनो मणियो को मांगा। उसने हँसकर राजा से कहा "महाराज! ये मणि मेरे पास रहने से ही इस आश्चर्यजनक कार्य को करते है, इसलिए इनको लेने से आप को क्या लाभ

होगा ? उत्तम वस्तु को विशिष्ट योग्यता तभी तक मिल सकती है जब तक कि वह साधारण वस्तुओ मे रहे और अनेक उत्तम वस्तुओ के समूह मे उसका क्या महत्व हो सकता है ? चन्द्र-कान्ति मणि जब तक समुद्र से दूर रहता है तभी तक उसके झरने का महत्व है और यदि समुद्र मे झरेगा तो उसका कुछ भी महत्त्व नही होगा ।"

उसके इस कथन से विस्मित होकर राजा ललितादित्य ने कहा—"क्या मेरे पास इनसे भी अधिक उत्कृष्ट वस्तुएँ हैं ? यदि आपका ऐसा दृढ सिद्धान्त हो तो आप मेरे पास से उस वस्तु को लेकर उसके बदले मे ये दोनो मणि मुझे दे दीजिए ।" राजा के इस कथन को सुनकर बडी प्रसन्नता के साथ चकुण ने कहा—"महाराज ! आप मुझ पर बडा अनुग्रह कर रहे है । ये दोनो मणि मेरी ओर से आपकी सेवा मे सादर समर्पित हैं और इनके बदले मे आपको मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी पडेगी । देव ! आपके पास मगध देश से हाथी पर रखकर जो बुद्ध भगवान् की प्रतिमा आई है, वह मूर्ति मुझे दे दीजिए । ससार-सागर को पार करने का परम साधन वह बुद्ध भगवान् की प्रतिमा मुझे देकर लौकिक जल-सतरण-साधन ये मणि आप ले सकते हैं ।"

इस प्रकार उसकी युक्तिपूर्ण प्रार्थना से सतुष्ट होकर राजा ने उसे बुद्ध की प्रतिमा दे दी क्योकि योग्य और वक्तृत्वपूर्ण प्रार्थना को कौन अस्वीकार कर सकता है ! उस मूर्ति को चकुण ने अपने विहार मे स्थापित किया । उस प्रतिमा का रग भिक्षुओ की कोपीन के समान गेरुआ और चमकीला था । आज भी आयस अर्थात् लोहे के कटको से वेष्टित उस प्रतिमा का सिंहासन उसकी गजस्कन्ध-स्थिति को सूचित करता है ।

यह भगवती वसुन्धरा महाप्रभावशाली राजर्षियो की इच्छा के अनुसार प्रिय कार्य करने के लिए सर्वदा सन्नद्ध रहती है । एक बार अश्वशास्त्र का पूर्ण ज्ञाता वह राजा एक अशिक्षित अश्व को शिक्षा देने के लिए अरण्य मे अकेला गया था । उसने उस निर्जन वन मे दूर से एक सुन्दरी ललना को गाते हुए और दूसरी सुन्दरी ललना को नृत्य करते हुए देखा । वह वहाँ अपने अश्व को दौडा रहा था । कुछ समय बाद नृत्य-गीत समाप्त कर और उस स्थान को प्रणाम कर उन सुन्दरी ललनाओ को जाते हुए उसने देखा । फिर वह राजा कौतुक के वशीभूत होकर प्रतिदिन वहाँ जाने लगा और उसी प्रकार उनको देखने लगा । कई दिन बीत जाने पर एक दिन अश्व से उतर कर राजा ने उनसे उनका परिचय पूछा । तब उन्होने बडी नम्रता के साथ कहा "महाराज ! हम देवदासी नर्तकी है । यहाँ से थोडी ही दूर पर शूरवर्धमान नामक एक ग्राम है । वही हम दोनो का निवास है । यहाँ की जीविका का उपभोग करने वाली माताओ के आदेश से हमारे कुल की नर्तकी प्रतिदिन यहाँ नृत्य करती है । यह रूढि हमारे वश मे परम्परा से चलती आ रही है और इसका कारण हमको अथवा और किसी को भी मालूम नही है ।"

उन दोनो ललनाओ के इन सब वचनो से राजा ललितादित्य को बडा आश्चर्य हुआ और दूसरे ही दिन उसने उन गायिकाओ द्वारा दिखलाई गई भूमि को बहुत-से मजदूर लगवाकर खुदवा डाला । बहुत गहराई और दूर तक खोदकर वहाँ की मिट्टी हटाने से पृथ्वी के भीतर दो मन्दिर निकले । उन दोनो मन्दिरो के द्वार बन्द थे और वे मन्दिर बहुत ही प्राचीन काल के थे । राजा ने उनके द्वार खुलवाकर भीतर जाने के बाद केशवस्वामी की दो प्रतिमाएँ देखी । उनके सिंहासन पर खुदे हुए शिलालेख से स्पष्ट विदित हो गया कि उन दोनो प्रतिमाओ को श्रीराम और लक्ष्मण ने स्थापित किया था । राजा ने परिहासकेशव के मन्दिर के समीप ही उत्तम पाषाण-

मय देवालय बनवाकर उसमे रामस्वामी की प्रतिमा को स्थापित किया। इसी प्रकार उसकी पत्नी चक्रमर्दिकादेवी ने राजा को प्रसन्न कर उससे दूसरी लक्ष्मणस्वामी की प्रतिमा को लेकर उसे चक्रेश्वर के समीप नये बनवाये गये देवालय मे स्थापित किया।

एक बार वह राजा हाथी पर सवार होकर दिग्विजय के लिए जा रहा था। उस समय उसे मार्ग मे एक पुरुष सम्मुख खडा दिखाई पडा। उसको किसी ने दण्ड दिया है, ऐसा उसकी आकृति से स्पष्ट दीखता था। उसके कटे हुए नाक, कान, आदि अवयवो से रक्त के विन्दु टपक रहे थे और वह आत्मरक्षा के लिए राजा से प्रार्थना कर रहा था। उसकी उस दुर्दशा को देखकर राजा को दया आ गई। उसने तुरन्त उससे उसका वृत्तान्त पूछा।

उसने अपने को सिकता-सिन्धु के पास के एक राजा का हितैषी तथा विश्वास-पात्र सचिव बतलाया और कहा "महाराज! मैंने अपने स्वामी से कहा था कि आप श्रीललितादित्य महाराज से युद्ध करने का विचार त्याग कर उनकी अधीनता स्वीकार कर लीजिए। ऐसा करने से ही आपका कल्याण होगा। इस प्रकार के हित-वचनो के कहने के ही कारण उसने मुझे यह दण्ड दिया है।"

उसकी बातो से प्रभावित होकर राजा ने भी उसके स्वामी को इस अपराध के उपलक्ष मे समुचित दण्ड देने की प्रतिज्ञा की और औषधि द्वारा उसके घावो का उपचार करने की व्यवस्था कर दी। उचित औषधि के प्रयोग से उसके समस्त घाव शीघ्र ही ठीक हो गये। इसके बाद उसे साथ लेकर राजा ललितादित्य ने अपने सैन्यसहित आगे की ओर अग्रसर होना आरंभ कर दिया।

चलते-चलते एक दिन एकान्त मे उस सचिव ने राजा ललितादित्य से कहा—"महाराज! उस दुष्ट राजा से इसका बदला लेने की अभिलाषा से ही मैंने अपने इस छिन्न-भिन्न शरीर की रक्षा करने की विडम्बना को स्वीकार किया है। इस कार्य से निवृत्त होते ही सुख एवं दुःख को अपने अश्रुजल से तिलांजलि देकर इस अपमानित शरीर को मैं शीघ्र ही निश्चयपूर्वक त्याग दूंगा।"

"जिस प्रकार पर्वत अपने ऊपर चढकर चिल्लाने वाले की चिल्लाहट का द्विगुणित प्रतिध्वनि से उत्तर देता है। उसी प्रकार शत्रु द्वारा किये गये छोटे-से अपकारो का बदला उनको भयानक रूप से हानि पहुँचा कर अवश्य चुकाना चाहिए। राजन्! यहाँ से उसके राज्य मे पहुँचने के लिए तीन महीने का रास्ता है। ऐसी दशा मे आप वहाँ किस प्रकार शीघ्र पहुँच सकते हैं? यदि तीन मास मे पहुँचने का ही निश्चय रखा गया तो वहाँ पहुँचने पर आपको शत्रु अपने स्थान पर नही मिलेगा। इस लिए मैं आपको केवल पन्द्रह दिन का मार्ग बतलाता हूँ किन्तु उस मार्ग मे पानी नहीं मिलता है अतएव साथ मे पानी लेकर चलना चाहिए जिससे सेना को जल का कष्ट न हो! उस मार्ग मे मेरे आप्तजन रहते है। वे आपके आगमन का वृत्तान्त उस राजा से नही कहेंगे। इस प्रकार आप आकस्मिक आक्रमण से वहाँ के राजा, मन्त्री, रानियो तथा कोश आदि को सरलता से प्राप्त कर सकेंगे।"

इस प्रकार के विश्वासोत्पादक वचनो से उसने राजा ललितादित्य को सिकता-सिन्धु के मार्ग का पथिक बना दिया। पन्द्रह दिन उस मार्ग मे निरन्तर चलने के बाद उसके साथ का समस्त जल समाप्त हो गया। फिर भी राजा ने साहसपूर्वक दो तीन दिन तक बिना जल के

ही चलना जारी रखा। अन्त मे सेना को पिपासा से खिन्न देखकर राजा ने उस मत्री से कहा "महाशय ! आप के कथनानुसार पन्द्रह दिन से भी अधिक दिन बीत चुके हैं और मेरे समस्त सैनिक पिपासा से व्याकुल होकर मरने लगे है। कृपया यह बतलाइए कि अब कितना मार्ग और शेष रह गया है ?"

राजा ललितादित्य की इन बातो को सुनकर वह सचिव बडे विचित्र ढग से हँसा और कहने लगा—"हे विजय की इच्छा करने वाले राजन् ! आप शत्रु के नगर का मार्ग पूछ रहे है अथवा यम के नगर का ? मैंने अपने स्वामी के हित के लिए ही अपने प्राणो की भी चिन्ता नही की और अपनी बातो के माया-जाल मे फाँसकर आप को सेनासमेत मृत्यु के मुख मे ढकेल दिया है। यह केवल मरुभूमि ही नही है किन्तु बडा भयानक सिकता-सिन्धु है। यहाँ जल-बिन्दु का भी दर्शन नही हो सकता। अब आपकी कौन रक्षा करेगा ?"

इस प्रकार के कर्ण-कठोर वचनो को सुनकर सम्पूर्ण सेना हताश तथा निर्जीव-सी हो गई। जिस प्रकार बर्फ गिरने से फलशून्य होकर शलाका-रूप से दृश्यमान शालिक्षेत्र शून्य-सा दीखता है, उसी प्रकार वह सेना भी शून्य-सी हो गई। जीवन की आशा को छोडकर करुण क्रन्दन करते हुए राजा ने सैन्य को सान्त्वना दिया और फिर हाथ उठाकर कहा—"महाशय ! आपने यह कार्य स्वामि-भक्ति से प्रेरित होकर किया है, इसलिए मैं आप से अधिक सन्तुष्ट हूँ। इस सन्तोष से इस शुष्क भूमि मे भी शीत-प्रदेश के समान मेरा शरीर रोमाचित होने लगा है, किन्तु वज्र के समान अभेद्य मेरे सुदृढ निश्चय के सामने आपका यह प्रयत्न लौह-घन के समान निष्फल है। जिस प्रकार रत्न समझकर अगार-समूह को उठाने वाले अज्ञ की जब अगुलियाँ जल जाती हैं तब उसको पश्चात्ताप होता है, उसी प्रकार आपको भी व्यर्थ अवयव कटवाने से घोर पश्चात्ताप होगा। मेघ के गरजते ही जिस प्रकार वैडूर्य-भूमि से रत्न-शलाका उत्पन्न होती है, उसी प्रकार मेरी आज्ञा के प्रभाव से इसी मरुभूमि से जलधारा का प्रादुर्भाव आपको दिखाई देगा।"

इस प्रकार कहकर राजा ललितादित्य ने पानी निकालने के लिए पृथ्वी मे भाला मारा। उसी समय त्रिलोचन के त्रिशूल-प्रहार से उत्पन्न हुई वितस्ता नदी के समान उन समस्त सैनिको की जीवनाशा की पाताल-लक्ष्मी के क्रीड़ायुक्त हास्य के सदृश निर्मल जलपूर्ण सरिता प्रवाहित होने लगी। उस नदी ने राजा ललितादित्य के सैनिको के दैन्य के साथ ही उस नाक-कान कटवाने वाले धूर्त मत्री की मनोरथ-परम्परा का भी उच्छेद कर डाला।

अपने धूर्ततापूर्ण सम्पूर्ण प्रयत्न को निष्फल देखकर वह धूर्त मत्री अपने स्वामी के पास भाग गया। वहाँ उस अपशकुनस्वरूप कनकटे-नकटे मत्री के पहुँचते ही यमराज ने भी राजा ललितादित्य के रूप मे प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर राजा ललितादित्य ने उस कपटी राजा को युद्ध में पराजित कर उसके मिथ्याभाषी मत्री के समान दुर्गति का पात्र बना दिया, अर्थात् उस राजा के भी नाक-कान कटवा दिये।

राजा ललितादित्य ने उस मरुभूमि के मार्ग मे जिन-जिन स्थानो पर जिन-जिन नदियों को उत्पन्न किया था, वे आज भी कुन्तवाहिनी के नाम से प्रसिद्ध हो रही हैं। इस प्रकार के हजारो आश्चर्यजनक वृत्तान्त राजा ललितादित्य के प्रसिद्ध है किन्तु प्रसग के अधिक बढ जाने के भय से तथा कथानक की अतिदीर्घता के भय से वे सब यहाँ नही दिये गये।

जिस प्रकार निःशब्द होकर पूर्ण शान्ति के साथ प्रवाहित होने वाली महानदियाँ भी पत्थरो के समूहो पर प्रचण्ड शब्द करने लगती है तथा निर्मल सरिता होने पर भी वर्षा-काल

में कलुषित सलिला हो जाती है उसी प्रकार बडे लोग भी देश-काल के अनुसार अपने स्वभाव तथा आचरण मे परिवर्तन कर देते है। इसे कलियुग का प्रभाव कहना चाहिये अथवा राज-सिंहासन का प्रभाव कहना चाहिए जिससे कि ललितादित्य के समान सुयोग्य राजा के हाथ से भी कभी-कभी भयानक निन्दनीय कार्य हो जाते थे।

एक बार उस राजा ललितादित्य ने अपनी पत्नियोसमेत मदिरा के मद मे उन्मत्त होकर मन्त्रियो से कहा—"प्रवरसेन के द्वारा बसाया गया प्रवरपुर यदि मेरे बसाये हुए परिहासपुर के समान सौन्दर्य-सम्पन्न हो, तो उसे तुरन्त जला दिया जावे।"

उसके मन्त्री उस भीषण आज्ञा का उल्लंघन नही कर सकते थे, इसलिए उन्होंने वातुल नामक स्थान पर अश्वो के लिए एकत्रित घास के ढेर को जलाकर राजा को सन्तुष्ट किया। राज-भवन के सबसे ऊँचे स्थान से उस दृश्य को देखता हुआ वह राजा अग्नि की अति भयानक ज्वालाओ के प्रकाश से उज्ज्वलमुख होकर उल्कामुख पर्वत के समान अट्टहास करने लगा। जिस प्रकार तिमिर-दोष से दूषित नेत्रवाले चन्द्रादि तेजोमय पदार्थ द्विगुण देखते हैं उसी प्रकार सत्यपुरुष भी रागद्वेष के वश होकर मनुष्य को विपरीत दृष्टि से देखने लगते हैं। यदि यह कथन सत्य नही है तो फिर अनेक नगरो को बसाने वाला वह राजा उस प्रवरसेन के एक मात्र नगर को क्यो अधिक समझने लगता ?

इसके बाद मदिरा के मद से शून्य होकर वह राजा अपने आदेश से किये गये नगर-दाह-जनित पातक से अत्यन्त दु:खी हुआ। पश्चात्ताप के कारण उसके मुख से दीर्घ एव उष्ण निश्वास निकलने लगे। जिस प्रकार कोटर मे रहने वाली अग्नि सम्पूर्ण वृक्ष को जला देती है, उसी प्रकार अन्त करण मे बस जानेवाला गुप्त क्लेश मनुष्य को क्षीण कर देता है। प्रात काल होते ही मन्त्रियो ने राजा की यह परम शोचनीय दशा देखी। उन्होने तुरन्त उससे सच्चा वृत्तान्त कह दिया। प्रवरपुर नष्ट न होने का वृत्तान्त सुनकर राजा को अधिक प्रसन्नता हुई। जिस प्रकार स्वप्न की दशा मे पुत्र के खो जाने से दुखी होकर जागने के बाद पुत्र को सामने खडा देखकर मनुष्य को जिस प्रकार की प्रसन्नता होती है उसी प्रकार प्रवरपुर के सुरक्षित रहने के समाचार को सुनकर उसी प्रकार की प्रसन्नता राजा को हुई।

इसके बाद राजा ने अपने समस्त मन्त्रियो की अनुपम कार्यकुशलता तथा विचारशीलता पर हर्ष प्रकट करते हुए उनकी अधिक प्रशसा की। साथ-साथ भविष्य के लिए भी स्थायी रूप से यह आज्ञा भी दे दी—"मदिरा के नशे मे मैं जो कुछ कहूँ, यदि वह अनुचित हो, तो आप सबो को उसे कदापि नही करना चाहिए।" बहुत से राजसेवक केवल स्वार्थ-साधन तथा सुख-प्राप्ति के लिये इस पृथ्वी-रूपी वारागना का किंचित् काल उपभोग करनेवाले अपने स्वामी को अयोग्य सुखाभिलाषा मे फँसाकर उसका पतन करा देते है, ऐसे नीच सेवको को शतशः धिक्कार है।

इन्द्र की अपेक्षा भी अधिक प्रभावशाली उस राजा ललितादित्य के द्वारा जिस किसी छोटे नरेश को भी लज्जित करने योग्य और भी एक अनुचित घटना हो गई। उसने गौड-नरेश को परिहासकेशव को मध्यस्थ बनाकर अभयदान दिया था फिर भी त्रिगामी नामक स्थान पर बाणो के द्वारा उसे मरवा डाला। उस समय गौड-नरेश के सेवको ने अपने दिवगत स्वामी के लिए धैर्य के साथ युद्ध कर अपने प्राणो को न्योछावर कर दिया और सबको आश्चर्य मे डाल दिया।

उन्होने शारदा के दर्शन करने के बहाने काश्मीर मे आकर नगर के मध्य भाग मे स्थित श्रीपरिहास-केशव के देवालय को चारो ओर से घेर लिया था। राजा के विदेश मे रहते हुए इस प्रकार देवालय मे उपद्रव करने के लिए प्रवेश करते हुए उन्हे देखकर पुजारियो ने द्वार बन्द कर परिहास-केशव की रक्षा की।

गौड-नरेश के उन पराक्रमी सेवको ने परिहासकेशव के भ्रम से रामस्वामी के मन्दिर मे प्रवेश कर उस रजतमयी प्रतिमा का विध्वस करना प्रारम्भ कर दिया। थोडी ही देर मे उसको वहाँ से उखाड कर फोड डाला और तिल बराबर टुकडे करके चारो ओर फेंक दिया। इस अपराध के उपलक्ष मे राजा ललितादित्य के सैनिको ने उन सब का वध करना आरम्भ कर दिया। उस समय वे रक्तलिप्त, कृष्णवर्ण गौडेन्द्र सेवक गौरिक-द्रव-रजित कज्जलाचल के शिलाखडो के समान दीख रहे थे। उन महावीरो के रक्त प्रवाह से वसुन्धरा और अलौकिक स्वामि-भक्ति दोनो ही सुशोभित होने लगी। वज्र अर्थात हीरे से वज्र-भीति नष्ट होती है। पद्मराग मणि से श्रीवृद्धि होती है तथा गारुत्म-रत्न से विष-बाधा का नाश होता है। इस प्रकार प्रत्येक रत्न के अपने नियमित प्रभाव के अनुसार लाभदायक होते हैं किन्तु अपरिमितमहिमा शाली पुरुष-रत्न अपने प्रभाव से कौन-सा कार्य नही कर सकते ?

उन बेचारे गौड़-सेवको का स्वामी मारा गया था, देश लौट कर जाने मे बहुत लम्बा रास्ता पार करना था। ऐसी घोर विपत्ति मे भी उन्होने स्वामी-भक्ति का जो ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया था, ऐसा उदाहरण दिखलाना विधाता के लिए भी कठिन होगा। उस समय राजाओ के यहाँ इस प्रकार की अलौकिक स्वामि-भक्ति को दिखलाने वाला भृत्य-रत्न रहा करते थे। गौड-सेवक-रूपी राक्षसो के इस उपद्रव मे श्रीरामस्वामी के बलिदान से राजा ललितादित्य के परमप्रिय श्रीपरिहासकेशव की रक्षा हो सकी। आज भी रामस्वामी का वह टूटा मन्दिर समस्त वैभवरहित और शून्य दृष्टिगोचर होता है तथा उन गौड-वीरो के सुयश से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त हो रहा है। इस प्रकार के अनेक विलक्षण कार्य करते हुए उस राजा ललितादित्य का अधिक समय प्रवास में व्यतीत होता था और थोडा समय राज्य मे व्यतीत होता है।

राजाओ से अदृष्टपूर्व देक को अवलोकन करने के कौतुक से पुन वह राजा दुर्गम और अपार उत्तरापथ मे अपनी सेनासहित प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसके प्रभाव और प्रताप की परीक्षा करने के लिए कुबेरादि लोकपालो द्वारा भेजे गये अनेक रणदक्ष राक्षस मार्ग मे युद्ध के लिए उपस्थित होते थे और वह राजा उनको परास्त कर देता था। जिस भूमि को आज तक सूर्य की किरणो ने भी नही देखा है उस भूमि मे भी उसकी पराक्रमशालिनी सत्ता तथा आज्ञा अविच्छिन्न रूप से मानी जाती थी। उसके मत्रियो को बहुत दिनो से उसका कोई समाचार नही प्राप्त हुआ था, इसलिए उन्होंने व्याकुल होकर उसके पास एक दूत भेजा था। कुछ समय के बाद वह दूत लौट आया और कहने लगा—"महाराज ने आप लोगो के लिए यह आदेश दिया है—"इस देश मे पहुँचने के बाद मैं शीघ्र ही लौट कर चला आऊँगा, इस प्रकार सोचना ही आप सबो के लिए भ्रमोत्पादक है। मैं इधर प्रतिदिन नवीन-नवीन देशो पर आक्रमण कर विजय लाभ कर रहा हूँ। इस कार्य को छोड़कर यदि मैं वहाँ आ भी गया तो मेरे लिए वहाँ आप लोगो ने कौन-सा विशेष महत्वपूर्ण कार्य खोज रखा है ?"

'अपने उद्गम से निकलकर आगे की ओर प्रवाहित होनेवाली नदियो को अन्त मे अनन्त सागर मे ही मिलना पडता है। उसी प्रकार प्रतिदिन विजय प्राप्त करने वाले एव भावी विजय-परम्परा के अभिलाषी वीर के सचार की अवधि कैसे हो सकती है? इसलिए मेरी अनुपस्थिति मे आप सबो को राज्य का शासन किस प्रकार करना चाहिए, इस विषय मे मैं अपने मुख्य-मुख्य सिद्धान्तो को आप सबो को सूचित कर रहा हूँ। इन्ही समस्त सिद्धान्तो के अनुसार शंका-रहित होकर आप सब शान्तिपूर्वक राज्य का प्रबन्ध करते रहे।'

'इस राज्य को सुशासित तथा प्रगतिशील बनाये रखने के लिए भीतरी फूट अथवा अन्त:प्रकृति के प्रकोप से डरते रहना चाहिए क्योकि जिस प्रकार चार्वाक मत के मानने वालो को परलोक का भय नही होता उसी प्रकार राज-कार्यकर्ताओ को परकीय लोगो का विशेष कुछ भय नही होता। इस राज्य मे पर्वतीय प्रदेशो के दुर्गम स्थानो मे रहने वालो को दुर्गाश्रय के कारण अपने वश मे रखना कठिन है, इसलिए वे सदोष हो अथवा निर्दोष हो, उन्हे निरन्तर दण्ड देते ही रहना चाहिए अन्यथा वे सब सम्पन्न होते ही हमारे अधीन न रह सकेंगे। किसानो के पास एक वर्ष तक निर्वाह के लिए पर्याप्त अन्न और खेती के लिए पर्याप्त हो इतने ही बैल रहने देना चाहिए। उससे अधिक नही अन्यथा वे प्रबल एव त्रासदायक हो जावेंगे और राजा की आज्ञा का उल्लघन करेंगे। इस बात का पूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए कि यदि किसानो को नागरिको के समान उत्तम वस्त्र, सुस्वादु भोजन, सुन्दर ललनाएँ, आभूषण और घोड़े आदि वाहन मिलने लगें और राजा लोग अविचार से नितान्त रक्षणीय दुर्गों के योग्य प्रबन्ध की ओर ध्यान न दें तथा राजसेवक विवेकशून्य होने लगें तथा अश्वारोही, पदाति आदि सैनिकगण एक ही देश के निवासी हो और अधिकारीगण परस्पर विवाहादि सम्बन्धो से बँध जावें तथा राजा लोग भी कायस्थो के समान लोभी और प्रजापीडक बनकर अन्याय करने लग जावें तो प्रजा के दुर्भाग्य का उदय-काल जानना चाहिए।'

'मै अपने वशजो के विषय मे दो शब्द कहता हूँ। उन्हे ध्यानपूर्वक सुनकर उन पर मनन कीजिए और उसका ठीक पता लगाकर उनके हार्दिक गूढ भावो को जान लेना चाहिए।'

'बहती हुई हवा मद के गध से गजेन्द्र की समीपता को सूचित करती है। बिजली की चमक से बादल का पता लग जाता है उसी प्रकार पूर्वजन्मार्जित सस्कारो के कारणो से उत्पन्न होने वाले स्वभाव का सच्चा स्वरूप विचारशील और सूक्ष्म द्रष्टाओ को मानव के आचरण से विदित हो जाता है। कुवलयादित्य और वज्रादित्य दोनो मेरे ही पुत्र है परन्तु मातृभेद के कारण इनका स्वभाव भिन्न है। मेरे ज्येष्ठ पुत्र को राज्याधिकारी बनाना चाहिए किन्तु यदि वह क्रोधी और दु खदायक हो, तो आप सबो को उसके विरुद्ध कार्यवाही करके उसे अधिकार से वचित रखना चाहिए। इससे दुःखी होकर वह यदि देशत्याग प्राणत्याग करेगा तो किसी को भी उसके लिए शोक न करना चाहिए, यह मेरी आज्ञा है। उसके छोटे भाई वज्रादित्य को तो राज्याधिकार देना ही न चाहिए और यदि प्रमादवश दे भी दिया जावे तो फिर उसकी आज्ञा का सर्वथा पालन करना चाहिए। मेरे पौत्रो मे सबसे कनिष्ठ जयापीड नामक जो बालक है उसे पितामह के समान बनने का उपदेश देते रहें।' ऐसा यह अर्थ और गौरवपूर्ण महाराज ललितादित्य का सन्देश है।"

इस राज-सन्देश को मत्रियो ने हताश और नम्र होकर स्वीकार किया और फिर शोक से व्याकुल होकर अश्रुपात करने लगे। इसके बाद प्रधान मत्री चकुण ने सम्पूर्ण प्रजा को एकत्रित कर स्वामि-वियोग के कारण सन्तप्त वसुधरा को अश्रुओ से सीचते हुए कहा—"अब राज्यासन पर

राजकुमार कुवलयादित्य को अभिसिक्त करना चाहिए, क्योंकि इस दूत के कथन मे स्पष्ट ध्वनित होता है कि पुण्यश्लोक महाराज ललितादित्य स्वर्गवासी हो गये है। जिस पुण्यवान् के कोश को सुवर्ण द्वारा समृद्ध बनाये रखने के लिए देवताओ ने मुझे रससिद्धि प्रदान की थी, आज वह अकस्मात् नष्ट हो गई। महाराज ललितादित्य भाग्यशाली पुरुष थे। वे दूर रहकर भी अपने प्रबल भाग्य के प्रभाव से कठिन से भी कठिन कार्यो को सरलतापूर्वक सम्पन्न कर देते थे। जिस प्रकार भगवान् सूर्य मेघो द्वारा घिरे रहने पर भी कमलो को दूर से ही विकसित कर देते हैं और मेघ दूर रहकर भी आतप को शीतल कर देता है, उसी प्रकार महापुरुषो मे भी कोई आश्चर्यजनक शक्ति होती है, जिसके प्रभाव से दूर-स्थित और सुदुष्कर कार्य भी विना किसी विघ्न के सरलता-पूर्वक सुसम्पन्न हो जाते है।

वह ललितादित्य-रूपी चन्द्रमा छत्तीस वर्ष सात मास और ग्यारह दिन पृथ्वी को प्रसन्नता देकर अस्त हो गया। कुछ इतिहास के विद्वानो का यह भी कथन है कि वह राजा आर्याणक देश मे अत्यधिक वर्फ गिरने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ था। कुछ इतिहास के ज्ञाताओ के मतानुसार यह भी कहा जाता है कि उसने अपने दीर्घकाल-सम्पादित सुयश को सुरक्षित रखने के लिए अपरिहार्य आपत्ति के भय से अग्नि मे प्रवेश किया था। कुछ इतिहासज्ञ ऐसा भी कहते हैं कि मानव-मात्र को दुष्प्राप्य और केवल देवसुलभ उत्तरापथ मे वह राजा सेनासमेत अदृश्य हो गया। जिस प्रकार उस राजा के आश्चर्यजनक कार्यों की कथाएँ प्रसिद्ध है उसी प्रकार उसकी विपत्ति की अद्‌भुत कथाएँ लोक-समाज मे कही जाती हैं।

जिस प्रकार सूर्यास्त के सम्वन्ध मे कोई कहते हैं कि सूर्य अस्ताचल को चला गया। कुछ लोग कहते हैं कि सूर्य सागर मे डूब गया। कुछ लोग कहते है कि सूर्य अग्नि मे प्रवेश कर गया। अनेक लोग यह कहते हैं कि सूर्य लोकान्तर को गया। उसी प्रकार महापुरुषो पर अन्तिम काल मे आई हुई अज्ञात आपत्तियो के विषय मे भी विचित्र कथाएँ प्रचलित होती हैं।

४ राजा जयापीड और उसके पूर्वाधिकारियों की कथा

राजा ललितादित्य के वाद श्री कमल देवी के पुत्र कुवलयादित्य ने कुवलय अर्थात् भूमण्डल पर शासन करना प्रारम्भ कर दिया। कुवलयादित्य का ही दूसरा नाम कुवलयापीड है। वह अदिति से उत्पन्न हुए देवेन्द्र के ही समान तेजस्वी था। जिस प्रकार वडे-वडे सर्प अपने मलिन केंचुल को त्याग कर तेजपूर्ण हो जाते हैं उसी प्रकार उस राजा कुवलयापीड ने स्वभाव से मलिन लक्ष्मी के मालिन्य को त्याग द्वारा शीघ्र ही क्षालन कर उसे निर्मल कर दिया।

कुछ समय तक समान तेजस्वी भ्राता के प्रभाव से जाज्वल्यमान अग्नि के सम्मुख दीप तेज के समान उसका तेज लुप्तप्राय अवस्था मे ही रहा। परम धूर्त और दोनो भ्राताओ से क्रमश पारितोषिक प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले लोभी दरवारियो ने पारस्परिक ईर्ष्या को उत्तेजित कर उनकी स्थिति को भ्रमरो द्वारा अत्यन्त पान किये जाने के कारण मदशून्य शुष्क गज-कपोलस्थल के समान कर दिया था।

जव राजा कुवलयापीड को धूर्तों की धूर्तता का पता लग गया, तव उसने उन लोभी धूर्तो को दोनो ओर से द्रव्योपार्जन करने वाली नीति को निर्मूल कर डाला और उनके समस्त षड्यन्त्र तथा अपने भ्राता के प्रभाव को भी तुरत मूलसमेत नष्ट कर दिया। इस प्रकार उसने अपने वुद्धि-वल से राज्य को निष्कण्टक वनाकर दिग्विजय के लिए अपनी सेना को सुसज्जित

किया। उस दिग्विजय की तैयारी करते समय एक मत्री ने उसके पिता के आदेश का स्मरण कर अथवा अपनी उद्धतता के कारण उसकी आज्ञा को नही माना।

इस अपमान से राजा कुवलयापीड क्रुद्ध हो गया। रात भर शय्या पर पडे-पडे विचार करता रहा। अपमानजनित क्रोध और दण्ड देने की चिन्ता के कारण उसे एक क्षण के लिए भी नीद नही आई। क्रोध के आवेश मे उसने उस मत्री के वध करने का विचार किया। उसी के साथ-साथ उसके आप्तजनो का भी वध करना पडेगा। ऐसा विचार भी उसके मन मे आया। इस प्रकार विचार-रूपी मन्दराचल से मन्थन किये गये उसके हृदय-सागर से प्रथम तो क्रोध-रूपी हलाहल विष का प्रादुर्भाव हुआ और उसके बाद शान्ति-रूपी सुधा का उदय हुआ।

जब उसका क्रोध शान्त हो गया, तब उसने सोचा कि इतनी भयानक जीव-हिंसा करने का विचार मेरे मन मे किसलिए उत्पन्न हुआ ? जिसके लिए अनेक प्रकार के कुकर्म कर भयानक से भी भयानक पातको का सम्पादन किया जाता है वह शरीर भी तो किसी का भी चिरकाल तक स्थिर नही रहता है! इस कृतघ्न और विनाशशील शरीर के लिए कोई भी सावधान तथा स्मृतिशील पुरुष अविनाशी पुण्य के मार्ग का नाश नही करेगा। इस काल-रूपी सूद अर्थात् पाचक के द्वारा इस शरीर की प्रत्येक क्षण मे कैसी-कैसी विचित्र दशाएँ निर्माण की जाती है, यह बात प्राणियो की समझ मे नही आती है। शैशव मे अकारण हास्य से सुशोभित कमल-कलिका के के समान कोमल इस मनोहर मुख को आज के कठोर तारुण्य के कारण दाढी-मूंछ निकलने से तपे हुए तांबे के सदृश तथा कल प्रभात मे ही वृद्धावस्था से शुभ्र दाढी-मूंछ आदि के प्रभाव से वृद्ध बकरे के समान दुर्दर्शनीय होते देख दीर्घायु विद्वान् हँसा करते है।

इस प्रकार की सुविचार-शृंखला द्वारा ससार को अनित्य समझकर उसने सुशान्ति का आदर किया और राज्य को त्याग कर नैमिषारण्य का आश्रय ग्रहण किया। जाते समय उसने नीचे लिखे हुए श्लोक को सिंहासन पर लिख दिया—

गच्छ भद्र वनायैव तपस्याधीयता मन।
सापाया क्षणभङ्गिन्य एव प्राया विभूतय ॥

'हे भद्र! वन को ही जाओ और तप मे अपना मन लगाओ, क्योकि इस प्रकार की सम्पत्तियाँ अपाययुक्त अर्थात् दु:खमय और क्षण-भगुर है।'

राज्य का त्याग करते समय सिंहासन पर लिखे हुए इस श्लोक से उसने अपने दृढतर वैराग्य को ही सूचित किया है। शान्तिपूर्वक प्रबल तप का आचरण कर उसने दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त की। आज भी वह श्रीपर्वत पर तथा अन्य तीर्थों मे पुण्यात्मा पुरुषो को दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार अपने स्वामी राजा ललितादित्य के पुत्र कुवलयापीड को राज्य-त्याग कर गया हुआ सुनते ही मन्त्रिवर मित्रशर्मा तथा उसकी पत्नी दोनो ही शोक से आकुल हो गये। फिर उन दोनो ने ही वितस्ता और सिन्धु के सगम पर शरीर का त्याग कर दिया।

राजा कुवलयापीड ने केवल एक वर्ष और पन्द्रह दिन राज्य कर लेने के बाद मुक्ति-मार्ग के आश्रय से अपने जन्म को कृतार्थ कर लिया।

उसके बाद चक्रमर्दिका का पुत्र वज्रादित्य वप्पियक एव ललितादित्य नामक कुवलयापीड का सौतेला भाई राज्य-सिंहासन का अधिकारी हुआ। वह बडे ही क्रूरहृदय का पुरुष था। जिस

प्रकार दुर्वासा संसार को आह्लादित करने वाले अपने भ्राता चन्द्रमा के विरुद्ध स्वभाववाले थे उसी प्रकार क्रूरहृदय वाला वह वज्रादित्य भी अपने भ्राता प्रजाह्लादक कुवलयापीड से अत्यन्त विरुद्ध स्वभाव का था। उस दुराचारी राजा ने लोभ के वशीभूत होकर परिहासपुर में उसके पिता द्वारा अर्पण की गई धार्मिक सम्पत्ति का बलपूर्वक अपहरण कर लिया। वह अत्यन्त क्रोधी, लोभी तथा विषय-लम्पट था। उसने अपने अन्तःपुर में अनेक ललनाओं को रखा था और वह उनके साथ अश्व के समान निरंतर रमण करता रहता था। उसने असंख्य पुरुषों को पकड़ कर म्लेच्छों के हाथ बेच दिया और म्लेच्छों के समान दुराचार सम्पूर्ण काश्मीर देश में फैला दिया था। इस प्रकार वह पापी राजा सात वर्ष निरन्तर संभोग-सुख का अनुभव कर तज्जन्य क्षयरोग से मृत्यु को प्राप्त हुआ।

उस वज्रादित्य के बाद मंजरिकादेवी से उत्पन्न हुआ उसका पुत्र पृथ्व्यापीड राजा हुआ। वह प्रजा के लिए यम के समान कष्टदायक था। उसने चार वर्ष एक मास तक राज्य किया। उसे राज्यच्युत करके उसके स्थान पर मम्मादेवी से उत्पन्न हुआ वप्पियं का पुत्र प्रथम संग्रामापीड सात दिन के लिए राजा हुआ।

जिस प्रकार हेमन्त और शिशिर ऋतु में सूर्यमण्डल सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार उन दोनों भ्राताओं से काश्मीर का राज्य सुशोभित नहीं हुआ। संग्रामापीड के शान्त होने के बाद वप्पियं का कनिष्ठ पुत्र श्रीमान् जयापीड राज्य का अधिकारी हुआ। "आप अपने पितामह ललितादित्य के समान होने का प्रयत्न कीजिए" इस प्रकार के मंत्रियों के वचनों को स्मरण रखकर उसने यथाशीघ्र विशाल सेना को एकत्र किया और फिर दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर गया। बहुत से माण्डलिक राजाओं को अपने साथ लेकर प्रयाण करते समय उस नीति-निपुण राजा ने राज्य की सीमा से निकलते समय सीमारक्षक वृद्धों से पूछा "मेरे पितामह महाराज ललितादित्य के दिग्विजय के समय उनके साथ कितनी सेना थी? आप सब इस प्रश्न का उत्तर अवश्य दीजिए क्योंकि आप सब वृद्ध हैं अतएव आप सबों को उसकी संख्या मालूम होनी चाहिए।"

राजा जयापीड की बातों को सुनकर वे सब वृद्ध हँस पड़े और कहने लगे "इस प्रकार के प्रश्न से कुछ भी लाभ नहीं है क्योंकि वह समय बीत चुका और अब उस प्राचीन काल की बातों की समानता करने वाला कोई भी नहीं। आप के पितामह महाराज ललितादित्य की सेना में कर्णरथों अर्थात् पालकियों की ही संख्या सवा लाख थी और इस समय आपकी सम्पूर्ण सेना की संख्या केवल अस्सी हजार है।"

उन वृद्धों के इस उत्तर से राजा जयापीड को विशेष कष्ट नहीं हुआ क्योंकि काली की कुटिल गति के प्रभाव से इस पृथ्वी पर देखते ही देखते प्रत्येक वस्तु की न्यूनता होती जा रही है। विजय की अभिलाषा करने वाले उस राजा के इस विवेकयुक्त भाव को देखकर उन वृद्ध पुरुषों को राजा ललितादित्य के गूढ़ स्वभाव-ज्ञान का स्मरण आ गया।

इसके बाद राजा जयापीड को दूर देश में गया हुआ जानकर उसके श्यालक जज्ज ने राजद्रोह किया और विश्वासघात द्वारा काश्मीर को बलपूर्वक अपने अधीन कर लिया। फिर वह स्वयं वहाँ शासन करने लगा। इस घटना को सुनते ही राजा के साथ सैनिक भी घर जाने की उत्कट अभिलाषा के कारण स्वामिभक्ति से मुख मोड़ कर काश्मीर को वापस आने लगे। फिर भी राजा जयापीड ने इस बात का कोई विशेष महत्व नहीं दिया और बिना किसी साधन के ही अपनी शक्ति के द्वारा ही इष्ट कार्य को सिद्ध करने का गंभीर विचार कर दृढ़ निश्चय कर लिया। उसने प्रतिकूल दैव को भी कुछ महत्व नहीं दिया क्योंकि उस मनस्वी का स्वाभिमान अखण्ड था।

उसने अपने साथी राजाओं को अपनी-अपनी राजधानी में भेजकर अपनी परिमित सेना के साथ प्रयाग-क्षेत्र को प्रयाण किया। वहाँ उसने अश्वों को एकत्रित कर एक कम एक लक्ष अश्वों का दान ब्राह्मणों को दिया और प्रत्येक अश्व के साथ पर्याप्त दक्षिणा भी दी। बाद में उसने "जो राजा एक लक्ष अश्वों का दान करेगा वह मेरी इस मुद्रा को तोड़कर अपने नाम की मुद्रा चला सकेगा" ऐसी शर्त रखकर "श्रीजयापीड देवस्य' इस प्रकार की मुद्रा अर्थात् मुहर बनवाई फिर विदेश जाने वाले गंगाजल के कलशों पर इस मुद्रा को लगाने की आज्ञा दी। आज भी उस मुद्रा से चिह्नित निर्मल गंगाजल को पीते समय बड़े-बड़े नरेशों के हृदय में सन्ताप उत्पन्न हो जाता है।

वहाँ से अवशिष्ट सैनिकों को भी स्वदेश चले जाने के लिए अपने विश्वासपात्र सेवक के द्वारा आज्ञा देकर वह अकेला ही गुप्त रीति से अन्यत्र चला गया। वह राजा मेघ-समूह में प्रच्छन्न होकर घूमते हुए सूर्य के समान अनेक राज्यों में क्रमश भ्रमण करता हुआ गौड देश के अधिपति राजा जयन्त के द्वारा सुरक्षित पौण्ड्रवर्धन नामक नगर में पहुँच गया। वहाँ की शासन-व्यवस्था से प्रजा को धनसुख-सम्पन्न देखकर उसको बड़ी प्रसन्नता हुई।

उसने भरतमुनि कृत नाट्य-शास्त्र का भी अध्ययन किया था, इसीलिए वह नृत्य-गीत आदि कलाओं का मर्मज्ञ था। जिस समय वह पौण्ड्रवर्धन नगर में पहुँचा था उस समय वहाँ के कार्तिकेय-मंदिर में संगीत हो रहा था। वह संगीत को श्रवण करने की अभिलाषा से उस मंदिर के भीतर चला गया। भीतर जाकर उसने वहाँ के देवता का दर्शन किया फिर द्वार की शिला पर क्षण भर के लिए बैठ गया। इसके बाद वह जिस स्थान पर नृत्य-गीत हो रहा था, उस स्थान पर पहुँच गया।

ज्यों ही वह जनसमूह के समीप पहुँचा त्यों ही उसके विलक्षण तेज को देखकर वहाँ के लोग चकित हो गये और उसको बैठने के लिए स्थान देकर वे कुछ दूर हट गये। वहाँ गायन करती हुई कमला नामक नर्तकी ने भी सौन्दर्य और कान्ति से युक्त उस राजा जयापीड को देखा। उसने चकित होकर उस असाधारण तेजस्वी पुरुष को बार-बार अपने कंधे पर से पीछे की ओर हाथ बढ़ाते देखा। उसने अपने मन में सोचा कि यह महापुरुष किसी उच्च कुल में उत्पन्न हुआ राजा अथवा राजपुत्र होकर किसी कारणवश गुप्त रूप से भ्रमण कर रहा है। इसको इस प्रकार स्कन्ध-पृष्ठ से ताम्बूल-वीटिका (पान का बीड़ा) लेने का अभ्यास पड़ गया है, इसीलिए इसका हाथ बार-बार पीछे की ओर जा रहा है।

हाथी, मद-लोलुप भ्रमरों का त्रास मिट जाने पर भी कर्ण-ताडन करता ही रहता है। हाथियों का समूह पीछे न रहने पर भी सिंह बार-बार पीछे की ओर देखा करता है। मेघ-वृन्द से तृष्णा-शान्ति की आशा नष्ट होने पर भी मयूर केका-रव को नहीं छोड़ता है, क्योंकि दीर्घकाल से किया गया अभ्यास सहसा नहीं छूट सकता। ऐसा सोचकर उस चतुर नर्तकी ने अपनी एक कार्यकुशल दासी को अपनी सलाह में सम्मिलित कर लिया और फिर उसी दासी के द्वारा ताम्बूल-वीटिका के लिए हाथ को बढ़ाते हुए जयापीड के हाथ में धीरे से ताम्बूल दे दिया तथा पूग-खण्ड (सुपारी के टुकड़े) भी डाल दिये। जयापीड ने भी उनको मुख में रखते हुए घूमकर कमला की ओर देखा। "आप कौन है और किसके हैं" इस प्रकार संकेत से पूछती हुई उस कमला का वृत्तान्त ताम्बूल देने वाली उस दासी से पूर्ण रूप से जान लिया। उस दासी के स्नेह-पूर्ण मधुर वचनों से जयापीड के हृदय में उसके प्रति प्रेम तथा विश्वास उत्पन्न हो गया।

जब नृत्य और गीत समाप्त हो गया तब वह दासी जयापीड को अपनी सखी के घर ले गई। वहाँ पर पहुँचते ही अत्यन्त अनुरागमयी उस विलासिनी ने अपने चातुर्यपूर्ण भाषण से से तथा कपटहीन सेवा से उसका सम्मानपूर्वक आतिथ्य किया और जयापीड भी उसके आश्चर्य-जनक प्रेमपूर्ण व्यवहार से और उत्कृष्ट आतिथ्य से विस्मित हो गया। इसके बाद कुछ रात बीत जाने पर जब चन्द्रमा का उदय हुआ और उस समय के चन्द्रोदय से जब रजनी के मुख को उज्ज्वलता प्राप्त हुई, तब वह चतुर नर्तकी उस नर-रत्न का हाथ पकड़ कर उसे प्रेमपूर्वक अपने शयनागार मे ले गई। वहाँ पर उसे स्वर्ण-पर्यङ्क पर बैठा कर उन्मादक मदिरा-पान के बाद कमला ने सम्भोग की अभिलाषा प्रकट की किन्तु उसने स्वय को विवस्त्र न होने दिया। फिर भी लजाती हुई उस ललना को अपने हृदय पर रखता हुआ वह दीर्घबाहु उसे गाढ आलिगन कर धीरे-धीरे कहने लगा—"हे कमलेक्षणे! ऐसा सन्देह मत करना कि तूने मेरे हृदय को मुग्ध नही किया है किन्तु समय का अनुरोध मुझे तेरा अपराधी बना रहा है। प्रिये! तेरे इन स्वाभाविक गुणो से मैं तेरा मोल लिया हुआ दास हो चुका हूँ। आशा करता हूँ कि शीघ्र ही मेरा वृत्तान्त विदित होने से तुझे अत्यन्त हर्ष प्राप्त होगा। मानिनि! मैं अपने प्रारम्भ किये हुए महत्वपूर्ण कार्य को समाप्त किये बिना सुखो का उपभोग न करने का सकल्प कर चुका हूँ।" उस कमला से इस प्रकार कहकर राजा जयापीड अपने अँगूठीयुक्त हाथ से पर्यङ्क को बजाकर नि श्वास लेते हुए निम्नलिखित श्लोक को गाने लगा

> असमाप्त जिगीषस्य स्त्री-चिन्ता का मनस्विन.।
> अनाक्रम्य जगत्कृत्स्न नो सन्ध्या भजते रवि ।

'निश्चित विजयाभिलाषा के समाप्त हुए बिना मनस्वी पुरुष को स्त्री से सम्बन्ध रखने वाली चिन्ता कहाँ से होगी? सम्पूर्ण जगत् पर आक्रमण किये बिना सूर्य सन्ध्या-देवी का सेवन नही करता।'

इन वाक्यो से उसको अपना आशय प्रकट करते हुए देखकर उस परमचतुरा नर्तकी कमला ने अपने अन्त करण मे पूर्ण रूप से निश्चय कर लिया कि यह कोई महापुरुष है। प्रात काल होते ही जब वह वहाँ से जाने लगा तब कमला ने प्रेम के वशीभूत होकर विनयपूर्वक बडी देर तक प्रार्थना करके वही रहने के लिए सन्तुष्ट कर लिया।

एक दिन वह सायकाल मे सन्ध्या-वन्दन के लिए नदी के तट पर गया था। वहाँ से लौटने मे उसने विलम्ब किया, इसलिए कमला तथा उसके परिजन अत्यन्त चिन्ताकुल हो गये। आये हुए उन समस्त लोगो को चिन्तायुक्त देखकर जयापीड ने उनसे चिन्ता का कारण पूछा। तब कमला ने विहँस कर कहा—"देव! आप जिस ओर जाते हैं उस ओर एक भयकर सिह रात्रि मे प्राणियो पर आक्रमण कर उन्हे मार डालता है। जब आपके आने मे विलम्ब हुआ तब उसी सिह के भय से मैं व्याकुल हो गई थी क्योकि उस सिह ने प्रतिदिन मनुष्य, अश्व तथा हाथी आदि प्राणियो के सहार करने का क्रम जारी रखा है। यहाँ के राजा और राजपुत्र तथा बड़े-बडे सरदार उसके भय से रात्रि होते ही अपने घरो के दरवाजे बन्द कर अन्दर बैठ जाते हैं।"

इस प्रकार कहती हुई उस मुग्धा को हँसते हुए जयापीड ने आश्वासन दिया तथा उस सम्पूर्ण रात्रि को लज्जित-सा होकर व्यतीत किया। दूसरे दिन सूर्यास्त होते ही वह नगर से निकल कर एक विशाल वटवृक्ष के नीचे खडा हो गया और सिह के आगमन की प्रतीक्षा करने

लगा। थोडे ही देर बाद विकसित बकुल वृक्ष के समान कान्तिवाला तथा यमराज के जगम अट्टहास-सदृश भयानक सिंह को उसने दूर से देखा। मन्द गति से दूसरे मार्ग की ओर जाते हुए उस भयकर सिंह को देखकर राजाओ मे सिंह के समान पराक्रमी जयापीड ने मेघ के समान गरज कर उसे युद्ध के लिए बुलाया। वह सिंह भी स्तब्धकर्ण हो कराल मुख-कन्दरा को विस्तृत कर लाल-लाल लोचनो को चमकाता हुआ और शरीर के पूर्व भाग को सकुचित कर ऊँचा उठाता हुआ गरज कर उस पर झपटा। उसके आक्रमण करते ही जयापीड ने बडी शीघ्रता के साथ उसके मुख में अपना बायां हाथ डाल दिया और दूसरे हाथ मे रखी हुई कटार से उसका कलेजा चीर डाला। भक्षण किये मदमत्त हाथी के सिन्दूर समान रक्त को बहाते हुए तथा एक मात्र प्रहार से विदीर्ण हुए उस सिंह ने तत्काल प्राणत्याग कर दिया। जयापीड ने भी बाये हाथ के घावो पर पट्टी बांधकर उसे छिपाते हुए कमला के भवन मे प्रवेश किया और रात्रि मे पूर्ववत् शयन किया।

दूसरे दिन प्रभात मे सिंह के मारे जाने का वृत्तान्त सुनकर राजा जयत बडा प्रसन्न हुआ। वह स्वय उस मरे हुए सिंह को देखने के लिए गया। उस विशाल शरीर वाले एव भयानक स्वरूप मृगेन्द्र को एक प्रहार से मरा हुआ देखकर चकितचित्त राजा जयन्त ने यह निश्चय कर लिया कि इस भयकर सिंह का घातक विलक्षण शक्तिशाली कोई दिव्य पुरुष होगा। उसके बाद उस सिंह की दष्ट्रा मे मिले हुए केयूर (भुजबन्द) को लेकर राजा के सेवक ने राजा जयत को दिया। उस केयूर मे अंकित जयापीड के नाम को पढकर राजा जयत अधिक चकित हो गया। "महाराज जयापीड यहाँ कैसे आये होगे?" इस प्रकार कहते हुए राजा के वचनो को सुनकर सम्पूर्ण नगर-निवासी भय से थर-थर कांपने लगे।

इस प्रकार घबडाते हुए नागरिको को देखकर वह राजा जयत उन सबो से कहने लगा— "अरे! तुम लोग बडे पागल हो जो कि इस हर्ष के अवसर पर भयभीत हो रहे हो। परम पराक्रमी महाराज जयापीड किसी अज्ञात कारणवश एकाकी भ्रमण कर रहे है ऐसी किम्बदन्ती मैंने भी सुनी है। उन्होने अपना नाम राजपुत्र कल्लट रखा है। मुझे भी पुत्र की अभिलाषा है। इसलिए मैं अपनी इकलौती कन्या कल्याणदेवी को उन्हें अर्पण करूँगा। इस प्रकार मुझे भी पुत्र-लाभ हो जायगा। हमे जिसको खोजना पडता है, वह यदि घर बैठे हमे मिल रहा है, तो रत्न-सम्पादन के हेतु रत्न-द्वीप के प्रवासी को अपने घर के कोने मे ही रत्न-निधि की प्राप्ति के समान इस घटना को भी मान लेना चाहिए। सम्राट् जयापीड इसी नगर मे कही अवश्य होगे। उनका पता लगाकर जो मुझे सूचना देगा, उसे मैं मुँहमाँगा पारितोषिक दूंगा।

राजा जयत अपनी सत्यवादिता के लिए प्रसिद्ध था अतएव उसके कथन पर विश्वास रखते हुए नागरिको ने जयापीड का पता लगाकर उससे कहा—"कमला के भवन मे जयापीड ठहरे हुए हैं।" इस सूचना को पाते ही राजा जयत अधिक प्रसन्न हुआ और फिर अन्त पुर तथा प्रधान वर्ग-समेत वह कमला के घर पर गया। वहाँ जाकर सद्भाव से और विनयपूर्वक जयत ने जयापीड को अत्यत आग्रह से अपने राजभवन मे ले आया। फिर उस उपलक्ष मे बडा उत्सव मनाया। इसके बाद राजा जयत ने अपनी पुत्री कल्याणदेवी को भावी भाग्योन्मुख जयापीड के कर-कमल मे पुन प्राप्त-त्यक्त राज्यश्री के समान अर्पण कर दिया। राजा जयापीड ने भी आत्मशक्ति का परिचय देने के लिए बिना किसी सहायक सामग्री के गौड देशीय पाँच राजाओ को पराजित कर उन्हे अपने श्वसुर राजा जयन्त के अधीन कर दिया।

कुछ समय के बाद देवशर्मा नामक मित्रशर्मा का पुत्र जयापीड के समीप आया। उसने जयापीड के आदेश से वापस गये निर्णायक सैन्य को सुरक्षित रखा था। देवशर्मा की प्रार्थना को स्वीकार कर भावी विजयलक्ष्मी तथा कल्याणदेवी और कमला को साथ लेकर वह अपने राज्य की ओर चल पडा। रास्ते मे उदारपौरुष जयापीड ने कान्यकुब्ज के राजा को परास्त कर उसके राजचिह्न-स्वरूप सिंहासन का अपहरण किया। इस प्रकार अपने पराक्रम का परिचय देते हुए वह विजयी जयापीड सैन्यसहित अपने राज्य की सीमा पर पहुँच गया। उसके इस प्रकार सैन्यसहित पहुँचते ही जज्ज भी युद्ध के लिए सुसज्जित अपने सैन्य को लेकर सम्मुख उपस्थित हो गया। पुष्कलेत्र नामक ग्राम के निकट उसके साथ जयापीड का कई दिनो तक भयानक सग्राम होता रहा।

राजा जयापीड प्रजा को अत्यन्त प्रिय लगता था। जज्ज के शासन-काल मे अत्याचारो से पीडित असख्य कृषक तथा जगली लोग भी जयापीड के अनुयायी हो गये थे। उस युद्ध मे ग्रामीणो से साथ श्रीदेव नामक ग्राम-चाण्डाल भी आया था। "कौन-सा जज्ज है और वह कहाँ है ?" इस प्रकार वह योद्धाओ से प्रश्न करता था और वहाँ चक्कर काटा करता था। उन सबो ने उसे जज्ज को दूर से ही दिखला दिया था। उस समय जज्ज घोडे पर सवार था और तृष्णार्त होकर सुवर्ण की सुराही से पानी पी रहा था। उस श्रीदेव चाण्डाल ने गुम्फन घुमाकर उसके मुख पर पत्थर मारा और उस पत्थर से जज्ज को घायल होकर घोडे से गिरते देख कर वह चाण्डाल "मैने जज्ज का वध किया है" इस प्रकार घोषणा करता हुआ कृतकृत्य हो गया। उसने युद्ध मे आने के समय "मैं राजा जयापीड की सहायता के लिए युद्ध मे जा रहा हूँ। मुझे तुरन्त भोजन दे दें" इस प्रकार हँसती हुई अपनी माता के सामने जो प्रतिज्ञा की थी उसे पूर्ण कर दिया।

पत्थर की गहरी चोट से जज्ज का मुख विकृत तथा भयानक दीख रहा था और वह वेदना से छटपटा रहा था। ऐसी दुरवस्था मे पृथ्वी पर पड़े हुए उस मुमूर्षु को त्याग कर उसके साथी और सहायक भाग गये। वह जज्ज समर्थ पुरुष श्रीजयापीड के साथ विरोध कर सर्वदा दुःख की शका से व्याकुल रहा और स्वामि-द्रोह से प्राप्त किये गये राज्य से तीन वर्ष मे ही वियुक्त हो गया। रखी हुई दूसरो की धरोहर को खाने जाने वाले वैश्य का धन तथा कामियो को ठगकर एकत्रित की गई वारागना की सम्पत्ति और स्वामि-द्रोह द्वारा प्राप्त की गई राजलक्ष्मी, ये तीनो ही अस्थिर होती हैं।

जज्ज के मारे जाने के बाद राजा जयापीड ने पुन. अपना राज्य स्वाधीन कर लिया और अपने सत्कृत्य से राज्यश्री तथा सत्पुरुषो के हृदय पर एक ही साथ अधिकार कर लिया। जिस प्रदेश मे शत्रु-वध द्वारा राजा का कल्याण हुआ था वहाँ उसकी पत्नी श्री कल्याण देवी ने कल्याण-पुर नामक नगर बसाया। राजा जयापीड ने भी मल्हाणपुर नामक नगर बसाया और वहाँ श्री विपुल केशव भगवान् की स्थापना की। कमला नामक नर्तकी ने भी कमलापुर नामक नगर बसाया। राजा जयापीड ने कल्याण देवी पर प्रेम तथा अधिक आदर व्यक्त करने के लिए उसे महाप्रतीहारपीडा नामक बहुमानसूचक पद का अधिकार दिया। जिस प्रकार गुप्त हुई वितस्ता नदी को कश्यप महर्षि ने फिर से काश्मीर मे प्रकट किया था उसी प्रकार समस्त विद्याओं के उद्भव स्थान उस काश्मीर देश मे अत्यन्त लुप्तप्राय विद्याओ को उसने पुन जीवन प्रदान किया।

उसने स्वयं को मूर्ख कहलाने वाले अज्ञजनों को शिक्षित बनाने के लिए बड़े-बड़े अनुभवी विद्वानों को नियुक्त कर दिया था। उसने अपने देश में उच्छिन्न हुए व्याकरण-महाभाष्य के पुन प्रचार के लिए देशान्तरों से प्रौढ वैयाकरणों को बुलवाकर उसकी ओर लोगों की प्रवृत्ति को जगा दिया। उसने क्षीरस्वामी नामक महान् वैयाकरण को अपने यहाँ बुलवाकर बड़े सम्मान के साथ रखा और स्वयं भी उसके निकट महाभाष्य का विधिपूर्वक अध्ययन किया तथा राज-सभा में उत्तम-उत्तम विद्वानों का संग्रह कर उसे अत्यन्त भव्य बना दिया। वह किसी राजा को भी अपने साथ स्पर्धा नहीं करने देता था परन्तु स्वयं विद्वानों से स्पर्धा करता था और उसी में उसे गौरव तथा उत्साह का अनुभव होता था। उस राजा जयापीड को राज-पदवी की अपेक्षा पण्डित-पद अधिक प्रिय था। उस पद की बड़ी प्रसिद्धि थी। समय की महिमा के कारण उस पद के अनेक दोषयुक्त होने पर भी प्रसिद्धि में न्यूनता नहीं हुई। वह राजा जयापीड विद्वानों के अधीन हो गया था इसलिए उसके दर्शन की उत्कण्ठा में आए हुए सामन्तों को विद्वानों के घर जाकर उनकी प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करना पड़ता था। अतएव विद्वानों के घर राजाओं से पूर्ण रहते थे। उस राजा ने अधिक प्रयत्न से विद्वानों को खोजकर उनको अपने आश्रय में रखना आरंभ कर दिया था, इसीलिए अन्य राजधानियों में विद्वानों का अभाव होने लगा था।

उसके प्रधान मंत्री शुक्रदन्त के यहाँ अन्नसत्र का अधिकारी थविकय नामक महापण्डित था। उसे राजा ने विद्वत्ता से सन्तुष्ट होकर अधिक सम्मानपूर्वक अपना आश्रित बना लिया। उसके यहाँ प्रतिदिन एक लाख दीनार पानेवाला भट्टोद्भट नामक महापण्डित सभापति के आसन को अलंकृत करता था। उसके यहाँ कुट्टिनीमत नामक कामशास्त्रीय ग्रन्थ का निर्माता दामोदरगुप्त बलिराजा के यहाँ शुक्राचार्य के समान प्रधान मंत्री का कार्य करता था। इसी प्रकार मनोरथ, शंखदत्त, चटक एवं सधिमान नामक कवि तथा वामनादिक मंत्री उसके कार्यकर्ता थे।

एक दिन उसने स्वप्न में सूर्य को पश्चिम की ओर उदय होता देख मन में 'किसी श्रेष्ठ धर्माचार्य का इस राज्य में अवतार हुआ है' ऐसा दृढ निश्चय कर लिया। वह अत्यन्त बुद्धि-मान् राजा प्रत्येक उपभोग किये जाने वाले पदार्थ के तत्व का पूर्ण ज्ञाता था, इसीलिए वह उन सबको पूर्ण रूप से समझता भी था। केवल भोजन-सामग्री के ही स्वाद को जानने वाले और चित्ताकर्षक वस्तु तथा ललित-सुभाषित आदि अद्वितीय सरस वस्तु पर ध्यान न देने वाले राजा लोग बैल के समान अज्ञानता के कारण अंध होते हैं। ऐसी दशा में उन्हें पदार्थों के तत्वों का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है? चिता में स्थित प्रेत को सती होती हुई प्रिया के आलिंगन का महत्व निरर्थक होता है, अधिक मूर्छा से अचेत हुए मनुष्य को इक्षु-रस के माधुर्यमय स्वाद का कुछ भी पता नहीं चलता, मृतात्मा को सुगंधित पुष्पमाला तथा आभूषण आदि के सौरभ का कुछ भी अनुभव नहीं प्राप्त होता, इसी प्रकार असहृदय और शुष्क स्वाभव वाले मनुष्य के आगे सम्पूर्ण ललित पदार्थों के लावण्य का महत्व निरर्थक है।

राजा जयापीड का एक ही स्वरूप परस्पर सामने रखे हुए मंत्र और एक पराक्रम-रूपी दो दर्पणों में प्रतिबिम्बित होकर सहस्त्र प्रकार का दीखता था। किसी समय उसने सामने खड़े हुए दूत को लंकेश्वर के पास से पाँच राक्षसों को लाने का विचित्र आदेश दिया। वह चतुर दूत भी प्रवहण के द्वारा समुद्र-प्रवास करते हुए समुद्र में गिर पड़ा। समुद्र में गिरते ही उसे महामत्स्य (बड़ी मछली) ने ग्रस लिया किन्तु वह मत्स्य के उदर को चीर कर बाहर आ गया। राम का

भक्त होने के कारण विभीषण मनुष्य मात्र से अधिक प्रेम करता था। इसीलिए राजा जयापीड के आज्ञापत्र को लाने वाले दूत को पाँच राक्षसो के साथ उसके देश मे भेज दिया।

राजा जयापीड ने उस दूत को पर्याप्त धन देकर सन्तुष्ट किया और उन राक्षसो से एक अगाध सरोवर को बन्द करा कर उस स्थान पर स्वर्ग के समान सुन्दरतायुक्त जयपुर नामक नगर बसाया। वहाँ एक बहुत बडा विहार बनवाकर बुद्ध की तीन मूर्तियाँ स्थापित की। इसके साथ ही साथ उस पुण्यात्मा राजा ने उस नगर मे जयादेवी का भी मन्दिर बनवाया। चतुरात्मा तथा शेषशायी विष्णु ने वैकुण्ठ-वास के स्नेह को छोड कर उसी नगर मे स्थायी रूप से निवास करने का निश्चय-सा कर लिया था। इस घटना के सम्बन्ध मे कुछ इतिहास के ज्ञाताओ का ऐसा भी मत है कि राजा जयापीड ने लकेश्वर के भेजे हुए उन राक्षसो से तो दूसरा कार्य कराया था किन्तु सरोवर को तो मजदूरो ने ही पाट दिया था। उस राजा को कस-निषूदन कृष्ण ने अपने लिए प्रतिद्वारका बनवाने की आज्ञा स्वप्न मे दी थी, उसी के अनुसार उसने भी जल के अन्दर प्रतिद्वारका का निर्माण किया। आज भी सब लोग प्रतिद्वारका को बाह्यकोट तथा जयपुर को आभ्यन्तर कोट कहते है।

उस राजा जयापीड के महामत्री जयदत्त ने, जिसे पाँच महाविरुदें मिली थी, जयपुर मे एक उत्तम मठ बनवाया। राजा के प्रतीहार मथुरापति श्री प्रमोद के जामाता आच ने आचेश्वर नामक शकर की स्थापना की।

कुछ दिन बीत जाने पर उस राजा ने साधन-सामग्री से सुसज्जित होकर फिर से दिग्विजय के लिए प्रयाण किया। उसकी सेना के भूधराकार हाथियो से वेलाचल बढे-से दिखाई पडने लगे। उसकी असख्य सेना हिमालय से प्रकट होकर पूर्व सागर पहुँच कर पुन हिमालय की ओर लौटती हुई पतित-पावनी गगा के समान सुशोभित हो रही थी। मम्मुनि आदि सामन्त भी चिल्लाते हुए प्रचण्ड चाण्डालो के साथ-साथ उसके कटक के वहिर्देश मे पहरा दे रहे थे।

राजा जयापीड ने स्वय "विनयादित्य" नवीन मधुर नाम स्वीकार कर उसके अनुसार विनयपुर नामक नगर बसाया और इस प्रकार पूर्व के दिग्भाग को सुशोभित किया। मर्यादा को अतिक्रमण कर शूरता के अभिमान से विलक्षण साहस को करने वाले प्रतापशाली राजाओ की राज्यश्री सन्देह-दोला का आरोहण करती है। पूर्व के दिग्भाग मे भीमसेन नामक एक राजा था। उसके दुर्ग मे जयापीड (विनयादित्य) ने अपने कतिपय मित्रो के साथ वैरागी का भेष धारण कर प्रवेश किया। वहाँ चिरकाल से रहते हुए जज्ज के भ्राता सिद्ध ने उसे छिद्रान्वेषण करते हुए पहिचानकर राजा को सूचना दी। राजा भीमसेन ने भी उसी प्रकार उस विनयादित्य को सहसा बाँध कर अपने कारागर मे रख दिया जिस प्रकार अजगर-रूपी नहुष ने भीमसेन को बाँध लिया था। वीर एव पुरुषार्थियो मे श्रेष्ठ उस राजा विनयादित्य के इस प्रकार बन्धन मे फँस जाने से पौरुष-विरोधी दैव को अवश्य ही आनन्द हुआ होगा और उसने पूर्ण अभिमान से अपना मस्तक भी अवश्य ऊँचा किया होगा। किन्तु उदयोन्मुख वह राजा जयापीड इतनी भयानक आपत्ति मे भी विना किसी प्रकार की व्याकुलता के आत्ममुक्ति के लिए अनेक प्रकार के उपाय सोचा करता था।

उसी अवसर पर भीमसेन के राज्य मे प्रजा को अत्यन्त क्लेशदायक तथा सक्रामक लूता रोग प्रारम्भ हुआ। उस रोग की घातकता एव स्पर्श मात्र सक्रामता आदि के कारण उस रोग से

पीडित व्यक्ति को देश की रक्षा के लिए देश से निकाल दिया जाता था। यह वृत्तान्त जब राजा जयापीड को विदित हुआ तब उसने इसी रोग को अपने छूटने का साधन बनाने का निश्चय कर लिया और गुप्त रीति से अपने सेवको के द्वारा कुछ वस्तुएँ भी तैयार कराईं। उन पित्त-प्रकोपक वस्तुओ के सेवन से उन्हे बडे वेग से पित्तज्वर ने घेर लिया। ऐसी दशा मे वज्रवृक्ष (थूहर) के दूध को शरीर पर लगाने से उसके सम्पूर्ण शरीर पर बडे-बडे फोडे निकल आये। कारागार के रक्षको के कथन से भीमसेन ने उसे लूतारोग से ग्रस्त हुआ सुनकर "अब वह अवश्य ही मर जायगा" ऐसा निश्चय कर लिया और उसे अपने देश से बाहर भेज देने का प्रबन्ध कर दिया। इस प्रकार अपनी बुद्धि के कौशल से उस महान् सकट-सागर को पार करते ही राजा जयापीड ने भीमसेन के उस गगनचुम्बी दुर्ग तथा यश दोनो को ही एक साथ नष्ट कर दिया। मूर्ख मनुष्य जिस शास्त्र-रूपी सुवृक्ष की सर्वदा हँसी उडाया करते हैं और इसीलिए कि उसके मूल, अकुर, पुष्प और फल आदि को वे प्रत्यक्ष नही देख पाते परन्तु आगे चलकर वही सुवृक्ष सकट के समय फलीभूत होकर मनुष्य की दीनता को उसी समय तुरन्त नष्ट कर देता है।

इसी प्रकार नेपाल देश का नरेश राजा अरमुन्डी जो अत्यन्त चतुर, विद्वान् तथा पराक्रमी था, वह अपनी चतुरता से जयापीड को फाँसने का उपाय सोचा करता था। एक बार जयापीड ने उस पर आक्रमण किया। तब वह जयापीड की शरण मे न आकर सेना-समेत अपने राज्य के सुदूरवर्ती दुर्गम प्रदेशो मे भागने लगा। जयापीड ने भी सभी प्रकार के उपायो द्वारा उसको परास्त करने का दृढ निश्चय कर उसका पीछा करना आरम्भ कर दिया और उसी कार्यक्रम के साथ मार्ग मे अनेक राजाओ को भी अपने अधीन कर लिया। वह अरमुन्डी भी कभी अदृश्य हो जाता था और कभी प्रत्यक्ष होता था। जयापीड भी कबूतर के पीछे लगे बाज के समान प्रत्येक स्थान मे उसका अनुसधान करता फिरता था।

अब अरमुन्डी को और आगे बढने का अथवा भाग कर छिपने का स्थान नही रह गया था। इसलिए उसने समुद्रगामिनी सरिता के तट पर सेना-समेत मुकाम किया। जयापीड भी दिग्विजय करता हुआ उसी महानदी तथा सागर के सगम पर पहुँच गया और अपना शिविर स्थापित किया। फिर वहाँ दो-तीन दिन ठहरकर समुद्र के पवन से फहराती हुई पताकाओ से भूषित सेना को लेकर वह पूर्व सागर की ओर अग्रसर हुआ।

उस नदी के पार अरमुन्डी का भी पडाव था। उसमे अरमुन्डी का श्वेतछत्र चमक रहा था। उसकी विपुल सेना तथा वीर-वाद्य को सुन कर घृताहुतियो से प्रज्वलित होमाग्नि के समान जयापीड की क्रोधाग्नि धधक उठी। उस समय वह वहाँ की नदी के जल को घुटनो तक देखकर अनायास ही नदी के पार पहुँचने की सम्भावना से क्रोध के आवेश के वशीभूत हो गया और उसने तुरन्त उस अपरिचित अथवा अज्ञातपूर्व सरिता मे प्रवेश किया। वह प्रवाह के मध्य भाग मे जब तक पहुँचता है तब तक तो समुद्र की उत्ताल तरगो के कारण वहाँ अथाह जल भर गया। उस नदी को पार करते हुए जयापीड के हाथी, घोडे और सिपाही एक क्षण मे उस जल-प्रवाह मे मग्न हो गये। तरगो की प्रखरता से राजा जयापीड के वस्त्र तथा अलकार भी बह गये। वह अपनी प्रबल भुजाओ से तरगो को चीरता हुआ तैर रहा था परन्तु जल के प्रबल वेग के कारण बहुत दूर चला गया। जयापीड के सैन्य के दु खमय क्रन्दन तथा अरमुन्डी की सेना के आनन्द-जयघोष तथा तरगो की घोरतर ध्वनि से दसो दिशाएँ व्याप्त हो गईं। अरमुन्डी के सैनिकगण हवा से फुलाई हुई मसकें लेकर सरिता के तट पर सन्नद्ध थे। उन सबो को स्फूर्ति-

वन्धन से मुक्त होने के उपलक्ष मे वहाँ अभूतपूर्व समरोत्सव हुआ। उस समरोत्सव मे कबन्धो ने नृत्य किया तथा वीरो का वरण करने के लिए आकाश मे उपस्थित होने वाली अप्सराओ ने पुष्पमालाओ की वृष्टि की और युद्ध के वाजे वजाये गये।

जिस ग्रीष्म ऋतु मे दावानल से अत्यन्त तापित दूसरे पर्वत दूर ही त्याग करने पडते हैं, आश्चर्य है कि उसी समय मे वर्फ के जल से अत्यन्त शीतल गिरिराज हिमालय अवश्य सेव्य हो जाता है। जिस समय जज्ज के समान स्वामि-द्रोहियो का जन्म हुआ था उसी समय देवशर्मा के समान सच्चे स्वामिभक्त का भी होना क्या आश्चर्यजनक नही है? मित्रशर्मा का सुपुत्र देवशर्मा तेजोमय सूर्य के पुत्र तमोमय शनैश्चर के समान अपने पिता से विरुद्ध स्वभाववाला न हुआ। रक्षा-रत्न के समान अत्यन्त हितकर उस मत्री की मृत्यु से प्राप्त हुई लक्ष्मी को भी राजा जयापीड ने न मिलने के ही समान समझा। उस दिग्विजय के बाद राजा के हृदय से अरमुडी द्वारा किये गये अपमान से उत्पन्न हुई ग्लानि निकल चुकी थी किन्तु उस मत्री का उपकार उसके हृदय मे चिरस्थायी हो चुका था।

फिर कुछ समय के वाद राजा जयापीड ने सुविस्तृत स्त्री-राज्य पर आक्रमण कर उसे जीत लिया परतु उस राजा के द्वारा की गई विजय की अपेक्षा उसके द्वारा की गई इन्द्रिय-विजय को ही अन्य राजा लोग महत्वपूर्ण तथा आश्चर्यजनक मानते थे। उसने जीते हुए स्त्री-राज्य से कर्णश्रीपट का अपहरण किया तथा उसको वाँधकर नवीन धर्माधिकरण नामक न्यायालय स्थापित किया। इसी प्रकार प्रयाण के समय अपने स्थायी कोशागार को दूरस्थ होने के कारण अधिक उपयुक्त न समझकर चलगंज नामक विभाग स्थापित किया। यह उसकी बडी ही चातुर्यपूर्ण योजना थी। इस योजना के अनुसार हाथियो पर पर्याप्त धन लादकर अभीष्ठ स्थान पर पहुँचा दिया जाता था।

इस विश्व-विजयी वीर जयापीड के सम्वन्ध मे अधिक वर्णन न कर इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि उसकी विशाल भुजाओ मे रहने वाली विजयश्री के लिए चारो समुद्र विलास-दर्पण के समान हो गये थे फिर वह राजा जयापीड अपने अनेक माण्डलिको के साथ काश्मीर मे जाकर पराक्रम से प्राप्त की गई महालक्ष्मी का शान्ति के साथ उपभोग करने लगा।

एकदिन सर्वदिग्विजयी तथा परम तेजस्वी उस राजा को स्वप्न मे एक दिव्य आकृति वाले पुरुष ने प्रणाम कर कहा—"महाराज! मैं महापद्म नामक नागराज हूँ। आज तक आपके सुरक्षित राज्य मे परिवार-समेत वडे आनन्दपूर्वक रहता था, परतु अव मैं, आपकी शरण मे आया हूँ। वात यह है कि एक द्राविड मान्त्रिक मुझे यहाँ से ले जाकर और जलाकाक्षी मरुदेश मे मुझे वेचकर धन कमाना चाहता है। यदि आप उस मान्त्रिक से मेरी रक्षा करेंगे, तो मैं आपके महान् उपकार के उपलक्ष मे आप को सुवर्ण निकलने वाला पर्वत इसी देश मे वतला दूंगा।"

राजा जयापीड ने भी इस स्वप्न-वृत्तान्त पर विश्वास कर अपने गुप्तचरो को चारो ओर भेज दिया। जव उस द्राविड़ मान्त्रिक का पता लग गया तव उसे बुलाकर उसके इस कार्य का उद्दश्य पूछा। जव मान्त्रिक ने राजा जयापीड से अभय प्राप्त कर लिया तव सम्पूर्ण सत्य वृत्तान्त कह दिया। उसकी वातो को ध्यानपूर्वक सुन लेने के वाद राजा ने वड़े आश्चर्य के साथ उससे पुनः प्रश्न किया—"इतने वडे और अनेक योजन विस्तीर्ण सरोवर से अपने प्रभाव द्वारा उस नाग को तुम कैसे आकृष्ट कर सकते हो?" राजा के इस प्रश्न को सुनकर उस द्राविड मान्त्रिक ने कहा।

"महाराज ! मंत्रों की शक्तियाँ अचिन्त्य होती है । यदि आप मत्र का प्रभाव देखना चाहते हैं तो शीघ्र चल कर देख लेने की कृपा कीजिए ।" उस मात्रिक की बातो को सुनकर राजा जयापीड उसके साथ उस सरोवर के तट पर गया और वहाँ उस मात्रिक ने मत्र पढकर वाण छोडना आरभ किया । उन वाणो से दिशाओ को बाँधकर उसने सरोवर को सुखा दिया । उस सरोवर मे केवल कीचड ही रह गया । राजा ने सरोवर के कीचड मे मनुष्य के समान मुख वाले और बीता भर लम्बे नाग को देखा । उतने ही बडे और अनेक नाग उस सरोवर मे विद्यमान थे । उस द्राविड मात्रिक ने राजा जयापीड से कहा—"मैंने मत्र-शक्ति से इस नाग को वश कर लिया है । अब इसे यहाँ निकाल कर लिये जाता हूँ, परतु राजा जयापीड ने "इसे मत पकडो" ऐसा कहकर उसे रोक दिया । फिर राजा की आज्ञा से उस द्राविड मात्रिक ने मत्र के प्रभाव को हटा लिया । देखते ही देखते वह सरोवर पुन जल से पूर्ण हो गया ।

उस द्राविड मात्रिक को राजा जयापीड ने पर्याप्त धन देकर विदा कर दिया और मन मे विचार किया कि क्या अब भी वह नाग सुवर्णपूर्ण पर्वत को नही दिखायेगा ? इस प्रकार विचार करते हुए उस राजा जयापीड से वह नाग स्वप्न मे आकर कहने लगा "हे राजन् ! तुमने मुझ पर कौन-सा उपकार किया है जिसके उपलक्ष मे मैं तुम्हे सुर्वण निकलने वाला पर्वत बतला दूं ? प्राणिमात्र के मन मे यह मेरा स्वदेश है और यह विदेश है इस प्रकार की भावना का जन्म-दाता अधिक परिचय और अल्प परिचय ही होता है । मैं अपमान के भय से तुम्हारी शरण मे आया था, परन्तु तुमने रक्षक बनकर भी स्वय मेरे अपमान मे सहयोग दिया और मुझे उस अपमान का अनुभव करना पडा । 'हमारा स्वामी समुद्र के समान अलघ्य है' इस प्रकार के सद्भाव को अपने हृदय मे रखने वाले आश्रित जन के सम्मुख यदि स्वामी की दुर्दशा हो, तो इससे बढकर और कौन-सा लज्जाजनक अपमान होगा । दूसरे के द्वारा अपमानित की गई मेरी पत्नियो ने मुझे उनकी रक्षा करने मे असमर्थ पाया । ऐसी दशा मे उनको अपना मुख किस प्रकार दिखा सकता हूँ । तुमने हमे दीन तथा शक्तिहीन समझकर हमारी ओर दयापूर्ण दृष्टि के देखने की अपेक्षा हमे तुच्छ तथा हास्यास्पद बनाने का अधिक प्रयत्न किया है अथवा सम्पत्ति के मद से अन्ध तथा अविचारपूर्ण कार्य करने वाले राजा लोग यदि इस प्रकार मनमानी करें तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? राजा लोग उन्नत पुरुषो का अपमान करना खेल समझते है परतु स्वाभिमान से उन्नत पुरुषो के लिए वह श्वासपूर्ण मरण हो जाता है । राजा लोग स्वार्थ के लिए स्वाभिमान को तिलाजलि देना अनुचित नही समझते, परन्तु मान ही जिनका धन है ऐसे पुरुष तो प्राणो की भी पर्वाह न करके मानरक्षा के लिए सर्वदा तत्पर रहते हैं । जो लोग बडो का अपमान करते हैं और अन्य अपमानित पुरुषो मे सम्मिलित होते हैं, उनकी मानसिक दशा का ज्ञान किसे हो सकता है ? फिर भी तुम लोगो के समान हमारा दर्शन निष्फल नही हो सकता, इसलिए तुमको ताम्र निकलने वाला पर्वत दिखाया जाता है ।"

इस प्रकार कह कर नागराज ने स्वप्न मे ही राजा जयापीड को उस पर्वत की पहिचान के विशेष चिह्न बतला दिये और फिर अदृश्य हो गया । सवेरा होते ही राजा उठ पडा और शीघ्र ही उस पर्वत का पता लगा लिया । वह पर्वत-क्रम राज्य मे था । वहाँ से राजा जयापीड ने बहुत-सा ताम्र निकाल कर उस ताम्र से स्वनाम-मुद्राकित एक कम एक सौ करोड दीनार नामक सिक्के तैयार कराये और भविष्य मे होने वाले राजाओ के गर्व को चूर्ण करने के लिए "जो पूरे सौ करोड़ दीनार बनवायेगा, वह मुझे जीत सकेगा" इस प्रकार की शर्त रख दी ।

शाली अरमुन्डी ने नदी मे उतरवा कर जयापीड को पकडवाया और उसे किनारे लाकर बाँध लिया। इसके बाद विजय के उपलक्ष्य मे बडा भारी उत्सव मनाया गया। दैव तथा मेघ, इन दोनो को सर्वदा अनुकूल रहने का अभ्यास नही है। दैव प्रारम्भ मे मनुष्य को थोडी-सी अनुकूलता दिखलाकर थोडे ही समय के बाद उस पर भयानक और असहनीय आपत्तियाँ डाल देता है और मेघ भी ग्रीष्म के तापदायक दीर्घ दिवसो के सताप से सतप्त तरु को थोडे-से शीतल बिन्दुओ से ताप-शमन की आशा दिखाकर शीघ्र ही बिजली गिराकर नष्ट कर देते हैं।

अरमुन्डी ने जयापीड को कालगडिका नदी के तट पर पाषाण-निर्मित सुदृढ दुर्ग के भीतर परम विश्वासपात्र रक्षको के अधीन बनाकर कैद मे डाल दिया। इस प्रकार वह काश्मीर-नरेश जयापीड पुन घोर सकट मे पड जाने के कारण किंकर्तव्यविमूढ होकर शोक से निरन्तर जलने लगा। उस बुद्धिमान् अरमुन्डी ने उस पर इतना कठोर पहरा रखा कि उसको तेजस्वियो मे सूर्य तक का दर्शन नही हो सकता था और कलावन्तो मे चन्द्रमा तक दृष्टिगोचर नही होता था। जयापीड ने कारागार के एक वातायन के समीप आकर देखा, तब वहाँ से उसे नदी का गभीर प्रवाह दिखाई पडा। वह उस कारागार से छूटने का उपाय सोचने लगा। उस कारागार मे रहते हुए जयापीड ने अपनी निराशामयी दशा का वर्णन करते हुए कई श्लोक लिखे थे। उन करुणापूर्ण श्लोको को पढकर आज भी सहृदय विद्वान करुणा से द्रवीभूत हो जाते हैं।

इस प्रकार राजा जयापीड को कारावास की यत्रणा भोगते हुए सुनकर उसके स्वाभिमानी तथा चतुर मन्त्री देवशर्मा को उसके सम्मान का स्मरण करने से अत्यन्त दुःख होने लगा। मित्रशर्मा के पुत्र देवशर्मा ने अपने शरीर के त्याग द्वारा भी स्वामी का कल्याण करने का पूर्ण रूप से निश्चय कर लिया और चतुर तथा मधुरभाषी दूतो को भेजकर अरमुन्डी को प्रलोभन देना आरम्भ किया। दूतो के द्वारा अरमुन्डी से कहा गया कि मैं जयापीड की सम्पूर्ण सम्पत्ति तथा काश्मीर का राज्य आपके अधीन करना चाहता हूँ। इसके उत्तर मे अरमुन्डी ने भी अपने दूत भेजकर स्वीकृति की सूचना दे दी। इस प्रकार परस्पर विचार करने के बाद मन्त्री देवशर्मा अपनी सेना को साथ लेकर नेपाल को गया। सम्पूर्ण सेना को कालगडिका नदी के इस पार छोडकर वह परिमित सेवको के साथ अरमुन्डी के पास उस पार गया। उसके उस पार जाते ही सामन्तो ने सम्मुख आकर उसका स्वागत किया और उसे बड़े सत्कार के साथ अरमुन्डी के पास ले गये। देवशर्मा ने अरमुन्डी को प्रणाम किया। उसने भी बडे आदर के साथ स्वागत करते हुए उसे आसन पर बैठ जाने के लिए कहा। थोडी देर तक वार्तालाप होने के बाद राजा अरमुन्डी ने उसे मार्ग मे चलने के कारण थका हुआ-सा देखकर शीघ्र ही विदा किया। उसने भी अरमुन्डी के द्वारा दिये गये उपहारो को स्वीकार कर वह दिन अपने निवास-स्थान पर ही बिताया।

दूसरे दिन उसने अरमुन्डी के साथ कोशपानपूर्वक सप्रेम वार्तालाप किया और फिर एकान्त मे भविष्य के कर्त्तव्य का निश्चय किया। सब कुछ निश्चय हो जाने के बाद देवशर्मा ने अरमुन्डी से कहा—'हे राजन्! जयापीड का इकट्ठा किया हुआ धन्य उसके सैन्य-बल के ही साथ है किन्तु उसने उन सबको किस स्थान पर रखा है, इसे जयापीड और उसके थोडे से आप्त जन ही जानते हैं। मेरी इच्छा है कि आप जयापीड से—'यदि तुम अपना सचित धन दे दोगे, तो तुम्हें इस कारावास से मुक्ति मिल सकेगी' इस प्रकार की बातो से उस धन के गुप्त स्थान को पूछ लें। इसीलिए मैंने सेना को दूर रखा है क्योकि उस धन का पता जानने वाले उन सैनिको

को सेना मे रहते हुए बन्दी बनाना बडा ही कठिन कार्य है। उनमे से एक-एक को एकान्त मे बुलाकर यदि बन्दी बनाया जाय, तो अन्य सैनिक हमारे उद्देश्य को जान न सकेंगे और वे कुपित न होकर हमारे प्रश्नो का यथार्थ उत्तर देने को तैयार हो जावेंगे।

इस प्रकार प्रलोभनकारी मोहक वचनो से उस चतुर मन्त्री ने अरमुन्डी को मोहित कर उसकी सम्मति प्राप्त कर ली और कारावास के बन्धन मे पडे हुए जयापीड के समीप शीघ्र पहुँच गया। वहाँ पर राजा की दुर्दशा को देखकर उस स्वामिभक्त देवशर्मा के हृदय मे अत्यन्त दुःख हुआ परन्तु उस दुःख को दृढ निश्चय और धैर्य से रोककर उसने वहाँ के लोगो को उस स्थान से हटा दिया और एकान्त मे वह राजा जयापीड से इस प्रकार पूछने लगा—"महाराज! आपने साहस के आधार-भित्ति-स्वरूप अपने तेज को तो नही खो दिया? क्योंकि उसी के ऊपर साहसिक कार्यरूपी चित्र को अंकित करने की कल्पना की जाती है।" देवशर्मा की बातो को सुनकर जयापीड ने कहा "मन्त्रिन्! तेज के रहने पर भी इस निःशस्त्र दशा मे मैं कौन-सा चमत्कारपूर्ण कार्य कर सकता हूँ।" देवशर्मा ने कहा "राजन्! यदि आपका तेज सुरक्षित हो, तो निश्चित जानिए कि आप इस संकट-रूपी सागर से शीघ्र ही उद्धार पा जायेंगे। क्या आप कारागार की इस खिडकी से नदी के प्रवाह मे कूद कर तैरते हुए पार जा सकते हैं? आपकी रक्षा के लिए वहाँ आपकी सेना उपस्थित है।" देवशर्मा की बातो को सुन कर राजा जयापीड ने कहा—"मन्त्रिन्! इस अथाह नदी के प्रवाह मे मसक के बिना यदि कूदा जाय, तो अवश्य ही डूबना पडेगा और मसक के साथ कूदने पर भी यह अधिक ऊँचा होने के कारण मसक भी फट सकती है। इसलिए इस उपाय से मेरा यहाँ से छूटना असम्भव है और इस प्रकार का अपमान होने पर भी अपकारी को उचित दण्ड दिये बिना ही मरना भी उचित नही है।"

राजा जयापीड की इन सब बातो को सुनकर मन्त्री देवशर्मा ने अपने मन मे कुछ निश्चय किया और फिर राजा से कहा "महाराज! आप किसी बहाने से दो घड़ी के लिए बाहर चले जाइए। फिर अकेले आकर देखेंगे कि मैंने आपके लिए इस अथाह नदी के पार पहुँचने का उपाय ठीक कर रखा है। आप उस उपाय को निःशंक होकर काम मे ला सकेंगे। मन्त्री देवशर्मा के इस कथन को सुनकर राजा जयापीड शौच के बहाने बाहर चला गया और उसके बतलाये हुए समय को बाहर बिता दिया। फिर राजा जयापीड ने एकाकी भीतर आकर अपने मन्त्री को कपड़े से फांसी लगाकर मरा हुआ देखा।

"महाराज! मैं अभी मरकर आपके लिए फूली होकर भी न फूटने वाली मसक बन गया हूँ। इसके सहारे आप नदी मे कूदकर उस पार चले जाइए। आपकी जघाओ को सहारा देने के लिए मैंने अपनी पगडी का पट्टा कमर मे बाँध रखा है। उस पर पैर रखकर शीघ्र ही नदी मे कूद जाइए।" इस प्रकार उसने अपने रक्त से नख के द्वारा उस कपड़े के कोने पर लिख रखा था। राजा जयापीड ने उस सन्देश को पढ लिया। आश्चर्य से चकित होने तथा मन्त्री देवशर्मा के पवित्र स्नेह का अनुभव करने के बाद राजा जयापीड उस मृत शरीर का आश्रय लेकर नदी के अथाह प्रवाह मे कूद पड़ा और तैरकर उस पार पहुँच गया। वहाँ अपनी सेना से मिलकर शीघ्रातिशीघ्र अरमुन्डी पर आक्रमण कर दिया और राजा-समेत नेपाल देश का सत्यानाश कर डाला। कारागार से उसके छूटने का समाचार रक्षको के कर्णगोचर होने के पूर्व ही उसने उस राज्य को कथावशेष कर डाला था। उस राजा जयापीड के कारावास के

इस प्रकार के अपूर्ण कार्यों द्वारा उस राजा जयापीड ने अपनी बराबरी करने की इच्छा रखने वाले भविष्य के राजाओ के लिए गर्वनाशक विकट समस्याएँ रख दी थी। कुछ समय के बाद प्रजा के दुर्भाग्य से उस राजा जयापीड ने अपने पितामह ललितादित्य के मार्ग को त्याग कर अपने पिता वज्रादित्य के मार्ग का अनुसरण करना प्रारंभ कर दिया। "महाराज! दिग्विजय आदि क्लेशो की क्या आवश्यकता है? यदि आप चाहे तो अपने मडल से ही द्रव्योपार्जन कर सकते है।" इस प्रकार परम धूर्त कायस्थो की प्रार्थना को सुनकर उस राजा ने अपनी प्रजा को आर्थिक दण्ड देना आरंभ कर दिया। शिवदास आदि खजाचियो ने उसकी धन-विषयक तृष्णा को अत्यत उत्तेजित कर रखा था, इसलिए वह परम लोभी बन गया। उसी समय से काश्मीर के आधुनिक राजा लोग स्वतंत्र रूप से आज्ञा का प्रसार न कर कायस्थ कर्मचारियो का मुँह ताकने लगे।

जिस जयापीड की राजसभा मे बडे-बडे राजाओ को पकडने का परामर्श चलता था, उसी जयापीड की राज-सभा मे अपने नागरिको को पकड कर कारागार मे रखने का विचार होने लगा। जयापीड के जिस पाण्डित्य से सज्जन पुरुषो को शान्ति प्राप्त होती थी, उसी पाण्डित्य ने जयापीड को प्रजा को कष्ट देने मे दक्ष बना कर पाप की ओर अग्रसर किया। वह सौदास राजा के समान अनेक मनुष्यो के प्राणो का अपहरण करने लगा। उसे अनार्य कृत्यो से स्वप्न मे भी सन्तोष अथवा तृप्ति नही होती थी।

किसी भी व्यभिचारिणी स्त्री ने सहज कौतुक के वशीभूत होकर यदि एक बार विपरीत आचरण आरंभ कर दिया हो तथा किसी राजा ने एक बार क्रूर कृत्य करना प्रारंभ कर दिया हो, तो फिर कारणवश न करने का वह कितना भी दृढ विचार कर ले तो भी अत्यधिक अभ्यास के प्रभाव से स्त्री को नीचातिनीच पुरुष के भी साथ सभोग करने मे तथा उस राजा को अपने पिता की भी हत्या करने मे संकोच नही होता। इस प्रकार लोभ के वशीभूत होकर उस राजा ने तीन वर्ष तक इतना भयानक अत्याचार किया कि बेचारे किसानो के खेत की सारी उपज राज्य द्वारा छीन ली गई। उस लोभी राजा को लोगो को लूटकर प्राप्त किये धन का थोडा-सा भाग राज्य-कोष मे देकर अधिकाश को स्वय रख लेने वाले कायस्थ सच्चे स्नेही तथा हितैषी दीखते थे। समुद्र के मत्स्य तथा राजाओ का स्वभाव एकसमान ही होता है क्योकि समुद्र के मत्स्य समुद्र से ही अपरिमित जलराशि का हरण कर वर्षा मे थोडे-से ही जल-बिन्दुओ को गिराने वाले मेघो को ही महान् परोपकारी समझते है। उसी प्रकार राजा लोग भी समस्त प्रजा को लूटकर तथा उससे अपना स्वार्थ-साधन कर थोड़ा-सा धन राजकीय कोष मे रखने वाले कायस्थ कर्मचारियो को ही अपना हितैषी मानते हैं।

ब्राह्मणो का अकुण्ठित एवं सार्वकालिक धैर्य आश्चर्यजनक है जिसके प्रभाव से शौर्ययुक्त इस राजा के खड्ग का आतक ब्राह्मणो ने नही माना। बहुत-से ब्राह्मण तो उसके त्रास से दूसरे देशो को चले गये। बहुत-से उसके अत्याचार से व्याकुल होकर हाहाकार मचाते हुए प्राणत्याग करने लगे, फिर भी उस राजा की ओर से लूट-खसोट निरन्तर चलती ही रहती थी। उस क्रूर कर्म करने वाले राजा ने अपने सेवको को आज्ञा दे रखी थी कि यदि निन्नानवे ब्राह्मण एक दिन मे मर जावें तो मुझे अवश्य सूचना देनी होगी अथवा जब-जब निन्नानवे ब्राह्मण मरें तब-तब मुझे उसकी सूचना अवश्य देना।

इस प्रकार राजा जयापीड के चरित्र मे परिवर्तन देखकर उस समय के कविवरो ने भी उस राजा के वर्णन के लिए निर्माण किये गये प्रशसात्मक श्लोको मे भी परिवर्तन कर दिया। राजा की प्रशंसा के लिए जो श्लोक लिखा गया था वह यह है—

"नितान्त कृतकृत्यस्य गुण-वृद्धि-विधायिन: ।
श्रीजयापीडदेवस्य पाणिनेश्च किमन्तरम् ॥"

'महर्षि पाणिनि संस्कृत व्याकरण के प्रसिद्ध आचार्य हैं। संस्कृत व्याकरण मे कृत् प्रत्यय, गुण और वृद्धि अपना एक विशेष महत्त्व रखते हैं। इसीलिए राजा जयापीड की उपमा महर्षि पाणिनि से दी गई है। जिस प्रकार महर्षि पाणिनि ने कृत् प्रत्ययो का तथा गुण और वृद्धि का विधान विशेष रूप से किया था उसी प्रकार मानव-समाज के हित के लिए काश्मीर-राज्य मे राजा जयापीड ने भी उपकारी कार्यों द्वारा जन-समाज को अत्यत कृतार्थ किया था तथा मानव-समाज मे सद्गुणो की वृद्धि की थी। अतएव अत्यन्त-कृतार्थ तथा सद्गुणो को बढाने वाले श्रीजयापीड महाराज और कृत् प्रत्ययो का विधान करने वाले तथा गुण और वृद्धि के विधायक महर्षि पाणिनि मे कुछ भी अन्तर नही है।'

संस्कृत व्याकरण के भाष्य की व्याख्या के समय राजा जयापीड की विद्वत्ता से मुग्ध होकर ऊपर लिखा हुआ प्रशसात्मक श्लोक तैयार किया गया था, उसी श्लोक मे निम्नलिखित परिवर्तन किया गया—

"कृत-विप्रोपसर्गस्य भूत-निष्ठा-विधायिन ।
श्रीजयापीडदेवस्य पाणिनेश्च किमन्तरम् ॥"

'ब्राह्मणो को कष्ट देने वाले तथा प्राणियो की हत्या करने वाले श्रीजयापीडदेव और विप्र आदि उपसर्गों के प्रदर्शक तथा भूतकाल मे निष्ठा प्रत्यय के विधायक महर्षि पाणिनि मे क्या अन्तर है ?'

चन्द्रभागा नदी के तट पर रहकर उस राजा ने तूलमूल्य नामक ग्राम के अपहरण करने से निन्नानवे ब्राह्मणो के नदी मे डूबकर अपने प्राणत्याग करने का समाचार सुना। उस दिन से उसने सम्पूर्ण अग्रहारो का अपहरण बन्द कर दिया परन्तु कितने ही ब्राह्मणो की छीनी गई सम्पत्ति और धरती फिर से न लौटाई। राजा के समीप निवेदन करने के लिए आये हुए तूलमूल्य-निवासी ब्राह्मणो को जब राजा के प्रतिहारो ने थप्पडो से मारा तब वे राजा से प्रार्थना करने लगे—"राजन् ! इस पृथ्वी पर मनु, माधाता, राम आदि बडे-बडे राजा हो गये हैं परन्तु उनके राज्य-काल मे भी ब्राह्मणो को इस प्रकार का अपमान नही सहना पडा था। क्रोध करने पर ब्राह्मण इन्द्र-समेत स्वर्ग को, पर्वत-समेत पृथ्वी को तथा नागराज-समेत पाताल को एक क्षण मे जलाकर भस्म कर सकते हैं।" ब्राह्मणो के इन वचनो को सुनकर सामन्तो के द्वारा त्यक्त राजा जयापीड ने बडे गर्व के साथ भृकुटियों को टेढ़ी करते हुए कहा—"अरे ! भिक्षान्न से उदरपोषण करने वाले तुम्हारे-जैसे शठो को इतना मद कहाँ से हो गया जिससे तुम लोग अपने महात्म्य का वर्णन कर महर्षियो की समानता करने लग गये।"

इस प्रकार राजा के वचन को सुनकर और उसकी भयकर वक्र भृकुटी से भयभीत होकर बहुत से ब्राह्मण चुप रह गये परन्तु इट्टिल नामक महान् तपस्वी ब्राह्मण ने राजा से कहा—"राजन् ! प्रत्येक युग में युग और धर्म के अनुसार जिस प्रकार आपके समान राजा होते हैं उसी

प्रकार हमारे समान ऋषि भी हुआ करते हैं।" राजा जयापीड ने बड़े गर्व के साथ उससे कहा—"क्या तू तपोनिधि वशिष्ठ, विश्वामित्र अथवा अगस्त्य है ?" राजा जयापीड के इस प्रकार उद्धत वचनो को सुनकर इट्टिल क्रोध से कांपने लगा। उस समय वह उतना तेजोमय हो गया था कि उसकी ओर देखने का किसी को साहस न होता था। उसने कुपित सर्प के समान फूत्कार तुल्य नि श्वास छोडकर कहा "यदि तू हरिश्चन्द्र, नहुष अथवा त्रिशकु होगा तो मैं भी विश्वामित्र, अगस्त्य और वशिष्ठ, इन तीनो मे से एक अवश्य हूँ।" राजा ने हँसकर कहा—"विश्वामित्र के कोप से हरिश्चन्द्र की दुर्दशा हो गई, अगस्त्य के कोप से नहुष को अजगर होना पड़ा और वशिष्ठ के रोष से त्रिशकु की दुर्गति हो गई किन्तु तेरे क्रोध से मेरा क्या होगा ?" तब इट्टिल ने कुपित होकर और अपने करतल से पृथ्वी का ताडन करते हुए कहा "मेरे क्रोध से भी क्या तेरे ऊपर ब्रह्मदण्ड नही गिरेगा ?" इतना सुनते ही राजा जयापीड क्रोध से उसका उपहास करके कहने लगा "तो फिर विलम्ब क्यो कर रहा हैं ? उस दण्ड को शीघ्र गिरने दे।" "दुष्ट! देख, यह ब्रह्मदण्ड अभी तेरे ऊपर गिरता है" इस कथन के साथ ही राजा जयापीड के मस्तक पर छत से टूटकर एक सुवर्ण-दण्ड गिर पड़ा। उससे राजा जयापीड के मस्तक मे गहरा घाव हो गया और सड़ जाने से उसमे कीडे भी उत्पन्न हो गये। तब उसके उस अग को शस्त्र से काटना पड़ा। कुछ दिनो तक भावी नारकीय क्लेश का उसे अनुभव कराकर उसके निकल जाने के उत्सुक प्राण शरीर को त्याग कर निकल गये। वह अकाड-दण्ड-स्रष्टा दण्ड-धराधिप ब्रह्मदण्ड-कृत दण्ड का अनुभव कर दण्डधर अर्थात् यम के समीप पहुँच गया। उस प्रतापी और चंचलचित्त राजा जयापीड ने एकतीस वर्ष तक पृथ्वी का शासन किया।

राजा तथा मत्स्य धन और मलिन जल की तृष्णा से, अपनी मर्यादा का त्याग कर कुमार्ग अर्थात् अनुचित मार्ग अथवा पृथिवी के मार्ग का अनुसरण करते हैं। उससे उनको यमदूतो के तथा धीवरो के अधीन होकर नरक तथा जाल-बन्धन की यन्त्रणा का अनुभव करना पड़ता है। साराश यह कि धन की तृष्णा के ही कारण राजा कुमार्गगामी होकर नरक की यंत्रणा का अनुभव करता है और मलिन जल की तृष्णा के कारण मत्स्य जल-प्रवाह के विपरीत पृथ्वी की ओर होता हुआ अन्त मे जाल-बन्धन की यन्त्रणा का अनुभव करता है। अत. राजाओ के लिए धन की तृष्णा अमगल का ही कारण बन जाती है।

५ कर्कोटकवशीय अन्तिम राजाओ की कथा

उस राजा जयापीड को इस प्रकार पापमय मृत्यु के वश हुआ देखकर उसके उद्धार के लिए उसकी माता अमृतप्रभा देवी ने अमृतकेशव का मदिर बनवाया। इसके बाद दुर्गादेवी से उत्पन्न हुआ जयापीड का पुत्र ललितापीड काश्मीर देश का शासक हुआ। वह अत्यधिक विषय-लम्पट राजा था। राज्य के कार्यों की उपेक्षा करने मे उसे तनिक भी सकोच नही होता था। परिणामस्वरूप उद्दडता और अत्याचारो से दूषित समस्त राज्य वेश्याओ की सम्पत्ति हो गया था। ललितापीड के नरकगामी पिता जयापीड ने जिस धन को कुकर्मों द्वारा इकट्ठा किया था उसे वह नट, वेश्या, भाँड आदि को लुटाने मे ही व्यय करने लगा। कुलटाओ के बान्धव विट लोगो ने राजभवन मे आश्रय पाकर राजा ललितापीड को पुश्चली विद्याओ का अध्ययन कराना प्रारभ कर दिया था। उसने कटक, कुण्डल आदि आभूषणो को त्याग कर, स्त्रियो के दाँतो से छिन्न-भिन्न हुए केश तथा उनके नखो से चिह्नित वक्षस्थल को ही अपना आभूषण समझा।

जो पुरुष वेश्या-कथा के ज्ञाता और नर्म-कथा-विचक्षण होते थे, वे ही उस राजा के प्रिय कहलाते थे। उसे शूर तथा पंडित प्रिय नहीं थे। थोड़ी स्त्रियों से तृप्त न होने वाला वह परम कामुक राजा विजित स्त्री-राज्य को छोड़कर आने वाले जयापीड को मूर्ख समझता था। वह वेश्याओं के साथ क्रीडा करने से ही सन्तुष्ट रहता था और उसे वेश्या-प्रेमियों के ही समाज में मे रहना रुचिकर था। वह राजा ललितापीड दिग्विजय-व्यसनी प्राचीन राजाओं की हँसी उड़ाया करता था। विट लोग मर्यादाशील वृद्धों को अपमानजनक परिहास-वचनों से उद्विग्न कर राजा के पास नहीं ठहरने देते थे। इस कार्य से प्रसन्न होकर राजा उनको पारितोषिक देता था। गणिकाओं का मित्र वह राजा बाजारू निम्नतम श्रेणी के मनुष्यों के समान ग्राम्य उपहास में परम कुशल था इसलिए बिना किसी प्रसंग के ही ग्राम्य उपहास द्वारा वह अपने अपने समीप आये हुए वृद्धों को लज्जित कर देता था।

वह दुराचारी राजा गौरव के योग्य मन्त्रियों को कुलटाओं के चरणों की मुद्रा से अंकित दुपट्टे-दुशाले आदि वस्त्र पहनने को देता था। इस प्रकार के दूषित आचरण से उसे रोकना सर्वथा असंभव समझकर मनोरथ नामक स्वाभिमानी मन्त्री ने उसके कार्य में हस्तक्षेप करना छोड़ दिया और उससे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद भी कर डाला; क्योंकि दुष्कर्म, कुशलता का अभाव, नैराश्य, द्रोह करने का अभ्यास इत्यादि दुर्गुणों से युक्त राजा के लिए त्याग के अतिरिक्त दूसरी कोई भी औषधि नहीं है।

उसने सुवर्ण पार्श्व, फलपुर तथा लोचनोत्स नामक अग्रहार ब्राह्मणों को दिये। उस राजा ललितापीड ने केवल बारह वर्ष राज्य किया। उसके बाद कल्याण देवी से उत्पन्न हुआ जयापीड का पुत्र संग्रामापीड काश्मीर का शासक हुआ। उसने अपना दूसरा नाम, पृथिव्यापीड रखा था वह केवल सात वर्ष तक साम्राज्य के सुख का अनुभव कर सका। उसके बाद ललितापीड का अल्पवयस्क पुत्र चिप्पट जयापीड अथवा बृहस्पति राजसिंहासन का अधिकारी हुआ। रागरूपी ग्रह से ग्रहीत राजा ललितापीड की रक्षिता कल्यपाल अर्थात् कलवार जाति की कन्या जयादेवी से चिप्पट जयापीड का जन्म हुआ था। आसुव ग्राम-निवासी उप्प नामक कल्यपाल की कन्या जयादेवी परम रूपवती थी। इसीलिए उसके सौन्दर्य से आकृष्ट होकर राजा ललितापीड ने उसे अपने अन्तःपुर मे रख लिया था। पद्म, उत्पलक, कल्याण, मम्म तथा धर्म नामक पृथ्वी का उपभोग करने वाले पाँच मातुलों के द्वारा उस बालक राजा चिप्पट जयापीड का पालन किया जाता था। उत्पल ने पाँच महाधिकार स्थान अपने अधीन कर रखे थे और शेष अधिकार अपने भाइयों को दे दिये थे। जब तक राज्य का अधिकार उन पाँचों भाइयों के अधीन था, तब तक वे अपनी बहन जयादेवी की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन किया करते थे। उस राजमाता जयादेवी ने जयेश्वर का मन्दिर बनवाया।

अतिशय लोभान्ध राजा के अन्याय द्वारा उपार्जित धन को उसके अवसान के बाद राज्याधिकार पानेवाला कोई भी उत्तराधिकारी शीघ्र ही नष्ट कर देता है। राजा जयापीड के द्वारा एकत्रित किये गये धन को उसके पुत्र ललितापीड ने खूब उड़ाया और उससे बचे हुए धन को ललितापीड के पाँचों श्यालकों ने व्यय कर डाला। उन भाग्यशाली पुरुषों को अपनी बहन की सुन्दरता के कारण जो सौभाग्य प्राप्त हुआ था वही उनके स्थायी रूप से सुख तथा वैभव के उपभोग करने का प्रधान कारण बन गया था। वे सब नीच वंश मे उत्पन्न हुए थे इसीलिए उनका व्यवहार वंश के ही अनुसार नीचता-पूर्ण तथा निरंकुशता से युक्त था। वे डरते थे कि हमारा भागिनेय अर्थात् भानजा तरुण हो रहा है और थोड़े ही समय के बाद वह हमारा शासक

हो जायगा। उस दशा मे हम सब अधिकार से शून्य हो जायंगे। इस प्रकार राज्य के लोभ से उन पापात्माओ ने परस्पर विचार कर अभिचार-क्रिया के द्वारा उस अपने स्वामी तथा भागिनेय की हत्या कर डाली। इसीलिए चिप्पट जयापीड केवल बारह वर्ष तक ही राज्य कर सका।

उसके मरण के बाद पद्म आदि भ्राताओ ने पारस्परिक मत्सर तथा अहंकार के कारण किसी भी एक को राजा नही बनाया। स्वयं प्रधान बने रहने की अभिलाषा से वे किसी भी राजकुलोत्पन्न पुरुष को नाममात्र का राजा बनाकर परस्पर झगडते हुए राज्य-कार्य के विभागो मे अपना अधिकार चलाते थे। मेधावली देवी से उत्पन्न हुआ वज्रादित्य बप्पिय का पुत्र त्रिभुवनापीड ज्येष्ठ होने पर भी राज्य-कार्य से उदासीन रहता था, इसीलिए वह राज्य-सिंहासन से वंचित रखा गया किन्तु जयादेवी से उत्पन्न हुए उसके पुत्र अजितापीड को उत्पलक ने बलपूर्वक राज्य-सिंहासन पर बैठा दिया। उसके स्वतंत्र व्यय की व्यवस्था दण्ड आदि गणना-स्थान से बचे हुए पंचम् गणना-स्थान की आय से कर दी गई। उस बेचारे राजा को उन पाँच भाइयो के अधीन रहने से अत्यन्त शोचनीय तथा आश्चर्यमय दशा का अनुभव करना पडता था। वह उन्हे समान रूप से नही चाहता था, इसलिये यदि वह उनमे से किसी भी एक से प्रेमपूर्वक बातचीत करता था, तो दूसरे भाई का मुँह फूलने लगता था। उस नाममात्र के शासक अजितापीड के राज्य की समस्त आय को अपहरण कर वे भाई नये-नये नगरो और मंदिरो का निर्माण करने लगे। जिस प्रकार जंगल मे मर कर सडते हुए भैंसे पर परस्पर झगडते हुए श्रृगाल आक्रमण करते है, उसी प्रकार वे पाँचो भाई उस सुव्यवस्थित शासनविहीन राज्य की लक्ष्मी को हडपने लगे।

उत्पलक ने उत्पलपुर नामक नगर बसाया और वहाँ उत्पलस्वामी की स्थापना की। पद्म ने पद्मपुर नामक नगर बसाया और उसी नगर मे पद्मस्वामी का मन्दिर बनवाया। पद्म की गुणोज्वला पत्नी श्रीगुणादेवी ने राजधानी मे तथा विजयेश्वर मे एक-एक मठ बनवाया। धर्म ने धर्म की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर धर्मस्वामी की स्थापना की। सत्कर्म करने वाले कल्याण वर्मा ने कल्याणस्वामी का मंदिर बनवाया। बुद्धिमान, श्रीमान् तथा परमकुशल मम्म ने मम्मस्वामी की स्थापना की और उस मन्दिर की कलश-प्रतिष्ठा के अवसर पर पचासी हजार गोदान दिये तथा प्रत्येक गो-दान के साथ दक्षिणा के रूप मे पाँच-पाँच हजार दीनार दिये। उस उपलक्ष मे उस अकेले मम्म ने जो धन और द्रव्य व्यय किया था उसकी गणना कर सकना बडा ही कठिन कार्य है। ऐसी दशा मे उन समस्त सम्पत्तिशाली भाइयो द्वारा व्यय किये गये अतुल धन की कल्पना करना भी कठिन है। उन्हे सम्पत्ति चाहे दुष्कर्म से अथवा सत्कर्म से या किसी भी उपाय से मिली हो, परन्तु उनकी उदारता से सभी सुखी थे।

उन मंत्रियो के बनवाये हुए विशाल मन्दिरो के सम्मुख दूसरो के बनवाये हुए छोटे-छोटे मंदिर दिग्गजो के सामने हाथी के बच्चे के समान दिखाई पडते थे। उनका भागिनेय राजा चिप्पट जयापीड लौकिक अथवा सप्तर्षिशक के तीन हजार आठ सौ इक्यासीवें वर्ष मे मृत्यु को प्राप्त हुआ था। उस समय से लेकर छब्बीस वर्ष तक उन भाइयो ने शंकारहित होकर शान्तिपूर्वक राज्य का उपभोग किया।

इसके बाद मम्म और उत्पलक इन दोनो भ्राताओ का घोर संग्राम हुआ। इस महायुद्ध का वर्णन करने के लिए विद्वन्मानस-सिन्धु-शशांक महाकवि शंकुक ने "भुवनाभ्युदय" नामक काव्य की रचना की। जिस प्रकार सूर्य समस्त नक्षत्रो के तेज को लुप्त कर देता है, उसी प्रकार इस युद्ध मे मम्म के पुत्र यशोवर्मा ने समस्त वीरो के तेज को श्रीहीन कर दिया था। इस युद्ध के बाद

ही मम्म तथा उसके पक्षपाती लोगों ने अजितापीड को राज्याधिकार से च्युत कर द्वितीय संग्रामापीड के पुत्र अनंगापीड को राज्य का अधिकारी बना दिया। उत्पलक के पुत्र सुखवर्मा को मम्म का उत्कर्ष सहन नहीं होता था इसलिए वह कुपित होकर उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचा करता था। तीन वर्ष के बाद उत्पलक का स्वर्गवास हो गया। उसके स्वर्गवास होते ही सुखवर्मा ने अजितापीड के पुत्र उत्पलापीड को राज-सिंहासन पर बैठाया। वे राजा लोग प्राचीन काल में आश्वयुजी अर्थात् कुआर के महीने की पूर्णिमा को होने वाले राजाओं के समान अस्थिर होते थे तथापि इनके शासन-काल में भी कतिपय कार्यकुशल मंत्री अपनी चतुरता के कारण शासन तथा ऐश्वर्य का उपभोग करते थे। उस राजा के सान्धि-विग्रहिक (मंत्री) रत्न ने उस समय में भी रत्नस्वामी का मंदिर बनवाया। इसी प्रकार नर आदि व्यापारी दार्वाभिसार नामक प्रान्त के अनेक ग्रामों को अपने अधिकार में रखकर स्वतंत्रतापूर्वक शासन करते थे। उनके पास एक से एक उत्तम प्रकार के अश्व थे। उस समय कर्कोटकवंशीय राजाओं का कुल नष्टप्राय हो गया था और उत्पल-वंश का उत्कर्ष हो रहा था। सुखवर्मा अपने सामर्थ्य से दूसरा राजा ही हो रहा था इसीलिए शुक्क नामक उसके बान्धव ने द्वेष के वशीभूत होकर उसे मार डाला।

उसके बाद शूर नामक मंत्री ने सद्गुणशाली सुखवर्मा के सुपुत्र अवन्तिवर्मा को राज्य के योग्य समझकर उसी का पक्षपात करना प्रारंभ कर दिया। इकतीसवें वर्ष में प्रजा में होने वाले विप्लव की शान्ति के लिए उत्पलापीड को राज्य से च्युत कर उसने अवन्तिवर्मा को राज्य का अधिकारी बना दिया। जिस राज्य-प्राप्ति के लिए पिता तथा पितामह प्रयत्न करने पर भी सफल न हो सके वही सिद्धि पूर्वजन्म के पुण्य के प्रताप से पौत्र को बड़ी सरलता से ही प्राप्त हो गई। कुंभ समुद्र के जल को हरण करने के लिए प्रवृत्त होकर व्यर्थ में नित्य श्रम किया करते हैं किन्तु सब से अधिक आश्चर्य तो यह है कि उन्हीं कुंभों में एक कुंभ से उत्पन्न हुए अगस्त्य ऋषि ने सम्पूर्ण समुद्र का अनायास ही पान कर संसार को चकित कर दिया। इसके बाद अवन्तिवर्मा ने राजलक्ष्मी के कृपाकटाक्ष स्वरूप पट्ट वस्त्र को धारण किये हुए मस्तक पर सुवर्ण कलश के मुख से निकले हुए राज्याभिषेक के सलिल को शीघ्र ही धारण किया। अपने वंशज के राजाओं द्वारा उपदेश किये गये नवीन राज्य-तंत्र का उपदेश करने के लिए कुण्डल-द्वय के व्याज से आये हुए सूर्य-चन्द्र को कर्ण-द्वय में धारण कर निर्मल छत्र के बहाने लक्ष्मी के निवास-स्थान कमल की छाया में विराजमान राजा अवन्तिवर्मा चमकने लगा।

इस चौथी तरंग में सत्रह राजाओं ने दो सौ साठ वर्ष छः मास दस दिन तक राज्य किया।

५

१. राजा अवन्तिवर्मा की कथा

काश्मीर देश के राज्याधिकार को प्राप्त कर राजा अवन्तिवर्मा ने अपने समस्त विरोधियों को नष्ट कर दिया और इसके बाद ऐसे उत्तम कार्य किये जिनसे सज्जन पुरुषों को परम हर्ष प्राप्त हुआ। सभी दिशाओं में उसके गुणों के गीत गाये जाने लगे। वह राजा अवन्तिवर्मा और उसका मंत्री शूर दोनों ही आज्ञा देते समय और आज्ञा का पालन करते समय क्रमशः परस्पर स्वामी और सेवक बन जाया करते थे। कृतज्ञ तथा क्षमाशील राजा और

अनुरक्त तथा विनयशील सेवक इन दोनों का चिरस्थायी संयोग पुण्य के प्रभाव से कदाचित् ही होता है ।

उस विचारशील राजा अवन्तिवर्मा ने राज्याधिकार प्राप्त करने के बाद राजलक्ष्मी की ओर ध्यान देकर अपनी प्राचीन साधारण स्थिति को स्मरण करते हुए विचार किया। गोभुजो की प्रिया तथा मातंगोत् संग-लालिता यह राजलक्ष्मी महात्माओं के मन में भी विकार उत्पन्न कर देती है। (गोभुजो का अर्थ है, गोभक्षक अथवा पृथ्वी-रक्षक और मातंगोत्-संग-लालिता का अर्थ है, चाण्डालो की गोद में खेली हुई अथवा हाथियो की पीठ पर विलास करने वाली ।) इस संसार मे ऐसा कोई भी पुरुष नही है जिसे नीचो की प्रीति के समान चंचल इस लक्ष्मी ने प्रथम अनुकूलता दिखाकर अन्त मे सन्तप्त न किया हो । यह अपने पिता समुद्र के यहाँ चपल स्वभाव वाली दिव्य अप्सराओ के साथ बडी हुई है, फिर भी इसने एकाकिनी होकर भ्रमण करना किससे सीखा है ? चिरपरिचित होकर भी यह स्नेहहीन राजलक्ष्मी पाथेयहीन तथा बान्धवहीन परलोक के पथिक किसी भी राजा के साथ न गई ।

भाण्डागार मे जो सुवर्ण-निर्मित भोजन पात्र आदि बहुमूल्य वस्तुएँ एकत्रित की गई हैं, उनके ऊपर परलोकगत राजाओ का अधिकार इस समय क्यो नही है ? दूसरो के उच्छिष्ट इन समस्त पात्रो मे भोजन करते हुए राजाओ को लज्जा क्यो नही आई अथवा उन्होने पवित्रता का विचार क्यो नही किया ? नरकपाल के समान स्थूल चाँदी के पात्रो मे लिखे हुए परलोक-गत राजाओ के नामाक्षरो को देखकर किसके हृदय मे शंका न उत्पन्न होगी ? काल के पाश मे बँधे हुए मरने वालो के कण्ठ से खीचे गये अप्रशस्त अपवित्र हार किसके लिए रुचिकर होगे ? उन समस्त राजाओ ने जिन आभूषणो को त्याग दिया था उन समस्त आभूषणो को स्पर्श करते हुए कौन संकुचित न होगा ? जो लक्ष्मी सागर के अगाध जल मे निरंतर निवास करने पर भी सर्वदा मलिन ही रहती है, वही दरिद्रता-रूपी अग्नि से पूर्ण पात्रो मे डालने से अर्थात् गरीबो को देने से अग्निशौच हरिणी के समान निर्मल हो जाती है । कहा जाता है कि अग्निशौच मृग अग्नि का स्पर्श करने से निर्मल हो जाते हैं ।)

इस प्रकार अपने मन मे विचार कर वह राजा अवन्तिवर्मा सुवर्ण के पात्रो तथा आभूषणो के टुकडे कराकर और उन टुकडो मे चाँदी तथा रत्न आदि मिलाकर खिचडी के समान अपनी अंजलि भर-भर कर ब्राह्मणो को देने लगा । एक ब्राह्मण ने हर्ष से पुलकित होकर "साधु राजन् !" कहने के स्थान पर "साधु अवन्तिन्" इस प्रकार के गौरवविहीन वचन कहे । उसके इन वचनो से अधिक प्रसन्न होकर राजा ने उसे कई अंजलियाँ अधिक दे दीं । उस पुण्यवान् राजा अवन्तिवर्मा ने लक्ष्मी को आर्थिक सहायता प्राप्त करने योग्य व्यक्तियो के अधीन कर अपने लिए छत्र और चामर ही अवशेष रहने दिए । अतुल सम्पत्तिशाली बान्धवो के उपद्रव के कारण उस राजा अवन्तिवर्मा को कुछ समय तक राजलक्ष्मी के उपभोग करने मे थोडी-सी कठिनाइयो का अनुभव करना पडा । इसके बाद उसने अपने विरोधी भाई और भतीजो को कई बार पराजित कर राज्य को निष्कण्टक कर दिया ।

इस प्रकार राज्य-शासन को सुदृढ और निष्कण्टक बना कर वात्सल्यशील उस राजा अवन्तिवर्मा ने अपने बान्धवो तथा सेवको को भी उसके हिस्सेदार बना लिया और फिर शान्ति-पूर्वक उसका उपभोग करना आरम्भ कर दिया । उस बान्धव-प्रिय राजा ने अपने सौतेले भाई बुद्धिमान् शूरवर्मा को यौवराज्य के पद पर अभिषिक्त किया । युवराज शूरवर्मा ने साधुत्व और

हृक्तिकर्ण नामक दो अग्रहार ब्राह्मणो को दिये और शूरस्वामी की स्थापना कर एक गोकुल भी बनवाया। इतना ही नही, सर्वाधिकार-सम्पन्न एव प्रभावशाली तथा सुकृत-कर्म वाले उस शूरवर्मा ने पचहस्ता नामक अग्रहार दे कर एक मठ का निर्माण भी कराया। राजा के भाई समर ने समरस्वामी नामक चतुरात्मा केशव की स्थापना की। शूरवर्मा के छोटे भाई के पुत्र धीर तथा विपश्च नामक दोनो भाइयो ने जो कि कोषाध्यक्ष थे, अपने-अपने नाम से दो देवालय तैयार कराये। यद्यपि उन दोनो की वास्तविक योग्यता उनके पागलपन से प्रकट न होती थी तथापि अन्त मे वे दोनो भाई सशरीर कैलास को गये। महोदय नामक शूर के प्रधान द्वारपाल ने महोदयस्वामी की स्थापना की और उसने उस मन्दिर मे महान् वैयाकरण रामट उपाध्याय को व्याख्याता के पद पर अधिष्ठित किया। इसी प्रकार राज-मत्री प्रभाकर वर्मा ने प्रभाकरस्वामी नाम के विष्णु का मदिर बनवाया। उस विष्णु-प्रतिमा की प्रतिष्ठा के पावन अवसर पर बाहर के शुको के साथ आये हुए घर के शुक ने जो मोती अर्पण किये थे, उनसे उस मत्री ने प्रसिद्ध शुकावली का निर्माण किया।

राजमत्री शूर ने बडे-बडे विद्वानो को आदरपूर्वक आमत्रित कर काश्मीर-देश मे नष्ट-प्राय विद्या को पुनर्जीवन प्रदान किया। काश्मीर-देश मे आये हुए वे विद्वान् लोग सम्पत्तिशाली बनकर राजाओ के योग्य वाहनो मे बैठ राजसभा मे जाते थे। उस सम्राट अवन्तिवर्मा के साम्राज्य मे मुक्ताकण, शिवस्वामी, ध्वन्यालोक के रचयिता महाकवि आनन्दवर्धन और 'हर-विजय' के निर्माता महाकवि राजानक—इन चारो विद्वानो ने पूर्णरूप से प्रसिद्धि-लाभ की थी। राज-मत्री शूर का आश्रित कृतमन्दार नामक बन्दी अर्थात् भाट सभा-भवन मे एकत्रित हुए सभ्यो को अपने सकल्प का स्मरण रखने के लिए निम्नलिखित छद अर्थात् आर्या को सर्वदा पढ़ा करता था—

"अयमवसरमुपकृतये, प्रकृतिचला यावदस्ति सपदियम्।
विपदि सदाभ्युदयिन्या, पुनरुपकर्तुं कुतोऽवसर॥"

'अर्थात् जब तक स्वभाव से चचला यह सम्पत्ति हमारे पास है तभी तक परोपकार के कार्य करने का यह शुभ अवसर हमको मिला है। इसके बाद चिरकाल तक रहने वाली विपत्ति का उदय होने पर उपकार करने के लिए कहां से अवसर प्राप्त होगा।'

अनेक भवनो का निर्माण करने वाले मन्त्रि-श्रेष्ठ शूर ने शूरेश्वरी क्षेत्र मे अर्धनारी-नटेश्वर का सुदृढ प्रासाद निर्माण कराया। उस बुद्धिमान् मत्री ने भगवान् शूरेश्वर की स्थापना करके अपने भवन के समान शूर-मठ तपस्वियो के निवासार्थ तैयार कराया। उसने क्रमवर्त प्रदेश के ढक्क अथवा द्रग अर्थात् सीमाप्रान्त के नाके को हटाकर अपने बसाये हुए सुन्दर शूरपुर मे स्थापित किया। शूर के पुत्र रत्नवर्धन ने शूरेश्वरी के प्रागण मे ही भूतेश्वर की स्थापना की और शूर-मठ मे ही एक दूसरा मठ भी बनवाया। उत्तम वश मे जन्म ग्रहण करने वाली शूर की पत्नी काव्यदेवी ने शूरेश्वरी क्षेत्र मे काव्यदेवीश्वर नामक शकर की प्रतिष्ठा की।

उस मत्सर विहीन तथा उदारशील राजा अवन्तिवर्मा ने अपने भ्राता शूर तथा उसके पुत्रो को सदा के लिए राजा के समान अधिकार दे दिये थे। वह राजा देवता के समान शान्त स्वभाव वाले अपने भ्राता शूर को प्रसन्न रखने के लिए जन्म से ही वैष्णव होकर भी ऊपर से अपने को शैव बतलाता था। उस राजा ने मोक्ष देने वाले विश्वैकसार नामक क्षेत्र मे सर्वोपभोग सम्पन्न अवन्तिपुर नामक नगर बसाया। राज्याधिकार प्राप्त करने के पहले उसने उसी क्षेत्र मे अवन्तिस्वामी विष्णु की स्थापना की थी। फिर राज्याधिकार प्राप्त करने के बाद उसने उसी

क्षेत्र मे अवन्तीश्वर का मन्दिर बनवाया। उसने त्रिपुरेश्वर, विजयेश तथा भूतेश के मन्दिरों मे स्नान-द्रोणी के साथ चाँदी के तीन सिंहासन बनवाये।

राजा का मन्त्री शूर भी राजा को अपने इष्टदेव के समान मानता था। उसको प्रसन्न रखने के लिए धर्म, प्राण तथा पुत्र को भी छोडने के लिए सर्वदा तैयार रहता था। एक बार वह राजा भूतेश्वर की पूजा करने के लिए गया था। वहाँ उसने अपने ऐश्वर्य के अनुसार पूजा का उपकरण अर्पित किया था किन्तु देवता के सामने की वेदी पर पुजारियो के द्वारा रखे गये उत्पलशाक नामक कडुए जंगली पत्र-शाक को देखकर राजा ने उन पुजारियो से उसका कारण पूछा। तब वे पृथ्वी पर साष्टाग प्रणाम कर कहने लगे, "देव! लहर-प्रान्त मे राज-मन्त्री शूर का पुत्र के समान प्रिय सेवक धन्व नामक डामर रहता है। वह बडा ही शक्तिशाली है। उसका सामना कर सकने वाला कोई नही है। उस परमशक्तिशाली धन्व डामर ने राज्य की ओर से भूतेश्वर की पूजा के लिए अर्पण किए हुए समस्त गाँवो को दबा रखे हैं, इसलिए भूतेश्वर को यही नैवेद्य अर्पण करना पडता है।"

पुजारियो की इन बातो को ध्यानपूर्वक सुनकर भी न सुनी-सी दिखाते हुए वह राजा आकस्मिक उदर-शूल के बहाने चलती हुई पूजा को छोडकर उठ गया। मन्त्री शूर ने भी राजा के आकस्मिक पूजा-त्याग तथा उदर-शूल को रहस्यपूर्ण समझकर गुप्त रूप से उस रहस्य का पता लगाना आरम्भ कर दिया। इस घटना के वास्तविक रहस्य का पता लगते ही वह मन्त्री क्रुद्ध होकर भूतेश्वर के निकट मातृचक्र के मध्य भाग मे बने हुए भैरव के मन्दिर मे पहुँच गया। वहाँ पर पहुँचते ही उसने वहाँ पर आये हुए प्रेक्षक जन-समूह को तुरन्त हटवा दिया। जब थोडे-से आप्तसेवको के अतिरिक्त वहाँ और कोई न रह गया तब राजमन्त्री शूर ने धन्व डामर को बुलवाने के लिए बार-बार दूत भेजना आरम्भ किया।

धन्व डामर अपने पादचारी सैनिको के सम्मर्द से पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ सशस्त्र और निर्भय होकर मन्त्री के सामने उपस्थित हुआ। उसके आते ही मन्त्री द्वारा आज्ञा प्राप्त किये हुए शस्त्रधारी वीरो ने भैरव के सम्मुख उस जीवित डामर का मस्तक काट कर शरीर से अलग कर दिया। फिर उसके रुधिर से लाल हुए शरीर को समीप के सरोवर मे फेंके और राजा के क्रोध का क्षालन कर वह धैर्यवान् शूर वहाँ से चल पडा। उस मन्त्री के द्वारा किये गये पुत्र-तुल्य धन्व डामर के मस्तक कटने के वृत्तान्त को सुनकर राजा अवन्तिवर्मा का समस्त क्रोधानल शान्त हो गया और उसके मन की स्थिति कुछ विचित्र-सी हो गई। राज-मन्त्री शूर ने आकर जब राजा से स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे प्रश्न किया तब राजा ने कहा, "अब शूल नही रहा।" फिर मन्त्री ने राजा को आग्रहपूर्वक शयन-गृह से उठाकर भूतेश्वर की अवशिष्ट पूजा को पूर्ण कराया। इस प्रकार प्रत्येक कार्य मे राजा के हार्दिक भाव को समझ कर वह हित को न कह कर ही, प्राणपण से उस कार्य को पूर्ण कर देता था। इस प्रकार जिनके मन मे पारस्परिक क्रोध तथा मालिन्य कभी उत्पन्न न हुआ हो, ऐसे मन्त्री और राजा न तो कभी देखे गये थे और न कभी सुने गये थे।

राजा मेघवाहन के शासन-काल के समान राजा अवन्तिवर्मा के शासन-काल मे भी दस वर्ष तक सम्पूर्ण प्राणियों की हिंसा बन्द थी। एक समय भयानक जल-प्रलय के कारण अतिशय शीतल नदी के जल से उद्विग्न हुए पाठीन नामक मत्स्य—जो पवित्रतम और श्राद्ध मे भी ग्रहण करने

योग्य माने गये हैं—शंकारहित होकर नदी के तट पर धूप मे पडे रहते थे। राजा अवन्तिवर्मा के राज्य-काल मे लोकानुग्रह के लिए श्रीभट्ट, कल्लट आदि सिद्ध पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। उन महात्माओ के चरित्रो का वर्णन बहुत विस्तृत हो सकता है, इसलिए उनमे से एक के प्रासगिक और पवित्रतम वृत्तान्त का वर्णन किया जायगा। काश्मीर देश पद्म-सरोवर के कारण विशेष रूप से जलमय-सा ही है, इसीलिए इस देश मे अन्न की उपज बहुत कम है। राजा ललितादित्य के प्रबल उद्योग से कुछ जल बाहर निकाल दिया गया और वहां भी थोडी-सी अन्न की उपज होने लगी। राजा जयापीड के बाद वीर्यहीन राजाओ के होने से जल के उपद्रवो के कारण वह भूमि फिर से जलाच्छादित हो गई। उस दुर्भिक्ष-पीडित देश मे एक खारी परिमित अन्न का एक हजार और पचास दीनार मूल्य लगने लगा। उस समय मे अवन्तिवर्मा के पुण्य से प्राणियो के जीवन की रक्षा के लिए स्वय अन्नपति ही सुय्य का रूप धारण कर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ। उस महात्मा का कौन-से वश मे जन्म हुआ था, इस बात का पता नही लगा, किन्तु वह इस चतुर्थ युग मे अवतीर्ण होने वाला अयोनिज था, इस प्रकार जगत् को आश्चर्य से चकित करने वाले उसके चरित्र से अनुमान किया जा सकता है।

सुय्या नामक एक चाण्डाली सडक बटोर रही थी, तब उसे ढँका हुआ मिट्टी का एक घडा मिला। उसके ढँकने को हटाकर देखने से उस घडे मे अपनी उँगली चूसता हुआ कमल के समान नेत्र वाला हँसमुख बालक दिखाई पडा। उसको देखकर "किसी भाग्यहीन जननी ने इस सुन्दर बालक को त्याग दिया है" ऐसा उस सुय्या ने उस समय अपने मन मे सोचा। इस प्रकार सोचते ही उसके हृदय मे मातृ-स्नेह उत्पन्न होने लगा और स्नेह के उत्पन्न होते ही उसके स्तनो से दूध टपकने लगा। उसने अपने स्पर्श से उस बालक को दूषित न कर किसी शूद्र-जाति की स्त्री के घर उसे रख दिया और वही उसके पालन-पोषण का समुचित प्रबन्ध कर दिया। उस बालक का नाम सुय्य रखा गया। बडा होने पर वह सुय्य पढ-लिख कर विद्वान् [हो गया और एक अच्छे धनिक के बालक का अध्यापक बन गया। व्रत, स्नान आदि पवित्र नियमो का पालन करने से सज्जनो का हृदय उसके प्रति आकृष्ट हो गया। फिर उसकी वाणी की चतुरता से मुग्ध होकर बडे-बडे बुद्धिमान् उसके समीप एकत्रित होने लगे।

एक समय वहां वे लोग जल-विप्लव की चर्चा करते हुए राज्य के प्रबन्ध की निन्दा कर रहे थे। उन सबो की बातो को सुनकर सुय्य ने कहा—"इस उपद्रव को शान्त करने की बुद्धि तो मुझ मे है, किन्तु धन न होने से मैं क्या कर सकता हूँ!" सुय्य उन्मत्त के समान सर्वदा इसी प्रकार कहता रहा और उसके समीप आनेवाले बुद्धिमान् लोग नित्य सावधान होकर सुनते रहे। कुछ दिन बीत जाने पर सुय्य की बातो को गुप्तचरो से सुनकर राजा अवन्तिवर्मा आश्चर्य से चकित हो गया। उसने तुरन्त सुय्य को बुलवाया और उसके आने पर पूछा, "तुम्हारा क्या कथन है!" राजा अवन्तिवर्मा के प्रश्न का उत्तर देते हुए सुय्य ने निर्भय होकर कहा—"मुझमे बुद्धि तो है, किन्तु धन न होने से मैं क्या कर सकता हूँ!" उसके इस कथन को सुनकर राजसभा के समस्त सदस्य एक साथ कहने लगे, "यह पागल है।" फिर भी राजा अवन्तिवर्मा ने उसकी बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए उसको यथेष्ठ धन देने की आज्ञा दी। दीनारो से भरे हुए बहुत-से कलश राज्य-कोष से लेकर वह सुय्य मडव राज्य की ओर प्रस्थान कर गया। वहां बाढ के जल मे डूबे हुए मडव ग्राम मे दीनारो से भरा हुआ एक कलश डालकर वह शीघ्र ही वापस चला आया।

इस समाचार को सुनकर "यह वास्तव मे पागल है" इस प्रकार राजसभा के सदस्य समस्वर से कहने लगे। फिर भी राजा अवन्ति वर्मा ने उसके परिणाम को देखने का विचार किया। उसके बाद सुय्य ने क्रम-राज्य के अन्तर्गत यदक्षर नामक ग्राम मे पहुँच कर वहाँ अंजली भर-भर दीनार पानी मे डालना आरभ किया। उस गांव के समीप नदी के किनारो पर के पत्थर नदी मे गिर गये थे, इसलिए नदी का प्रवाह रुक गया था। इसीलिए वितस्ता नदी का जल विपरीत दिशा मे बहने लगा था। उस समय के दुर्भिक्ष से पीडित ग्राम-निवासियो ने दीनारो को खोजते हुए जल के प्रवाह से पत्थरो को निकाल कर वितस्ता नदी को साफ कर डाला। इस प्रकार दो-तीन दिनो मे ही उस रुके हुए जल को मार्ग मिल गया। इसके बाद मजदूरो के द्वारा वितस्ता को एक ओर बँधवा दिया। अद्भुत कार्य करने वाले उस सुय्य ने पाषाणसेतु बँधवाकर एक सप्ताह मे नील-सरोवर से अथवा नील-नाग तीर्थ से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण वितस्ता नदी को बाँध दिया और फिर नदी के भीतर के समस्त पत्थरो को निकलवाकर नदी को साफ करा डाला। इसके बाद पत्थर के बाँध बँधवा कर सेतु को भी तोड दिया। तब बहुत दिनो के अवरोध से अत्यन्त उत्सुक-सी वह वितस्ता वेग से सागर-समागम के लिए दौडने लगी।

हरित जवाल अर्थात् घास-तृण से अंकित तथा तडपती हुई मछलियो से युक्त वह जल-मुक्त भूमि, काले बादलो से मुक्त तथा चमकते हुए नक्षत्रो से सुशोभित स्वच्छ आकाश के समान, दीखने लगी। उस बाढ मे सुय्य ने जहाँ-जहाँ प्रवाह की अधिकता से हानि होने की सम्भावना देखी वहाँ-वहाँ वितस्ता के नवीन-नवीन प्रवाह-मार्ग बनवा दिये। उन अनेक प्रवाहो के कारण वह नदी, एक शरीर-यष्ठी (लाठी) पर अनेक फणो से युक्त नागिन के समान सुशोभित होने लगी। त्रिग्रामी को बाईं ओर से सिन्धु नदी और दाहिनी ओर से वितस्ता आकर वैन्यस्वामी के मन्दिर के समीप पहले मिला करती थी। अब वे दोनो नदियाँ वहाँ न मिलकर सुय्य के द्वारा निर्माण किये गये कल्पान्त स्थायी श्रीनगर के समीप के नवीन संगम-स्थान पर मिला करती हैं। आज उस प्राचीन संगम-स्थान के दक्षिणोत्तर दोनो तटो पर फलपुर तथा परिहासपुर मे विष्णुस्वामी और वैन्यस्वामी दोनो के ही मन्दिर विद्यमान हैं। परन्तु इस सुन्दर भवन के समीपस्थ नवीन सगम स्थान पर सुय्य के द्वारा पूजित योगशायी हृषीकेश भगवान् का मदिर सुशोभित हो रहा है। आज भी वितस्ता के प्राचीन प्रवाही के तट वाले वृक्ष, मल्लाहो द्वारा बाँधी गई नौकाओ की रस्सी के चिह्नो से युक्त दिखाई पडते हैं। नागिन के समान लपलपाती हुई तरग-रूपी जिह्वाओ से युक्त नदियो को सुय्य ने मान्त्रिक के समान अपनी इच्छा के अनुसार अपने मार्गो मे विभक्त कर दिया। सात योजन तक वितस्ता नदी के दोनो तटो पर पाषाणमय बाँध बँधवाकर महापद्म सरोवर के जल का नियन्त्रण कर दिया। महापद्म सरोवर का जल वितस्ता मे मिलते ही धनुष से निकले तीर के समान बडे वेग से बहने लगता है। इस प्रकार आदिवराह भगवान् के समान पृथ्वी का जल से उद्धार कर वहाँ अनेक जन-सकीर्ण नाना प्रकार के ग्राम बनाये गये। दीवारो से पानी रोक कर जो कुण्ड के समान गोलाकार बाँध बनाये गये थे, समग्र अन्नो से समृद्ध उन स्थानो को लोग कुण्डलानी कहते हैं। आज भी शरद् ऋतु मे जब नदियो का जल कम हो जाता है, तब नदियो के मध्य भाग मे खडे हुए वे स्तम्भ मदोन्मत्त जल-हस्तियो के बाँधने के खूटो के समान दिखाई पडते हैं।

उस सुय्य ने जिस स्थान पर दीनारो से पूर्ण कलश जल मे डाला था, उस स्थान के पानी

के हटने से कुछ समय बाद वह कलश सूखी जमीन पर पड़ा मिला। उसने जिन ग्रामों को पानी देने की आवश्यकता देखी, वहाँ नदी की नहरों से पानी देने का प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद गाँव-गाँव से मिट्टी मँगवाकर और उसको जल से सींचकर फिर वह जितनी देर मे सूखती थी, वही समय उस मिट्टी को फिर से सींचने का है, ऐसा निश्चय कर उसी प्रकार पानी की सुव्यवस्था कर दिया। और फिर अन्न पकने का समय उत्तम रीति से जान लेने के बाद विभाग के अनुसार प्रत्येक ग्राम मे योजना कर आनूला आदि नदियों के जल को उपयोग मे ले आया। इस प्रकार चारों ओर नदियों के प्रभाव से हरे-भरे अन्न से परिपूर्ण विशाल क्षेत्रों से काश्मीर देश को सुशोभित कर दिया। जो उपकार इस देश पर कश्यप ऋषि से नही हो सका, जिस उपकार को स्वय बलराम भी न कर सके, वह उपकार सुय्य ने अपने अद्भुत् कर्म के प्रभाव से कर दिखाया। भूमि का जल से उद्धार करना, द्विज-क्षेत्र मे अर्पण करना, जल मे पाषाणमय सेतु का निर्माण करना और कालिय-दमन करना इन महत्वपूर्ण चार कार्यों के लिए भगवान् को वराह, परशुराम, राम और कृष्ण, ये चार अवतार लेने पड़े थे, परन्तु उस परम पुण्यात्मा सुय्य ने एक जन्म मे ही इन चारों कार्यों को पूर्ण रूप से सफलतापूर्वक कर डाला। जिस काश्मीर देश मे सृष्टि के आरम्भ-काल से ही उत्तम सुभिक्ष होने पर भी एक खारी चावलों का दो सौ दीनार से कम मूल्य नहीं होता था, सुय्य के पुण्यप्रताप से उसी काश्मीर देश मे उस दिन से एक खारी चावल का छत्तीस दीनार मूल्य हो गया। उसने महापद्म सरोवर के जल से निकली हुई वितस्ता नदी के तट पर अपने नाम से सुय्यपुर नामक नगर बसाया। वहाँ के दिगन्तव्यापी सरोवर के तट पर प्रलय पर्यन्त के लिए मत्स्य तथा पक्षियों की हिंसा का निषेध उस सुय्य ने कर दिया। उसने ब्राह्मणों को सुय्याकुण्डल नामक ग्राम देकर उस सुय्या के नाम से सुय्या-सेतु बनवाया। सुय्य के द्वारा जल से उद्धार की गई भूमि मे राजा अवन्तिवर्मा आदि राजाओं ने जयस्थल आदि अनेक ग्राम बसाये।

इस प्रकार के सत्कर्मों से बार-बार सत्ययुग की झलक को दिखाते हुए उस राजा अवन्तिवर्मा ने मान्धाता के समान प्रजा का पालन किया। इसके बाद प्राणान्तिक रोग से ग्रस्त होने पर त्रिपुरेश-पर्वत के शिखर पर के ज्येष्ठेश्वर के समीपस्थ तीर्थ मे जाकर रहने लगा। वहाँ उसने बहुत दिनों से छिपाये हुए अपने वैष्णवत्व को उसने राज-मन्त्री शूर के सम्मुख प्रकट किया। अत मे अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रीमद्भगवद्गीता का श्रवण करते हुए तथा वैष्णव धाम श्रीवैकुण्ठ का ध्यान करते हुए उस राजश्रेष्ठ ने प्राण-त्याग किया। आषाढ शुक्ल तृतीया लौकिक सम्वत् तीन हजार नौ सौ उनसठ को वह पृथ्वी का पति अस्त हो गया।

उस परम प्रतापी राजा अवन्तिवर्मा के शान्त हो जाने के बाद समान सम्पत्तिशाली अनेक उत्पलक-वंशियों ने राज्य-प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न तथा उपाय करना आरम्भ कर दिया परन्तु रत्नवर्धन नामक प्रतीहार ने अनेक प्रयत्न तथा युक्तियों से अवन्तिवर्मा के पुत्र शंकरवर्मा को राज्य का अधिकारी बनाया।

२. राजा शंकरवर्मा की कथा

रत्नवर्धन के प्रतिस्पर्धि विपक्ष के अमात्य कर्णप ने शूरवर्मा के पुत्र सुखवर्मा को युवराज के पद पर स्थापित किया। इसलिए राजा शंकरवर्मा और युवराज सुखवर्मा परस्पर शत्रुता करने लगे, अतएव इस पारस्परिक विरोध मे राज्य की स्थिति दोलायमान-सी होने लगी। उस समय

शिवशक्ति आदि राजभक्तो ने अपने स्वामी के लिए अपने प्राणो को त्याग कर अपनी स्वामिभक्ति की सच्ची परीक्षा मे उत्तीर्ण होने का सौभाग्य प्राप्त किया। स्वामी के शत्रुओ ने उन्हे दान-मान का प्रलोभन दिखाया था किंतु उन सबो ने उस ओर ध्यान न देकर अपनी सत्यवादिता तथा मान-रूपी सम्पत्ति को सुरक्षित रखा था। उस समय तक के राजसेवक स्वाभिमानी तथा सत्यप्रेमी हुआ करते थे। वे केवल पिण्ड मात्र के लिए कुत्तो के समान पूंछ नही हिलाते थे। शंकरवर्मा ने भी बड़े प्रयत्न से उस तेजस्वी युवराज को परास्त करके अपनी विजय का महान् ओंकार प्रारंभ किया। उस सम्राट् शंकरवर्मा ने समरवर्मा आदि वीरो से अनेक वार युद्ध करके प्राप्त की हुई लक्ष्मी की अपेक्षा भी उत्कृष्ट कीर्ति को प्राप्त किया। अपने दामादो को जीतने के वाद परम उद्योगी और विजयाभिलाषी शंकरवर्मा ने दिग्विजय करने की तैयारी आरम्भ कर दी।

उस समय काल की महिमा से उस देश मे धन तथा जन दोनो की ही न्यूनता हो गई थी, फिर भी नगर के प्रधान द्वार से निकलते समय उसके साथ नौ लाख पैदल चलने वाले सैनिक थे। एक समय वह था कि जब उस राजा शंकरवर्मा की आज्ञा को राजधानी के द्वार वाहर कोई भी नही मानता था और फिर वह समय आ गया कि जब बड़े-बड़े प्रतापी राजा लोग उसकी आज्ञा को अपने रत्न-जटित मुकुटो पर आदरपूर्वक धारण करने लगे थे। कवियो के द्वारा दिग्विजय-वर्णन की रूढि उच्छिन्न हो गई थी। उस रूढि को शंकरवर्मा ने फिर से प्रारंभ किया। महानदी के समान विशालतम शंकरवर्मा की सेना मे दूसरे राजाओ की सेनाएँ छोटी-छोटी नालियो के समान मिलने लगीं। उस राजा की सेना के जयघोष का प्रतिनाद, भयभीत होकर छिपे हुए दार्वा-भिसार देश के राजा के द्वारा आश्रित गिरि-कन्दराओ में सुनाई देता था किन्तु शत्रु की सेनाओ मे नही।

बहुसंख्यक सैन्ययुक्त हरिगणो के राजा को भय-त्रस्त होकर अपने दुर्ग मे प्रविष्ट होने के पूर्व ही शंकरवर्मा ने पकड़ कर दूसरे दुर्ग मे अर्थात् कारागार मे भेज दिया। जब वह राजा शंकर-वर्मा नौ लाख पैदल चलने वाली सेना, एक लाख घोड़े और तीन सौ हाथियो को साथ लेकर गुर्जर प्रान्त को जीतने के लिए अग्रसर हुआ तब त्रिगर्त देश के राजा पृथ्वीचन्द्र को अज्ञानता के वशीभूत होने के कारण ससार के सामने उपहास का पात्र बनना पड़ा। वास्तव में घटना इस प्रकार की हुई कि उसने अपने पुत्र भुवनचन्द्र को शंकरवर्मा के समीप नीवी अर्थात् जमानत के लिए भेज दिया था और स्वय भी प्रणाम करने के लिए उसके पास जा रहा था। किन्तु जब उसने देखा कि अनेक माण्डलिक राजाओ से युक्त भयकर समुद्र के समान गरजते हुए शंकरवर्मा के सैनिक उसके सामने चले आ रहे हैं तब वह पृथ्वीचन्द्र "जिस समय मैं शंकरवर्मा से मिलूंगा उस समय वह मुझे वन्दी बना लेगा" इस भय से परिवर्तित होकर बहुत दूर तक भाग गया, इसीलिए उसकी सर्वत्र बड़ी हँसी हुई। यद्यपि प्राचीन लोग राजा शंकरवर्मा को अत्यन्त सत्पुरुष बतलाते हैं तथापि उसके भय से त्रस्त हुए राजा लोग तो उसे कृतान्त के समान भयंकर देखा करते थे। उसने गुर्ज-राधिपति अलखान से युद्ध कर उसकी बद्धमूल राजलक्ष्मी को एक क्षण मे उखाड़ कर छिन्न-भिन्न कर डाला और उसे चिरकाल के लिए शोक-मग्न कर दिया। तब गुर्जराधिपति अलखान ने राजा शंकरवर्मा को ढक्क प्रदेश भेंट के रूप मे देकर अंगुलि-दान द्वारा सम्पूर्ण शरीर को सुरक्षित रखने के समान अपने मण्डल की रक्षा की।

थक्किय वंश मे उत्पन्न हुआ राजकुमार शंकर वर्मा के यहां द्वारपाल का कार्य करता था, इसलिए राजा शंकरवर्मा ने अधिराज भोज के द्वारा अपहरण किये गये राज्य को भोज से लेकर

उस राजकुमार को फिर से दे दिया। हिमालय तथा विन्ध्याचल के मध्यवर्ती आर्यावर्त देश के समान अलखान का संरक्षक ललितयशाही वनवराह और सिंह के समान दरद तथा तुरुष्क के मध्य में फँस गया था। उसकी राजधानी उद्भाण्डपुर में इधर-उधर से पराजित हुए राजा लोग आकर रहा करते थे। जिस प्रकार पक्षच्छेदन के भय से त्रस्त होकर पर्वत समुद्र का आश्रय लेकर निर्भय हो जाते हैं, उसी प्रकार वे राजा लोग भी वहाँ निर्भय हो जाते थे। आकाश में चमकते नक्षत्रों के बीच सूर्य-मण्डल के समान उत्तरापथ के राजाओं में उस ललितय की प्रसिद्धि थी। वह शंकरवर्मा का आश्रय चाहता था, किन्तु शंकरवर्मा क्रुद्ध होकर उसके साम्राज्य को छीन लेना चाहता था, इसलिए उसने उसे सेवा का अवसर नहीं दिया। इस प्रकार दिग्विजय से निवृत्त होकर शंकरवर्मा ने पंचसत्र नामक प्रदेश में अपने नाम से शंकरपुर बसाया।

चन्द्र की प्रिया पूर्णमासी के समान उत्तरापथ के राजा स्वामिराज की कन्या सुगन्धादेवी शंकरवर्मा की प्रिय पत्नी थी। देवताओं के राजा इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली राजा शंकरवर्मा ने शंकरपुर में अपनी पत्नी के तथा अपने नाम से शंकर-गौरीश और सुगन्धेश की स्थापना की तथा वहाँ उसने सरस्वती के निवास-स्थान चतुर्विद्या-विशारद नायक नामक विद्वान ब्राह्मण को व्यवस्थापक बनाया।

जिस प्रकार आज के समय में कवि और नृपति पर-काव्य तथा पर-द्रव्य से अधिक भाग चुराकर अपनी कृति अर्थात् काव्य अथवा नगर को सुशोभित करते हैं उसी प्रकार उस अल्पसत्व राजा ने अपने शंकरपुर को प्रसिद्ध करने के लिए परिहासपुर की समस्त उत्तमोत्तम वस्तुएँ अपहरण कर वहाँ रख दी थी। कपड़े बुनने का कारखाना और पशुओं का क्रय-विक्रय आदि कार्य जो परिहासपुर की प्रसिद्धि के प्रधान कारण थे, उन्हें शंकरपुर में प्रारम्भ कर दिया गया। शंकरवर्मा को राज्य दिलाने वाले मंत्री रत्नवर्धन ने रत्नवर्धनेश्वर नामक शंकर की स्थापना की।

बड़े आश्चर्य का विषय तो यह है कि ये राजा-रूपी गजेन्द्र अपने कीर्ति-निर्झर के प्रवाह में स्नान कर निर्मल शरीर होने पर भी व्यसन-संगति रूपी धूलि से फिर मलीन हो जाते हैं। यही एक स्वाभाविक कारण है जिससे कि अनेक लोकोपकारी कार्यों को कर तथा सर्वसाधारण में सुख्याति लाभ कर लेने के बाद भी वह राजा शंकरवर्मा क्रमशः बढ़ते हुए लोभ के अभ्यास से प्रजा को कष्ट देने में प्रवीण हो गया। वह भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यसनों में इतना लीन हो गया कि उसका समस्त कोष थोड़े ही दिनों में रिक्त हो गया। जब धन का अभाव होने लगा तब उसने अनेक क्रूर युक्तियों से देव-मंदिर आदि धार्मिक स्थानों की सम्पत्ति को अपहरण करना आरम्भ कर दिया। पुर, ग्राम, गृह आदि स्थानों से द्रव्य हरण करने वाले उस राजा शंकर वर्मा ने अट्ट-पतिभाग और गृहकृत्यभाग नामक दो नवीन विभाग, कर वसूल करने के लिए स्थापित किये। उसी प्रकार देव-मंदिरों के धूप, चन्दन, तेल आदि वस्तुओं का मूल्य बढ़ाकर उनके विक्रय से प्राप्त हुए लाभ के धन को वह छल से लेने लगा। उसने चौसठ देव-मन्दिरों को अपने अधिकार में ले लिया और उनमें नवीन कर्मचारियों को नियुक्त कर उन देव-मन्दिरों के गाँव छीन लिये तथा उनके स्थान पर कुछ कर देकर किसानों के समान स्वयं उन गाँवों की आय लेने लगा। इसी प्रकार वार्षिक वेतन का तीसरा भाग सेवकों को तौल में और माप में कम किये गये तथा अधिक मूल्य बढ़ाये हुए अन्न और कम्बल आदि वस्त्रों के रूप में देना आरम्भ किया।

एक बार वह राज्य के किसी प्रान्त में भ्रमण करने के लिए गया था। वहाँ के ग्रामीण जो कि बेगार-प्रथा के अनुसार राजा अथवा राजकर्मचारी के यहाँ समय-समय पर मुफ्त में बोझा

ढोते है एक वर्ष तक बोझा उठाने के लिए नही आये थे। इसीलिए उस प्रान्त के भाव के अनुसार भार का मूल्य दण्ड के रूप मे उन सब ग्रामीणो से वसूल किया गया। दूसरे वर्ष मे भी अपने समस्त राज्य के निरपराध ग्रामीणो से भी वही कर वसूल किया और बेगार की प्रथा के स्थान पर कर लेना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार बेगार के स्थान पर अधिक से अधिक कर वसूल करने की प्रथा तभी से काश्मीर मे चल पडी। राजा शकरवर्मा के द्वारा प्रारम्भ की गई इस रूढ भारोढि नामक प्रथा ने काश्मीर देश मे पूर्ण रूप से दरिद्रता का आवाहन किया। इस दण्ड के तेरह प्रकार थे। ग्रामस्कन्दक अर्थात् जमीदार तथा ग्रामकायस्थ अर्थात् पटवारी आदि कर्मचारियों के मासिक वेतन तथा अनेक कष्टप्रद करो से उसने ग्रामीण जनता को अत्यन्त निर्धन बना दिया था तथा तौल मे न्यूनाधिक्य करके और ग्राम-दण्ड आदि करो के द्वारा उसने गृहकृत्य विभाग मे व्यय के लिए द्रव्य-सग्रह करना आरम्भ किया।

उस विभाग मे उसने पाँच दिविर अर्थात् कायस्थ मुन्शी अथवा कर्मचारी नियुक्त किये थे और इनके अतिरिक्त छठा शकच अथवा लवट नामक गजवर अर्थात् खजानची भी रखा था। इस प्रकार उस मूर्ख शकरवर्मा ने भावी राजाओ तथा कर्मचारियो के उपकार धन-सचय कर अपने लिए नरक-प्राप्ति का समग्र साधन एकत्रित कर लिया था।

उस काश्मीर देश मे विद्वानो के अनादर तथा राजाओ की प्रताप-हानि का प्रारम्भिक कारण उस राजा शकरवर्मा को छोड कर दूसरा कोई भी न हुआ। गुणवानो की द्रव्य-हानि के द्वारा राजाओं के कीर्ति-नाश के आदि कारण इन दुष्ट दासीपुत्र कायस्थो का महत्व उसी राजा के समय से प्रारम्भ हुआ। उस समय की भयानक अव्यवस्था के कारण सम्पूर्ण राज्य कायस्थो का उपभोग्य हो गया था और इसीलिए 'राजा ही प्रजा को लूट रहा है,' इस प्रकार राजा शकरवर्मा का अपयश सर्वत्र फैल रहा था।

इस प्रकार भयकर प्रजा-पीडन को देखकर अत्यन्त दयालु-हृदय युवराज गोपालवर्मा किसी समय राजा से एकान्त मे निवेदन करते हुए कहने लगा—"महाराज! आप किसी समय मुझे एक वरदान दे रहे थे, परन्तु मेरी इच्छा से वरदान धरोहर के रूप मे आपके पास जमा रखा गया था। आप सत्यसन्ध अर्थात् सत्यप्रतिज्ञ है, इसलिए मैं वह वरदान इस समय आपसे माँगता हूँ। राज्य का उपभोग करने वाले इन कायस्थो की प्रेरणा से आपने प्रजा से अनेक प्रकार के कष्टप्रद करो को लेना आरम्भ कर दिया है। उसका भयानक परिणाम यह हुआ है कि उन सब करो से पीडित समस्त प्रजा अतिम श्वास ले रही है। इस प्रकार प्रजा को कष्ट पहुँचाने से आपको इस लोक में किसी प्रकार का भी लाभ न होगा। आगामी जन्म अथवा लोकान्तर की अप्रत्यक्ष वार्ताओ के विषय मे तो कोई भी निश्चित विवरण नही प्रकट कर सकता, किन्तु ऐहलौकिक दृष्टि से देखा जाय तो भी इस प्रकार के कुकृत्य से अनिष्ट के अतिरिक्त दूसरा कोई भी शुभ परिणाम नही हो सकता। एक ओर से तो व्याधियाँ दुर्भिक्ष आदि दैवी विपदाएँ प्रजा को कष्ट पहुँचा रही है और दूसरी ओर राजा की अत्यधिक अर्थलोलुपता उसे अत्यधिक त्रासप्रद हो रही है। जिस प्रकार भविष्य मे फल की आशा से शून्य असमय मे खिले हुए कुसुम की सुन्दरता का कोई भी अभिनन्दन नही करता, उसी प्रकार लोभी राजा की सम्पत्ति किसी को भी आनन्ददायक नही होती। राजा के लिए दान तथा प्रियसत्य भाषण, ये दोनो ही ससार के प्रसन्न करने के अमोघ उपाय है, किन्तु लोभ इन दोनो उपायो के नाश का प्रथम कारण है।

जिस प्रकार बादल हेमन्त ऋतु के दिन के प्रताप, दैर्घ्य तथा शोभा को स्मृति-शेष कर डालता है, उसी प्रकार लोभ भी राजा के प्रताप, भविष्य और शोभा को ध्वस कर देता है। लाभ के भय से साहसिक कार्य को प्रारम्भ न करने वाले राजा के दामाद बलवान् बनकर स्थान-स्थान पर विद्रोह करने लगते हैं और सेवक लोग भी योग्य सेवा करने पर भी उसके उपलक्ष्य मे पारितोषिक-प्राप्ति की आशा न रहने से कोई भी राजप्रिय कार्य नही करते तथा केवल धन-सचय करने वाले राजा के आत्मीय जन भी द्रव्य के लोभ से प्राणो के ग्राहक बने रहते है। इसलिए इस लोभ-रूपी शत्रु से राजा की कौन-सी हानि नही होती, यह नही कहा जा सकता। महाराज! यह राज-सवाह नामक नवीन कर प्रजा के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो रहा है। इसलिए मेरी यही प्रार्थना है कि आप इसे बन्द कर दीजिए।"

इस प्रकार युवराज के सौजन्य से उज्ज्वल भाषण को सुनकर किंचित् स्मित से अपने अधर को धवल करता हुआ राजा शकरवर्मा धीरे-धीरे कहने लगा "वत्स! तुम्हारी इस सरल आकृति के अनुरूप इस सौजन्य-कोमल भाषण को सुनकर मुझे अपनी पुरानी चित्तवृत्ति का स्मरण आ रहा है। छोटी अवस्था मे मेरा भी अन्त करण तुम्हारे अन्त करण के ही समान कोमल तथा दयालु था। मेरे हृदय मे प्रजा-वात्सल्य भी पर्याप्त रूप से बढ रहा था। मुझे मेरे पिता गर्मी के दिनो मे मोटे वस्त्र और शीतकाल मे महीन वस्त्र पहिना कर बिना पादुका के पैदल ही घुमाया करते थे। मृगया आदि के समय अश्वो के साथ भ्रमण करते हुए मेरे पैर कण्टको से छिल जाया करते थे, उस समय मुझे आँसू बहाते देखकर साथी लोग मेरे पिता जी की निन्दा करने लगते थे। उन सबो की निन्दा को सुनकर मेरे पिता जी उन सबो से कहा करते थे—'अत्यन्त साधारण स्थिति का अनुभव प्राप्त कर मै बाद मे राजा हुआ हूँ, इसलिए सेवको के सेवा-परिश्रम को भली-भाँति जानता हूँ। यह भी इस प्रकार के दु खो का अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद दूसरो के कष्ट को अवश्य जान सकेगा, अन्यथा गर्भ से ही श्रीमान् होने के कारण ऐश्वर्य को पाते हो मदोन्मत्त हो जायेगा।' इस प्रकार के उपायो से पिता द्वारा मुझे शिक्षा दी गई थी, फिर भी राज्य-प्राप्ति के बाद मैने इस प्रकार प्रजा को पीडा पहुँचाने के कार्य किये है, क्योकि जिस प्रकार प्राणी माता के गर्भ से निकलते ही गर्भवास की पीडा को भूल जाता है, उसी प्रकार राज्य को पाते ही राजा भी अपने पूर्व-चिन्तित विषय को भूल जाता है। इसलिए मैं तुमसे ही एक वरदान यह माँगता हूँ कि जब तुम्हे राज्य मिल जाय तब इससे अधिक प्रजा को पीडा मत देना।"

इस प्रकार राजा शंकरवर्मा के द्वारा तिरस्कारयुक्त वचनो से सम्बोधित किये जाने पर उस राजकुमार ने लज्जा से अपना मस्तक नीचा कर लिया और राजा की हाँ मे हाँ मिलाने वाले खुशामदी विट लोग परस्पर एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कुराने लगे। वह राजा शकरवर्मा व्यय के भय से गुणिजनो के समागम से उदासीन रहता था, इसलिए उस समय के भल्लट आदि कवियो को निम्न श्रेणी के कार्यो से अपनी जीविका का सम्पादन करना पडता था। उसके राज्य मे कवियो को वेतन नही मिलता था और उसके कृपापात्र भारवाहक लवट को प्रतिदिन दो हजार दीनार मिला करते थे। वह देववाणी अर्थात् सस्कृत भाषा मे बोल नही सकता था किन्तु मदिरापान करने वाले मनुष्यो के समान अपभ्रश भाषा मे बातचीत करता था, इसी से उसका कल्यपाल (कलवार) के वश मे जन्म हुआ था, इस बात को वह स्वय प्रमाणित कर देता था।

दाढ़ी और मूंछो पर वस्त्र बांधकर और नासिका के अग्रभाग पर तर्जनी अँगुली को रख ध्यान से एकाग्रदृष्टि होकर आर्योचित वेशधारी उसके मत्री सुखराज राजा के मन की इच्छा के

अनुसरणार्थ नट के समान दीखता था। उस राजा ने गर्गटोल की सभा में विशेष दार्वाभिसार के राजा नरवाहन को सेवकों समेत रात में धोखे से मरवा डाला। प्रजा के अभिशाप से उस दुरा-चारी राजा शंकरवर्मा के बीस-तीस पुत्र बिना किसी रोग के सहज ही मर गये।

प्रजा-पीडक राजा का यश, सम्पत्ति, जीवन, पत्नी और नाम आदि भी अल्पकाल में नष्ट हो जाते है यह कहावत प्राचीन काल से चली आ रही है और आज भी सदा प्रमाणित होती है। स्पष्ट रूप से इस कहावत की सत्यता इसलिए प्रमाणित होती है कि इस दुष्ट राजा का नाम भी इस प्रकार के क्रूर कृत्य से संसार में न रह सका। उसने अपने नाम से शंकरपुर नामक जो नगर बसाया था, उसका वह नाम लुप्त हो गया और लोग उस नगर को पट्टन कहने लगे। इस प्रकार की दशा दूसरे किसी भी राजा के नगर की नहीं हुई है।

उस राजा ने अपने मंत्री सुखराज के भानजे को द्वाराधिप बनाया था। वह द्वाराधिप अपने किये हुए प्रमाद से वीरानक नामक स्थान में मारा गया। इस घटना से क्रुद्ध होकर उस मदोन्मत्त राजा ने वीरानक पर आक्रमण कर उस स्थान को समूल नष्ट कर दिया और वहाँ से उत्तरापथ की ओर चल दिया। उसने सिन्धु नदी के तट के अनेक प्रदेशों को जीत लिया। वहाँ के राजा लोग भयातुर होकर उसकी शरण में उपस्थित हुए। इसके बाद वह वहाँ से लौट पड़ा।

लौटते समय उरशा नामक ग्राम में उसके सैनिकों के पड़ाव डालने के सम्बन्ध में ग्राम-निवासियों के साथ मारपीट हो गई। उस समय पर्वत के शिखर पर खड़े हुए एक चाण्डाल के द्वारा वेग से छोड़ा गया बाण उसके गले में घुस गया। उससे उसकी मरणासन्न दशा हो गई। तब वह अपने सेनापतियों को सैनिकों की रक्षा का आदेश देकर स्वयं कर्णीरथ अर्थात् पालकी में बैठकर वहाँ से प्रस्थान कर गया। उस समय उसे कुछ भी नहीं दीखता था। विलाप करती हुई महारानी सुगन्धा उसे सम्हाल कर बैठी थी। उसकी आवाज बहुत ही धीमी पड़ गई थी। उसने अपने अनाथ पुत्र गोपालवर्मा को रक्षा करने के लिए धरोहर के रूप में सुगन्धा के सुपुर्द किया। फिर लौकिक सम्वत्सर तीन हजार नौ सौ सतहत्तर की फाल्गुण कृष्णा सप्तमी को बाण निकाले जाने से उसकी मृत्यु मार्ग ही में हो गई।

सुखराज आदि मंत्रियों ने उस विदेश में अपनी सेना को सम्हाल कर आगे चलने का प्रबंध किया और मार्ग में राजा के मरण-वृत्तान्त को गुप्त रखा। मार्ग में स्थान-स्थान पर प्रणाम करने के लिए हुए आये हुए माण्डलिक राजाओं के सम्मुख राजा के निर्जीव मस्तक को डोरे से बाँधकर कभी-कभी प्रति-प्रणाम के लिए नीचे झुका देते थे। इस प्रकार छः दिनों तक निरन्तर चलने के बाद द्वारवती प्रान्त के वाराहमूल के समीप वाले बोल्यासक नामक निज राज्य की सीमा में पहुँचकर उन्होंने उसका अंतिम संस्कार किया। सुरेन्द्रवती आदि तीन राज-पत्नियाँ उसके साथ सती हो गईं और कृतज्ञ वेलावित्त जयसिंह भी राजा के साथ चिताारूढ़ हो गया। इन्हीं लोगों के समान राजसेवक लाड तथा वज्रसार ने भी राजा के साथ अपने जीवन को समाप्त कर दिया। इस प्रकार छः प्राणियों ने चिता पर बैठ कर अपने शरीरों को उसी समय तुरन्त अग्नि में जला भस्म कर दिया।

३. रानी सुगंधादेवी की कथा

राजा शंकरवर्मा की मृत्यु के बाद सुगन्धादेवी के संरक्षण में परम धार्मिक तथा सत्य-सन्ध गोपालवर्मा पृथ्वी का शासन करने लगा। दुश्चरित्र राजसेवकों के मध्य में रहकर भी

तथा बाल्यावस्था मे रहते हुए भी उस राजा ने उनके बुरे संस्कारो को ग्रहण नही किया। राजमाता सुगन्धा विधवापन की दशा मे भी उन्मादिनी होकर अनेक प्रकार के सुखोपभोग की लालसा के वशीभूत हो गई और उस लालसा को चरितार्थ करने के लिए प्रभाकरवर्मा नामक राजमत्री से प्रेम करने लगी।

उस नितान्त-सभोग-सन्तुष्टा राजमाता ने उस मत्री को अपना प्रेम, सौभाग्य तथा बहुमान रूपी तीन मुकुट-चन्द्रको से विभूषित कर दिया। कोषाध्यक्ष के पद पर भी कार्य करते हुए उस मत्री प्रभाकरवर्मा ने उस अनुरागवती राजमाता की अटूट सम्पत्ति को लूटकर उदभाण्डपुर के शाहि-राज्य को जीत लिया। राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाले शाही से राज्य छीनकर लल्लिय के पुत्र तोरमाण को दे दिया और उसका नाम कमलुक रख दिया। इस प्रकार वह मत्री प्रभाकर वर्मा विजय को प्राप्त कर शौर्य तथा-श्रृगार के निवास-स्थान अपने शरीर पर पूर्ण रूप से अभिमान करने लगा और उसी अभिमान के साथ राजधानी से लौट आया। विजय-प्राप्ति से उन्मत्त हुए उस राजमाता के उपपति प्रभाकरवर्मा ने प्रतिदिन तिरस्कार-युक्त वचनो से वीर पुरुषो का मान-मर्दन करना आरम्भ कर दिया। वेश्या-मन्दिर के समान उस शूद्र अर्थात् नीच के द्वारा आक्रान्त राज-मन्दिर मे अन्य किसी का भी प्रवेश नही होता था।

धीरे-धीरे यह सब वृत्तान्त राजा गोपालवर्मा को विदित हुआ। उस समय से धन तथा मान को अपहरण करने वाला वह दुष्ट प्रभाकरवर्मा राजा की आंखो मे तीक्ष्ण कांटे के समान खटकने लगा। जब राजा ने राज-कोष की जांच आरम्भ की तब उसमे जो रकम नही मिली उसके लिए उस कोषाध्यक्ष ने शाहि के युद्ध मे नष्ट होने का बहाना बना दिया। इस घटना के बाद उस कोषाध्यक्ष प्रभाकरवर्मा ने राजा से भयभीत होकर खार्खोद-निवासी रामदेव नामक अपने बान्धव से उस पर अभिचार कराया। उस अभिचार की क्रिया के प्रभाव से वह अल्पवयस्क राजा गोपालवर्मा दाह-रोग से पीडित होकर मृत्यु की शरण मे पहुँच गया। उसने केवल दो ही वर्ष पृथ्वी का शासन किया। रामदेव ने भी अपने अक्षम्य अपराध के प्रकट होते ही राज-दण्ड के भय से आत्म-हत्या कर डाली। उसके बाद गोपालवर्मा के भ्राता सकटवर्मा को रास्ते से पकड कर राजगद्दी पर बैठाया गया किन्तु वह केवल दस दिन तक राज्य कर मृत्यु की शरण में चला गया।

इस प्रकार शकरवर्मा के वश का अत होने पर महारानी सुगन्धा प्रजा की प्रार्थना को स्वीकार कर स्वय पृथ्वी का शासन करने लगी। उसने धर्म की अधिक वृद्धि करने के लिए गोपालपुर, गोपालमठ तथा गोपालकेशव के मन्दिरो का निर्माण किया और अपने नाम से भी सुगन्धापुर नामक नगर बसाया। पवित्र वश मे उत्पन्न होने वाली गोपाल वर्मा की पत्नी नन्दा देवी ने बालिका होने पर भी नन्दामठ तथा नन्दा केशव की स्थापना की। उस समय गोपालवर्मा की दूसरी पत्नी जयलक्ष्मी को गर्भवती देखकर उसकी सास सुगन्धा देवी को उसकी सन्तान से बडी आशा थी, किन्तु प्रसव होने के बाद उसकी सन्तान मृत्यु के मुख मे चली गई, इसलिए सुगन्धा देवी को अधिक दु ख हुआ। इसके बाद वह अपने वंश के किसी भी पुरुष को राज्य देने के लिए प्रयत्न करने लगी।

उस समय राजा को घटाने तथा बढाने और राज्य-व्यवस्था को सुचारु रूप से चल सकने और न चल सकने अथवा राजा को दु खी तथा सुखी बनाये रखने की विशेष शक्ति रखने वाला

तंत्री तथा पदातियो का पारस्परिक एकता-सम्बन्ध एक बड़ा मण्डल था। इसीलिए उस सुगन्धा देवी ने उन तन्त्रियो के साथ मित्रता रखकर तथा एकांग की सहायता से दो वर्ष तक काश्मीर देश का शासन किया। इसके बाद उसने किसी योग्य पुरुष को साम्राज्य देने का विचार करने के लिए एक बार मंत्री, सामन्त, तंत्री तथा एकांगो को एकत्रित किया।

उस समय अवन्तिवर्मा का वंश नष्ट हो चुका था, इसलिए अपने कुटुम्बी सूरवर्मा के नाती तथा सुखवर्मा की पत्नी गंगा देवी के पुत्र निर्जित वर्मा को, आत्मीय होने के कारण अपनी इच्छा के अनुसार चलेगा, ऐसा विचार कर उसने राज्य का अधिकारी बनाने का निश्चय किया और अपने उस निश्चय को सबो के सम्मुख प्रकट किया। सुगन्धादेवी के उस निश्चय को सुनकर सभी परस्पर विचार-विनिमय करने लगे। अन्त मे कतिपय मन्त्रियो ने विरोध करते हुए इस प्रकार कहा था, "निर्जित वर्मा तो अत्यन्त विषयी है। विषयी होने के कारण वह रात भर जागता है और दिन भर अचेत अवस्था मे पडा सोता रहता है। ऐसी दशा मे वह राज्य के कार्य को किस प्रकार कर सकेगा ? सच कहा जाय तो वह पगु है। उन मंत्रियों के इन विरोध का प्रभाव ऐसा पडा कि सुगन्धा देवी से परामर्श किये बिना ही तंत्री तथा पदातियों ने मिलकर अपनी इच्छा के अनुसार निर्जित वर्मा के पुत्र दशवर्षीय बालक पार्थ को काश्मीर-राज्य का राजा बना दिया। इस प्रकार उन समस्त लोगो ने सुगन्धादेवी को राज्य से च्युत करके कोषाध्यक्ष प्रभाकर वर्मा के द्वारा कहे गये अपमान-जनक कटु वाक्यो का प्रतिकार-सा कर डाला।

साम्राज्य के अधिकार से भ्रष्ट होकर वह वह सुगन्धा देवी गिरती हुई आँसुओ की बूँदो को मोतियो की माला के समान अपने हृदय पर धारण करती हुई राजधानी को त्याग कर चली गई। उसने अपने पक्षपाती क्रमागत अर्थात् परम्परा से अपने पक्ष मे रहने वाले पुराने सेवको को भी विरोधी दल मे मिला हुआ पाया। लौकिक वर्ष तीन हजार नौ सौ नवासी मे एकांग एकत्रित होकर अपनी इच्छा से निष्कपुर मे जाकर वहाँ से सुगन्धा देवी को पुन. लौटा लाये। उस समय चैत्र का महीना समाप्त हो रहा था। सुगन्धादेवी के आगमन-वृत्तान्त को सुनकर पार्थ राजा के पक्षपाती तंत्री लोगो ने युद्ध के लिए तुरत प्रयाण किया। वहाँ उन सबो ने पारस्परिक एकता और सुसगठित नीति को सुरक्षित रखकर अत्यन्त सुव्यवस्था के साथ युद्ध का संचालन किया। सुगन्धा देवी के सहायक एकांगो का समुदाय अपने मे एकता की रक्षा न कर सका। युद्ध के समय वे पारस्परिक फूट के वशीभूत हो गये। परिणाम यह हुआ कि उस युद्ध मे तंत्री लोगो ने अपने विरोधी एकांगो को परास्त कर दिया। आत्म-रक्षा के लिए सुगन्धा देवी युद्ध के क्षेत्र से भाग गई किन्तु तंत्री लोगो ने भागती हुई सुगन्धा देवी को भी बांध लिया। उस समय लौकिक वर्ष तीन हजार नौ सौ नव्वे का वैशाख मास था। उन लोगो के द्वारा बांधी गई रानी सुगन्धा देवी की निष्पालक विहार के भीतर मृत्यु हो गई। कहना पडता है कि भाग्य का व्यापार बडा ही विचित्र है। इसमे उन्नति तथा अवनति की अनित्यता सर्वदा अक्षुण्ण है। इस घटना के बाद इस उत्कृष्ट और भाग्यशाली काश्मीर देश मे धन तथा जन के नाश का कारण सर्वतोमुखी अनर्थ-परम्परा का प्रारंभ होने लगा।

उस अल्पवयस्क राजा पार्थ का पिता पगु निर्जित वर्मा उसका पालक बनकर मंत्री-सहित उत्कोच अर्थात् उपायन अथवा घूस लेने मे तत्पर हो गया। इसीलिए घूस के प्रलोभन मे पडकर वह प्रजा को विशेष रूप से पीडा पहुँचाने लगा। ग्राम-कायस्थो के समान राजपुरुष भी तन्त्रियो को अधिक से अधिक घूस देकर भिन्न-भिन्न प्रकार से उच्चाटन करने लगे। जिस देश के शासक

राजाओं ने अपने पराक्रम से कान्यकुब्ज आदि देशों के शासकों को पद-दलित कर दिया था, उसी देश के राजा अपने उदर-पोषण के लिए तन्त्रियो के नाम पर लेन-देन का व्यापार करने लगे।

मेरुवर्धन नामक मन्त्री ने पुराणाधिष्ठान मे श्रीमेरुवर्धन स्वामी विष्णु की स्थापना की। उसके पुत्रो ने प्रजा पर अत्याचार करके अधिक धन एकत्रित किया था। वे अपने मन मे गुप्त रखे हुए राज्य-प्राप्ति के लोभ से भयानक गुप्त षड्यंत्र रच रहे थे। उनमे सबसे ज्येष्ठ सहोदर शकर वर्धन ने सुगन्धादित्य के साथ गुप्त रीति से मित्रता करके राजभवन से पर्याप्त धन लूटने का कार्यक्रम बडी धूम से चला रखा था। इस प्रकार अत्याचार को सहन करती हुई प्रजा के घाव पर नमक छिडकने के समान जल-प्रलय से वर्षा काल मे उत्पन्न होने वाले चावलो की फसल नष्ट हो गई। इसलिए लौकिक वर्ष तीन हजार नौ सौ बानबे मे भयानक दुर्भिक्ष हुआ। उस समय एक खारी चावल का मूल्य एक हजार दीनार हो गया था। अतएव लोग क्षुधा से पीडित होकर मृत्यु के मुख मे जाने लगे। वितस्ता नदी का प्रवाह सडे और फूले हुए शवो के समूहो से आच्छादित हो गया और समस्त देश यत्र-तत्र-सर्वत्र श्मशान के समान निबिड अस्थिमय होने से अत्यंत भयानक दीखने लगा।

मन्त्री तथा तन्त्रियो ने अपने पास बचे हुए अन्न को अधिक से अधिक मँहगे भाव से बेचकर विशेष रूप से धन एकत्रित किया और अधिक धन हो जाने से वे सब धनोन्मत्त हो गये। तंत्रियों के नाम मे दी गई हुण्डियो को इस प्रकार दीन अवस्था मे निमग्न प्रजा को देकर जो व्यक्ति अधिक से अधिक मूल्य वसूल कर सकता था, वही मंत्री-पद पर कार्य करने के योग्य समझा जाता था। भयानक अरण्य मे आकस्मिक झझावात-सहित जल-वृष्टि तथा ओलो के गिरने से त्रस्त होते हुए लोगो को देखकर जिस प्रकार उष्णता-युक्त भवन मे बैठा हुआ कोई मनुष्य अपने को परम सुखी समझकर अपने भाग्य की प्रशसा करता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण प्रजा को दुर्भिक्ष के दुःख से हाहाकार करते हुए देखकर भी राज-भवन मे बैठा हुआ वह कायर पगु राजा अपने सुख की सराहना कर रहा था।

तुजीन, चन्द्रापीड आदि प्रजा-पालक राजाओ की प्रिय प्रजा को उस समय के राज-राक्षसो ने नष्ट कर डाला। उस समय के राजा लोग वर्षाकाल के धारा-सम्पात से उत्पन्न हुए जल-बुदबुदो के समान प्राय अधिक समय तक नही ठहरते थे। कभी पार्थ अपने पिता को राज्य से च्युत कर तन्त्रियो की कृपा से स्वय राज्य का अधिकारी बन जाता था और कभी वह पगु तन्त्रियो की कृपा सम्पादन कर राजा बन बैठता था। सुगन्धादित्य रूपी बीजाश्व उस पगु राजा की पत्नी रूपी अश्वाओ के मण्डल को सुरत-क्रीडा-विधि से प्रसन्न रखता था। (अश्वाओं को गर्भाधान करने वाले अश्व को बीजाश्व कहते हैं।) वह वप्प देवी नामक राज-पत्नी की कण्डूति अर्थात् खुजलाहट को निर्दय सुरतोत्सव द्वारा दूर करता था और वह वप्पदेवी भी उसकी घनाभिलाषा को पूर्ण करती थी। भगिनी के सौभाग्य के प्रभाव से राज्य मे प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए मेरुवर्धन के पुत्रो ने जिस मृगावती को पगु राजा की पत्नी बनाया था, वह भी स्वयं अत्यन्त उत्सुक होकर स्वय प्रार्थना-पूर्वक सुगन्धादित्य की मनचाही कामिनी बन गई और उसके साथ यथेच्छ सम्भोग करने लगी जिस प्रकार दरिद्र पुरुष की दो पत्नियाँ एक ही थाल मे भोजन करती हैं उसी प्रकार वह सुगन्धादित्य पर्याय से दोनो की काम-वासना को चरितार्थ करता था। उन दोनो राज-पत्नियों ने अपने पुत्र को भविष्य

मे राज्याधिकार मिलने की अभिलाषा से उस सुगन्धादित्य को सुरत-सम्भोग का दान धन-दक्षिणा के साथ एक दूसरे से स्पर्धापूर्वक देना आरभ किया था।

इसके बाद तीन हजार नौ सौ सत्तानवे लौकिक वर्ष मे तन्त्रियो ने पार्थ को राज्य से हटाकर अपने आश्रित पार्थ के पिता पगु का राज्याभिषेक कर दिया। तीन हजार नौ सौ अट्ठानवे लौकिक वर्ष के माघ मास मे चक्र वर्मा नामक अपने शिशु-सुत का राज्याभिषेक कर वह क्षीण पुण्य पगु राजा यमलोक को चला गया। अपने पैतृक राज्य को पाने के अभिलाषी राजा पार्थ के पक्षपाती तन्त्री और पदातियो के साथ एकागो का सग्राम होने लगा।

वह शिशु राजा चक्रवर्मा कुछ समय तक रानी बप्प देवी की देख--रेख मे पाला गया था। इसके बाद क्षिल्लिका नामक अपनी मातामही (नानी) के निरीक्षण मे दस वर्ष तक रहा। शैशव मे उसका दुष्ट स्वभाव प्रकट न होने के कारण अण्ड-स्थित सर्प-शिशु के लालन-पालन के समान ब्रप्प देवी तथा मातामही के द्वारा किया गया उसका पालन-पोषण सर्वथा निर्दोष था। इसके बाद चार हजार नौ लौकिक वर्ष मे तन्त्रियो ने चक्रवर्मा को राज्य से च्युत कर उसके स्थान पर मृगावती से उत्पन्न हुए पगु राजा के पुत्र शूरवर्मा का राज्याभिषेक कर दिया।

४ राज्य चक्रवर्मा की कथा

उस शूरवर्मा के मातुल तथा मन्त्रियो ने केवल स्वार्थ- साधन-तत्पर होकर उसके साथ स्नेह तथा सद्भाव को त्याग दिया था, इसलिए तन्त्रियो को उन्होने धन नही दिया था। इसी एक कारण से उस शूरवर्मा को राज्य-भ्रष्ट होना पड़ा। जिस प्रकार सकल सदगुण-सम्पन्न भी दरिद्र पुरुष वारागनाओ को प्रिय नही लगता, उसी प्रकार अत्यन्त सच्चरित्र होने पर भी वह शूरवर्मा विपुल धन अर्पण न करने से तन्त्रियो का कृपा-पात्र न हो सका। इसलिए उन सब तन्त्रियो ने द्रव्य-लाभ के लोभ से शूरवर्मा को राज्य से च्युत कर अधिक धन देने वाले उदार-स्वाभाव पार्थ को फिर से राजसिंहासन पर बैठा दिया। तन्त्रियो को वशीभूत करने मे परम चतुर साम्ववती नामक पार्थ राजा की परम प्रिया वेश्या ने साम्वेश्वर की स्थापना की। चक्रवर्मा अनुकूल समय की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने पार्थ से भी अधिक धन देने का वचन देकर तन्त्रियो की अनुकूलता से चार हजार ग्यारह लौकिक वर्ष के आषाढ मास मे पुन राज्याधिकार प्राप्त कर लिया।

मेरुवर्धन के जिन धूर्त पुत्रो ने जन पार्थ आदि राजाओ से उत्तम पद तथा जीविकाएँ प्राप्त की थी, उन्ही राजाओ को अनेक षडयत्र रचकर बार-बार राज्य से च्युत किया था और जिन धूर्तों ने उसके पिता तथा भ्राता को राज्य भ्रष्ट किया था तथा परस्पर कन्या देकर भी जिन्होने सम्बन्धियो से द्रोह किया था, इस प्रकार के प्रत्यक्ष दोषो को देखकर भी उस मूढमति राजा चक्रवर्मा ने उन मेरुवर्धन के पुत्रो को अच्छे-अच्छे अधिकार समर्पित किये। उसने शकर वर्धन को अक्षपटलाधीश अर्थात् गणनाधिकारी का पद प्रदान किया तथा धूर्त एव मिथ्यावादी शम्भुवर्धन को गृहकृत्य का अधिकारी बनाया और उसी लौकिक वर्ष के पौष मास मे द्रव्य के अभाव से तन्त्रियो की हुण्डियो मूल्य न दे सकने के कारण भयभीत होकर वहाँ से वह राजा भाग गया।

उसके मडव राज्य मे रहते हुए राज्याभिलाषी शकरवर्धन ने अपने कनिष्ठ भ्राता शम्भु-वर्धन को तन्त्रियो के पास दूत बनाकर भेजा। उस धूर्त शम्भुवर्धन ने भी वहाँ जाकर अधिक

उत्कोच अर्थात् घूस देने का वचन देकर तंत्रियों को अपने अनुकूल बना लिया और अपने ज्येष्ठ भ्राता शंकर वर्धन को राज्य-लाभ से वंचित रखकर स्वयमेव राज्य का अधिकारी बन बैठा। जलाशय मे रहने वाला तिमिजातीय मत्स्य अपने वंश मे उत्पन्न होने वाले समस्त तिमियो को खा जाता है और वन के किनारे रहने वाला तथा मौन-व्रतधारी बक उस तिमि को चुपचाप जलाशय के समीप आकर भक्षण कर लेता है तथा व्याध उस बक को मार डालता है। इस प्रकार इस ससार मे वंचना-चातुरी के एक-से-एक बढकर पात्र मिल ही जाते है अर्थात् इस मायामय ससार मे एक वचक को दूसरा महावचक अवश्य मिल जाता है।

एक दिन राज्यभ्रष्ट वह चक्रवर्मा ढक्क-निवासी सग्राम नामक डामर के घर पर रात मे गया। सग्राम डामर ने भी उसमे विशेष तेज देखकर उसे राजा समझ लिया और घबडाता हुआ अपने आसन पर से उठकर बडे आदर के साथ उसे उस पर बैठाया। चक्रवर्मा ने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त उस डामर से कहकर उससे सहायता की याचना की। तब उसने "विपत्ति के कारण इसका कोमल स्वभाव हो गया है", ऐसा मन मे सोचकर बडी नम्रता के साथ राजा से कहा, "महाराज! मेरे सामने आपके समस्त तन्त्री तृण के समान तुच्छ हैं। वे युद्ध मे कुछ नही कर सकते। आपकी सेवा के लिए मुझसे कौन-सा काम नही हो सकता? किन्तु राज्य के ऐश्वर्य को पाते ही आप हमारे विरुद्ध होकर हमारा ही नाश करेंगे क्योकि राजा लोग अपने कार्य मे सफल होने के बाद उपकारी के उपकार को तुरत भूल जाते है।" वृक्ष के ऊपर चढते समय सीढियो के समान सहायता करने वाली डालियो को नीचे की ओर उतरता हुआ कुठारधारी पुरुष काटता चला आता है। ठीक इसी प्रकार अपनी उन्नति मे सहायता देने वाले पुरुष का राजा लोग उच्छेद कर डालते हैं। राजाओ के अभ्युदय मे जिनके बुद्धि, धैर्य आदि सुगुण उपकारक होते है उनके उन्ही गुणो पर अभ्युदय होने के बाद राजा लोग सशक रहा करते है और अभ्युदय हो जाने के बाद मगल की अभिलाषा रखने वाले मूढ राजा लोग आपत्ति के समय साथ देने वाले सत्सेवक को 'इसी के कारण हमारे ऊपर ऐसी आपत्ति आई थी' ऐसा सोचकर त्याग देते है। आपत्ति के समय उपकार करने वाले सेवको के उपकार को तो अभ्युदय के समय राजा लोग भूल जाते हैं परन्तु उपकार के समय प्रमादवश उनसे जो भूल हो जाती है उसे बराबर अपने मन मे स्मरण किया करते है। उत्कर्ष को प्राप्त हुए राजा लोग अपने रोग-जन्य कष्ट, शत्रुभय, क्षुधा, तृष्णा आदि से उत्पन्न होने वाले कष्टो के प्रत्यक्ष-द्रष्टा अपने अनुयायियो को देखकर लज्जित एव भयभीत होते हैं, इसलिए उन समस्त अनुयायियो को नष्ट कर देते हैं।

"अच्छे-अच्छे राजाओ को भी प्रत्यक्ष देखी हुई घटनाओ की अपेक्षा मिथ्यावादियो की बातो पर अधिक विश्वास होता है, क्योकि मलिन मधुप मदोन्मत्त गजेन्द्रो के कण के निकट जिस प्रकार गुनगुनाते हैं, उसी प्रकार मलिन-मति मिथ्याभाषी राजा के कान भरते रहते हैं। रात्रि मे व्यभिचारिणी स्त्री के समान, दिन मे पिशुनो अर्थात् मत्सरता को फैलाने वालो की प्रेरणा, समीप आसन पाने के कारण राजा को सर्वदा सताया करती है। अतएव, इस प्रकार के मनुष्यो की बातो के प्रभाव से प्रत्येक ईर्ष्यालु पुरुष अथवा विचारशील पुरुष को यथाशक्ति बचते रहना चाहिए।

"महाराज! रात्रि के समय की गुरु-पत्नी जो कुछ एकान्त मे उपदेश देती है, उस विषय मे सभी प्रकार से सावधान रहना सर्वज्ञ पुरुष के सिवा अन्य मनुष्यो के लिए संभव नही है।

कुशल मन्त्रियो द्वारा बड़े प्रयत्न से हृदय मे प्रवेश कराये गये उपदेश को राजा लोग नीलगाय के समान रात मे भूल जाते हैं जिस प्रकार शल्यक पिपीलिकाओ का ग्रास कर जाते हैं, उसी प्रकार इन राजाओ ने अपनी शीतल और लम्बी जीभ से किसका ग्रास नही किया है ?

"बक अपने समीप मे रहने वाले मत्स्यो की हत्या कर सकता है किन्तु दूर रहने वालो की नहीं, परन्तु द्रोही राजा समीप मे रहने वाले और दूर स्थान मे रहने वाले सभी का वध कर डालता है। योग्य समय की प्रतीक्षा करने वाला कण्टक-युक्त पृथिवीपति, कण्टको से युक्त निज शरीर को पागल मनुष्य के समान सहन कर लेता है। सिंह झुकते हुए, सर्प आलिंगन करते हुए, वेताल हँसते-हँसते, और राजा प्रशसा करते हुए भी मार डालता है। इसलिए यदि आप अन्त समय तक हम से द्रोह न करने का वचन देते हो, तो मैं आपकी सहायता करने के लिए अपनी सेना-समेत कल प्रातःकाल ही आपके साथ चलने को तैयार हूँ।"

सग्राम डामर की इन सब बातो को सुनकर राजा चक्रवर्मा कुछ लज्जित-सा हो गया और उसकी बुद्धि कुछ समय के लिए कुण्ठित-सी हो गई। फिर वह हँस कर कहने लगा, "विश्वास कीजिए कि मैं आपको अपने ऊपर उपकार करने वाला समझता हूँ इसलिए सर्वप्रथम अपने प्राणो के ही समान आपकी रक्षा करना भी अपना कर्त्तव्य समझ रहा हूँ। इतना सुनते ही सग्राम डामर अधिक प्रसन्न हुआ और फिर उन दोनो ने रक्त से भीगे हुए मेष-चर्म पर खडे होकर और हाथ मे खड्ग लेकर कोश-पानपूर्वक शपथ ग्रहण की। इसके उपरान्त विशाल एव भयकर-डामर-सैन्य को साथ लेकर वह चक्रवर्मा तथा सग्राम डामर दोनो ही प्रभात मे वहाँ से निकल कर नगर की ओर वेग से चल पड़े। उनका सामना करने के लिए शकरवर्धन के नेतृत्व मे तंत्री एव पदाति चैत्र शुक्ला अष्टमी को नगर से निकले।

उस समय योग्य अवसर न मिलने से चक्रवर्मा का शौर्य प्रच्छन्न था। उसे समस्त लोग साधारण मनुष्य समझते थे, परन्तु उस समय उसने अपना शौर्य भली-भाँति प्रकट किया। पद्मपुर के समीप भयानक युद्ध हुआ। उसमे चक्रवर्मा ने अपने अश्व को आगे बढ़ाकर सर्वप्रथम शकरवर्धन का वध कर डाला। उस सेनापति के मारे जाने पर वह तन्त्रियो की सेना सागर के जल मे तूफानी हवा से बहने वाली नौका के समान अस्त-व्यस्त हो गई। उन सब भागते हुए तन्त्रियो का पीछा करते हुए उस चक्रवर्मा ने अश्वो के वेग से उनकी गति का अपहरण किया अर्थात् अपने अश्वारोहियो के द्वारा उन्हें मार्ग मे ही रोक लिया और तलवार से उनका मस्तक काट डाला। उस युद्ध-क्षेत्र मे संचार करते हुए अर्थात् शकारहित होकर घूमते हुए उस चक्रवर्मा के सिर पर बँधे हुए वीरपट्ट का अचल उसकी गर्दन पर सिंह की ग्रीवा पर विराजमान जटा (केश-समूह) के समान सुशोभित हो रहा था। अधिक वर्णन करने की विशेष कोई आवश्यकता भी नही है। केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उस समरागण मे थोडे-से समय मे तन्त्रियो के पक्ष के पाँच छ हजार सैनिक मर कर गिर गये। युद्ध के भयानक व्यापार से परिश्रान्त हुए उन तन्त्रियो को वीरश्रेष्ठ चक्रवर्मा ने उस रण-भूमि मे गृध्र-पक्षो की छाया मे विश्राम लेने का अवसर प्रदान किया था। वीर शकरवर्धन उस वीरशय्या पर अपने समान उच्चकुलीन और गुणवान आश्रितो के साथ अत्यन्त सुशोभित हो रहा था। उन तन्त्रियो तथा पदातियो के सहत रूप मे होने वाले उदय एव अस्त को देखकर किसे आनन्द और आश्चर्य न होगा! काले सर्पों के साथ खेलकर उदर-पोषण के लिए इधर-उधर भीख माँगते हुए सँपेरो के समान उन दुष्कर्मी तन्त्रियो ने उत्तम कुलो में उत्पन्न, माननीय एव प्रतापी महीपतिरूपी भुजंगो को वशीभूत करके, उनके

समीप तक किसी का भी प्रवेश न हो सके, इतना दुष्प्राप्य उन्हे कर दिया था और सर्वदा नवीन-नवीन माँगे उनके सामने रख कर अपने उदर-पोषण के लिए उन्हे क्रीड़ा-पात्र बनाकर लज्जित-सा कर दिया था। इस प्रकार से उन तन्त्रियो के दुष्ट एव अपमान-जनक बर्ताव से चिढकर भयकर वैर रूपी विषाग्नि से युक्त उस चक्रवर्मा-रूपी भयानक काले सर्प ने क्षण भर मे उन्हे जलाकर राख का ढेर बना दिया।

दूसरे दिन शकरवर्धन का कनिष्ठ भ्राता और शम्भुवर्धन पराजित होकर इधर-उधर अस्त-व्यस्त हुए तन्त्रियो और पदातियो का पुन सङ्गठन करने लगे थे कि इतने मे ही प्रेम-पूर्वक मिलते हुए सामन्त, मन्त्री तथा एकाग और सैनिको से युक्त, विजयोत्साह से उत्साहित चक्रवर्मा ने नगर मे प्रवेश किया। उस समय उसके क्षितिज-पर्यन्त फैले हुए सैनिक भिन्न-भिन्न मार्गों से गरजते हुए चल रहे थे और अश्वारोहियो से घिरा हुआ वह चक्रवर्मा एक उत्तम अश्व पर सवार था। उस समय अश्व भी अपनी स्वाभाविक चचलता से नृत्य कर रहा था और चक्रवर्मा लगाम को पकडे हुए अपने बायें हाथ से टेढे हुए शिरोवेष्टन को ऊपर की ओर उठाकर ठीक कर रहा था तथा उसके स्वेदयुक्त दक्षिण कर से दृढता-पूर्वक पकडे हुए खड्ग से ढके हुए किरण-जाल के समान कर्ण-स्थित कुण्डल चमक रहे थे। उसने बहुमूल्य और दृढ़तर कवच शरीर पर धारण किया था। वह कवच उसकी ग्रीवा को कष्ट दे रहा था। उसका मुख अत्यन्त तेजस्वी एव उग्र दीख रहा था। उसकी भौंहे टेढी और ललाट की ओर ऊँची चढ रही थी। वह बाजार मे लूट-खसोट मचाने वाले लोगो का तिरस्कार-पूर्वक डाँट रहा था और अपने मस्तक तथा नेत्रो के सकेत से भयभीत हुए नागरिको को आश्वासन दे रहा था। उसके रण-वाद्यों की भीषण ध्वनि से नागरिको के आशीर्वाद तथा जय-घोष दब जाते थे और लोगो के कान बधिर हो रहे थे। उस विजयी चक्रवर्मा के सिंहासनारूढ़ होने के बाद भूभट ने कही से शम्भुवर्धन को पकड कर और पैरो मे बेडियाँ डालकर राजा के सामने उपस्थित किया। राजा के सामने शस्त्र पात के भय से नेत्र बन्द कर खडे हुए उस बेचारे शम्भुवर्धन को अपनी स्वामि-भक्ति को प्रकट करते हुए उस महापापी चाण्डाल भूभट ने मार डाला। उस शम्भुवर्धन के वध के बाद से ही धर्म-मर्यादा को त्यागने वाले सेवको द्वारा पिता के समान नरेन्द्रो की विश्वासघात से हत्या करने का क्रम काश्मीर देश मे प्रारम्भ हो गया और लोगो के विचारों मे भी घोर परिवर्तन होने लगा।

५ राज्य-प्राप्त चक्रवर्मा की कथा

काश्मीर देश के निष्कण्टक राज्य को पाकर राजा चक्रवर्मा अपने अतीत के समस्त सङ्कटो को भूल गया और धीरे-धीरे मदोन्मत्त होकर नाना प्रकार के कुत्सित कर्म करने लगा। वह अपने द्वारा किये गये पराक्रमो की प्रशसा बारम्बार सुनने की अभिलाषा करने लगा तथा लोगो द्वारा कहे गये पुनरुक्त प्रशसा के वाक्यो को सुनकर विशेष रूप से प्रसन्न होने लगा। इसीलिए वह विट, बन्दी और चाटुकारियो की बातो पर श्रद्धा करने लगा। उन सबो की स्तुति से मुग्ध होकर वह अपने को देवता के समान समझने लगा और क्रमश विवेक के विरुद्ध कार्य करने लगा।

ठीक ऐसे ही अवसर पर रङ्ग नामक डोम जाति का विदेशी गायक राजधानी मे आ गया। चूँकि वह हीन-जाति का था इसलिए राजा ने उसे बाहिरी मण्डप मे गाने का अवसर

प्रदान किया। उसके गायन को सुनने के लिए आए हुए सामन्त, मन्त्री आदि प्रतिष्ठित पुरुषो को द्वारपालो ने यथोचित स्थान पर बैठा दिया और राजा के सामने की बहुत-सी जगह खाली छोड़ दी। सभा-भवन मे जगमगाते हुए अनेक दीपको की प्रभा से तथा आये हुए धनी-मानी सभ्य पुरुषो के अमल-धवल शिरोवेष्टनो से वह राज-सभा फणो के मण्डल पर चमकते हुए मणियो से उज्ज्वल शेष-शैय्या के समान दीख रही थी। सन्ध्या के समय का शीतल एव मन्द समीर राज-पत्नियो तथा अन्य ललनाओ के केश-पाश स्थित पुष्प-मालाओ के साथ आन्दोलन-क्रीडा करने से घ्राणेन्द्रिय अर्थात् नासिका को तृप्त कर रहा था। सङ्गीत के समारम्भ को देखने के लिए उत्कण्ठित अन्तःपुर की मृग-नयनियो के मधुर मदिर-सुवासित मुख-कमलो से राजभवन की गवाक्षावलियाँ सुशोभित हो रही थी।

हार, कंकण, केयूर, कटक आदि आभूषणो से अलकृत परिवार से युक्त वह डोम गायक राज-सभा मे प्रविष्ट हुआ। उसके साथ मे आई हुई हसी तथा नागलता नामक दो ललित-लोचना बालिकाओ ने अपने रूप-लावण्य से उस सम्पूर्ण राज-सभा को आश्चर्य-चकित और चित्र-लिखित-सा बना दिया था। उन दोनो बालिकाओ के विलास-वलित एवं चचल कटाक्ष-पातो से उस सभा मे मानो दूसरा पुष्प-समूह विकसित हो रहा था। उनका गायन उस राजा चक्रवर्मा के गुण-वर्णन से पूर्ण था, इसलिए उस सभा मे जय, जीव आदि शब्दो का निरन्तर कोलाहल हो रहा था। एक विशेष राग गाती हुई वे पचम स्वर मे तान ले रही थी और वशी का स्वर उनका अच्छे ढग से साथ दे रहा था। उन दोनो गायिकाओ के हाव-भाव, मस्तक का सचालन, भ्रू-विलास तथा कटाक्ष-पात आदि विलास-विशेष से एक-सा सङ्गीत सुशोभित हो रहा था।

जिस प्रकार कुरङ्ग घास का चरना छोड़कर शिकारी की वशी-ध्वनि मे तल्लीन हो जाता है, उसी प्रकार वह राजा भी सामने रखे हुए ताम्बूलो का चर्वण छोडकर उन दोनो बालिकाओ के सङ्गीत मे तल्लीन हो रहा था। राजा की इस तल्लीन अवस्था को ध्यानपूर्वक देखकर उन दोनो गायिकाओ ने विशेष-विलास के साथ विहँसती हुई और बडे नम्रता के भावो के साथ मधुर तथा मोहक सङ्गीत प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे वे दोनो और राजा चक्रवर्मा एक-दूसरे पर अत्यन्त अनुरक्त-से होने लगे। उन सबो का अनुरक्त हृदय चचलता को ग्रहण करने लगा। थोड़ी ही देर मे राजा और उन दोनो बालिकाओ के हृदय आत्म-समर्पण करने को प्रस्तुत हो गये तथा इसी को प्रकट करने के लिए दृष्टि के व्यापारो द्वारा पारस्परिक सलाप-सा प्रारम्भ हो गया।

वहाँ उस सभा मे एक चाटुकार ने सकेत के व्यापार से समझ लिया कि उन दोनो बालिकाओ ने राजा के चित्त को हरण कर लिया है, इसलिए उचित अवसर जानकर वह राजा का प्रिय चाटुकार प्रेम-वर्धक प्रसङ्ग के अनुकूल वचन कहने लगा—"महाराज! कहाँ तक प्रशसा की जाय! कहना ही पडता है कि जिस प्रकार कपूर की प्याली में रखी हुई मदिरा हृदय को बल-पूर्वक हरण कर लेती है, उसी प्रकार इन दोनो मनोरम बालिकाओ को प्राप्त कर यह सङ्गीत हृदय को हरण करने वाला हो गया है। इन दोनो गायिकाओ की अमल-धवल दन्त पक्तियो मे प्रतिबिम्बित चन्द्रमा चुम्बन करता-सा दीख रहा है। करतल पर कपोल रखकर गाती हुई ये बालिकाएँ अपने कटाक्षो से आकाश मे विचरने वाले वैमानिक देवताओ को मोहित करती-सी

दीख रही हैं। हम लोग उसी के विषय मे चर्चा कर रहे है, ऐसा सोचकर ही देखिए कि इन दोनो मे से एक बालिका कैसा प्रेम और मृदु हास्य के साथ कटाक्ष फेंक रही है और मग्न मुख हो कर गाती हुई चचल कर्ण-कुण्डल वाली दूसरी बालिका विपरीत रति के उद्रेक का आरम्भ करती-सी सुशोभित हो रही है। उसी पुरुष का यौवन सफल है, जिसके विरह मे ऐसी वाम-लोचनाएँ उत्सुकता से युक्त होकर निर्जन स्थान मे इस प्रकार के सुमधुर स्वरो मे गायन करती हैं। युक्ति से रहित केवल शुष्क शास्त्रो के अनुष्ठान से मोहित मनुष्यो द्वारा एक साथ चलने वाली इन बातो मे से केवल एक को किस लिए त्यागा जाता है ? रूप को स्पर्श करते हुए नेत्र को एव मधुर ध्वनि को ग्रहण करते हुए कर्ण को यदि पाप नही लगता तो इस कमनीय अङ्ग का स्पर्श करते हुए किसी के अङ्ग को भी क्यो पाप लगना चाहिए ?"

इस प्रकार के उत्तेजक चाटुकार के वचनो से उस चपल-स्वभाव राजा के हृदय की अभिलाषा का अकुर सिक्त हो गया और क्षण भर मैं ही वह सैकडो प्रकार की शाखाओ से भी युक्त हो गया। उदय को प्राप्त हुए मेघ एव चाटुकारो के द्वारा सिंह तथा भूपाल-सिंहो को विपथ-गामी बनाकर उनके हृदय मे वर्णसंकर की रुचि उत्पन्न कर दी जाती है। मेघ की गर्जना को सुनकर सिंह मे उत्तेजना का सचार होने लगता है। इन्द्र-धनुष के अनेक रङ्गो के प्रकाश को देखकर उसके नेत्र प्रदीप्त हो जाते है और मेघ की गर्जना सुनकर उसे किसी दूसरे सिंह की ध्वनि समझकर शीघ्रता से दौडते हुए वह गिरकर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार कुल तथा गोत्र के विचार को त्याग कर मधुर भाषण से चाटुकार लोग राजा के मन को मोहित कर उसे तुरन्त विषयगामी बना देते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि वह राजा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यदि उपपत्तिहीन वस्तु को क्षणमात्र मे उपपत्ति-युक्त सिद्ध करने से मूढ जनो को मोह-ग्रस्त करने मे समर्थ, कुतर्करूपी पथ के पथिक चाटुकार लोग इस ससार मे न होते, तो अवश्य ही नरक मे मृग चरने लग जाते अर्थात् नरक पापियो से शून्य हो जाते। कहने की आवश्यकता नही कि चाटुकारो के माया-जाल मे पडकर कर्ण के समान उदार होने पर भी असत्पात्र को दान देने वाला वह राजा चक्रवर्मा उस डोम को हार, केयूर तथा कुण्डल आदि अनेक आभूषण देकर अन्त पुर मे चला गया।

राजा के चले जाने के बाद उस रंग नामक डोम को इस बात का निश्चय हो गया कि राजा चक्रवर्मा उसकी दो बलिकाओ मे से किसी एक पर आसक्त हो गया है। ऐसा निश्चय होते ही वह आनन्द से नृत्य करके कुछ पद्य कहने लगा और राजा को प्रसन्न करने की इच्छा से उस विषय पर कतिपय चाटुकारी मूढ़ कवियो ने प्रशसात्मक कविताओ की भी रचना की। ऐसे मूर्ख कवि धिक्कार के पात्र हैं। वेश्याविषयक अनुराग तथा हरिद्रा का रग ये दोनो ही इन्द्र-धनुष के रग के समान क्षणिक होते है, इसी प्रकार हृदय को हर लेने वाले उपाग गीत की शोभा भी अस्थिर होती है। उस राजा का डोम-कन्या-विषयक चक्षु-राग दर्शन के निरन्तर अभ्यास से इतना अधिक बढ़ गया कि वह उनको देखे बिना व्याकुल हो जाता था। सोते हुए राजा के पास बैठ कर गायन करती हुई उन बलिकाओ ने राजा को अपने चुम्बन का अभ्यास कराया और धीरे-धीरे रति-सुख का भी अनुभवी बना दिया। कुछ दिन यो ही बीत गये। राजा चक्रवर्मा उन दोनो डोम-कन्याओ की धृष्टता से क्रमश अपने जीवन को धन्य समझने लगा और उन्ही को नित्य साथ रखने मे अपनी बडी विशेषता समझने लगा।

परिणाम यह हुआ कि उन दोनो के नवीन समागम से हत-वीर्य होने के कारण वह राजा

लज्जा को धारण करने मे असमर्थ हो गया अर्थात् डोम की कन्याओ के साथ वह समागम करता है, उसे इस बात की लज्जा न रही। रति के अन्त मे सुलभता से उत्पन्न होने वाले स्वेद-बिन्दुओ से उसका शरीर भाग्य के तेज से शून्य होकर जड हो गया। उस प्रेमान्ध राजा ने हंसी नामक डोम-बालिका को महारानी बनाया, इसलिए राजपत्नियो के मध्य मे उस पर चामर डुलने लगे। जिन लोगो ने उसका जूठा खाया, वे राजा चक्रवर्मा तथा उसके बाद के राजाओ के सभासद बन गये। डोमो की चापलूसी करने वाले मंत्रियो का अभ्युदय होने लगा और उन्हे अक्षपटलादिको मे अधिकार मिलने लगे। कतिपय मूर्ख श्वपाक अर्थात् डोम मंत्री नही बने, परन्तु उनमे जो बुद्धिमान थे, वे मंत्री के समान राज-कार्य करने लगे थे।

जिसके मंत्री चोर हो, जिसकी महारानी श्वपाकी हो और जिसके श्वपच राज-वल्लभ हो, ऐसे राजा चक्रवर्मा को अब कौन-सा अलौकिक कार्य करना बाकी रह गया था? वह स्वपाकी राजपत्नी ऋतु-स्नान के बाद आर्तव-चिह्नित वस्त्रो को पारितोषिक रूप मे देती थी और उन वस्त्रो को धारण कर बडे अभिमान के साथ बहुत-से मंत्री राज-सभा मे आते थे।

जिन अल्प-संख्यक राज-कर्मचारियो ने राजा के रोष की भी पर्वाह न कर उस श्वपाकी का उच्छिष्ट नही खाया था, वे सब उसी प्रकार हीन समझे जाते थे जिस प्रकार यज्ञ मे सोम-पान करने वाले ऋत्विज हीन समझे जाते हैं। उस समय मे काश्मीर देश मे प्रखर प्रभावशाली देवताओ का अभाव अवश्य हो चुका था। यदि उन सब का अभाव न हुआ होता तो उनके मन्दिर मे श्वपाकी का प्रवेश होना कैसे संभव होता? तिल द्वादशी के दिन रणस्वामी के दर्शन को गई हुई हंसी रानी के साथ सामन्तो से भी अधिक स्वाभिमानी डामर लोग ही न गये। राज-कुटुम्बी होने से सभी डोम अपने को प्रतापशाली समझने लगे थे और इसीलिए उन डोमो के मुख से निकली हुई कोई भी आज्ञा राजाज्ञा के समान ही मानी जाती थी।

जब राजा चक्रवर्मा ने रग डोम को अग्रहार के समान हेलू नामक ग्राम पारितोषिक के रूप मे दिया था, तब पट्टोपाध्याय दान-पट्ट नही लिख रहा था। उस समय रंग डोम अक्षपटल मे जाकर क्रोध के आवेश मे अपनी ग्राम्यभाषा मे कहने लगा—'हे नीच दासी के पुत्र! 'राजा चक्रवर्मा ने रग को हेलू ग्राम दिया' ऐसा क्यो नही लिखता?" इस दशा मे रंग डोम की वक्र भृकुटी से डरकर उसने उसी के कथनानुसार वैसे ही लिख दिया, क्योकि राजा के दुश्चरित्र होने पर कौन-सा नीति के विरुद्ध कार्य न होगा?

उस महापापी राजा ने अपनी राजसभा के चाटुकारों से चाण्डाली के साथ समागम करने का प्रायश्चित पूछा था। उस समय उन सबो ने प्रायश्चित्त का विधान बतलाते हुए उस राजा से हास्य रूपी महायज्ञ कराये थे। "हिम से ही हिम शान्त होता है। उसी प्रकार एक पाप से दूसरा पाप नष्ट होता है।" इस प्रकार चाटुकारो के ही अनुशासन से उस राजा ने अत्यन्त पामरता का कार्य किया था। उसने अस्पृश्या अर्थात् डोम-कन्या के स्पर्श से उत्पन्न हुए पाप के क्षालन के लिए पवित्रा के स्पर्शन को उपयुक्त समझा और अपनी इसी समझ के अनुसार एक मास-पर्यन्त उपवास करने वाले ब्राह्मण की पवित्र पत्नी के साथ बलात्कार किया। ऐसे पापात्मा राजा से भी अग्रहार लेने वाले तथा उसके यहाँ भोजन करने वाले उससे भी बढ-चढ कर पापिष्ट ब्राह्मण उस समय जीवित थे।

उस पापी राजा ने पाशुपत तपस्वियों के रहने के लिए एक मठ बनवाना आरम्भ किया

था किन्तु वह मठ अपूर्ण ही रह गया। वह मठ उसके मरने के बाद उसकी पत्नी के द्वारा पूर्ण किया गया था। उस श्वपाकी-वल्लभ राजा ने डामरो के द्वारा किये गये पूर्व उपकारो को भुला दिया और कतिपय निरपराध डामरो को कपट मे मरवा डाला। इस घटना से उसके विश्वास-पात्र कतिपय डामर-तस्करो ने कपट से उसकी भी हत्या करने का दृढ़ संकल्प कर लिया और वे सब अपने संकल्प को पूर्ण करने के लिए योग्य अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

एक बार श्वपाकी के शयनागार के पास के शौचालय मे शौच के लिए गये हुए उस निःशस्त्र राजा को रात मे उन डामरो ने देख लिया। उसके बाद उस अवसर को पाते ही उन डामरो ने चारो ओर से उस पर तीक्ष्ण शस्त्रो का प्रहार करना प्रारंभ किया। तालाब के किनारे सोया हुआ मनुष्य तालाब मे ही गिर कर जिस प्रकार चिल्लाता है, उसी प्रकार निद्रा से अलस-नेत्र वह राजा आकस्मिक शस्त्र-सपात से प्रबुद्ध होकर ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगा।

निःशस्त्र वह राजा शस्त्र को खोज रहा था और उसके शरीर से रुधिर के क्षरने बह रहे थे तथा उसके पीछे वे सब घातक डामर लगे हुए थे। ऐसी दशा मे वह दौड कर शयन-मन्दिर मे प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसे शस्त्र नही मिला। वहाँ वह डोम-कन्या हंसी उसको आलिंगन करके ऊँचे स्वर से रोने लगी। उसके उन्नत कुचो से लिपटे हुए उस राजा को उन डामरो ने वहाँ प्रवेश कर मार डाला। मरते हुए उस राजा की पत्नियो के प्रोत्साहन से उन डामरो ने उसके घुटनो को पत्थरो से दबोच डाला। इस प्रकार लौकिक वर्ष चार हजार तेरह के ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन रात मे श्वपाकी के द्वारा उपभुक्त वह पापी राजा शौचालय मे तस्करो के द्वारा कुत्ते की मौत मारा गया।

६. राजा अवन्तिवर्मा आदि की कथा

उस पापी राजा चक्रवर्मा की मृत्यु के बाद शर्वट आदि मूर्ख मन्त्रियो ने पार्थ के दुष्टात्मा पुत्र उन्मत्त अवन्तिवर्मा का राज्याभिषेक किया। उस श्वपाकी कामुक राजा के चोरो द्वारा रात मे मारे जाने के बाद प्रजा के सर्वापेक्षा अधिक दुर्भाग्य से उस पापी से भी बढकर महापापी शासक हुआ। उस दुष्ट की पापमयी कथा के स्पर्श से भयभीत होकर मेरी काव्य-सरस्वती स्थगित हो रही है, परन्तु मैं उसे त्रस्त अश्वा अर्थात् घोडी के समान थोडा-सा आश्वासन देकर पुनः अग्रसर करा रहा हूँ।

जिस प्रकार जल से उत्पन्न होने वाला वडवानल जल को ही खा जाता है, उसी प्रकार उस दुष्ट नृप-राक्षस ने भी अपने पितृकुल को ही अपना भक्ष्य बनाया था। चुटकियाँ बजाकर तथा नासिका से, कधों से, काँख अर्थात् बगल से एव सिर पर आघात करके भिन्न-भिन्न प्रकार से ध्वनि निकालने वाले मत्री उसकी सभा मे थे। वे निर्लज्ज मत्री चारण बन कर उस राजा का मनोरजन करने लगे जो कि कालान्तर मे राजा बनने वाले थे।

राज-सभा के मण्डप मे नग्न होकर नाचने वाला पर्वगुप्त उन सब मे राजा को अधिक प्रिय लगता था। उस धूर्त पर्वगुप्त ने तन्त्रि-पदातियो के विप्लव के बाद के राजाओ को कीट के समान सत्त्व-हीन देखकर स्वय राज्य-प्राप्ति का उद्यम प्रारंभ किया। उस समय राज्य की इच्छा को अपने मन मे ही गुप्त रख कर शर्वट आदि पाँच प्रधान मत्रियो के साथ कोश-पान-पूर्वक पर्वगुप्त ने मित्रता की। भूमर्ट, शर्वट, छोज कुमुद, तथा अमृताकर नामक पाँचो मत्रियो ने पर्वगुप्त पास के कोश-पान-पूर्वक शपथ ग्रहण की थी।

संग्राम डामर के यहाँ गवाक्ष सरोवर मे श्री के प्रत्यक्ष दर्शन करने वाला प्रसिद्ध वीर रक्क नामक ब्राह्मण था। एकाकी एवं पदाति होते हुए भी युद्ध मे उसने राजा के समक्ष उत्कृष्ट शौर्य दिखाया था। वह शरीर से हृष्ट-पुष्ट था। उसे राजा ने प्रधान मत्री के पद पर नियुक्त किया था। उस रक्क ने गवाक्ष सरोवर मे दर्शन करते हुए जिस प्रकार श्री का स्वरूप देखा था, उसी के अनुसार प्रतिमा निर्माण करा कर रक्का देवी का मन्दिर बनवाया।

धूर्त पर्वगुप्त ने निष्कण्टक राज्य को प्राप्त करने की अभिलाषा से उस राजा को प्रेरित कर राजकुल के अनेक मनुष्यो की हत्या करा डाली। राजा ने अपने पिता पार्थ का सर्वस्व छीन लिया। तब वह परिवार-सहित जयेन्द्र-विहार मे जाकर रहने लगा। वहाँ उसे श्रमण लोग भोजन के लिए अन्न देते थे। उस दुष्ट राजा ने अपने कनिष्ठ भ्राता शकर वर्मा आदि शिशुओ को कारागार मे रखकर अनशन से उन्हे मार डाला। वह अपने पिता पार्थ की हत्या करने के लिए उत्सुक था। इस कार्य मे जो मत्री सहमत थे उन्हे वह पट्ट-वस्त्र बँधवाता था और जो कोई भी उसके इस कार्य का थोडा-सा भी विरोध करता था, उन सबो के पैरो मे बेडियाँ पहनाई जाती थी। थोडे दिनो के बाद एक बार उसकी आज्ञा से मत्री, सामन्त, तत्री, कायस्थ आदि ने रात मे जाकर पार्थ के निवास-स्थान जयेन्द्र-विहार को चारो ओर से घेर लिया। उस समय मलिन, क्षीण एव जीर्ण-वस्त्र-धारिणी पार्थ की पत्नी को द्वार पर आकर रोकती हुई देखकर उन सब दुष्टो ने उसे ढकेल दिया। उसके रोते हुए बालक मारे डर के, अपनी माता से चिपटते हुए गाय के बछडो के समान उसके शरीर से लिपट रहे थे। कुमुद आदि राज-प्रिय पुरुषो ने उन सबको हटाकर भीतर प्रवेश किया और वहाँ से गोशाले के भीतर मरे हुए ढोर के समान उस पार्थ को केश पकड कर घसीटते हुए वे बाहर ले आये। ककडो की रगड से उसका शरीर छिल गया था और भूख से वह अत्यत दुर्बल हो गया था। ऐसी कष्टमयी अवस्था मे पडे हुए नग्न एव चिल्लाते हुए उस राज-पिता का उन सबो ने चाण्डाल के समान कठोरता से वध कर डाला। पिता को मारा गया सुनकर राजा को बड़ा कौतुक हुआ और दूसरे दिन प्रात काल होते ही मत्रियो के साथ वहाँ जाकर उसने उसे अधिक प्रसन्न-चित्त से देखा। उस राजा के सामने राजपुरुष "मैने इसके इस अंग पर प्रहार किया था" इस प्रकार अपने-अपने पराक्रम की प्रशसा करने लगे उस समय राजा के द्वारा तिरस्कृत होकर फिर से अनुगृहीत हुए पर्वगुप्त ने राजा को प्रसन्न करने के लिए देवदत्त नामक अपने पुत्र को प्रेरित किया। तब उसने पार्थ के मृत शरीर मे छुरा भोक दिया। उसके उस कार्य से प्रसन्न होकर वह राजा अधिक विलम्ब तक हँसता रहा।

चक्रवर्मा के मरण के बाद डामरो ने उस देश को लूट लिया था और उस राजा ने पापिष्ठ कायस्थो को अधिकार देकर उससे भी अधिक उस देश को दु:खी बना दिया। दुष्ट मत्रियो की प्रेरणा से शस्त्र-विद्या का अभ्यास करते हुए उस महापापी राजा ने नग्न स्त्रियो के स्तनो के मध्य भाग को छुरिका से चीर डाला था। गर्भो को भी देखने के लिए वह गर्भिणी स्त्रियो के गर्भाशय को चीर डाला करता था और काम करने वाले मजदूरो की सहन-शक्ति की परीक्षा करने की अभिलाषा से उनके अवयव कटा देता था।

दान-प्राप्ति के उत्कट लोभ से अथवा उसके द्वारा दिये जाने वाले भयकर मृत्यु-दण्ड के भय से उस अत्याचारी अधम राजा से भी ब्राह्मणो ने अग्रहार ग्रहण किये थे। उसके बाद क्रूर पापो के परिणाम से उस राजा को क्षय रोग ने घर दबाया और उससे उसे अत्यन्त कष्ट होने लगा। इस प्रकार के कष्ट से पीडित उसे देखकर केवल उसकी प्रजा को ही सन्तोष न हुआ। किन्तु उसकी चौदह रानियो को भी सन्तोष हुआ।

उसके बाद अन्त.पुर की दासियो के द्वारा कही से लाये गये तथा "यह राजा का पुत्र है," इस प्रकार मिथ्या प्रसिद्ध किये गये शूरवर्मा नामक बालक को राज्याधिकारी बना कर और उसे सामन्त, सचिव, एकाग एव तन्त्रियो के सुपुर्द कर दिया। इसके अनन्तर मडव राज्य मे रहकर डामरो का दमन करते हुए कम्पनाधिपति कमलवर्धन के द्वेष से भयभीत हुआ पिता का घातक तथा आसन्न नरकगामी वह अधम पार्थिव प्रजा के पुण्य से लौकिक वर्ष चार हजार पन्द्रह के वैशाख मास मे मृत्यु के मुख में चला गया।

पितृघाती का पुत्र वह बालक राजा आषाढ शुक्ला सप्तमी के दिन जयस्वामी नामक सूर्य के मन्दिर मे दर्शनार्थ राज-भवन से निकला। उस समय उस बालक राजा की कृपाणरूपी वेणी से ललित तथा छत्र एव चामररूपी हास्य से युक्त राज्य-श्री अत्यत सुशोभित हो रही थी। इतने ही समय मे दौडकर आये हुए गुप्तचरो की सूचना से अपने सामन्तो के साथ कमलवर्धन शीघ्रता से नगर के समीप आ पहुँचा। थका होने पर भी नगर मे प्रवेश करते हुए उसको एकाग, तन्त्री, सामन्त तथा स्यालहारक अर्थात् सिलेदार आदि लोगो ने रोका। यद्यपि मार्ग मे स्थान-स्थान पर विरोध करने वाले डामरो के साथ युद्ध करने से वह अधिक श्रान्त हो चुका था, तथापि उस पराक्रमशाली वीर ने शत्रु-सेना को जीत लिया। अपने अल्प-सख्यक अश्वारोही सैनिको की सहायता से शत्रु के एक सहस्र अश्वारोहियो को परास्त कर वह अल्प समय मे ही बिना रोक-टोक के राजधानी मे पहुँच गया। इस समाचार को सुनते ही बालक-राजा के सैनिक उसे एकाकी छोडकर भाग गये। उस सकट-काल मे उसकी माता उसे लेकर किसी अज्ञात स्थान पर चली गई। मूर्ख मन्त्रियो के परामर्श से अथवा पूर्व जन्म मे किये कर्मो से उत्पन्न मोह से मूढ होकर वह कमलवर्धन राज्य के सिंहासन पर आरूढ न हुआ।

उस दिन तो वह अपने भवन चला गया और दूसरे दिन नीति के ज्ञान से शून्य उस कमलवर्धन ने "प्रौढ तथा सामर्थ्यवान् समझकर मुझे ही राजा निश्चित करेंगे" ऐसा विचार समस्त ब्राह्मणो को एकत्रित किया और फिर उन सबो से कहा "अपने देश मे उत्पन्न हुए किसी प्रौढ तथा सामर्थ्यवान् पुरुष को आप लोग यहाँ का शासक निश्चित कीजिए।" इस घटना को सामने रखकर कहना ही पडता है कि जो मनुष्य अत्यत दुर्लभ स्त्री को एकान्त मे मदिरा-मत्त अवस्था मे पाकर भी अप्रगल्भता के कारण उस समय उसका उपभोग नही करता और दूसरे दिन उसके पास दूती को भेजकर समागम की अभिलाषा प्रकट करता है, तथा जो मनुष्य बल-पूर्वक अपने समीप आई हुई विभूति अर्थात् राज्य के ऐश्वर्य को उस क्षण त्याग कर पश्चात् दूसरे दिन नीति से उसे प्राप्त करना चाहता है, इस प्रकार के दोनो ही मनुष्यो की अधिक से अधिक शोचनीय दशा होती है।

इस प्रकार उत्पल-कुल के उच्छेद होने पर मोटे-मोटे कम्बलो को ओढे हुए बिना सीग के बडे-बडे बैलो के समान ब्राह्मण गोकुल नामक विशाल मन्दिर मे एकत्रित हुए। वहाँ पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियो को राजा बनाने का विचार रखते हुए धूमन्दग्ध-कूर्च अर्थात् धुएँ से जिनकी दाढी-मूँछें मैली हो चुकी हो ऐसे उन ब्राह्मणो का चिरकाल तक राज-निर्वारण-सम्बन्धी विचार चलता रहा। उनके पारस्परिक मतभेद के कारण किसी के भी मस्तक पर राज्याभिषेक का जल नही गिर सका, किन्तु उन सब के भाषण करते समय मुख से उडते हुए थूक के कणो का उनकी दाढियो पर अवश्य अभिषेक हुआ।

उसके शासन-काल मे पृथ्वी पर चोरो का इतना अभाव हो गया था कि रात मे भी बाजारो मे दूकानें खुली पडी रहती थी और मार्ग मे भी लुटेरो का किंचिन्मात्र भय नही था। सर्वत्र दृष्टि रखते हुए उसके शासन-काल मे सर्वस्वहरण करने वाले कर्मचारियो को कृषि-कर्म की देख-रेख करने के अतिरिक्त दूसरा कोई भी काम नही था। गांवो के रहने वाले खेती-किसानी के धधे मे लग गये थे। उन्हे राज-मन्दिर देखने का अवसर नही मिलता था और ब्राह्मणो का समुदाय स्वाध्याय मे तत्पर हो गया था, और उसने शस्त्रो का उठाना त्याग दिया था। साम-गान करते हुए विप्रगुरु मदिरा-पान नही करते थे और तपस्वियो ने पुत्र, दार, गृह पशु एव धान्यो का सम्पादन त्याग दिया था। मत्स्य-याग और अपूप-याग का विधान करने वाले मूर्ख गुरु स्वरचित कपोल-कल्पित ग्रन्थो के द्वारा परम्परागत आगम ग्रन्थो का परीक्षण अर्थात् सशोधन नही करते थे। गृहणियाँ वंचक गुरुओ से दीक्षा लेकर अपने मे देवत्व की मिथ्या भावना करके मस्तक हिलाती हुई अपने पतियो के पवित्र शील का निषेध नही करती थी। उस समय मे ज्योतिषी, वैद्य, मत्री, गुरु, अमात्य, पुरोहित, न्यायाधीश अथवा लेखक कोई भी विद्या से शून्य नही था।

एक बार प्रायोपवेशन के अधिकारियो ने राजा को राज-द्वार पर एक मनुष्य के प्रायोपवेशन की सूचना दी। सूचना के पाते ही राजा ने तुरंत उसे बुलवाया। जब वह मनुष्य सामने आया तब राजा ने उससे प्रायोपवेशन करने का कारण पूछा। राजा के द्वारा पूछा जाने पर उस मनुष्य ने कहा—"महाराज। मैं पहिले इसी नगर मे रहने वाला एक धनाढ्य व्यापारी था, किन्तु दैववशात् कुछ समय के बाद दरिद्र हो गया। मुझ पर बहुत अधिक ऋण हो गया था और साहूकार लोग बडे कठोर शब्दो मे तकाजा करने लगे। उसका परिणाम यह हुआ कि मैंने अपनी समस्त सम्पत्ति बेच कर ऋण चुकाने और फिर विदेश मे जाकर भ्रमण करने का निश्चय किया। इसके बाद अपना सर्वस्व बेचकर ऋण चुकाते हुए मैंने एक बडे धनिक के हाथ अपने रहने का मकान भी बेचा। उस मकान की सीढियो के पास का एक छोटा-सा भाग-इसलिए नही बेचा था कि उससे मेरी पत्नी के भरण-पोषण का कार्य सरलता से चल सकता था — वास्तव मे बात यह थी कि गर्मियो के दिनो मे वह अत्यन्त शीतल स्थान होने के कारण पान, फूल बेचने के लिए उपयुक्त स्थान था, इसलिए माली उसे किराये पर ले लेते थे और उनसे जो किराया मिलता था वह मेरी पत्नी के भरण-पोषण के लिए किसी भी दशा मे न्यून न था। इस घटना के बाद मैं विदेश चला गया और वहाँ बीस वर्ष तक किसी भी प्रकार भ्रमण करते हुए थोडा-सा धन प्राप्त कर लिया। इसके बाद मैं अपनी इस जन्म-भूमि मे फिर लौट आया। यहाँ आकर जब मैंने अपनी पत्नी का पता लगाया तब विवर्ण-शरीर तथा दूसरो के घर पर मजदूरी कर अपना जीवन-निर्वाह करती हुई उस परम साध्वी को देखा।

मैंने दुःखित होकर उससे पूछा कि मैंने तुम्हारे निर्वाह का पूरा प्रबन्ध कर दिया था, फिर भी तुम्हारी ऐसी दुर्दशा क्यो हुई। इस प्रकार पूछने पर उसने अपना सारा वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि आपने मुझे जीविका के लिए अपने मकान की सीढियो के पास की भूमि दे दी थी, इसलिए मैं वहाँ गई थी, किन्तु आपके विदेश जाने पर उस साहूकार ने मुझे लाठियो से मारा और फिर बडी निर्दयता के साथ वहाँ से निकाल भी दिया। ऐसी दशा मे मेरी दूसरी कौन-सी जीविका हो सकती है ? इस प्रकार अश्रुपूर्ण लोचनो से युक्त अपना वृत्तान्त कह कर वह बेचारी चुप हो गई और मैं उसके इस वृत्तान्त को सुनकर शोक एव क्रोध मे मग्न हो गया। न्यायालय मे

उस साहूकार के विरुद्ध अभियोग चलाने पर भी प्रत्येक न्यायाधीश के द्वारा मेरा शत्रु ही विजयी घोषित किया गया और मुझे हार कर विशेष रूप से लज्जित होना पड़ा। जब दूसरा कोई भी उपाय न रह गया तब मैंने अपने को निरुपाय समझ लिया और यह प्रायोपवेशन किया है। सभव है कि अज्ञ होने के कारण मैं न्याय की सूक्ष्मता न समझ सका हूँगा, किन्तु मैंने अपने मकान की सीढियो के समीप का स्थान नही बेचा है, इस बात की सत्यता के लिए मैं अपने प्राणों की भी बाजी लगाने को तैयार हूँ। मेरी सम्पत्ति नष्ट हो चुकी है, इसलिए मैं आप जैसे विचारक के द्वार पर प्रायोपवेशन करके प्राण दे दूँगा। यदि आप इस पाप से डरते हो, तो स्वय इसका निर्णय करने का कष्ट स्वीकार करें।"

उस प्रायोपवेशन करने वाले पुरुष के इन वचनो को सुनकर वह राजा स्वय धर्म के आसन पर बैठा और समस्त न्यायाधीशो को एकत्रित कर उसके वास्तविक वृत्तान्त को जानने का प्रयत्न करने लगा। न्यायाधीशो ने राजा से कहा, "महराज! हम सबो ने भली भाँति सोच-समझकर ही इसे इस वाद मे परास्त किया है, किन्तु अपनी शठता के कारण यह हम सबो के द्वारा किये गये न्याय को नही मान रहा है। इसीलिए अपने लिखे हुए लेख को अस्वीकार करने का इसे उचित दण्ड मिलना चाहिए।"

राजा ने भी उसका लिखा हुआ विक्रय-पत्र मँगवाकर उसमें "सोपान-कूप सहित घर बेचा है" इस प्रकार के अक्षर स्वय पढ़े। इस पर राजसभा के समस्त सदस्यो ने "न्याय ठीक हुआ है" ऐसा कहा। उन सब सदस्यो की बातो को सुन लेने के बाद भी राजा का अन्त करण वादी की विजय को ही स्वीकार कर रहा था। कुछ देर तक सोचकर वह राजा उन सभासदों के साथ अन्यान्य विषयो पर बातें करता हुआ उन्हें उपस्थित प्रसग से दूर कर भुलावा देता रहा। उन समस्त बातो की शृ खला मे ही उसने बडे साधारण शब्दो मे रत्नो को देखने के बहाने उन समस्त लोगो की अँगूठियाँ हँसते-हँसते ले ली। उन अँगूठियो मे उस साहूकार की भी अँगूठी थी। इसके कुछ क्षणो के बाद पाद-प्रक्षालन के बहाने "आप लोग कुछ समय के लिए यही बैठे रहे" ऐसा कह कर हँसता हुआ उस स्थान से बाहर चला गया। बाहर जाकर अभिज्ञान के लिए उस साहूकार की अँगूठी को अपने विश्वास-पात्र सेवक को देकर उसके द्वारा उस साहूकार के घर सन्देश भेजा। राजा के सेवक ने साहूकार के यहाँ जाकर उसके गणनाध्यक्ष को अँगूठी देकर कहा कि "जिस वर्ष उस मकान का विक्रय-पत्र लिखा गया था उसी वर्ष की गणना-पत्रिका अर्थात् बहीखाता मुझे दीजिए, क्योंकि आज मकान-विक्रय के सम्बन्ध वाले मामले के निर्णय मे उसकी आवश्यकता पड गई है।"

राजा के सेवक की इन बातो को सुनकर साहूकार के गणनाध्यक्ष ने अँगूठी को लेकर वह गणना-पत्रिका उसे तुरन्त दे दी। उस गणना-पत्रिका मे राजा ने उस विक्रय-पत्रिका के लेखन के उपलक्ष्य मे राजकीय अधिकरण-लेखक को एक सहस्त्र देने का वृत्त पढ़ा। साधारण कार्य के लिए परिमित द्रव्य देने के स्थान पर इतना अधिक देने से "साहूकार ने रेफ के स्थान पर लेखक से सकार लिखवाया है" ऐसा तुरत निश्चय कर लिया। यह रहस्य उसने सभासदों को भी समझाया और उस लेखक को बुलवाकर उसे अभयदान दिया। फिर उसी के द्वारा उस वृत्तान्त को स्पष्ट कहलाकर सभासदो के हृदय मे भी विश्वास उत्पन्न करा दिया। इसके बाद सभासदों की प्रार्थना से राजा ने उस साहूकार से मकान तथा सम्पत्ति छीनकर वादी को दे दी और साहूकार को राज्य से निकल जाने का दण्ड प्रदान किया।

राज्य-पद के योग्य व्यक्ति-विशेष की खोज करते हुए उन ब्राह्मणो को अपना स्मरण कराने के लिए वह सरल स्वभाव वाला कमलवर्धन वहाँ गया था। उसके वहाँ पर पहुँचते ही उन सब ब्राह्मणो ने उसे ईंटो से मार कर वहाँ से भगा दिया। इस प्रकार पाँच-छ दिनो तक उनका वाद-विवाद चलता रहा। इतने मे वहाँ पर भिन्न-भिन्न स्थानो मे चामर, छत्र तथा पताका आदि लिए हुए काहल, कास्यताल आदि वाद्यो की ध्वनि से कोलाहल मचाते हुए और वाहनो पर अपने-अपने देवताओ के सिहासनो को रखे हुए ब्राह्मण-परिपदो के अनेक समूह वहाँ आकर एकत्रित हो गये।

उस समय वह असहाय कमलवर्धन दूसरे के घर मे रक्षिता बन कर बैठी हुई अपनी पत्नी के समान पराधीन राज-लक्ष्मी को देख कर अत्यन्त शोक-मग्न हो रहा था। उस पितृघाती उन्मत्त अवन्ति वर्मा की पत्नी ने भी अपने पुत्र को राज्य मिलने की अभिलाषा से प्रायोपवेशन किए हुए से उन ब्राह्मणो के निकट गुप्त रूप से अपने राजपुरुषो को भेजा था।

पिशाचपुर ग्राम मे वीरदेव नामक सद्‌गृहस्थ का कामदेव नामक पुत्र था। वह साक्षर तथा स्नान-सध्या आदि सदाचार-सम्पन्न होने के कारण मेरुवर्धन नामक राजमन्त्री के यहाँ बालको का अध्यापक हो गया था। इसके बाद क्रमश. वह गजाधिकारी हो गया था और मेरु-वर्धन का पुत्र प्रभाकर देव राजा शंकर वर्मा की कृपा से राज्य का गंजाधिकारी बन गया था तथा गुप्त रूप से राजपत्नी सुगन्धा का उपपति अर्थात् जार भी बन चुका था।

कामदेव का पुत्र यशस्कर लक्ष्मी एव सरस्वती के पारस्परिक द्वेष से अथवा देश-विप्लव से विद्वान् होकर भी अत्यन्त निर्धन था, इसलिए वह अपने मित्र फल्गुणक के साथ देशान्तर को चला गया था। उत्तम तथा शुभ स्वप्नो को देख कर और पाठ-देवियो के शुभाशीर्वादो को प्राप्त कर प्रसन्न-चित्त वह यशस्कर उस समय अपनी जन्म-भूमि को लौटा था। उन्मत्त अवन्ति वर्मा की वधू के दूतो ने उसे चतुर वक्ता समझ कर उन समस्त ब्राह्मणो को समझाने के लिए जाते हुए उसे भी अपने साथ मे ले लिया। सौभाग्य के प्रबल प्रभाव के कारण उसे देखते ही समस्त ब्राह्मणो ने एकमत होकर "इसी को राजा बनाना चाहिए" इस प्रकार ऊँचे स्वर से कहा। पृथ्वी को धारण करने का प्रौढ सामर्थ्य रखने वाले उस यशस्कर को पर्वत पर जल-वृष्टि करते हुये मेघो के समान उन ब्राह्मणो ने राज्याभिषेक कर दिया।

पारस्परिक महासघर्ष से उत्पन्न हुए दावानल से बाँसो का वन जल कर राख हो जाता है और प्रबल मेघो की जल-धारा से उसकी जड भी उखड कर बह जाती है। झझावात के वेग से कही से भी उखड कर आये हुए किसी एक वृक्ष की जड को पर्वत की कन्दरा मे अथवा कुहर मे पुन दृढ मूल बनाने के लिए विधाता कौन-कौन से प्रयत्न नही करता है? दुष्ट सेवको की प्रेरणा से पार्थ का पुत्र यदि अपने वश का नाश न करता और उसके बाद कमलवर्धन उसके पुत्र को राज्य से च्युत न करता, तो साधारण वश मे उत्पन्न हुए, दरिद्रावस्था मे पृथ्वी पर भटकते हुए यशस्कर देव को वहाँ से राज्य की प्राप्ति होती?

कुछ क्षण पहले लोगो ने जिसे साधारण मनुष्यो के समान अकेला और नंगे पैर पैदल चलते हुए देखा था, साम्राज्य पद के प्राप्त होने पर सेना-सहित बडे समारोह के साथ राजमार्ग से जाते हुए उसी यशस्कर देव को देखने के लिए एकत्रित हुई नागरिक ललनाओ के नयनकमलों से सम्पूर्ण राजमार्ग कुसुमित हो गया था। राजमार्ग से राज-भवन की ओर जाते हुए तथा

एकत्रित हुई नागरिक हरिणलोचनाओं के मधुर कण्ठ से निकलते हुए चित्त को प्रसन्न करने वाले परम मनोहर आशीर्वाद तथा जय के शब्द को सुनकर और राजा होने के अहकार को त्याग कर प्रेमपूर्ण मधुर मुसकान के साथ नेत्रो के भाव-पूर्ण संकेतो द्वारा "मैंने उत्तम रीति से प्रजा के सरक्षण का निश्चय कर लिया है" इस प्रकार अपने हृदय के भावो को प्रकट करते हुए राजा के आशय को चतुर पुरुषो ने भली भांति जान लिया था। प्रतिबिम्बित सूर्य रूपी दीपक से सुशोभित रजत-पात्र के समान श्वेत छत्र से आरात्रिक (असख्य दीपको के आरती-प्रकाश) की शोभा को धारण करता हुआ वह पृथिवी-मण्डल का निर्मल मयक नागरिक सुमुखी ललनाओ के आशीर्वचन और जय-निनाद से मुखरित राज-भवन में प्रविष्ट हुआ।

इस प्रकार राज-तरगिणी की इस तरंग मे आठ कल्यपाल (जिन्हे कलवार अथवा हैहय वशीय क्षत्री भी कहा जा सकता है) और रास्ते से लाये गये सकट वर्मा तथा सुगन्धा देवी एवं एक मन्त्री शम्भुवर्धन के काश्मीर देश मे राज्य करने का वर्णन समाप्त किया जाता है। इन सबो ने तिरासी वर्ष चार महीने तक शासन किया था।

६

१ राजा यशस्कर देव की कथा

राज-भवन के विशाल एव मनोरम आगारो को क्रमशः उल्लघन करते हुए राजा यशस्कर देव ने अपने को अलघनीय बनाना चाहा और अपनी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये अपने पीछे-पीछे आते हुए ब्राह्मणो को रोक देने के लिए द्वारपालो को आज्ञा दी। वेत्रधारी द्वारपालो के द्वारा रोके जाने पर वे सब ब्राह्मण सहम-से गये। उनके अन्त करण का समस्त उत्साह जाता रहा। मारे भय के वे सब थर-थर कांपने लगे। उन सब ब्राह्मणो की उस विचित्र अवस्था को देखकर राजा ने हाथ जोड कर बडी नम्रता के साथ उन सबो से कहा, "मैं यह सहर्ष स्वीकार करता हूँ कि आप सब ब्राह्मणो ने मुझपर विशेष अनुग्रह करके मुझे इस देश का शासन-भार दिया है। आप सबो के द्वारा दिये गये राज्य को पाकर मैं भी अपने को धन्य समझ रहा हूँ। इसमे किचिन्मात्र सदेह नही है कि आप सब ब्राह्मण सभी प्रकार से पूजने योग्य हैं, अतएव आप सब मेरे लिए प्रत्यक्ष देवताओ के समान हैं। किन्तु इतने ही समय मे मैंने यह अनुमान कर लियाहै कि आप सब मुझे राज्य देने के अभिमान से मदोन्मत्त होकर बर्ताव करने मे थोडा-सा भी सकोच नही करेंगे, इसी अनुमान के आधार पर मैं आप सब विचारशील ब्राह्मणो से कर-बद्ध प्रार्थना करता हूँ कि बिना किसी कार्य के आप लोगो मे से किसी को भी मेरे समीप आने का प्रयत्न नही करना चाहिये।"

राजा यशस्कर देव के इस प्रकार कहने पर उन सब ब्राह्मणो ने उसको बडा ही विनय-शील मान लिया और "पूर्व समय मे उसके साथ रहा करते थे तथा सभी प्रकार बिना किसी सकोच के मिल लिया करते थे" इन समस्त प्रसगो को भूल गये। जिस प्रकार सुकवि विलुप्त प्रचीन कवि-सम्प्रदाय को अपनी प्रतिभा के बल से पुनरुज्जीवन प्रदान करता है, उसी प्रकार उस राजा यशस्कर ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के प्रभाव से उच्छिन्न प्राचीन राज्य-व्यवस्थाओ को पुनरुज्जीवित किया अर्थात् प्राचीन काल के राजाओ के समय राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी जितनी अच्छी-अच्छी बातें बद हो गई थी, उन सब को अपने शासन-काल मे फिर से प्रारम्भ कर दिया।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद किसी समय सायंकालिक सन्ध्या-वन्दन आदि आह्निक कर्म से निवृत्त होकर भोजन करने के लिए बैठने ही राजा के सामने द्वारपाल आकर खडा हो गया और असामयिक निवेदन के कारण को डरते-डरते निवेदन किया। उसने कहा "महाराज ! एक ब्राह्मण प्रार्थना करने के लिए आया हुआ है। मैंने उससे कहा कि महाराज राज्य-कार्य को समाप्त करके अभी भीतर गये हैं, इसलिए कल तुम्हे प्रार्थना करने का अवसर मिलेगा। मेरे इस कथन को सुनकर वह प्राण-त्याग करने को तैयार है।"

इतना सुनते ही राजा ने भोजन करना स्थगित कर दिया और उस ब्राह्मण को अपने समीप बुलवाकर उसका वृत्तान्त पूछा। तब उसने अत्यन्त दु खित होकर बडी दीनता के साथ अपनी करुण कथा राजा से कही। उसने कहा—"राजन् ! मैंने विदेश मे भ्रमण कर बडे परिश्रम से सौ सुवर्ण मुद्राएँ अपने उपार्जित धन मे से बचा ली थी और उन्हें लेकर इस अपने देश मे सुराज्य होने के समाचार को सुनकर बडी प्रसन्नता के साथ लौट आया। आपके सुशासन-काल मे मार्ग मे चोरो का भय सर्वथा नष्ट हो जाने के कारण मैं आनन्दपूर्वक प्रवास करते-करते कल रात मे लवणोत्स नामक ग्राम मे श्रान्त होकर विश्राम करने के लिए ठहर गया। दीर्घ प्रवास के कारण थके हुए मैंने निर्भय होकर रास्ते के समीप के एक उद्यान मे वृक्ष की छाया मे शयन किया। वही समीप ही घास से ढँका हुआ एक कूप था, उसका पता मुझे न था। उठने पर मुझे मालूम हुआ कि उसमे मेरी सुवर्ण मुद्राओं की पोटली गिर गई। मेरा सर्वस्व नष्ट होने से मैं निर्धन होकर बडी देर तक शोक करता रहा और उसी शोक से अधीर होकर जिसमे गिरने पर बाहर नही निकल सकते ऐसे उस दु खरोह कूप में कूद कर प्राण देने को मैं तैयार हो गया, परन्तु वहाँ पर आकर जमा होने वाले सज्जन पुरुषो ने ऐसा करने से मुझे रोक दिया। उनमे से एक साहसी एवं उत्साही पुरुष ने मुझसे कहा, "यदि मैं तुम्हारा धन इस कूप से निकाल दूँ तो तुम मुझे क्या दोगे ?" मैंने विवश होकर उससे कहा कि "मेरा उस धन पर अब क्या अधिकार रहा है ? जितना तुम चाहो, उतना मुझे दे देना। इसके बाद उस साहसी पुरुष ने उस कूप मे से सुवर्ण-मुद्राओ की उस गठरी को निकाल कर उसमे से मुझे केवल दो मुद्राएँ दी और शेष अट्ठानवे मुद्राएँ स्वय उसने ली। इस पर मैं उससे झगडने लगा। तब वहाँ के लोगो ने मेरी बात की आलोचना तथा निन्दा करते हुए कहा कि महाराज यशस्करदेव के राज्य मे समस्त व्यवहार मनुष्य के वचन पर चलते हैं। सरलता के कारण इस औपचारिक वचन के कहने से कपट द्वारा मेरा द्रव्य हरण कर लिया गया है, इसलिए ऐसे अन्याययुक्त व्यवहार के प्रचार करने वाले आपके द्वार पर ही मैं अपने प्राणो को त्याग दूँगा।"

उस ब्राह्मण की दु खद कथा को सुनकर राजा ने उससे कूप से सुवर्ण-मुद्राओ को निकालने वाले उस साहसिक का नाम और स्थान पूछा। बड़ी नम्रता के साथ उत्तर देते हुए उस दीन ब्राह्मण ने कहा, "महाराज ! मैं उसे उसकी आकृति से पहिचान सकता हूँ।" उस ब्राह्मण के इस उत्तर को सुनकर राजा ने उससे कहा "कल प्रात.काल मैं इसका निर्णय करूँगा।" ऐसा कहकर उसे बडी कठिनता के साथ समझाया और फिर उसको अपने साथ भोजन भी कराया। दूसरे दिन सवेरा होते ही राजा ने दूत भेजा। वह लवणोत्स ग्राम मे जाकर वहाँ के समस्त पुरुषो को बुला लाया। जब वे सब राजा के सामने उपस्थित किये गये। तब उस ब्राह्मण ने खोजकर उन साहसिक पुरुष को राजा के सामने लाकर खडा कर दिया। राजा के द्वारा

पूछे जाने पर उस साहसिक पुरुष ने भी ब्राह्मण के कथनानुसार ही समस्त वृत्तान्त कहा और "इसके वचनो के अनुसार ही मैंने इसके साथ ऐसा वर्ताव किया है" ऐसा भी कहा।

सत्यवाणी की परतन्त्रता तथा वस्तुस्थिति के रहस्य को न समझते हुए समस्त सभासद सन्देह-रूपी दोला से व्याकुलमति होकर लज्जा से मस्तक को झुकाने लगे और अन्य किसी ओर भी दृष्टिपात न करके केवल पृथ्वी की ओर देखने लगे। तब राजा ने धर्मासन पर बैठ कर निर्णय किया कि अट्ठानवे सुवर्ण मुद्राएँ ब्राह्मण को दी जावें और दो सुवर्ण मुद्राएँ साहसिक को दी जावें तथा इस विषय मे शकित होकर पूछते हुए लोगो के सन्देह को दूर करने के लिए राजा ने कहा, "उत्कट अधर्म का दमन करने के लिए दौडते हुए महामहिमशाली धर्म की गति गम्भीर विचार के द्वारा निश्चित की जाती है। जिस प्रकार सूर्य सायकाल मे अग्नि तथा जलमय चन्द्र मे विभागशः अपना तेज सक्रान्त कर प्रज्वलित प्रदीप एव चन्द्रिका द्वारा उदयोन्मुख गाढ अन्धकार को नष्ट करता है, उसी प्रकार जिसका कोई भी दूसरा कार्य नही है, ऐसा अनन्य कर्मा धर्म नित्य अधर्म का नाश करता है। जलाये जाने वाले काष्ठ मे जिस प्रकार अग्नि गुप्त रूप से छिपा रहता है, उसी प्रकार धर्म भी अधर्म के साथ सर्वदा रहकर उसे सरलता से ही नष्ट कर देता है। इस ब्राह्मण ने 'जो आप देते हो, वह दें' इस वचन को त्याग कर उसके स्थान पर 'आपको जो उचित मालूम हो, वही दे दीजिए' ऐसा कहा। इस लोभी साहसिक को अट्ठानवे सुवर्ण-मुद्राएँ अच्छी लगती थी; उतनी इस बेचारे ब्राह्मण को न देकर जो दो सुवर्ण-मुद्राएँ इसे रुचिकर न थी, वही उसने ब्राह्मण को दी।

इस प्रकार के अनेक प्रसगो मे धर्म और अधर्म के सूक्ष्म भेद को परम सूक्ष्म दृष्टि से समझ कर पता लगाते हुए उस राजा यशस्करदेव ने काश्मीर देश मे फिर से सत्ययुग का उदय कर दिया था। इसी प्रकार लोगो को विनय का अर्थात् न्याय-मार्ग का उपदेश देता हुआ वह राजा रोगियो को पथ्य से रहने का उपदेश देकर स्वय कुपथ्य से रहने वाले वैद्य के समान अन्याय-मार्ग का अनुसरण करने लगा। फलतः वह हास्य का पात्र बनने लगा। श्रोत्रिय ब्राह्मण के समान मृत्तिका तथा जल से पवित्रता एव स्वच्छता को धारण करते हुए भी उस राजा ने डोम लोगो के उच्छिष्ट भक्षण करने वाले अपने सेवको को अपने समीप से नही हटाया। उसने एक नगराधिकारी के स्थान पर चार अधिकारियो को नियुक्त कर उनके द्वारा धन-संचय करना आरम्भ कर दिया। वे चारो नगराधिकारी द्रव्य-सग्रह करने मे एक से एक बढने का प्रयत्न करते थे।

उस राजा ने अपनी तलवार श्रीरणेश्वर के पीठ के सामने अर्पण कर दी थी और वह नित्य अपने वचन को पूरा करता था, इसलिए पदाति लोगो का उसके सम्मुख मरण-सा हो गया था। वह अपने ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु से इतना प्रसन्न हुआ कि जिस पर से विचारशील मनुष्यो के हृदयो मे यही भावना हो गई कि इसी राजा ने विष देकर उसे मरवा दिया है।

एक वेलावित्त के साथ राज-पत्नियो का प्रेम हो गया था परन्तु उस बात की ओर उपेक्षा दिखाते हुए उस राजा ने उसे वेलावित्त को मन्त्री के पद पर नियुक्त किया था। उसी प्रकार उसने प्रेम के वशीभूत होकर लल्ला नामक वेश्या को अन्त पुर की रानियो मे प्रधान बना दिया था और स्वयं पूर्ण रूप से उसके अधीन हो गया था। सुवृत्तत्व अर्थात् सच्चरित्रता के लिए स्त्रियो के हृदय में स्थान नहीं

होता, इसीलिए मानो विधाता ने उनके सुवृत्त अर्थात् गोल, वर्तुलाकार स्तनो को हृदय से बाहर रखा है। उत्तम तथा अधम पुरुषो पर समान रूप से अनुरक्त होनेवाली और ऊपर से ही पवित्र नारियो की स्वाभाविक वृत्ति को जानकर ही विधाता ने उन्हे अगना बनाया है क्योकि वह ललितलोचना लल्ला राजा की लालिता (प्रियतमा) होकर भी रात मे पहरा देने वाले एक तरुण चाण्डाल पर आसक्त होकर अनुराग करने लगी।

उस तरुण चाण्डाल मे कोई न कोई ऐसी आकर्षिणी शक्ति अवश्य होनी चाहिए, जिसके प्रभाव से राज-पत्नी होकर भी वह लल्ला उससे स्नेह करने के लिए विवश हो गई थी। हो सकता है कि वह लल्ला ही चाण्डाल-वश मे उत्पन्न हुई होगी अथवा वह तरुण चाण्डाल कुछ वशीकरण जानता रहा होगा अन्यथा इस प्रकार का असम्भाव्य अर्थात् कदापि न हो सकने योग्य समागम कैसे हो सकता था ? किस प्रकार वह चाण्डाल तरुण उसमे मिल सका, इस वृत्तान्त का रहस्य कही भी प्रकट न हो सका।

उन दोनो पापियो का पारस्परिक प्रेम एक दूसरे के प्रति कटाक्ष-पात करने के व्यापार से केवल हाडी नामक अधिकारी को दृष्टिगोचर हो गया था। राजा ने गुप्तचरो के द्वारा उस वृत्तान्त का यथार्थ रूप से पता लगा लिया था और अपने उस पाप का प्रायश्चित्त करते-करते वह दुर्बल हो गया तथा उसने कृष्णाजिन अर्थात् कृष्ण मृगचर्म धारण कर लिया। उसे लल्ला पर अत्यधिक क्रोध आने पर भी प्रेमाध होने के कारण उसका वध नहीं किया, इसीलिए पुरोभागी अर्थात् जो लोग केवल दोष ही देखा करते हैं ऐसे लोगो की निन्दा का पात्र बन गया।

जिस प्रकार कुष्ठ रोग वाले पुरुष के सम्पर्क से कुष्ठ रोग लग जाता हैं उसी प्रकार उस राजा यशस्कर को डोमो का उच्छिष्ट भक्षण करने वाले सेवको के ससर्ग से यह ससर्गज दोष लगा था। "मेरे सदृश अति साधारण मनुष्य को पूर्वजन्म के प्रबल पुण्य के प्रभाव से ही यह साम्राज्य प्राप्त हुआ है" इस प्रकार सोचते हुए उस राजा ने आगामी जन्म मे भी साम्राज्य प्राप्त होने की अभिलाषा से बडी युक्ति के साथ किसी भी प्रकार के विघ्न के बिना समस्त राज्य की लक्ष्मी का दान काश्मीर देश के ब्राह्मणो को दे दिया। उस दानवीर राजा ने अपनी पैतृक भूमि मे आर्यदेशीय विद्यार्थियो के लिए एक मठ तैयार कराया और वहाँ के मठाधिपति को छत्र, चामर आदि राजचिह्न दे दिये। केवल सिक्के बनाने का अधिकार अर्थात् टक और अन्त पुर नही दिया। उसी प्रकार वितस्ता नदी के तट पर अनेक उपकरण सहित पचपन अग्रहार उसने ब्राह्मणो को दिये।

उसके बाद उदर-रोग से पीडित हुए उस राजा ने अपने पुत्र सग्रामदेव को स्वय से उत्पन्न न हुआ समझकर सामन्त, सचिव तथा एकाग की सम्मति से अपने प्रपितृव्य अर्थात् चचेरे बाबा रामदेव के पुत्र वर्णट का राज्याभिषेक कर दिया। तब सरलतापूर्वक राज्यच्युत करने के योग्य शिशु को राज्याभिषेक न करने से राज्य को अपहरण करने की इच्छा रखने वाले सब निराश हो गये। पर्वगुप्त की कुटिलतापूर्वक प्रवृत्ति के उदय का वह समय उस दिन निष्फल सा हो गया। राज-मन्दिर मे रहकर भी वर्णट अपने को राज्य देने वाले यशस्कर की आरोग्य-वार्ता जानने के लिए भी न गया। उसके इस व्यवहार से सन्तप्त हुए राजा के मन्त्रियो ने आश्वासन देकर सग्रामदेव को फिर से राज्य देने के लिए आग्रह किया। राजा की आज्ञा से वर्णट को आठ स्तम्भ के मण्डप में कैद कर उसके द्वार बन्द कर दिये गये थे और दूसरे दिन वह वहाँ से निर्वासित कर दिया गया।

उसके विचारशील सेवकों को भय से अथवा जागरण से अतिसार हो गया था, इसीलिए वह मण्डप उनके द्वारा गन्दा कर दिया गया था। केवल एक दिन के लिए राजा बनने वाले उस वर्णट के सेवक देवशर्मा नामक राजपूत ने लज्जित होकर अपनी तलवार विजयेश्वर के मन्दिर मे अर्पण कर दी। उसके बाद सग्रामदेव को राज्याभिषेक कर उदर-शूल की अत्यधिक व्यथा से पीडित यशस्कर ने मरने के लिए राजभवन को छोड दिया और वहां से अपने मठ मे चला गया।

उसके कतिपय सेवको ने उसके सम्मुख कृतज्ञता प्रकट करने के लिए केश तथा दाढ़ी-मूछ का मुण्डन करा डाला और उष्णीय अर्थात् पगड़ी को भी त्याग दिया। इसके बाद कषाय वस्त्र धारण करने के लिए उद्वेग तथा शस्त्र-त्याग की प्रतिज्ञाएँ भी की थी, परन्तु राजा यशस्कर देव की मृत्यु का पूर्ण रूप से निश्चय हो जाने पर उसके जीवित रहते ही अपनी-अपनी प्रतिज्ञाओं को त्याग दिया था।

उस मरणासन्न राजा ने राजभवन से निकलते समय दो हजार पांच सौ सुवर्ण-मुद्राएँ वस्त्र मे बाँधकर अपने साथ ले ली थी। उन समस्त मुद्राओ को पर्वगुप्त आदि उसके पाँच मन्त्रियो ने उसके जीवित रहने पर ही परस्पर समान भागो मे बाँट लिया था। व्याधिग्रस्त वह यशस्कर उस मठ के आँगन मे एक अन्धकारपूर्ण कुटी मे मृत्यु-शय्या पर तडप रहा था। वह भली भाँति सज्ञान अवस्था में था और अपने द्रोहपरायण सेवको के कुकृत्यो को अपने नेत्रो से देख रहा था। इस प्रकार दो-तीन दिन बीतने पर भी उसके प्राण शरीर से न निकले। तब साम्राज्य को अपहरण करने की शीघ्रता से उत्सुक उसके बान्धव, मित्र तथा सेवक आदि ने विष देकर उसे मार डाला। उस समय उसके अन्तःपुर की स्त्रियो में से अकेली पतिव्रता त्रैलोक्यदेवी ही सूर्य का अनुसरण करने वाली सूर्य की प्रभा के समान उसके साथ सती हुई।

वह राजा यशस्कर अपनी प्रजा से वर्णाश्रम-धर्म का पालन कराने के लिए सर्वदा प्रयत्न-शील रहा करता था, इसलिए उसने चक्रमेलक-निवासी चक्रभानु नामक तपस्वी ब्राह्मण को किसी भयकर पातक के उपलक्ष मे धर्मशास्त्र की मर्यादा के अनुसार दण्डित करने के लिए उसके मस्तक पर कुत्ते के पजे के चिह्न से अकित कराया था। इस घटना से क्रुद्ध हुए चक्रभानु के मातुल एव राजा के सन्धिविग्रहिक मन्त्री योगी वीरनाथ ने अभिचार-क्रिया द्वारा उसका बदला चुकाया। इस प्रकार प्राचीन महर्षियो के प्रभाव से अपने महत्व को प्रसिद्ध करने वाले गुरुओ के द्वारा श्रद्धा की अधिकता के कारण कहा जाता है और ऐसा भी कहा जाता है कि वह इस अभिचार-क्रिया के प्रभाव से सात दिनो मे ही मर गया था, किन्तु ये सब किम्वदन्तियाँ दीर्घ कालिक व्याधि से मरने वाले उसके विषय मे किस प्रकार युक्तियुक्त हो सकती है? यदि उसकी बीमारी के समय मे ही यह विशेष घटना हुई थी, ऐसा मान लिया जाय, तो फिर वर्णट आदि का अभिशाप भी उसका कारण बन सकता है। वह राजा इस प्रकार नौ वर्ष राज्य कर लौकिक वर्ष चार हजार चौबीस की भाद्रपद कृष्ण तृतीया को स्वर्गवासी हुआ।

उसके बाद शिशु सग्रामदेव अपनी पितामही (आजी या दादी) के सरक्षण मे आ गया। पर्वगुप्त को उचित अवसर मिल गया। शिशु सग्रामदेव की सरक्षिका होने के कारण उसने उसकी पितामही को ही राज्य-सिंहासन पर बैठा दिया और फिर भूमट आदि पाँच सचिवो के साथ वह प्रधान मन्त्री बन गया। उस समय कोई भी उसकी धूर्तता को नही समझ सका था।

२. राजा पर्वगुप्त तथा क्षेमगुप्त की कथा

ज्योंही पर्वगुप्त प्रधानमन्त्री बन गया त्योंही उसकी शक्ति भी बढ़ने लगी। फिर धीरे-धीरे उस शक्तिशाली प्रधानमन्त्री पर्वगुप्त ने शिशुराजा संग्रामदेव की पितामही को और उसके साथ ही साथ पाँचो मन्त्रियो को भी यमलोक भेज दिया। इसके बाद उसने अकेले ही सम्पूर्ण राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसने राजा तथा मन्त्री दोनो के ही अधिकार-चिह्न धारण कर लिये थे, इसीलिए उसे देखकर लोगो के हृदय मे राजा तथा राजानक अर्थात् मन्त्री-विषयक सदेह उत्पन्न होता था। खानपान के पदार्थ मँगवाकर स्वय उस शिशु राजा संग्रामदेव की सेवा करने वाला वह धूर्त पर्वगुप्त सरल स्वभाव के लोगो को द्रोहरहित-सा प्रतीत होता था। राजा यशस्करदेव ने जिन्हें द्रोहभीरु समझकर अपने पुत्र को सौंप दिया था, वे ही उस शिशु राजा का उच्छेद करने के कार्य मे प्रवृत्त हो गये। वह पर्वगुप्त ऊँट के बालो के समान पिंगल तथा तृण के समान विस्तृत अपनी दाढी पर राजा के समान केशर का लेपन करता था। वह एकाग समूह के भय से उस शिशुराजा सग्रामदेव को राज्य से च्युत करने मे असमर्थ था, इसलिए उसकी हत्या के लिए उसने उस शिशुराजा पर अभिचार कराया। "यह राज्य चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को उचित रति से तुझे और तेरी सन्तान को मिलेगा और यदि इसके विरुद्ध खटपट की गई तो तेरा तथा तेरे वश का नाश हो जावेगा" इस प्रकार रात मे भूत की वाणी को सुनकर अभिचार-क्रिया के व्यर्थत्व की संभावना से वह अधिक सशक हो गया और अपने विरोधी एकागो के भय से तथा उसी विषय की चिन्ता से भ्रान्तचित्त होकर रात-दिन तड़पने लगा।

अन्त मे उसने एक दिन आकस्मिक हिम-पतन से अर्थात् बर्फ के गिरने से जन-सचार-शून्यरात्रि के समय मे अपने लोगो को एकत्रित कर राजभवन को चारो ओर से घेर लिया। वहाँ पर युद्ध मे विरोध करते हुए अपने प्रतिस्पर्धी राजभक्त मन्त्री रामवर्धन को उसके पुत्र बुद्ध के सहित मार डाला। इसके बाद उस टेढ़े चरण वाले संग्रामदेव को उसके तथा यशस्कर के बेलावित्त ने उपहार के बहाने से पुष्प-माला के रूप मे लाई गई रस्सी को गले मे डालकर राजसिंहासन से नीचे गिरा दिया और दूसरे मंडप मे ले जाकर वहाँ उसे भी मार डाला तथा उसके मृत शरीर को गले मे शिला बाँधकर रात मे वितस्ता नदी मे डुबा दिया। इस भयानक घटना के बाद वह पापी पर्वगुप्त लौकिक वर्ष चार हजार चौबीस के फाल्गुण मास के कृष्ण पक्ष मे दशमी के दिन कवच तथा खड्ग धारण कर सिंहासन पर बैठ गया। उस समय विशोका के पार मे रहने वाले अभिनवगुप्त नामक दिविर अर्थात् कायस्थ के पुत्र सग्रामगुप्त से उत्पन्न हुआ वह पर्वगुप्त काश्मीर का राजा हुआ। कतिपय सचिवो ने उसका विरोध करने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु उन समस्त लोगो ने उसके भय से अपनी प्रतिज्ञा को त्याग कर दूसरे ही दिन प्रातःकाल होने पर उसे प्रणाम किया। माण्डलिक नरेश, एकांग सामन्त, कायस्थ तथा तत्री, ये सभी उससे डर गये थे, फिर भी उसने उनका द्रोह किया। उस दिन राजसभा के मण्डप मे सुय्या के वशज मदनादित्य नामक एकाग के हाथ से प्रमादवश नगाड़ा फूट गया था। इससे रुष्ट होकर उस राजा ने उसे नग्न कर उसकी अत्यत असभ्यतापूर्ण अप्रतिष्ठा की। उसके इस दुर्व्यवहार से दु खित होकर उस मदनादित्य ने केश और दाढी-मूछ मुँडवाकर सन्यास ले लिया। उस समय उसकी स्त्री तथा बालक सभी थे। उसके वशज आज भी त्रिपुरेश्वर मे रहते हैं। सर्वथा द्रव्योपार्जन करते हुए उस पर्वगुप्त ने प्रजा को रोग के समान कष्ट पहुँचाने वाले अधिकारियो को फिर

से प्रोत्साहित किया। इस प्रकार पाप से उपार्जन किये हुए द्रव्य से उसने भी स्कन्द-भवन विहार के समीप मे ही पर्वगुप्तेश्वर का मन्दिर निर्माण कराया।

राजा यशस्करदेव की नृपसुन्दरी नामक रानी श्रीगौरी के समान पवित्र चरित्र वाली तथा परम बुद्धिमती थी। उसने अपने उत्तम चरित्र मे लोक-निन्दा को अवसर भी न दिया था। दुष्ट पर्वगुप्त के हृदय मे उसके विषय मे चिरकाल से प्रेम का अकुर उत्पन्न हो चुका था और वह उसको अपने वश मे लाने के लिमे भिन्न-भिन्न उपायो द्वारा प्रयत्न करता था, परन्तु वह सती उसे अनेक प्रकार की युक्तियो से वचित रखा करती थी। अन्त मे उस सुन्दर भौंह वाली नृपसुन्दरी ने उस कामातुर पर्वगुप्त से कहा, "इस यशस्कर स्वामी के मन्दिर का निर्माण-कार्य मेरे पति महाराजा यशस्करदेव के द्वारा प्रारम्भ किया गया था, परन्तु यह पूर्ण रूप से बनकर तैयार भी न हो पाया कि वे स्वर्गलोक को सिधार गये। इसलिए इस मन्दिर के बनकर तैयार होते ही मैं आपकी अभिलाषा को पूर्ण करूँगी।"

रानी नृपसुन्दरी की इन बातो को सुन कर वह पर्वगुप्त विशेष रूप से प्रसन्न हुआ और उसके कथनानुसार उसने बडे गर्व के साथ उस मन्दिर को थोड़े ही दिनो मे सम्पूर्ण रूप से बनवा दिया। तब उस परम साध्वी सती-शिरोमणि ने उस मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय घृताहुति से जाज्वल्यमान् होमाग्नि मे पूर्णाहुति के साथ ही अपने शरीर को भी होम दिया। उसके इस अलौकिक कार्य से उस पर लोगो ने विपुल पुष्पो की वृष्टि की और उस नृपसुन्दरी को पाने की अभिलाशा करने वाले उस नीच पर्वगुप्त पर निन्दा के शब्दो की बौछार होने लगी। उसके बाद सुदीर्घ साहसमय आरभो की चिन्ता मे सूख जाने वाले पर्वगुप्त को भयानक तृष्णा रोग हो गया। मूढ लोग वधि और व्याधियो के शमन करने के उपायो की निष्फलता से शरीर की स्थिति को नश्वर समझ कर भी द्रोह के द्वारा उपार्जित अस्थिर लक्ष्मी के लोभ से मोहित हो कर चिरस्थायिता के प्रयत्न को नही छोडते हैं। ऐसी कष्टमयी स्थिति मे फँस कर भी वह शकाशील पर्वगुप्त कतिपय प्राक्तन शुभ कर्मों के प्रभाव से सुरेश्वरी क्षेत्र मे मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस प्रकार लौकिक वर्ष चार हजार छब्बीस मे आषाढ शुक्ला त्रयोदशी को वह राजा पर्वगुप्त स्वामी-द्रोह-से प्राप्त किये गये राज्य से वियुक्त हुआ। इसी जन्म मे यदि उत्कट पाप का फल तात्कालिक भयकर रोग तथा मृत्यु के रूप मे परिणत होकर परलोक मे होने वाले दुसह कष्टो का अनुमान न कराता, तो कुकर्म के द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करने का कौन प्रयत्न न करता।

उस पापी पर्वगुप्त के बाद मदिरा के अत्यधिक सेवन से तथा सम्पत्ति और यौवन के ज्वर से उन्मत उसका पुत्र क्षेमगुप्त काश्मीर देश का राजा हुआ। वह क्षेमगुप्त स्वभाव से ही दुष्टाचरण करने वाला था, इसके साथ ही साथ दुर्जनो के साथ रहने के कारण भयंकर मेघो से अधिक अधकारमय कृष्णपक्ष की रात्रि के समय के समान वह विशेष रूप भय को उत्पन्न करने वाला हो गया था। उस राजा क्षेमगुप्त की सेवा मे उसी के समान भेष तथा अलकारो को धारण किये हुए फल्गुण आदि सौ दुराचारी प्रेमी मित्र सर्वदा उपस्थित रहते थे। वह राजा धूत, आसव तथा अगनाओ का निरन्तर सेवन करने पर भी और धूर्तो के द्वारा लूटा जाने पर भी लक्ष्मी-बहिष्कृत अर्थात् धनहीन नही हुआ। कामी, मद्य-प्रणयवान् तथा द्यूतकार एव कोष के धन को हरण करने वाले मधुपो (मदिरा का पान करने वाले चाटुकारो) से जो राजा सेवन किया जाता है, उसे रागी (लालिमायुक्त अथवा ताम्रवर्ण), मधु प्रणवान् (पुष्परसपूर्ण) एवं विहिताक्षसक्ति (बीजयुक्त) तथा

कोष-स्थित सार को हरण करने वाले भ्रमरो से सेवित कमल का आश्रय करने वाली श्री यदि नही त्यागती है, तो इसमे कौन-सा आश्चर्य है।

जिष्णु के पुत्र वामन तथा अन्य चाटुकारो ने उसके हृदय मे प्रविष्ट हो कर उसके मन में पिशाच के समान अपवित्रता की रुचि उत्पन्न कर दी थी। वह राजा परोपहास कुशल तथा पर-नारी रतिप्रिय एव पराधीन हृदय होकर अनर्थ करने मे परायण हो गया था। वह अपने समीप बैठे हुए वृद्धो के दाढी पर थूकता था, तथा उनके कानो को गालियां सुना-सुना कर भर देता था और उनके सिरो पर चपत भी लगाता था। स्त्रियां उसके साथ कमर से कमर मिला कर, तथा शिकारी लोग उसके साथ जंगलो मे भटक कर और चाटुकार लोग उसके साथ अश्लीलतायुक्त परिहास करके उसके प्रेम का सम्पादन करते थे। पुंश्चली, जाल्म, वैवेय तथा बालको को दूषित करने वाले दुराचारी लोगो से परिपूर्ण उसकी राजसभा मननशील विद्वान पुरुषो के प्रवेश करने के योग्य नहीं थी। परम धूर्त जिष्णु के पुत्रो द्वारा चापलूसी के चंगुल मे फँसा हुआ वह राजा क्षेमगुप्त काठ की पुतली के समान नचाया जाता था।

उन्होने उसको आप "ककण-वर्षी है" ऐसा कह कर कई बार अपने हाथो पर उसकी कृपा से ककणो की वृष्टि करवा ली थी। निर्दोष सभ्य पुरुषो के झूठे दोष बतला कर, नवीन-नवीन वस्तुओ का प्रदर्शन करा कर तथा सम्मान करने योग्य सज्जनो के मस्तक पर चपत लगा कर उन्होने उस राजा की कृपा को प्राप्त किया। वे लोग उस राजा को अपने घर ले जाते थे और वहाँ द्यूत-प्रसंग मे अपनी स्त्रियो के अनावृत अर्थात् खुले हुए स्तन एव कटिप्रदेश के सौन्दर्य से उसकी दृष्टि को आकृष्ट कर उसके पास का सब धन लूट लेते थे। वे लोग उस राजा को सभोग के निरतर सुख का सौभाग्य प्रदान करने मे परस्पर स्पर्धा करते हुए अपनी स्त्रियां राजा को उप-भोग के लिए अर्पण कर कहते थे कि आप इनका उपभोग कर इनकी विशेषता को बतलाइए और सभोग के अन्त मे पूछते थे कि किसने आप के हृदय को अधिक आनन्द प्रदान किया। इस प्रकार उसे प्रसन्न कर उससे पर्याप्त धन प्राप्त करते थे। उसके प्रिय सेवको मे से हरि तथा धूर्जटि नामक दो सेवक अपनी माता और बहनो की सच्चरित्रता को सुरक्षित रखने के कारण उस राजा को सभोग की सामग्री अर्पण करने मे मूर्ख तथा भिखारी समझे जाते थे। मूर्ख चाटुकार लोग अपने शरीर को उपहास का पात्र बना कर स्वाभिमान से हाथ धो बैठते हैं और अपनी ललनाओ को दूषित कराकर अपने वश को पवित्रता से अथवा निष्कलकता से शून्य कर देते हैं तथा दीर्घ-कालिक सेवा मे अधिक आसक्त होने के कारण अपने शारीरिक सुख का नाश कर देते है। ऐसी दशा में यह विचारने योग्य विषय है कि जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए श्रम किया जाता है, उसे ही खोकर वे कौन-सी विशेष वस्तु प्राप्त कर लेते हैं?

भट्ट फल्गुण पहले यशस्करदेव जैसे राजा का मंत्री होकर भी बाद मे राजा क्षेमगुप्त का अनुचर बन गया था। इस सुखोपभोग के अभ्यास की वासना को धिक्कार है। उसने फल्गुण स्वामी नामक विष्णु तथा अन्य देवताओ के मन्दिरो की प्रतिष्ठा की थी। जब वह राजसभा से चला जाता तब राजा क्षेमगुप्त उसकी कही हुई उपदेशपूर्ण बातो का उपहास किया करता था। रक्क नामक वृद्ध कम्पनेश अपनी ओर से राजा की अप्रसन्नता तथा अवकृपा को दूर करने के लिए आग्रहपूर्वक राजा से अपने सिर पर चपेत लगवाकर उसके समस्त दुर्व्यवहारो मे सम्मिलित हो गया था। उसने सग्राम डामर की हत्या करने के लिए घातक भेजे थे। उनके भय से वह

डामर श्रीजयेन्द्र विहार मे जाकर छिप गया था। उसके इस प्रकार छिपने का समाचार पाते ही उस निर्दय राजा ने आग लगवा कर उस विहार को जला दिया था। जब वह विहार जलकर पूर्ण रूप से राख का ढेर बन गया तब उसने उसमे से काँसे की बनी हुई बुद्ध की प्रतिमा को निकालकर प्राचीन देव-मन्दिर के पाषाण भी निकलवा लिये और उन पाषाणो से नगर के बाजार मे राजमार्ग पर देव-मन्दिर की प्रतिष्ठा द्वारा अपने यश को चिरस्थायी बनाने की अभिलाषा से क्षेमगौरीश्वर नामक शकर का मन्दिर निर्माण कराया। एक मनुष्य इस संसार को छोड कर जब चला जाता है तब उसका धन लेकर दूसरा मनुष्य अत्यत आनदित होता है, किन्तु वह इसे नही जान पाता कि उसने जिस धन पर अपना अधिकार स्थापित किया है, वह उसके बाद दूसरे के अधिकार मे जाने वाला है। ऐसी दशा मे ज्ञानशून्य मनुष्य को कुछ न कहकर केवल मोहरूपी अतिशय भयकर अधकारमयी वासना को ही धिक्कारना चाहिए।

उस त्यागी क्षेमगुप्त ने जले हुए विहार के छत्तीस गाँव लेकर खशराज सिहराज को दे दिये। उस इन्द्र के समान पराक्रमी एव लोहर आदि दुर्गों के शासक सिहराज ने अपनी कन्या दिद्दाका विवाह राजा क्षेमगुप्त के साथ कर दिया। उस शाही की नातिन दिद्दा पर राजा क्षेम-गुप्त इतना अनुरक्त हो गया था कि उससे लोगो मे उसकी दिद्दाक्षेम इस प्रकार की लज्जाजनक ख्याति हो गई थी। दिद्दा के मातामह (नाना) भीमशाही ने श्रीनगर मे एक भव्य, उन्नत एव विशाल मन्दिर बनवाया और उसमे भीमकेशव की प्रतिष्ठा की। द्वारपति फल्गुण ने भी अपनी कन्या चन्द्रलेखा का विवाह राजा क्षेमगुप्त के साथ कर दिया था, इसलिए उस चन्द्रलेखा से दिद्दा रानी ईर्ष्या करती थी। उस राजा ने उत्तम गुरु से लक्ष्य-वेध की शिक्षा ग्रहण की थी और उसने भी उस विद्या मे प्रवीणता प्राप्त करने के लिए अनवरत श्रम किया था, किन्तु उसने जिस कार्य मे उसका उपयोग किया, उससे उसे घोर निन्दा का पात्र बनना पडा। उसने अपने अमोघ अर्थात् अचूक लक्ष्य-वेध के कौशल को सग्राम के समय काम मे न लाकर जगलो मे जा-जाकर शृगालो को मारने के काम मे ही लगा दिया और इसी मे ही वह अधिक प्रसन्न होने लगा। कुत्तो तथा जालो को अपने साथ लिये हुए, डोम, पारधी आदि नीच जाति के लोगो से घिरे हुए तथा सर्वदा उन्ही के साथ भटकते हुए उस राजा को लोग देखा करते थे। उसका सम्पूर्ण समय दामोदरारण्य, लल्यान तथा शिमिका आदि भयकर अरण्यो मे शृगालो के लिए भटकते बीतता था।

वह राजा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन शिकार कर रहा था। उस समय चिल्लाती हुई शृगाली के मुख मे से निकली हुई अग्नि की ज्वाला को उसने देखा। उसको देखते ही वह भया-नक रूप से भयभीत हो गया। परिणाम यह हुआ कि वह राजा मृत्यु के कारणस्वरूप लूता रोग (चेचक माता) के ज्वर से पीडित हो गया। तब वह मरने के लिए वराह-क्षेत्र मे गया। वहाँ उसने हुष्कपुर के समीप श्रीकठ तथा हेम नामक दो मठ स्थापित किये थे। क्षेमगुप्त के शरीर पर मसूर की दाल के समान लूता रोग के विस्फोटक निकले थे। उस भयानक रोग से वह लौकिक वर्ष चार हजार चौतीस की पौष शुक्ला नवमी के दिन मृत्यु को प्राप्त हो गया।

३. बालक राजा अभिमन्यु की कथा

क्षेमगुप्त के बाद खड्ग के समान तीक्ष्ण स्वाभव वाली दिद्दारानी के द्वारा पाला गया उसका अल्पवयस्क पुत्र अभिमन्यु काश्मीर देश का राजा हुआ। उसके राजा होते ही उस दिद्दा-रानी के शयन-मन्दिर मे सधि-विग्रह, शुद्धान्त तथा मुख्य कर्मादि अधिकारस्थ मत्री नि शक होकर

जाने लगे थे। उस अभिमन्यु राजा के शासन-समय में तुंगेश्वर के समीप के बाजार से अकस्मात् भयंकर अग्नि-काण्ड प्रारम्भ हुआ। वह भयानक आग वहाँ से लेकर वर्धन स्वामी के समीप के भिक्षुकी पारका नामक स्थान तक पहुँच गई। उससे वेताल-सूत्रपात के अनुसार बने हुए समस्त बड़े-बड़े घर जल कर राख हो गये। उस आग ने डोम तथा चाण्डालों के सम्पर्क से दूषित राजाओं के द्वारा भ्रष्ट किये गये समस्त बड़े-बड़े घरों को जलाकर उस नगर तथा मण्डल को शुद्ध-सा कर दिया था।

स्त्री-स्वभाव से मूढ़ बुद्धिवाली राजा की संरक्षिका वह राजमाता दिद्दा लोलकर्णी अर्थात् कच्चे कान वाली (सुनी हुई प्रत्येक बातों पर विश्वास करने वाली) होने के कारण सत्य और असत्य का विचार नहीं कर सकती थी। पति के जीवित रहते हुए ही अपनी सपत्नी चन्द्रलेखा के साथ ही राजा को अपनी कन्या देने वाले चन्द्रलेखा के पिता प्रधानमंत्री फल्गुण से भी द्वेष रखती थी। पति की मृत्यु के बाद अपनी अन्य सपत्नियों को उसके साथ सती होने देख कर वह भी सती होने का दंभ तुरन्त करने लगी थी। उसके उस दंभ को देखकर फल्गुण ने उसका अनुमोदन किया, परन्तु चिता के समीप पहुँचते ही उसका धैर्य नष्ट हो गया और वह डरने तथा पछताने लगी। उस समय परम दयालु नरवाहन मंत्री ने अत्यन्त आग्रह से उसे सती होने से रोका। इसलिए स्वभावतः कुटिल हृदय वाले रक्क ने पहिले से ही रुष्ट हुई उस दिद्दारानी के हृदय में फल्गुण द्वारा राज्य-हरण करने की शंका उत्पन्न कर दी। फल्गुण भी अपने विषय में विरागसूचक चिह्नों से सम्पूर्ण मंत्रि-मण्डल समेत उस रानी को अपने ऊपर रुष्ट जान कर शंकित हो गया था। वह समस्त अधिकारों का निरीक्षक था। उसके शौर्य, उत्साह, मंत्र आदि गुणों को देखकर दूसरे समस्त मंत्री अपने मन में उससे जला करते अर्थात् वह उन सबों की दृष्टि में तीक्ष्ण कण्टक के समान कष्टदायक प्रतीत होता था।

फल्गुण का पुत्र कर्दमराज क्षेमगुप्त की अस्थियाँ लेकर गंगा में प्रवाहित करने के लिए गया था। उसके लौट कर आने के समय तक प्रतिद्वन्द्वियों के उपद्रव के भय से राजभवन में रहना अनुचित समझ कर उसने पर्णोत्स में रहने का विचार किया और अपने इसी विचार के अनुसार वह अपना उपकरण तथा सेवक-वर्ग एवं बहुत-से सैनिकों को लेकर नगर से निकल पड़ा। नगर से निकल कर चलते-चलते वह काष्ठवाट के समीप पहुँचा और विश्राम करने के लिए वहीं रुक भी गया। इतने में रक्क आदि दुष्टों की प्रेरणा से दिद्दारानी ने प्रार्थना के साथ शिष्टता-सूचक सन्देश के स्थान पर उसे मारने के लिए बहुत-से याष्टीक अर्थात् चोबदार भेजे। इस नवीन अपमान से उस स्वाभिमानी मंत्री के हृदय को अधिक भयानक आघात पहुँचा और वहाँ से मुड़ कर पर्याप्त सैनिकों के साथ वह वराह-क्षेत्र में आया। उस प्रतापी मंत्री को सेनासहित वापस आया सुन कर आक्रमण की शंका से वह दिद्दारानी मंत्रि-मण्डल-समेत काँपने लगी। इधर उस मंत्री ने वराह-क्षेत्र में आकर अपने दिवंगत स्वामी के लिए चिरकाल तक शोक किया और अपना शस्त्र वराह भगवान् के पवित्र चरणों में भक्तिपूर्वक अर्पण कर दिया। उस मंत्री ने शस्त्र-त्याग के द्वारा अपने विषय में राजद्रोह की संभावना के पातक को तथा राजमाता दिद्दारानी के हृदय में निवास करने वाले आक्रमण के भय को क्षालन कर डाला। उचित और अनुचित के विवेक से शून्यहृदय वाले मनुष्य के द्वारा उपयोग में लाया गया शास्त्र अथवा शस्त्र अत्यन्त आपत्तिकारक होता है। वह मनुष्य उपाय समझकर जब उसका उपयोग करने लगता है तब उस पर गुप्त राजद्रोह के अपराध का आरोप लगाया जाता है, इसलिये अपूर्ण रूप से उपयोग में आने वाले शास्त्र

अथवा शस्त्र को आग्रहपूर्वक अपने कार्य में लाना भी विवेकशील मनुष्य के लिए ही उचित हो सकता है।

प्रधानमन्त्री फल्गुण के सेना सहित पर्णोत्स में जाने पर दूसरे मन्त्री पाठशाला से गुरु के के बाहर चले जाने से आनंदित हुए बालकों के समान प्रसन्न हो गये। दिद्दारानी भी योगक्षेम का पूर्ण रूप से विचार करती हुई अपने शासन से कण्टकों को नष्ट करने के लिए दिनरात बड़ी सावधानता के साथ प्रयत्न करने लगी।

राज्य का अपहरण करने की अभिलाषा से पर्वगुप्त ने अपनी दो कन्याओं का विवाह छोज तथा भूभट नामक दो मंत्रियों के साथ किया था और उन दोनों ने भी कोश-पान पूर्वक शपथ ली थी। उनके प्रसिद्ध महिमा एवं पाटल नामक दो पुत्र राजभवन में राजकुमारों के ही समान पाल-पोष कर बढ़ाये गये थे और बाद में भी वे दोनों राजभवन में ही रहते थे। राज्य प्राप्त करने की अभिलाषा से उन दोनों ने हिम्मक आदि उद्दाम अर्थात् उच्छृंखल लोगों से मिलकर विद्रोह करने की गुप्त मंत्रणा की थी। जब दिद्दारानी को यह सब वृत्तान्त किसी न किसी सूत्र से विदित हुआ तब वह विशेष रूप से चिन्तित हुई। अन्त में उस अबला (बल से हीन स्त्री) दिद्दारानी ने उन दोनों सबलों (बलशाली पुरुषों) को राजभवन से निकाल दिया। राजभवन से निकाले जाने पर वे दोनों (महिमा और पाटल) बड़े ही क्रुद्ध हुए। फिर वे अपने घर से इधर-उधर लोगों के घर आया जाया करते थे। पहले तो उन दोनों को राजभवन से ही निकाल कर दिद्दारानी शान्त हो गई थी किन्तु जब उसने पता लगा लिया कि राजभवन से निकाले जाने पर भी वे विद्रोह करने का प्रयत्न कर रहे हैं तब उसने भी प्रकट रूप से उन दोनों के साथ विरोध करना आरम्भ कर दिया। वे भी उसके विरोध का उत्तर विरोध से ही देने लगे। अन्त में यही परिणाम हुआ कि दूसरा कोई उपाय न देखकर दिद्दारानी ने एक बार महिमा को राज्य की सीमा से बाहर करने के लिए याष्टीक अर्थात् चोबदार भेजे। उन्हीं दिनों महिमा अपने श्वसुर शक्तिसेन के यहाँ गया था। इस समाचार को जानकर वे सब चोबदार वहाँ भी पहुँच गये। शक्तिसेन ने सान्त्वनापूर्वक उन्हें वहाँ से जाने के लिए कहा फिर भी वे वहाँ से नहीं हटे। तब शक्तिसेन ने भी प्रकट रूप से अपने जामाता को आश्रय देकर उसका भय दूर किया। इस प्रकार आश्रय पाने पर उसके पास हिम्मक, मुकुल तथा परिहासपुर-निवासी परमन्तक एवं अमृताकर का पुत्र श्रीमान् उदयगुप्त तथा ललितादित्यपुर-निवासी यशोधर आदि भी आ पहुँचे। उन लोगों ने अपनी-अपनी सेना से पृथ्वी को कम्पायमान् करते हुए महिमा का पक्ष ग्रहण किया और दिद्दारानी के विरुद्ध प्रकट रूप से विद्रोह करना आरम्भ किया। इस भयंकर परिस्थिति में अकेले राजभक्त नरवाहन मन्त्री ने अपने बान्धवों के सहित दिद्दारानी के पक्ष को नहीं छोड़ा। अपनी विशाल सेना को लिये हुए तथा आयुधों को चमकाते हुए शत्रुओं के समूह, युद्ध करने के लिए पद्मस्वामी के मन्दिर के समीप पहुँचे। इस घटना से व्याकुल होकर दिद्दारानी ने अपने पुत्र को शूरमठ में भेज दिया और फिर इस उपस्थित संकट को शान्त करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के उपायों को सोचने लगी। उसने शीघ्र ही ललितादित्यपुर में रहने वाले ब्राह्मणों को पर्याप्त सुवर्ण देकर अपने पक्ष में कर लिया और उन्हीं के द्वारा शत्रुओं के संघ में फूट डाल दी। "किसी भी एक के ऊपर आने पर हम सब मिलकर उसके प्रतिकार को तैयार रहेंगे" इस प्रकार महिमा के साथ कोशपान-पूर्वक शपथ करने वाले उन लोगों ने दिद्दारानी के साथ सन्धि कर ली। उस पंगु रानी ने गोष्पद (जितने स्थान को गाय का खुर घेर सकता है और उसमें पानी भर जाता है) को लांघने की

शक्ति का भी किसी को विश्वास न होता था, परन्तु समय पड़ने पर उसने इस शत्रु-संघ-रूपी समुद्र को उल्लंघन करने मे हनुमान के समान विचित्र काम कर दिखाया। अभी तक मनुष्य यही समझ रहा था कि रत्न और महौषधियो के संग्रह से ही सभी प्रकार की आपत्तियो का नाश हो सकता है किन्तु इस घटना से यह भी सिद्ध हो गया कि कभी-कभी धन के त्याग से भी मनुष्य को समस्त आपदाओ से मुक्ति मिल जाती है। अतएव जिस धन को त्याग से मनुष्य को सभी प्रकार की आपदाओ से मुक्ति मिलती है उस धन को भी कोटिशः प्रणाम है। उत्कोच अर्थात् घूस देने की अपेक्षा भी उपकार करना अधिक श्रेष्ठ माना जाता है, इसीलिए उस दिद्दारानी ने यशोधर आदि को कम्पनेशादि पदो पर नियुक्त कर विशेष रूप से सम्मानित किया। इस घटना के बाद थोडे ही दिनो मे उसने अभिचार-कर्म करा कर महिमा को मरवा डाला। इससे उस दिद्दा-रानी का उस मण्डल मे अप्रतिहतपूर्ण शासन हो गया।

किसी समय शाही राजा थक्कन के मद को पूर्ण रूप से चूर्ण करने के लिए कम्पनाधिपति यशोधर अपने वशजो को साथ लेकर गया। वह प्रदेश नदियाँ तथा पर्वतो के कारण अत्यन्त दुर्गम था। फिर भी उस अखण्ड शक्तिशाली कम्पनेश ने उस देश मे प्रबल वेग से प्रवेश कर थक्कन को पकड लिया और शरण मे आये हुए उस शाही राजा से कर लेकर कम्पनेश ने फिर से उसका राज्याभिषेक कर उसकी राज्यश्री-रूपी लतिका को पूर्ववत् हरी-भरी कर दिया। उस अवसर पर रानी के पास बिना किसी रोक-टोक के जाने वाले रक्क आदि खल पुरुषो ने उस मूर्ख रानी के हृदय मे कम्पनाधिपति यशोधर के सम्बन्ध मे भयानक द्वेष उत्पन्न कर दिया। राजा, स्फटिक तथा दुश्चरित्र स्त्री के पास सर्वदा रहने वाले पुरुषो से जो प्राय दूर रहता है, उसका उन सबो के हृदय मे विपरीत राग प्रविष्ट हो जाता है और जो समीप रहते हैं उन्ही का अनुराग उन सबो मे उत्पन्न हो जाता है अर्थात् राजा, स्फटिक और दु शीलवती स्त्री के समीप जैसे सह-चर रहेगे, वैसा ही रंग उन सबो पर चढ़ेगा। मूर्ख लोगो के तथा वारागनाओ के निकट मिथ्या चापलूसी करने वाले चाटुकार लोग जिस प्रकार उनके हृदय मे प्रवेश कर लेते है, उसी प्रकार अपने मन मे दासता की भावना को रखते हुए लोग राजाओ तथा श्रीमानो के निकट मन को लुभाने वाली चापलूसी की बातें सुना कर उनको अपने वश मे कर लेते हैं।

"कम्पनाधिपति यशोधर ने थक्कन से धन लेकर उसकी रक्षा की और राजद्रोह किया" इस प्रकार का सन्देह रक्क ने सहज ही रानी के हृदय मे उत्पन्न कर दिया। इसके बाद विजय-प्राप्ति के परम हर्ष के साथ जब तक कम्पनाधिपति अपने घर पहुँचता है तब तक दिद्दारानी ने उसे देश से निर्वासित करने के लिए अपने याष्टिको को उसके यहाँ भेजा। इस प्रकार के उस रानी के द्वारा किये गये आक्षेप के योग्य व्यवहार से रुष्ट होकर हिम्मक, ऐरमन्तक आदि ने अपने कोशपानपूर्वक शपथ के अनुसार पूर्ववत् विद्रोह करना आरभ कर दिया। उस समय दिद्दा-रानी के पक्ष के भी कुछ लोग उस विद्रोह मे सम्मिलित हो गये थे, किन्तु इतने पर भी नरवाहन आदि राजभक्तो ने रानी के पक्ष को नही छोडा था। इधर रानी ने भी कुपित हुए शुभधर आदि विद्रोहियो को प्रबल वेग से नगर मे प्रवेश करते हुए देखकर अपने पुत्र को भट्टारक मठ मे सुरक्षा के लिए पहुँचा दिया था। उस समय राजभवन के द्वार को बन्द कर उसके भीतर रहती हुई पुत्ररहित दिद्दारानी को अनुकूल अवसर पाकर भी दुर्भाग्य से मोहित किये गये उन मूर्ख विद्रोहियो ने परास्त नही किया। दूसरे दिन उस रानी के पक्ष का समर्थन करने वाले लोग वहाँ आ पहुँचे और उनके बल पर वह रानी कुछ-कुछ निश्चिन्त भी हो गई। जय-भट्टारिका मठ

के पास से शूरमठ तक के प्रदेश मे स्थान-स्थान पर विद्रोहियों के साथ रानी के सैनिकों का घोर संग्राम होने लगा।

उस संग्राम मे रानी के सैनिकों ने घबडाकर राज-मन्दिर का आश्रय ग्रहण किया। उस संकटपूर्ण अवसर पर एकांगों ने सिंहद्वार पर अपना संगठन कर आक्रमण करने वाले विद्रोहियों का तुरन्त सामना किया। उन समस्त एकांगो ने अपने शरीर के मोह को छोड दिया और जीवन तथा मरण को समान समझ कर उन सब घबडाये हुए रानी के सैनिको को धैर्य प्रदान किया। इसके बाद प्रबल पराक्रम के साथ विद्रोहियो की सेना पर आक्रमण किया। उस भयानक आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि शत्रु की सेना को कुछ पीछे हटना पडा। इतने मे ही रण-वाद्यो की तुमुल ध्वनि से शत्रु की सेना मे भयानक रूप से भय का सचार करता हुआ और रानी के सैनिको मे प्रबल उत्साह तथा परम हर्ष को उत्पन्न करता हुआ वीरराज-कुलभट्ट वहाँ आ पहुँचा। उस वीर को परम उल्लास के साथ आता हुआ देखकर शत्रु-पक्ष वाले हताश हो गये और अपने जीवन की रक्षा करने के विचार से वे सब वहाँ से तितर-बितर होकर इधर-उधर भागने लगे। इसीलिए कहा गया है कि शस्त्र-रूपी देवता अविनय को नही सहते। भीम-पराक्रम हिम्मक "लोह-शृंखलाओ को तोड देता है और पत्थरो को भी फोड देता है" इस प्रकार की चर्चा सर्वत्र प्रसिद्ध थी और वह सत्य भी थी। उसी भीम-पराक्रम हिम्मक ने उस सग्राम मे अपनी तलवार से राजकुल भट्ट की कमर पर बडे पराक्रम के साथ प्रहार किया किन्तु उस हिम्मक के दुर्भाग्य से उस राजकुल भट्ट के कवच का चमडा तक नही फटा। इस असभव बात को देखकर विद्रोही सैनिक पूर्ण रूप से हताश होकर उदास हो गये। इसके साथ-ही-साथ अपने अद्भुत पराक्रम पर अभिमान करने वाला वह हिम्मक समर-भूमि मे मारा गया तथा दिद्दारानी के सैनिको ने कम्पनाधिपति यशोधर को तुरन्त बन्दी बना लिया। इतने पर भी ऐरमन्तक कुछ समय तक अकेला ही रानी के सैनिको से युद्ध करता रहा। युद्ध करते-करते सहसा उसकी तलवार टूट गई। तलवार के टूटते ही वह घबडा-सा गया और उस घबडाहट के कारण वह अपने घोडे पर से गिर गया। ज्यो ही वह धरती पर गिरा त्यो ही रानी के सैनिको ने उसे भी जीवितावस्था मे ही बन्दी बना लिया। श्रीमान् राजपुत्र उदयगुप्त भी इस युद्ध मे था, किन्तु राजवंशीय होने के कारण रानी के सैनिको ने उसे नही पकडा और अवसर पाते ही वह भी समर के क्षेत्र को छोडकर किसी अज्ञात प्रदेश मे चला गया। इस प्रकार विजय को पाते ही उस दिद्दारानी ने क्रोध के वशीभूत होकर यशोधर, शुभधर तथा बान्धवो-सहित मुकुल को कारावास का दण्ड दिया और परिहासपुर-निवासी उस ऐरमन्तक के गले मे पत्थर बँधाकर वितस्ता नदी के प्रवाह मे डुबा दिया। उस ऐरमन्तक ने गया-तीर्थ मे काश्मीर-निवासियो द्वारा श्राद्ध के समय दिये जाने वाले शुल्क का उच्छेद कर डाला था, उसके इस दुर्व्यवहार का फल देवी के द्वारा क्रोध से अनुभव कराया गया।

लौकिक वर्ष तीन हजार नौ सौ सतहत्तर मे होनेवाले राजा गोपाल वर्मा से लेकर अभिमन्यु पर्यन्त साठ वर्ष मे सोलह राजा हो गये। उनके प्राण, प्रताप तथा वैभव को हरण करने वाले राजद्रोही सम्पूर्ण मन्त्री तथा उनके वंशज और आप्त तथा सेवक-समुदाय को कुपित हुई दिद्दादेवी ने उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार देवताओ को नित्य कष्ट देनेवाले दुष्ट असुरो को परमशक्तिमयी श्रीदुर्गाजी ने निःशेष कर दिया था। इस प्रकार उन मदोद्धत मन्त्रियों को उखाड़ कर उस पराक्रमशालिनी दिद्दारानी ने रक्क आदि अपने कर्मचारियो को कम्पनेश

आदि के सम्मानपूर्ण पद प्रदान किये। परम बुद्धिमान्, नीति-निपुण और मन्त्रणा आदि कार्य में कुशल और द्रोहविहीन नरवाहन मंत्री ने उस विधवा दिद्दारानी के राज्य को सभी प्रकार के कण्टको से शून्य करके इन्द्र के समान अखण्ड-मण्डलाधीश्वरी बना दिया। दिद्दारानी ने भी अपनी आन्तरिक कृतज्ञता को प्रकट करते हुए बड़े सम्मान के साथ उस द्रोहविहीन नरवाहन मन्त्री को मन्त्रि-सभा के मध्य गौरवशाली राजानक की पदवी से विभूषित किया। जब वह मंत्री राज्य-कार्य समाप्त कर सोता था तभी वह रानी अपने शयनागार मे शयन करने के लिए जाती थी और जब वह मंत्री भोजन कर लेता था तभी वह भोजन करती थी। कहने की आवश्यकता नही कि नरवाहन मंत्री के हर्ष पर दिद्दारानी को हर्ष होता था और जब वह किसी कारण से दुःखी होता था तब रानी को भी बड़ा दुःख होता था। जब वह अवकाश-ग्रहण कर अपने भवन मे रहता था तब उसके स्वास्थ्य का वृत्तान्त जाने बिना और प्रत्येक कार्य मे उससे परामर्श लिये बिना वह कोई कार्य नही करती थी। इतना ही नही, अपने को प्रिय लगने वाली वस्तुएं उसको समर्पित किये बिना उसे शान्ति नही मिलती थी।

कुय्य नामक पालकी उठानेवाले एक कहार के सिन्दु तथा भुय्य नामक दो पुत्र थे। उनमें से बड़ा पुत्र सिन्दु पर्वगुप्त के घर का प्रिय सेवक था। वहाँ रहते हुए धीरे-धीरे वह गंजाध्यक्ष हो गया था। कुछ दिनो के बाद दिद्दारानी ने अपने यहाँ गजाधिकारी बना दिया। वह अनेक दिनो से कार्य कर रहा था और अपने कार्य मे अत्यधिक निपुण था, इसलिए धीरे-धीरे वहाँ का गजाध्यक्ष भी हो गया। राज्य की आय बढ़ाने के लिए उसने नवीन-नवीन युक्तियाँ चलाईं और उन्ही के अनुसार सिन्दुगंज नामक नवीन कर्म-स्थान (महकमा) स्थापित किया था। उसी दुष्ट स्वभाववाले ने उस परतन्त्र बुद्धिवाली दिद्दारानी से कहा कि नरवाहन मंत्री ने आपका राज्य एक प्रकार से अपने ही अधिकार मे कर लिया है। उसके इस कथन का उत्तर देती हुई वह रानी भी कहने लगी, "हाँ, वास्तव मे ऐसा ही हुआ है।" इस प्रकार कह कर रानी ने उसकी बात को स्वीकार कर लिया।

उसी अवसर पर किसी दिन नरवाहन मंत्री ने प्रेमपूर्वक उस रानी को अपने भवन पर भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया। तदनुसार अपने सेवकों के साथ मन्त्री के भवन पर जाती हुई रानी से सिंदु ने कहा, "घटनाओ और परिस्थिति से मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि वह धूर्तता में श्रेष्ठ मंत्री आपको और आपके सेवको को अपने भवन पर पाकर तुरन्त बाँध लेगा।' उसकी बातो से रानी भयभीत हो गई और व्याकुलता प्रकट करती हुई उस दुष्ट सिन्धु से अपनी रक्षा का उपाय पूछने लगी। उस सिन्दु ने जैसा उपाय बतलाया था उसी के अनुसार वह कार्य करने में तत्पर हो गई। वह डरती हुई अपने सेवको के साथ मंत्री के भवन पर गई और वहाँ उससे बिना मिले ही तुरत राजभवन मे लौट आई और फिर "मैं स्त्री-धर्म (मासिक-धर्म) से युक्त हो गई हूँ" इस प्रकार का सन्देश भेज दिया।

रानी के द्वारा किये गये इस प्रकार के व्यवहार से नरवाहन मंत्री के हृदय को बड़ा आघात पहुँचा। उसने अपने मन मे सोचा, "मैं इतना अनन्य राज्य-भक्त हूँ, फिर भी रानी मेरे साथ ऐसा कपटपूर्ण व्यवहार करती है।" उसके इस प्रकार सोचते ही रानी के प्रति उसका जितना प्रेम और अटूट विश्वास था, वह सब बात की बात मे दूर हो गया। राज्य के प्रति उसमे जो कुछ भी भक्ति थी, वह भी कम हो गई। इस प्रकार उन दोनो के पारस्परिक मनोमालिन्य को देखकर षड्यन्त्र करने वाले धूर्तों ने तिल की खली के समान उन दोनो मे तुरत स्नेहहीनता को

उत्पन्न कर दिया। यह सभी जानते हैं कि वज्र अर्थात् हीरक समस्त धातुओं से अभेद्य और पाषाण-मय सेतु जल-समूह से अभेद्य होता है, परन्तु दुष्ट स्वभाव के मनुष्यों के निकट कोई भी अभेद्य नही हैं। जो धूर्तलोग बालक की अपेक्षा भी अधिक सरल दिखाई पडते हैं और देवताओ के गुरु वृहस्पति की अपेक्षा भी अधिक चतुर होते हैं, हम नही कह सकते कि वे किस प्रकार के विचित्र परमाणुओ के सयोग से निर्माण किये जाते हैं। किसी पर भी विश्वास न करने वाला कौआ दूसरे पक्षी अर्थात् कोकिल की सन्तान को अपनी सन्तान समझने लगता है, और नीर-क्षीर का कुशल विवेचक हस सारहीन मेघो से भयभीत होने लगता है तथा प्रजा के शासन-कार्य मे परम दक्ष और सुतीक्ष्ण बुद्धिवाला राजा खलस्वभाव वाले पुरुषो के कथन को सत्य मान लेता है। अतएव इस प्रकार की चतुरता और विमुग्धता के सम्मिश्रण से युक्त विधाता के विधान को कोटि-कोटि बार धिक्कार है।

उस मूर्ख पगु दिद्दारानी की अवस्था सुनी गई प्रत्येक बात पर विश्वास करने अर्थात् श्रुतिवाह्यता के कारण उसी प्रकार निन्दनीय हो गई थी, जिस प्रकार मूर्ख और श्रुतिबाह्य अर्थात् वेद के ज्ञान से शून्य ब्राह्मण की प्रकृति निन्दनीय हो जाती है। उस रानी ने नरवाहन को बार-बार इतना अपमानित किया कि उस अपमान से सतप्त होकर उसने आत्महत्या कर ली। अप्रतीकार्य अर्थात् जिस पुरुष से बदला नही लिया जा सकता, उस पुरुष के कुपित होने पर अपने तेज से तप्त-हृदय और कीर्ति की कामना करनेवाले स्वाभिमानी पुरुष के लिए मृत्यु के अतिरिक्त दूसरा कौन शरण देने वाला हो सकता है ?

मत्रि-प्रवर नरवाहन के बिना उस दिद्दारानी की राजलक्ष्मी चन्द्रमाविहीन रजनी तथा सत्यरहित वाणी के समान सुशोभित नही होती थी। क्रूरता के निरतर अभ्यास से अत्यन्त निर्दय स्वभाववाली उस दिद्दारानी ने अपने समीप रहने वाले तथा परम पराक्रमी सग्राम डामर के पुत्रो को मरवा डालने का विचार किया। वे भी उसके भय से व्याकुल होकर उत्तर प्रान्त के घोष नामक अपने ग्राम को वहाँ से भाग गये और आक्रमण करने को उद्यत हुए। द्वाराधिपति कैम्यक आदि को उन्होने मार डाला। इस वृत्तान्त को सुनकर उस दिद्दारानी ने अपमान की लज्जा को त्याग दिया तथा प्रत्येक प्रकार के प्रयत्न से उनसे सन्धि कर ली और उन्हें पुन. अपने पक्ष मे मिला लिया। परतु उन्होने वहाँ लौट कर आने के पूर्व ही उस रानी से भयभीत होकर स्यानेश्वरादिक मुख्य-मुख्य डामरो से मेल कर लिया था और इसीलिए वे सब कुछ निर्भय हो गये थे। इसके बाद वहाँ आकर फिर से प्रबल हो गये। उस रक्षक मत्री की मृत्यु हो जाने से रानी को डामरों का भय सर्वदा बना रहता था, इसलिए उसने फल्गुण को फिर से बुलवा लिया। यद्यपि उसने शस्त्र का त्याग कर दिया था तथापि राज-कार्य करने के लिए फिर से शस्त्र को धारण कर लिया, इसीलिए कहा गया है कि भोग-वासना का त्याग अत्यन्त कठिन है। राजपुरी आदि स्थानो को जीतने वाले उस फल्गुण मत्री का आश्चर्यजनक पुराना महत्व उस वृद्ध बन्धकी दिद्दारानी द्वारा अवरुद्ध-सा हो गया था।

दिद्दारानी के भ्राता उदयराज का अत्यन्त प्रिय सहायक अक्षपटलाधिकारी दुर्बुद्धि जय-गुप्त तथा उसी के समान क्रूरवृत्ति के अन्य अधिकारियो ने मिलकर प्रजा के पाप से दूषित उस सम्पूर्ण काश्मीर देश मे मनमानी लूटने का कार्य आरभ कर दिया। माता की दु शीलता के पाप से दुःखित अभिमन्यु को उस समय क्षयरोग ने घेर लिया। उसके नेत्र कमल के समान सुन्दर थे।

चूंकि वह स्वय पण्डित था, इसलिए वह विद्वानों को अत्यन्त प्रिय था। साथ ही साथ वह विद्या तथा युवावस्था के संयोग से अत्यन्त प्रकाशमान् हो रहा था। परतु शुद्ध प्रकृति वाले उस अभिमन्यु के लिए दुष्ट स्वभाव के मनुष्यो का सम्पर्क कोमल शिरीष-कुसुम के लिए सूर्य-ताप के समान शोषक हो गया। अन्त मे वह प्रजा-चन्द्र लौकिक वर्ष चार हजार अड़तालीस के कार्तिक मास मे शुक्ल तृतीया के दिन अपनी आधी कलाओ के भी प्राप्त होने के पूर्व दुर्दैव-रूपी राहु के द्वारा ग्रस लिया गया।

४. दिद्दारानी की कथा

अभिमन्यु की मृत्यु हो जाने के बाद उस दिद्दारानी ने उसके अल्पवयस्क पुत्र नन्दिगुप्त को राज्य के आसन पर बैठा दिया। उस समय दिद्दारानी के हृदय मे प्रबलतर पुत्र के शोक ने अपना स्थान कर लिया। जिस प्रकार अधकार से आच्छन्न हो जाने के कारण सूर्यकान्त मणि अपने उष्णता के गुण से रहित हो जाता है उसी प्रकार पुत्रशोक के आक्रमण से वह दिद्दारानी भी क्रूरता के दुर्गुण से रहित हो गई थी। उसका स्वभाव कुछ शान्त एव शीतल हो गया था। उस दिन से उसकी आश्चर्यजनक धार्मिक कार्यों की प्रवृत्ति से कुमार्ग से एकत्रित की गई सम्पत्ति भी पवित्रता को प्राप्त हो गई। सिन्धु का भ्राता नगराधिपति भुय्य अत्यन्त सदाचारी था। वह उस रानी के धार्मिक कार्यों की प्रवृत्ति को सर्वदा उत्तेजित करता रहता था। उस भुय्य ने उस रानी के अत करण मे प्रजा-विषयक अनुराग उत्पन्न किया था तथा उसके द्वारा किये गये कुकृत्यो के समस्त पापो को नष्ट कर डाला था। इसी लिए वह देवी प्रजा-मात्र के लिए अत्यधिक प्रिय हो गई थी। राजा की क्रूरता को लुप्त करने वाला सज्जन एवं चतुर मन्त्री वास्तव मे अत्यन्त दुर्लभ होता है जो कि सूर्य को सुखपूर्वक सेवा करने के योग्य बनाने वाले हेमन्त ऋतु के समान राजा को सुखपूर्वक सेवा करने के योग्य बना देता है।

उस दिद्दारानी ने स्वर्ग-धाम को सिधारे हुए पुत्र की पुण्य-वृद्धि के लिए अभिमन्यु स्वामी मन्दिर का निर्माण कराया तथा अभिमन्युपुर नामक नगर बसाया और अपने नाम से भी दिद्दा-पुर नामक नगर बसा कर उसमे दिद्दास्वामी का मन्दिर बनवाया। साथ ही साथ मध्यदेश और लाटदेश और शौडोश्रदेश-वासियो के रहने के लिए एक मठ भी निर्माण कराया। अपने कंकण-वर्षी पति के पुण्य को बढाने के लिए उस सुवर्ण-वर्षिणी रमणी दिद्दारानी ने कंकणपुर नामक नगर बसाया। उसी प्रकार श्वेतवर्ण के पत्थरो (संगमरमर) से दिद्दास्वामी का दूसरा मन्दिर बनवाया। वह भव्य मन्दिर श्रीविष्णु के चरण से निकली हुई गगा के पवित्र जल से धोया गया-सा नितान्त धवल वर्ण का दिखाई पडता था। उसने काश्मीर-निवासी तथा विदेश से आये हुये लोगो के रहने के लिए उन्नत चतु शालायुक्त विशाल मठ बँधवाया और अपने पिता सिंहराज के नाम से सिंहस्वामी का मन्दिर बनवा कर विदेशी ब्राह्मणो के रहने के लिए एक मठ भी निर्माण कराया। उस दिद्दारानी ने मठ-निर्माण, देव-मन्दिर-प्रतिष्ठा तथा वैकुण्ठ-निर्माण आदि स्वकीय शुभ कृत्यो से वितस्ता और सिन्धु के सगम को अत्यधिक पवित्र कर दिया था। किन-किन प्रदेशो मे उसने कौन-कौन से शुभ कार्य किये इस स्थल पर उन-उन प्रदेशो के नामो की तथा उन सब कामो की सूक्ष्म गणना करने की क्या आवश्यकता है? इस प्रसग मे केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उसने मुख्य-मुख्य चौंसठ मन्दिर निर्माण कराये थे और उन सब मन्दिरो मे बड़े उत्साह के साथ देव-प्रतिष्ठा की थी। देव-मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराने के समय

उस देवी ने अग्नि-काण्ड से जले हुए मन्दिरों के प्राकारों को पत्थरों से ही प्राय निर्माण कराया था। दौडने के खेल में उस पगु रानी को अपनी पीठ पर रखकर दौडने वाली वल्गा नामक दासी ने भी वल्गा मठ बँधवाया।

सर्वदा तीर्थ-सेवन करने वाला तथा नित्य मौन रहने वाला तिमि मत्स्य (मछली) अपने वंश वालों को ही खाकर अपना उदर-पोषण करता है। जो मयूर केवल बादलों से गिरे हुये जल को पीकर जीवन का निर्वाह करता है वह भी प्रतिदिन वाताशनो अर्थात् सर्पों को प्रतिदिन भक्षण करता है और नित्य पूर्ण रूप से ध्यान की अवस्था में डूबा रहने पर भी बक विश्वासशील मछलियों को निर्दयता के साथ निगलता रहता है। इसीलिए मानना पडता है कि पापियों के धर्माचरण अथवा पापाचरण के विषय में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

एक वर्ष बीत जाने पर उस व्यभिचारिणी दिद्दारानी का पुत्र-शोक शान्त हो गया और वह फिर भोग-विलास के लिए उत्सुक होने लगी। अपनी इस उत्सुकता को चरितार्थ करने के लिए उसने अपने पौत्र नन्दिगुप्त पर अभिचार-कर्म कराया। इस कर्म से उस कुमार्ग-गामिनी ने लौकिक वर्ष चार हजार उनचास में मार्गशीर्ष (अगहन) शुक्ला द्वादशी को उस अल्प-वयस्क नन्दिगुप्त (जो कि उसका अपना ही पौत्र था) का जीवन समाप्त कर दिया। इसी प्रकार उसने अपने दूसरे पौत्र त्रिभुवन को लौकिक वर्ष चार हजार इक्यावन में मार्ग-शीर्ष (अगहन) शुक्ला पचमी को अभिचार-कर्म के द्वारा यमलोक को भेज दिया। इन सब घातक कर्मों में सफल होने के बाद उस क्रूर स्वभाववाली रानी ने तीसरे पौत्र भीमगुप्त को अपनी इच्छा से ही राज्य-सिहासन-रूपी मृत्यु के पथ पर बैठा दिया। उसी अवसर में वृद्ध फल्गुण मन्त्री का भी देहान्त हो गया। यह वह मन्त्री था जिसके भय से अथवा गौरव से दिद्दारानी ने अपनी दुःशीलता तथा क्रूरता को दबा रखा था। उस मन्त्री की मृत्यु के बाद वह रानी अत्यन्त उच्छृखल हो गई और शका से रहित होकर सैकडों प्रकार के कुकर्मों को प्रकट रूप से करने लगी। इतना ही नहीं, वह दिद्दारानी निरकुश और मदोन्मत्त हस्तिनी के समान अपने मुख पर से आवरण वस्त्र को हटाकर स्वच्छन्दता का व्यवहार करने लगी। महाकुल में उत्पन्न होने वाली ललनाओं की प्रवृत्ति उन्नत स्थान से प्रकट होने वाली महानदियों के समान स्वभाव से ही निम्नगामिनी होती है। यह बडे ही खेद का विषय है। जिस प्रकार समस्त जलाशयों के स्वामी सागर से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी बहुत ही कम जल वाले छोटे से सरोवर में उत्पन्न हुए कमल पर अनुरक्त होती है, उसी प्रकार प्रसिद्ध एव उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाली स्त्रियाँ भी प्राय नीच-भोग्या हुआ करती हैं।

पर्णोत्स प्रान्त के बद्विवास नामक ग्राम में रहने वाले खश जाति के बाण नामक ग्रामीण का पुत्र तुग भैस चराया करता था। किसी विशेष कारणवश उसे अपने जन्म का स्थान छोडना पडा। फिर वह सुगन्धसीह, प्रकट, नाग, अट्टयिक एव षण्मुख नामक अपने पाँचों भाइयों के साथ काश्मीर में चला आया था और यहाँ आकर पत्रवाहक का कार्य करने लगा था। एक बार सन्धिविग्रहिक मन्त्री के यहाँ वह बैठा हुआ था। इतने में ही वहाँ दिद्दारानी भी आ गई और उसने उस पत्रवाहक तुग को देख लिया। उसको देखते ही वह भोग-विलास की कामना करने वाली दिद्दारानी उस पर मोहित हो गई। राजभवन में लौट कर आते ही उसने अपनी एक दासी को भेजकर गुप्त रीति से एकान्त में उसे अपने पास बुलवाया। यद्यपि वह रानी अनेक

उपपतियो का उपभोग कर चुकी थी, तथापि होनहार की विचित्र महिमा के प्रभाव से वह युवक उसे अधिक प्रिय लगा। उस के बाद पत्रवाहक तुग की अनुरागिणी उस पापिन रानी ने अपने अनुराग मे विरोध प्रकट करने वाले पवित्रात्मा भुय्य को विप देकर मरवा डाला। विचार से शून्य और दुष्ट हृदयवाले स्वामियो को असख्य बार धिक्कार है क्योकि ऐसे स्वामियो के प्रसन्न होने पर केवल शुष्क प्रशसा का ही लाभ होता है और रुष्ट होने से अमूल्य प्राणो से ही हाथ धोना पडता है।

मन्त्री रक्क का पुत्र वेलावित्त देवकलश अत्यत निर्लज्ज होकर चाटुकार वना हुआ था और चाटुकारी के ही कारण उस रानी को प्रसन्न करने के लिए सफलता के साथ कौट्टिन्य अर्थात् कुटिनियो का कार्य किया करता था। उस समय जब कि कर्दमराज आदि द्वाराधिपति तथा प्रधान मन्त्री तक चाटुकार वनकर उस रानी के लिए कौट्टिन्य करने लगे थे, तव फिर वहाँ दूसरे पुरुषो की गणना ही क्या हो सकती है?

वह वालक राजा भीमगुप्त भी चार-पाँच वर्ष राजभवन मे रहने पर कुछ-कुछ प्रौढ बुद्धिवाला हो गया था। राज्य-शासन की दुरावस्था और दुर्व्यवस्था तथा अपनी पितामही की दुश्चरित्रता उसकी समझ मे पूर्ण रूप से आ चुकी थी और वह उन सबका सुधार करना अत्य-धिक आवश्यक समझता था। तब तक उसके इस रंग-ढग को देखकर चपल चित्तवाली वह अग-हीन (पगु) एव शीलहीन (व्यभिचारिणी) तथा स्वभाव से ही अधिक कठोर दिद्दारानी उसके विषय मे निरन्तर सन्देह करने लगी और उसके ऊपर से अपना समस्त विश्वास हटा लेने का प्रयत्न भी करने लगी। वह बालक राजा भीमगुप्त उत्तम वश मे उत्पन्न हुआ था और अभिमन्यु की पत्नी ने उसे गुप्त रीति से अपने पुत्र के परिवर्तन मे प्राप्त किया था, इसीलिए वह उत्तम स्वभाव का था। दिद्दारानी ने व्याकुल होकर देवकलश की सूचना के अनुसार प्रकट रूप से उस भीमगुप्त को कारागार मे वन्द कर दिया। इसके पहले गुप्त रीति से किये गये नन्दिगुप्त आदि के द्रोह के विषय मे लोगो के मन मे जो सन्देह उत्पन्न हुआ था, उसे उस रानी ने इस प्रकट रूप से किये गये कार्य के द्वारा सर्वथा सत्य प्रमाणित कर दिया। उस दुष्टा ने कारावास मे भी भीमगुप्त की वडी दुर्गति करवाई और अन्त मे अनेक प्रकार के दु सह कष्ट देकर उसे मरवा डाला। फिर किसी भी नीति की पर्वाह न करके लौकिक वर्ष चार हजार छप्पन मे उस रानी ने स्वय ही राज-सिहासन को अपने अधिकार मे ले लिया और काश्मीर की अधीश्वरी बन गई। यह पहले ही कहा जा चुका है कि उस रानी का तुग पर अतिशय अनुराग हो गया था, इसलिए उसने उस पत्रवाहक को प्रतिदिन वढाते हुए सर्वाधिकारी वना दिया। इसीलिए वह समस्त मत्रियो को अपने प्रभाव से दबाकर उन्नत हो गया था।

अन्यान्य अधिकारो पर आरूढ हुए तुग के भ्राता तथा तुग के कारण अधिकार से हटाये गये मत्रियो ने रुष्ट होकर परस्पर सुदृढ सगठन कर लिया और फिर राज्य मे विप्लव मचाने का विचार किया। दिद्दारानी के भाई का पुत्र राजा विग्रहराज वडा पराक्रमी और कठोर स्वभाव वाला था। विप्लव मचाने का विचार करने वालो ने सर्वप्रथम उसी को काश्मीर मे बुलवाया। उस नीति-निपुण और परम विचारवान् पुरुष ने वहाँ आकर राज्य मे विप्लव मचाने के लिए मुख्य-मुख्य अग्रहार के ब्राह्मणो से प्रायोपवेशन (सत्याग्रह) प्रारम्भ कराया। ब्राह्मणो को एकमत होकर प्रायोपवेशन करते देख और भी लोग भडक उठे तथा उस दुरात्मा तुंग को मार डालने के लिए उसे इधर-उधर खोजने लगे। विप्लव के भय से व्याकुल होकर दिद्दारानी ने कुछ दिनो के लिए

किसी बन्द और सुरक्षित स्थान मे तुंग को छिपा दिया। इसके बाद उस चतुर रानी ने पर्याप्त सुवर्ण देकर समनोन्तक आदि मुख्य-मुख्य ब्राह्मणो को तुरत अपने पक्ष मे मिला लिया। उसके इस प्रकार नीतिपूर्ण प्रयत्न करने पर राज्य के अन्तर्गत प्रायोपवेशन का कार्य बन्द हो गया। इस प्रकार उस भयकर उपद्रव को उस दिद्दारानी ने सुवर्ण-प्रदान द्वारा नष्ट कर दिया। तब वह विग्रहराज निरुत्साह और हतवीर्य होकर जिस प्रकार आया था, उसी प्रकार चला भी गया। विग्रहराज के चले जाने पर सामर्थ्यवान् तुग आदि अधिकारियो ने स्थिरता प्राप्त कर ली और फिर विप्लव करने वाले कर्दमराज आदि विद्रोहियो को मार डाला। उन सबो ने कुपित होकर रक्क के पुत्र सुलक्कन तथा अन्य मन्त्रियो को काश्मीर देश से निर्वासित कर दिया और फिर कुछ दिनो मे सतुष्ट होकर पुन बुलवा लिया। इधर शत्रुता के भाव के अधिक बढ जाने के कारण विग्रहराज ने अपने गुप्त दूतो को भेज कर ब्राह्मणो से पुन॰ प्रायोपवेशन करवाया।

उत्कोच (घूस) लेने की अभिलाषा से प्रायोपवेशन करने वाले ब्राह्मणो को अपने अधिकारो की स्थिरता प्राप्त करने वाले तुंग ने उत्कोच देकर अपने वश मे कर लिया। उन ब्राह्मणो मे विग्रहराज का कृपापात्र आदित्य नामक कटकवारिक गुप्त रूप से रहता था। वह वहाँ से भागते हुए मारा गया। इसी प्रकार वत्सराज नामक प्रतीहार भी पलायन करता हुआ शस्त्र से घायल होकर न्यकोतक आदि पुरुषो के द्वारा जीवित अवस्था मे ही पकड लिया गया। इसके बाद तुग ने सुवर्ण ग्रहण करने वाले सुमनोन्तक आदि ब्राह्मणो को भी बाँध कर कारागार मे भेज दिया। इन सब घटनाओ के बाद फल्गुण मन्त्री के मरण से राजपुरी का राजा पृथ्वीपाल फिर से उपद्रव करने लगा था। इसलिए समस्त मन्त्रियो ने रुष्ट होकर उस पर चढाई कर दी थी। इस भयकर सकट में भी राजपुरी के शासक वीर पृथ्वीपाल ने काश्मीर की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। उस भयानक युद्ध मे शिपाटक तथा हसराज नामक दो मन्त्री मारे गये और चन्द्र आदि मन्त्रियो की तो इतनी दुर्गति हुई कि उसकी अपेक्षा उनका मर जाना ही अच्छा था।

इधर उस साहसी वीर तुग ने अपने भाइयो के साथ दूसरे मार्ग से राजपुरी मे प्रवेश किया और सहसा आग लगाकर उसे राख का पहाड बना दिया। उनके इस उपाय से राजा पृथ्वीपाल पराजित हो गया और शेष मन्त्रीभी सेना-समेत उस भयानक सकट से छुटकारा पा गये। तब राजा पृथ्वीपाल ने विवश होकर तुग को कर दिया। इस प्रकार बिगडते हुए कार्य को उस बुद्धिमान् तुग ने पुन. बना लिया। विजयी होकर नगर मे प्रवेश करते हुए तुग ने दिद्दारानी के द्वारा समर्पित किये गये कम्पनेश के पद को सहर्ष स्वीकार किया। इसी प्रकार उस सिंह के समान शूर तुंग ने डामर समूह के उपद्रव को भी समूल नष्ट कर डाला। दिद्दारानी ने भी शका से रहित होकर अपने भ्राता उदयराज के पुत्र सग्रामराज की पूर्ण रूप से परीक्षा कर उसे युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया। उसकी परीक्षा करने के लिए दिद्दारानी ने अपने भाई के शैशव वय-स्थित समस्त पुत्रो को एकत्रित किया था और फिर उस सब के सामने सेव के फल रख दिये थे। बाद मे "इन फलो मे से कौन कितने फल ले सकता है" ऐसा कह कर उसने उन बालको मे परस्पर कलह करवा दिया था। थोडी देर के बाद उसने अन्य सब बालको को घायल होकर भी थोडे फल लिये हुए देखा और सग्रामराज को अधिक फल लेने पर भी अक्षत ही पाया। इससे रानी को बडा आश्चर्य हुआ। उसने सग्रामराज से कही भी चोट न लगने पर भी अधिक फल पाने का कारण पूछा। उत्तर देते हुए उस बालक सग्रामराज ने कहा—"मैंने पहले तो इन सब बालको को पारस्परिक कलह मे व्यापृत कर दिया और स्वय तटस्थ रहकर अधिक फल ले लिये तथा

अक्षत बना रहा। दूसरो को आपत्ति मे फँसाकर दूर से खेल देखने वाले क्लेशहीन चतुर लोगो के कौन-से स्वार्थ सिद्ध नही होते ?" इस प्रकार उसकी चतुरता से पूर्ण बातो को सुनकर नारी स्वभाव के कारण भीरु उस रानी ने उस सग्रामराज को ही राज्य करने योग्य समझा।

शूर पुरुष को शूरता से ही कार्य की सिद्धि का निश्चय होता है और भीरु पुरुष को भीरुता से अर्थात् नित्य सावधान रह कर करने मे अपने कार्य की सिद्धि का विश्वास होता है यह स्वाभाविक बात है। जिन काष्ठो को अग्नि स्पर्श तक नही करता वे भी वानरो को शीत-निवारक प्रतीत होते हैं और अग्निशौच मृगो के लोम की शुद्धि के लिए अग्नि ही जल का कार्य करती है। ऐसी दशा मे यही मानना पडता है कि प्रत्येक प्राणी का कार्य भिन्न-भिन्न पदार्थों से निष्पन्न होता है, इसमे उन सब पदार्थों का कोई स्वाभाविक गुण-धर्म नही होता।

इसके पश्चात् लौकिक वर्ष चार हजार उन्यासी मे भाद्रपद शुक्ला अष्टमी को दिद्दा रानी का स्वर्गवास हो गया। इसलिए वह युवराज सग्रामराज काश्मीर मण्डल का शासक हुआ। इस काश्मीर-मण्डल के राजाओ की वश-परम्परा मे स्त्री के सम्बन्ध से आश्चर्यजनक यह तीसरा परिवर्तन हुआ। जिस प्रकार दावाग्नि से जले हुए कुवृक्षो के मध्य नवीन मेघो के जल से सिंचे हुए उपवन मे आम के पौधे का उदय होता है। उसी प्रकार इस काश्मीर-मण्डल मे श्रीसातवाहन कुल का अभ्युदय हुआ। कोमल अन्त.करण के कारण निगूढ धैर्यानुभाव-सम्पन्न उस सग्रामराज ने सम्पूर्ण पृथ्वी को उसी प्रकार अपनी भुजाओ पर धारण कर लिया जिस प्रकार कमल की नाल के समान सुशोभित होने वाले और फणो के मण्डल से आत्मसार अर्थात् अपनी शक्ति को गुप्त रखने वाले शेषनाग सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण किये रहते हैं।

इस तरङ्ग मे दस राजाओ का वर्णन किया गया है। इन सबो ने काश्मीर मे चौंसठ वर्ष आठ मास और पन्द्रह दिन तक राज्य किया है।

७

१. राजा सग्रामराज की कथा

काश्मीर-मण्डल के राज्य-सिंहासन पर बैठते ही उस प्रतापशाली सग्रामराज ने अपने मानसिक विचारो से शान्ति और भुजाओ के असीम बल से पृथ्वी को धारण कर लिया। इसके साथ ही अपने विचारो की गम्भीरता से समुद्र को और अलौकिक शक्ति से समस्त राजाओ को भी जीत लिया। दिद्दारानी के मर जाने पर काश्मीर के निवासियो ने यह समझा था कि जिस प्रकार दिन-श्री के न रहने पर उसके विरह से लालिमायुक्त सन्ध्या का प्रसग नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है उसी प्रकार दिद्दारानी के न रहने पर तुग के भी महत्व का नाश हो जायगा, किन्तु अनेक विपक्षिओ को नष्ट-भ्रष्ट करने से उसका निरन्तर अभ्युदय होने लगा। विधाता की इस विचित्र गति को कौन जान सकता है ? उस समय राजा का सम्बन्धी तथा सर्वाधिकार के योग्य चन्द्राकर दैववशात् स्वर्गवासी हो चुका था। उसी प्रकार भीमतिका-ग्रामनिवासी परम सम्पत्तिशाली पुष्पाकर नामक दिविर के वीर पुत्र भी शान्त हो गए थे। इसलिए समर्थ मन्त्रियो के अभाव से इच्छा न होने पर भी राजा सग्रामराज को विधाता ने ही तुग का पक्षपाती बना दिया था। इसके पहले ही आसन्नमरण दिद्दारानी ने भी सग्रामराज तथा तुंगादि मन्त्रियो से परस्पर निर्द्रोह रहने के लिए कोशपानपूर्वक शपथ करा ली थी। उसके बाद अत्यावश्यक कार्य के

वशीभूत होने पर भी क्लेश को न सह सकने वाला राजा सग्रामराज तुग के ऊपर सम्पूर्ण राज्य-कार्यों के भार को रखकर स्वयं सुखो के उपभोग मे निमग्न रहने लगा। उस राजा की अत्यधिक भीरुता का वर्णन कहाँ तक किया जाय ? क्योकि उसने उन वशजो के साथ कन्या-सम्बन्ध किया था जो कि किसी भी दशा मे उसके समान नहीं थे। इस प्रकार, असमान वशजो के साथ कन्या-सम्बन्ध करने के कारण उसकी सर्वत्र निन्दा होने लगी और उसने उस निन्दा को भी चुपचाप सहन कर लिया।

दिद्दामठ का अधिपति श्रीमान् प्रेम बडा शूर और सम्पत्तिशाली था। राजा उसकी सहायता से लाभ करना चाहता था। अपनी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए उसने विना किसी सोच-विचार और सकोच के सहर्ष अपनी कन्या लोठिका को उसे अर्पण कर दिया। उसे तो यह चाहिए था कि वह प्रजापालन के कार्य मे समर्थ किसी विजयी राजा के साथ राजकन्या का विवाह कर देता, किन्तु वैसा न करके उसने उस सकुचित-चित्त ब्राह्मण के साथ राजकन्या का विवाह कर दिया जिसका हाथ नित्य दान से सम्बन्ध रखने वाले संकल्प के जल से भीगा रहता था। उसके बाद तुग आदि मन्त्रियो को पदच्युत कराने के लिए ब्राह्मण तथा कतिपय मन्त्रियो ने परिहासपुर मे ब्राह्मण-परिषद् के सदस्यो से प्रायोपवेशन कराया। जिस प्रकार पवन और अग्नि के एक ही साथ आ जाने से उनका प्रकोप दुस्सह हो जाता है उसी प्रकार ब्राह्मण तथा मन्त्रियो की एकता से प्रारम्भ किया गया वह विप्लव राजा को दुस्सह हो गया था। वे ब्राह्मण राजा को भी राज्यच्युत करने के लिए तैयार हो रहे थे परन्तु अत्यन्त प्रार्थना करने पर बडी कठिनता से उन्होने क्षमारूपी यज्ञ के चरु के समान तुग के अधिकार-भ्रश को स्वीकार किया। राजा ने तथा तुंग आदि ने उनकी उस मांग को पूरी करने की प्रतिज्ञा की, फिर भी उन शठबुद्धि ब्राह्मणो ने दूसरी-दूसरी कई मांगे उनके सामने रखना आरम्भ किया।

उन सबो ने एक कुएँ मे से किसी ब्राह्मण के शव को निकाला और फिर कहने लगे—"यह ब्राह्मण तुङ्ग के अत्याचार से मारा गया है, इसलिए हम इसे तुङ्ग के घर मे रखकर घर-समेत जलायेंगे।" इस प्रकार कहते हुए वे सब उस शव को तुङ्ग के घर ले गये। केश-होम के द्वारा उन्होंने जो कृत्या उत्पन्न की थी, वही कृत्या तुङ्ग के घर के समीप उत्पन्न हुए भयानक कलह के रूप मे उन आचरणहीन अपवित्र ब्राह्मणो के विनाश के लिए विपरीत-सी हो गई और सहसा उन सबो पर शस्त्रो की वर्षा होने लगी अर्थात् तुङ्ग के सहस्त्र सेवको ने उन विप्लवकारी ब्राह्मणो पर आक्रमण कर दिया। तब वे ब्राह्मण वहाँ से भागकर अपने मत्रदाता राजकलश के भवन मे प्राणो की रक्षा करने के लिए प्रवेश कर गये। जब राजकलश को यह ज्ञान हो गया कि उसका समस्त षड्यन्त्र प्रकट हो चुका है तब वह बडी देर तक तुङ्ग के सशस्त्र सेवको से युद्ध करता रहा और वे ब्राह्मण उसके घर के पीछे के दरवाजो से भागकर अपने घर चले गए। जब राजकलश पराजित हो गया तब उसी पक्ष के श्रीधर के पुत्र सात मन्त्री वहाँ आकर युद्ध करने लगे। युद्ध मे अपने पराक्रम को पूर्ण रूप से प्रकट करते हुए उन वीरो ने अन्त मे शत्रुओ के द्वारा मारे जाकर सूर्य के मण्डल का भेदन किया और ऊर्ध्वगति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लिया।

युद्ध मे उन सातो वीरो के मोक्ष-लाभ करने के बाद सुगन्धसीह ने पराजित राजकलश को बांध लिया और तुङ्ग ने उसी दशा मे अपने घर बुलाया। शस्त्रहीन और घायल हुए उस राज-कलश को मार्ग मे तुङ्ग के सेवको ने अनेक कष्ट दिये। वे उसके कन्धो पर बैठे। उन सबो

ने उसे नचाया और दौड़ाया भी। दूसरा मन्त्री भूतिकलश भी पराजित होकर अपने पुत्र राजक के साथ शूरमठ मे चला गया। कुछ दिनो के बाद सुगन्धसीह आदि मन्त्रियो ने दया से द्रवीभूत होकर राजकलश को छोड़ दिया। तब वह अपमान रूपी अग्नि से सन्तप्त होकर अपने पुत्र केशव के सहित देशान्तर को चला गया। इस प्रकार दुर्भाग्य से जो देश-विप्लव परिहासपुर मे उत्पन्न हुआ था। सौभाग्य के प्रभाव से वही देश-विप्लव तुङ्ग के लिए मगलकारी हो गया। गुणदेव नामक मन्त्री के द्वारा राजा को प्रसन्न कर भूतिकलश भी गगा-स्नान करके फिर से काश्मीर मे आ गया। फिर उसने धीरे-धीरे राज्य मे थोडा-बहुत अधिकार प्राप्त कर तुग की गुप्त हत्या करने के लिए घातको की नियुक्ति का राजा से प्रयत्न किया। इस बात का पता लगते ही तुग ने राजा से कहकर आज्ञा प्राप्त कर ली और फिर उसी राजाज्ञा से भूतिकलश को पुत्र-समेत फिर से काश्मीर देश से निर्वासित करा दिया।

कुछ दिनो तक चन्द्राकर के पुत्र मयमन्तक की प्रतिष्ठा और प्रभाव सन्तोषजनक रहा परन्तु वह शीघ्र ही मृत्यु के मुख मे प्रवेश कर गया। इसी प्रकार उस समय मे थोडे ही दिनो तक राजकन्या के समागम का सुख भोगने वाला पात्र बनकर दिद्दामठ का स्वामी श्रीमान् प्रेम भी स्वर्ग को चला गया। इतना ही नही, राजा के प्रिय सेवक गग आदि भी मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। केवल भ्राताओ के सहित तुग सुखो का उपभोग करने के लिए शेष रह गया। इस प्रकार जो-जो भयानक घटनाएँ जनसाधारण की दृष्टि मे तुग के लिए घातक सिद्ध होती थी, वे सभी घटनाएँ दैव की अनुकूलता के प्रभाव से तुरन्त उत्कर्ष का कारण बन जाती थी। कालक्रम से आश्रय देने वाली भूमि से रहित तथा अपनी जडो की सहारे से खडे हुए नदी-तट के वृक्ष को जिस बाढ से उखाडे जाने की शका की जाती है, उसी बाढ के द्वारा बहाकर लाये गये मिट्टी के ढेर से वही वृक्ष दृढमूल और सुरक्षित बना दिया जाता है। ठीक यही दशा उस तुग की भी समझ लेनी चाहिए।

इस मे सन्देह नही कि तुग के जितने भी कार्य होते थे उन सब की सम्पादन-प्रणाली नीतियुक्त और उज्ज्वल थी। वह प्रजा के हित-साधन मे सर्वदा तत्पर रहता था। प्रजा की आराधना ही उसके जीवन की तपस्या थी। किन्तु कुछ समय के बाद ही उसके पूर्वजन्म का उपार्जित सारा पुण्य क्षीण हो गया। परिणाम यह हुआ कि उसकी बुद्धि धीरे-धीरे चचल और मलिन हो गई। यही कारण था कि उसने अपने सौभाग्य के विनाश के लिए हीनकुल मे उत्पन्न हुए क्षुद्र स्वभाव वाले भद्रेश्वर नामक कायस्थ को अपना सहायक बना लिया। वह भद्रेश्वर कायस्थ सबसे पहले बगीचे मे माली का काम करता था। खेतो मे पौधो को खाद देने के लिए मैले को बेचना, कसाई का कार्य करना और लकडी आदि का बेचना, ये सब उसकी वश-परम्परा के कार्य थे। जब वह इन समस्त कार्यों को कर चुका और पेट भर खाने के लिए उसे पैसे न मिलने लगे तब वह राजकर्मचारियो के द्वार पर आने-जाने लगा। विशेष रूप से प्रयत्न करने पर कर्मचारियो ने उसकी दशा पर तरस खाया। उन्होने उसे अपना चपरासी बना लिया। फिर वह बडी प्रसन्नता के साथ उदर-पोषण के लिए पीठ पर मोटा कम्बल ओढे, दफ्तर का गट्ठर सिर पर रख कर और दावात हाथो मे लिए हुए उन कर्मचारियो के पीछे-पीछे फिरने लगा।

इधर कुछ दिनो से अनेक प्रकार के राजकीय कार्यों के निरन्तर चिन्तन से तुग अधिक श्रान्त हो चुका था। उसकी सूक्ष्म विवेचन-शक्ति नष्ट हो चुकी थी। इसीलिए उसने उस दुष्ट भद्रेश्वर को अपना सहायक बनाया था और उसके ससर्ग से होने वाले अपने भाग्य-क्षय को नही जान सका था। पहले गृह-कृत्याधिकार पर धार्मिक धर्मार्क कार्य करता था। उसका जितना कार्य होता था वह सब न्याययुक्त होता था। चूँकि धर्मार्क मे धर्म का ज्ञान अधिक था और उसका चरित्र भी पवित्र था इसलिए उस पर दुर्जनो का प्रभाव नही पडता था। वह अपने कर्तव्य का पालन बडी सावधानता के साथ किया करता था फिर भी दुर्भाग्य के प्रकोप से तुग उससे प्रसन्न न था, इसीलिए उसने पवित्रहृदय और धार्मिक धर्मार्क को हटा कर उसकी जगह गृह-कृत्याधिकार पर उस पापी भद्रेश्वर को नियुक्त कर दिया। जिस प्रकार अकाल और मृत्यु के कारण मनुष्य मात्र को अधिक कष्ट सहन करना पडता है उसी प्रकार उस दुष्ट बुद्धिवाले भद्रेश्वर के कारण काश्मीर की प्रजा को असह्य कष्ट का सामना करना पडा। उस पापी कायस्थ ने राजोपजीवी देव, गौ ब्राह्मण, अनाथ, अतिथि आदि की जीविका का उच्छेद कर डाला। शव को भक्षण करने वाले कापालिक बड़े ही क्रूर स्वभाव के होते हैं, फिर भी वे आत्मीय जनो का पोषण करने मे कदापि नही चूकते परन्तु उस पापी भद्रेश्वर ने तो आत्मीय जनो का भी जीवन-हरण किया।

तुग ने चैत मास मे भद्रेश्वर को सर्वाधिकारी बना दिया। पश्चात् आषाढ के महीने मे सुगन्धसीह शान्त हो गया। सुगन्धसीह मे बहुमुखी प्रतिभा थी। सम्पूर्ण राज्य के कार्यों का भार धारण कर सकने की भी उसमे योग्यता थी। ऐसे प्रतिभासम्पन्न और योग्य अनुज के स्वर्गलोक चले जाने से तुग को बडा कष्ट हुआ। वह अपने को प्रत्येक प्रकार से दीनतायुक्त समझने लगा। इतना ही नही, उसे ऐसा जान पडने लगा मानो उसका मस्तक कट गया हो। मुण्ड के अभाव मे जिस प्रकार रुण्ड कार्य करता है, उसी प्रकार वह भी किसी भाँति कार्य करने लगा। कुछ समय के बाद शाही राजा त्रिलोचनपाल ने काश्मीर-नरेश से सहायता माँगी थी, इसलिए राजा सग्रामराज ने तुग को मार्गशीर्ष (अगहन) महीने मे शाही के देश मे भेज दिया। उसके साथ राजपुत्र, महामात्य, सामन्त आदि से परिपूर्ण तथा धरातल को अपने प्रबल पराक्रम से कम्पित करने वाली विशाल सेना भेजी गई। जैसे ही सेनासहित तुग ने शाही के देश मे प्रवेश किया वैसे ही उत्तम प्रकार से उसका स्वागत करने के लिए पुत्रसहित शाही राजा त्रिलोचनपाल उसके सामने आकर खडा हो गया। फिर तुग उसके देश मे पाँच-छः दिनो तक निश्चिन्त होकर रहा। रात्रि मे जागरण, गुप्तचरो को भेजना, शस्त्रो का अभ्यास आदि युद्धोपयोगी आवश्यक कार्यों से विमुख देख कर शाही राजा त्रिलोचनपाल ने तुग से कहा—"जब तक तुरुष्क लोगो की युद्ध की रीति पूर्ण रूप से विदित न हो सके तब तक निरुद्योग होकर आप को इस पर्वत के शिखर पर ही ठहरना चाहिए।" इस प्रकार शाही राजा त्रिलोचनपाल ने तुग को समझाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु उसने उसके इन सब हितकारक वचनो को नही माना और सेनासहित बडे अभिमान के साथ तुरुष्को से युद्ध करने से लिए उत्कण्ठित होने लगा। तुरुष्को का सेनापति हम्मीर बडा ही रण-कुशल था। उसने सबसे पहले अपनी थोडी-सी सेना जानकरी के लिए भेजी थी। उसकी उस सेना को अपनी ओर आती हुई देखकर तुग तुरत उत्तेजित हो उठा। बात की बात मे उसने तौषी नदी को पार किया और बडी वीरता के साथ युद्ध करके हम्मीर की उस सेना को पराजित कर दिया।

इस प्रकार शत्रु-पक्ष की सेना को पराजित करने के बाद तुग के मन में शूरता के अभिमान की मात्रा आवश्यकता के अधिक बढ़ गई थी। उसे यह विश्वास हो चुका था कि वह शत्रु पर शीघ्र ही अपनी वीरता का आतक पूर्ण रूप से जमा सकेगा, परन्तु इतने पर भी शाही राजा त्रिलोचनपाल ने उसे समझाते हुए वही पुरानी बात कही। भली प्रकार समझाये जाने पर भी तुग ने शाही राजा के वचनो को नही माना और पहले के ही समान युद्ध के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगा। उस समय उसने केवल इसी वाक्य के अर्थ को सत्य प्रमाणित कर दिया कि विनाश के समीप होने पर सभी प्रकार के उपदेश व्यर्थ होते हैं। किसी प्रकार वह दिन बीत गया। दूसरे दिन सवेरा होते ही तुरुष्क-सेनापति युद्ध के लिए तैयार हुआ। व्यूह की रचना करने मे वह बडा ही निपुण था। युद्धोपयोगी आवश्यक व्यूह की रचना करके उसने अपनी सेना को शत्रु के विरुद्ध उत्तेजित किया और फिर वीरोचित अभिमान के साथ क्रुद्ध होकर स्वय सेना समेत दार्वाभिसार प्रान्त की ओर से आक्रमण किया। उसके उस आक्रमण का सामना करने के लिए तुग ने सेनासहित आगे बढने का प्रयत्न किया। देखते ही देखते घोर सग्राम होने लगा। उस युद्ध मे तुग की सेना सहसा पराजित हो गई परन्तु शाही राजा त्रिलोचनपाल की सेना कुछ समय तक वीरता के साथ युद्ध के क्षेत्र मे विचरती हुई देखी गई। तुरुष्को की सेना के साथ युद्ध करते-करते जब शाही सेना परारत हो गई और शत्रुओ की वीरता के सामने कोई भी वीर न टिक सका तब अपने जीवन का मोह छोडकर उस रणभूमि पर जयसिंह, श्रीवर्धन और सग्राम डामर के वश मे उत्पन्न हुआ विभ्रमार्क डामर—ये तीनो अपने शौर्य से प्रकाशमान् होने लगे। उन तीनो की असीम और अलौकिक वीरता की प्रशसा कहाँ तक की जाय! केवल इतना ही समझ लेना चाहिए कि विशाल अश्वारोही सेना से परिपूर्ण उस वीरक्षेत्र मे बडे पराक्रम के साथ शत्रुओ पर शस्त्र चलाते हुए उन तीनो वीरो ने नष्ट होती हुई अपने देश की कीर्ति को सुरक्षित रख लिया। उस युद्ध मे शाही राजा त्रिलोचनपाल के महत्व का अर्थात् उसकी शूरता के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है? असख्य होकर भी शत्रु लोग जिसे सख्य अर्थात् युद्ध मे पराजित नही कर सके। जिस प्रकार कल्पान्त मे प्रखर अग्नि की ज्वालाओ को फैलाने वाले त्रिलोचन अर्थात् काल-रुद्र सुशोभित होते हैं उसी प्रकार उस भयानक युद्ध की भूमि मे रुधिर को बरसाने वाला वह शाही राजा त्रिलोचन सुशोभित हो रहा था। अन्त मे वह वीर-शिरोमणि त्रिलोचनपाल अपने अगीकार किये गये कार्य के महत्त्व को सोचकर असख्य कवचधारी वीरो के साथ युद्ध करते हुए उस रण-सकट से निकल गया। राजा त्रिलोचनपाल के युद्ध से दूर चले जाने के बाद प्रचण्ड चाण्डाल सैनिको से वह सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल उसी प्रकार आच्छादित हो गया जिस प्रकार विनाशकारी टिड्डियो के दल से समस्त क्षिति-मण्डल आच्छादित हो जाता है।

सार्वजनिक दृष्टिकोण से उस युद्ध मे विजयश्री तुरुष्क सेनापति हम्मीर के ही पक्ष मे रही। उसके समस्त सैनिक अपने को विजयी समझकर उल्लसित होने लगे किन्तु शाही राजा त्रिलोचनपाल के अलौकिक शौर्य का स्मरण करता हुआ वह तुरुष्क सेनापति हम्मीर विजयी होने पर भी स्वस्थ एव सन्तुष्ट न हो सका। राज्य से च्युत हुआ त्रिलोचनपाल भी अपनी गजसेना के अवलम्ब से पुन खोई हुई विजयश्री के प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करने लगा। कुछ समय के बाद इस ससार मे शाही राज्यश्री का नाम तक अवशेष न रहा। इस विषय मे विस्तार-पूर्वक वर्णन करना यहाँ आवश्यक न होने से प्रसगवश केवल थोडा-सा उल्लेख किया गया है। जो बातें स्वप्न मे भी असभव तथा मनोरथो के भी परे हुआ करती हैं, उन असभव और अचिन्त्य

घटनाओ को सहज ही कर दिखाने वाले विधि के लिए कोई भी कार्य दुष्कर नही है। शकरवर्मा के शासन वर्णन के अवसर पर इस प्रचण्ड शाही राज्य के अद्‌भुत् वैभव तथा विस्तार का दिग्दर्शन पहले ही करा दिया गया है। वह सुविस्तृत शाही-राज्य, उस देश, के नरेश, मन्त्री तथा परिजन-परिवार कभी थे भी अथवा नही थे—इस प्रकार मन मे सन्देह होने लगता है।

अब हम इस प्रसग को छोडकर अपने मुख्य विषय पर आते है। तुरुष्को की सेना से परास्त होकर तुङ्ग ने किसी प्रकार अपने प्राणो की रक्षा कर ली। फिर वह उनसे युद्ध करने के लिए साहस न कर सका। उसकी उस समय की साहसहीनता का फल यह हुआ कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर उपद्रव मचाने के लिए तुरुष्क लोगो का मार्ग बिलकुल साफ हो गया। उनका सामना करने वाला कोई भी वीर न रहा। वह पराजित तुग धीरे-धीरे अपने देश मे प्रवेश करने लगा। सिंह के समान वीरता के दर्प से शत्रु का सामना करने के लिए गया हुआ वह तुग जिस समय शृगाल के समान हारकर लौटा और काश्मीर नरेश सग्रामराज के सामाने उपस्थित हुआ उस समय इस पराजय-रूपी अपराध के लिए उस धैर्यवान् राजा ने उस पर क्रोध नही किया। इतना सब होने पर भी राजा के चित्त को शान्ति न मिली। तुग जैसे व्यक्ति के अधीन रहकर राज्य-शासन का कार्य करना उस राजा के लिए बडे ही कष्ट का कारण बन गया। राजा को धीरे-धीरे तुग की पराधीनता बहुत ही खटकने लगी। जब अनावश्यक पराधीनता से पशु के भी चित्त मे उद्वेग उत्पन्न होता है तब विचारशील राजा का चित्त क्यो न उद्विग्न हो। कुछ भी स्थिर न कर सकने के कारण राजा सग्रामराज दिन-प्रतिदिन विशेष रूप से चिन्तित रहने लगा। तुग के कार्य से राजा जितना उद्विग्न नही होता था उससे अधिक उसके पुत्र कन्दर्पसिंह के व्यवहार से होता था। वास्तव मे बात यह थी कि तुग का पुत्र कन्दर्पसिंह सम्पत्ति और शूरता के मद से राजा को तुच्छ समझता था और प्राय सभी स्थानो मे राजा के समान ही व्यवहार करता था। इतना ही नही, कभी-कभी किसी विशेष स्थान मे राजा से भी बढकर अपने को दिखाने का प्रयत्न किया करता था। इस प्रकार के अपने निरकुश व्यहार से वह राजा के चित्त को उद्विग्न करता था। शासन-व्यवस्था मे कही अन्याय को स्थान न मिल जाय, इस भय से राजा उसके विरुद्ध कुछ भी व्यवहार न करके उसकी उद्दण्डता को चुपचाप सहन कर लेता था।

राजा सग्रामराज का भ्राता विग्रहराज बडा ही छिद्रान्वेषी था। जब उसने देखा कि तुग और उसका पुत्र किसी भी दशा मे राज्य का हित कर सकने के योग्य नही रहे तब वह भी तुग की हत्या करने के लिए राजा सग्रामराज को बार-बार उत्तेजित करने लगा। जब उसकी बातो से राजा किसी भी प्रकार की उत्तेजना के लक्षण न दिखाई पडे तब वह दूसरे प्रभावशाली व्यक्तियो के द्वारा राजा को तुग की हत्या करने के लिए प्रेरित करने लगा। जब वे सब प्रभावशाली व्यक्ति विग्रहराज के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए राजा सग्रामराज से बातें करते तब वह बडे असमजस मे पड जाता। उसने कोशपानपूर्वक तुग के साथ पारस्परिक अद्रोह करने की जो प्रतिज्ञा की थी, वही प्रतिज्ञा उसे स्मरण हो आती। परिणाम यह हुआ कि राजा की बुद्धि मे चिरकाल तक कुछ भी निश्चय कर सकने की शक्ति का अभाव ही बना रहा। ज्यो-ज्यो वह अपने धर्म और कर्त्तव्य पर विचार करता त्यो-त्यो उसके समाने नाना प्रकार के भाव अपने-अपने साकार रूप मे उपस्थित हो जाते। अत मे उन सब पर उसके मानसिक सशय का अधिकार हो जाता। बाद मे किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर उसने समीप आये हुए अपने भ्राता विग्रहराज और अन्य प्रेरको से कहा, "इसमे सन्देह नही कि यह प्रस्ताव राजनीति की दृष्टि से सर्वथा मानने योग्य है, किन्तु

कतिपय कारणों से मैं इस प्रस्ताव के अनुसार कार्य करने में असमर्थ हूँ। ऐसी दशा में तुंग तथा उसका पुत्र कन्दर्पसिंह जब कभी अकेले मेरी दृष्टि के सामने दिखाई पड़ेंगे तब मैं पूर्ण रूप से सोच कर निश्चय कर सकूँगा कि अब मुझे क्या करना चाहिए। यदि बिना समझे-बूझे अथवा कर्त्तव्य और अकर्तव्य पर विवेचना किये ही उसके ऊपर आक्रमण किया गया तो किसी भी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करता हुआ वह अपनी प्रबल शक्ति से मेरा वध कर डालेगा। यह प्रसिद्ध है ही कि तुंग और उसका पुत्र कन्दर्पसिंह ये दोनों ही किसी भी दशा में मुझसे न्यून नहीं हैं।"

राजा संग्रामराज ने इन सब बातों को तो इसलिए कहा था जिससे कि वे सब तुंग की हत्या करने का प्रस्ताव रखने वाले उस समय चुप हो जाते और भविष्य में ऐसे भयानक कार्य के लिए उसे फिर उत्तेजित न करते किन्तु राजा के द्वारा इस प्रकार किये गये बहाने का प्रभाव उन सबों पर उलटा पड़ गया। राजा की बातों को ध्यानपूर्वक सुन लेने के बाद उन सबों ने यह समझ लिया कि राजा ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है और सकेतिक भाषा में तुंग की हत्या करने का बीजरूप में आदेश भी दे दिया है। बड़ी प्रसन्नता के साथ उन सबों ने बीजरूप उस आदेश को अपने-अपने हृदय में रख लिया। इसके बाद वे सब इस बात के लिए प्रयत्न करने लगे कि तुंग और उसका पुत्र किसी न किसी प्रकार राजा सग्रामराज के सामने अकेले पहुँच जायँ। यद्यपि वे सब यह चाहते थे कि ऐसा सयोग बहुत जल्द हो जाय तथापि अनुकूल वातावरण न होने के कारण वे सफल नहीं हो रहे थे। एक-एक दिन उन सबों के लिए वर्ष के समान बीतने लगा। फिर भी निरन्तर प्रयत्न करने का फल यह हुआ कि छ महीनों के अन्दर ही सयोग का वह समय आ गया।

एक दिन राजा ने तुङ्ग को घर से बुला लाने के लिए अपने किसी सेवक को भेजा। राजा की आज्ञा का पालन करने के लिए सेवक तुरत तुङ्ग के घर पहुँच गया और राजा के आदेश को कह सुनाया। राजा के उस आदेश को सुनकर तुङ्ग बडी चिन्ता में पड गया। इधर कुछ दिनों से वह रात्रि में नित्य दु स्वप्न देखा करता था और दिन में जिधर ही दृष्टिपात करता उधर ही उसे अशुभ शकुन दिखाई पडते। इतना सब होने पर भी वह राजा के आदेश को न टाल सका। अपने हृदय पर चिन्ताओं का भार लादे हुए वह तुङ्ग अपने पुत्र को साथ लेकर घर से निकला। राजभवन में आकर वह राजा के आस्थान-मण्डप में पहुँचा और वहाँ कुछ समय तक राजा के समीप ठहरा रहा। फिर वहाँ से पाँच-छ सेवकों को साथ में लेकर मन्त्रणा-मण्डप में प्रवेश किया। जैसे ही उसने उस मण्डप में प्रवेश किया वैसे ही उसके पीछे-पीछे पर्व, शर्करक राजसेवक भी वहाँ पहुँच गये। उन सबों ने राजा सग्रामराज को सूचित किये बिना ही तुङ्ग पर शस्त्रों से प्रहार करना आरम्भ कर दिया। राजा शकरवर्मा के शासन-काल में महारथ नामक जो मन्त्री था, उसके वशज सिंहरथ ने उस क्षण में शस्त्रहीन होने पर भी असीम साहस दिखाया। जैसे ही उसने देखा कि पर्व शर्करक आदि राजसेवक उसके स्वामी तुङ्ग पर शस्त्रों से प्रहार करने लगे हैं वैसे ही वह अपने स्वामी को बचाने के लिए आगे बढा। उसके ऊपर भी शस्त्रों का प्रहार होने लगा और वह थोडी ही देर में परलोक सिधार गया। चूँकि उसने अपने स्वामी को बचाने के लिए उसके पीछे अपना जीवन खो दिया इसलिए तुङ्ग के अन्य सेवकों में सबसे अधिक प्रशसनीय वही हुआ। जिस समय राजसेवकों ने बिना राजाज्ञा के ही तुङ्ग पर शस्त्रों से प्रहार करना आरम्भ किया था उस समय की दशा बड़ी ही भयानक थी। इस दुर्घटना के भय से राजा

सग्रामराज का श्वास रुक गया था। वह यह न समझ सका था कि भविष्य मे क्या होगा। यदि तुङ्ग अथवा उसका पुत्र कन्दर्पसिंह किसी भी प्रकार जीवित रह गया तो फिर बडा अनर्थ हो जायगा। राजा सग्रामराज के जीवन की रक्षा फिर कोई नही कर सकेगा। इस प्रकार की चिन्ता के कारण राजा व्याकुल होने लगा।

इधर तुङ्ग पर जैसे ही शस्त्रो का प्रथम प्रहार हुआ वैसे ही वह भय से प्राणहीन हो गया। उसकी समस्त चेतनता जाती रही। प्राणवायु के निकल जाते ही उसके श्वास-प्रश्वास की गति रुक गई। जब राजा सग्रामराज को तुङ्ग के निष्प्राण होने का समाचार प्राप्त हुआ तब उसके श्वास-प्रश्वास की रुकी हुई गति फिर से अपना कार्य करने लगी, उसके खोये हुए प्राण फिर से उसे प्राप्त हो गये। जिस समय तुङ्ग पर राजसेवको द्वारा शस्त्र-प्रहार हो रहा था उस समय आस्थान ब्राह्मण धर्म का पुत्र पार्थ और दुष्टबुद्धि कक दोनो ही मत्रणा-मण्डप मे उसके पास थे। वे दोनो चिरकाल से तुङ्ग की पापकर्म-प्रवृत्ति के उत्तेजक थे फिर भी वे दोनो उसकी कुछ भी सहायता न कर सके। सहायता करना तो दूर रहा, उन दोनो ने भय से त्रस्त होकर मल-मूत्र त्याग दिया और उनके हाथ से शस्त्र भी गिर पडा। इसके बाद पशु के समान आत्मरक्षा के लिए उन्होने अपने मुख मे अँगुली रख ली।

तुङ्ग के अन्तरग मत्री चग आदिको ने सशस्त्र होकर भी अबलाओ के समान मौन धारण कर लिया। तुङ्ग के मरण-वृत्तान्त से अनभिज्ञ बाहर खडे हुए तुङ्ग के सैनिको से युद्ध और अग्नि-काण्ड के द्वारा विप्लव होने की आशका से डर कर राजा ने अपने सेवको को आश्वासन अथवा धैर्य देने के लिए पुत्र-समेत तुङ्ग के सिर को काटकर बाहर फिकवा दिया। स्वामी के कटे हुए मस्तक को देखकर अधिकाश सैनिक शोक और दुःख से व्याकुल होकर भाग गये परन्तु उनमे से कुछ सेवको ने मारकाट मचाकर अपने सेवाधर्म को उज्ज्वल कर दिया। उनमे से द्विज-पुत्र सामन्त भुजग ने पहुँच कर सग्रामराज का इतनी बुरी तरह से पीछा किया कि उसे घर-घर भागते फिरना पडा। उसने राजा के आस्थान-मण्डप के बन्द दरवाजे को कनक-दण्ड से तोड डाला और भीतर प्रवेश कर वहाँ के बीस सैनिको को मार डाला। इसी प्रकार कोशाधिकारी त्रैलोक्य-राज तथा कय्यामन्तक की उपमाता का पुत्र अभिनव, ये दोनो वीर वहाँ लडते-लडते मारे गये। उस राजभवन के सामने वाले आँगन मे तुङ्ग के अनुजीवी तीस एकागो ने युद्ध मे मर कर अपने शरीरो से स्वर्ग की सीढी-सी बना दी थी। उस समय वीर पद्मराज ने भी खुलकर खूब युद्ध किया परन्तु वह वहाँ से सकुशल और अक्षत निकल आया। इसके बाद उसने अपने स्वामी की मृत्यु से उत्पन्न हुई दुःख की अग्नि को तीर्थयात्रा के द्वारा शान्त किया। दूसरे कुछ कायर पुरुषो ने इहलोक तथा परलोक मे रक्षा करने वाले शस्त्र को समर-भूमि मे त्यागकर उज्ज्वल यश तथा स्वशरीर, दोनो का वियोग प्राप्त किया। स्वय को सुभट मानने वाला चन्द और विदेशी अर्जुन तथा हेलाचक्र नामक डामर—ये तीनो शस्त्र त्याग कर शत्रुओ के द्वारा मारे गये। आषाढ शुक्ला द्वादशी को तुङ्ग के मारे जाने के बाद राजा सग्रामराज ने तुङ्ग का घर-बार, सम्पत्ति आदि सब राज्य मे लेकर उसे कथाशेष कर दिया।

तुग ने कभी राजा सग्रामराज के साथ द्रोह नही किया था और न प्रजा के प्रति कभी कठोरता की नीति का सहारा लिया था। जनसाधारण की दृष्टि मे उसका सम्मान विशेष था। ऐसा तुग और उसका पुत्र कन्दर्पसिंह जब राजा के द्वारा मार डाला गया तब राजभवन एक प्रकार सज्जनो से शून्य हो गया। निःहतुग के पुत्र-समेत मारे जाने पर राजमन्दिर मे खल

दायित्व की योग्यता से शून्य हैं तब वे राजभक्ति के बन्धन से शिथिल होने लगे। कतिपय दरद, दिविर और डामरों ने प्रकट रूप से उद्धत होकर उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया। ऐसे ही समय में राजकन्या लोठिका ने क्रमशः अपने तथा अपनी माता तिलोत्तमा देवी के नाम से लोठिका मठ तथा तिलोत्तमा मठ बनवाये।

जो पुण्यात्मा होते है उनमे सर्वदा सत्कर्म करने की इच्छा बनी रहती है और अपनी उसी इच्छा को चरितार्थ करने के लिए वे सब अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सत्कर्म करके लोक और परलोक मे यश के भागी हुआ करते हैं। किन्तु सब से बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि कभी-कभी महापापियो के मन मे भी सत्कर्म करने की वासना उत्पन्न हो जाती है, इसीलिए दुष्टात्मा भद्रेश्वर ने भी पुण्योज्ज्वल विहार का निर्माण किया। सत्य कहा जाय तो राजा सग्रामराज ही सच्चा विवेकशील निकला क्योकि वह अपने समस्त वैभव और धन को अन्याय से उपार्जित किया हुआ कहा करता था। इसीलिए उसने कही भी एक पौशाला तक नही निर्माण की। राजा की पत्नी श्रीयशोमगल की कन्या थी। उसका नाम श्रीलेखा था। जब उसने भली भाँति यह समझ लिया कि उसका पति प्रत्येक दशा मे सामर्थ्य से हीन है तब उसने व्यभिचारिणी होना स्वीकार किया। तुङ्ग के भ्राता सुगंधसीह की स्त्री जयलक्ष्मी थी। उसी जयलक्ष्मी के गर्भ से उत्पन्न हुए सुगन्धसीह के पुत्र त्रिभुवन पर श्रीलेखादेवी का अत्यन्त अनुराग हो गया। इसी प्रकार जयाकरगज आदि गजो का निर्माण करने वाला अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि और राजा के कोश को सर्वदा धन से परिपूर्ण रखने के लिए यत्नशील जयाकर भी राजपत्नी श्रीलेखादेवी का उपपति था।

कुछ भी हो, राजा सग्रामराज अपनी पत्नी श्रीलेखादेवी पर विशेष कृपा करता था। जिस प्रकार के कार्यो से वह प्रसन्न रहती, उसी प्रकार के कार्यों को राजा सहर्ष किया करता था। इस प्रकार राजा की विशेष कृपा से वह श्रीलेखादेवी परम सौभाग्यवती और अशेष वैभव-सम्पन्न हो चुकी थी। जयाकर के समान वह भी द्रव्य के सचय मे तत्पर रहा करती थी। उसने भी मयग्रामीणगज आदि गजो का निर्माण कराया था। राजा सग्रामराज के एक पुत्र था। उसका नाम हरिराज था। जब राजा ने समझ लिया कि उसका अन्त समीप आ चुका है तब वह राज्य के सभी कार्यों से विरक्त हो गया। इसके बाद उसने अपने पुत्र हरिराज का राज्याभिषेक कर दिया। फिर थोड़े ही दिनो के बाद वह भयानक रोग से पीडित होने लगा। मनुष्य की रक्षा के लिए जितने उपाय किये जा सकते है वे सभी उपाय किये गये किन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। वह राजा संग्रामराज मानव-शरीर के सुख-दुखो को समान रूप से भोगकर लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ चार आषाढ शुक्ला प्रतिपदा को स्वर्गधाम को चला गया। ससार मे केवल उसके कार्यकलापो की बातें ही रह गई।

२ राजा अनन्तदेव की कथा

राजा सग्रामराज के बाद उसका पुत्र हरिराज काश्मीर-देश का राजा हुआ। जिस प्रकार सुमनो (पुष्पो) से सेवित और अशेषाशाओ (सम्पूर्ण दिशाओ) को पूर्ण करने वाला चैत्रोत्सव सब को आनन्द प्रदान करता है उसी प्रकार वह राजा हरिराज सुमनो (पण्डितो) से सेवित होकर और अशेषाशाओ (सम्पूर्ण याचको की आशाओ) को पूर्ण कर सब को आनन्द प्रदान करने लगा। उसकी आज्ञा अटल थी। किसी मे भी ऐसा साहस न था कि वह उसकी आज्ञा

को टाल दे। साथ ही साथ वह पूर्ण रूप से विवेचना करके आज्ञा देता था इसीलिए उसकी वह आज्ञा अव्यर्थ होती थी। उसने अपने सम्पूर्ण राज्य मे चोरो का नाम व निशान तक न रहने दिया था, इसीलिए रात्रि के समय मे भी बाजारो की दुकानें खुली रहती थी और उनके द्वार बन्द नहीं किये जाते थे। उस राजा हरिराज का शासन-काल अत्यन्त अल्प होने पर भी विलक्षण वैभव युक्त तथा चन्द्रमा की नवीन कला के समान राजवन्दनीय था। इसमे सन्देह नही कि वह नवीन राजा हरिराज विमल यशवाला था। उसने केवल बाईस दिन राज्य किया और श्रावण शुक्ला अष्टमी को मृत्यु के मुख मे चला गया। इसीलिए मानना पडता है कि यह चचल स्वभाववाली लक्ष्मी ग्रीष्मकाल की रात्रि के समान प्राणियो को किंचित् काल चमकनेवाले नक्षत्रो के समान थोडी देर के लिए ही अपनी कृपा का पात्र बनाती है।

"वह राजा हरिराज अपनी माता के व्यभिचारिणीपन को देख कर रुष्ट हो गया था, इसलिए राजमाता ने अभिचार की क्रिया के द्वारा उसे मृत्यु के मुख मे भेज दिया था" इस प्रकार का लोकापवाद उस समय सर्वत्र फैल गया था और आज तक किसी ने भी उस लोकापवाद का खण्डन नही किया।

राजा हरिराज की मृत्यु के बाद राजमाता श्रीलेखादेवी स्वय को राज्याभिषेक कराने की समस्त तैयारी कराकर स्नान करने के लिए चली गई। इतने मे ही हरिराज के धात्रेय भ्राता सागर तथा कतिपय एकागो ने मिलकर उसके अल्पवयस्क पुत्र अनन्तदेव को राज्याभिषेक करा दिया। जिस प्रकार किसी एक निधि के निकाले जाने पर किसी अन्य लोभी के द्वारा निधि-रक्षक निरपराध नाग का किया गया वध केवल पाप का कारण होता है, उसी प्रकार उस राज्य-लुब्धा राजमाता ने भी उस राज्य के अन्य द्वारा हरण किये जाने से केवल पाप ही कमाया। जिस भोग-वासना के जाल मे फँसकर वह राजमाता अपने पुत्र-प्रेम को भूल गई थी और राज्य के हाथ से निकल जाने पर दुःखी हुई, उस भोग-वासना को धिक्कार है।

उसके बाद उस बालराजा अनन्तदेव का वृद्ध पितृव्य (बाप का चाचा) परम पराक्रमी विग्रहराज राज्य का हरण करने के लिए आया। वह लोहर प्रान्त मे सहसा प्रस्थान कर और रास्ते मे द्वार अर्थात् चौकी को जलाता हुआ शीघ्रगति से बढा और ढाई दिन मे ही वायु-वेग से काश्मीर की राजधानी में पहुँच गया। राजधानी मे आकर वह अपनी सेना के साथ लोठिकामठ मे ठहर गया था। जब राज-पितामही श्रीलेखादेवी ने उसके काश्मीर की राजधानी मे आने और लोठिकामठ मे ठहरने का समाचार सुना तब उसके क्रोध की सीमा न रही। उसने तुरन्त अपने सैनिको को भेज दिया। उसके द्वारा भेजे गये सैनिको ने उस मठ मे आग लगा दी। उसका परिणाम यह हुआ कि विग्रहराज तथा उसके समस्त सैनिक उसी मठ के भीतर जल कर भस्म हो गये। इस घटना के बाद ही श्रीलेखादेवी ने अपने पति तथा पुत्र के नाम से दो मठ निर्माण कराये और फिर वह अपने पास से अधिक से अधिक धन खर्च कर सर्वदा राजद्रोह से बचने के लिए भरसक उद्योग करने लगी।

कुछ वर्षों के बाद राजा अनन्तदेव का बाल्यकाल समाप्त हो गया। ज्यो-ज्यो वह यौवना-वस्था की ओर बढने लगा त्यो-त्यो उसके स्वभाव मे भी परिवर्तन होने लगा। वह अधिक सम्पत्तिशाली है और जनसाधारण पर शासन करने वाला राजा भी है, इसका अभिमान भी उसके हृदय मे उत्पन्न हो गया। राजकोष के धन की इच्छा के अनुसार व्यय करने का अधिकार

स्वभाव के लोगों का बड़ा उत्कर्ष हुआ। दिन-प्रतिदिन उनकी संख्या बढ़ने लगी। सारा राजमन्दिर उन्हीं का क्रीडास्थल बन गया। तुग का भ्राता नाग बड़ा ही दुष्ट था। नाना प्रकार के षड्यन्त्रों की रचना करने में वह पटु था। अपने स्वार्थ को किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है, इसका उसे पूर्ण ज्ञान था। अपने स्वार्थ-साधन के सामने उसे जितने भी पुरुष बाधक दिखाई पड़ते थे उनके लिए वह प्रत्यक्ष महाविषधर नाग के ही समान था। वह बहुत दिनों से राज्य-कार्य में अपना कोई महत्वपूर्ण पदाधिकार चाहता था किन्तु तुग और उसके पुत्र कन्दर्पसिंह के सामने एक नहीं चलती थी। इसीलिए वह उन दोनों के विनाश का उपाय सोचा करता था। ठीक ऐसे ही समय में तुग और उसके पुत्र कन्दर्पसिंह के दुर्भाग्य से और उस दुष्ट नाग के सौभाग्य से राजा संग्रामराज का भ्राता विग्रहराज उसका सहायक बन गया। वे दोनों एकमत होकर तुग के विरुद्ध गुप्त मन्त्रणाएँ करने लगे थे। अन्त में वे राजा संग्रामराज को भी अपने विचारों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करने लगे थे। सर्वप्रथम राजा के समीप जाने पर वे असफल ही रहे। इसके बाद अपने पक्ष में राज्य के अन्य दुष्टों को लेकर वे गुप्त और प्रकट रूप से राजा के मन को दूषित करने को अग्रसर हुए थे।

अपने भाई तुग का सर्वनाश कराने के लिए स्वार्थी और दुष्ट नाग सब का नेता बना था। निरन्तर गुप्त कपट-प्रबन्ध के द्वारा उसने राजा के मन को दूषित कर ही दिया और इस प्रकार अपने भ्राता तुग और उसके पुत्र कन्दर्पसिंह की मृत्यु का कारण बन गया था। जिस समय लोगों को यह सब दुष्टतापूर्ण कपट-जाल की रचना का रहस्य मालूम हुआ उस समय वे सब उससे बड़ी घृणा करने लगे थे। धीरे-धीरे वह दुष्ट नाग लोगों की दृष्टि में गिरता ही गया। लोग "अपने वंश का अन्त करने वाला" कहकर उसकी सर्वत्र निन्दा करने लगे थे। उस लोकापवाद की भी उसने कोई चिन्ता न की और न राजा संग्रामराज पर ही उस लोकापवाद का कुछ भी प्रभाव पड़ा। उलटा परिणाम यह हुआ कि उस दुष्ट नाग को राजा संग्रामराज ने कम्पनेश का महत्त्वपूर्ण पद प्रदान कर दिया। राजा की इस दयालुता और उदारता से लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। सज्जन पुरुषों के मन में तरह-तरह के विचार उत्पन्न होने लगे और दुष्ट स्वभाव के मनुष्य अपने को सफल समझकर आनन्द मनाने लगे। वह दुष्ट नाग भी अपने को पूर्ण रूप से सफल समझने लगा।

कन्दर्पसिंह की पत्नी क्षेमा परम व्यभिचारिणी थी। जिस प्रकार कृष्णपक्ष की रात्रि भयानक राक्षस के साथ समागम करती है उसी प्रकार वह भी उस दुष्ट स्वभाव वाले नाग के साथ समागम करती थी। जब कुछ दिनों के बाद राज्य के अन्तर्गत होने वाले उपद्रव शान्त हो गये तब तुग की दूसरी पुत्रवधू शाही की कन्या बिम्बा चार दिन के बाद अग्नि में प्रवेश कर सती हो गई। उसके इस प्रकार सती हो जाने से क्षेमा के द्वारा किये गये पापों की घन-कालिमा नष्ट हो गई। तुग के वंश का गौरव नष्ट होते-होते बच रह गया। उस देवी के इस अपूर्व आत्मत्याग के प्रभाव से पृथ्वी-मण्डल की कुल स्त्रियों का मस्तक ऊँचा हो गया।

कन्दर्पसिंह की प्रेमिका एक वेश्या भी थी। उसका नाम मम्मा था। उस वेश्या मम्मा से उत्पन्न हुए कन्दर्पसिंह के दो पुत्र थे। उनका नाम [illegible] और [illegible]सिंह था। उन दोनों को साथ [illegible] मम्मा [illegible] राजपुरी में रहने लगी। उसकी तीसरी पुत्रवधू भी [illegible] थी। जिस [illegible] पर दिन और [illegible] लक्ष्मी का प्रकाश बना रहता था, [illegible] जिस [illegible] आदेश को पाकर अपने को धन्य समझती थी, प्रतिदिन अनाथ

और भिक्षुको को जो मखना बड़े हर्ष के साथ भोजन दिया करती थी, काल के चक्र मे पडकर उसी मखना को जीविका के लिए दूसरो का सहारा लेना पडा। ईश्वरता के स्थान को दीनता ने ने ग्रहण कर लिया। वह राजपुरी उसके लिये यमपुरी भी बढकर अधिक दु खदायिनी हो गई।

तुङ्ग का सर्वनाश करने के बाद राजा सग्रामराज ने उसके स्थान पर पापी भद्रेश्वर को नियुक्त किया। उच्चाधिकार प्राप्त करते ही उसने भूतेश्वर आदि देवताओ का कोश तथा अन्य वस्तुएँ लूटना आरंभ कर दिया। राजा सग्रामराज की विवेकहीनता का वर्णन कहाँ तक किया जाय। विवेक से हीन होने के ही कारण उसने पार्थ जैसे दुष्ट मनुष्यो को अधिकार दिये। यह जानते हुए भी कि पार्थ अपनी परम दुष्टता के कारण जनसाधारण मे निन्दा का पात्र बन चुका है, इतना ही नही, वह व्यभिचारी होने के कारण अपने भाई की पत्नी पर आसक्त भी है, फिर भी राजा सग्रामराज ने बिना किसी प्रकार का विचार किये ही उसे नगर का अधिकारी बना दिया। वह पार्थ इतना दुष्ट था कि उसने कभी मन मे भी पुण्य कर्म का स्पर्श नही किया। उसका जीवन ही पापमय था। इसीलिए अधिकार को प्राप्त करते ही उस पापी पार्थ ने प्रवरेश्वर के पवित्र रङ्गपीठ पर पशुहिंसा आदि पापकर्म करना आरम्भ कर दिया। इसी प्रकार प्रजा को कष्ट देने मे प्रवीण सिद्ध का पुत्र मतङ्ग जो कि ससार के कृपण पुरुषो का शिरोमणि था, वह भी उस लोभी राजा सग्रामराज के कोश को बढाने लगा।

देवमुख दिविर का पुआ बेचने वाली वेश्या से चन्द्रमुख नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह चन्द्रमुख तुङ्ग का आश्रय पाकर राजा सग्रामराज का प्रिय सेवक बन गया था। उसने कौडी-कौडी जोड कर करोडो दीनार इकट्ठे कर लिए थे। फिर भी वह कृपण भेंट मे आये हुए पुओ को भी अपने पुराने रोजगार के अनुसार अपने सेवक अथवा दूसरे मनुष्यो के हाथ बेच देता था। बाल्यावस्था मे उसकी जठराग्नि अत्यन्त प्रदीप्त थी। जो कुछ जितना खाता था वह सब उसे तुरन्त हजम हो जाता था। इसी लिए उस समय वह किसी भी रोग का शिकार नही बना था। किन्तु जब वह सयाना हुआ तब उसकी जठराग्नि मन्द पड गई और वह बीमार रहने लगा। उसके शरीर की रूपरेखा ही बदल कर विचित्र हो गई। इसी लिए लोग उसे देख कर हँसने लगे। फिर भी वह लोगो के हँसने पर ध्यान न देकर किसी प्रकार अपने जीवन के दिन बिताने लगा। वास्तव मे बात यह थी कि वह धन का सचय करना ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझ चुका था। बचपन मे उसने जो कुछ खा पी लिया वही उसके लिए पर्याप्त हो चुका था। इसके बाद अग्निमान्द्य का बहाना कर उसने खान-पीना ही बन्द कर दिया। उचित मात्रा मे भोजन न मिलने के कारण वह दुबला होने लगा और अन्त मे बीमार पड गया। उसने मरते समय एक करोड दीनार का तीसरा भाग श्रीरणेश्वर के मन्दिर का जीर्णोद्धार करने के लिए दे दिया था। अपने जीवन मे उसने केवल यही एक पुण्य का कार्य किया था। उसके नाग, भाग तथा नन्दिमुख नाम के तीन पुत्र थे। वे तीनो ही तुङ्ग के अधीन रहकर सेनापति के पद पर कार्य करते थे। तुङ्ग के बाद राजा सग्रामराज ने उन्हे उसके पद पर नियुक्त कर दिया था। यह नियुक्ति सुवर्ण के स्थान पर बालको द्वारा किये गये यवकाण्डो के बन्धन के समान हास्यास्पद हुई थी।

राजा सग्रामराज ने तुङ्ग के साथ उन तीनो को भी तुरुष्को के युद्ध मे भेजा था और वे भी तुङ्ग के समान युद्ध मे हार कर अपने देश मे चले आये थे। जब लोगो ने देख लिया कि राजा आवश्यकता से अधिक क्षमाशील है और राज्य के समस्त मन्त्री अपने-अपने पद के उत्तर-

उसी को है और वह चाहे जो कुछ करे, उसका विरोध करने वाला कोई नही है, ये विचार भी उसके चित्त मे क्रमश वृद्धि पाने लगे। इन सवका परिणाम यह हुआ कि वह राजा अनन्तदेव अमितव्ययी और व्यसनो के अधीन होने लगा।

जैसा वह राजा था वैसे ही उसके सहायक भी थे। अधिक से अधिक वेतन लेकर जो व्यक्ति राज्य के धन को लूटना ही अपने जीवन का ध्येय बना चुके थे, वे सभी उस राजा के परम मित्र थे। इस प्रकार के मित्रो मे शाही के पुत्र ही प्रधान थे। उस राजा पर उन सवका अधिक प्रभाव पड चुका था। शाही का पुत्र जिसका नाम रुद्रपाल था, वह तो प्रत्येक राज्य-सम्वन्धी कार्य मे राजा का दाहिना हाथ वन चुका था। उस समय उसके समान राजा का प्रिय कोई दूसरा व्यक्ति नही था।

रुद्रपाल, दिद्दापाल और अनगपाल ये तीनो ही शाही के पुत्र थे और इन तीनो की ही वडी विचित्र दशा थी। रुद्रपाल को प्रतिदिन एक लाख दीनार वेतन के रूप मे मिला करते थे फिर भी उसकी दरिद्रता ज्यो की त्यो वनी रहती थी। वह जव कभी किसी बात पर अधिक विचार करता तो केवल इसी बात पर कि वह किस उपाय से राज्य के धन को अधिक परिमाण से लूट कर कुवेर के समान धनवान् हो सकता था। इसीलिए उसे जो कुछ वेतन मिलता था उससे उसे सन्तोष नही होता था।

उसके भाई दिद्दापाल को प्रतिदिन अस्सी हजार दीनार वेतन के रूप मे मिलते थे। वह इतना अमितव्ययी था कि उससे उसका खर्च पूरा नही पडता था। जो कुछ पाता था उसे पानी के समान खर्च कर डालता था और फिर ऋण लेकर शेष कामो मे खर्च किया करता था। धीरे-धीरे उसके ऊपर ऋण का भार अधिक हो गया। इसीलिए ऋण तथा व्यय की चिन्ता से उसे रात भर नीद नही आती थी। वह भी किसी न किसी प्रकार अधिक धन प्राप्त करने का उपाय सोचा करता था।

दिद्दापाल और रुद्रपाल का भाई अनगपाल राजा अनन्तदेव का बडा कृपा-पात्र था। वह चाहे जो कुछ करता, राजा उससे कदापि रुष्ट नही होता था वल्कि जव कोई व्यक्ति उसके विरुद्ध राजा से कहता तो उलटा ही उस पर राजा की कोप-दृष्टि हो जाती थी। इसीलिए लोग उसे राजा के द्वारा पाला गया वैताल कहा करते थे। जिस प्रकार लोग वैताल से साधारण रूप से डरा करते है उसी प्रकार उससे भी डरा करते थे। जो कुछ उसे वेतन के रूप मे मिलता था उसे वह वहुत ही कम समझता था। इसीलिए वह सर्वदा देवताओ की सुवर्णमयी प्रतिमाओ को तुडवाने का विचार किया करता था।

उस समय चाण्डालो के समान दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यो की सख्या अधिक वढ चुकी थी। वे सव प्रजा का धन और जीवन हरने मे तनिक भी सकोच नही करते थे। पाप किसे कहते है, इसे वे जानते ही न थे। चोरो के अत्याचारो से प्रजा का कष्ट दिन-प्रतिदिन वढता ही जा रहा था। कही भी प्रजा की किसी वात की सुनाई नही होती थी। राजा का परमप्रिय रुद्रपाल उन सव अत्याचारियो को वज्र-पजर के समान सरक्षक मिल गया था। जब कभी कोई सकट उपस्थित होता तव वे सव रुद्रपाल के समीप चले जाते और वह उन सवो की पीठ ठोक देता, अतएव वे सव पूर्ववत् प्रजा को सताने के कार्य मे निडर होकर तत्पर हो जाते।

इतना ही नही, रुद्रपाल के आप्त कायस्थ लोग भी कम अत्याचार नही करते थे। अपने संरक्षक रुद्रपाल का सहारा पाकर वे लोग भी निरन्तर प्रजा को सताने लगे थे। जिसे जो उपाय सूझता, वह उसी उपाय से प्रजा को लूट लेता। इस प्रकार वे कायस्थ लोग भी पर्याप्त धन-सग्रह करके धनवान् हो चुके थे। उन सबो का प्रधान उत्पल था। उसके पास धन इतना हो गया था कि उसके नाम के पहले "श्रीमान्" शब्द जोडा जाता था। उसने अश्वमठ का निर्माण किया।

उस रुद्रपाल की राजप्रियता का वर्णन वाणी द्वारा कर सकना सर्वथा असभव है। वह इतना राजप्रिय था कि उसने राजा अनन्तदेव को अपना छोटा साढू बना लिया। वास्तविक घटना केवल इतनी ही है कि उसने जालधर के राजा इन्द्रचन्द्र की ज्येष्ठ कन्या आसमति के साथ विवाह किया था। आसमति बडी सुन्दर थी। उसका मुख चन्द्रमा के समान नेत्रो को सुख देने की शक्ति रखता था। उसी आसमति ने त्रिपुरेश्वर मे अपने नाम से मठ बनवाया था। उसकी छोटी बहन सूर्यमतीदेवी उससे कुछ ही कम अवस्था की थी। उसी के साथ रुद्रपाल ने राजा अनन्तदेव का विवाह कराया था और अपने साथ उपर्युक्त सम्बन्ध स्थापित किया था।

जिस प्रकार कर्ण ने कर्णों को सुख पहुँचाने वाले वचनो से दुर्योधन को उद्धत स्वभाव वाला बना दिया था उसी प्रकार चिकनी-चुपडी बातें बनाने वाले परमप्रिय मित्र रुद्रपाल ने राजा अनन्तदेव को परम उच्छृंखल बना दिया था। उस राजा की उद्दण्डता और उच्छृखलता चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। रुद्रपाल जैसे धन-लोलुप व्यक्तियो के कारण प्रजा मात्र को कष्ट था ही। ऐसे ही समय मे तुग के भाई सुगधसीह का पुत्र त्रिभुवन जो उस समय कम्पनाधिपति के पद को सुशोभित कर रहा था, और जिसका अनुचित सम्बन्ध राजा सग्रामराज की पत्नी श्रीलेखा देवी के साथ था, उसने राज्य के समस्त डामरो को एकत्रित किया। जब युद्ध के योग्य आवश्यक तैयारियाँ हो चुकी तब वह राजा अनन्तदेव के राज्य को छीनने के लिए वहाँ आया।

इसमे सन्देह नही कि त्रिभुवन अपने समय का बडा प्रभावशाली और प्रतापी वीर था। उसके सहायक डामर भी साहसी योद्धा थे। जब वह अपने समस्त सैनिको को साथ लेकर युद्ध के लिए आया तब उसने अपने मन मे यह निश्चय कर लिया था कि युद्ध के लिए उसके पहुँचने का सम्वाद पाते ही राज्य के कर्मचारियो का एक बडा भाग उसके पक्ष मे मिल जायगा और उन सब का अनुकरण करते हुए एकाग और अश्वारोही सैनिक भी राजा अनन्तदेव के पक्ष का त्याग कर देंगे। किन्तु उसके दुर्भाग्य से और राजा के सौभाग्य से किसी ने भी अपनी राजभक्ति को ठुकराना उचित नही समझा। समस्त एकाग और अश्वारोही राजा अनन्तदेव के पक्ष को ही ग्रहण किये रहे।

युद्ध के क्षेत्र मे उभय पक्ष के सरदार, सैनिक और सहायक आकर एकत्रित हो गये। जो जिस पक्ष का समर्थक था वह उसी पक्ष के लिए विजय की कामना करता हुआ बडी वीरता के साथ अपने-अपने शस्त्रो को सम्हालने लगा। कुछ समय तक घोर संग्राम होता रहा। हार-जीत का प्रश्न जीवन-मरण का प्रश्न बन चुका था। मुण्डविहीन रुण्डो का युद्ध बडा भयानक और वीभत्स था। कुछ समय मे कम्पनाधिपति त्रिभुवन और राजा अनन्तदेव दोनो ही युद्ध के क्षेत्र मे शस्त्र और अस्त्र का प्रयोग करते हुए दिखाई पडे। त्रिभुवन वाण चलाता था और राजा अनन्तदेव अपनी तलवार से आत्मरक्षा कर रहा था।

क्षण भर मे ही राजा अनन्तदेव ने अपनी तलवार से त्रिभुवन के अव्यर्थ वाणो को काट डाला और फिर वीरोचित प्रशसनीय पराक्रम दिखाते हुए त्रिभुवन के साथ युद्ध किया। रणकुशल

योद्धा त्रिभुवन ने लोहे का कवच धारण किया था, इसीलिए उसका शरीर युद्ध के क्षेत्र मे सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित था। यद्यपि राजा अनन्तदेव ने उसके समस्त बाणो को काट दिया था तथापि वह पर्वत के समान अचल रहकर युद्ध करता ही रहा। जब वह साधारण प्रहारो से न हटा तब परम पराक्रमी राजा अनन्तदेव ने अपनी तलवार से भयानक और घातक प्रहार करना आरम्भ कर दिया। उसके उन प्रहारो से त्रिभुवन का कवच छिन्न-भिन्न हो गया।

कवच के छिन्न-भिन्न होते ही उसका शरीर भी पूर्ण रूप से रक्षाहीन होकर वीरता के दर्प से शून्य हो गया। अपने प्रताप के समान रुधिर का वमन करते हुए वह युद्ध के क्षेत्र से भाग गया। उस समय युद्ध के क्षेत्र मे वह राजा बालक के समान दिखाई पड रहा था। उसकी समस्त शूरता और प्रगल्भता विनय से छिपी हुई थी।

जब कम्पनाधिपति प्राणो की रक्षा करता हुआ युद्ध के क्षेत्र से भाग गया तब राजा अनन्तदेव के भीतर वीरता का छिपा हुआ तेज स्वत प्रकाशित होने लगा। उसके अलौकिक बल और विक्रम को देखकर सभी आश्चर्य करने लगे। ठीक ऐसे ही समय मे अभिनव नामक डामर राजा से युद्ध करने के लिए बाण चलाने लगा। वह डामर शमाला प्रान्त का निवासी था और बाण-युद्ध मे बडा ही निपुण था। राजा ने उसका भी सामना किया। राजा के युद्ध-कौशल को देखकर उसकी समस्त निपुणता लुप्त हो गई। वह युद्ध के क्षेत्र से त्रिभुवन के ही समान भागने लगा। अन्त मे शालास्थल नामक ग्राम मे राजा ने उसे पूर्ण रूप से परास्त कर दिया।

कम्पनाधिपति त्रिभुवन ने अनावश्यक रूप से युद्ध की जो अग्नि जलाई थी, वह उसी के बल-विक्रम की आहुति पाकर शीतल हो गई। उस समय राजा अनन्तदेव की शोभा बडी ही विचित्र थी। उसकी तलवार रक्त और मास के लोथडे से युद्ध की पिपासा मिटा चुकी थी।

युद्ध के शान्त हो जाने पर वह तलवार रक्त और मास के आवरण से ढके हुए दण्ड के समान दिखाई पड रही थी। ऐसी तलवार को हाथ मे लेने के कारण युद्ध के क्षेत्र मे राजा अनन्तदेव दंड को हाथ मे धारण करने वाले कालभैरव के समान त्रिभुवन-भयकर दिखाई पड़ रहा था। उसके समस्त शरीर से क्रोधरूपी अग्नि की चिनगारियां निकल रही थी। उसका अधिक से अधिक स्नेही मित्र भी उस समय उसके समीप जाने का साहस नही कर सकता था। ऐसी उसकी भयावनी आकृति हो चुकी थी।

जब युद्ध के व्यापार से उत्पन्न होने वाला समस्त क्रोधानल शान्त हो गया तब वह राजा प्रसन्न-चित्त होकर आगे बढा। लोगो ने किस-किस प्रकार उस भयानक युद्ध मे उसकी सहायता की थी, यह सब जानने की उसने इच्छा प्रकट की। उसकी उस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसके कुछ सेवक आगे-आगे चलने लगे और युद्ध के क्षेत्र मे एकत्रित हुए व्यक्तियो का नाम ले-लेकर तथा उनका परिचय देते हुए उन सबकी वीरता का वर्णन करने लगे। उन समस्त वीरो मे एकागो की ही संख्या अधिक थी।

शत्रुओ के निर्मम प्रहारो से वे घायल हो चुके थे। शस्त्रो के प्रहारो से उनके शरीर छिन्न-भिन्न होकर रुधिर की धारा बहा रहे थे। राजा अनन्तदेव उन समस्त वीर योद्धाओ को बडे ध्यानपूर्वक देखने लगा था। देखते ही देखते राजा के हृदय मे करुणा के भाव अबाध रूप से उत्पन्न होने लगे थे। उन समस्त भावो के प्रभाव से प्रभावित होकर राजा ने उन सबो के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति प्रकट की और असीम उदारता दिखाते हुए उन्हे अक्षपटल मे उपस्थित होने की आवश्यकता न रखकर स्वतत्र रूप से वेतन मिलने की व्यवस्था कर दी।

इस प्रकार के व्यवहार से उस राजा ने उन सबो के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और इस उपलक्ष मे उसने अपने सेवको को छानवे करोड दीनार भी क्रमश जीविका के रूप मे दे दिये। ऐसी कहावत प्रसिद्ध है कि जब वह राजा युद्ध-क्षेत्र से वापस आया था तब चिरकाल से दृढता के साथ मुट्ठी मे पकडी हुई उसकी तलवार मुट्ठी पर बहुत देर तक दूध की धारा से सीचने पर छूट सकी थी। इससे अर्थ इतना ही निकलता है कि ज्यो ही युद्ध समाप्त हुआ और विजयश्री ने राजा के गले मे अपनी विजयमाला पहिना दिया त्यो ही राजा मे अपने कर्तव्य का ज्ञान प्रबल हो आया। जब तक उसने अपने मित्रो, सहायको और वीर योद्धाओ का उचित सम्मान करके यथेष्ठ पारितोषिक न दे दिया तब तक युद्ध-क्षेत्र मे शत्रुओ का विनाश करने के लिए उसने अपने हाथ मे जिस तलवार को ग्रहण किया था, उसे नही छोडा था। जब सब के लिए सुख और सुविधा की व्यवस्था कर दी गई तब उसने अपने लिए सुख और सुविधा की व्यवस्था की थी।

उसके इस प्रकार के मानवतापूर्ण व्यवहार से सभी की प्रसन्नता चरम सीमा तक पहुँच गई थी। वह एक उदार राजा के रूप मे सम्मान पाने लगा था। उस समय उसका-जैसा उदार और सरल स्वभाव वाला दूसरा कोई भी प्रतापी पुरुष नही था। सत्य कहा जाय तो क्षमाशीलता और उदारता के ही कारण वह अपने शत्रुओ को भी अभयदान कर चुका था। इसीलिए उस राजा अनन्तदेव के उच्च आदर्शो का वर्णन कर सकना शब्दो की शक्ति से परे की बात हो गई है।

जिस त्रिभुवन ने मदान्ध होकर उसके प्रति विद्रोह के भावो को उत्तेजित किया था और ससैन्य बडे दर्प के साथ युद्ध करके उसे पराजित करना चाहा था, वही त्रिभुवन कुछ दिनो के बाद जब देशान्तर से वापस आया और अपनी दीनता प्रकट की तब उस राजा अनन्तदेव ने उसके प्रति किये गये समस्त रोष के भावो को दूर कर दिया और बिना किसी सन्देह के उसे अपने यहाँ रख लिया।

उस राजा ने अपने बान्धव ब्रह्मराज को गजाधिपति के पद पर नियुक्त किया था। इस पद पर नियुक्त होते ही उसमे भी कुछ-कुछ अभिमान के अकुर उत्पन्न होने लगे थे। राजा का परम प्रिय रुद्रपाल भी कम अभिमानी न था। अपने-अपने अभिमान की रक्षा करने के लिए वे दोनो भिन्न-भिन्न प्रकार के उपाय करने लगे। रुद्रपाल अपने समय का बडा कुशल राजनीतिज्ञ था। उसके सामने ब्रह्मराज की एक भी न चली। धीरे-धीरे रुद्रपाल के साथ द्वेष हो जाने से वह रुष्ट होकर चला गया।

प्रतिशोध लेने की भावना प्रबल होने के कारण ब्रह्मराज को शान्ति नही मिल रही थी। वह इधर-उधर भ्रमण कर अपना समय बिताने लगा। जब कुछ दिन बीत गये तब वह ब्रह्मराज अपने शत्रु रुद्रपाल को पराजित करने का नया उपाय सोचने लगा। सोचे हुए उपाय के अनुसार वह सात म्लेच्छ नरेश तथा डामर-समूह-समेत दरदो के राजा अचलमगल को साथ लेकर आक्रमण के लिए आया।

दरदो का राजा अचलमगल बडे उत्साह के साथ आगे बढ रहा था। उन सबो के आक्रमण करने का समाचार पाकर परम पराक्रमी रुद्रपाल भी ससैन्य युद्ध के लिए तैयार हुआ। यथासमय उसने भी शत्रुओ पर विजय पाने के उद्देश्य से प्रस्थान किया। वह दरदराज क्षीरपृष्ठ नामक स्थान पर पहुँचा ही था कि इतने मे असीम साहसी रुद्रपाल उसके सामने युद्ध

करने के लिए पहुँच गया। दोनों पक्ष की सेनाएँ सावधान हो गईं। दोनों की ही युद्ध-अभिलाषा प्रबल होने लगी।

किसी भी पक्ष का कोई भी सैनिक अपने विरोधी पक्ष से अपने को किसी भी दशा मे न्यून समझने को तैयार न था। अन्त मे दोनो सेना की ओर से दूसरा दिन युद्ध के लिए घोषित किया गया। इसके बाद ही दरदराज अचलमंगल इधर-उधर घूमते-फिरते कौतुकवश पिंडारक नाग के निवास-स्थान पर पहुँच गया। वहाँ पर पहुँचते ही उसमे मछली का शिकार करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसके साथ जितने भी सेवक थे, उन सबो से भी उसने अपनी उस अभिलाषा को कह सुनाया।

सुनकर उन सब सेवको ने बड़ी नम्रता के साथ प्रार्थना करते हुए कहा, "यह पिंडारक नाग का निवास-स्थान है। आप यहाँ की जिन मछलियो को देखकर शिकार के लिए लालायित हो रहे हैं, वे सब उस नाग के संरक्षण मे हैं। यदि आप इनमे से किसी एक पर भी प्रहार करेंगे, तो आपको भयानक संकट का सामना करना पड़ेगा। अतएव आप यहाँ की मछलियो का शिकार करने के विचार को अपने मन से दूर हटा देने की कृपा करें।"

इस प्रकार सेवको के निषेध करने पर भी उसने अपने उस विचार का त्याग नही किया और बिना कुछ सोचे-विचारे ही वहाँ की तैरती हुई किसी एक मछली के शरीर पर भाला मार दिया। उसने ज्यो ही भाला मारा त्यों ही उस कुण्ड के भीतर से एक भयानक नाग निकला। उसका शरीर शृगाल के समान था। दरदराज यह न समझ सका कि वही पिंडारक नाग है। उसने उसे साधारण जंगली शृगाल समझ लिया और उसका भी शिकार करने के इरादे से उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा।

जब सैनिको ने देखा कि उनका राजा इस प्रकार किसी पर आक्रमण करने के लिए सहसा दौड़ रहा है तब वे बड़े असमंजस मे पड़ गये। उनकी समझ मे कुछ भी न आया। विलम्ब तक तर्क-वितर्क करने के बाद उन सबो ने यह निश्चय किया कि युद्ध की व्यवस्था मे परिवर्तन कर दिया गया है, इसलिए शत्रु की ओर से आक्रमण होने लगा है।

ऐसा निश्चय करते ही दरदराज के सैनिक भी शत्रुओ से युद्ध करने के लिए चल पड़े। उन सबो को अपनी ओर बढते हुए देखकर रुद्रपाल के सैनिको ने भी अपने अस्त्र-शस्त्र सम्हाल लिये और बड़े दर्प के साथ पृथ्वी को कँपाते हुए आगे बढे। क्षण भर मे उस स्थान का शान्त वातावरण भयानक रूप से अशान्त हो गया। देखते ही देखते घोर संग्राम होने लगा। रक्त की धारा से धरती रंग गई। मास के लोथड़ो के कारण चलना कठिन-सा हो गया। 'मार-मार' के शब्दो से दिशाएँ गूँज उठी।

दोनो पक्ष के वीर सैनिक युद्ध मे पीठ दिखाना अपने लिए कलंक और नरकगामी होने का कारण समझते थे। जो जिस पक्ष का था, वह उसी पक्ष को विजयी बनाने के लिए प्राणपण से युद्ध कर रहा था। उन सब के युद्ध को देखकर ऐसा ज्ञात होता था मानो असंख्य रुद्र परस्पर महाप्रलयंकर कृत्य कर रहे हो। उन सब के संग्राम मे शस्त्रो के संघर्ष से अग्नि की चिनगारियाँ सभी दिशाओ मे व्याप्त होने लगी और वीरतापूर्वक प्राण-विसर्जन करने वाले वीरो के साथ देवांगनाओ के स्वयंवर होने लगे।

जब दरदराज अचलमंगल ने देखा कि उसके सैनिको मे से अधिकांश परलोक सिधार गये हैं तब वह भयानक रूप से क्रुद्ध होकर रुद्रपाल के सैनिको पर टूट पड़ा। कुछ क्षणो के लिए

विजयश्री की कृपा उस पर हो गई किन्तु जब रुद्रपाल और उसके सैनिकों ने सामूहिक रूप से उस पर आक्रमण किया तब विजयश्री की कृपा का लाभ करने की आशा के साथ उसके जीवन की आशा भी जाती रही। उस महाभयंकर संग्राम में दरदराज का शरीर रुण्ड और मुण्ड, इन दो भागों में छिन्न-भिन्न हो गया और ग्रीष्मकालीन उत्तप्त रौद्र के समान युद्धविजयी रुद्रपाल का यश सभी दिशाओं में फैल गया।

दरदराज अचलमंगल की सहायता करने के लिए जितने भी म्लेच्छराज आये थे, उनमें से कुछ तो युद्ध में मारे गये और जो शेष रहे, वे सब बाँध लिये गये। साथ ही साथ इस युद्ध में काश्मीर-नरेश अनन्तदेव को विपुल सुवर्ण और रत्न आदि अधिक मूल्यवान् वस्तुओं का लाभ हुआ। युद्ध की विजय से उल्लसित होकर रुद्रपाल ने दरदराज का मस्तक अपने स्वामी अनन्तदेव को भेंट किया। उस समय वह मस्तक रुधिर से व्याप्त हो रहा था। उसके आभूषणों के मोतियों की कान्ति-रूपी जल से उस पर जो रुधिर था, उसका क्षालन-सा हो रहा था।

इस घटना के थोड़े ही दिनों बाद एक दूसरी घटना का आरम्भ हो गया। राजा अनन्तदेव का भ्राता उदयनवत्स था। वह किसी कारणवश अपने भ्राता से असतुष्ट था किन्तु प्रकट रूप से राजा के विरुद्ध आचरण कर सकने का उसमें साहस न था। इसलिए वह उचित समय की प्रतीक्षा में अपने दिन चुपचाप बिताया करता था। जब उसने समझ लिया कि कार्य के योग्य समय आ गया है तब उससे राजा अनन्तदेव के विरुद्ध काश्मीर के ब्राह्मणों को उत्तेजित किया। उसकी उत्तेजना से उत्तेजित होकर वे सब ब्राह्मण प्रायोपवेशन आदि उपद्रव करने लगे। इन समस्त उपद्रवों से राजा को अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ा।

दुःख पहुँचानेवाली घटनाओं का क्रम दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। कुछ समय के बाद लूता रोग ने राजा के परमप्रिय रुद्रपाल को घर दबाया। सभी प्रकार के संभव उपाय उसकी रक्षा के लिए किए गये किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुए और वह उसी रोग से मृत्यु के मुख में चला गया। उसके बाद ही अल्प समय में शाही के सभी पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गये।

अभी तक राजा अनन्तदेव की पत्नी सूर्यमतीदेवी का कुछ भी प्रभाव राजा के हृदय पर नहीं पड़ पाया था। जब कभी वह राजा के हृदय पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न करती तब उसे अन्त में निराश ही होना पड़ता। रुद्रपाल, दिद्दापाल और अनगपाल आदि पाल-बन्धुओं के विषय में राजा का जो अन्धप्रेम था, वही सूर्यमतीदेवी के मार्ग में सब से बड़ा बाधक था। इसीलिए महारानी सूर्यमतीदेवी के सद्गुणों का प्रभाव राजा के हृदयरूपी पट पर पूर्ण रूप से अंकित नहीं हो पाता था, किन्तु ज्यों ही पाल-बन्धु-विषयक अन्धप्रेम-रूपी मैल दूर हो गया त्यों ही निर्मल दर्पण के समान राजा अनन्तदेव के हृदय में सूर्यमतीदेवी का प्रतिबिम्ब स्पष्टतया पूर्ण रूप से दीखने लगा। तात्पर्य यह कि महारानी सूर्यमतीदेवी में जितने भी सद्गुण थे, उन सब का यथार्थ प्रभाव राजा अनन्तदेव के अन्तःकरण-रूपी पट पर जैसा अंकित होना चाहिए, ठीक वैसा ही पूर्ण रूप से अंकित हो गया।

महारानी सूर्यमतीदेवी का दूसरा नाम सुभटा था। जब उसने अपने को राजा अनन्तदेव की कृपा-पात्री बना लिया और राजा अनन्तदेव को भी उसके हृदय की उच्चता तथा चरित्र की उज्ज्वलता का ज्ञान हो गया तब उसने अपने मनोगत भावों को राजा के निकट प्रकट किया। बिना किसी तर्क के राजा ने उसके समस्त प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया। तदनुसार उसने वितस्ता नदी के तटवाले प्रदेश में भगवान् गौरीश्वर की स्थापना की और अपने नाम से भी सुभटामठ नामक मठ का निर्माण कराया।

जिस समय राजोचित मर्यादा की रक्षा करते हुए उसने भगवान् गौरीश्वर की प्रतिष्ठा की थी उस समय उसकी दानशीलता अपनी मर्यादा की सीमा पार कर गई थी। जितने ब्राह्मण और याचक वहाँ पर आये थे उन सबों के लिए महारानी सूर्यमतीदेवी ने कल्पलता का रूप धारण कर लिया था। उसने अपनी इच्छा के अनुसार यथेष्ठ गौ, सुवर्ण, रत्न और अश्व आदि दान कर दिये थे। अपने उदारतापूर्ण दान के प्रभाव से उसने कितने ही ब्राह्मणों को दरिद्रता के चिर-बन्धन से मुक्त कर दिया था।

रानी सूर्यमतीदेवी के एक छोटा भाई था। उसका नाम तो आशाचन्द्र था किन्तु वह कल्लन के भी नाम से विख्यात था। उसके ऊपर रानी का वात्सल्य अधिक था। जिस प्रकार उसने अपने नाम से मठ का निर्माण कराया था उसी प्रकार उसके नाम से भी कोई न कोई लोकोपकारी कार्य करना चाहती थी। अन्त में उसने उसके नाम से अग्रहारसहित मठ का निर्माण कराया।

इसी प्रकार सिल्लन नामक अपने भ्राता तथा अपने पति के नाम से उस सती ने क्रमश विजयेश और अमरेश के मन्दिरों के पास दो मठ निर्माण कराये। इतना ही नहीं, विजयेश्वर-मन्दिर के समीप उसने विद्वान ब्राह्मणों को एक सौ आठ अग्रहारों का दान कर महापुण्य का कार्य किया। अमरेश्वर में भी उसने अपने पति के नाम से अनेक अग्रहार दिये और स्थान-स्थान पर त्रिशूल, वाण, शिवलिंग आदि की प्रतिष्ठा की।

इसके बाद समय ने फिर पलटा खाया। उन दोनों (राजा अनन्तदेव और महारानी सूर्यमतीदेवी) के सुख के संसार में एक भयानक भूकम्प आ गया। उन दोनों का पुत्र राजराज बड़ा सुन्दर और सुशील था। जो कोई उसे देखता वही उसके अलौकिक चमत्कार से मुग्ध हो जाता। जिस प्रकार वह राजा और रानी को प्रिय था उसी प्रकार प्रजा मात्र को भी प्रिय था। राजकर्मचारी उसके दर्शन पाकर अपने को धन्य समझा करते थे। ऐसा वह राजकुमार राज-राज सहसा बीमार पड़ गया।

राजा और रानी, दोनों का ही सारा ध्यान उस पर केन्द्रित हो गया। पूजापाठ, दान-दक्षिणा और देवाभिनन्दन सभी को काम में लाया गया। अपना अलौकिक प्रभाव दिखा सकने में समर्थ अव्यर्थ महोषधियों का प्रयोग किया गया किन्तु वह राजकुमार राजराज इस संसार से सदा के लिए चला गया। राजा और रानी के शोक का समुद्र प्रजा-वर्ग की झोपड़ियों तक को अपने गर्भ में छिपा लिया।

सभी की प्रसन्नता जाती रही। सुख का नाम व निशान तक न रह गया। सभी दिशाओं में 'हाहाकार' के शब्द प्रतिध्वनित होने लगे। पशु-पक्षी भी मौन धारण कर अपनी समवेदना प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील होने लगे। जनसाधारण के कार्य बन्द हो गये। पुत्रवती माताओं का हृदय महारानी सूर्यमतीदेवी के हृदय को स्पर्श कर शान्ति प्रदान करने के लिए व्याकुल होने लगा।

कुछ दिनों तक महाशोक की विभीषिका सर्वत्र फैली रही। इसके बाद शोकाकुल हृदय को लेकर राजा और रानी राज-मन्दिर से निकल पड़े और शान्ति-लाभ करने के लिए सदाशिव के मन्दिर के निकट रहने लगे। उसी समय से उनके बाद के राजाओं ने भी प्राचीन राजभवन के निवास को त्याग कर वहीं रहना आरंभ कर दिया।

राजा अनन्तदेव को अपने अश्वशाला के अश्व अत्यधिक प्रिय थे। इसीलिए अश्वशाला के जितने भी कर्मचारी थे, वे सभी राजा के अत्यन्त कृपा-पात्र थे। उनकी सुख-सुविधा का ध्यान राजा को नित्य रहता था। कहना तो यो चाहिए कि राजा की विशेष कृपा के ही कारण वे सब अपने को अधिक प्रभावशाली समझने लगे थे। राजा की ओर से उन्हे प्राय. अच्छे से अच्छे पारितोषिक मिला करते थे। इतने पर भी धन-सग्रह करने के लिए वे सब सर्वत्र प्रजा मे लूट मार मचाया करते थे। जिस किसी के पास धन देखा उसी को सता कर अथवा मार कर उसका समस्त धन छीन लिया। इस प्रकार के अत्याचारो से धन-सग्रह करके वे अश्वशाला के कर्मचारी बडे से बडे रईस बन गये थे।

उल्लक नाम का एक व्यक्ति विदेश से काश्मीर मे आया हुआ था। वह बडा मधुरभाषी और चापलूस था। जिसको अपने वश मे करना चाहता उसी को वह अपनी वाणी से मुग्ध कर लेता था। समय पाकर वह भी राजा अन्तदेव का कृपा-पात्र बन गया। उसकी मधुर वाणी और चापलूसी से प्रसन्न होकर राजा ने उसको भी अभयदान कर दिया था। ऐसा उत्तम सुअवसर पाकर वह भी सर्वदा प्रजा को लूटा करता था।

राजा अन्तदेव को ताम्बूल-सेवन का बहुत शौक था। इसलिए पद्मराज नामक परदेशी ताम्बूलिक प्रतिदिन उसके लिए ताम्बूल पहुँचाता था। धीरे-धीरे वह ताम्बूलिक भी राजा का प्रेम-पात्र हो गया था। मालव देश के शासक राजा भोज ने उसी पद्मराज के द्वारा अधिक से अधिक धन का व्यय कर कपटेश्वर मे एक कुण्ड तैयार कराया था। इसके साथ ही साथ राजा भोज ने पापसूदन तीर्थ के पवित्र जल से मुख धोने तथा स्नान करने की सर्वदा के लिए प्रतिज्ञा की थी।

कहाँ मालव और कहाँ काश्मीर! उस दुस्तर प्रतिज्ञा को पूर्ण कर सकना सरल कार्य न था। कुछ भी हो, राजा भोज ने प्रतिज्ञा-भग करना उचित नही समझा। उसने पद्मराज ताम्बूलिक को बुलवाकर समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। इसीलिए राजा भोज की उस कठिन प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए वह पद्मराज ताम्बूलिक नियमपूर्वक उस तीर्थ के जल को कांच के कलशो मे भरकर काश्मीर से भेजा करता था।

थोडे ही समय मे पद्मराज ताम्बूलिक राजा अनन्तदेव का सबसे अधिक कृपा-पात्र बन गया था। वह जो कुछ राजा से कहता वही स्वीकार कर लिया जाता। उसके किसी भी प्रस्ताव का खण्डन करना राजा उचित नही समझता था। इसीलिए अवसर पाकर उस पान बेचने वाले पद्मराज ने राज्य की आय का अधिकाश राजा की अनुमति से स्वय लेना आरम्भ कर दिया था।

पद्मराज ताम्बूलिक के सम्बन्ध मे जो कुछ वर्णन किया जाय उसे कम ही समझना चाहिए। कहाँ तो वह राजा की दया का भिक्षुक बनकर आया था और कहाँ राजा को ही अपने कपट जाल मे फाँस कर उसे अपनी दया का भिखारी बना लिया। स्पष्ट घटना यह है कि उस पद्मराज ताम्बूलिक ने राजा से ही धन प्राप्त कर राजा को ही बहुत-सा ऋण दिया था और उसके बदले मे राजा से पचचन्द्रक-युक्त राजमुकुट तथा राजसिहासन अपने पास रेहन रख लिया था। प्रत्येक महीने मे एक दिन राजा का दरबार लगता था उसी दिन वह राजमुकुट और राज-सिंहासन उसके यहाँ से राजभवन मे लाये जाते थे।

यद्यपि यह सब कार्यकलाप काश्मीर-नरेश अनन्तदेव की मर्यादा को कलकित करने के लिए पर्याप्त था तथापि कोई भी इसके सम्बन्ध मे कुछ भी कहने का साहस नही करता था।

काठ की पुतलियों के समान सभी चुपचाप अपना-अपना कार्य किया करते थे। जब रानी सूर्यमतीदेवी के ध्यान में ये सब बातें आई तब वह राज-मर्यादा की रक्षा के लिए व्याकुल हो उठी। उसके पास अपना जितना भी धन था वह सब प्रसन्नचित्त से देकर उसने राजमुकुट और राजसिंहासन तुरन्त छुड़ा लिये और पद्मराज ताम्बूलिक के ऋण से उत्पन्न हुई देश की अव्यवस्था को दूर कर दिया।

इसके बाद रानी सूर्यमतीदेवी ने अश्वशाला के कर्मचारियों के प्रति ध्यान दिया। उल्लक आदि लुटेरो के कारण राज्य की प्रजा मे भयानक अशान्ति उत्पन्न हो चुकी थी। उसे भी अपनी प्रखर बुद्धि के बल से शान्त कर दिया। जब सभी प्रकार से प्रजा के ऊपर राजकर्मचारियों द्वारा किये गये अत्याचारों का अन्त हो गया तब काश्मीर-देश की समस्त राज्य-व्यवस्थाएँ निर्विघ्नता के साथ प्रजा के लिए हितकारक कार्य करने लगी।

रानी सूर्यमतीदेवी की विचारशीलता, कार्यकुशलता और नीतिनिपुणता से सभी उसके प्रति श्रद्धालु और भक्तिमान् हो गये। उस समय से रानी ही राज्य के समस्त कार्यों का निरीक्षण करने लगी और राजा अनन्तदेव भी युद्ध अथवा शिकार सम्बन्धी कार्यों अर्थात् शूरता के कार्यों को छोडकर अन्य समस्त कार्यों मे रानी का आज्ञापालक सेवक बनकर रहने लगा।

साधारणतया स्त्री जाति के लिए उसके पति का आज्ञापालक सेवक होना तथा उसका अपने पति पर शासन करना निन्दनीय कार्य हो जाते है किन्तु रानी सूर्यमतीदेवी के निष्कलंक शील के कारण उसके पति का अपनी पत्नी का आज्ञाकारक भृत्य होना तथा उसका अपने पति पर शासन करना, ये दोनो पारस्परिक कर्त्तव्य संसार की दृष्टि मे निन्दनीय न हो सके।

पवित्र चरित्रवाली रानी सूर्यमतीदेवी के पुण्य प्रताप और सद्व्यवहार के प्रभाव से अनन्तदेव के स्वभाव मे आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगा। थोडे ही दिनों मे वह लोक-प्रसिद्ध पुण्यात्मा होने का गौरव प्राप्त करने लगा। इसके बाद उसने भगवान् शंकर की भक्ति, व्रत, स्नान, दान और शील आदि सद्गुणों से ऋषियों को भी जीत लिया।

उस राजा के दीर्घकालिक राज्य-शासन मे नवनवोन्मुखी अर्थात् नवीन-नवीन राजकुमार के लिए उत्कण्ठित होनेवाली पतिंवरा (स्वयंवर मे अभिलषित पति की प्राप्ति के लिए उत्सुक कन्या) के समान राजश्री नवीन-नवीन राजसेवकों के समीप जाती थी। तात्पर्य यह कि राजा अनन्तदेव ने अपनी नीति बदल दी थी। जिस तरह वह पहले किसी एक सेवक पर ही अपनी विशेष कृपा-दृष्टि रखा करता था और चाहे कोई कुछ भी कहे वह फिर उससे अपनी कृपा-दृष्टि न हटाकर कहने वाले से ही रुष्ट होता था, उस तरह का व्यवहार उसने बन्द कर दिया। अब तो वह किसी एक सेवक पर अपनी कृपा-दृष्टि को स्थिर रखना कठिन समझने लगा था। योग्य और अयोग्य व्यक्ति के साथ उचित और अनुचित व्यवहार का विचार नित्य किया करता था। इसीलिए उसकी कृपा-दृष्टि किसी एक सेवक पर स्थिर न रहकर नवीन-नवीन सेवकों पर बदलती रहती थी।

उस समय क्षेम नामक एक बालभंजक अर्थात् नापित (नाई) पर राजा की विशेष कृपा-दृष्टि हो गई थी। उसकी सेवाओं से राजा अधिक सन्तुष्ट हो चुका था। इसीलिए राज्य-सम्बन्धी कार्यों मे उसे भी थोडे-से अधिकार प्राप्त हो चुके थे। उन सब अधिकारों को काम मे लाते हुए उसने द्वादश-भाग आदि नवीन कर लगा दिये और फिर उनसे राजा के कोष को धन से पूर्ण करने लगा।

क्षेम नामक नाई के बाद त्रिगर्त देश का निवासी एक ब्राह्मण आया । उसका नाम केशव था । वह अपने समय का बड़ा विद्वान् और अधिक सज्जन था । उसकी विद्वत्ता और सज्जनता का प्रभाव राजा के ऊपर विशेष रूप से पड़ा । वह तुरन्त राजा द्वारा सम्मानित होकर राज-कृपा का पात्र बन गया । अल्प समय मे वही राजा का मत्री हो गया । जिस प्रकार पूर्णमासी के चन्द्रमा की चांदनी से प्रकाशित बड़े-बड़े चूने से पुते हुए महल शोभा पाते हैं उसी प्रकार उस केशव नामक मत्री के योग से राजा अनन्तदेव शोभा पाने लगा ।

थोड़े ही दिनो के बाद उस केशव के भाग्य ने पलटा खाया । एक दिन पहले जो केशव राजमन्त्री के पद से गौरवान्वित होकर अपने को धन्य समझ रहा था, दूसरे ही दिन वह राजमंत्री केशव दरिद्र होकर एकाकी भटकता हुआ लोगो को दृष्टिगोचर हुआ । इसीलिए स्वीकार करना पड़ता है कि भाग्य-रूपी बादल के साथ चमकने वाली सम्पत्ति-रूपी सौदामिनी (बिजली) कभी किसी के निकट चिरकाल तक स्थिर नही रहती है । सम्पत्ति तो नित्य भाग्य के ही अधीन रहती है । फिर भी मोह के आकर्षण से मुग्धमति लोग उसका, अधिकार का और वश का मिथ्या अभिमान किया करते हैं ।

गौरीश्वर के मन्दिर मे भूति नामक एक वैश्य था । वह वहाँ चौकीदारी का काम किया करता था । हलधर, वज्र और वराह नामक उसके तीन पुत्र थे । उसमे से हलधर रानी सूर्यमती का सेवक था । वह बड़ा चतुर और बुद्धिमान् था । उसकी सेवाओ से रानी नित्य प्रसन्न रहा करती थी । थोड़े ही दिनो मे वह राज-दम्पति का कृपा-पात्र बन गया । उसकी क्रमश पदोन्नति और मानवृद्धि होने लगी । फिर वह बढ़ते-बढ़ते सर्वाधिकारी हो गया था ।

बुद्धि की तीक्ष्णता और व्यवहार की कुशलता के साथ ही साथ उसमे नीतिनिपुणता की मात्रा भी अधिक थी । इन तीनो गुणो के प्रभाव से उसने छोटे-छोटे सामन्तो को अपनी आज्ञा के अधीन कर लिया था । उसके इस कार्य से चकित होकर राजा और रानी प्रत्येक कार्य मे उसका मुख देखा करते थे । क्षेम नामक नापित ने पादाग्र नामक जिस नवीन पद को निर्माण किया था, हलधर ने उसी पद को अपनी अलौकिक बुद्धिमत्ता के प्रभाव से सर्वश्रेष्ठ मत्री का पद बना दिया । उन दिनो यही पद सर्वापेक्षा महत्वपूर्ण और गौरवशाली समझा जाने लगा था ।

प्राचीन शासन-विधान के अनुसार राज्य के अधिकारी को यह अधिकार था कि वह राज्य के अन्तर्गत कितना स्वर्ण है उसका पता लगाकर उसकी परीक्षा करे । फिर उसे तौलकर उसका मूल्य निश्चय करे और उस पर राजकीय मुद्रा अकित करे । इस प्रकार के अधिकार से राजा को प्रजा की सम्पत्ति का पता लग जाता था जिससे कि प्रजा के अहित की सभावना ही अधिक थी । परन्तु उस ज्ञानी हलधर ने यह तुरन्त समझ लिया कि राजा अनन्तदेव के बाद के राजा लोग इस अधिकार की आधारशिला पर प्रजा की सम्पति का अपहरण करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के उपायो की रचना करने लगेंगे और बड़ी निर्दयता के साथ असहाय प्रजा को कष्ट देना भी आरम्भ कर देंगे, ऐसा सोच-समझकर और पुन पूर्ण रूप से विवेचना कर उसने उस अधिकार को बन्द कर दिया ।

राजकीय अश्वशाला के कर्मचारी राजा के कृपा-पात्र बन जाने के कारण बड़े उद्दण्ड हो चुके थे । वे सब लोगो के धन को तथा उनकी स्त्रियो का अपहरण करने मे तनिक भी सकोच नही करते थे । उनके इस अत्याचार के कारण प्रजा-मात्र को अधिक कष्ट था । हलधर ने उन सबो के

प्रति ध्यान दिया और अपराध करने वाले कर्मचारियों को खूब डांटा। उसके डाँटने पर भी जिन कर्मचारियों ने अपनी गतिविधि मे परिवर्तन न किया और पूर्ववत् अपराध करने की रीति को ही अपने जीवन का मुख्य ध्येय समझा, उन सबको प्राणदण्ड देकर उसने प्रजा के कष्ट को शान्त कर दिया।

इस प्रकार के लोकोपकारी कार्यों के कारण हलधर राजा और प्रजा दोनो का ही प्रिय पात्र बन गया और वह भी जनता के कष्ट को दूर करने मे निरन्तर तत्पर रहने लगा। इसके बाद वह वितस्ता और सिन्धु के परम पुनीत सगम स्थान को सर्वापेक्षा अधिक सुशोभित करने का विचार करने लगा। अपने उसी विचार के अनुसार उसने उस स्थान पर सुवर्ण से अलङ्कृत मन्दिर और मठ आदि निर्माण कराये तथा अग्रहार आदि भी विद्वान ब्राह्मणो को दिये।

जिस प्रकार हलधर दानशील था उसी प्रकार उसके भाई भी दानशील थे। कहा जाता है कि लक्ष्मी के परिचय से उन्माद अर्थात् उत्कर्ष को प्राप्त हुए उसके भ्राताओ और पुत्रो ने दान-प्रणयिता अर्थात् दान देने का प्रेम अथवा मदोदक के वर्षण को कदापि नही त्यागा। हलधर के भ्राता वराह का पुत्र बिम्ब था। वह राजा अनन्तदेव के यहाँ द्वाराधिकारी के पद पर कार्य करता था। उसके पास भी अपार सम्पत्ति थी। जिस प्रकार प्रलय-काल के मेघ निरन्तर जल की वृष्टि किया करते है उसी प्रकार वह भी निरन्तर अत्यन्त उदारतापूर्वक लक्ष्मी का दान किया करता था।

श्रीमान् बिम्ब जितना दानशील था उतना ही वीर योद्धा भी था। वह डामरो के कुल के लिए अकाल मृत्यु के समान परम भयकर और घातक था। वह राजद्रोही खश लोगो के साथ युद्ध करने के लिए गया। उस समय उसके साथ अधिक सैनिक न थे। फिर भी उसने अपने इरादे को नही बदला। असीम साहस के साथ वह बढ़ता ही गया। युद्ध के मैदान मे वह खश लोगो से बडी वीरता के साथ लडा। जब सभी ओर से घिर गया तब प्राणो की रक्षा करता हुआ बडी देर तक लडता रहा। उस समय वह किसी प्रकार शत्रु के घेरे से भाग जाना चाहता था किन्तु जब उसका कोई भी प्रयत्न सफल न हुआ तब उसने प्राणपण से युद्ध करना आरम्भ कर दिया और अन्त मे वीरतापूर्वक प्राण त्याग कर स्वर्गलोक को सिधार गया।

अपने अन्य वीर योद्धाओ के समान राजा अनन्तदेव भी वीरता मे अद्वितीय था। उसने अनेक राजाओ पर विजय प्राप्त की थी। चम्पा के राजा साल मे जब अभिमान की मात्रा अधिक बढने लगी तब राजा अनन्तदेव ने उसे तुरन्त राज्य से च्युत कर दिया और उसके स्थान पर नवीन राजा को नियुक्त कर दिया।

कई बार राजा अनन्तदेव ने विचारशून्य शूरता पर भरोसा किया फिर उसी भरोसे पर परदेशो मे हठपूर्वक प्रवेश किया। उसका परिणाम यह हुआ कि उसे बडे-बड़े सकटो मे फँसना पडा था। एक बार उसने तुक्क राजा के पुत्र कलश पर आक्रमण किया था। उससे उसके साथ के समस्त सैनिक थक गये थे और वह बड़ी विपत्ति मे फँस गया था। उस समय हलधर ने बडी चतुरता से उसे वल्लालपुर से छुडाया था।

इसी प्रकार जिस समय राजा अनन्तदेव ने उरशा पर आक्रमण करने के लिए ससैन्य प्रस्थान किया था उस समय शत्रु ने उसका रास्ता बन्द कर दिया था। जब आगे बढने का कोई भी मार्ग न दिखाई पडा तब राजा को अधिक चिन्ता होने लगी थी। साथ मे सेनापति के पद को सुशोभित करने वाला हलधर था। उसने राजा के मनोगत भावो को समझ लिया और धैर्य

धारण करने के लिए राजा से निवेदन किया। इसके बाद उसने आगे बढ़ने के मार्ग को तुरन्त साफ कर दिया। इस प्रकार अपनी कार्यकुशलता से उसने राजा के निकलने की सुविधा कर दी थी।

इस प्रकार शत्रु से युद्ध करते समय क्षण-क्षण मे राजा अनन्तदेव के राज्य में अनेक आकस्मिक उपद्रव हुआ करते थे। भद्रेश्वर का पुत्र द्वाराधिपति राजेश्वर और बहुत-से शूर पुरुष क्रम राज्य के रहने वाले डामरो के द्वारा मारे गये। इसके बाद राज्य मे अनेक प्रकार के उथल-पुथल होने लगे। हलधर के विरुद्ध भी लोग षड्यन्त्र की रचना करने लगे। जिस हलधर ने अपनी न्यायोचित नीति के अनुसार सेवाओ द्वारा राजा और प्रजा दोनो का हित-साधन किया था, वही अब लोगो की दृष्टि मे शूल के समान खटकने लगा था।

यह सभी जानते थे कि हलधर से बढ़कर दूसरा कोई भी पुरुष सच्चा राजभक्त नहीं है फिर भी उसे अपमानित करने के उपाय किये जाने लगे थे। इसीलिए कहा गया है कि जो व्यक्ति राज-मन्दिर मे नीति की दृष्टि से कार्य को अच्छी तरह से देखकर और नित्य डरते हुए सभी प्रकार के व्यवहार करता है, उसे किसी न किसी दिन अपमानित होना ही पड़ता है।

पवित्र चरित्र रखने पर भी हलधर के विरुद्ध यह प्रचार किया गया कि वह रानी सूर्यमती देवी के पास निरन्तर जाया करता है और इसीलिए उसके चरित्र पर सन्देह करने का कारण आप ही आप उत्पन्न होता गया। इस प्रकार न कहा जा सकने वाला मिथ्या कलक उस पर लगाया गया। मिथ्या प्रचार का ऐसा प्रभाव पड़ा कि आशाचन्द्र आदि राजपुरुषो ने क्रुद्ध होकर उस कलकित हलधर को बाँध लिया और फिर राजा अनन्तदेव के सामने उसे उपस्थित किया।

समस्त वृत्तान्त को सुनकर राजा के भी क्रोध की सीमा न रही। उसने न तो प्रमाण चाहा और न उचित न्याय ही किया। उसने तुरन्त हलधर का सर्वस्व छीन लेने की आज्ञा दे दी और कारावास के दण्ड का भी आदेश दे दिया। बात की बात मे हलधर का सर्वस्व छीन लिया गया और उसे राजा के आदेशानुसार कारावास के क्लेश भी सहने पडे। भाग्य का प्रभाव सारहीन अथवा चचल होने के कारण किसी को भी जीवन में बराबर एक समान सुख अथवा दुख नहीं मिल सकता। कुछ समय के बाद राजा अनन्तदेव ने हलधर को कारावास के बन्धन से मुक्त कर दिया।

जिस प्रकार सुख के दिनो के बाद दुख के दिन आये थे उसी प्रकार दुख के दिनो के बाद सुख के दिन पुन आ गये। ज्यो ही राजा ने हलधर को कारावास से मुक्त किया त्यो ही श्वेत छत्ररूपी सलज्ज और प्रसन्न मुख वाली राजलक्ष्मी ने फिर से उसका आलिगन किया अर्थात् वह पुन अपने अधिकार पर नियुक्त कर दिया गया। जिस प्रकार लोगो को वर्षाकाल मे कभी सूर्य की प्रखर धूप और कभी मेघो की शीतल छाया का अनुभव करना पड़ता है, उसी प्रकार उस हलधर को भी रानी सूर्यमतीदेवी के क्षणिक कोप और क्षणिक प्रसन्नता का बार-बार अनुभव करना पड़ता था।

धीरे-धीरे राजा अनन्तदेव के भाग्य-रूपी आकाश पर आपत्तियो के मेघ मँडराने लगे। यों तो वह बड़े ही सरल स्वभाव का था किन्तु पूर्ण रूप से पत्नी का परम आज्ञाकारी बनकर रहना ही उसके लिए अनेक दुष्परिणामो का कारण हो गया। हलधर आदि बुद्धिमान् मन्त्रियों ने राजा को समझाते हुए कहा, "महाराज! आपने राज्य-सम्बन्धी अपने समस्त अधिकारों का त्याग कर बड़ा अनुचित कार्य किया है। यदि अब भी सावधान होकर आप अपने अधिकार को

नही ग्रहण करते है तो आगे चलकर आपको अपने किये पर विशेष रूप से पश्चात्ताप करना पडेगा।"

इसमे सन्देह नही कि मंत्रियो द्वारा समझाये जाने पर राजा के विचारो मे परिवर्तन होने के लक्षण दिखाई पडने लगे थे किन्तु ज्योही रानी सूर्यमती देवी से मिला त्योही वह पूर्ववत् हो गया। अपने पुत्र कलश पर रानी का स्नेह अधिक था, इसलिए रानी की प्रेरणा से वह स्वय राज्य के अधिकार को छोड कर अपने पुत्र कलश को राज्य देने के लिए उत्कण्ठित हो गया।

इसके बाद उसने अपने मत्री रणादित्य को राज्याभिषेक की सामग्री एकत्रित करने के लिए नियुक्त किया। उस मंत्री ने राजा के आदेश को सुनकर उसे समझाते हुए कहा, "महाराज ! आपको पुन इस कार्य के परिणाम पर पूर्ण रूप से विवेचना कर लेनी चाहिए, नही तो आगे चलकर आपको घोर पश्चात्ताप करना पडेगा। और उस समय राजनियमो के अनुसार कोई भी मत्री अथवा सहायक आपकी कुछ भी सहायता नही कर सकेगा।"

इस प्रकार के वचनो से समझाया जाने पर भी राजा अनन्तदेव ने कुछ भी ध्यान न दिया और उससे अपने पुत्र कलश के लिए राज्याभिषेक की तैयारी करायी। राजा के आदेश को शिरोधार्य कर रणादित्य ने राज्याभिषेक-सम्बन्धी समस्त सामग्रियो को यथाशीघ्र एकत्रित किया और फिर लौकिक वर्ष चार हजार उनतालीस के कार्तिक महीने की शुक्ला षष्ठी को राजा अनन्तदेव ने अपने पुत्र कलश का राज्याभिषेक कराया।

उसके बाद राज सभा भवन मे सिंहासन पर बैठे हुए नवीन राजा कलश के सम्मुख अन्य राजपुत्र और सामन्तो का नाम लेकर परिचय कराते हुए नियम-पालन मे अत्यन्त कठोर उस रणादित्य ने नवीन राजा के वास्तविक महत्त्व का विचार किया। जब समस्त मुख्य-मुख्य व्यक्तियो का परिचय कराया जा चुका तब नियमानुसार भूतपूर्व राजा अनन्तदेव का भी परिचय कराया जाना उचित समझा गया। उस समय रणादित्य ने अनन्तदेव की गर्दन पर हाथ रखकर नवीन राजा कलश से निवेदन करते हुए कहा "महाराज ! यह राजपुत्र अनन्तदेव भी श्रीमान् की सेवा मे उपस्थित है।"

इस प्रकार के उद्दण्ड व्यवहार से अनन्तदेव को क्रोध आ गया। उसने तुरन्त गर्दन फेर कर उसकी ओर रक्तवर्ण नेत्रो से देखा। उसके मनोगत विचारो को समझकर नीति के पालन मे निष्ठुर रणादित्य ने हँसकर स्पष्ट शब्दो मे कहा, "श्रीमन् ! मैंने आपके साथ किसी भी प्रकार अनुचित कार्य नही किया है अतएव आप व्यर्थ मे क्रोध करने का दुस्साहस न करें। आपको स्मरण रखना चाहिये कि यह परम प्रतापी महाराज काश्मीर-नरेश की राजसभा है। इस सभा मे कान्यकुब्ज आदि लोकप्रसिद्ध देशो के नरेशो का भी परिचय इसी प्रकार महामहिम राजा के सम्मुख निवेदन किया जाता है। जब राज्याधिकारी पुरुषो के लिए ऐसा नियम है तब आप जैसे राज्य को त्याग करने वाले अधिकारशून्य पुरुषो के लिए कौन-सा नवीन नियम हो सकता है ? मैं तो काश्मीर-नरेश का राजभक्त सेवक हूँ और मन्त्री होने के कारण स्वय राजनियम के कठोर बन्धनो से बँधा हुआ हूँ। कर्त्तव्य-पालन मे त्रुटि न करने वाला मैं किसी भी दशा मे आप के क्रोध का कारण नही हो सकता। आपने स्वयं अपने को जिस योग्य बनाया है वैसा ही व्यवहार आप के प्रति किया गया है। अब आपको अवश्य प्रतिदिन पश्चात्ताप करना पडेगा क्योकि बड़े-बड़े तपस्वी और मननशील ऋषि-मुनियो से भी अभिमान का त्याग नही किया जा सकता है। आप तो साधारण मनुष्य हैं।"

इस प्रकार के अत्यन्त दूरदर्शी मन्त्रियों के मन को आकर्षित करने वाले मार्मिक वचनों को सुनकर राज्याधिकार त्यागनेवाला वह अनन्तदेव कुछ भी उत्तर न दे सका। ज्यों-त्यों करके वह दिन समाप्त हुआ। दूसरे ही दिन से नवीन राजा कलश सम्पूर्ण राज-मण्डल से सुसेवित और परिवेष्ठित हो गया। साथ ही साथ प्राचीन राजा को अर्थात् राज्य के अधिकार को छोड देने वाले उस अनन्तदेव को थोडे-से इने-गिने सेवक दे दिये गये। उनकी यह दशा देखकर विचार-शील हलधर को बडा दुख हुआ। उसने बनावटी क्रोध के आवेश मे आकर अनन्तदेव से कहा "मैं पहले यह समझता था कि आप बडे बुद्धिमान् और परोपकारी पुरुष हैं किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया कि आप से बढकर मूर्ख और स्वार्थी पुरुष इस ससार मे दूसरा कोई नही है। यद्यपि आप ससार के सभी सुखो का उपभोग पूर्णरूप से कर चुके हैं तथापि आज भी आप की न तृप्त होने वाली तृष्णा ज्यो की त्यो बनी हुई है, तभी तो आपने इस वृद्धावस्था मे केवल अपने ही सुख की ओर ध्यान दिया और फिर किसी दूसरी ओर ध्यान देना उचित भी न समझा। आप यह जानते थे कि आपका पुत्र अभी बालक ही है फिर भी किसी का कहना न मानकर उस कोमल बालक के ऊपर आपने राज्य का सम्पूर्ण गुरुतर भार रख दिया है। इतना ही नही, उसके जीवन के सभी सुखो का उच्छेद भी कर डाला है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इतना अन्यायपूर्ण कार्य करने पर भी आप तनिक भी लज्जित नही हो रहे हैं। यदि आप मे मानवो-चित संस्कारों का कुछ भी प्रभाव शेष रह गया हो तो आपको स्वय सम्पूर्ण राज्य के कार्यों का भार धारण करना चाहिए और वह भी केवल इसी उद्देश्य से कि आपके जीवन का सर्वस्व राजकुमार कलश अपने यौवन के अनुरूप सुखो का उपभोग करने के लिए अधिक से अधिक समय पा सके।"

इस प्रकार की युक्ति से समझाकर उस हलधर ने अनन्तदेव को फिर राज्य-सम्बन्धी कार्य करने के लिए बाध्य किया और उचित उपायो से नवीन राजा कलश को राज्याधिकार से वचित रख दिया। इसके बाद वह कलश नाम मात्र का राजा रह गया था। उसका खाना, पीना, रहना आदि सब माता-पिता के पास होता था। राजसभा, शस्त्र-पूजन आदि राजोचित विधियो को करते समय वह नवीन राजा कलश अपने पिता अनन्तदेव का सहायक बनकर पौरोहित्य अर्थात् प्रतिनिधित्व-सा करता था।

प्राय' यह देखा गया है कि बिना किसी कारण के जो लोग सहसा सन्तुष्ट होने का भाव प्रकट करते हैं और उसी क्षण पलट कर अनुतप्त हो उठते हैं, ऐसे पशु-तुल्य चचल चित्तवाले लोगो का निश्चय किसी के विषय मे भी स्थिर नही हो पाता। ठीक यही दशा रानी सूर्यमती-देवी की भी हुई। पहले तो उसने नाना प्रकार के उपायो द्वारा और विशेष रूप मे आग्रह करके अपने पुत्र को राज्याधिकार दिलाया। जब बिना किसी विघ्न के राज्याभिषेक का कार्य समाप्त हो गया तब बिना कारण के उसको अत्यधिक दुःख हुआ। साथ ही साथ उसका पुत्र-विषयक प्रेम भी न्यून हो गया।

पहले वह अपनी जिन पुत्रवधुओ को राजरानियो के अनुरूप वेष तथा अलकार आदि से सुसज्जित देखकर अधिक प्रसन्न हुआ करती थी, अब वही अपनी उन पुत्रवधुओ के राजरानियो के योग्य आनन्दवर्द्धक उत्कर्ष को देखकर ईर्ष्या से अनुताप करने लगी। पहले वह अपनी किसी

भी पुत्रवधू से गृह-सम्बन्धी कोई कार्य नही कराती थी। यदि कभी कोई पुत्रवधू कोई कार्य अपनी इच्छा से करने भी लगती तो वह उसे रोक देती थी और दासियो से कार्य कराने के लिए सहर्ष कहा करती थी किन्तु अब वह उन सबसे ईर्ष्या करने के कारण दासियो के करने योग्य गृह-सम्मार्जन (घर मे झाडू लगाना), गृह-लेपन (घर-लीपना) आदि कार्य बिना किसी सकोच के कराने लगी। निस्सन्देह उसकी समस्त पुत्रवधुओ मे लोक-मर्यादा का ज्ञान अधिक था इसीलिए बिना किसी तर्क के उन सबो ने रानी सूर्यमतीदेवी को प्रसन्न रखने के लिए सहर्ष उन सब कार्यो के शान्ति के साथ करना स्वीकार कर लिया और कभी भी किसी बात पर विरोध नही किया।

इन समस्त घटनाओ के थोडे ही दिनो बाद किसी समय राजा अनन्तदेव का पितृव्य-पुत्र (चचेरा भाई) अर्थात् विग्रहराज का पुत्र क्षितिराज उसके पास आया। राजा अनन्त देव ने उसका यथोचित सम्मान के साथ स्वागत किया। भोजन आदि से निवृत्त होकर जब वह एकान्त मे राजा से मिला और उससे आने का कारण पूछा गया तब वह बडे दु.ख के साथ अपने हृदय को सन्तप्त करने वाले असहनीय दु ख को कहने लगा।

समस्त वृत्तान्त को आदि से लेकर अन्त तक कहते हुए उसने कहा, "सबसे अधिक दु ख की बात यह है कि अपने जिस पुत्र भुवनराज को मैंने अपने प्राणो से भी अधिक माना और सब तरह से प्रसन्न रखने के लिए पूर्ण रूप से प्रयत्न किया वही अब राज्य के लोभ मे पडकर विद्रोही बन गया है। सभी प्रकार के घातक उपायो से वह अपने उद्देश्य मे सफल होने का प्रयत्न कर कर रहा है। इस समय उसे नीलपुर राज्य का आश्रय मिल गया है। वहाँ का आश्रय पाने के कारण वह अपने को अधिक बलवान् समझने लगा है। कहने की आवश्यकता नही कि वहाँ की समस्त सैनिक-शक्ति उसकी सहाता करने के लिए तैयार है। किसी भी समय वह मेरे राज्य पर आक्रमण कर सकता है।"

राजा अनन्तदेव ने उसकी समस्त बातो को ध्यानपूर्वक सुन लिया। कुछ देर मौन रहकर क्षितिराज ने पुन कहना आरम्भ किया, "सत्य कहता हूँ कि भुवनराज का हृदय पूर्ण रूप से कलुषित हो चुका है। उसके सुधार का अब कोई भी उपाय नही हैं। मैं उसकी अपवित्र कार्यावलियो का वर्णन कहाँ तक करूँ? थोडे मे इतना ही समझ लेना चाहिए कि उसके कार्य कहे जाने के भी योग्य नही है। जिस ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत, जनेऊ) को सुसस्कार-सम्पन्न द्विजाति के लोग बडी श्रद्धा के साथ धारण करते है, उसे उसने अपने यहाँ के कुत्तो के गले मे पहना दिया है और जिन बडे-बडे वैष्णव भक्तो को मैं बडी श्रद्धा के साथ, अपना पूजनीय मानता हूँ उसने उन्ही सब के नामानुसार उन कुत्तो के नाम रख दिये है। इतना ही नही, मेरी धर्मपत्नी भी मेरे विरुद्ध हो गई है। इससे अधिक मेरे लिए दु ख का और कौन-सा विषय हो सकता है।"

राजा अनन्तदेव ने क्षितिराज से कहा, "निस्सन्देह तुम्हारा यह वृत्तान्त बडा ही दु खद है। बोलो, मैं इस दशा मे किस प्रकार तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ?"

उत्तर देते हुए क्षितिराज ने कहा, "जीवन की इन घटनाओ से मेरी बुद्धि आप ही आप निर्मल हो चुकी है। माया से उत्पन्न होने वाली सासारिक सुखो की इच्छा नष्ट हो चुकी है। मैंने यह भी समझ लिया है कि मेरे मन मे जितने भी ताप हैं उन सबको दूर करने वाला सर्व-सग-त्यागी-रूपी अमृत ही है और अब मैं उसी अमृत की ही इच्छा करने लगा हूँ किन्तु इसके पूर्व मैं अपने राज्य का कोई उत्तराधिकारी बना देना चाहता हूँ।"

उसकी बातों को सुनकर राजा अनन्तदेव आश्चर्य करने लगा। फिर अनेक तर्क-वितर्क के बाद उस क्षितिराज ने रामलेखा नामक रानी के उदर से उत्पन्न हुए राजा कलश के द्वितीय पुत्र उत्कर्ष को अपने राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया। यद्यपि उस समय, उत्कर्ष गोद का नन्हा-सा बच्चा ही था तथापि उसने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया। इसके बाद वह राजर्षि भगवद्भक्त विद्वानों के साथ तीर्थसेवन करने लगा। वह परम वैष्णव अनेक वर्षों तक शान्ति के सुख का अनुभव कर चक्रधर तीर्थ में श्रीचक्रधर (विष्णु) के सायुज्य को प्राप्त हो गया।

उन दिनों वह राजा क्षितिराज और भोजराज (धारा नगरी के राजा भोज) दोनों ही परम प्रसिद्ध महादानी थे और अपने समय के बहुत बड़े विद्वान् भी थे। इतना ही नहीं, वे कवि-बान्धव (कवियों के स्नेही अथवा कवियों का उचित सम्मान करने वाले) भी थे। इसलिए आज भी उन दोनों राजाओं का नाम विद्वानों के समक्ष में बड़ी श्रद्धा साथ लिया जाता है।

जब क्षितिराज उत्कर्ष को अपना उत्तराधिकारी बनाकर चला गया तब राजा अनन्तदेव ने अपने पौत्र उत्कर्ष को अपने पिता के चचेरे भाई तन्वगराज के उत्संग अर्थात् गोद में धरोहर के रूप में रख दिया था। तात्पर्य यह कि तन्वगराज को उस शिशु उत्कर्ष का पालक बना दिया था।

तन्वगराज बड़ा कर्त्तव्यपरायण और राजनीति का कुशल ज्ञाता था। अपनी अपूर्व प्रतिभा और योग्यता का उपयोग करते हुए उसने उस शिशु राजा को तथा उसके राज्य को खूब बढ़ाया। जब शिशु राजा उत्कर्ष प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हुआ तब वह तन्वगराज राज्य के कार्यों का भार उसे देकर काश्मीर में चला आया और फिर चक्रधर तीर्थ में अपने जीवन को समाप्त किया।

यद्यपि काश्मीर राज्य के शासन-विधान और शासन करने वाले पुरुषों में उस समय तक भिन्न-भिन्न प्रकार के परिवर्तन और विचारों में मनोमालिन्य को उत्पन्न करनेवाले मतभेद उत्पन्न हो चुके थे तथापि यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उस समय तक सम्पूर्ण राजोचित उपभोगों को समानता से अनुभव करने वाले राजवंशजों को द्रोहरूपी कलंक नहीं लगा था।

इन्दुराज के पुत्र का नाम बुद्धराज था। उसी बुद्धराज का पुत्र सिद्धराज था। सिद्धराज के यहाँ जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम वीर मदनराज रखा गया। उस वीर मदनराज का पुत्र जिन्दुराज हुआ। वह बड़ा अभिमानी था। शूरता की पराकाष्ठा से सुशोभित वह वीर राजा को स्वयं पर रुष्ट हुआ जानकर वहाँ से दूर देश को चला गया।

उस समय राजा अनन्तदेव के राज्य में डामरों की प्रबलता बढ़ती ही जा रही थी। सभी प्रकार के उपाय किये जाने पर भी डामरों को अपने वश में कर सकना राजा के लिए कठिन हो रहा था। ज्यों-ज्यों उन सबों को शान्त रखने का प्रयत्न किया जाता त्यों-त्यों वे सब, अधिक उपद्रव करने लगते थे। उनके त्रास से व्याकुल हुई स्वयं रानी सूर्यमती ने उस जिन्दुराज को अपने यहाँ बुलाकर मंत्री के पद पर नियुक्त किया।

उस समय देग्राम का रहने वाला शोभ नामक एकाक्ष (काना) डामर राजा को अत्यंत उद्विग्न कर रहा था। मंत्री के पद पर नियुक्त होते ही जिन्दुराज ने उसे तुरंत पकड़वा कर मरवा डाला। उसकी इस वीरता से राजा अनन्तदेव को बड़ी प्रसन्नता हुई। रानी सूर्यमतीदेवी के हर्ष का ठिकाना न रहा। इसके बाद राजा अनन्तदेव ने उस प्रतापी वीर जिन्दुराज को

कम्पनाधिपति का पद प्रदान कर दिया और फिर उसके द्वारा राजपुरी आदि स्थानो के राजाओ से कर वसूल करना आरभ किया ।

राजा अनन्तदेव के राज्य-शासन-सम्बन्धी कार्य मे आने वाले अनेक सकटो के समय सहारा देने वाली लाठी के समान परमसहायक अमात्य हलधर मृत्यु को प्राप्त हो गया । जब राजा अनन्तदेव को यह समाचार प्राप्त हुआ कि परम राजभक्त अमात्य हलधर चक्रधर तीर्थ मे मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ है तब उसे बडा कष्ट हुआ । किसी प्रकार अपने कष्ट के आवेग को रोककर रानी सूर्यमती के साथ राजा अनन्तदेव उस हलधर के पास उसका अतिम उपदेश सुनने के लिए गया था ।

अपने समीप रानी समेत राजा को आया हुआ देखकर हलधर ने अपने जीवन को धन्य समझा और फिर बड़े आदर के साथ बैठाकर कहा, "महाराज ! मेरा मृत्यु-काल समीप आ चुका है । जीवन के सुख और दुःख का अनुभव करने के बाद अब मैं सर्वदा के लिए इस संसार से विदा होने वाला हूँ । आप राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले उपदेश सुनना चाहते है । यो तो यह विषय बहुत जटिल और असीम है, फिर आपकी इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न अवश्य करूँगा । सक्षेप मे इतना ही कहना चाहता हूँ कि पर राष्ट्रो पर सहसा अविचारपूर्वक कदापि आक्रमण नही करना चाहिए । क्योकि मैंने आपको इस सकट से बल्लापुर आदि स्थानो पर बडी युक्ति से बचाया था । दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि आप की कृपा से जिन्दुराज भी बहुत बढ गया है । यदि और अधिक बढ़ गया तो फिर आप इसे अपने वश में नही रख सकेंगे, इसलिए अभी से इस पर पूर्ण रूप से सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए । तीसरी बात यह है कि जयानन्द आपके पुत्र के साथ आपका विरोध करा देगा, इसलिए इस ओर भी आपको सावधान रहना होगा ।"

इस प्रकार राजा अनन्तदेव और रानी सूर्यमतीदेवी को समझाकर नीतिकुशल परम विद्वान् हलधर स्वर्गधाम को सिधार गया । उसकी मृत्यु के थोडे ही दिनो बाद उसके उपदेशो का स्मरण कर राजा अनन्तदेव ने उचित उपायो का अवलम्बन किया और फिर उस पराक्रम-शाली जिन्दुराज को निःशस्त्र अवस्था मे शाही वश मे उत्पन्न हुए बिज्ज के द्वारा बँधवा लिया ।

इस घटना के बाद दुष्ट सेवको के द्वारा राजा कलश का हृदय अत्यन्त कलुषित कर दिया गया, इसलिए वह उस कुमार्ग का पथिक बन गया जिस कुमार्ग पर साधारणतया दुष्ट स्वभाव के मनुष्य ही चला करते हैं । शाही वश के नाम को कलकित करने वाले बिज्ज, पित्थ, राज, पाज आदि चार राजपुत्र उस राजा कलश के स्वेच्छाचार मे नित्य उत्तेजना देने लगे थे और इसीलिए वे सब उसके सर्वापेक्षा अधिक प्रेम-पात्र बन गये थे ।

उन्ही लोगो के समान गजपति (कोषाध्यक्ष) नाग का पुत्र जयानन्द भी अत्यन्त अन्तरग सेवक और कुटिलता का अध्यापक बन गया था । परम तपस्वी द्विजेन्द्र अमरकण्ठ के शिव स्वरूप हो जाने के बाद उसके पुत्र प्रमदकण्ठ को राजा कलश ने अपना गुरु बना लिया था । जैसा राजा कलश था वैसा ही वह प्रमदकण्ठ भी था । दुर्जनो के कुसग मे पडकर राजा कलश स्वेच्छाचारी हो ही चुका था । चरित्र की पवित्रता को जयानन्द आदि ने पहले ही नष्ट कर दिया था ।

अब मनचाहा गुरु प्रमदकण्ठ भी मिल गया । जो कुछ सच्चरित्रता का अश उस राजा कलश मे शेष रह गया था उसको भी मिटा देने वाला परम लम्पट गुरु के रूप मे वह आ गया । राजा

कलश के मनोनीत उस प्रमदकण्ठ ने स्वभावतः दुश्चरित्र उस राजा को और भी अनेक दुष्कृत्यों का उपदेश देकर उसके हृदय से गम्यागम्य-विवेक (किस स्त्री के साथ सम्भोग करना उचित है और किस स्त्री के अनुचित है, इसका ज्ञान) को दूर कर दिया था।

उस गुरु की निःसन्देहता का वर्णन कहाँ तक किया जाय ? न तो उसका आदर्श प्रशंसनीय था और न वह लोक-मर्यादा का ही रक्षक था। वह तो महालम्पट और स्वेच्छाचार मे अद्वितीय था। इसीलिए उसने शंकारहित होकर अपनी कन्या के भी सुरत-सुख का अनुभव किया था।

परम धूर्त्त विडाल-वणिक नामक एक व्यक्ति उस समय तान्त्रिक के रूप मे पूजा जाता था। वह अपने को महासमय-संचारक कहा करता था। बडा चतुर और स्वभाव से ही उग्र होने के कारण उसका सर्वत्र आतंक छाया हुआ था। वह इतना निर्भीक था कि अपने सामने कालभैरव को भी तुच्छ समझता था। उसके प्रभाव से प्रभावित होकर बडे-बडे विद्वान ब्राह्मण भी उसके चरणो पर घुटने टेक देते थे और त्रास से विह्वल होने के कारण उसके आशीर्वाद की इच्छा करते थे। वह धूर्त्त भी उन समस्त ब्राह्मणो को अपने चरणो में गिरते देख उनके मस्तक पर अपना वरद हस्त रखकर उन्हें क्षण भर मे स्वस्थ कर देता था। उसके इस अलौकिक चमत्कार से लोग आश्चर्य करने लगते थे। इस प्रकार वह धूर्त्त अधिकांश लोगो के द्वारा पूजा जाने लगा था।

पहिले वह एक साधारण वणिक् (वैश्य) था। अपने घर के काम करने मे उसकी तनिक भी रुचि नही थी। मन बहलाने के लिए उसने एक बिल्ली को पाल रखा था, इसलिए लोगों में उसका वास्तविक नाम गुप्त हो गया था और सब लोग उसे विडाल-वणिक के नाम से पुकारने लगे थे। वह प्रारम्भ मे महामूर्ख था। किससे किस प्रकार की बात कहनी चाहिए, इसका भी ज्ञान उसे नही था किन्तु थोडे ही दिनों के बाद उसने बात करने का अच्छा अभ्यास कर लिया।

साधारण-सी बातो पर तर्क करते-करते वह चतुर वक्ता हो गया। जब नाम मात्र के विद्वानो को उसने परास्त कर लिया तब उसका साहस क्रमशः बढ़ता ही गया और आगे चलकर उसने बिना रोकटोक के अपना पाण्डित्य बतलाना आरम्भ कर दिया। इसके बाद ही वह वैद्यक करने लगा। यद्यपि आरम्भ मे उसे अनुभवी व्यक्तियो से कुछ भी प्रोत्साहन नही मिला तथापि वह धीरे-धीरे चमार और धोबी आदि नीच जाति वाले शिल्पियो का गुरु बन ही गया। जिधर जाता उधर ही वह गुरु के समान आदर पाने लगा।

जब उसकी ख्याति बढने लगी तब उसके पास विद्वान तथा प्रतिष्ठित सज्जन भी आने लगे। उनके आते ही वह मारे अभिमान के फल जाता था और फिर उनके मस्तक पर विडाल की विष्ठा और हीग की गन्ध से युक्त अपना हाथ रखकर उन्हे रोग से मुक्त करने का पाखड रचता था।

इस प्रकार स्वभावत. सारहीन होने पर भी सर्वदा मिथ्या गर्जना करते हुए मेघों के समान उन धूर्त्त गुरुओ से वह राजा कलश दिवस के समान अन्ध (अन्धकारमय अथवा विवेकान्ध) बना दिया गया था।

विडाल-वणिक के ही समान धूर्त्त और लम्पट चमक नामक एक चारण था। वह बांसुरी बजाने मे बडा निपुण था। उसमे सबसे बडा दुर्गुण यह था कि वह हठात् स्त्रियो को सच्चरित्रता से भ्रष्ट कराने के कार्य मे सिद्धहस्त था। वह दिनरात गाने-बजाने वालो के साथ रहा करता था। वे गाने-बजाने वाले भी ही घृणित आचरण वाले थे। दिन में सोना और रात मे जागना उनका मुख्य कर्म था।

जब वे खाने बैठते तब इतना अधिक खा जाते कि हजम करने मे भी कठिनाई होने लगती थी। मास खाने मे इतने पटु थे कि अजीर्ण हो जाने के कारण दुर्गन्धमय डकारो से वे समीप का वातावरण घृणापूर्ण कर देते थे। जिस प्रकार मोरी की नाली से पानी बहा करता है अथवा कण्ठनाल के द्वारा शौच के समय नीचे की ओर जल प्रवाहित होता है उसी प्रकार वे सब अधिक से अधिक मात्रा मे मदिरापान किया करते थे। ऐसे गाने-बजाने वाले चमक नामक चारण के परम मित्र थे और वह उन्ही लोगो के साथ रहा करता था। एक बार हलधर के पुत्र कनक ने मदिरामद से उन्मत्त होकर क्रोध से उस चमक को अपने सेवको द्वारा खम्भे से बँधवा दिया था और फिर उसकी नाक काट डाली थी।

यद्यपि वह देखने मे भयानक अशुभरूप हो गया था तथापि लज्जाहीनता के कारण वह सर्वदा इधर-उधर भ्रमण कर बाँसुरी बजाया करता था। उसकी उस कला से मुग्ध होकर लोग उसके भोजन आदि का प्रबन्ध कर देते थे। धीरे-धीरे उसका और साथी गाने-बजाने वालो का भाग्य चमकने लगा, अर्थात् जो दुर्जन राजा कलश के प्रिय पात्र बने हुए थे, वही उसके सहायक बन गये। फिर उस बेटे ने अपने कुटनेपन के द्वारा धीरे-धीरे राजा कलश का प्रेम प्राप्त कर लिया था।

उसकी सेवाओ से राजा कलश को बडी प्रसन्नता हुई। अपने जीवन को सुख पहुँचाने वाली जिन वस्तुओ के लिए वह लालायित रहा करता था, चमक उन समस्त वस्तुओ को तुरन्त उसकी सेवाओ मे उपस्थित कर अपने सम्बन्ध मे राजा के हृदय मे अलौकिक चमत्कार उत्पन्न कर देता था। धीरे-धीरे राजा की असीम कृपा से उसको मन्त्रि-मण्डल मे धन और सम्मान प्राप्त हुआ। इसके बाद थोडे ही दिनो मे मन्त्रि-पद के साथ ही प्रतिष्ठासूचक ठक्कुर-पदवी भी प्राप्त हो गई।

संसार मे प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा को पाते ही उसने अपने वंशवालो को अपने लिए लज्जा का कारण समझ लिया। वह यह नही चाहता था कि उसके साथ समानता का सम्बन्ध प्रमाणित करने वाले उसके वंशजो मे एक भी जीवित रहे। अपनी इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसने उन सबका शीघ्र ही उच्छेद कर डाला था। इसलिये अनायास होने वाले अपने वश और नासिका के उच्छेदन को भी उसने अच्छा समझा ही होगा क्योकि नाक काटने पर भी उसे मन्त्री का पद प्राप्त हुआ और वंशजो के कटने पर उसकी प्रसिद्धि बढ़ती गई।

उस चमक के प्रोत्साहन से राजा कलश का दुराचरण बहुत अधिक बढ गया था। उसने लोक-लज्जा को भी त्याग दिया था। साधारणतया जिन स्त्रियो के साथ जगल मे रहने वाली असभ्य जातियो के लोग भी सम्भोग करने मे सकोच करते हैं वह राजा बिना सकोच के उन समस्त स्त्रियो के साथ भी सम्भोग करने लगा था। अपनी उदण्डता और लज्जाहीनता के कारण उसने जो दुष्कर्म किये थे, उन सबका वृत्तान्त भी कहने योग्य नही है। फिर भी कथा-प्रवाह के क्रम को व्यवस्थित रखने के कारण कुछ कहना ही पड़ता है।

दूसरे की स्त्रियो पर आसक्त होने वाले उस दुराचारी राजा कलश ने राजा की भगिनी कल्लना और उसकी कन्या नागा को भी नही छोड़ा। इस बात से सज्जनो के हृदय मे उस राजा के प्रति बडी घृणा उत्पन्न हो गई थी। कहने की आवश्यकता नही कि यह बात राजा अनन्तदेव और उसकी पत्नी रानी सूर्यमतीदेवी को भी विदित हो गई थी परन्तु लज्जा के कारण उन्होने

इस वृत्तान्त को किसी के भी सम्मुख प्रकट करने का साहस नहीं किया था। इस कष्टजनक वृत्तान्त से उन दोनो को जो भयानक हार्दिक दुःख हुआ था उसको दोनो ने चुपचाप अपने हृदय मे ही छिपा रखा था।

राजा कलश का और एक प्रिय पात्र था। उसका नाम मुष्टिलोष्ठक था। पहिले वह ओवन नामक एक ग्राम मे रहा करता था। उस गाँव मे रहकर वह ज्योतिषी पण्डित का काम करता था। गरीब होने के कारण वह लोगो से मुट्ठी-मुट्ठी भर अन्न माँगकर अपना उदर-पोषण करता था। उस समय वह लोष्ठक के नाम से पुकारा जाता था। उससे जो कोई जिस काम के लिए कहता था वह तुरन्त उसका वह काम कर देता था, इसीलिए सभी वर्ग के मनुष्य उससे प्रसन्न रहा करते थे।

निशाचर-वृत्ति के काम मे वह दक्ष था। एक बार अपने इसी कार्य से वह रात्रि में भ्रमण कर रहा था। उस समय ग्राम क्षेत्रपाल से उसकी भेंट हो गई। यहीं से उसके दुर्भाग्य का अन्त हो गया और सौभाग्य का प्रकाश उसे सुख का मार्ग दिखाने लगा। उस ग्राम क्षेत्रपाल के अनुग्रह से मुट्ठी मे रखी हुई गुप्त वस्तु का ज्ञान भी उसे होने लगा। इससे उसका नाम मुष्टि-लोष्ठक पड गया था। ब्राह्मण होने के कारण वह गुरु के समान पूजा जाता था। ज्योतिष-विद्या के प्रभाव से उसका जितना सम्मान होना चाहिए उतना उसे प्राप्त था। इनके सबके अतिरिक्त कुटनेपन के कार्य मे भी वह पारंगत था। इन सब कारणो से वह भी राजा कलश का अधिक प्रिय पात्र बन चुका था।

भट्टारक मठ का अधिपति व्योमशिव परम धार्मिक और कर्मठ भिक्षु था। वह खुर्खुट नामक सिद्धि को प्राप्त करना चाहता था। अपने उस उद्देश्य की सफलता के लिए उसने कठिन से कठिन नियमो का पालन करते हुए उत्तम से उत्तम व्रतो का आचरण किया था, अर्थात् उसने शारीरिक सुखो को तुच्छ समझकर कठोर तपस्या की थी। जिस समय वह पूजापाठ करता था उस समय उसके पूजा-स्थान पर संगीत का होना आवश्यक था। इस अभाव की पूर्ति के लिए उसने मम्म नामक एक गायक को अपने यहाँ रखा था।

वह मम्म अंधा था इसलिए उसका हाथ पकड कर इधर-उधर घुमाने के लिए एक दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता आ पडी थी। उस कार्य के लिए उस व्योमशिव ने मदन नामक एक ब्राह्मण को नियुक्त कर लिया था। वह अवन्तिपुर का रहने वाला था। ब्राह्मण-वंश मे उत्पन्न होने पर भी वह आचार-भ्रष्ट था किन्तु फिर भी अपनी सेवाओ के कारण वह व्योमशिव का प्रिय सेवक बन गया था।

व्योमशिव राजा कलश के पास प्रसाद के फल-पुष्प भेजा करता था। जब उसने यह समझ लिया कि मदन उसकी आज्ञाओ का पालन बडी प्रसन्नता के साथ किया करता है तब उसने उसके साधारण वस्त्र बदलवा दिये और उनके स्थान पर नवीन तथा उत्तम वस्त्र पहिना कर उसे राजा कलश के पास प्रसाद के फल-पुष्प देने के लिए भेज दिया।

फिर तो वह उसी कार्य से प्रतिदिन राजा के पास जाने लगा। जब उसे राजा के यहाँ का समस्त रहस्य विदित हो गया तब उसने अपनी वाचालता को सफल बनाना चाहा। उसकी वाक्‌चातुरी से सभी मुग्ध हो गये। राजा के यहाँ जो दुष्टो का कुट्टन-मण्डल था, उसने उसे भी अपने मे सम्मिलित कर लिया। धीरे-धीरे उन सबो के समान वह मदन भी राजा कलश का अन्तरंग और घनिष्ठ प्रेमपात्र बन गया था।

इसी प्रकार के दूसरे चापलूस, नीच और धूर्तों के वचनों से मोहित होकर कलुषित-हृदय वह राजा कलश दोषो को भी गुण समझने लगा था, अर्थात् उन सबो ने अपने कुतर्कों के जाल से उस राजा को ऐसा फांस लिया था कि वह पापकर्मों को भी सत्कर्म मानने लगा था। जो कोई भी बडी नम्रता के साथ लज्जा को उत्पन्न करने वाले वचन कहता था उसी को वह अपना हित-चिन्तक और उसके वचन को मानने योग्य वाक्य समझता था। प्रजा को पीडित करने वाले जितने भी कार्य हो सकते थे उन सब को करना ही उचित कर्त्तव्य-कर्म समझा जाता था। निर्लज्जता के सभी काम तेजस्विता अर्थात् पुरुषार्थ की सार्थकता के सूचक माने जाते थे और खल पुरुषो के द्वारा दी गई गालियो को शान्तिपूर्वक सहन कर लेना ही सरलता कही जाती थी। इस प्रकार दुष्कर्मों को शुभ कर्म मानने वाले मनुष्य के लिए कौन-सा कार्य बुरा और त्याज्य हो सकता है ?

दुष्ट मनुष्यो के सम्पर्क से राजा कलश का घोर अध पतन हो चुका था। प्रजा मात्र उसकी उद्दण्डता और स्वेच्छाचार से व्याकुल हो उठी थी। विद्वान् और सज्जन पुरुष उस राजा का नाम तक नही सुनना चाहते थे। प्रतिष्ठित घरानो की स्त्रियां अपने सतीत्व की रक्षा के लिए दिन-रात चिन्तित रहने लगी। कुमारी कन्याओ के कौमार्य की रक्षा का प्रश्न दिन-प्रतिदिन जटिल होने लगा। राजा द्वारा सम्मानित दुष्टो के उत्पीडन से सभी ओर त्राहि-त्राहि के शब्द सुनाई पडने लगे। इतने पर भी वह राजा कलश सचेत न हुआ। उसकी मोहनिद्रा बढती ही गई। इन्द्रियजनित सुखो की लालसा और भी अधिक व्याकुल बनाने लगी। विषय-वासना के जाल मे फँसा हुआ वह राजा घोर पापकर्मों की ओर अग्रसर होने लगा।

साधारण लोगो की दृष्टि को बचाकर वह चोरी से सभोग के सुख की अभिलाषा करने लगा। इसलिए वह रात मे चोरो के समान घर-घर भ्रमण करने लगा। राजभवन मे रहने वाली ललनाओ के आलिगन का सुख रात मे उसके लिए प्रीतिकारक अर्थात् सन्तोषप्रद नही होता था। परतन्त्रता के कारण अधिक प्रिय लगने वाली परवधू-रति (दूसरे की स्त्री के साथ सम्भोग की क्रिया) कामियो की अभिलाषा-रूपी अग्नि को अतिशय अधिक जाज्वल्यमान् बनाने मे घी की आहुति का कार्य करती है।

एक बार वह राजा कलश अपने यहाँ के समस्त चापलूसो को साथ लेकर चोरी से सम्भोग के सुख को प्राप्त करने की अभिलाषा से जिन्दुराज के भवन की ओर गया। उसके जाने के पहिले ही दिन किसी समय जिन्दुराज की परमपुंश्चली (अत्यन्त व्यभिचारिणी) स्नुषा (पुत्रवधू) ने राजा कलश को रात मे अपने घर आने के लिए सकेत दिया था। उसी सकेत के अनुसार अपने जीवन को धन्य बनाने के लिए राजा कलश ने अपने साथियो के साथ रात मे वहाँ जाने का साहस किया था।

किन्तु भवितव्यता कौन समझ सकता है ? अपने साथियो के साथ राजा कलश ने ज्यो ही उसके भवन मे प्रवेश करना चाहा त्यो ही उन सबो को देखकर कुत्ते भौंकने लगे। घोर निशा-काल मे सहसा कुत्तो के भयानक रूप से भौंकने के कारण जिन्दुराज के भवन की ड्योढी पर पहरा देने वाले चाण्डाल व्याकुल होकर सावधान हो गये। उन्होने समझ लिया कि कुत्तो ने कही चोरो को प्रवेश करते हुए देख लिया है, इसलिए जिस ओर कुत्ते भौंक रहे थे उसी ओर वे सब अपनी-अपनी तलवार लेकर दौड़ पड़े।

तलवार लिये हुए उन समस्त पहरेदार चाण्डालो को अपनी ओर आते देख कर राजा कलश घबडा गया उसके हृदय की समस्त भोग-लालसा नष्ट हो गई। ज्योही वे सब उसके समीप आये, त्यो ही वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पडा। तब उन चाण्डालो ने अन्धकार मे यह न समझा कि राजा कलश है, बल्कि यह अनुमान कर लिया कि चोरो का मुखिया अवश्य है। ऐसा अनुमान करते ही वे सब उसके ऊपर प्रहार करने का उपक्रम करने लगे। उन पहरेदारों के इरादे को समझकर राजा कलश के साथी पहिले तो कुछ भी अपना कर्त्तव्य स्थिर न कर सके, परन्तु क्षण भर मे ही उसकी पीठ पर अपने शरीर को रखकर उसकी रक्षा करने के प्रयत्न मे तत्पर हो गये।

जब जिन्दुराज के पहरेदार बडी निर्दयता के साथ प्रहार करने लगे और घूसा-लात भी मारते-मारते थक गये तब उन चाण्डालो से "उसे मत मारो। वह राजा कलश है।" ऐसा कहकर उसके चापलूस साथियो ने किसी प्रकार उसे वहाँ से छुडाया।

जिसकी नाक कटी हुई थी ऐसे उस चमक नामक चारण को अपने आगे करके वह राजा उस व्यभिचारिणी स्त्री के पास जाने के लिए राजभवन से निकला था, इसलिए उस कामी पुरुष के लिए निस्सन्देह वही सबसे बडा अपशकुन हुआ। वह राजा कलश अपने समस्त कृतगौरव को नष्ट कर उस व्यभिचारिणी कामिनी के कुटिल कटाक्षो के वशीभूत हुआ था। इसीलिए वह अपने परम आनन्दप्रद राजभवन को छोडकर चोर के समान बाहर निकला था। मार्ग मे उस पर काली के कटाक्ष का पात हुआ परन्तु दैव के कृपा-कटाक्ष से वह जीवित रह गया।

उसने मानवोचित समस्त सज्जनता के भावो को नष्ट कर दिया था। उसके मन की असीम दुष्टता ने उससे नीतिमार्ग का उल्लघन कराया था। इसीलिए राजा होने पर भी उसे अन्त्यजो के द्वारा इस प्रकार अपमानित होकर नीचा देखना पडा था। जिन स्वेच्छाचारिणी इन्द्रियो द्वारा जब इन्द्र और चन्द्र आदि देवता भी लज्जित कर दिये गये थे तब उनके द्वारा मनुष्य का मान किस प्रकार अम्लान रह सकता है?

सहसा कोई भी पुरुष इस कुमार्ग पर अग्रसर नही होता। सबसे पहले उसे सकोच रोकता है। कुछ दिनो तक सकोच का प्रभाव बना रहता है किन्तु जब सकोच का प्रभाव शिथिल होने लगता है तब लोक-लज्जा सामने आकर खडी हो जाती है। वह भी बडी प्रभावशालिनी होती है। जब उसका भी प्रभाव नष्ट होने लगता है तब लोक-मर्यादा का ज्ञान कुमार्ग से रोकने के लिए सामने आकर खडा हो जाता है। जब वह भी असमर्थ हो जाता है तब उस कुमार्ग पर चलने वाले की निन्दा होने लगती है। जब वह उसके लिए सहनशील बन जाती है तब बडे भयानक रूप से दुस्तर दुर्यश का उदय होता है। जब कुमार्गगामी पुरुष उसको तुच्छ समझने लगता है तब उसके हृदय मे निन्दनीय काम-वासना उत्पन्न होती है।

काम-वासना के उत्पन्न होते ही सबसे पहिले धर्म का सर्वनाश होता है। उसके बाद वश-परम्परागत प्रशसनीय स्वाभिमान नष्ट हो जाता है। वश के अनुसार स्वाभिमान के नष्ट होते ही गौरवशाली वश का गौरव सदिग्ध हो जाता है। फिर धीरे-धीरे जीवन मे भी सन्देह का साम्राज्य हो जाता है। इस प्रकार सच्चरित्रता-रूपी चिन्तामणि के विनाश होने पर कौन-सी वस्तु का विपर्यय अर्थात् विनाश नही होता। उस दुश्चरित्र राजा के राजभवन मे पहुँचने तक के समय मे ही वह वृत्तान्त उसके माता-पिता (राजा अनन्तदेव और रानी सूर्यमतीदेवी) को विदित हो गया था।

उस दुःखमय समाचार को सुनते ही वे दोनो सुत-स्नेह के वशीभूत होकर बड़ी देर तक रोते रहे। उनके वंश मे ऐसा पातकी पुत्र उत्पन्न होगा, ऐसी उन्होने कल्पना तक नही की थी। लज्जा और शोक के आवेग से अधीर होकर वे दोनो विलम्ब तक उसके प्रति अपने कर्त्तव्य को भी निश्चित न कर सके। बड़ी देर तक वे दोनो पागलो के समान अपने ही भाग्य को कोसते रहे। जिस राजा को लोग बड़ी श्रद्धा के साथ देखा करते थे वही राजा आज इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ है—ऐसा सोच-सोच कर वे अपने ही जीवन से निराश होने लगे।

जब सभी प्रकार से सोच लेने के बाद भी मानसिक कष्ट मे कमी न हुई तब वे दैव के भरोसे शान्त होने का प्रयत्न करने लगे। थोडी-सी शान्ति के लाभ करते ही उन्होने उस अपराधी पुत्र कलश को राजनियमो के अनुसार कैद कर लेने का निश्चय कर लिया। साथ ही साथ उन दोनों पति-पत्नी ने बप्पिया नामक कलश की पत्नी से उत्पन्न हुए सकल विद्यानिधि सर्वज्येष्ठ पौत्र को राज्याधिकारी बनाने की अभिलाशा रखते हुए वह रात व्यतीत की।

उसके बाद दूसरे ही दिन प्रातःकाल होने पर उन्होने राजा कलश को अपने पास बुलवाया। राजा और रानी के बुलवाने पर कलश बडा भयभीत हुआ। किये हुए पापो के कारण उसका हृदय काँपने लगा। किस प्रकार वह अपने कलंकित मुख को अपने माता-पिता को दिखाये यह उसकी समझ मे नही आ रहा था। कही भाग कर अपने को वह छिपा लेता, इसका भी समय न रहा। इस प्रकार के विचारो मे पडकर वह व्याकुल होने लगा। अन्त मे कोई उपाय न देखकर उसने अपने हृदय मे उत्पन्न होने वाले भय को अपने सहायक और साथी बिज्ज तथा जयानन्द के सम्मुख स्पष्ट शब्दो मे कह दिया।

उसकी व्याकुलता और भीति के कारणो को समझ कर उन दोनो ने राजा अनन्तदेव और रानी सूर्यमतीदेवी के निकट जाने के लिए राजा कलश से कहा और आवश्यकता पडने पर उचित सहायता देने के लिए भी प्रतिज्ञा की। इस प्रकार उन दोनों की बातों से उसमे साहस का संचार हुआ। फिर वह जयानन्द का हाथ पकड़ कर के किसी न किसी प्रकार अपने पिता के पास गया। उसकी सहायता के लिए उसके पीछे-पीछे बिज्ज भी था।

जैसे ही राजा कलश ने राजा अनन्तदेव के भवन मे प्रवेश किया वैसे ही उसके पिता का हृदय क्रोध के आवेश से पूर्ण हो गया। उस समय राजा अनन्तदेव ने उचित और अनुचित का कुछ भी विचार नही किया और तुरत उसके मुख पर थप्पड़ मार कर कहा, "अभागे! अपने हाथ की इस कटार को तुरन्त फेंक दे।"

उस समय त्रास से शिथिल-शरीर राजा कलश को एक हाथ से सम्हालते हुए बिज्ज ने बड़े अभिमान के साथ अपनी तलवार को छूते हुए राजा अनन्तदेव से कहा, "महाराज! यह प्रसिद्ध है कि आप स्वाभिमानियो मे सर्वप्रधान हैं। इसलिए आप से यह छिपा नही है कि संसार मे स्वाभिमान ही जिनका धन है वे किसी भी दशा मे किसी भी मनुष्य की मान-हानि करने का प्रयत्न नही करते हैं। जो दूसरे व्यक्ति के स्वाभिमान की रक्षा करने का अभिलाषी नही है वह किसी भी दृष्टिकोण से स्वाभिमानी पुरुषो से सम्मान पाने का अधिकारी नही हो सकता।"

"महाराज! यह सभी जानते हैं कि मुझे राजा कलश के यहां से वेतन मिलता है। वेतन-भोगी होने के कारण मैं अपने स्वामी के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन अवश्य करूगा। इसके अतिरिक्त मैं राजपुत्र हूं। जब तक मैं जीवित हूँ और मेरे हाथ मे हथियार है तब तक ऐसे संकट के समय मैं अपने स्वामी का त्याग कदापि नही कर सकता।"

"यह सत्य है कि आप इनके पिता हैं और ये आप के पुत्र हैं। आपका इन पर और इनका आप पर पूर्ण रूप से अधिकार है। पिता और पुत्र के बीच किसी भी प्रकार हस्तक्षेप करने का अधिकार अन्य किसी पुरुष को नही हो सकता किन्तु जहाँ स्वामी और सेवक का सम्बन्ध है वहाँ आप भी हस्तक्षेप करने का अधिकार नही प्राप्त कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि जब तक मैं इस स्थान पर अपने स्वामी राजा कलश के समीप उपस्थित हूँ तब तक आप इनके स्वाभिमान पर अनुचित हस्तक्षेप नही कर सकेंगे। मेरी अनुपस्थित मे आप जैसा चाहें वैसा निर्विघ्न कर सकते हैं।"

इस प्रकार के शीतल और कठोर वचनो से बिज्ज ने राजा अनन्तदेव को चकित और मोहित कर दिया। उसके बाद वहाँ से अपने स्वामी राजा कलश को साथ लेकर वह वापस रवाना हो गया। राजा अनन्तदेव के सामने विज्ज ने जैसा अलौकिक अथवा अतिमानुषिक धैर्य प्रदर्शित किया था वैसा और कोई भी पुरुष नहीं कर सकता था क्योकि अनन्तदेव के समान परम प्रभाव-शाली वीर राजा के सम्मुख भी उसका धैर्य ज्यो का त्यो अक्षुण्ण बना रहा। इसीलिए सभी धीर-वीर पुरुषो ने सर्वत्र विज्ज की अत्यन्त प्रशंसा की।

इस घटना के समय भावी प्रबल दैव के प्रभाव से ही महारानी सूर्यमतीदेवी निरुपाय हो कर जप करने के लिए मौनव्रत धारण कर चुकी थी और वह उस समय उसी कार्य मे निमग्न थी। उसका स्वभाव कोमल और कठोर दोनो ही प्रकार का था। जो जिस योग्य होता वह उसके साथ वैसा ही व्यवहार करती थी। राज्य-शासन-सम्बन्धी कार्यों मे उसकी नीति स्पष्ट हो चुकी थी। इसीलिए कहा जाता है कि यदि वह उस समय राजा अनन्तदेव के समीप रही होती तो इसमे सन्देह नही था कि उस दिन राजा कलश को अवश्य ही मरण अथवा बन्धन प्राप्त होता।

उसने बाद जब विज्ज ने देखा कि उसका स्वामी राजा कलश बहुत ही त्रस्त और म्लान हो चुका है तब उसने उसको शीघ्रातिशीघ्र उसकी चतुर रानी दिल्ला के घर पहुँचा दिया। दिल्ला रानी को समस्त वृत्तान्त विदित हो चुका था इसलिए उस बुद्धिमती ललना ने "राजा शिर की पीडा से पीडित हैं" ऐसा प्रसिद्ध कर उस भयभीत पति के मस्तक पर तैल-मर्दन किया और इस बहाने से उसने वहाँ लोगो का आना-जाना बन्द कर बिज्ज को द्वार का रक्षक बना दिया तथा इस प्रकार बडी तल्लीनता के साथ अपने पति की रक्षा करने लगी।

मौनव्रत धारण कर जय करने के अनुष्ठान को यथाविधि समाप्त कर रानी सूर्यमती-देवी ने जिस समय राजा अनन्तदेव से भेंट की और वहाँ के समस्त समाचार को ध्यानपूर्वक सुना उस समय उसने उसको खूब फटकारा और फिर कुशल पूछने के बहाने कलश के पास जाने का विचार किया। जब वह वहाँ से चली गई तब उसका अनुसरण करते हुए कलश को कैद करने का निश्चय कर राजा अनन्तदेव भी उस ओर को चल पडा। जब वह वहाँ पहुँचा तब द्वार पर बिज्ज ने उसे रोक दिया और कहा, "महाराज! यदि आप राजा कलश की कुशल जानने की इच्छा से ही आये हुए हैं, तो फिर आप अकेले ही जाने की कृपा कीजिए। आपके साथ और जितने भी लोग हैं, उनमे से एक भी आपके साथ अन्दर नही जाने पायेगा।"

विवश होकर राजा अनन्तदेव को कलश के पास अकेला ही जाना पडा किन्तु अपने अनुयायियो को बाहर रोक देने के कारण उसे राजा कलश और उसके सहायक विज्ज पर क्रोध

आ गया। इसलिए वह रुष्ट होकर विजयेश्वर क्षेत्र को जाने के लिए तैयार हो गया। इसके बाद रानी सूर्यमतीदेवी को साथ लेकर राजा अनन्तदेव वहाँ से रवाना हुआ। चलते-चलते जब वह पद्मपुर के निकट पहुँच गया तब वहाँ पर पद्मपुर के रहने वाले विश्वावट्ट आदि ब्राह्मण आकर उससे कहने लगे।

"महाराज! स्वय राज्य के अधिकार का त्याग कर अब आप पश्चात्ताप क्यो कर रहे हैं? अच्छे अथवा बुरे कार्य को कर लेने के बाद उसके सम्बन्ध मे किया गया पश्चात्ताप किसी भी दशा मे विद्वानो द्वारा योग्य नही कहा जा सकता। 'मैंने अपनी प्रिय प्रजा को दुष्ट बुद्धि वाले के हाथ सौंप दिया है' ऐसा सोचकर अपने दुराचारी पुत्र को कलकित करना अथवा उसकी निन्दा करना भी आपके लिए उचित नही है। जिस प्रकार यत्र के प्रभाव से चलने वाली कठ-पुतली मे किसी प्रकार की भी स्वतत्र शक्ति नही होती उसी प्रकार परतत्र राजा मे भी किसी प्रकार की स्वतत्र शक्ति का होना असभव है। जब प्रजा-वर्ग शुभ कर्मों के प्रभाव प्रबल होते है तब राजा भी स्वभाव मे सज्जन होता है और जब अशुभ कर्मों के प्रभाव प्रबल होते हैं तब राजा भी उनके दुर्भाग्य से दुर्जन हुआ करता है।"

"वनस्पतियो के सत् और असत् कर्मों के फलो के अनुसार ही बादलो के द्वारा उन पर शीतल जल अथवा भयानक बिजली गिरायी जाती है। सबसे अधिक चिन्तात्मक बात तो यह है कि आप अपने कुमार्गगामी पुत्र को छोड कर किसी दूसरे स्थान मे सुखपूर्वक रहना चाहते है परन्तु कोष को त्याग कर निर्धन अवस्था को प्राप्त हो जाने पर आपको किस प्रकार सुख मिल सकेगा।"

इस प्रकार ब्राह्मणो के वचनो को सुनकर विचारशील राजा अनन्तदेव राजधानी को वापस लौटना ही चाहता था कि इतने मे पत्नीसहित उसके पुत्र कलश ने वहाँ आकर उसे राज-धानी मे लौट चलने के लिए किसी प्रकार मना लिया। जिस प्रकार तेज धारवाली, सरल, चमकती हुई और स्वच्छ तलवार को कोषहीन अवस्था मे (अर्थात् जब वह बिना म्यान की होती है, उस अवस्था मे) कोई स्पर्श नही करता उसी प्रकार परम शक्ति-सम्पन्न, महाकुलोत्पन्न तथा परम पवित्र पुरुष को भी कोषहीन अवस्था मे (अर्थात् धनहीन अवस्था मे) कोई भी स्पर्श नही करता।

राजा कलश के मनाने पर राजा अनन्तदेव राजधानी मे लौट आया था अवश्य, परन्तु उसका क्रोध शान्त नही हुआ था। इसीलिए उसने राजभवनो को छोडकर और वहाँ की समस्त सम्पत्ति अपने साथ लेकर वह फिर राजधानी से चल पडा था। अश्व, शस्त्र, कवच आदि लेकर वहाँ से प्रस्थान करने के बाद वह वितस्ता नदी के पार पहुँच गया और वहाँ कुछ समय तक अपनी रानियो की प्रतीक्षा करता रहा।

राजधानी से राजा अनन्तदेव के चले जाने के बाद राजपत्नियाँ भी राजभवनो को को छोडकर राजा के साथ जाने की तैयारियाँ करने लगी। उनके पास जितने बहुमूल्य अलकार आदि थे उन सबको उन्होने अपने साथ ले लिया। इनके अतिरिक्त और भी जो कुछ था, उसे भी नही छोडा। इसी प्रकार नाना प्रकार के राजोपकरण तथा द्रव्यराशि को नौकाओ मे लाद कर वे सब वहाँ से चल पडी थीं। कहा जाता है कि उन्होने लोहे की एक कील भी नही छोडी थी। पहले पहल जब राजा अनन्तदेव राजधानी को छोडकर रवाना हुआ था तब लोगो को

उसके जाने का पता नही लग सका था, इसलिए राजधानी के सभी लोग चुपचाप बैठे ही रह गये थे किन्तु इस बार सभी को उसके जाने का समाचार विदित हो चुका था इसलिए वे सब उसके चले जाने के कारण अत्यन्त शोकातुर होकर करुण क्रन्दन करने लगे थे।

राजभक्त जनता तुरत अपने परम प्रिय राजा अनन्तदेव और आदरणीया महारानी सूर्यमतीदेवी के समीप दौड़ी गई और वहाँ जाकर उसने उनके परम पवित्र चरणो मे बडी श्रद्धा के साथ पुष्पो की अजलि समर्पित की और नेत्रो से आश्रुओ की वर्षा करने के बहाने अर्घ्य प्रदान भी किया। उस समय का वह दृश्य बडा ही मर्मस्पर्शी था। जिस ओर दृष्टि जाती थी उसी ओर परम शोकाकुल जनता का समूह दिखाई पडता था। ऐसा कोई भी न था जो जनता के उस समूह को सान्त्वना प्रदान कर सकता। "हा माता जी! हा पिता जी! आप इस प्रकार हम सबो को छोड कर कहाँ जा रहे है?" इस प्रकार विलापमय शब्दो के अतिरिक्त उस समय दूसरा कोई भी शब्द नही सुनाई देता था।

इतना सब विलाप होते हुए भी महारानी सूर्यमतीदेवी के साथ राजा अनन्तदेव रुका नही। वह राजधानी की सीमा पार कर क्रमश आगे की ओर बढता ही गया। मार्ग मे जब कभी-कभी वह विलापमयी करुण ध्वनि शान्त हो जाती थी, उस समय पर्वत के हृदय को विदीर्ण कर बहने वाले झरनो के द्वारा पर्वतो के शोकमय विश्वास की शूत्कार ध्वनि जनता को सुनाई देती थी। चलते-चलते राजा अनन्तदेव जनसमूह से कही दूर निकल गया। जनशून्य स्थान मे आकर उसे किंचित् शान्ति अवश्य प्राप्त हुई किन्तु उस स्थान मे आने से पूर्व मार्ग मे अविश्रान्त रूप से श्रवण किया हुआ वह शोकाकुल जनता का आर्तनाद उस निर्जन स्थान मे भी उन दोनो के कानो मे चिरपरिचित-सा होने के कारण गूंज रहा था।

चूंकि उस राजा को अपने ही पुत्र के पाप के कारण राज्य को त्याग कर जाना पडा था इसीलिए उसे मार्ग मे जाता हुआ देखकर वृक्षो पर अपने घोसले बनाकर अपने बच्चो का पालन-पोषण करने वाले पक्षियो की भी लोग निन्दा करने लगे थे। चलते-चलते वह राज-दम्पति विजयेश्वर क्षेत्र मे पहुँच गया। अपने पुत्र के दुर्व्यवहार से उस राज-दम्पति का हृदय पूर्ण रूप से सन्तप्त हो ही चुका था। परम शान्ति लाभ करने के उद्देश्य से ही वे दोनो वहाँ गये हुए थे। उन दोनो के मनोगत भावो को समझकर भगवान् विजयेश्वर ने उन्हे अपने परम स्नेही वन्धु के समान अपने क्षेत्र मे स्थान प्रदान किया। इतना ही नही, दर्शन-मात्र से ही उनके हृदय की समस्त ज्वाला को शान्त कर अलौकिक आनन्द प्रदान कर दिया।

एक प्रतापी और तपस्वी राजा के लिए जैसा उपयुक्त स्थान होना चाहिए, वह वैसा ही स्थान था। वहाँ पर पहुँचते ही भाण्डागार (कोष), अश्व, सेवक-वर्ग आदि के निवास-योग्य स्थान की देखभाल तथा सुव्यवस्थित प्रबन्ध करने मे ही उनका वह समस्त दिन बीत गया। वह प्रदेश बडा ही आकर्षक और धन-धान्य से पूर्ण था। वहाँ कही कोष, कही उपकरण (अन्य आवश्यक समान) और कही अन्न की बोरियो का ढेर लगा हुआ था। इसीलिए वह प्रदेश सभी दिशाओ से लकडियो द्वारा, आच्छादित मैदान के समान दृष्टिगोचर होता था।

ज्यो ही विजयेश्वर क्षेत्र मे राजा अनन्तदेव और महारानी सूर्यमतीदेवी के पहुँचने का समाचार लोगो को विदित हुआ त्यो ही वहाँ पर रहनेवाले तन्वगराज, तुग आदि ज्ञाति-पुत्र राजकुमार तथा सूर्यवर्मा, चन्द्र आदि डामर उस राजा की सेवा मे उपस्थित हो गये। उन सबो के

सद्व्यवहारों से प्रसन्न होकर और उन्हे विश्वासयोग्य समझकर उस राजा ने क्षीर, भूय आदि डामरो को नौका, नगर आदि की रक्षा तथा प्रबन्ध आदि कार्यों मे नियुक्त कर दिया । इस प्रकार की नीति-निपुणतामयी व्यवस्था द्वारा उसने अपने उस नवीन निवास-स्थान को सर्वथा सुरक्षित बना दिया । इसके बाद उस आनन्दप्रदायक विजयेश्वर क्षेत्र मे राजा अनन्तदेव पूर्ण रूप से निश्चिन्त हो गया । उसका सन्तप्त हृदय परम शान्ति को लाभ कर प्रसन्न हो गया । सत्पुरुषो के सत्संग से राजोचित प्रतिष्ठा और गौरव को सुरक्षित समझकर वह राजा आनन्दपूर्ण उत्सवो के साथ अपने दिन व्यतीत करने लगा । उसकी सज्जनता, उदारता तथा सहृदयता प्रशंसनीय थी, इसीलिए बडी प्रसन्नता के साथ राजपुत्र, अश्वारोही सैनिक, शस्त्रधारी तथा डामर-मण्डल उस वृद्ध राजा के समीप आकर रहने लगे थे । वह राजा अनन्तदेव लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ पचपन के ज्येष्ठ मास मे अपनी राजधानी को त्याग कर रवाना हुआ था और परम शान्तिदायक भगवान् विजयेश्वर के क्षेत्र मे पहुँचकर देव-सुलभ स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करने लगा था ।

अपने पिता राजा अनन्तदेव और माता महारानी सूर्यमतीदेवी के चली जाने के बाद कलश को सर्वसम्पत्ति-शून्य, निधि से निकाले जाने के साथ ही निधिरक्षक नाग भी जहाँ से चला गया हो—ऐसे शून्य स्थल के समान वह राज्य मिला । धनहीन होकर भी वह नवीन राजा कलश अधीर नही हुआ । पुरुषार्थी पुरुषो के समान वह पहिले से भी अधिक अपने पुरुषार्थ पर विश्वास करने लगा । उसने अपने राज्य-प्रबन्ध को उज्ज्वल और सुचारु बनाने के लिए बडे प्रयत्न के साथ बिज्ज आदि विश्वास-पात्र पुरुषो की सम्मति से उत्तरदायित्व-पदो पर योग्य अधिकारियो को नियुक्त किया ।

पूर्ण रूप से विवेचना करके उसने जयानन्द को सर्वाधिकारी के पद पर नियुक्त किया और वितस्तापुर निवासी वाराहदेव को द्वाराधिकारी बना दिया । ये दोनो ही अपने-अपने पदो के सर्वथा योग्य थे । जिन्दुराज के कम्पन मे विजयमित्र नामक एक व्यक्ति वस्त्राधिकारी के पद पर कार्य किया करता था । वह बडा ही कार्यकुशल था । उसकी योग्यता से प्रसन्न होकर राजा कलश ने उसी को अपने राज्य के कम्पनाधिपति का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया ।

इन समस्त पदो के अतिरिक्त और जितने भी पद थे उन समस्त पदो पर विशेष योग्यता रखने वाले अनुभवी व्यक्तियो को ही राजा कलश ने नियुक्त किया । ऐसा कोई भी पदाधिकारी न था जो सामयिक राजनीति-सम्बन्धी ज्ञातव्य विषयो का पूर्ण ज्ञाता न हो । इस प्रकार पूर्ण रूप से शासन-व्यवस्था को सुव्यवस्थित कर वह राजा कलश अपने पिता से युद्ध करने के लिए विशेष रूप से धन-सचय करने लगा ।

युद्धाभिलाषी राजा के मनोगत भावो को समझ कर सर्वाधिकारी जयानन्द उसे सफल बनाने के लिए अथक परिश्रम करने लगा । उसने पैदल सैनिको के सग्रह करने की इच्छा से जो धन देने के भी योग्य न थे, ऐसे धनिको से भी धन लेना आरभ कर दिया और उस प्रकार सग्रह किये गये धन से कतिपय पैदल सैनिको का सग्रह करने के बाद जयानन्द तथा बिज्ज आदि राजपुत्रो को साथ लेकर युवक राजा कलश वृद्ध राजा अनन्तदेव से युद्ध करने के लिए अवन्तिपुर पहुँचा ।

उसी अवसर पर पर जिन्दुराज कारावास से मुक्त हुआ था । राजा कलश ने उससे भी सहायता के लिए आग्रह किया । उपयुक्त अवसर को खो देने के लिए जिन्दुराज तैयार न था

इसलिए उसने राजा कलश के आग्रह को बडे उत्साह के साथ स्वीकार कर लिया और फिर वह शिमिका के मार्ग से युद्ध के लिए शीघ्रगति से चल पडा। उन सबो ने मिलकर यह निश्चय कर लिया था कि किसी न किसी प्रकार विजयश्री को अपने अनुकूल करना ही होगा और इसी उद्देश्य से वे सब राजा अनन्तदेव को तुच्छ से भी तुच्छ समझने लगे थे।

इस प्रकार राजा कलश और उसके अनुगामियो के द्वारा किये गये युद्ध-सम्बन्धी उद्योग को सुनकर वृद्ध राजा अनन्तदेव के क्रोध की सीमा न रही। धीरे-धीरे वह समाचार प्राय सभी लोगो के कानो तक पहुँच गया। उसके बाद राजा अनन्तदेव के अश्वारोही सैनिक तथा डामर आदि वीर सहायक उसके साथ मिलकर उन समस्त आक्रमणकारियो के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गये।

उस समस्त लोकोत्तर आनन्ददायक विजयेश्वर क्षेत्र का वह परम पुनीत भू-भाग शस्त्र-धारी सैनिको से पूर्ण हो गया था और स्थान-स्थान पर अश्व अपने खाद्य गुड से क्रीडा कर रहे थे। शान्तिमय स्थान अशाति की लीलाभूमि बनकर भयानक रूप धारण कर चुका था। जो स्थान मानवमात्र के हृदय की ज्वाला को शान्त करने के लिए प्रसिद्ध था वही अग्नि की ज्वाला का उत्पादक हो गया था।

अपने पुत्र कलश के द्वारा की जाने वाली इन सब युद्ध-सम्बन्धी कार्यवाहियो से राजा अनन्तदेव अत्यन्त क्रुद्ध हो गया था। जितनी शीघ्रता से कलश युद्ध के लिए विजयेश्वर-क्षेत्र मे आया हुआ था उतनी ही शीघ्रता से राजा अनन्तदेव उसे मार कर वहाँ भगा देना चाहता था। महारानी सूर्यमतीदेवी उन दोनो के बल और पौरुष को जानती थी। युद्ध का परिणाम कितना भयानक और शोकजनक होगा, इसे भी वह पूर्ण रूप से जानती थी। इसलिए वह बडी चिन्ता मे पड गई। अन्त मे पुत्र के प्रति होने वाले स्वाभाविक वात्सल्य के वशीभूत होकर उसने राजा अनन्तदेव से कहा "मैं यह स्वीकार करती हूँ कि कलश का यह कार्य किसी भी दशा मे सराहनीय नही है, फिर भी मेरा अनुरोध है कि आप दो दिन के लिए युद्ध करने के विचार को स्थगित कर दें।"

राजा अनन्तदेव ने रानी के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। इसके बाद रानी ने अत्यधिक विश्वासपात्र सुय्य आदि ब्राह्मणो को अपने प्रिय पुत्र कलश के पास भेजा तथा उनके द्वारा अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण शब्दो से राजा कलश को एकान्त मे अपना यह सन्देश कहलाया।

"पुत्र! अपने आप को विनाश करने के लिए तुम क्यो साहस कर रहे हो। मेरी समझ मे यह नही आ रहा है कि स्वय के विनाश को सूचित करने वाली यह बुद्धि की विपरीतता तुम मे कहाँ से आ गई है! इसमे कुछ भी सन्देह नही कि तुम इसी के वशीभूत होकर महापराक्रमी अपने पिता से युद्ध करना चाहते हो। जिनके भौंह टेढी करने से ही दरदराज आदि प्रतापशाली पुरुषो का ध्वस हो गया, उस वीर के क्रोधानल मे तुम क्यो पतग के समान जलना चाहते हो। अग्नि के समान प्रखर प्रतापशाली वह राजा अनन्तदेव जिस समय घोडे पर सवार होकर समरागण मे उपस्थित होगा उस समय तृण के समान निस्सार तुम्हारे सैनिको की रक्षा कौन कर सकेगा? मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम कितने हाथी, घोडे, रथ और पैदल सैनको से और किस शूरता तथा धन से इस वीराग्रणी के साथ युद्ध करने के लिए आये हो? तुम्हारे सद्भाग्य से इसने आप ही आप राज्य को त्याग दिया है, इसलिए तुम्हे परम प्रसन्नता के साथ इस निष्कण्टक

राज्य का उपभोग करना चाहिए। तीर्थ में रहकर शान्तिमय जीवन व्यतीत करते हुए तुम्हारे पिता ने कौन-सा तुम्हारा अपकार किया है जिसके कारण तुम युद्ध करने के लिए यहाँ आये हुए हो ? मैं यह समझती हूँ कि पारस्परिक भेदभाव को उत्पन्न करने वाले धूर्तों ने तुम्हे इस दारुण सकट मे फँसा दिया है। तुम पहले से ही द्रव्यहीन थे। यदि इस प्रकार के घातक कार्यो मे लगे रहोगे तो आगे चलकर और भी अधिक निर्धन हो जाओगे। इसलिए रक्षा और कल्याण इसी मे है कि तुम अपनी समस्त सेना को तुरंत वापस बुला लो। जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम्हे अपने पिता का भय नही हो सकता, अतएव अनुनय-विनयपूर्ण वचनो के द्वारा तुम इस सरल और दयार्द्र स्वभाव राजा को प्रसन्न कर लो।"

महारानी सूर्यमतीदेवी के द्वारा भेजे गये दूतो के समझाने पर राजा कलश ने अपने कर्त्तव्य पर पुन. विचार किया। उसकी समझ मे यह आ गया कि उसने युद्ध के लिए जो तैयारी की थी वह सर्वथा अनुचित थी। उसकी माता ने उसे समझाने का जो प्रयत्न किया था वह माता के योग्य ही था। ऐसा निश्चय कर उसने रात मे ही चारो ओर फैली हुई अपनी सेना को वापस बुला लिया।

जिस समय महारानी सूर्यमतीदेवी ने दूतो के द्वारा इस समाचार को सुना उस समय उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह तुरन्त अपने पति राजा अनन्तदेव के पास गई और धृष्ट स्वभाव की होने के कारण उसे खरी-खोटी बातें सुनाने लगी। यद्यपि उस बुद्धिमती महारानी सूर्यमती के द्वारा उन दोनो के पारस्परिक झगडे शान्त अथवा स्थगित कर दिये गये थे तथापि इधर-उधर की लगाने वाले चुगलखोर लोगो के भेद उत्पन्न करने वाले प्रयत्नो के कारण उन दोनो का अन्त -करण क्षण-क्षण मे कलुषित हो जाता था। वैर का यह स्वाभाविक धर्म है कि वह बार-बार सन्धि करने पर भी फिर से भेद को प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार पुराने कपड़े को अनेक बार सीने पर भी वह फिर से फट जाता है उसी प्रकार बार बार सन्धि करने पर भी वैर की दशा समझ लेनी चाहिए।

जिस समय राजा अनन्तदेव बाहरी तथा दरबारी लोगो से अपने पुत्र कलश के कुकर्म वाले वृत्तान्तो को सुनता उस समय उसका हृदय भयानक रूप से सन्तप्त हो जाता था। उसके बाद जब वह अन्त पुर मे जाता और अपनी पत्नी के उपालम्भपूर्ण कर्णकटु भाषण को सुनता तब चुपचाप अपना मन मसोस कर शीतल हो जाता था। जो कुछ कहना चाहता वह भी न कह पाता था। जिस प्रकार पुष्करिणी का निर्मल जल दिन भर प्रखर धूप से तपकर रात मे शीतल हो जाता है, ठीक उसी प्रकार की अवस्था उस शुद्धहृदय राजा अनन्तदेव की भी थी।

विजयेश्वर-क्षेत्र से वापस आते ही राजा कलश ने अपने मन्त्रियो के परामर्श से राजा अनन्तदेव के पक्षपातियो का और उनके धन-जन का नाश करना आरम्भ कर दिया था। जो कोई भी वृद्ध राजा अनन्तदेव की प्रशसा करता वही उसके कोप का पात्र बन जाता था, परन्तु स्त्री के वशीभूत वृद्ध राजा ने किंचिन्मात्र भी अपने पुत्र के पक्षपातियो का नुकसान नही किया।

चूँकि महारानी सूर्यमतीदेवी मे पुत्र-स्नेह की मात्रा अधिक बढ गई थी इसलिए उसमे उचित और अनुचित शब्दो का ज्ञान नही रह गया था। कभी-कभी वह अपने अनुचरो को भी सताने लगती थी। जो कोई भी कलश के विरुद्ध उससे कुछ कहता उसी पर वह क्रुद्ध हो जाती थी। उसके द्वारा सताये गये अनुचर राजा अनन्तदेव के पास जाते और जब वह रानी के

विरुद्ध कुछ भी करने को तैयार न होता तब वे भी उसे रूखी बातें सुनाने लगते। राजा चुपचाप सब सहन कर लेता। न रानी से कुछ कहता और न अनुचरों पर ही क्रोध करता। सन्तप्त-हृदय होकर वह राजा अत्यन्त दुःखमय जीवन व्यतीत करता था।

जब राजा कलश के अत्याचार अधिक बढ़ने लगे और उनमें कम होने की आशा भी जाती रही तब राजा अनन्तदेव उसकी सेना को शूररहित समझ कर उसके राज्य को छीन लेने का विचार करने लगा। उसकी दृष्टि में केवल जिन्दुराज ही थोड़ा-बहुत पुरुषार्थी जँचता था। पुत्र के पास से राज्य को छीनने की इच्छा करते हुए राजा अनन्तदेव ने तन्वंग के पुत्रों को राज्य देने का विचार अपने मन में किया था किन्तु जब उन सबों से कहा गया तब वे उक्त प्रस्ताव को स्वीकार करने का साहस नहीं कर सके।

जब रानी सूर्यमतीदेवी ने इन समस्त बातों को सुना तब अपने पुत्र की वंश-परम्परा के हाथ से राज्याधिकार के छिन जाने का भय उसके मन में उत्पन्न हो गया। ऐसा न होने पाये इसलिए उसने रातोंरात अनेक प्रयत्न करके अपने पौत्र को अर्थात् कलश के पुत्र हर्ष को राजा बनाने के लिए दूत भेजकर उसे अपने पास बुला भेजा। वह भी बड़ा साहसी था। वह दिनरात पहरे-दारों की देखरेख में रहा करता था। जिस समय रानी सूर्यमती के दूत उसके पास गये और रानी का सन्देश कह कर चलने के लिए कहने लगे उस समय वह बड़ा प्रसन्न हुआ और किसी भी पहरेदार की पर्वाह न करके तुरन्त घोड़े पर सवार होकर चल पड़ा।

राजकुमार हर्ष के उस प्रकार चले जाने से पहरेदारों को बड़ा क्रोध आ गया। वे उसे पकड़ लाने के लिए तैयार हो गये। आगे-आगे वह राजकुमार अपने घोड़े पर सवार बड़ी शीघ्र-गति से दौड़ा चला जा रहा था और उसे पकड़ने के लिए पहरेदार अपने घोड़ों पर सवार उसका पीछा करते हुए चले जा रहे थे। जिस प्रकार मन अधिक शीघ्रगामी होता है उसी प्रकार उस राजकुमार हर्ष का घोड़ा भी शीघ्रगामी था। जैसे ही राजकुमार ने हलका चाबुक मार कर चलने के लिए संकेत किया था वैसे ही वह वायु-वेग से चल पड़ा था। परिणाम यह हुआ कि देखते ही देखते वह पाँच योजन दूर पहुँच गया। उसका पीछा करनेवाले पहरेदारों के घोड़े उसकी तुलना में तुच्छ थे। शीघ्रगामी घोड़े के पीछे प्राणपण से दौड़ने के कारण वे थोड़ी ही देर में बहुत थक गये थे, इसलिए बेचारे पहरेदारों को अपने प्रयत्न में असफलता का ही सामना करना पड़ा। हताश होकर वे सब राजधानी की ओर लौट पड़े।

उधर विजयेश्वर क्षेत्र में पहुँचते ही राजकुमार हर्ष ने सर्वप्रथम अपने पितामह तथा पितामही के दर्शन किये। जिस समय उसने बड़ी नम्रता के साथ उन दोनों के चरणों पर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया उस समय वे दोनों अपना समस्त सन्ताप भूलकर बड़े हर्ष के साथ गद्‌गद् हो रहे थे। उनके नेत्रों से आनन्द के अश्रु निकल कर उसके मस्तक पर ऐसे गिर रहे थे मानो वे दोनों अपने अश्रुओं से ही उसका राज्याभिषेक कर रहे हों।

जिस समय कलश ने यह समाचार सुना कि उसका पुत्र हर्ष बिना उसकी आज्ञा के ही रातोंरात अनन्तदेव के समीप विजयेश्वर क्षेत्र में चला गया है उस समय वह थोड़ी देर के लिए व्याकुल-सा हो गया था। उसके बाद सन्धि करने की इच्छा से उसने अपने माता-पिता के साथ संघर्ष करने के विचार को छोड़ दिया था। उसने हर्ष के पास तुरत सन्धि का प्रस्ताव-पत्र भेजा और अपने राज्य की दुर्व्यवस्था तथा प्रजा के विप्लव की ओर ध्यान देकर प्रकट रूप से द्वेष

करना वन्द कर दिया। इस प्रकार प्रच्छन्न रूप से पारस्परिक वैर के वढ जाने पर भी कलश कुछ समय तक अपनी माता महारानी सूर्यमतीदेवी के परामर्श को पूर्ण रूप से शिरोधार्य कर चलता रहा।

ऐसे ही समय मे कलश के आदेश से उसका कम्पनाधिपति (सेनापति) खशाला प्रदेश की ओर जाना चाहता था। जव महारानी सूर्यमतीदेवी से कहा गया तव उसने उसको "वह राजा अनन्तदेव के पास आकर और उनके चरणो की वन्दना करके जा सकता है" इस शर्त पर जाने की आज्ञा दिला दी थी। उसी समय मे जनता ने यह समझ लिया कि पिता-पुत्र का जो पारस्परिक कलह निरन्तर वढता जा रहा है उससे देश को वडी आपत्ति और हानि का सामना करना पडेगा इसलिए उस पिता-पुत्र के पारस्परिक कलह को शान्त कर देने के लिए उन दोनो के विरुद्ध राज्य के समस्त व्राह्मणो ने प्रायोपवेशन प्रारंभ कर दिया।

उनका वह प्रायोपवेशन अपने उद्देश्य की पूर्ति मे सफल रहा, इसीलिए उस प्रायोपवेशन के अनुरोध से उन दोनो का आपस मे मेल हो गया। प्रजा-मात्र के हृदय मे अलौकिक आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगा और वे राज-दम्पति अर्थात् राजा अनन्तदेव और रानी सूर्यमतीदेवी विजयेश्वर क्षेत्र से चलकर राजधानी मे आकर रहने लगे। दो महीने का समय वडी शाति के साथ व्यतीत हो गया। किन्तु उसके वाद ही उन्हें विश्वासपात्र व्यक्तियो से यह गुप्त समाचार विदित हुआ कि जयानन्द आदि दुष्ट पुरुषो की सम्मति से कलश उन दोनो को शीघ्र ही वन्दी वना लेगा। इस समाचार को सुनते ही वे दोनो शीघ्रातिशीघ्र विजयेश्वर क्षेत्र को वापस चले गये।

उन दोनो के राजधानी छोडकर चले जाने के वाद ही कलश ने उस अनन्तदेव के अश्वो के खाने की घास मे आग लगवा दी और उसकी सहायता करने वाले पैदल सैनिको को विष, शस्त्र और अग्निदाह आदि राक्षसी उपायो से मरवा डाला। चारो ओर पुन घोर हाहाकार मचने लगा। राज्य का शान्तिपूर्ण वायु-मण्डल फिर से प्रलयकाल के समान भयानक हो गया। अत्याचार और अन्याय का ताण्डव-नृत्य होने लगा। इस प्रकार वडी प्रवलता के साथ उन दोनो का पारस्परिक विरोध वढने लगा। फिर भी उस पुत्र-वत्सला सूर्यमती ने अपने पति को पुत्र के द्वारा किये गये अपकारो का प्रतिकार नही करने दिया।

उन्ही दिनो राजधानी मे लड्डा नामक धीवर जाति की एक कुलटा स्त्री थी और थक्क नामक गजा (खल्वाट) उसका परम आज्ञाकारी जार (उपपति) था। उन दोनो को कलश के समीप रहने वाले धृष्ट और चापलूस मसखरे लोग अनन्तदेव तथा सूर्यमती के नाम से पुकारा करते थे और वह कुल-गौरव की मर्यादा का नाश करने वाला दुष्टात्मा कलश इस प्रकार अपने माता-पिता के नाम का अपमानजनक दुरुपयोग देखकर भी आनन्दपूर्वक हँसने लगता था।

कुछ समय के वाद राजा अनन्तदेव तथा रानी सूर्यमतीदेवी ने सुवर्ण का तुलादान किया और अनेक प्रकार के दान-धर्म आदि शुभ कृत्य करते हुए वे अपने चित्त को स्थिर और प्रसन्न रखने का निरन्तर प्रयत्न करने लगे। उनके पास अतुल सम्पत्ति थी इसलिए वे नितान्त निश्चिन्त और दैन्यरहित थे। इस प्रकार उनकी दृढता को देखकर उस दुष्ट पापात्मा कलश ने द्वेष के वशीभूत होकर उनके निवास-स्थान विजयेश्वर क्षेत्र मे आग लगवा दी। देखते ही देखते वह स्थान दावानल से जलते हुए वन के समान दिखाई पडने लगा।

उस भयंकर अग्निकाण्ड से राजा अनन्तदेव के पास जितना सामान था वह सब जल कर राख का ढेर बन गया। साथ ही साथ ससार के मायाजाल मे फँसे रहने के कारण सन्तप्त मनुष्यो को परम शान्ति देने वाला वह विजयेश्वर का क्षेत्र भी भस्मावशेष हो गया। उस भयानक सर्वनाश से उत्पन्न होने वाले महाशोक से रानी सूर्यमती अत्यन्त दीन तथा निराश हो गई थी। इतना ही नही, जब वह अपना समस्त धैर्य खो चुकी तब अग्नि मे जलकर मरने के लिए उद्यत हो गई थी। उस समय तन्वग के साहसी पुत्रो ने जलते हुए भवन के भीतर से उसे बड़ी कठिनाई से बाहर निकाला था।

रात्रि मे राजा अनन्तदेव के समस्त सैनिक वस्त्र निकाल कर सोये थे। जिस समय भयानक आग की लपटें उठने लगी थी और कोलाहल होने लगा था उस समय वे सहसा घबडा कर उठ गये थे किन्तु उनके समस्त वस्त्र जलकर राख हो गये थे इसलिए उन सब को आप ही आप दिगम्बरता प्राप्त हो गई थी। राजा कलश भी अपनी राजधानी मे राजभवन की ऊँची छत पर चढकर उस अग्निकाण्ड के भयानक दृश्य को देख रहा था। जिस समय उसने देखा कि आग की लपटें आकाश को चूमने लगी हैं उस समय वह बडे आनन्द के साथ तालियाँ पीट रहा था और उन गगनचुम्बी अग्नि-ज्वालाओ के समान हर्ष से नाच रहा था।

जब राजा अनन्तदेव का सर्वस्व जलकर नष्ट हो गया तब वह अपनी पत्नी सूर्यमती को साथ लेकर वितस्ता नदी के पार चला गया। किन्तु नदी के पार जाने पर भी उसे शोक-सागर मे डूबना ही पडा, अर्थात् वह अत्यन्त शोकमग्न हो गया। दूसरे दिन प्रात काल के समय रानी सूर्यमतीदेवी को एक अदग्ध (बिना जला हुआ) रत्नमय शिवलिंग मिल गया। उसको पाते ही उसके शोक का किंचित् लाघव हुआ। इतने मे ही उसके पास टक्क देश का एक व्यापारी आ पहुँचा। उसने उसे उस रत्नमय शिवलिंग को दिखाया। उसको देखते ही वह व्यापारी मोल लेने के लिए तैयार हो गया। रानी ने उसी के हाथ उस बहुमूल्यवान् शिवलिंग को सत्तर लाख दीनारो मे बेच दिया।

फिर उन दीनारो मे से कुछ दीनारो से सर्वप्रथम अन्न और वस्त्र खरीद कर अपने सेवको को दिये और जो दीनार शेष रह गये उनसे जले हुए मकानो की जमीन साफ कराई गई। वहाँ पर उस राख के ढेर के भीतर से राजा को इतना अधिक सुवर्ण आदि द्रव्य प्राप्त हुआ कि जिसकी कथा आज भी हम लोगो के मन मे आश्चर्यपूर्ण कुतूहल उत्पन्न कर सकती है।

जिस प्रकार जनशून्य वनो मे लोग बाँस के टट्टो से बनी हुई झोपडियो मे रहा करते हैं उस प्रकार उस दग्ध नगर मे राजा अनन्तदेव अपने परिजनो के साथ बाँस के टट्टो की छत्राकार झोपडियो मे रहने लगा था। यद्यपि उसके पास धन की कमी न थी तथापि राज्याधिकार के अभाव से कारीगर, मजदूर आदि नही मिल रहे थे इसीलिए उस नगर के पुनर्निर्माण की इच्छा मन मे रहने पर भी वह उस नगर का उत्तमता के साथ निर्माण न कर सका।

रानी सूर्यमती रहती तो राजा के साथ थी किन्तु पुत्र पर अधिक स्नेह होने के कारण राजा का विरोधी होने पर भी वह नित्य उसका ही कल्याण किया करती थी। अपनी माता की अनुकूलता प्राप्त करने के कारण ही नवीन राजा कलश न तो राजा अनन्तदेव से भयभीत होता था और न लोक-निन्दा की ही चिन्ता करता था। पहले की अपेक्षा अधिक निर्द्वन्द्व होकर वह उद्दण्डतापूर्ण कार्यों मे ही अपने को धन्य समझता था। प्रत्येक प्रकार से निर्भय और पराभव-

रहित होकर वह अनेक प्रकार के दुष्ट सन्देशों से अपने पिता अनन्तदेव के हृदय को निरन्तर सन्तप्त किया करता था।

थोड़े ही दिनो के बाद राजा कलश ने पिता को स्वदेश से निर्वासित करना चाहा। उसके मन्त्रियो ने भी उसके विचार का सहर्ष समर्थन किया। फिर वह यथाशीघ्र उस विचार को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए उत्कण्ठित होने लगा और अपने दूतो के द्वारा पर्णोत्स प्रान्त मे चले जाने के लिए राजा अनन्तदेव से बार-बार कहलाना आरभ कर दिया। इतना ही नही, राजा पर अपना अक्षुण्ण प्रभाव रखने वाली रानी सूर्यमती भी अपने पुत्र का पक्ष ग्रहण कर अनेक प्रकार के उचित और अनुचित वचनो से उसी कार्य के लिए प्रेरणा करने लगी। सुनते-सुनते जब राजा के कान थक गये और अधिक सुनने की शक्ति भी न रह गई तब एक दिन राजा अनन्तदेव ने रुष्ट होकर एकान्त मे यक्कन नामक तन्त्रग की उपस्थिति मे ही अपनी पत्नी को—जो वचन कभी नही कहे थे—वे सब कठोर वचन कहना आरम कर दिया

"यह सभी जानते हैं कि मैं सर्वापेक्षा अधिक स्वाभिमानी, शूर, यशस्वी, राज्य-शासक, ओजस्वी, बुद्धिमान् और धनवान् था किन्तु अपनी पत्नी के वशीभूत होने और उसका कहना मानकर चलने के कारण मैंने अपना समस्त स्वाभिमान, शौर्य, राज्य, ओज, बुद्धि तथा धन को खो दिया है। इतना ही नही, मेरे पास अपना कहा जानेवाला जो कुछ था, वह सभी नष्ट हो चुका है।"

"साधारण रूप से लोग कहा करते हैं कि स्त्रियां तो पुरुषो के लिए उपभोग की जाने वाली वस्तु के समान है। परन्तु मैं यह कहना चाहता हूँ कि लोगो का वह विचार सर्वथा मिथ्या भावनाओ से पूर्ण है। यदि वास्तविक परिणाम की ओर विचारपूर्ण दृष्टि से देखा जाय तो यही सिद्ध होगा कि पुरुष, चाहे कितना ही ज्ञानी अथवा विचारशील क्यो न हो, माया के प्रपच से बचे रहने की कला भी क्यो न जानता हो, फिर भी जब वह स्त्रियो के सम्पर्क मे आ जाता है तब वह उनके हाथ का खिलौना बन जाता है। वे स्त्रियां जैसी इच्छा करती हैं वैसी गति उस पुरुष-रूपी खिलौने की हो जाती है। ईश्वर की दी हुई जो चेतना अथवा प्रतिभा होती है वह स्त्रियो की चेतनता और प्रतिभा के सामने व्यर्थ हो जाती है।"

"जिस समय स्त्रियों के मन मे द्वेष का उदय होता है और उसी के वशीभूत होकर वे अपकार करने के लिए अपना विचार दृढ कर लेती है किन्तु साथ ही साथ एसा भाव प्रकट करती है मानो उनमे मात्सर्य का लेश-मात्र भी नही है, उस समय उन स्त्रियो द्वारा कोई भी पुरुष बडी सरलता के साथ यमलोक मे यमराज का अतिथि बनाया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि उस समय पुरुष के लिए मृत्यु अनिवार्य हो जाती है। उस समय ससार की कोई भी शक्ति उसकी रक्षा नही कर सकती।"

यह कोई नवीन विचार नही है। जब ससार मे पुरुषो और स्त्रियो की सृष्टि हुई है और वे एक-दूसरे के सम्पर्क मे आने लगे है, तभी से पुरुषो के प्रति स्त्रियो का यह व्यवहार होने लगा है। इस समय तक मैंने जो कुछ विद्वानो द्वारा सुना अथवा समझा है उससे स्पष्ट कह सकता हूँ कि कार्मण अर्थात् जादू के द्वारा बहुत-सी स्त्रियो ने अपने परमप्रतापी और विचारशील यशस्वी भर्त्ताओ के दिव्य रूप का सत्यानाश कर डाला, और कुछ कठोर हृदय वाली ललनाओ ने अपने दुर्व्यवहार से परमपुरुषार्थी पति के असीम बल को नष्ट कर दिया।

"इसी प्रकार अनेक मायाविनी स्त्रियो ने अपने मायाजाल मे फाँस कर उनकी विमल बुद्धि को रसातल मे पहुँचा दिया। इन सबके अतिरिक्त सबसे बडी खेद की बात यह है कि कतिपय वामलोचनाओ ने तो अपने पति के प्राण तक ले लिये है। इन स्त्रियों की कठोरता और मायाजाल से पूर्ण दुर्व्यवहार का वर्णन कहाँ तक किया जाय। अपने स्वार्थ के सामने ये जो कुछ न कर डालें वही थोड़ा समझना चाहिए। जो पुरुष जितना अधिक इनके सम्पर्क मे रहता है वह उतना ही अधिक इन्हे समझ सकता है।"

जिस प्रकार पयोधरो (बादलो) की उन्नति के प्रभाव से सरिताएँ उन्मत्त होकर अन्य गोत्रज (दूसरे पर्वत मे उत्पन्न हुए) पाषाणो के द्वारा पृथ्वी का हरण कर लेती हैं उसी प्रकार पयोधरो (स्तनो) की उन्नति के प्रभाव से स्त्रियाँ भी उन्मत्त होकर अन्य गोत्रज (दूसरे वश में उत्पन्न हुए) पुत्रो के द्वारा पृथ्वी का हरण कर लेती हैं। 'अन्त मे इनके द्वारा ही हमारा भरण-पोषण होने वाला है और इन वृद्ध पतियो से लाभ ही क्या है?' ऐसा सोच कर स्त्रियाँ उन पुत्रो का अत्यन्त प्रेमपूर्वक लालन-पालन करती हैं और अपने पतियो का शोषण करने मे तनिक भी संकुचित नही होती हैं।"

"स्त्रियो मे सर्वदा रहने वाले इन दोषो को मैं पूर्ण रूप से जानता था फिर भी मैंने अपनी स्वाभाविक उदारता के अनुरोध से आज तक किसी भी प्रकार इसका अनादर नही किया। इतना सब करने पर भी परिणाम शून्य ही निकला। इस समय मैं यह स्पष्ट देख रहा हूँ कि इसने मुझ पर प्रभाव रखने की अभिलाषा से ऐहलौकिक (इस लोक से सम्बन्ध रखने वाले) समस्त सुखों का सर्वनाश कर डाला और अब मेरे पारलौकिक (परलोक से सम्बन्ध रखने वाले) सुखो को भी नष्ट करने के लिए यह तैयार हो रही है।"

"मेरे शरीर मे झुर्रियाँ पड़ गई हैं। शारीरिक शक्ति ने साथ छोड़ दिया है और केश भी श्वेत हो गये हैं। मैं यह नही कह सकता कि किस समय मैं सर्वदा के लिए इस ससार से चल बसूं। केवल इतना ही जानता हूँ कि मृत्यु-काल समीप ही है। इस दशा मे मेरी समझ मे यह नही आ रहा है कि मुझ जैसे वृद्ध को बस विजयेश्वर क्षेत्र के समान पवित्र तीर्थ को त्याग कर अन्यत्र कहाँ जाना उचित है? पापो को नष्ट करने वाले भगवान् चन्द्रकलामौलि (चन्द्रशेखर, शंकर) के मन्दिर के द्वार की उत्कण्ठा-पूर्वक सेवा करने की मेरी अभिलाषा कैसे कुण्ठित हो सकती है। यह शास्त्र-सम्मत और लोक-प्रसिद्ध बात है कि इहलोक और परलोक मे पुत्र ही पिता का उद्धार करने वाला होता है किन्तु आज यह बात भी विपरीत-सी दिखाई पड रही है।"

"कलश, मेरे पुत्र के रूप मे लोक-प्रसिद्ध है और वही इस पुण्यप्रधान तीर्थ से मुझे निर्वासित कर किसी गन्दी गली मे मेरी मृत्यु होने की कामना कर रहा है। ऐसा अधम पुत्र और किसके यहाँ होगा? 'इस मेरी पत्नी ने दूसरे कुल मे उत्पन्न हुए बालक को गुप्त रीति से राज-भवन मे मँगवाकर रख लिया है' यह निन्दनीय लोकप्रवाद आज मुझे सत्य प्रतीत हो रहा है। आकृति तथा आचरण से पिता के विरुद्ध एव बन्धुजनो से द्वेष रखने वाले और पिता के साथ स्नेहशून्य व्यवहार करने वाले पुत्र को दूसरे से उत्पन्न हुआ अवश्य समझना चाहिए।"

इस प्रकार उस समय तक के पत्नी के प्रभाव की पर्वाह न करते हुए उस कटुभाषी पति ने मर्मस्पर्शी भाषण द्वारा बहुत दिनो के सचित रोष को व्यक्त कर दिया और पत्नी के हृदय को दृढतर आघात पहुँचाया। इस प्रकार अपने सगोत्र बान्धव के सम्मुख पुत्र की उत्पत्ति के रहस्य को प्रकाशित करने वाले राजा का कठोर भाषण सुनकर वह रानी अत्यधिक लज्जित हो गई।

"वह कलश महत्तम मन्त्री प्रशस्त का पुत्र था। रानी ने अपने पुत्र के मर जाने पर उसे ले लिया था।" इस प्रकार का लोकप्रवाद सर्वत्र फैल रहा था। राजा अनन्तदेव ने इसी लोकप्रवाद की ओर संकेत करते हुए रानी के प्रति कठोर और विरुद्ध भाषण का प्रयोग किया था। अपने पति को अपनी आज्ञा के अनुसार नित्य चलाने वाली स्त्रियो को इस प्रकार का कठोर और विरुद्ध भाषण अन्त्यज (अछूत) के द्वारा मस्तक पर मारी गई लात के समान असह्य होता है। इसलिए रानी ने रुष्ट होकर बाजारू स्त्री के समान प्रौढता के संस्कार से इस प्रकार कठोर तथा सुदृढ वचन ऊँचे स्वर से कहना आरम्भ किया।

"इस श्रीविहीन, भिखारी, भाग्यहीन और केवल शरीर से ही वृद्ध मूर्ख को कहाँ क्या कहना चाहिए, इस बात का भी ज्ञान नही है। मेरे मिलने से पूर्व इसके पास स्नान करने के समय पहिनने के लिए वस्त्र तक नही था और इस बात को समस्त ससार जानता है कि मेरे मिलने से पूर्व इसने क्या-क्या नहीं खोया था। तुमने मुझ पर जो दूषण लगाये हैं, वे सब तुम्हारे ही वश की स्त्रियो मे होंगे। यह समय तुम्हारे लिए प्रायश्चित्त करने का है इसलिए मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम अपना प्रायश्चित्त क्यो नही कर रहे हो। तुम अकर्मण्य और वृद्ध हो गये हो। तुम्हे तुम्हारे पुत्र ने देश से निर्वासित कर दिया है। अब पत्नी ने भी तुम्हारा त्याग कर दिया है, इस प्रकार लोग कहना आरम्भ कर देंगे, इसी बात का मुझे डर लगता है।"

इस प्रकार रानी सूर्यमती के मर्मभेदक तथा गृह के छिद्र को प्रकाशित करने वाले वचन को सुनकर वह राजा अनन्तदेव अत्यन्त दुःखित होकर चुप रह गया। किन्तु उसी समय उस राजा के आसन के निकट रक्त की धारा प्रवाहित होने लगी। धीरे-धीरे उसे वहाँ पर उपस्थित सभी लोगो ने देखा परन्तु उस समय भी राजा का मुख-मण्डल पहले के ही समान तेजस्वी दीख रहा था। उस रक्त की धारा को देखकर रानी सूर्यमती घबड़ा गई और वहाँ पर बैठा हुआ थक्कन भी दुःखित होकर रोने लगा क्योकि राजा अनन्तदेव ने क्रोध के आवेश मे आकर अपने गुदा-द्वार मे छुरी भोक ली थी और उसके उस कार्य को उन दोनो ने देख लिया था।

जब क्रोध का आवेश किंचित् शान्त हुआ और रक्त की धारा से वहाँ की धरती धुल गई तब लज्जित होकर उस धैर्यवान् राजा ने उन सबो से कहा, "यदि इस घटना के रहस्य को छिपाना उचित समझो तो राजा को रक्तातिसार हो गया था, इस प्रकार के वचनो द्वारा बाहरी लोगो मे इस घटना को प्रसिद्ध करना।"

यह सर्वथा सत्य है कि जो जीवन के प्रत्येक कार्य मे स्त्रियो की ही आज्ञा को सर्वापेक्षा अधिक मानने योग्य समझते हैं, एक बार धोखा खाकर भी विश्वासघातक सेवको पर पुनः सहसा विश्वास करने लगते हैं और छोटे-से शत्रु को अनावश्यक महत्त्व देकर उस पर बार-बार आक्रमण करने की चेष्टा किया करते है। ऐसे नीतिशून्य राजाओ का शीघ्र ही नाश होता है। ससार की कोई भी शक्ति उनकी रक्षा करने मे समर्थ नही हो सकती।

"राजा अनन्तदेव घोडे पर सवार होकर भ्रमण करने के लिए गया हुआ था। शरद-ऋतु के तीक्ष्ण आतप (कुँआर-कार्तिक महीने की कडी धूप) से उसे अधिक प्यास लगने लगी थी। किसी प्रकार अपने निवास-स्थान पर आते ही और थोडी देर विश्राम किये बिना ही उसने धान्याम्बु (धनियाँ का जल) पी लिया था। इसी से रक्तातिसार होकर यह घटना हो गई।" जब बाहरी लोगो ने राजा अनन्तदेव के सम्बन्ध मे पूछताछ की और सहसा अस्वस्थ होने का कारण जानना चाहा तब परम बुद्धिमान् और नीतिकुशल विवेकी राजसेवको ने अत्यन्त

गम्भीरता के साथ इस प्रकार उन सबों से कहा। लोगों के निकट वे सब विश्वास-पात्र व्यक्ति थे इसलिए उन सब की बातों पर विश्वास करके लोग चुप हो जाते। कोई भी व्यक्ति उनसे फिर नया प्रश्न नहीं करता था। इसीलिए उस समय राजा के सम्बन्ध का वास्तविक वृत्तान्त किसी को भी विदित न हो सका।

इसके बाद वह राजा लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ पचपन मे कार्तिक शुक्ला पूर्णमासी के दिन विजयेश्वर-मन्दिर के समीप मृत्यु को प्राप्त हुआ। यद्यपि वह राजा अनन्तदेव सभी प्रकार के सुखो का उपभोग करने के योग्य पुरुष था तथापि उसे अपनी पत्नी तथा पुत्र की ओर से निरंतर वे सब दारुण यन्त्रणाएँ मिलती रहीं जिनको कि साधारण पुरुष सह भी नही सकता था। कुछ भी हो, विजयेश्वर की असीम दया से इतने दिनों के बाद उसे समस्त सासारिक यन्त्रणाओं से मुक्ति मिल गई और बहुत समय के बाद परम सुख के साथ पैर फैलाकर अनन्त शान्तिदायिनी चिरनिद्रा की गोद में सोने का अवसर प्राप्त हुआ।

उस समय वह पूर्ण रूप से निर्विकार था। उसका अशान्त मन शान्त हो चुका था। जीवन की अनित्यता और संसार की क्षणभंगुरता का वह प्रतीक बन रहा था। उस समय उसके हृदय मे किसी के प्रति क्रोध न था और न किसी के हृदय मे उसके प्रति। मृत्यु के द्वारा विधाता ने उस महामना राजा अनन्तदेव को क्रोधरहित और सुखी बना दिया था। उस समय संग्राम-राज का उत्तराधिकारी वह अनन्तदेव—जैसे किसी को प्रिय न हो इस प्रकार बन्धु-बान्धवहीन अनाथ के समान वस्त्र से आच्छादित होकर पृथ्वी पर सोया हुआ था। उस समय सर्वस्व त्याग करने वाला वह राजा न तो अपने प्रियजनों के शोकजनित आक्रोश से आनन्दित होता था और न शत्रुओं द्वारा कहे गये कर्णकटु भाषण से विषादग्रस्त होने के लक्षण ही प्रकट करता था। वह तो हर्ष और विषाद, इन दोनों के ही भयानक संघर्ष से मुक्त होकर दीर्घनिद्रा के सुख का अनुभव कर रहा था।

जिस दिन से रानी सूर्यमतीदेवी उसे पत्नी के रूप मे प्राप्त हुई थी उस दिन से उसने अपनी पत्नी के साथ अत्यन्त उदारतापूर्ण व्यवहार किया था। उसने उसे जिस प्रकार चलाना चाहा था, बिना किसी तर्क के वह उसी की इच्छा के अनुसार निरन्तर चलता रहा। किसी भी प्रकार उसने अपनी पत्नी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया था और न उसकी मर्यादा को नष्ट करने वाले कटु वचन कहे थे, परन्तु उस दिन उसने अपनी समस्त सद्भावनाओं और उदारतापूर्ण व्यवहारों का उल्लंघन करके कटु वचन कहे थे, मानो उन्हीं सबका प्रायश्चित्त करने के लिए ही उसने अपने प्राणों का त्याग कर दिया था, इसलिए उसका यह उपकार मानने वाली पत्नी सूर्यमती के द्वारा वह सनाथ किया गया।

सबसे पहले रानी ने अपने पति को ऋणमुक्त करने के लिए राजपुत्र से लेकर चण्डाल पर्यन्त सेवकों को प्रतिदिन का वेतन स्वस्थचित्त होकर दे दिया। वेतन देने के बाद उसने सेवकों से अपने पौत्र हर्ष के जीवन-रक्षण के लिए विजयेश्वर के सम्मुख कोशपानपूर्वक शपथ ग्रहण कराया। कोशपान करने के बाद चरणों मे गिरकर रोते हुए अपने पौत्र हर्ष का मस्तक सूंघ कर उसने उसे समझाते हुए कहा, "किसी भी दशा मे तुम अपने पिता का विश्वास न करना।"

इस प्रकार समझाने के बाद वह रानी सतीत्व के आवेश मे खड़ी हो गई और अपने पति के अंतिम श्रृंगार के समय हाथ मे तलवार लेकर द्वारपाल के समान पहरा देने लगी। जब

सब तैयारियां हो चुकी तब पौत्र की रक्षा के लिए एक सौ अश्वारोही सैनिकों को नियुक्त कर उसने अपने पति के शव को शिविका (पालकी) मे रखा कर वहां से रवाना किया।

इस कार्य को पूर्ण करने मे एक रात और आधा दिन व्यतीत हुआ। फिर वह रानी विजयेश्वर को प्रणाम कर पालकी मे बैठी और वहां से रवाना हो गई। उन दोनो को वहां से निकलते हुए देखकर विजयेश्वर-क्षेत्र की समस्त जनता शोक से अधीर हो उठी। उसे ऐसा जान पडने लगा मानो उस समय उसका अपना कोई परम प्रिय और स्नेही व्यक्ति ही चला गया हो। इसलिए वह अपने दुर्भाग्य को कोस-कोस कर करुण क्रन्दन करने लगी। उस करुण-क्रन्दन की ध्वनि के साथ प्रेत-वाद्यों की तुमुल-ध्वनि ऐसा मिल गई कि उसके मिलाप से उत्पन्न होने वाले भयंकर शब्दो से दशो दिशाएँ विदीर्ण-सी होने लगी।

जिस पालकी पर राजा का शव था उस पर विविध अलकारो से युक्त पताकाएँ फहरा रही थी और पालकी मे जो अलंकार जड़े हुए थे उनमे प्रेत-यात्रा मे चलते हुए मनुष्यो का प्रतिबिम्ब झलकता था। उस झलक से ऐसा भाव उत्पन्न होता था मानो वे सब पालकी पर ही राजा के साथ चले जा रहे हो। जितने मनुष्य साथ मे थे उन सब मे दिवगत राजा के प्रति अटूट श्रद्धा थी। राजा की उस पालकी को सभी राजाओ ने अपने कधो पर धारण किया था। उस समय उन समस्त राजाओ के खुले हुए मस्तको पर से पसीना टपक रहा था और उनके केश पवन के कोमल आघातो से उड रहे थे। वह दृश्य देखकर ऐसा अनुमान होता था मानो उन राजाओ के केशो का सहारा लेकर पवन स्वयं राजा अनन्तदेव के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए चामर डुलाने लगा हो। इस प्रकार प्रेत-यात्रा करती हुई और सैनिको के द्वारा की गई राजा की अन्तिम सेवा को बडी सतर्कता के साथ देखती हुई वह रानी सूर्यास्त के समय श्मशान-भूमि मे पहुँच गई।

वहाँ पर पहुँचने के थोडी ही देर बाद वह एक बार वहाँ की सभी दिशाओ की ओर दृष्टि-पात करने लगी। वास्तव मे बात यह थी कि कठिनाई से ही पुत्र का स्नेह छोडा जा सकता है। रानी भी उसी पुत्र-स्नेह के वशीभूत होकर अथवा किसी विशेष अज्ञात कारण से उस समय अपने पुत्र कलश को देखने के लिए अत्यधिक उत्कण्ठित हो रही थी। सैनिको के आने-जाने के कारण उस स्थान की धूल दूर-दूर तक आकाश मे उडती हुई दिखाई पड रही थी। उस उडती हुई धूल को देखकर रानी ने यह समझ लिया था कि अपने पिता राजा अनन्तदेव के परलोक सिधारने का समाचार सुनकर कलश ही शीघ्रगति से चला आ रहा है। इस प्रकार उसके मन मे अपने पुत्र कलश के आगमन की आशा उत्पन्न हो चुकी थी और इसी आशा के ही कारण रानी मे आश्चर्य और उत्कण्ठा, दोनो का ही प्रादुर्भाव हुआ था। ठीक ऐसे ही समय पर राजधानी के मार्ग से कुछ मनुष्य वहां पर आ गये। उन सबो के आने पर रानी ने अपने साथ के मनुष्यो से पूछा—"क्या कलश आ गया है ?"

इसमे सन्देह नही कि अपने हृदय के जैसे विचार होते हैं, वैसे ही विचार उस मनुष्य के हृदय के भी होते हैं जिससे वे सब विचार अपना सम्बन्ध रखते हैं। इसीलिए जिस प्रकार रानी सूर्यमती अपने पुत्र से मिलने के लिए उत्कण्ठित हो रही थी उसी प्रकार उसका पुत्र कलश भी अपनी माता के समीप जाने के लिए राजधानी मे उत्कण्ठित हो रहा था। अनेक प्रकार से प्रयत्न करने और मन को समझाने पर भी वह अपनी इच्छा को पूर्ण न कर सका। उसके समीप चापलूसी

करने वाले जितने भी कपटी धूर्त थे उन सबो ने एकमत होकर ऐसी-ऐसी विभीषकामयी बातें बतलाईं जिनके कारण वह स्वत भयभीत और अत्यधिक इच्छा के रहते हुए भी अपने पिता के अंतिम सस्कार के समय सती होने वाली अपनी माता के दर्शन से वचित रहा।

जब पुत्र के लिए प्रतीक्षा करते-करते अधिक समय बीत गया तब रानी पुत्र के दर्शन से निराश हो गई और वितस्ता नदी के जल की प्रार्थना कर उसने निम्नलिखित श्लोक ५८।

"वैतस्तेन तु तोयेन जठरस्थेन ये मृताः ।
मोक्ष गच्छन्त्य सन्देह ते यथा ब्रह्मवादिन ॥"

'जो मनुष्य वितस्ता नदी के जल को अपने उदर मे धारण करके अर्थात् वितस्ता नदी के जल को पीकर मृत्यु को प्राप्त होते है, उनके समस्त सासारिक बन्धन कट जाते हैं और कर्म-जनित सस्कारो के बन्धन उनका स्पर्श नही कर पाते। वे सब ब्रह्मवादियो के समान अवश्य मोक्ष को प्राप्त होते है।

इस प्रकार परम श्रद्धा और भक्ति के साथ कहकर उसने उस परम पवित्र वितस्ता नदी के जल से अपने शरीर को पवित्र किया तथा नेत्रो से उस पवित्र जल का उपस्पर्श कर आचमन किया और पिता-पुत्रो मे पारस्परिक स्नेह को नष्ट करने वाले उन समस्त चुगुलखोरो को शाप दिया जिनके कारण उसे निरन्तर कष्टो का सामना करना पडा था। उसने वितस्ता नदी के तट पर स्पष्ट शब्दो मे कहा था, "जिन लोगो ने हम दोनो के साथ हमारे पुत्र कलश मे प्राणनाशक विद्वेष उत्पन्न किया है उन समस्त लोगो का तथा उनके कुटुम्बियो का थोडे ही दिनो मे समूल नाश होगा।"

यह बात लोक-प्रसिद्ध है कि इस प्रकार शोक से सन्तप्त हुई उस सती के अमोघ शाप से राजा कलश को भडकाने वाले परम धूर्त और कपटी पापात्मा जयानन्द, जिन्दुराज आदि शीघ्र ही मृत्यु के मुख मे चले गये। उस समय उन दुष्टो की कोई रक्षा न कर सका और उन सबको अपने किये का फल तुरन्त मिल गया। उन सबो ने सोचा था कि राजा अनन्तदेव के न रहने पर वे सब अपने प्रभाव से नवीन राजा कलश को वशीभूत कर परम आनन्द के साथ राज्य के सुखो का भोग करेंगे किन्तु उस सती के शाप से उनका एक भी मनोरथ सिद्ध न हुआ। मरते समय उन सबो की जैसी दुर्गति हुई थी उसका वर्णन करना भी मानो वीभत्स दृश्य का वर्णन करना ही है।

उन समस्त दुष्टात्माओ को शाप देने के बाद उस सती ने अपने ऊपर हलधर के सम्बन्ध मे लगाये गये अपवाद के लिए अत्यन्त युक्तिपूर्वक परलोक को पण रखकर शपथ ली। उसने उस समय यह कहा—'यदि मैं निर्दोष न होऊँ तो मुझे स्वर्ग की प्राप्ति न हो।" इस प्रकार वह परम पवित्रता के साथ प्रसन्नता के भावो को अपनाकर और अपने पवित्र शील का परिचय देकर पालकी के भीतर से धधकती हुई चिता की भयानक अग्नि मे कूद पडी।

उसके अग्नि मे कूदते ही अग्नि की ज्वालाएँ और भी अधिक ऊँची हो गईं। उस समय समय आकाश की ओर बढती हुई अतिशय उन्नत ज्वालाओ से ऐसा प्रतीत होता था, मानो देवताओ ने उसके स्वागत के लिए महोत्सव मनाते हुए आकाश को सिन्दूर से रँग दिया हो। वहाँ पर लोगो के शोकमय करुण क्रन्दन की ध्वनि से चिता की अग्नि का चटत्कार किसी को

सुनाई नही देता था और वे सब उस समय भयानक दुःख-रूपी अग्नि से दग्ध हो रहे थे, इसलिए उन सबको चिता की अग्नि से उत्पन्न होने वाली उष्णता का अनुभव नही होता था अतएव वह चितानल चित्रलिखित-सा विदित हो रहा था।

गंगाधर, टक्किवुद्ध तथा दण्डक नामक तीन सेवको ने और उद्दा, नोनिका एव वलगा नामक तीन दासियो ने उनके साथ अग्नि मे प्रवेश किया। राजा अनन्तदेव के परम प्रेमास्पद वप्पट और उद्भट के वशज सेनत तथा क्षेमत दोनो वैराग्य को धारण कर विजयेश्वर-क्षेत्र मे रहने लगे। उन्हे समस्त सासारिक सुखो से घृणा-सी उत्पन्न हो गई। मानव-समाज की छलनामयी घटनाओ से उनके हृदय को बडा आघात पहुँचा था। माया और मोह के कारण कितना कष्ट भोगना पडता है, इसे उन लोगो ने राजा अनन्तदेव के जीवन से ही समझ लिया था अतएव उन्हे भगवान् विजयेश्वर के मन्दिर मे ही परमशान्ति का अनुभव होने लगा था।

इस विश्व के सम्पूर्ण प्राणि मात्र का जीवन क्षणभगुर होता है, इसलिए वे अधिक समय तक ससार मे नही ठहर सकते, परन्तु मानव-हृदय और काच-कुप्पिका (काँच की कुप्पी) इन दोनो मे यह एक असाधारण गुण है कि इनके अन्दर सुरक्षित रूप से स्थित अद्भुत् कथानक तथा गंगोदक कभी नही बिगडते और न पुराने हो सकते हैं।

इस प्रकार वह परम प्रतापी लोकधन्य राजा अनन्तदेव वासठ वर्ष की अवस्था मे पत्नी-समेत श्रीगौरीशकर के सायुज्य को प्राप्त हुआ। राजा और रानी की मृत्यु के वाद चौथे दिन तन्वगराज के पुत्र उन दोनो की अस्थियो को एकत्रित कर गङ्गा मे प्रवाह करने के लिए ले गये और अपने पितामह के कोष (धनराशि) तथा परिजन से युक्त हर्ष विजयेश्वर-क्षेत्र मे रह कर अपने पिता राजा कलश से विरोध रखने लगा।

३. राजा कलश की कथा

परिवर्तनशील ससार मे परिवर्तन होते देर नही लगती। पहले तो पिता अर्थात् राजा अनन्तदेव विजयेश्वर-क्षेत्र मे रहता था और उसका पुत्र कलश राजधानी मे और अव राजपुत्र हर्ष विजयेश्वर-क्षेत्र मे रहने लगा और उसका पिता कलश राजधानी मे। तात्पर्य यह कि पहले जो कलश पुत्र के स्थान से सब कुछ किया करता था अव वही कलश पिता के स्थान से कार्य करने लगा।

राजपुत्र हर्ष अपने पितामह के समान बडा उदार और विचारशील था। वह विद्वानो का समादर किया करता था। उसके पास जितना धन था उसे वह अच्छे-अच्छे कर्मो मे मुक्तहस्त से व्यय करता था। जो कोई भी उसके सामने हाथ फैलाता, वह धन द्वारा उसकी मनोकामना को अवश्य पूर्ण कर देता था।

कुछ समय के बाद अत्यन्त व्यय करने वाले राजपुत्र हर्ष से उसके दरिद्र और नीतिज्ञ पिता कलश ने अपने नीतिकुशल दूतो के द्वारा सन्धि के लिए प्रार्थना की। उस गर्वयुक्त राज-पुत्र हर्ष को कलश राजा के दूतो ने बार-बार आकर विनयपूर्वक अनेक प्रकार की युक्तियो से समझाया और किसी न किसी प्रकार अपने पिता के साथ सन्धि करने के लिए प्रसन्न कर लिया। हर्ष ने अपने निश्चित विचार के अनुसार अपने पिता को कुछ धन प्रति वर्ष देने का वचन दिया और कलश ने हर्ष के तथा उसके पितामह के धन और परिजन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की।

जब पिता और पुत्र मे विश्वास करने योग्य सन्धि स्थापित हो गई और उन दोनो के हृदय का सन्देहात्मक विचार नष्ट हो गया तथा बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने सहायकोसहित राजा कलश विजयेश्वर-क्षेत्र की बस्ती मे प्रविष्ट हुआ। तब उसने अपने नेत्रो से देखा कि उसकी अदूरदर्शिता के कारण उस स्थान की कैसी दुर्दशा हो गई है। वहां के जले हुए भवनो को देख-कर उसकी दृष्टि अनुताप के अनल से दग्ध होने लगी और जब वहां पर रहने वाली जनता स्पष्ट शब्दो मे उसके द्वारा किये गये कुकर्मो की भयानक रूप से निन्दा करने लगी तब उसके कान भी जलने लगे।

अनुताप के कारण वह अधीर होने लगा। किसको क्या उत्तर दे, यह उसकी समझ मे नही आ रहा था। अन्त मे कलश ने तीर्थोदक को हाथ मे लेकर जब शपथ ली तब राजपुत्र हर्ष उसके साथ नगर मे गया और वहाँ पर राजा कलश ने हर्ष के धनसमूह पर उसके नाम की मुद्रा अर्थात् सील लगवा कर उस धन को अलग रखा दिया। उसके बाद उस राजा कलश के समस्त विचारो मे आकस्मिक परिवर्तन हो गया। उसकी बुद्धि मे अत्यन्त धार्मिकता की भावना उत्पन्न हो गई और वह धर्म के अनुसार समस्त आचरण करने लगा तथा धन के सचय मे दत्तचित्त होने के कारण उसकी आर्थिक दशा भी सुधर गई था।

उसी समय सेल्यपुर निवासी नयन का पुत्र जय्यक धीरे-धीरे एक सम्पन्न डामर हो गया था। वह अन्न तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओ का व्यापार करता था। दूर-दूर के प्रदेशो मे वह अपना व्यापार बढा चुका था। विविध प्रकार की वस्तुओ का क्रय-विक्रय ही उसका मुख्य धधा था। उस धधे से उसने इतना धन कमा लिया था कि उस समय वह अपने सामने कुबेर को भी-तुच्छ समझता था।

उस अतुल सम्पत्तिशाली जय्यक डामर ने डेढ कोस तक की जमीन खुदवा कर उसमे दीनारो से भरे हुए कलश गडवा दिये थे और फिर उस पृथ्वी पर चावलो की खेती कराई थी। वह प्रतिदिन रात को सेवको के द्वारा दीनारो से भरे हुए कलश गडवाया करता था और उस गुप्त धन का रहस्य किसी को विदित न होने पावे इसलिए उसने उन सेवको मे से अनेक सेवको की गुप्त रूप से हत्या करा डाली थी।

किसी समय वह अपने सशस्त्र सैनिको को साथ लेकर भागील नामक प्रदेश पर अपना अधिकार जमाने के लिए गया था। चलते-चलते जब वह उस प्रदेश मे पहुँचा तब उसके सौभाग्य-रूपी आकाश पर दुर्भाग्य के मेघ गुप्त रूप से छा गये। वहां पर ज्यो ही वह पहुँचा त्यो ही उसकी सेना सहसा वहां से भाग खडी हुई और उसका घोडा अगूर की किसी एक लता मे फँस गया। इतने मे किसी पैदल चलने वाले सैनिक ने उसे मार डाला। वह अपना समस्त धन छोड कर सदा के लिए ससार से चल बसा और उसका भूमि मे गडा हुआ विपुल धन-समूह राजा कलश को मिल गया।

वहां पर गडे हुए सम्पूर्ण धन को राजा कलश ने जमीन के भीतर से निकलवा लिया। उस धन से वह राजा जीवन भर के लिए दरिद्रता से हीन हो गया। जमीन के भीतर से निकाले गये उन दीनारो की मिट्टी के धोने से सम्पूर्ण वितस्ता नदी का जल कई महीनो तक गन्दा बना रहा।

इस संसार मे जितने भी लोभी धनवान् पुरुष होते है वे सब अपने जीवन मे अवसर पाकर भी अपने धन का न तो उपभोग करते हैं और न अच्छे-अच्छे कामो मे ही लगाते है तथा न उस धन से किसी का उपकार करते हैं और उन उससे दान-धर्म ही करते है। धन के सदुपयोग के लिए जितने भी कर्म कहे गये हैं उन सब से वंचित रहकर वे बडे क्लेश के साथ दूसरो के लिए प्राणो के समान धन की रक्षा करते हैं, यह बडे आश्चर्य की बात है।

इस प्रकार के लोभी धनवान् पुरुषो की उपमा सर्प से ही दी जा सकती है। सर्प भी पवन का पान कर अपने प्राणो की रक्षा करता है और जहाँ पर सूर्य का प्रखर प्रकाश भी नही पहुँच पाता ऐसे घोर अन्धकारमय बिल मे बडी प्रसन्नता के साथ शयन करता है तथा नग्न होकर लज्जा का निवारण करने के लिए दूसरो के दिये हुए वस्त्र की आकाक्षा करता है। ऐसे ही उपायो द्वारा अपने जीवन का निर्वाह कर वह अपनी कदर्यता का विस्तार करता हुआ दूसरो के लिए अमूल्य निधि की रक्षा करता है। अतएव यह कहना ही पड़ता है कि इस ससार मे लोभी मनुष्य के अतिरिक्त दूसरा कोई भी परोपकार के कार्य मे पारगत नही है।

जय्यक नामक डामर का अतुल धन राजा कलश को मिला था ही। उसके अतिरिक्त और भी सम्पदाएँ उसे प्राप्त होने लगी। जिस प्रकार अनेक पर्वतो और अनेक मार्गों से आकर समस्त नदियाँ अत मे समुद्र मे प्रवेश करती हैं उसी प्रकार भाग्य का उदय होने पर उस भाग्य-वान् राजा के समीप विविध प्रकार की सम्पदाएँ आ-आकर एकत्र होने लगी।

जिस प्रकार सायकाल के समय भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्षी भिन्न-भिन्न दिशाओ से आकर वृक्ष के समीप पहुँच जाते हैं उसी प्रकार भाग्योदय के समय सैकडो प्रकार की सम्पत्तियाँ मनुष्य के पास स्वय आ जाती है। सूखे हुए सरोवर मे नीचे की जमीन से अनेक प्रबल झरने बहकर उसके तलभाग को जल से पूर्ण कर कर देते हैं और आकाश से बादलो का समूह जल बरसाने लगता है। इसके साथ ही साथ प्रकृति की अनुकूलता प्राप्त कर चारो ओर से बडी-बडी नदियो के पूर और बड़े-बडे नाले भी आकर मिल जाते है। इस प्रकार भीषण ग्रीष्मकाल का सूखा हुआ वह सरोवर वर्षाकाल मे जल से पूर्ण हो जाता है।

इसमे तनिक भी सन्देह नही कि जिस समय प्रबल भाग्योदय का समय आ जाता है उस समय सैकडो प्रकार के मार्गों से मनुष्य के पास सभी प्रकार की सम्पदाएँ आ जाती हैं। जिस मनुष्य से सभी घृणा करते थे और नित्य दूर रहने मे ही अपना कल्याण समझते थे, भाग्योदय होने पर उसी मनुष्य से लोग स्नेह करने लगते हैं और उसकी समीपता प्राप्त करने मे ही अपना परम सौभाग्य समझने लगते हैं। दुर्भाग्य और सौभाग्य मे इतना आश्चर्यजनक अन्तर है।

उसके वाद प्रजा मात्र के पुण्योदय से राजा कलश की सुमति पिता के समान प्रजापालन के कार्य मे प्रतिदिन उदार और नीतिनिपुणता के साथ कुशल होने लगी। वह राजा स्वय वैश्यो के समान द्रव्य गणना मे कुशल होकर भी विवेक-सम्पन्नता के कारण सन्मार्ग मे द्रव्य का त्याग करते समय सर्वदा मुक्तहस्त रहता था।

वह वर्तमान और भावी आय-व्यय का अत्यन्त सावधानता से निरीक्षण करता था और राज्य के साधारण कर्मचारी के समान हिसाव लिखने के लिए भूर्जपत्र तथा खटिका (खडिया मिट्टी) को सर्वदा अपने पास रखता था। इसलिए राज्य-सम्बन्धी समस्त कार्य बड़े सुचारू रूप

से चलने लगा था। वह स्वयं रत्नों के स्वरूप को भली भाँति जानता था। जब कोई रत्नो का व्यापारी उसके यहाँ आता तब वह स्वयं रत्नो की परीक्षा करता। यदि उसकी परीक्षा मे वे सब रत्न सच्चे प्रमाणित होते तो वह उनका उचित मूल्य देकर उन्हे मोल ले लेता था। इसलिए कोई भी रत्न-विक्रेता उसे ठग नही सकता था। समय का उचित विभाग कर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का सेवन करने वाला वह सुखी राजा दोपहर के बाद किसी कर्मचारी से नही मिलता था।

उसके गुप्तचर बडे सूक्ष्मदर्शी और अपने कार्य मे दक्ष थे। वे राजा के परिजनो और प्रजा-वर्ग के अन्तर्गत होने वाले सभी कार्यों का पता बडी तत्परता के साथ लगाया करते थे। उनके द्वारा राजा कलश को प्रजा के स्वप्न-वृत्तान्त के अतिरिक्त सभी वृत्तान्त विदित हो जाते थे। जिस प्रकार एक कुशल गृहस्थाश्रमी अपने गृहकार्य की ओर पूर्ण रूप से ध्यान रखता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने राज्य के कार्यों की ओर नित्य ध्यान रखता था।

कहाँ किसे किस बात का कष्ट है, इस पर ध्यान रखकर वह राज्य से सम्बन्ध रखने वाले समस्त कार्यों को किया करता था। इसीलिए उसके राज्य मे कोई भी व्यक्ति दैन्यग्रस्त नही दीखता था। जिसके लिए जैसा सुखोपभोग का सामान चाहिए उसे वह सब सामान राजा की कृपा से सुलभ था। अन्न-वस्त्र तथा जीवनोपयोगी वस्तुओ का अभाव न होने के कारण उसकी प्रजा उससे परम प्रसन्न थी। सुकाल उपस्थित होने पर प्रजा के विचार अपने राजा के प्रति जैसे पवित्र हो जाते है, वैसे ही पवित्र विचार उस समय उसके प्रति प्रजा ने धारण कर लिये थे।

जो कलश राजा अनन्तदेव के समय किसी भी व्यक्ति की पर्वाह न करके उद्दण्डता को ही अपने जीवन का लक्ष्य समझता था, वही उस समय साधारण से लोकोपवाद की भी पर्वाह करने लगा। उसके द्वारा किये गये राज्य-प्रबन्ध पर किसी को कोई कटु आलोचना न करनी पडे, इस ओर भी वह विशेष रूप से सावधान रहा करता था। इसीलिए कण्टक-शोधन करते समय वह चोरो को भी प्रकट रूप से दण्ड नही देता था।

उस चतुर राजा से कभी कोई ऐसी भूल नही होती थी, जिसे ठीक करने के लिए उसके मन्त्रियो को कष्ट उठाना पडता हो, बल्कि वह स्वय कई बार अपने मन्त्रियो की भूल को सुधार कर ठीक करता था। यही कारण था कि उसके मन्त्री भी बडी सावधानता और विचारशीलता के साथ उसे मन्त्रणा दिया करते थे तथा जो भी कुछ करते थे उसमें प्रजा के हित का ध्यान अवश्य रखते थे। वे सब यह समझ चुके थे कि राजा कलश तभी उनके कार्यों और परामर्शों का सहर्ष अनुमोदन करेगा जब कि वह उनमे प्रजा के हित को पूर्ण रूप से देख लेगा।

राजा के प्रजावत्सल होने के कारण राज्य के अन्तर्गत प्रजामात्र का भय जाता रहा। जिस प्रकार अपने माता-पिता के सामने बालक बड़ी प्रसन्नता के साथ क्रीडा किया करते है उसी प्रकार उस राजा के सामने प्रजा अपने सासारिक कार्यों को किया करती है। चोरो, डाकुओ और लुटेरो का भय नष्ट हो चुका था। राजकर्मचारियो की ओर से होनेवाले अत्याचारो की इतिश्री हो गई थी। इसीलिए उसके राज्य मे प्रजा विवाह, यज्ञ, यात्रा आदि सैकडो प्रकार के महोत्सवो मे निमग्न होकर सर्वदा आनन्द और दैन्यशून्य दीखती थी।

उस नीतिज्ञ राजा ने अपने पास-पडोस के राजाओ पर इतना अधिकार जमा लिया था कि वे उसकी देखरेख के बिना भोजन तक नही कर सकते थे। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी अमृत बरसाने वाली कलाओ से देवता तथा पितृगणो को सन्तुष्ट करता है, उसी प्रकार उस

राजा कलश ने अपनी भव्य विभूतियो के द्वारा देशान्तर को जाकर वहाँ से लौटकर आये हुए अपने वान्धव तन्वंग के पुत्र थक्कन आदि तीन भ्राताओ को तथा अपने छोटे भाई को खोनेवाले गुग के पुत्र मल्ल आदि राजभक्त सेवको को सन्तुष्ट किया अर्थात् उन्हे पर्याप्त पारितोषिक देकर प्रसन्न कर दिया।

यद्यपि उस राजा को दुराचरण से होने वाले अनेक दुष्परिणामो से अधिक अनुभव हो चुका था तथापि दुष्ट जनो के द्वारा सिखलाये गये दुःशील तथा दुराचरण को वह नही छोड सका। टक देश का रहने वाला बुलिय नाम का एक व्यवसायी था। उस समय तुर्क व्यापारी कई देशो से सुन्दरी बालिकाओ को लाकर बेचा करते थे। उस बुलिय ने उन्ही तुर्क व्यापारियो से सुन्दरी बालिकाओ को मोल ले लिया था और फिर राजा कलश को प्रसन्न करने के लिए उसने उन्हे उसकी सेवा मे भेंट कर दिया था। उन समस्त सुन्दरी बालिकाओ को पाकर राजा कलश ने अपने जीवन को धन्य समझा।

इसके बाद राजा ने उन सुन्दरी बालिकाओ को अपने अन्तःपुर मे रख लिया। इतना ही नही, उन सब को पाते ही उसके मन मे क्रमशः रूप का लोभ उत्पन्न होने लगा इसलिए उसने बहुत-सी परस्त्रियो को भी अन्त.पुर मे रख लिया। इस प्रकार उसके अन्त पुर मे बहत्तर ललनाएँ निवास करती थी। वह अनेक ललनाओ का उपभोग करता था, फिर भी मत्स्य-यूष (मछली का रस) आदि पौष्टिक पदार्थों के सेवन से उसकी शक्ति क्षीण नही होती थी।

उस राजा का महासमय-पूजा (शाक्तो के मतानुसार आधी रात के समय की जानेवाली पूजा) पर अत्यत प्रेम था। उसमे वह गुरुओ (शाक्त-दीक्षाचार्यों) के साथ बडे-बडे प्याले भर-भर कर यथेष्ठ मदिरा का पान करता था और इस कार्य मे वह नीति की तनिक भी पर्वाह नही करता था। इस प्रकार भले और बुरे सभी तरह के कार्यों मे निमग्न रहने पर भी उसने विजयेश्वर-क्षेत्र की जली हुई बस्ती को फिर से नवीन रूप मे बसाया और वहाँ पर पाषाणमय नवीन शिवालय तैयार कराया। विजयेश्वर के पाषाणमय मन्दिर के शिखर पर राजा ने गगनचुम्बी सुवर्णमय भव्य छत्र भी लगवाया और वहाँ के त्रिपुरेश्वर के मन्दिर मे पूजा आदि के व्यय का स्थायी प्रबन्ध भी कर दिया तथा उसी क्षेत्र मे एक दूसरा शिवालय तैयार करा कर उसके शिखर पर सुवर्णमलक अर्थात् सोने का आँवला लगवाया।

इस प्रकार के धार्मिक कार्यों को करते-करते वह राजा कलश सत्कर्मों के सम्पादन मे कुशल हो गया और दिन-प्रतिदिन उसकी रुचि उन सब कार्यों की ओर बढती ही गई। उसने बडी प्रसन्नता के साथ अपने नाम से कलशेश्वर नामक शिव-मन्दिर का निर्माण कराया और उसके ऊपर असख्य सुवर्णमयी घण्टिकाएँ लगवाई। वह राजा उस मन्दिर को और अधिक भव्य बनाने के लिए उस पर सुवर्णमय छत्र लगवाना चाहता था। इसके लिए उसने अपने देश के और देशान्तरो के कारीगरो को बुलाया था।

उसी समय उसके पास एक तुरुष्क-देशवासी कारीगर आया था। उस कारीगर ने उस छत्र के लिए कई हजार सुवर्ण दीनारो के मिलने पर बन सकने को कहा था। यद्यपि वह सुवर्ण का पूरा मूल्य लेना चाहता था तथापि वह ताँबे के पत्रो पर सोने का पानी चढाना चाहता था, परन्तु अपनी उस कला को राजा से गुप्त रखना चाहता था। बात भी सच थी। यदि राजा को उसके उस इरादे का पता चल जाता तो जितना व्यय उसने उस छत्र के लिए बतलाया था उतना

उसे न प्राप्त होता और यदि कहीं राजा को क्रोध आ जाता तो उसे दण्ड भी भोगना पड़ता।

कुछ भी हो उस कारीगर ने जैसा कहा उसे राजा ने बड़े ध्यान से सुन लिया और फिर विचार करने के बाद कार्य को आरम्भ करने के लिए आदेश देने का निश्चय किया। फिर वह कारीगर राजा के यहाँ रहने लगा। वह बात करने में इतना कुशल था कि सभी उस पर मुग्ध हो गये थे। उसने लोगों मे यह भाव उत्पन्न कर दिया था कि उससे बढ़कर दूसरा कोई भी कुशल कारीगर नहीं है। राजा के हृदय पर भी ऐसा ही प्रभाव पड चुका था, इसलिए उसने उसे राज-अतिथि बनाकर रखा था।

इस प्रकार कुछ दिनों तक वह राजा के द्वारा किये गये सत्कार के सुख का अनुभव करता रहा और किसी को भी अपने हृदय की छाया तक को नहीं छूने दिया। राजा कलश का मन्त्री नोनक बड़ा ही विलक्षण और विचक्षण व्यक्ति था। उसकी बुद्धि इतनी तीव्र और दृष्टि इतनी तीक्ष्ण थी जिसका कि वर्णन नहीं हो सकता। वह उस कारीगर के विषय मे विशेष रूप से अनुसन्धान करने लगा। उसने उससे मेल-मिलाप करने के लिए कारीगर बने हुए गुप्तचरों को नियुक्त किया। उनसे वह कारीगर जो कुछ भी कहता, वह सब उस मन्त्री को विदित हो जाता था।

धीरे-धीरे जब उन गुप्तचरों से अधिक मित्रता हो गई और वे सब परम आज्ञाकारी सेवकों के समान उसके सभी आदेशों का पालन करने लगे तब वह कारीगर उनसे अधिक प्रसन्न रहने लगा। कुछ दिनों के बाद जब उन सब गुप्तचरों ने उसके ऊपर अपने प्रभाव को जमा लिया और उसके नितान्त विश्वास-पात्र बन गये तब उन सबों ने कलशेश्वर-मन्दिर के ऊपर लगाये जाने वाले सुवर्णमय छत्र की चर्चा छेड दी और यह भी कहा, "आपने बहुत ही कम व्यय बतलाया है। इतने कम व्यय मे आप सुवर्णमय छत्र तैयार कर देंगे, यह बड़े आश्चर्य का विषय है।"

इस पर उसने अपने हृदय का सारा भेद बतला दिया और उन सबों ने जाकर नोनक मन्त्री से कह दिया। मन्त्री को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उन गुप्तचरों को इस कार्य के लिए उचित पारितोषिक दिया और फिर राजा कलश के समीप जाकर कहने लगा, "महाराज! जिस कारीगर को आपने राज-अतिथि के समान सम्मान प्रदान कर अपने यहाँ रखा है, वह हम सबों के सहित आपको बुद्धिहीन समझ कर ठगना चाहता है।" ऐसा कहकर उसने जिस प्रकार जो कुछ अनुसन्धान किया था वह सब राजा से कह दिया। राजा ने तुरत उस कारीगर को बुला भेजा और जब वह राजा के समीप आया तब अत्यन्त कुशाग्र-बुद्धि राजमन्त्री नोनक ने उससे उसके हृदय की समस्त गुप्त बातों को कहकर उसे तुरत लज्जित कर दिया। वह धूर्त कारीगर निराश होकर वहाँ से चला गया और उसके जाने के बाद नोनक ने बहुत ही कम सुवर्ण से स्थानीय कारीगरों के द्वारा उस छत्र का निर्माण करा कर राजा को दिखा दिया। उस उज्ज्वल छत्र के निर्माण हो जाने पर राजा की प्रसन्नता अपनी सीमा को पार कर गई। उसने मुक्त कण्ठ से राजमन्त्री नोनक की अधिक प्रशंसा की

अपनी धार्मिकता और सत्कर्म-परायणता के कारण वह राजा कलश सभी के लिए सम्मान का पात्र बन चुका था। सौभाग्य के पूर्णोदय से उसके पास सम्पत्ति की कमी न थी। इन्हीं

समस्त कारणो से यदि काश्मीर को पृथ्वी का स्वर्ग होना स्वीकार कर लिया जाय तो वह राजा कलश निस्सन्देह देवताओ के राजा इन्द्र के समान हो गया था। देवमन्दिरो के निर्माण की रुचि उसमे क्रमश. वृद्धि को प्राप्त करती गई। इसीलिए उसने अपने पिता के नाम से अनन्तेश नामक शिववाण की और इसी प्रकार अनेक देवमूर्तियो की शास्त्र के अनुसार प्रतिष्ठा की।

राजपुरी के सहनपाल की मृत्यु के बाद उसके अल्पवयस्क पुत्र सग्रामपाल का राज्याभिषेक किया गया। उस बालक राजा सग्रामपाल का पितृव्य (पिता का भाई) बलवान् मदनपाल उसके राज्य को छीनने की इच्छा से प्रयत्न करने लगा। उसके भय से भयभीत होकर संग्रामपाल की बहन और और जस्सराज ठक्कर राजा कलश के पास सहायता के लिए आये। राजा ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर कृपा करते हुए उनकी सहायता करने के लिए बिज्ज आदि पराक्रमी शूरवीरो के सहित जयानन्द को भेज दिया।

वहाँ जाकर जयानन्द ने समस्त शत्रुओ को वहाँ से भगा दिया और सम्पूर्ण राज्य के कर्मस्थानो पर अपना अधिकार जमा लिया। इसलिये संग्रामपाल के मन्त्रियो की दृष्टि मे भी वह जयानन्द सन्देह का पात्र बन गया। उन मन्त्रियो ने उससे वहाँ से लौट जाने के लिए कहा, समझाया और कई विभीषिकाएँ दिखलाईं किन्तु वह वीर उन समस्त बातो से तनिक भी चलायमान् नही हुआ।

"राजपुरी के मन्त्रियो को यह सब उसके सहायक बिज्ज ने ही समझाया होगा" ऐसा विचार कर वह जयानन्द उस पर सन्देह करते हुए रुष्ट हो गया। जब राजपुरी के लोगो ने उसे पर्याप्त धन देकर फिर से जाने के लिए प्रार्थना की तब उसने बडी चतुरता के साथ बाद मे उस राज्य की रक्षा करने के बहाने अपनी सेना को वहाँ रखकर स्वदेश को प्रयाण किया। राजा कलश अत्यन्त चतुर और राजनीति मे प्रवीण था। इसलिए जयानन्द के इस चतुरतापूर्ण कार्य से राजपुरी पर अपना आधिपत्य स्थायी रहता समझकर आनन्दित हुआ।

इस प्रकार उसके कृपा-पात्र बिज्ज आदि भी राजा के समान ऐश्वर्यशाली होकर वहाँ रहने लगे। इसके बाद कुछ दिन बीत जाने पर जयानन्द दुर्भाग्य से प्राणान्तक रोग से ग्रस्त हो गया। उसके स्वास्थ्य की खबर पूछने के लिए राजा कलश बिज्ज आदि को साथ मे लेकर उसके निवास-स्थान पर गया। वहाँ बातचीत करते हुए जयानन्द ने राजा से कहा, "मुझे आपसे एकात मे कुछ कहना है।"

उसके इस प्रकार कहते ही वहाँ पर जितने लोग थे, बिज्ज को छोडकर सभी चले गये, फिर भी जयानन्द ने राजा से कुछ भी नही कहा। तब पान थूकने के बहाने बिज्ज बाहर जाने लगा। उस समय उससे जयानन्द तथा राजा कलश ने "आप बाहर क्यो जा रहे हैं" इस प्रकार ऊपरी मन से कहा, फिर भी वह वहाँ से कुछ समय के लिए अन्यत्र चला गया।

तब जयानन्द ने राजा कलश से राजपुरी का समस्त वृत्तान्त आदि से लेकर अन्त तक कह सुनाया और यह भी सूचित किया कि बिज्ज की इस प्रबलता और ऐश्वर्य को देखकर कौन कहेगा कि यह राज्य आपका है। इसके अतिरिक्त बिज्ज ने राजकीय कार्यों मे खूब धन कमाया है, इस विषय का भी लम्बा-चौडा व्याख्यान सुनाया। जयानन्द के द्वारा कहे गये समस्त वृत्तान्त को सुनकर राजा कलश के मन मे बिज्ज के सम्बन्ध मे कालुष्य उत्पन्न हो गया। इसके बाद वह चुपचाप वहाँ से राजभवन को लौट गया।

बिज्ज भी कम चतुर नहीं था। वह तो संकेत मात्र से ही मनुष्यों के मनोगत भावों को समझ लेता था। जब उसने यह समझ लिया कि जयानन्द ने उसके सम्बन्ध मे राजा के हृदय को कलुषित कर दिया है तब उसने बडी नम्रता के साथ राजा से विदेश जाने की आज्ञा माँगी। पहले तो राजा ने ऊपरी मन से उसे रोकने की चेष्टा की किन्तु जब वह विशेष रूप से आग्रह करने लगा तब मन ही मन प्रसन्न होकर उसे जाने की आज्ञा दे दी। आज्ञा प्राप्त करते ही वह अपने घर गया और वहाँ जाकर अपना सब सामान भाइयो के साथ तुरन्त रवाना कर दिया। जब उसके भाई सब सामान लेकर चल गये तब वह चलते समय फिर राजा से मिलने के लिए आया।

उस समय राजधर्म की गम्भीरता के कारण परस्पर कठोरता का व्यवहार करने वाले उन स्वामी और सेवक, दोनो का आपसी व्यवहार बडा ही आश्चर्यजनक था। क्योंकि राजा कलश ने अपने प्रिय सेवक बिज्ज को जाने से नही रोका और बिज्ज ने रुष्ट होकर भी अपने प्रिय स्वामी पर किसी भी प्रकार का दोषारोपण करते हुए उलाहना नही दिया। राजा कलश बिज्ज को पहुँचाने के लिए उठ कर कुछ दूर तक उसके साथ-साथ गया तथा उन दोनो ने कुछ समय तक धीरे-धीरे परस्पर बातचीत की और बाद मे हँसता हुआ बिज्ज वहाँ से रवाना हो गया।

पहले हलधर ने आसन्न मरणावस्था मे जिन्दुराज को कलंकित कर उसका उच्चाटन किया था। उसी प्रकार जयानन्द ने भी इस अवस्था मे बिज्ज का उच्चाटन कर उस बात की पुनरावृत्ति कर दी।

राजा के मन्त्रियो ने बिज्ज को जाता हुआ देखकर राजा से कहा, "महाराज! यह बिज्ज आपकी समस्त सम्पत्ति लेकर जा रहा है। इस देश मे इसने अपना कुछ भी नही रहने दिया है, इसलिए इसका सर्वस्व हरण कर लेना चाहिए।" परन्तु राजा कलश ने मन्त्रियो के इस कथन पर तनिक भी ध्यान नही दिया। "जाते हुए बिज्ज को राजा कलश अवश्य रोक लेगा" इस आशा से राजा के अतिरिक्त सभी लोग उसके पीछे गये।

राजा भी परम पराक्रमशाली बिज्ज के आक्रमण की आशंका से व्याकुल हो रहा था। तिनके के हिलने पर भी डरने लगता था। इस प्रकार जागरण करते हुए उसने पाँच रात्रियाँ व्यतीत की। जब बिज्ज शूरपुर के आगे निकल गया और उसको पहुँचाने के लिए गये हुए लोग वहाँ से वापस आ गये तब राजा कलश की घबडाहट शान्त हुई और तभी उसने अपने मन की शंका को मन्त्रियो के सम्मुख प्रकट किया। उन मन्त्रियो ने इस बात को सुनकर बिज्ज का सर्वहरण करने के लिए दी गई सलाह को न मानना राजा की नीतिज्ञता समझा। वे बिज्ज आदि निर्द्रोही सज्जन जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ रत्नो के समान सर्वत्र सम्मान के पात्र हुए।

जिसके विचार स्वभावत पवित्र होते हैं, वह जहाँ कही भी रहे अपनी उन्नति अवश्य कर लेता है। यह सत्य है कि ससार मे भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले मनुष्य रहते हैं। द्वन्द्वात्मक सृष्टि मे सघर्ष नित्य होता रहता है। कभी सज्जन दुर्जन पर और कभी दुर्जन सज्जन पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। कभी मनुष्य को सम्मान प्राप्त होता है और कभी अपमान के घोर रौरव नरक मे कष्ट उठाना पडता है। उत्थान के प्रकाश मे कभी जीवन की घडियाँ धन्य हो जाती हैं और कभी पतन के भयानक गड्ढे मे पड़ जाने के कारण जीवन से भी निराश होना

पड़ता है। किन्तु जो वास्तव में संसार का अनुभव प्राप्त किये रहते हैं वे सभी दशा में अपने कर्त्तव्य पर ही ध्यान रखते हैं। कर्त्तव्य से विचलित न होने के कारण उनके विचार नित्य शुद्ध बने रहते है।

यही कारण है कि यद्यपि राजा कलश से पृथक होकर उसका परमप्रिय सेवक विज्ज कश्मीर से चला गया था और वह क्रमश. अधिकाधिक गौरव का भाजन बनता गया तथापि उसके हृदय मे देवता के समान कलश मे जो श्रद्धा थी, वह तनिक भी न्यून न हो सकी और वह अपने स्वामी राजा कलश के चरणो का सर्वदा अनन्य भक्त बना रहा।

इस प्रकार विज्ज आदि राजा के प्रिय और विश्वासपात्र सेवकों को राज्य से निकलवा देने के बाद जयानन्द अपने अधिकार के वैभव का उपभोग करने लगा। उसने मन मे यह समझ लिया था कि वह चिरकाल तक ससार मे जीवित रहकर अनन्त सुख का भोग कर सकेगा, किन्तु सती-शिरोमणि महारानी सूर्यमती का शाप उसे उसी प्रकार घेर रहा था जिस प्रकार ग्रहण के समय सूर्य और चन्द्रमा को राहु और केतु घेरने लगते हैं। इसीलिए उस दुष्टात्मा जयानन्द की कोई भी मनोकामना पूर्ण न हो सकी और वह थोड़े ही दिनो मे सूर्य-मती के शाप से मृत्यु के मुख का ग्रास बन गया।

उसी प्रकार स्वर्गीय राजा अनन्तदेव के साथ द्रोह करने वाला पापात्मा जिन्दुराज भी सती सूर्यमती के शाप की सत्यता को प्रकट करने के लिए शीघ्र ही यमलोक मे जाकर यमराज का अतिथि बन गया। यद्यपि राजा कलश के प्रिय सेवक विज्ज आदि अपने स्वामी के लिए बड़े श्रद्धालु थे और बडी तत्परता के साथ उसको प्रसन्न करने के लिए उसकी इच्छा के अनुसार समस्त कार्य किया करते थे किन्तु राजा अनन्तदेव के विरुद्ध राजा कलश को बहकाने वाले कार्य मे वे भी अधिक से अधिक प्रयत्न किया करते थे। इसलिए थोड़े ही समय के लिए ऐश्वर्य को प्राप्त कर पूर्वोक्त शाप के अनुसार वे लोग भी गौड देश मे जाकर नाश को प्राप्त हुए।

गौड देश मे जाकर विज्ज आदि बड़े सुख के साथ रहने लगे थे। वहाँ पर भी उन्हे अधिक से अधिक सम्मान प्राप्त हुआ। जो कोई भी उनके पास जाता था वही उनके व्यवहार से प्रसन्न होकर मुक्तकण्ठ से उनका गुणानुवाद किया करता। जनता के द्वारा अधिक सम्मान प्राप्त होते ही उनमे स्वाभिमान की मात्रा अधिक बढ गई। परिणाम यह हुआ कि वहाँ पर वे सब अकस्मात् किसी एक झगडे मे फँस गये और उसी झगडे के कारण विज्ज की मृत्यु हो गई और उसके भाई भी जेल मे सडते-सडते व्याकुल हो गये। जब वे सब किसी उपाय से कारागृह से भागे तब पाजक के मार्ग मे उनमे से कई एक को व्याघ्र खा गया और जो शेष रह गये वे अत्यन्त दुःख को भोगकर नष्ट हो गये।

इस प्रकार अपने अधिकार के मद मे आकर जिन धूर्तों ने पिता और पुत्र मे वैर उत्पन्न किया था और उस बढते हुए पारस्परिक मनोमालिन्य से लाभ उठाकर अपने को प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया था, वे सब थोडे ही दिनो मे नष्ट हो गये। उन समस्त धूर्तों मे से मदन आदि दो तीन व्यक्ति शेष रह गये थे। यद्यपि वे सब उसी समय मृत्यु को नहीं प्राप्त हुए थे तथापि कुछ समय के बाद उनकी भी बड़ी दुर्गति हुई थी।

जब जयानन्द यमलोक सिधार गया तब उसके पुत्र सर्वथा अनाथ हो गये। उनकी देखभाल करने वाला भी कोई न था। उसका सहायक वामन था। जब उसने देखा कि

जयानन्द के पुत्रो का कोई अपना रक्षक नही है तब वह उन सबका रक्षक बनकर पालन करने लगा। राजा कलश ने उसी को अपना सर्वाधिकारी बनाया। वह अत्यन्त चतुर और राज्य के कार्य-सम्पादन मे प्रवीण था। वह इतनी कुशलता के साथ कार्यों को करता था कि उससे सभी प्रसन्न रहा करते थे। इसीलिए उसके विलक्षण चातुर्य और उत्कृष्ट कर्तृत्व को आज भी वृद्ध लोग सराहते हैं।

कुछ दिन बीत जाने पर वह राजा कलश अत्यन्त लोभी बन गया। उसने अवन्तिस्वामी आदि देवालयो के उपभोग मे आने वाले ग्रामो को जब्त कर कलशगज नामक नवीन कर्मस्थान की स्थापना की। उस समय उसके जितने मन्त्री थे किसी ने भी उसके इस कार्य का विरोध नही किया। बहुत दिनो से दु शीलता के जो सस्कार दबे हुए पडे थे, वे सब पुन' बडी शीघ्रता के साथ अपना कार्य कर दिखाने के लिए प्रकट होने लगे।

जीवन के सघर्षों से राजा कलश पहले की अपेक्षा अधिक अनुभवी हो चुका था। किसी व्यक्ति को समझने मे उसे देर नहीं लगती थी। इसलिए उसके हृदय मे दु शीलता के जो भाव उमडने लगे थे, वे सब उसी तक सीमित थे। उसका मन्त्री नोनक द्रव्य के सम्पादन-कार्य मे अत्यन्त सुदक्ष था। उस समय इस कार्य के लिए उससे बढकर दूसरा कोई योग्य पुरुष न था, किन्तु उसमे सबसे बडा दोष यह था कि उसका स्वभाव बडा तीक्ष्ण था। व्यवहार मे वह क्रूरता कर बैठता था। उसके इस दोष को देखकर ही राजा कलश ने समझ लिया कि यदि इसको अधिक बढाया गया तो यह प्रजा को पीड़ा पहुँचा देगा। चूँकि राजा कलश के विचारो मे प्रजा का रक्षण ही मुख्य स्थान प्राप्त किए हुए था इसलिए उसने उस क्रूर स्वभाव वाले मन्त्री नोनक को पादाग्र का अधिकार नही दिया।

अपनी सेवाओ तथा अनन्य श्रद्धापूर्ण भावो के कारण राजकलश नामक मन्त्री के पुत्र प्रशस्तकलश आदि राजा कलश के प्रीति-भाजन और अन्तरग सेवक बन गये थे। राजा के द्वारा सम्मान प्राप्त करने के कारण वे बड़े अभिमान के साथ नगर मे रहा करते थे। उनमें से कतिपय मत्री के पुत्र सयमविहीन और स्वच्छन्दचारी थे। मिथ्या-भाषण, चोरी, लूटमार और लम्पटता के कार्य करने मे दक्ष थे। इसीलिए उनके दोषपूर्ण स्वभाव और असत्कर्मों पर पूर्ण रूप से विचार करके राजा कलश ने उन्हे किसी अधिकार पर नियुक्त नही किया।

इसके बाद मदनपाल ने बिना राजा कलश की अनुमति के ही फिर से राजपुरी के राजा पर आक्रमण किया। अपने पितृव्य के पुन. आक्रमण करने पर वहाँ का राजा सग्रामपाल व्याकुल हो उठा। उसने तुरन्त पहले के समान राजा कलश से सहायता के लिए प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना को तुरन्त स्वीकार कर राजा कलश ने उसकी सहायता के लिए सेनापति बप्पट को भेजा।

बप्पट के पहुँचते ही सग्रामपाल ने खोये हुए अपने साहस को पुन प्राप्त कर लिया। मदनपाल से युद्ध करने के लिए वह भी युद्धक्षेत्र मे उतर आया। उभय पक्ष के सैनिक बडी वीरता के साथ युद्ध करने लगे किन्तु बप्पट की सहायता से सग्रामपाल के सैनिक मदनपाल के सैनिको पर ऐसा टूटे कि उन सबो को प्राणो की रक्षा करने के लिए मैदान छोडकर भाग जाना पडा। राजा कलश के प्रबल प्रताप से उस छोटे-से अधिकारी ने मदनपाल को परास्त कर दिया और पकडकर काश्मीर को भेज दिया।

वराहदेव का भ्राता कन्दर्पदेव बडा वीर और साहसी था। उसकी वीरतापूर्ण कार्यवाहियो से प्रसन्न होकर राजा ने उसे द्वारपाल के पद पर नियुक्त किया। जब डामरो की शक्ति प्रबल होने

लगी और वे अपनी शक्ति के मद से उन्मत्त होकर राजा के विरुद्ध युद्ध करने के लिए तैयार हुए तब उस वीर कन्दर्पदेव ने चढाई करके उन समस्त डामरो का क्षय कर डाला। वास्तव मे बात यह थी कि वह कन्दर्पदेव जिन्दुराज के निकट रहा करता था। उसके निकट रहकर वह उसके द्वारा किये गये समस्त कार्यों को वडी आलोचनात्मक दृष्टि से देखा करता था। उसी के यहाँ से उसने समस्त राजनीति का अध्ययन किया था और कब किस प्रकार अपने पराक्रम का उपयोग करना चाहिए, इस सम्बन्ध मे भी ज्ञान प्राप्त किया था।

वह इतना कुशल राजनीतिज्ञ था कि उसने अपने प्रभाव से आसपास के सामन्तो को अपनी आज्ञाओ के अनुसार चलाना आरम्भ कर दिया था। कोई भी उसके विरुद्ध आचरण करने का साहस नही करता था। वे सब उसकी प्रत्येक आज्ञा को अपने लिए शिरोधार्य समझते थे। उसका स्वभाव भी अत्यन्त उग्र था। जब कभी कोई बात उसकी इच्छा के विरुद्ध होती तब वह कुपित होकर तुरन्त द्वारपाल के पद का त्याग कर देता था और राजा कलश उसे समझा-बुझाकर बडे आग्रह से पुनः द्वारपाल का पद प्रदान करता था।

राजपुरी से पकडकर भेजे गये मदनपाल की वीरता पर राजा कलश ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की और वीरो के योग्य सम्मान प्रदान करते हुए उसने उसे अपना कम्पनेश (सेनापति) बनाया। राजा के द्वारा दिये गये सम्मान से प्रसन्न होकर मदनपाल ने मन ही मन उसकी बडी प्रशसा की। इसके थोडे ही दिनों के बाद राज्य के अन्तर्गत डामरो ने पुन उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया। इस समय उन सबो का नेता बोप नामक डामर था। वह बढ़ा-चढा होने के कारण राजा की शक्ति को तुच्छ समझता था। मदनपाल ने अपने पराक्रम से उन समस्त उपद्रवी डामरो का वध कर डाला।

ऐसे ही समय मे राज्य के अन्तर्गत चोरो के भी उपद्रव बढने लगे थे। दिन-दहाडे लोगो के यहाँ चोरी हो जाती थी। राजा ने अपने श्येनपाल (बाज नामक पक्षियो को पालने वाले) विजयपाल की सेवा से प्रसन्न होकर उसे नगरपाल (कोतवाल) के पद पर नियुक्त किया। उस उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त होते ही उस विजयपाल ने समस्त चोरो का दमन कर डाला।

इसी प्रकार उस राजा ने कन्दर्पदेव तथा उदयसिंह आदि वीरो को लोहर प्रान्त मे भेजकर उनके द्वारा भुवनराज को दूर निकलवा दिया। नीलपुर के राजा कीर्तिराज की कन्या भुवनमती से राजा कलश ने विवाह कर अपने पुराने शत्रु के रोग को सदा के लिए दूर कर दिया। गुंग के पुत्र मल्ल को काम सीखने के लिए राजा ने विजयपाल के नगराधिपति पद को छीन कर उस स्थान पर नियुक्त किया। इसके बाद उसे द्वारपाल के पद पर नियुक्त कर दिया। उस वीर ने भी राजाओ के मुकुट-रत्नो के स्थान पर अपने प्रताप की प्रतिमा स्थापित किया।

जिस प्रकार उत्तर-गोग्रहण के समय एकाकी पृथातनु (अर्जुन) का शौर्य इतिहास मे प्रसिद्ध है उसी प्रकार उरशा नगरी मे प्रवेश करते समय उस अभिमानी वीर मल्ल के भी शौर्य की प्रसिद्धि है। क्योकि उस वीर ने केवल पांच-छ अश्वारोही वीरो के साथ कृष्णानदी को तैर कर अभयराज के राज्य को और उसके साथ ही उसके अश्व-समूह को भी छीन लिया था। इस प्रकार पृथ्वी को जीतने वाले और नीतिज्ञ उस राजा कलश के नगर मे लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ तिरसठ मे एक ही समय मे आठ राजा अतिथि होकर आये। उन सबो के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

पहला, बद्धापुर का राजा कीर्तिराज, दूसरा, चम्पा का राजा आसट, तीसरा, बल्लापुर का राजा लुक्क का पुत्र कलश, चौथा, राजपुरी का राजा संग्रामपाल, पाँचवाँ, लोहर का राजा उत्कर्ष, छठा, उरशा का राजा मुगज, सातवाँ, काँद का स्वामी गांभीरसीह और आठवाँ, काष्ठ-वाट का राजा श्रीमान् उत्तमराज।

इन समस्त राजाओं का समूह उस सुविस्तृत राजधानी में सागर में मिलनवाले वर्षाकाल की नदियों के पूर के समान दुर्लक्ष्य हो गया था, अर्थात् उस विशाल नगरी में इन लोगों का पता भी नहीं लगता था।

उस समय अतिशय अधिक शीत पड़ने के कारण वितस्ता नदी का जल बर्फ के समान शीतल हो रहा था और जाड़ा भी बहुत जोरों से पड़ रहा था, फिर भी उन आगन्तुक राजाओं को पूर्ण सुख का अनुभव हो रहा था।

वे राजा लोग जिस किसी वस्तु की इच्छा अपने मन में करते थे, उसी वस्तु को मंत्रि-श्रेष्ठ वामन के द्वारा लाई गई देखते थे। इस कार्य में उस मन्त्री ने जो विलक्षण और प्रशसनीय चातुर्य दिखाया वह दूसरों की शक्ति के परे था, क्योंकि उसने इस नैमित्तिक कार्यक्रम को नित्य के कार्यक्रम के समान कर दिखाया।

उसके बाद वे राजा लोग चले गये और मल्ल ने द्वारपाल के पद को त्याग दिया। तब राजा ने उसके स्थान पर कन्दर्पदेव को आग्रहसहित नियुक्त किया। उस स्वाभिमानी कन्दर्पदेव ने स्वयं के धन से सैन्य-संग्रह आदि उद्योग कर स्वापिक नामक महाविकट दुर्ग को ले लिया। वहाँ से राजधानी को वापस आने के बाद किसी अज्ञात कारण से उस वीर कन्दर्पदेव का मन खिन्न हो गया और फिर राजा कलश के द्वारा आग्रहपूर्वक कहा जाने पर भी उसने द्वारपाल के पद को स्वीकार नहीं किया।

इस कार्य में प्रशस्त कलश मध्यस्थ था। उसे उस कन्दर्पदेव ने अभिमान से भरे हुए अति कटु वचन कहे, इसलिए प्रशस्त कलश ने जोश में आकर अपने स्वाभिमान को प्रदर्शित करते हुए स्वयं के धन से बहुत बड़ी सेना को एकत्रित कर लिया और राजकलश की ओर से उस सेना के सेनापति पद पर अपने भ्राता रत्नकलश को नियुक्त करा दिया। वह अत्यन्त सम्पन्न था इसलिए उसे अपनी ही सम्पत्ति के बल पर इस उच्च पद को प्राप्त करने का अवसर मिला था, परन्तु उसमें कन्दर्पदेव के समान योग्यता नहीं थी, क्योंकि चित्रांकित सिंह में वास्तविक सिंह के समान पराक्रम कहाँ से हो सकेगा?

मल्ल के चले जाने पर राजा कलश को बड़ा खेद हुआ। कुछ दिन बीत जाने पर उस राजा कलश ने अत्यन्त अनुनयपूर्वक उस भृत्य-रत्न से नगर में राजस्थानाधिकार को स्वीकार कराया। किन्तु किसी एक दिन राजा की आज्ञा से एक चोर बहुत पीटा गया और उससे उस चोर की मृत्यु हो गई। इस घटना से कोमल-हृदय मल्ल के चित्त में बड़ा खेद हुआ तथा वह अपने पद को त्याग कर गंगा के तट पर जाने के लिए वहाँ से रवाना हो गया। उस समय राजा कलश ने अत्यन्त नम्र भाव से उसके वस्त्र का एक छोर पकड़ कर उसे जाने से रोका परन्तु वह राजा के हाथ को जोर से झटका देकर रुष्ट होता हुआ चला गया।

उसके इस प्रकार के व्यवहार से राजा भी अधिक क्रुद्ध हो गया और उसने उसको अपने पास पकड़वाकर मँगवा लिया। वह केवल उसके दर्प को नष्ट करना चाहता था। उसके प्राणों से उसे कोई प्रयोजन नहीं था। इस प्रकार अत्यन्त विचारशील और प्रौढ़मति राजा कलश अपने

जब राजसभा के समस्त लोगो को यह विदित हो गया कि राजपुत्र हर्ष ने अपने को अपमानित समझ लिया है तब वे सब बडे सोच-विचार मे पड गये। वे यह भी निश्चय न कर सके कि उन्हे किसका पक्ष ग्रहण करना चाहिए ? वास्तव मे इस समय भूल किसकी है ? इसलिए वे सब चुपचाप बैठे ही रहे। उसी समय अवसर पाकर राजा कलश के आश्रित विश्शावट्ट नामक चापलूस ने हँसते-हँसते राजपुत्र हर्ष से कहा, "बडा अनर्थ हो गया ! भरी राजसभा मे आप का ऐसा अपमान ? यदि आप मेरा कहना मानें तो इस राजा को मार डालिए और फिर आनन्दपूर्वक राज्य कीजिए। जब तक यह जीवित रहेगा तब तक आप का ऐसा ही अपमान होता रहेगा।"

उस चापलूस की बातो ने जले पर नमक का काम किया। राजपुत्र हर्ष का रूठा हुआ चित्त तिलमिला उठा। क्रोध के आवेश मे आकर उसने उसे कठोर शब्दो मे खूब धिक्कारा। परन्तु समीप ही बैठे हुए धम्मट ने भी विश्शावट्ट के कथन का समर्थन किया और राजपुत्र हर्ष को समझाते हुए कहा, "आप तो स्वय सकल गुण-निधान और कुशल कलाकार तथा विद्वान हैं। आप को मैं समझा सकूं, ऐसा सामर्थ्य मुझमे नही है। आप यह भली भाँति जानते हैं कि मेरी बुद्धि कितनी सीमित है। यह तो आप को भी स्वीकार करना पडेगा कि राजा ने आप का घोर अपमान किया है। ऐसी दशा मे आप के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए विश्शावट्ट ने जो कुछ कहा है, वह किसी भी दशा मे अयोग्य नही है।"

जिस प्रकार भविष्यकाल मे सुखो का उपभोग करने की लालसा को हृदय मे धारण करने वाली वेश्याएँ अपने प्रेमियो से प्रेमपूर्ण बर्ताव का निर्वाह कर उनके मित्रो से भी प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हुआ करती हैं उसी प्रकार अपने भविष्य के सुख-भोग की इच्छा को तृप्त करने के अभिलाषी कामुक राजानुचर भी राजपुत्रो के सम्मुख अपनी भक्ति को गुप्त रूप से प्रकट करते रहते हैं।

राजपुत्र उन दोनो की बातो को सुन कर मन ही मन बडा दुःखी हो रहा था। इतने मे उसका पिता राजा कलश पुन. राजसभा मे आ गया। अपने आसन पर बैठ कर उसने हर्ष की ओर दृष्टिपात किया। देखता है कि क्षणभर पूर्व हर्ष का जो मुख-मण्डल प्रातःकालीन कमल-पुष्प के समान प्रसन्नता से खिल रहा था, वही उस समय सन्ध्याकालीन कमल-पुष्प के समान श्रीविहीन हो कर कुम्हलाने-सा लगा है। जब उसे समस्त कारण विदित हुआ तब उसने राजपुत्र हर्ष से अपने चले जाने का समस्त वृतान्त कह दिया। इसके बाद उसने उस स्वाभिमानी राजपुत्र को प्रेमपूर्वक अपने सामने बैठाया और अपनी प्रसन्नता के भावो को प्रकट करते हुए बडे आदर के साथ उसे पारितोषिक भी दिया। साथ ही साथ उसकी कला-कुशलता की प्रशंसा की तथा अनेक साधुवाद (धन्यवाद) देकर प्रसन्न किया।

किसी प्रकार वह दिन बीत गया। दूसरे दिन जब राजपुत्र हर्ष अपने पिता के भवन से भोजन कर अपने भवन की ओर लौटा जा रहा था तब उस विश्शावट्ट ने एकान्त मे उसके आगे वही चर्चा आरम्भ कर दी। तब हर्ष ने उस चापलूस को बहुत फटकारा और समझाते हुए कई बातें कही, फिर भी उसने अपना दुराग्रह नही छोडा।

जब राजपुत्र सब तरह से समझाकर हार गया तब उसने उसके मुंह पर एक थप्पड जमा दिया। थप्पड़ की चोट से विश्शावट्ट की नाक से रक्त की धारा बहने लगी। उसकी इस दशा

को देखकर स्वाभाविक उदारता के कारण हर्ष के हृदय में उसके प्रति दया का भाव उत्पन्न हो गया। उसने अपने सेवको के हाथ से उसके रक्त को घुलवा कर वस्त्र भी बदलवा दिये और कहा कि इस प्रकार के पाप-कर्म के उच्चारणमात्र से ऐसी दुर्दशा होती है।

इस घटना से हर्ष की इच्छा इस प्रकार की न होने पर भी उस चापलूस ने अपने मन मे निश्चय कर लिया कि हर्ष को मेरा कथन अभीष्ट है और उसने ऐसा उसी प्रकार समझा जिस प्रकार दु शील पुरुष दूसरे की पत्नी के सहज मुसकान से ही "इसका मुझ पर प्रेम है" ऐसा समझने लगता है। इस घटना के बाद कुछ दिन बीत जाने पर उस चापलूस ने बार-बार उसी कार्य के लिए प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया और उस कार्य की ओर राजपुत्र हर्ष को प्रेरित करने के लिए उसने धम्मट को मध्यस्थ बनाया, अर्थात् वह विश्शावट्ट धम्मट के द्वारा राजपुत्र हर्ष को पिता से द्रोह करने के लिए प्रेरित करने लगा। अन्त मे उस चापलूस की निरन्तर प्रेरणा से से राजपुत्र हर्ष के मन मे पापमय पितृद्रोह-रूपी तरु अकुरित और पल्लवित हो गया।

इसके बाद उसने कुछ नीच लोगो के परामर्श से अपने पिता पर आक्रमण करने के लिए गुप्त रूप से स्थान-स्थान पर घातको को नियुक्त किया। बाद मे वह राजा कलश कई बार उन घातको के पजे मे फँस गया था, परन्तु हर्ष ने अपने मन मे पितृ-स्नेह-लव के स्पर्श से उन घातको को अपने पिता का वध नही करने दिया और उस बात की आदत को भी नही छोडा। उसके बाद स्वय विश्शावट्ट ने "घातक लोग राजा से मिलकर इस षड्यत्र के रहस्य का उद्घाटन कर देंगे" इस भय से उस षड्यत्र का सम्पूर्ण रहस्य राजा कलश से कह दिया। इस बात का पता लगने पर राजपुत्र हर्ष डर गया और राजा के द्वारा बुलवाया जाने पर भी प्रतिदिन के अनुसार उस दिन भोजन के लिए नही गया।

राजपुत्र हर्ष के इस व्यवहार से राजा को इस गुप्त षड्यत्र की सत्यता का पूर्ण विश्वास हो गया और उसको बडा दु ख हुआ तथा उसने एव उसके परिजन ने उस दिन भोजन भी नही किया। दूसरे दिन थक्कन तथा उसका भ्राता, दोनो ही राजा के पास गये। तब राजा कलश ने अपने दुर्भाग्य का वह सम्पूर्ण वृत्तान्त उन दोनो से कहा और उनकी गोद मे अपना मस्तक रख कर वह बडी देर तक रोता रहा।

उसने उन दोनो भाइयो के सामने धम्मट का भी सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा और "उसे बाँध कर लाना चाहिए" इस प्रकार वह राजा थक्कन से भी स्पष्ट शब्दो मे न कह सका। तब उन तन्वग के पुत्रो ने राजा से कहा, "महाराज! हम दोनो को धम्मट के इस षड्यत्र का कुछ भी पता न था। हम दोनो ही आपकी दया के प्रभाव से निरन्तर आपत्तिग्रस्त लोगो की रक्षा करने मे तत्पर रहते हैं और आपके शरीर की रक्षा के लिए रात-दिन सावधान रहा करते हैं। पृथ्वी-पाल! हमारा बन्धु चाहे दोषपूर्ण हो अथवा दोषरहित हो, हमारे प्राणो पर आपत्ति आने पर भी उसे हम कैसे छोड सकते हैं। यदि हम अपने भ्राता धम्मट की रक्षा करते हैं अथवा उसका पक्ष ग्रहण करते है तो हमारे हिस्से मे स्वामिद्रोह का पातक आता है, अतएव हमारे लिए देशत्याग के अतिरिक्त दूसरी कोई गति नही है।"

इस प्रकार कहकर उन्होने राजा के चरणो मे अपना मस्तक रख दिया और जाने के लिए आदेश माँगा। तब राजा ने भी अश्रुपूर्ण नेत्रो से किसी प्रकार अर्थात् बडे कष्ट के साथ उन्हे जाने का आदेश दिया। "रास्ते मे इसे कोई मारने न पाये" इस विचार से उन्होने धम्मट को

शूर-वीर मन्त्रियो के आरोह (अधिकार का स्वीकार) और अवरोह (अधिकार का त्याग) को शान्ति के साथ सह लिया करता था। अन्य देशो के समान उस समय काश्मीर देश मे भी उपाग गीत का व्यसन तथा उत्तम-उत्तम नर्तकियो के संग्रह का आदर—इन दोनो प्रथाओ का आरम्भ राजा कलश ने ही किया। उसके वाद उसने जयवन के पास अपने नाम से एक नवीन नगर—जो विशाल भवनो से युक्त था—वसाया। थोडे ही दिनो मे वहाँ सैकड़ो अग्रहार, प्रासाद, छोटे-वडे घर, तालाव, वाग, वाजार आदि वन गये।

राजा कलश का पुत्र हर्ष अनेक सद्गुणो से युक्त था। उसका पौरुष भी आश्चर्यजनक था। जो कोई भी उससे मिलता वह तुरन्त उसके सद्गुणो पर मुग्ध हो जाता था। इसलिए वह ससार मे अत्यधिक प्रसिद्ध हो गया था। उसमे जितने भी सद्गुण थे उनका शताश भी किसी दूसरे राजा मे नही था। वह समस्त देशो की भाषायें जानता था। उन भाषाओ के साहित्य का भी अध्ययन करता था। काव्य से उसे अधिक रुचि थी। वह जितनी भी भाषायें जानता था उन सवो मे पूर्णांग काव्य की रचना भी करता था। उसकी काव्य-रचना की कला और शैली से उस समय के समस्त कवि उसे सर्वश्रेष्ठ कवि मान चुके थे। इसमे तनिक भी अत्युक्ति नही समझनी चाहिए कि वह समग्र विद्या और सम्पूर्ण कलाओ का वास्तविक निधि था। यही एक कारण था कि उस राजपुत्र हर्ष की दूर-दूर के देशो मे आवश्यकता से अधिक ख्याति हो गई थी।

उसका पिता राजा कलश वडा ही लोभी था। उसके सामने धन का जितना महत्त्व था उतना और किसी भी वस्तु अथवा गुण का नही था। मनुष्य के जीवन की सार्थकता केवल धन के सचय करने मे ही है, ऐसा उस राजा का विश्वास था। धनहीन मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ है। जव धन नही तव विद्या और वुद्धि भी अपना उचित प्रभाव लोगो के हृदय पर जमा सकने मे असमर्थ होती है इसलिए लोक-प्रतिष्ठा प्राप्त करने का मुख्य साधन धन ही है। इसलिए वह विद्वानो की अपेक्षा धनवानो को ही आश्रय मे रखा करता था।

उस लोभी राजा के निकट जिन विदेशी विद्वानो, गुणियो और शूरो को आश्रय नही मिला करता था उन्हें राजपुत्र हर्ष वडे आदर के साथ अपने समीप आश्रय देकर योग्य वेतन भी दिया करता था। इससे उसका खर्च आवश्यकता से कही अधिक हो जाता था। राजा की ओर से उसे वहुत ही कम और परिमित वेतन मिला करता था। उसके पास दुर्व्यसनो का नाम तक भी न था। विद्वानो, गुणवानो और कलाकारो की सेवा मे ही वह अपना समय व्यतीत करता था और उन्ही लोगो के लिए वह उदार भी वना हुआ था।

प्राप्त हुए परिमित वेतन से ही अपने जीवन का निर्वाह करते हुए उसे अपने अतिथियो और आश्रितो का भी भरण-पोषण करना पडता था। अधिक वेतन प्राप्त करने के लिए उसने कभी अपने पिता से प्रार्थना तक नही की। इसलिए उसे प्रायः अनेक प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पडता था। गम्भीर स्वभाव का होने के कारण उसकी उन कठिनाइयो को कोई भी नही समझ पाता था। प्राप्त हुए वेतन के खर्च हो जाने पर उसे इतनी कठिनाई उठानी पडती थी कि कभी-कभी एक दिवस के अन्तर से भोजन करना पडता था।

जव उसने देखा कि इस प्रकार जीवन-निर्वाह करने से भी कार्य नही चलता और आश्रय मे आने वाले विद्वानो, कवियो और शूरो की सख्या भी दिन-प्रतिदिन वढती ही जा रही है तव वह

बड़ी चिन्ता मे पड़ गया। किस प्रकार उसके समीप आने वाले व्यक्तियो की वह सहायता करे, यह उसकी समझ मे नही आ रहा था। कई दिनो तक एक ही विषय पर निरन्तर विचार करने पर उसने एक सुसाध्य उपाय सोच कर निश्चय कर लिया और फिर उसी को रचनात्मक रूप देने के लिए बडे साहस के साथ अग्रसर हुआ। वह उच्चकोटि का गायक भी था। राजसभा मे आकर गाने वाले प्रायः राजा से पारितोषिक पाया करते थे, इसलिए वह भी राजसभा मे जाकर उच्चकोटि के गायक के समान गीत गाने लगा।

उसका कण्ठ बडा सुरीला और मधुर था। जिस समय वह गाने लगता, उस राजसभा मे बैठकर सुनने वाले चित्रलिखित-से दिखाई पडने लगते थे। जिस प्रकार सपेरे के मोरवर (तुम्बी) बजाने पर सर्प झूमने लगता है, उसी प्रकार सुनने वाले भी तल्लीन होकर झूमने लगते थे। राजा कलश भी उसकी कला से मुग्ध हो जाता था। इस प्रकार वह राजपुत्र हर्ष अपने सुमधुर गीतो से अपने पिता को प्रसन्न कर लेता था और उसके पास से पारितोषिक के रूप मे धन प्राप्त कर लेता था। उस प्राप्त हुये पारितोषिक के धन से वह अपने आश्रित विद्वानो का पालन करता था।

किसी समय राजसभा के अन्तर्गत विद्वानो का बडा जमाव हुआ था। दूर-दूर देश के गायक और कलाकार अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठे हुए थे। राजपुत्र हर्ष के गीत को सुनने के लिए सभी उत्कण्ठित हो रहे थे। राजसभा मे राजा कलश भी उच्चासन पर बैठा हुआ था। उसी के सामने राजपुत्र हर्ष भी बडे हर्ष के साथ अपने आसन को सुशोभित कर रहा था। राजा के आदेश से उसने गाना आरम्भ किया। सगीत के स्वरो का आरोह और अवरोह बड़ा ही कलापूर्ण था। इसके बाद ज्यो ही राजपुत्र हर्ष ने तन्मय होकर ऊँचे स्वर से गाना आरम्भ किया और उसके गीत की मधुरता से सम्पूर्ण सभासद प्रसन्न होने लगे त्यो ही राजा कलश किसी अत्यन्त आवश्यक कार्यवश वहाँ से उठकर चला गया।

इस प्रकार राजा के द्वारा किये गये उस प्रसग-भग (रस-भग) से कुशल कलाकार, विद्वान् राजपुत्र हर्ष के स्वाभिमान को बडा धक्का लगा। वह उस समय अधिक लज्जित हो गया। इस के बाद ही भयानक कोप से क्षुब्ध हो कर वह पृथ्वी की ओर देखने लगा। यदि उस समय पृथ्वी फट जाती तो वह उसी मे प्रवेश कर जाता। योग्य कलाकार मे कितना स्वाभिमान होता है, इसे साधारण मनुष्य स्वप्न मे भी नही समझ सकता। कलाकार के हृदय को समझने और पहिचानने के लिए कलाकार के ही समान स्वाभिमानी हृदय होना चाहिए।

यदि स्वामी क्षमाहीन हुआ तो किसी न किसी प्रकार सेवकवर्ग उसकी कठोर वाणी को सहन कर लेता है। यदि परम धूर्त अथवा अविश्वसनीय मित्र हुए तो उनके साथ भी किसी न किसी प्रकार व्यवहार द्वारा निर्वाह किया जा सकता है। यदि कठोरभाषिणी स्त्री हुई तो उसके साथ भी किसी न किसी प्रकार जीवन-यात्रा का कार्य सम्पादन किया जा सकता है। यदि अतिशय घमण्डी पुत्र हुआ तो उसके साथ भी किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध बनाये रखना सभव है। यदि सामने ही उत्तर देने वाला सेवक वर्ग हुआ तो उसके साथ भी किसी न किसी प्रकार कार्य चलाया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त समस्त हृदय-विदारक परिकर-सहन किया जा सकता है परन्तु किसी भी कलाकार के लिए भरी सभा मे श्रोताओ की अवज्ञा-पूर्ण दृष्टि प्रत्येक दृष्टिकोण से असह्य होती है।

को मध्य मे रखा और अपना सब सामान, सैन्य तथा वाहन आदि को साथ मे लेकर वहाँ से रवाना हो गये। थक्कन आदि तन्वग के पुत्रो के चले जाने के बाद राजा कलश ने एकात मे हर्ष को बुलवा कर सान्त्वना देते हुए कहा

"इस ससार के प्रारम्भ से पृथ्वी पर प्रथित-यशस्वी पिता के द्वारा ही पुत्र की प्रजा मे प्रख्याति होती आ रही है। परन्तु यह विश्वव्यापी नियम मेरे और तुम्हारे विषय मे विपरीत है क्योकि जिस प्रकार चन्द्र से अत्रि ऋषि की इस संसार में ख्याति है उसी प्रकार तुम जैसे विश्व-विख्यात कीर्तिशाली सुयोग्य सत्पुत्र के सम्बन्ध से मुझे सब जानते है। इस प्रकार गुणवानो मे श्रेष्ठ एव प्रथित-यशस्वी होकर भी तुम इस निन्दनीय तथा असज्जनो द्वारा ही सेवा करने योग्य कुमार्ग का अवलम्बन क्यो कर रहे हो? आज तक जो मैंने तुम्हारे पितामह की तथा मेरी भी सम्पत्ति तुम्हे नही समर्पित की है, उसके समुचित कारण को जाने बिना मुझ पर इस प्रकार क्रुद्ध नही होना चाहिए।"

"सम्पत्ति से हीन राजा स्वजन और शत्रु-वर्ग—इन दोनो से ही पराभव को प्राप्त होता है ऐसा विचार कर मैं धन की रक्षा करता हूँ। इस नवीन नगर के निर्माण-कार्य की समाप्ति के बाद सम्पूर्ण राज्य का भार तुम्हे सौंपकर मैं वाराणसी अथवा नन्दि-क्षेत्र चला जाऊँगा और वहाँ जाकर तपश्चर्या करूँगा।"

"यह राज-सिंहासन और यह सम्पूर्ण राज्य-कोष शीघ्र ही तुम्हारे अधीन होने वाला है। ऐसी दशा मे व्यर्थ ही शीघ्रता अथवा व्याकुलता के वशीभूत होकर तुम अपने सामर्थ्य का इस प्रकार के निन्दनीय और नीचतम कार्य मे क्यो अपव्यय करते हो? इन मिथ्यावादी खल पुरुषो ने मेरे सामने तुम्हारे विषय मे जो कुछ भला-बुरा कहा है, उनका वह कथन मेरे मत से तो तुम्हारे ऊपर लागू नही हो सकता। इसलिए मेरे सामने सच्चा-सच्चा वृत्तान्त कहकर तुम अपने ऊपर लगाये गये कलक को धो डालो।"

राजा कलश ने पुत्र-स्नेह के वशीभूत होकर हर्ष देव ने वचन जान-बूझ कर "वह अपनी निर्दोषिता को प्रमाणित करने के लिए 'यह आरोप सरासर झूठा है' ऐसा कहेगा" इस आशय से कहे थे, क्योकि वह राजपुत्र के उस अपराध को क्षमा करने के लिए तैयार था। केवल वह लोगो के मन मे इस बात का विश्वास उत्पन्न कराना चाहता था कि हर्ष के ऊपर लगाया गया समस्त कलक सरासर मिथ्या है।

राजा कलश की बातो को सुनकर राजपुत्र हर्ष बडी देर तक विचित्र गंभीरता के साथ कुछ सोचता रहा। फिर उसने अपने पिता को धन्यवाद प्रदान किया और उसकी आज्ञा को शिरोधार्य कर कहने लगा, "सत्य और मिथ्या का सम्मिश्रण ही मानव-जीवन का एक मात्र गूढ रहस्य है। कभी सत्य अपने वास्तविक रूप को मिथ्या के आवरण मे ढक लेता है और कभी मिथ्या अपने को कलक से बचाने के लिए सत्य की दुहाई देने लगती है। आज तक कोई सत्य और मिथ्या को पूर्ण रूप से नही समझ सका है। इसलिए मैं अपने सम्बन्ध मे विशेष कुछ न कहकर केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि किसी आप्त पुरुष के द्वारा वास्तविक वृत्तान्त आपकी सेवा मे निवेदन करूँगा।"

ऐसा कह कर वह वहाँ से चला गया। राजा कलश कुछ भी निश्चय न कर सका। वह चित्र-लिखित-सा चुपचाप बैठा रह गया। कुछ देर के बाद उसने अपने एक विश्वास-पात्र सेवक को वह

बुलाया और उसके आने पर उससे कहा, "तुम इसी समय राजपुत्र हर्ष के पास जाओ और उससे जाकर कहो तुम्हारे पिता राजा कलश ने यह जानना चाहा है कि राजा की हत्या करने के लिए जो गुप्त षड्यन्त्र किया गया था और वह सब तुम्ही ने किया था, ऐसा जो कलक तुम्हारे ऊपर लगाया जाता है, उसके सम्बन्ध मे तुम्हे क्या कहना है ? यदि वह बतलाने के लिए तैयार न हो तो उसे समझा-बुझा कर मेरे पास ले आना और यदि वह बतला दे तो उसका कहा हुआ समस्त वृत्तान्त स्पष्ट शब्दो मे मुझसे कह देना ।"

इस प्रकार उस सेवक को समझाकर राजा ने उसे हर्ष के पास भेज दिया। उसे अपने समीप आता हुआ देखकर हर्ष ने उसका उचित स्वागत किया और योग्य आसन पर बैठाकर आने का कारण पूछा। उसने जब सब कुछ बतला दिया तब हर्ष ने उससे कहा—

"यदि यहाँ के निवासियो मे से कोई भी मुझे और मेरे स्वभाव को जानता है तो वह यही कहेगा कि राजपुत्र हर्ष अपने प्राणो की रक्षा के लिए सत्य की हत्या नही करता। जीवन और मरण ये दोनो ही शरीर के वे धर्म हैं जिनसे कोई भी शरीरधारी प्राणी छुटकारा नही पा सकता। मृत्यु का भय, शरीर का मोह, प्रतिष्ठा का लोभ प्राय सभी मनुष्यो मे हुआ करता है। किन्तु जिन्हे विद्या का अलौकिक प्रकाश दिखाई पडने लगा है, जो सत्य के मार्ग पर अपने पैर बढा चुके हैं और जिनके शरीर के भीतर सर्वशक्तिमान् परमात्मा का भाव कार्य किया करता है, वे भय, मोह और लोभ को प्रधान न मानकर किसी अन्य को ही श्रेष्ठ मानते हैं। इसीलिए मैं मिथ्या भाषण न कर यही कहना चाहता हूँ कि यद्यपि राजा की हत्या करने का मेरा विचार न था और मैं स्वयं ऐसे रक्तपातात्मक पापपूर्ण कार्य के पक्ष में न था तथापि यह स्वीकार करना पड़ता है कि वास्तव मे मैंने दूसरो के कहने पर इस कार्य को करने का विचार किया था।"

इस प्रकार राजा कलश के भेजे हुए सेवक से कहकर राजपुत्र हर्ष अपने भवन मे चला गया। उस समय उसका मस्तक लज्जा के कारण झुक गया था। उसके चले जाने पर राजा का वह सेवक जिस स्थान पर बैठा था, वज्राहत के समान वही बैठा रह गया। उसके मन की स्थिति ही विचित्र हो गई थी। जीवनशून्य काठ के पुतले के समान उसके समस्त अवयव दिखाई पडते थे। बडी देर के बाद वह स्वस्थ हुआ और फिर वहाँ से चल पडा। जब वह राजा के समीप आया तब राजा ने उससे बड़ी उत्कण्ठा के साथ पूछा, "हर्ष ने कहा क्या है ?"

राजा के इस प्रश्न को सुनकर भी वह सेवक निरुत्तर खडा रहा। जब राजा ने देखा कि उसका चेहरा उतरा हुआ है और नेत्रो मे अश्रु झलक रहे हैं। तब वह समझ गया कि हर्ष ने समस्त अपराध स्वीकार कर लिया है। इसलिए वह भी बडा दुःखी हुआ और अपने दोनो हाथो से सिर को पीटते हुए "हाय रे अभागे पुत्र !" ऐसा कहकर उसको बन्दी बनाने का आदेश दिया और उसके साथ ही यह भी कहा कि यदि वह मारा गया तो मैं भी अपने प्राणो का त्याग कर दूंगा।

इस प्रकार राजा कलश की आज्ञा को सुनकर सशस्त्र राजपुरुषो ने राजपुत्र हर्ष के भवन को चारो ओर से घेर लिया। न कोई बाहर से भीतर जा सकता था और न कोई भीतर से बाहर आ सकता था। धीरे-धीरे जब इस समाचार को घातक लोगो ने सुना तब वे बहुत ही व्याकुल होने लगे। उन्हे अपनी रक्षा का कोई भी उपाय नही सूझा। वे यह निश्चय कर चुके थे, "चूंकि राजा की हत्या के लिए जो गुप्त षड्यन्त्र रचा गया था उसके रहस्य का पता राजा और राजपुरुषो को लग गया है, इसलिए हम सबो का प्राणदण्ड अवश्य मिलेगा।"

ऐसा निश्चय कर के सब घातक राजपुत्र हर्ष के भवन मे प्रवेश कर गये और बिना कुछ सोचे-विचारे उसके द्वारा बन्द कर लिये तथा राजपुत्र हर्ष को चारो ओर से घेर कर इस प्रकार कर्ण-कठोर वचन कहने लगे—"हे दुष्ट! तू अत्यत प्रमादशील तथा नीचतम है और विचार किये बिना ही राजद्रोह करने के लिए तैयार हो गया है। तू हमको इस प्रकार मृत्यु के मुख मे ढकेल कर कहाँ और किस प्रकार सुखपूर्वक जीवित रहना चाहता है? हम लोगो के कार्य मे निषेध द्वारा बारम्बार विघ्न उत्पन्न कर तूने अपने पिता राजा कलश के प्राणो को बचाया है इसलिए वह भी अपना पुत्र समझ कर तुझे बचा लेगा क्योकि तुम दोनो का ऐसा ही ममतापूर्ण सम्बन्ध है किन्तु हम लोग तो व्यर्थ ही मारे जायँगे। इसलिए तू हमारे बीच मे रहकर राजा के सैनिको के साथ हमारी ओर से युद्ध कर, नही तो हम सब एकसाथ मिलकर तुझे मार डालेंगे। इस प्रकार प्रत्येक दशा मे अब तेरा जीवन सुरक्षित नही रहेगा।"

यह बात राजा कलश को भी विदित हो चुकी थी। वह उन उद्दण्ड और क्रूर स्वभाव वालो को जानता था। क्रोध के आवेश मे वे जो न कर डाल वही थोडा समझना चाहिए। ऐसा विचार कर वह व्याकुल हो रहा था। शान्ति के साथ जो कार्य किया जा सकता था उसके करने मे उपद्रव का होना वास्तव मे बडे खेद का विषय था। किस प्रकार वह उपद्रव रोका जाय, इस बात पर राजा विचार करने लगा था। मन ही मन विशेष रूप से तर्क-वितर्क करने के बाद वह किंचित् शान्त हुआ।

उस समय उसके पास दण्डक नामक एक वृद्ध प्रतीहार विद्यमान था। वह बडा अनुभवी और कार्यकुशल था। उसकी बुद्धि की प्रतिभा राजा को भली भाँति विदित थी। उसे यह विश्वास हो गया था कि उस समय यदि कोई उपद्रव को शान्त करने मे सुन्दरता के साथ सफल हो सकता है, तो वही दण्डक ही है। इसीलिए राजा ने उससे अपने हृदय की समस्त उलझनो को कह सुनाया और राजपुत्र हर्ष के भवन पर आकर उचित उपायो द्वारा राजनीतिक दृष्टिकोण से उपद्रव को शान्त करने के लिए कहा।

यद्यपि उस समय का वह वातावरण भयानक रूप से दूषित हो चुका था और साधारण मनुष्य की बुद्धि कार्य-सम्पादन मे कुण्ठित होने लगी थी तथापि राजा के आदेश को शिरोधार्य कर वह वृद्ध प्रतीहार दण्डक हर्ष के भवन की ओर चल पड़ा। थोडी ही देर मे वह गन्तव्य स्थान पर पहुँच गया। वहाँ जाकर देखता है कि राजपुत्र हर्ष के भवन को घातको का समूह घेरे हुए है। उन घातको ने भी उसे राजपुत्र हर्ष का विश्वसनीय सेवक समझकर भवन के भीतर आने दिया। तब उस बुद्धिमान् दण्डक ने उन समस्त घातको की ओर एक बार तीक्ष्ण दृष्टि से अवलोकन किया और फिर राजपुत्र हर्ष की ओर परम श्रद्धालु दृष्टि से देखकर क्षण भर शान्त रहा। इसके बाद अपनी वाणी के चमत्कार से उन समस्त घातको को मोहित करते हुए उसने राजपुत्र हर्ष से कहा—

"राजपुत्र! इस समय यह बात अधिक प्रसिद्ध है कि आप से बढकर इस पृथ्वी-मण्डल मे दूसरा कोई अधिक प्रतिभासम्पन्न नही है। आपकी दूरदर्शिता और आपकी विचारशीलता और आपकी कार्यकुशलता का चमत्कार सभी को मुग्ध कर चुका है। जिस पर आपने कृपा की वह धन्य हो गया, जिससे आपने बात की उसमे विद्या का प्रकाश हो गया, जिसे आपने अपने समीप

आसन दिया वह लोकपूज्य होने का गौरव प्राप्त करने लगा और जिसे आपने अपना लिया वह आपके लिए अपना जीवन तक अर्पण करने को तैयार हो गया। ऐसा आपका अलौकिक प्रताप और उसका प्रभाव है। इसलिए आपके सम्मुख कुछ भी कहने के योग्य मैं नहीं हूँ। ऐसा जानकर भी मैं कुछ धृष्टता करना चाहता हूँ। आशा करता हूँ कि आप उसके लिए क्षमा प्रदान करने की कृपा अवश्य करेंगे।"

इस प्रकार की भूमिका को प्रारभ कर वह वह दण्डक कहने लगा—"क्षत्रिय श्रेष्ठ राजपुत्र! जब कि पांच महाकारण देवताओं अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ईश्वर और सदाशिव को भी कई कल्प की आयुष्य का उपभोग करने के बाद नियति के अधीन होकर एक दिन जाना ही पड़ता है तब ऐसी स्थिति मे आपको यह सुनिश्चित प्रशंसनीय मृत्यु का अवसर मिल रहा है, अतएव इस अवसर पर जिसके रक्षण के लिए शस्त्र धारण किया जाता है उस स्वाभिमान की रक्षा अवश्य कीजिए। ऐसा शुभ अवसर बार-बार नहीं प्राप्त होगा।"

"आप तरुण, विद्वान् और विख्यात यशस्वी क्षत्रिय हैं। समझ मे नहीं आ रहा है कि आप किसलिए युद्ध मे विलम्ब करना चाहते हैं। देखिए ये अप्रतिम शूर तथा उदारतापूर्वक प्राण देने के लिए तैयार हुए घातक लोग और आपका सेवक मैं भी तथा आपके अन्य सहायक युद्ध के लिए अग्रसर हैं। इसलिए हे प्रतापशालिन्! अब हम लोगों के लिए तो विजय अथवा मरण दोनों समान रूप से शोभाकारक है। उठिए, अपनी मानसिक दुर्बलता को दूर कीजिए। नख, केश और दाढी आदि साफ कराकर अप्सराओं की स्वयम्वर-माला के समान वीर-पट को बाँधिए।"

उसके बाद उस वृद्ध प्रतीहार ने नापित को बुलवाकर उसके साथ हर्ष को भीतर भेज दिया। भीतर जाते समय हर्ष ने अपनी तलवार बाहर ही छोड दी थी। उन सब लोगों ने उस वृद्ध प्रतीहार की बडी प्रशंसा की। बाद मे वह भी अपनी तलवार को बाहर छोडकर हर्ष के पीछे-पीछे शीघ्रता के साथ भीतर चला गया और वहाँ जाकर भीतरी ओर से द्वार को बन्द कर लिया। उसके बाद खिडकी से समीप ही बाहर की ओर खडे हुए राजस्थानीय से उसने कहा —"राजपुत्र सुरक्षित हैं। अब आप लोग जैसा उचित समझें वैसा करें।"

यह सर्वथा सत्य है कि इस पृथ्वीतल पर बुद्धिमान् मंत्री लोग पृथ्वीपतियों के भूत, ग्रह आदि से उत्पन्न हुए भय को औषधियों से, शत्रुजनित भय को सैन्य से, शस्त्रजनित भय को कवच से और सार्वत्रिक (सर्वत्र व्याप्त हुए) भय को रभस अर्थात् उसके विपरीत दूसरा भय उत्पन्न करके दूर कर देते हैं। उसके बाद राजा के सैनिक वीरगर्जना करते हुए राजपुत्र हर्ष के भवन मे प्रवेश करने की इच्छा से दीवालों अटारियों तथा छज्जों पर चढने लगे।

घातक लोग भी मजबूत दरवाजे वाले कमरे मे गये हुए राजपुत्र हर्ष को वैसे ही छोडकर युद्ध करने लगे और थोडी देर बाद मरते-कटते बाहर जाने लगे। वहाँ पर दो-तीन सज्जन ऐसे भी उपस्थित थे, जिनका उस षड्यन्त्र से कुछ सम्बन्ध नहीं था। वे लोग किसी प्रकार वहाँ से निकल गये। बाहर निकले हुए लोग अपने विरोधियों को मारते हुए सूर्यमती रानी के गौरीश्वर मन्दिर के समीपवाले मकान से निकलकर सदाशिव मन्दिर के पास पहुँच गये।

राजा कलश अपने स्वजनों को बहुत मानता था। इसलिए उसने उनकी रक्षा करने के लिए आज्ञा दी थी। उसके अनुसार रक्षण किया जाने पर भी राजा का बान्धव सहज वहाँ

सर्वप्रथम मारा गया। अपनी शूरता से मण्डित और पण्डित तीव्य नामक वीर ब्राह्मण तथा रामदेव और कर्णाटक देश का निवासी केशी नामक वीर, ये सब शत्रु-पक्ष के वीरो द्वारा मारे गये। कई लोगो ने अपने हथियार रख दिये, कई लोगो ने आत्महत्या कर ली और कई मार डाले गये तथा अनेक लोगो को पाप के कारण कायरो के समान बन्धन प्राप्त हुआ। लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ चौसठ के पौष शुक्ल प्रतिपदा के दिन धूर्तों ने पिता-पुत्र मे विरोध कराकर यह सब भयानक काण्ड करा दिया।

हठधर्मिता अथवा दुराग्रह पर आसक्ति, प्रिय युवती के प्रेरणात्मक एवं उत्तेजक वचन, शठ पुरुषो का सहवास, पिता के पूर्वप्रेम मे अन्तर, अमात्य, बान्धव तथा सौतेली माता के साथ कलह आदि कारणो से राजपुत्रो का मन अपने पिता के विषय मे बिगड जाता है। दुष्ट और झूठे लोगो की सगति के कारण सुखो का उपभोग करने के योग्य राजपुत्र हर्ष को इस प्रकार के अविचारपूर्ण कार्य करने से गुरुतर कारागार के निवास का दुःख अनुभव करना पडा। राजा अनन्तदेव के स्वर्ग सिधारने के बाद राजपुत्र हर्ष के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम राजा कलश के साथ जो सन्धि हुई थी उसमे मानवती महारानी भुवनमती मध्यस्थ थी, इसलिए जब राजा कलश ने राजपुत्र हर्ष को कारावास का दण्ड दे दिया तब उसने अपने हाथ से अपना गला काट कर प्राणो का त्याग कर दिया।

राजा कलश ने हर्ष की देख-रेख के लिए विश्वास-पात्र मन्त्रियो को पहरे पर नियुक्त किया था और पुत्र-स्नेह के कारण उसके लिए राजपुत्र के योग्य खाने-पीने की वस्तुएँ भेजता था। प्रयाग नाम का एक सेवक था। वह बाल्य-काल से ही राजपुत्र हर्ष के पास रहा करता था। सीधा-सादा और सरल स्वभाव का होने के कारण वह उसे अधिक प्रिय था। राजनीति के कार्यों मे भाग लेना उसके स्वभाव के प्रतिकूल था। इसीलिए राजा कलश ने उसे हर्ष के ही पास रहने दिया।

उसके बाद नोनक नामक मत्री ने राजा को अपने हाथ से अथवा किसी अन्य के द्वारा हर्ष का वध कराने के लिए अथवा कम से कम उसकी आँखें निकलवाने के लिए सूचित किया। फिर वह राजा शीलभ्रष्ट होकर पशुओ के समान और निर्लज्जतापूर्ण बर्ताव करने लगा। उसने अपनी पुत्रवधुओ मे से कुछ सुन्दरियो को हरण की गई शत्रु की स्त्रियो के समान समझकर शीलभ्रष्ट किया। उनमे से तुक्क राजा की पौत्री सुलभा ने अपने श्वसुर के प्रणय को प्राप्त कर अपने पति के वध करने का प्रयत्न किया।

उसने तथा नोनक मत्री ने सलाह करके दो रसोइयो को हर्ष को विष-मिश्रित भोजन देने के पाप के लिए उत्साहित किया। जब प्रयाग को दूसरे रसोइये के मुख से इस गुप्त रहस्य का पता लगा तब उसने वह अन्न अपने स्वामी को नही खाने दिया और परीक्षा करने के लिए उसने वह अन्न दो कुत्तो को खिलाया और उससे वे कुत्ते मर गये। इस घटना को देखकर हर्ष अपने जीवन से निराश हो गया। पिछली समस्त घटनाओ पर विचार करने के बाद उसने गुप्त रूप से दण्ड देने वाले अपने पिता का ही वह कार्य समझा और उस दिन से राजा की ओर से आये हुए भोजन को प्रतिदिन केवल स्पर्श कर त्याग करना प्रारम्भ किया और प्रयाग जो कुछ कही से लाकर दे देता था उसी से अपना निर्वाह करने लगा।

राजा की ओर से भेजे गये अन्न को हर्ष नही खाता है, इस प्रकार जब रसोइयो के द्वारा राजा कलश को विदित हुआ तब वह बड़ी चिन्ता मे पड़ गया। उसने तुरन्त प्रयाग को

अपने पास बुलवाया और उसका कारण उससे पूछा। उसने विष देने की प्रेरणा करने वालों का, विष देने वाले रसोइयों का, विष देने के ढङ्ग का तथा आवश्यक अन्य बातों का समस्त वृतान्त बतला दिया और साथ ही साथ यह भी कहा, "शेष सभी बातें महाराज को अवश्य विदित हो चुकी होंगी।"

उसके बाद राजा ने रसोइयों को बदल दिया, फिर भी हर्ष ने अपने नियम पर ही अटल रहना उचित समझा। वह प्रयाग के द्वारा लाये अन्न को ही खाता था। सब लोगों को अपने प्रतिकूल हुए देखकर वह जो दिन बीत जाता था उसी को अपना समझता था। उसने भविष्य की चिंता करना छोड़ दिया।

ठीक ऐसे ही समय में राजा कलश के आचरण में जो कभी नहीं देखा गया था ऐसा और भयानक अनर्थकारक परिवर्तन हो गया। उसने ताम्रस्वामी नामक सूर्य की प्राचीन ताम्रमयी प्रतिमा को तुड़वा डाला और विहारों के अन्दर की पीतल से बनाई गई बुद्ध की प्रतिमाओं को भी वहाँ से निकलवा कर तुड़वा डाला। इसी प्रकार कार्य करते हुए उस राजा कलश ने नीति के मार्ग का परित्याग कर दिया। मानवोचित कर्त्तव्यों का पालन न कर उसने क्रूरता को धारण कर लिया। जिन सद्‌गुणों के प्रभाव से राजा प्रजा के द्वारा सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्राप्त कर लेता है उन समस्त सद्‌गुणों की अवहेलना करके उसने प्रजा-मात्र में विद्वेष उत्पन्न करने वाले दुर्गुणों को अपना लिया। शासन को सुव्यवस्थित रखने के लिए राजनीति और धर्मनीति में जितने भी नियम बताये गये हैं, उसके सामने उन समस्त नियमों का कोई भी महत्व नहीं रह गया था।

धन का लोभ उसे अपने वश में किए हुए था। जिस किसी भी उपाय से हो, धन-सग्रह करना ही चाहिए यही सिद्धान्त उसके मन में बस चुका था और इसी सिद्धान्त को रचनात्मक रूप देने के लिए उसने बड़ी क्रूरता के साथ सन्तानहीन होकर मरने वाले लोगों का धन-हरण करना आरम्भ किया था। उसके इस कार्य से प्रजा-वर्ग में घोर असन्तोष उत्पन्न हो गया। जिस किसी ने उसके प्रति अपने असन्तोष के भावों को प्रकट किया वही उसके कोप का भाजन बन गया। जिस प्रकार वह पीडित किया जा सकता था, पूर्ण रूप से पीड़ित किया था।

इस प्रकार के अन्याय और अत्याचार से पीडित होने के बाद प्रजा-वर्ग ने मौन होकर समस्त कष्टों को सहना आरम्भ किया किन्तु उसके हृदय का सन्ताप दिन-प्रतिदिन बढता ही गया। जब सहनशीलता की मात्रा भी अपनी सीमा को पार कर गई और राजा कलश के द्वारा किये जाने वाले अन्याय और अत्याचार के कार्य कम न हुए तब प्रजा ने मन ही मन उस राजा को शाप देना आरम्भ कर दिया।

राजा होने के कारण कलश में जो अभिमान उत्पन्न हो चुका था उसने उसे प्रजा-वर्ग के मनोगत भावों को समझने का अवसर भी न दिया। राज्य के मद में चूर होकर वह शंका से रहित हो चुका था। किसी की भीप र्वाह न करके वह निश्चिन्त होकर अत्यधिक स्त्री-संभोग करने लगा। इसलिए पीडित प्रजा के तीव्रतम सतापजनित शाप और अत्यधिक स्त्री-सभोग-जनित धातु के क्षय से, वह शीघ्र ही भयानक रोग से घिर गया।

एक बार वह राजा कलश शिव-मन्दिर में कुम्भ-प्रतिष्ठा के समारम्भ का कार्य कर रहा था। उसी समय महाकाल-कुम्भ में उसकी नाक से रक्त का बिन्दु गिर पड़ा। इस आकस्मिक

अपशकुन-रूपी व्याधि का प्रतिकार करने के लिए किये गये समस्त प्रयत्न निष्फल हुए और दिन-प्रतिदिन उसका रोग बढ़ने लगा।

जब क्रमशः रक्त-स्राव बढ़ने लगा और ओषधियाँ व्यर्थ सिद्ध होने लगी तब उसके मन मे भिन्न-भिन्न प्रकार की चिन्ताएँ उत्पन्न होने लगी। उसके शरीर की समस्त शक्ति क्षीण हो गई। चलना-फिरना, उठना-बैठना भी कठिन हो गया। जो कुछ भी भोजन करता उसको पचा सकने की भी शक्ति जाती रही। अग्नि का मन्द पड़ जाना उसके लिए घातक हो गया। नाना प्रकार के रोगो से उत्पन्न होने वाले उपद्रवो के कारण उसके शरीर मे न तो मास रह गया था और न रक्त का ही नाम था। जिस प्रकार कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का चन्द्रमा क्षीण होकर कला मात्रा व शेप रह जाता है उसी प्रकार वह राजा भी क्षीण हो चुका था।

जब उसे यह निश्चय हो गया कि उस भयानक रोग और उसके कारण उत्पन्न होने वाले अन्य रोगो से छुटकारा पाना असभव है तब वह राज्याधिकार के सम्बन्ध मे अपना उत्तराधिकारी बनाने का विचार करने लगा। वह राजपुत्र हर्ष को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था इसलिए उसने अपने विचार को अपने मत्रियो के सामने प्रस्ताव के रूप मे उपस्थित किया। ध्यानपूर्वक उसके उस प्रस्ताव को सुन लेने के बाद मन्त्रियो ने उसका समर्थन न किया और नाना प्रकार की युक्तियो के द्वारा राजपुत्र हर्ष के विरुद्ध अपने विचार प्रकट करने लगे। मन्त्रियो को हर्ष के विरुद्ध देखकर उसने लोहर प्रान्त से अपने दूसरे पुत्र उत्कर्ष को बुलवाया।

इसके बाद उस मरणासन्न राजा कलश ने अपने समस्त सेवको को अपने पास बुलवाया। उसकी इच्छा के अनुसार छोटे-बड़े सभी सेवक उसके समीप आकर खड़े हो गये। उन सेवको की ओर दयापूर्ण दृष्टि से देखकर उसने उन्हे प्रसन्न करने के लिए पर्याप्त रूप मे परितोषिक दिया। यदि उस समय किसी ने पारितोषिक नही पाया तो वे अतःपुर की ललनाएँ थी। उन सबो के प्रति राजा कलश के हृदय मे भयानक रोष और अधिक मात्रा मे मात्सर्य था।

जब समस्त सेवक उसके समीप से चले गये और केवल मन्त्री ही रह गये तब उसने उन सबो से भी इस प्रकार अभ्यर्थना के रूप मे विनयपूर्वक कहा, "आप राजपुत्र हर्ष के सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें। मेरे पास उसका जितना धन है, वह सब देकर मैं उसे यहाँ से निर्वासित कर दूँगा।" किन्तु उसके मन्त्रियो ने उसकी बात पर विश्वास न किया और जब उत्कर्ष आ गया तब राजा कलश की बात न मानकर हर्ष की देख-रेख के लिए नियुक्त किये गये पुराने रक्षको को वहाँ से हटा दिया और उनके स्थान पर लोहर प्रान्त के रहने वाले ठक्कुरो को नियुक्त कर उसे उत्कर्ष के अधीन कर दिया।

जब तक राजा कलश के हाथ मे राज्य के शासन का अधिकार था तब तक राजपुत्र हर्ष को कारावास मे भी कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी किन्तु जब से उत्कर्ष के हाथ मे राज्य के शासन का अधिकार आया तब से वह पीडित किया जाने लगा। उत्कर्ष ने उसे नाट्य-मडप से हटा दिया। उसके पास उसके जितने आप्तजन रहा करते थे उन सबो को भी उसके पास से दूर कर दिया। चतुस्तम नाम का एक दूसरा मडप था। उस मडप मे वह कैद कर दिया गया और पूर्ण रूप से कैदी का दुःखमय जीवन व्यतीत करने लगा। भोजन आदि की जितनी भी सुविधाएँ थी, वे सब तुरत बन्द कर दी गई। इन्ही समस्त कारणो से हर्ष अत्यन्त दुर्बल हो गया था।

कोई भी उसके समीप नही पहुँच पाता था इसलिए उसके कष्टमय जीवन का समाचार किसी को भी नही विदित हो पाता था। अनुमान से चाहे जो जैसा समझ लेता।

ऐसी भयानक परिस्थिति मे राजा कलश का मन खिन्न होने लगा। एक तो रोगग्रस्त, दूसरे शक्ति से हीन, इन सबके अतिरिक्त उत्कर्ष का हर्ष के प्रति दुर्व्यवहार और मन्त्रियो के मन मे बसने वाली असद्भावनाओ का असह्य प्रभाव—ये समस्त कारण उसे और भी अधिक व्याकुल बनाने लगे। जब वह अत्यन्त निःशक्त हो गया और यह समझ गया कि उसका मृत्युकाल समीप आ चुका है। तब उसने यथाशीघ्र किसी तीर्थ मे चले जाने का विचार किया।

उसके हृदय मे यह विश्वास दृढ हो गया था, "मैने राज्य के मद से उन्मत्त होकर ताम्रस्वामी नामक सूर्य-मन्दिर की प्रतिमा को तुडवाया था, इसीलिए मुझपर सूर्यदेव कुपित हो गये है। जब तक अपने अपराध को क्षमा कराने के लिए मैं उस मदिर मे जाकर प्रार्थना नही करूँगा तब तक उनकी कृपा प्राप्त कर सकना सर्वथा असभव है।" ऐस निश्चय करने के बाद वह अपने प्राणो की रक्षा के लिए मार्तण्ड-मन्दिर के ताम्रस्वामी सूर्य की शरण मे जाने को उद्यत हुआ।

राजा कलश शैव था। शिव के प्रति उसमे जितनी श्रद्धा और भक्ति थी, उतनी और किसी दूसरे देवता के प्रति नही थी। उस समय जितने भी शैव थे अपने विश्वास के कारण विजयेश्वर क्षेत्र को ही मोक्षप्रदायक समझते थे और इसीलिए, आसन्न मृत्युकाल मे वही जाना अपना धर्म समझते थे किन्तु वह राजा कलश शैव होकर भी ऐसे समय मे मोक्षप्रद विजयेश्वर-क्षेत्र को त्याग कर मृत्यु के भय से मार्तण्ड-मन्दिर की ओर जाने के लिए तैयार हो गया।

जब मनुष्य को अधिक से अधिक धन और अधिकार प्राप्त हो जाता है तब वह उसके मद से समस्त ससार को साधारण तिनके के समान तुच्छ समझने लगता है; किन्तु जब आपत्ति का समय आ जाता है तब वही अधिकारी पुरुष घर की तुच्छातितुच्छ दासियो के भी पैरो को पकड कर रोने लगता है। पाखडी गुरु के उपदेश को ग्रहण करने के कारण स्वय को सब से बडा ज्ञानी समझनेवाला मूर्ख मनुष्य बिना किसी संकोच के ससार के सामने अपने पाण्डित्य को प्रकट किया करता है, किन्तु ज्यो ही उसे प्राणान्तक प्रसग घेर लेते हैं त्यो ही वह ज्ञानशून्य बच्चे के समान पागलो के समस्त कार्य करने मे भी सकोच नही करता।

गुरु के उपदेश को ग्रहण करने का राजा कलश को बडा अभिमान था। जब कभी वह किसी धार्मिक विषय पर अपना विचार प्रकट करता तब सब से पहले गुरुदीक्षा का ही प्रसग उठा देता। गुरु के उपदेशानुसार आचरण न करनेवाले पुरुष की निन्दा करने मे वह बडा कुशल था किन्तु इस प्रकार दुर्बल हृदय वाले साधारण मनुष्यो के समान क्लैव्ययुक्त (नपुसकता से युक्त) आचरण के कारण वह सर्वत्र उपहास का पात्र बन गया।

राजा कलश मार्गशीर्ष (अग्रहायन) महीने की शुक्लपक्षवाली तृतीया के दिन सायकाल के समय शय्या पर से उठकर पालकी मे बैठ मृत्यु का स्वागत करने के लिए रवाना हुआ। वाद्यो की ध्वनि से जनता के करुण क्रन्दन की ध्वनि को दबाता हुआ वह अन्तःपुर की स्त्रियो और मन्त्रियो को साथ लेकर नौकाओ के द्वारा अपने गन्तव्य स्थान की ओर चल पडा। दूसरे दिन तीसरे प्रहर वह राजा मार्तण्ड देव के चरणो के समीप पहुँच गया और उसने अपने प्राणो की रक्षा के लिए सुवर्णमयी सूर्य-प्रतिमा बनवाकर भेंट करने की प्रतिज्ञा की।

उसके सेवक उसकी आज्ञा को नही मानते थे और वह अपने ज्येष्ठ पुत्र हर्ष को देखना चाहता था। उस व्यथित और रोगग्रस्त राजा को पुत्र के देखने की उत्कण्ठा से अत्यधिक बेचैनी

हो रही थी। बाहर के लोगो द्वारा गाये गये हर्ष-प्रणीत गीत को सुनकर वह अत्यंत व्याकुलता के साथ द्वार के छिद्र से देख रहा था और उस सगीत को सुनकर उसने दु खसूचक दीर्घ निश्वास छोड़ा।

जिस प्रकार स्वप्न की अवस्था मे मनुष्य के चलने की शक्ति कुण्ठित हो जाती है उसी प्रकार मृत्यु-शय्या पर पडे हुए राजा की आज्ञा भी कुण्ठित हो जाती है और यह बात उसके हृदय मे काँटे के समान चुभती है तथा मृत्यु के समय की पीडा को बहुत अधिक बढा देती है।

वह राजा अपने आश्रित तथा ज्येष्ठ पुत्र हर्ष को कुछ देने के लिए उत्कर्ष से कहना चाहता था परन्तु उसी समय उसकी जीभ मे जडता आ गई। वह अस्पष्ट रूप से बार-बार 'हर्ष', 'हर्ष' कह रहा था। उस समय नोनक मंत्री ने उसके सामने आदर्श (दर्पण) रख दिया था क्योकि उसने हर्ष के स्थान पर आदर्श को ही समझा था।

राजा ने हँसकर अधरोष्ट को दाँतो से दबाते हुए उस दर्पण को वहाँ से हटवा दिया और कुछ अस्पष्ट शब्द कहे। इस प्रकार ढाई दिन तक उसकी जबान बन्द रही। अन्त मे प्राणो के निकलने के समय मत्रियो को सकेत द्वारा सूचित कर उसने स्वय को मार्तण्ड की मूर्ति के सामने रखवा दिया। उस समय उसकी अवस्था उनचास वर्ष की थी। वह राजा लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ पैंसठ के मार्गशीर्ष मास मे षष्ठी के दिन स्वर्गवासी हुआ।

४. राजा उत्कर्ष की कथा

राजा कलश की मम्मनिका आदि सात रानियाँ—जो कि विवाहित थी—तथा जयमती नाम की रक्षिता (उपपत्नी) उसके साथ सती हो गई, परन्तु उसकी अत्यधिक कृपा और प्रेम की पात्री उपपत्नी कय्या ने समस्त स्त्री-जाति को कलंकित कर दिया। वह किसी उच्च वश मे उत्पन्न नही हुई थी, इसलिए उसने राजा कलश के द्वारा दिये गये अन्त पुर मे सर्वश्रेष्ठ सम्मान को भुला दिया था।

इतना ही नही, वह विजयेश्वर-क्षेत्र मे रहकर एक ग्रामीण और साधारण मजदूर से प्रेम करने लगी, उसका यही कार्य सब के हृदय मे खेद उत्पन्न करने लगा था। उसने उत्तमोत्तम राजा के योग्य सुखोपभोग से अत्यन्त रमणीय और राजा के उपभोग करने के योग्य अपने भव्य शरीर को एक ग्रामीण के उपभोग के लिए अर्पण कर दिया था, अतएव ऐसी नीच (क्षुद्र) चित्तवाली स्त्रियो को धिक्कार है।

जिस समय उत्कर्ण का राज्याभिषेक करने के लिए समस्त मत्री व्यग्र हो रहे थे, उस समय केवल कृतज्ञ वामन मत्री राजा का अन्त्येष्टि-सस्कार कर रहा था। एक ओर मागलिक गीतो से युक्त राज्याभिषेक के वाद्यो का घोष हो रहा था और दूसरी ओर विलाप से युक्त प्रेत-वाद्यो का शब्द सर्वत्र फैल रहा था।

उसके बाद राजा कलश की पत्नी पद्मश्री देवी से उत्पन्न हुआ विजयमल्ल अपने सौतेले भाई उत्कर्ष से झगडा करने लगा। तब उत्कर्ष ने, राजा कलश राजपुत्र हर्ष को प्रतिदिन वेतन के रूप मे जितना धन देता था, उतना धन विजयमल्ल को देने के लिए प्रतिज्ञा की और इस प्रतिज्ञा के मध्यस्थ के रूप मे कुछ मत्रियों को रख दिया। इसी प्रकार कय्या के पुत्र जयराज को भी कुछ वेतन देना स्वीकार किया।

मूढ लोग सैंकडो बार दूसरो की मृत्यु के समय आँसू बहाती हुई चंचल चित्तवाली स्त्रियो

को अपने चरितार्थ के लिए आश्रय खोजती हुई तथा चिता के समीप खडे हुए पुत्रों को स्वयं मिलने वाली पैतृक सम्पत्ति के लिए परस्पर वादविवाद करते हुए देखकर भी अपने स्त्री-पुत्रादिको के लिए कुकर्मों के द्वारा धन-सचय करते हैं यह कितने आश्चर्य की वात है।

इसके वाद नवीन राजा श्रीमान् उत्कर्ष ने नगर मे प्रवेश किया परन्तु हर्ष के उदय के लिए उत्कण्ठित नगर-निवासियो के हृदय मे वह प्रवेश नही कर सका । उसके राज्याभिषेक-महोत्सव का दिन रोगी पुरुष को उत्सव-दिवस के समान आनन्दशून्य होने के कारण नागरिको को नही-सा (शून्य-सा) विदित हुआ।

जिस दिन राजा कलश आतुर होकर मरने के लिए रवाना हो गया था उस दिन चतुःस्तम्भ-मण्डप के अन्दर वन्दी हर्ष ने भी भोजन नही किया। अपने साथियो से विछुडे हुए प्रवासी के समान शोक के कारण मूक भाव को धारण किये हुए उस राजपुत्र हर्ष को पहरे पर नियुक्त किये गये ठक्कुरो ने दूसरे दिन वडी कठिनाई से प्रार्थना करके भोजन कराया और इस प्रकार की प्रतिज्ञा भी की "यह अकेला राजा उत्कर्ष दो राज्यो का अर्थात् काश्मीर तथा लोहर—इन दोनो देशो का शासक नही वन सकता इसलिए हम लोग आपको अपने देश का राज्य देंगे ।" इन समस्त वातो से राजपुत्र हर्ष का उन सव ठक्कुरो से मेल हो गया। उसके बाद उसे पिता के निधन का समाचार विदित हुआ, इसलिए उसने उस दिन उपवास किया। दूसरे दिन उसको उत्कर्ष के आगमन का समाचार विदित हुआ।

अपने आँसुओ से स्वर्गीय पिता को जलाजलि देते हुए उस राजपुत्र को उसके कनिष्ठ भ्राता उत्कर्ष ने दूत के द्वारा स्नान करने के लिए कहला भेजा। भाग्यवश हर्ष जिस समय स्नान कर रहा था उसी समय उत्कर्ष के राज्याभिषेक-महोत्सव मे मागलिक वाद्य वज रहे थे तथा सर्वत्र जयघोष के शब्द फैल रहे थे। इस शुभ शकुन को देखकर शकुन-शास्त्र के मर्मज्ञ उस राजपुत्र ने विजली के चमकने से वादलो की गर्जना के अनुमान के समान "स्वयं को राज्यश्री का लाभ अवश्य होने वाला है" ऐसा दृढ निश्चय कर लिया।

जिस राजकुमार को राज्यलक्ष्मी शीघ्र ही प्राप्त होने वाली होती है उसका जिस प्रकार सेवक लोग अधिक से अधिक आदर करने लगते हैं, उसी प्रकार राजपुत्र हर्ष को और भी अनेक भावी अभ्युदय के सूचक शुभ शकुन दृष्टिगोचर होने लगे। नवीन राजा उत्कर्ष ने उसके पास दूत के द्वारा भोजन करने के लिए सन्देश भेजा। उसने उसके उत्तर मे कहला भेजा—"आप मुझे इस वन्धन से मुक्त कर इस देश की सीमा के वाहर निर्वासित कर दीजिए। मैं आपके विरुद्ध किसी प्रकार की भी कार्यवाही न करूँगा। यदि मेरे इस कथन पर विश्वास न हो तो मैं विश्वास दिलाने के लिए तीर्थ के जल को पीकर शपथ लेने को भी तैयार हूँ। यदि आप मेरी वातो पर ध्यान न देंगे तो मैं अनशन करके प्राण त्याग दूँगा।"

हर्ष के पास से लौटकर आये हुये दूत के द्वारा उसके उत्तर को सुनकर उत्कर्ष कुछ समय के लिए मौन धारण किये हुए वैठा रहा। आप ही आप मन मे तर्क-वितर्क करता रहा। अन्त मे उसने सत्य को ठुकरा कर मिथ्या का आश्रय लेना उचित समझा। कपट-नीति के बिना राजनीति चल ही नही सकती, कदाचित् यही उसका उस समय विचार वन गया हो इसलिए उसने पुनः दूत भेजकर उसके द्वारा "मुझे आपका कथन स्वीकार है" इस प्रकार का मिथ्या वचन कहला दिया और कार्य को सिद्ध करने के लिए उसके मन का समाधान कर दिया। इतना ही

नहीं, अपने ज्येष्ठ भ्राता हर्ष से कोशपानपूर्वक शपथ लेकर उसको भोजन कराना भी आरम्भ किया।

उसकी इच्छा के अनुसार हर्ष ने भोजन करना स्वीकार किया और बिना किसी विरोध के भोजन भी ग्रहण किया, किन्तु उसने जब अपने को बन्धन से मुक्त करने के लिए सन्देश भेजना आरम्भ किया तब उत्कर्ष उस पर ध्यान देना भी अनुचित समझने लगा। जब विशेष रूप से आग्रहपूर्वक कहा जाने लगा तब वह सोच कर उत्तर देने का समय चाहने लगा।

जब कई दिन बीत गये और हर्ष के कहने का कुछ भी प्रभाव उस पर न पडा तब हर्ष ने प्रभावशाली व्यक्तियो के द्वारा उसके पास सन्देश भेजना आरम्भ किया। तब राजा उत्कर्ष आजकल का बहाना बना कर उस बात को टालने लगा। उसके मनोगत विचारो को समझ कर उन समस्त प्रभावशाली व्यक्तियो ने मौन साध लिया। न हर्ष से कुछ कहते और न उत्कर्ष से उसको मुक्त कर देने लिए आग्रह करते। जब कभी हर्ष उन सबो से कुछ कहलाने का प्रयत्न करता तब वे सब चुपचाप समस्त बातो को सुन लेते।

जब हर्ष सभी प्रकार से निराश हो गया और उसे कही से भी सन्तोषजनक उत्तर मिलने की सम्भावना न रही तब वह गम्भीरता के साथ राजनीतिक दृष्टिकोण से समस्त घटनाओ पर विचार करने लगा। जब वह राज्य के लोभी और विश्वासघात करने वाले राजाओ के कुकर्मों की आलोचना करने लगा तब उसे उत्कर्ष के समस्त कार्यों और व्यवहारो मे उन सब की समानता स्पष्ट रूप से दिखाई पडने लगी। उसके हृदय का समस्त धैर्य जाता रहा। मानव मात्र का हितैषी वह हर्ष अपना कोई भी हितैषी नही पा रहा था। सभी दिशाओ मे उसके हृदय मे भय उत्पन्न करने वाली विभीषिका दिखाई पडने लगी।

जब उसका मन उत्कर्ष के व्यवहार से सशकित हो गया और बन्धन से मुक्त होने के लिए किये गये समस्त प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए तब उसने अपने विश्वासपात्र सेवक प्रयाग से कहा, 'मेरे साथ नवीन राजा उत्कर्ष के द्वारा जो बर्ताव किया जा रहा है, उसे तुम जानते हो और देखते भी हो। मैं मनसा, वाचा, कर्मणा (मन, वाणी और कर्म से) उत्कर्ष का हित चाहता हूँ और वह राज्याधिकार के मद से अन्धा होकर मुझे कष्ट देने का ही उपाय करता है। सत्य के नाम पर कलक लगाने वाला वह उत्कर्ष हर्ष के जीवन को भी नष्ट करना चाहता है। ससार मे जितने भी देहधारी है सभी को अपने जीवन से अधिक मोह होता है। मैं भी इसी मोह मे पड गया हूँ इसलिए जीवन की अनित्यता को स्वीकार करते हुए भी मैं अपने जीवन की रक्षा का उपाय सोचने लगा हूँ। इस समय तुम से बढकर मेरे मनोगत भावो को समझने वाला दूसरा कोई व्यक्ति नही है। अतएव तुम्ही से उचित सहायता पा सकने की पूर्ण आशा है।"

उसके आदेशानुसार कार्य करने के लिए प्रयाग सहर्ष तैयार हो गया। उसने बडी नम्रता के साथ कहा, "राजपुत्र! समस्त देहधारियो का सघर्ष मृत्यु से ही है। मृत्यु चाहती है उनका सर्वनाश और वे चाहते हैं उस पर विजय। जो जब तक उस पर विजयी बना रहता है तब तक वह ससार मे जीवित रहने का सौभाग्य प्राप्त करता करता है। इसीलिए जीवन रक्षा का ही प्रश्न ससार मे अपना विशेष महत्व रखता है। ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न का नाम मोह कदापि नही हो सकता।"

प्रयाग की इन बातो से हर्ष को किंचित् शान्ति प्राप्त हुई। उसके बाद उसने विश्वास के लिए अपना ताटक (कर्णभूषण) प्रयाग को देकर उसके द्वारा विजयमल्ल के निकट यह सन्देश

भेजा—"कुमार ! इस राज्य मे तुम्हारे रहते हुए भी तुम्हारा भाग्यहीन यह ज्येष्ठ बन्धु (हर्ष-देव) इस प्रकार दुस्सह दु.ख को भोग रहा है ।"

प्रयाग के द्वारा राजपुत्र हर्ष के इस सन्देश को सुनकर विजयमल्ल को बडा खेद हुआ । उत्कर्ष के द्वारा किये गये समस्त व्यवहारो को वह पहले ही जान चुका था । इस समय उस सन्देश से उसके नेत्रो के सामने अपने ज्येष्ठ भ्राता हर्षदेव की दयनीय दशा का चित्र प्रकट हो गया । फिर उसने कुछ देर सोचने के बाद प्रयाग के द्वारा अपना यह सन्देश कहलाया—"आप यह जानते ही है कि राज्याधिकार पा जाने के बाद उत्कर्ष का स्वभाव कैसा विचित्र हो गया है । राज्य से सम्बन्ध रखने वाले समस्त व्यवहारो मे वह अपने को परम नीतिज्ञ समझता है । ऐसी दशा मे वह मेरा कहना कदापि न मानेगा । यदि मैं विशेष आग्रहपूर्वक कहूँगा तो सभव है कि वह मेरे उस कहने का कोई दूसरा ही अभिप्राय समझ ले । तात्पर्य यह है कि वह मेरे कहने से कुछ भी नही करेगा । फिर भी मैं इस बात का विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपको इस कारा-वास के बन्धन से छुडाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा । जब तक मैं अपने प्रयत्न मे सफलता प्राप्त न कर लूँ तब तक आप भी अपने प्राणो को सुरक्षित रखने के लिए सर्वदा सावधान रहे ।"

ऐसा कहकर उसने प्रयाग को हर्षदेव के निकट वापस भेज दिया और उस कार्य की सिद्धि का उपाय सोचने लगा । इधर राज्य-प्राप्ति के बाद उत्कर्ष के अभिमान की मात्रा अपनी सीमा को पार कर गई । राज्य-शासन की व्यवस्था की ओर वह बिलकुल ध्यान नही देता था । ऐसा ज्ञात होता था मानो उसके ऊपर से देवताओ ने अपनी कृपा को हटा लिया हो और इसीलिए उसका चित्त मोहित-सा हो गया हो ।

उसने कन्दर्प आदि मन्त्रियो को शासन के मुख्य-मुख्य अधिकारो पर नियुक्त कर रखा था । वे जिस प्रकार चाहते उसी प्रकार शासन के सूत्र को व्यवस्थित करते थे । उनके विरुद्ध न तो कोई कुछ कह सकता था और न कही किसी प्रकार की आलोचना की जा सकती थी । उत्कर्ष न तो कुछ स्वयं करता था और न उन सबो से ही राज्य-व्यवस्था के विषय मे कुछ पूछता था, इसलिय राज्य पर उन समस्त मन्त्रियो का प्रभाव आवश्यकता से अधिक महत्त्वपूर्ण हो चुका था ।

उत्कर्ष को धन से उतना ही प्रेम था जितना उसके पिता राजा कलश को । उसके समान वह भी जीवन मे धन को ही अधिक महत्त्व देता था इसीलिए राज्य के भाण्डागार का निरन्तर अवलोकन, द्रव्य की गणना और सुवर्ण आदि के तौल मे ही उसका सारा दिन बीत जाता था । जिन कामो मे धन का व्यय न हो, ऐसे कामो को तो वह तुरन्त स्वीकार कर लेता था परन्तु जिनमे धन का व्यय होने की सम्भावना हो सकती थी, उन समस्त कामो के लिए वह विलम्ब तक सोचा करता था । जब उसके इन लक्षणो को लोगो ने समझ लिया तब वे उसी के अनुसार उससे कार्यों के सम्बन्ध मे परामर्श करने लगे । इस प्रकार दूरदर्शी मनुष्यो ने यह निश्चित रूप से समझ लिया कि वह परम लोभी है ।

पहले उसकी सौतेली माताएँ भोजन की सामग्री मे राज-परिवार के योग्य वस्तुएँ पाया करती थी । कुछ दिनो मे उनको उस प्रकार का भोजन दिया जाना अपव्यय समझा जाने लगा । "जब साधारण भोजन-सामग्री से जीवन की रक्षा हो सकती है तब इस प्रकार के अधिक व्ययसाध्य भोजन-सामग्री को बन्द कर देना चाहिए" ऐसा निश्चय कर उत्कर्ष ने उन सबो को खाने के लिए

दिये जाने वाले अन्न मे मूंग की दाल देना आरम्भ कर दिया था। इसीलिए उन स्वेच्छाचारिणियों ने उसकी कृपणता को संसार मे आवश्यकता से भी अधिक प्रसिद्ध कर दिया था।

इसमे सन्देह नही कि वह राजा उत्कर्ष श्रोत्रिय के समान कंजूस था और उसका वर्ताव भी अत्यन्त निकृष्ट था। इसलिए उदार स्वभाव वाले स्वामी को चाहनेवाली प्रजा को वह अपने कृपणतापूर्ण स्वभाव के कारण किसी भी दृष्टिकोण से तनिक भी प्रिय नही लगता था। कुछ दिन बीत जाने पर उस लोभी उत्कर्ष ने अपने सौतेले भाई विजयमल्ल को पूर्वनिश्चित वेतन देना बन्द कर दिया। इसके लिए जब उससे कहा गया तब भी उसने ध्यान न दिया। तब वह रुष्ट होकर वहाँ से जाने का उद्योग करने लगा।

जब उसके मन मे शका उत्पन्न हुई तब वह अपने बचाव के लिए मध्यस्थो से भी साथ चलने को कहा। वे उसकी बात को टाल न सके और पूर्ण रूप से सुसज्जित होकर वे भी उसके साथ रवाना हुए। राजधानी से रवाना होकर वह पर्णोत्स मे एक रात के लिए ठहरा। वहाँ पर मध्यस्थो के वीर सैनिक भी उससे मिल गये और उन सबो ने विजयमल्ल से कहा—"राजपुत्र हर्षदेव के कारावास-बन्धन मे फँस जाने से तथा आपके इस प्रकार देश-त्याग से उत्कर्ष निष्कण्टक राज्य को पाकर कृतार्थ हो जायगा। इसलिए हर्ष को कारावास से छुडाने के बाद आपका यहाँ से जाना उचित है।"

इस प्रकार उन शस्त्रधारी वीरो के वचन से प्रेरित होकर उस राजपुत्र विजयमल्ल ने आगे बढ़ने के विचार को छोड दिया और राजधानी की ओर वापस लौटने के लिए प्रस्थान किया। वापस लौटकर आते हुए विजयमल्ल के इस प्रकार के इरादे को सुनकर कतिपय डामर भी उसके सहायक बन गये। अश्वारोहियो की सेना के सेनापति मधुरावट्ट ने कुमार विजयमल्ल तथा उत्कर्ष के आपसी ठहराव मे मध्यस्थता स्वीकार की थी, इसलिए जब विजयमल्ल राजधानी को त्याग कर जाने लगा तब उसने अपने पुत्र नाग को कतिपय अश्वारोहियो के सहित विजयमल्ल के साथ भेज दिया था।

वह नाग राजा उत्कर्ष का परम कृतज्ञ भक्त तथा राजनिष्ठ था। इसलिए जब विजयमल्ल पर्णोत्स से वापस लौटकर डामरो के सहित राजधानी पर आक्रमण करने के लिए बडी वीरतापूर्वक आने लगा तब इस समाचार को राजा से कहने के लिए नाग अपने अश्वारोही सैनिको के साथ शीघ्र गति से राजधानी को रवाना हुआ था। परन्तु मार्ग मे अपशकुन होने के कारण वह यथासमय राजधानी तक न पहुँच सका।

उसने अपनी राजभक्ति को प्रदर्शित करने के लिए जो कुछ प्रयत्न किया था, दुर्भाग्य ने तुरन्त व्यर्थ सिद्ध कर दिया। वह जहाँ था, वही पडा रह गया और उसके पहले ही शीघ्रता से कार्य करने वाले राजपुत्र विजयमल्ल ने शुभ शकुनो से प्रोत्साहित होकर आगे बढना आरम्भ कर दिया तथा पलीतो को हाथ मे लिए हुए सैनिको के द्वारा घरो को जलाते हुए राजधानी को चारो ओर से घेर लिया। राजा उत्कर्ष की ओर से जयराज सेना-समेत विजयमल्ल के साथ युद्ध करने के लिए निकला था, परन्तु उसने राजपक्ष को छोडकर विजयमल्ल का पक्ष स्वीकार कर लिया।

जिस प्रकार दो युवक कवि किसी महाकवि के महाकाव्य के अर्थ पर विचार-विनिमय करते हैं उसी प्रकार उत्कर्ष के भावी कार्यक्रम के विषय मे वे दोनो (जयराज और विजयमल्ल) विचार

करने लगे। विजयमल्ल के सैनिको ने राजा की हस्तिशाला तथा गो-महिष-शालाओ को जलाकर राख का ढेर बना डाला और "राजपुत्र हर्ष को कारावास के बन्धन से मुक्त करने पर ही हम यहाँ से हटेंगे" ऐसा कहने लगे।

"प्रलय-काल के बादलो के समान प्रजा को धन की महावृष्टि से सतुष्ट करने वाले उदार शिरोमणि हर्षदेव को राज्याभिषेक करना चाहिए और बनियो के समान लोभी इस खश को अर्थात् उत्कर्ष को तुरत निकाल देना चाहिए' ऐसा कहते हुए नगर के निवासियो ने चतुस्तभ मण्डप के पास पहुँच कर उस भवन की खिडकियो से हर्षदेव पर परम प्रसन्नता के साथ पुष्प-वृष्टि की। इस प्रकार उपद्रव के फैलने पर हर्षदेव ने उन ठक्कुरो को भेजकर परास्त हुए राजा के सैनिको को युद्ध से रोककर उन्हे तटस्थ रहने को सूचित किया।

इस प्रकार बन्धन मे रह कर भी उस चतुर हर्ष ने अपने शत्रु उत्कर्ष को हानि पहुँचा दी और उसके बाद सन्देह से कांपते हुए उसने अपने रक्षक ठक्कुरो से कहा, "मैं इस समय भयंकर सकट मे फँस गया हूँ, इसलिए मुझे शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कर दीजिए, अन्यथा राजा उत्कर्ष की ओर से मुझ पर बडा अनर्थ किया जायगा—ऐसा निश्चित है।" इस प्रकार हर्षदेव के वचन को सुनकर वे सब ठक्कुर परस्पर विचार करने लगे। इतने मे ही बाहर से द्वार पर बार-बार जोर से लत्ता-प्रहार की आवाज सुनाई देने लगी और बाहर से किसी ने कहा—"इन दुष्ट लोगो ने क्यो यह राजद्रोह प्रारम्भ किया है? ठक्कुरो! जल्दी से द्वार को खोल दो।" यह सुनकर वे ठक्कुर लोग जब भयभीत हो गये तब हर्षदेव ने धैर्य से उस भय की पर्वाह न करते हुए उनसे वह द्वार खुलवा दिया।

उस समय हर्ष अत्यन्त कृश हो गया था। केवल उसके नेत्रो मे ही जीव था। द्वार के खुलते ही उसने लोहर प्रान्त के सोलह सशस्त्र पहरेदारो को भीतर घुसते हुए देखा।" हर्ष का मस्तक काटकर बाहर दिखाते ही यह सब उपद्रव तथा भय तत्काल नष्ट हो जायगा।" ऐसा परम धूर्त मत्री नोनक ने राजा उत्कर्ष को सूचित किया था। उसी के अनुसार उत्कर्ष ने उन सोलह सशस्त्र सैनिको को भेजने का निश्चय किया था।

इतना सब प्रबन्ध कर लेने के बाद भी 'हर्ष का वध किया जावे अथवा नहीं' इस बात का निश्चय नही हो रहा था। 'यदि वह जीवित रहेगा तो भी किसी काम मे आयेगा' ऐसा सोच कर उत्कर्ष ने उन सोलह सशस्त्र सैनिकों को रवाना करते समय कहा था—"तुम लोग चतुस्तम्भ-मण्डप मे जाकर उन ठक्कुरो को पहरे से हटा दो और स्वय वहाँ रहकर पहरा दो। यदि मैं इस अँगूठी को तुम लोगो के पास भेजूँ तो उसको मार डालना और यदि इस दूसरी अँगूठी को भेजूँ तो उसको तुरन्त बन्धन से मुक्त कर देना।" ऐसा कहकर उसने वे दोनों अँगूठियाँ उन सबो को अच्छी तरह दिखला दी।

इसलिए उन्होने उन ठक्कुरो को पहरे पर से हटा दिया, परन्तु राजपुत्र हर्ष पर प्रहार नहीं किया। हर्ष ने उन सोलह सैनिको मे से प्रत्येक का नाम जान लिया फिर प्रत्येक को उसके नाम से सम्बोधित कर सादर ताम्बूल दिया और बिना किसी सकोच के अपने सामने बैठ जाने के लिए कहा। उसके इस सत्कार से वे सब लज्जित हो गये और ताम्बूल ग्रहण करने के समय उन्होने अपने हाथ के हथियार और मन से उसके वध करने की अभिलाषा को एकदम त्याग दिया।

मधुर वाणी लक्ष्मी को देती है, कीर्ति को बढाती है, पाप को नष्ट करती है, शत्रुओं को भी मित्र बना देती है, अनुकूल सज्जनो को कदापि विरुद्ध नही होने देती है और समस्त अनर्थों

का परिहार करती है। इस प्रकार कामधेनु के समान यह मधुर वाणी कौन-से कार्य को नही करती अथवा कौन-से अनिष्ट को नष्ट नही करती ?

राजपुत्र हर्ष ने उन सैनिको से कहा—"आप लोग लज्जित-से क्यो हो रहे हैं ? स्वामी की आज्ञा पालन करने मे सेवक-जन सर्वथा निर्दोष होते हैं। फिर भी आप लोग यदि थोडी देर के लिए ठहर जायँगे तो आप लोगो को इस वर्तमान परिस्थिति मे क्षण-क्षण मे होने वाले परिवर्तनो का चमत्कार दीख पडेगा। जिस प्रकार आकाश मे दीखने वाले छोटे-छोटे बादलो मे हाथी, अश्व, गैंडे, हिंसक पशु तथा सर्पो की-सी आकृतियाँ दीख पडती हैं, उसी प्रकार मानव के मानसिक विकारो मे मृदु तथा तीक्ष्ण विचारो की तरगावली क्रमश परिवर्तित होती है। जिस प्रकार जो कुछ होनेवाला है उसके लिए मैं तैयार होकर बैठा हूँ, उसी प्रकार जो कुछ घटना होनेवाली है उसको देखने के लिए आप लोग भी तैयार रहिए।"

ससार मे परिवर्तन लाने वाले घटना-चक्र की विशेषता भी यही है। जिन पुरुषो, राजपुत्रो अथवा राजाओ को शीघ्र ही राज्य की प्राप्ति होने वाली होती है, उन समस्त राजाओ, राजपुत्रो अथवा पुरुषो के लिए रसान्तर को उत्पन्न करने वाले इस प्रकार के प्राणान्तक प्रसंग आया ही करते है। जैसे वर्षाकाल के समीप आने पर ग्रीष्म का ताप पराकाष्ठा को पहुँच जाता है और प्रभातकाल समीप आने पर रात्रि का अँधेरा भी अधिक गहन हो जाता है, वैसे ही उत्कृष्ट ऐश्वर्य तथा विपुल सम्पत्ति के लाभ का अवसर निकट आने पर शीघ्र ही नष्ट होने वाली विपत्ति मानव-मात्र के लिए अधिक कष्टदायिनी होती है।

हर्ष को स्वरोदय-शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। इसलिए वह इस बात को निश्चयपूर्वक कह रहा था। इन समस्त बातो को कहकर उसने उन सैनिको से अपने समान आपत्ति मे फँसकर अन्त मे शुभ फल पानेवाले अनेक सत्पुरुषो की कथाएँ कही। इसी प्रकार समय को व्यतीत करने के लिए उपन्यास की शुद्धि से कथाश्रय-रस-प्रवाह को भली-भाँति व्यक्त करते हुए उस राजपुत्र हर्ष ने राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त भी उनके सम्मुख विस्तार के साथ कहा।

उन रक्षको का मनोरजन आत्मरक्षा और उस समय के बाहरी उपद्रवो की गुप्त रूप से देखरेख करते हुए उस गम्भीर स्वभाव वाले हर्ष ने अपनी चतुरता का पता किसी को भी नही लगने दिया। दूसरी ओर तब तक उसके सम्बन्ध मे सैकडो प्रकार के नवीन विचार उत्पन्न होकर बार-बार राज्य-लक्ष्मी तथा महाकाली का गतागत अर्थात् आना और जाना हो रहा था। हर्ष को मारना चाहिए अथवा बन्धनमुक्त करना चाहिए, इस विषय में उत्कर्ष अपने सेवको को बार-बार भिन्न-भिन्न प्रकार के आदेश दे रहा था।

अन्त मे उसने हर्ष को मार डालने की आज्ञा दे दी परन्तु उस आज्ञा को देते समय उसे जो अँगूठी देनी चाहिए थी, वह उस अँगूठी को देना भूल गया था किन्तु बन्धन से मुक्त कर देने की सूचना देनेवाली अँगूठी को बड़ी सावधानी के साथ अपने पास रखे हुए था। इसलिए उन पहरेदारो ने उस अँगूठी के बिना किसी भी प्रकार राजा उत्कर्ष के सेवको की बात को नही माना। जब राजा उत्कर्ष को इस बात का पता लग गया तब वह व्याकुल हो गया। किसी प्रकार अपने को सम्हाल कर उसने सत्य के पुत्र शूर से कहा।

घटना-चक्र की उच्छृंखलता के कारण जो न करना चाहिए वह भी करने को मैं बाध्य हो गया किन्तु उसमे भी भयानक भूल हो गई है। मैंने हर्ष की हत्या करना निश्चय कर लिया है,

क्योंकि जब तक वह जीवित रहेगा तब तक राज्य के अन्तर्गत होने वाले उपद्रवों को शान्त कर सकना सर्वथा असम्भव है। राज्य के अन्दर शान्ति और व्यवस्था की रक्षा के लिए हर्ष का बध करना अनिवार्य है।

इसीलिए मैंने अपने सेवको द्वारा उसे मार डालने के लिए वहाँ के पहरेदारो को कहला भेजा है किन्तु आज्ञा की सत्यता को सूचित करने वाली जो अँगूठी साथ जानी चाहिए थी वह मेरे पास ही पडी रह गई है। साथ ही साथ उसे बन्धन से मुक्त कर देने की आज्ञा सूचित करने वाली दूसरी अँगूठी भी मेरे ही पास है। इसलिए तुम इस अँगूठी को तुरन्त ले जाओ और वहाँ के पहरेदारो को देकर उन्हे भली भाँति समझा आओ। यह भयानक सकट-काल है। जीवन और मरण के चित्र नित्य दिखाई पड रहे है। उत्थान और पतन का सघर्ष अनिश्चित परिणाम की ओर मुझे बलपूर्वक लिये जा रहा है। हर्ष का उत्कर्ष मुझ उत्कर्ष के विनाश मे है और मुझ उत्कर्ष को तभी हर्ष प्राप्त होगा जब मेरा विरोधी हर्ष चिरकाल के लिए ससार से चला जायगा।

यद्यपि यह बात लोकप्रसिद्ध है कि हर्ष और उत्कर्ष के जन्मदाता एक ही माता-पिता है। हर्ष के लिए उत्कर्ष और उत्कर्ष के लिए हर्ष का सम्बन्ध स्वाभाविक है। जिस देश, समाज और राष्ट्र अथवा राज्य मे हर्ष का अस्तित्व नही है वहाँ उत्कर्ष को भी स्थान नही प्राप्त होता और जहाँ पर उत्कर्ष का कोई भी महत्व नही है वहाँ पर हर्ष का ससार ही शून्य-सा प्रतीत होता है। यह सब जानते हुए भी आज हम दोनो अपन वास्तविक स्वरूप को भूल चुके है। अब यह निश्चय कर चुका हूँ कि हर्ष को मिटाना ही चाहिए। इस प्रकार शूर से कहकर राजा उत्कर्ष ने अपनी समझ से बडी शीघ्रता के साथ हर्ष को मार डालने का सकेत सूचित करने वाली अँगूठी दे दी किन्तु दैवयोग से हर्ष को मार डालने की सूचना देनेवाली अँगूठी के बदले हर्ष को बन्धन से मुक्त करने वाली अँगूठी राजा के द्वारा दे दी गई। वह उसे लेकर वायुवेग से चल पडा।

वृद्धक्षत्र के कुल मे उत्पन्न हुए सिन्धु-देश के राजा जयद्रथ के पिता ने घोर तपस्या की थी। उसकी उस तपस्या से प्रसन्न होकर उसका इष्ट देवता उसके सामने आकर खडा हो गया था और वर माँगने के लिए कहा था। उस तपस्वी का सर्वस्व उसका पुत्र था। वह उसी को अमर बनाना चाहता था और यह भी जानता था कि उसके पुत्र के शत्रु अनेक हैं। इसलिए यदि कोई उसके पुत्र का विनाश करे तो साथ ही साथ उसका भी विनाश हो जाय। इस विचार से उसने अपने इष्ट देवता से कहा था, "आप यह वर देने की कृपा कीजिये कि राजा जयद्रथ के मस्तक को जो पृथ्वी पर गिरा दे उसकी मृत्यु उसी समय हो जाय।" "तथास्तु" कहकर देवता चला गया किन्तु आगे चलकर जयद्रथ का मस्तक स्वय के हाथ से गिरकर उसी की मृत्यु का कारण बन गया था।

ठीक यही दशा श्रुतायुध की भी हुई। वह भी विश्व-विजयी होना चाहता था। सग्राम मे उसके समान कोई भी योद्धा न हो, यह उसकी परम अभिलाषा थी। मनुष्य को जितनी शक्ति प्राप्त है उससे ऐसा हो सकना सर्वथा असम्भव था। इसीलिए दैवी शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से उसने भी घोर तपस्या की थी। तपस्या के प्रभाव से उसे एक दिव्य गदा प्राप्त हुई थी। उस गदा का यह प्रभाव था कि वह जिसके मस्तक पर चोट करेगी, वह तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जायगा। किन्तु दुर्भाग्य के कारण वह उस गदा से विशेष लाभ नही उठा सका था और कुछ ही दिनो मे वही गदा उसके लिए मृत्यु का कारण बनकर उसी के मस्तक पर गिर पडी थी।

इन समस्त घटनाओं को सामने रखकर मनन करने से यही सिद्ध होता है कि असम्भव को संभव और सम्भव को असंभव कर सकना मानव-शक्ति के परे की बात है। जो मनुष्य दूसरो का अनिष्ट करने के लिए उग्र तपस्या किया करता है अथवा उन समस्त कठोर कर्मों को करता है जिनका परिणाम दूसरो का विनाश है, वह कदापि अपनी पापमयी अभिलाषा को पूर्ण नही कर पाता। इसलिए दुष्ट मनुष्य जिस वस्तु को अपनी सुरक्षा का कारण समझते है वही विधाता के विलक्षण प्रभाव से उन्ही के नाश का कारण बन जाती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह सब राजा उत्कर्ष की कार्य-प्रणाली और उसके परिणाम से ही सम्बन्ध रखता है। जैसा कष्टमय और हानिप्रद परिणाम उन समस्त दुष्ट स्वभाव वाले स्वार्थियो का रहा वैसा ही उत्कर्ष का भी रहा। क्योकि एक अभिज्ञान अर्थात् निशानी की अँगूठी के भूल जाने से और उसके स्थान मे दूसरे अभिज्ञान के देने से उस राजा उत्कर्ष को लाभ न हो कर प्रत्युत उसका सर्वनाश हो गया।

राजपुत्र हर्ष का स्वभाव कोमल, उदार और मिलनसार था। वह जिस किसी से मिलता था उसे अपने अनुकूल बना लेता था। इसीलिए वे पहरेदार भी थोडे ही समय मे उसके परम हितैषी बन गये थे और उन्होने राजा उत्कर्ष की अनुचित आज्ञा के विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय कर लिया था। जिस समय उन सबो ने देखा कि क्रोधयुक्त मुद्रा से शूर चतुस्तम्भ-मण्डप की ओर बड़ी शीघ्रगति से चला आ रहा है उस समय वे सावधान होकर खडे हो गये और परस्पर विचार प्रकट करते हुए कहने लगे—

"देखो, राजा का कोई दूत आ रहा है। इसकी आकृति से प्रकट होता है कि इसका हृदय बडा ही कठोर होगा। इसकी गतिविधि से जान पडता है कि यह हर्षदेव के वध के लिए आ रहा है अथवा वध के आदेश को कहने के लिए शीघ्रता से आना चाहता है। कुछ भी हो, उभय दशा मे हम सब इसे मार डालेंगे। हम लोगो के रहते हुए राजपुत्र हर्ष का अनिष्ट नही होने पायगा।"

ऐसा निश्चय कर हर्षदेव के हितैषी उन रक्षको ने उस आने वाले शूर को मार डालने की अभिलाषा से अपने हथियार उठा लिये। शूर ने आते ही उन सबो से कहा, "मैं महाराज श्रीमान् उत्कर्ष का विश्वास-पात्र सेवक शूर हूँ। आवश्यक आदेश को कहने के लिए भेजा गया हूँ। अतएव मण्डप के अन्दर चलकर उस गुप्त और आवश्यक आदेश को सुन लो।"

चतुस्तम्भ मण्डप के रक्षको ने द्वार को खोल दिया। अन्दर जाने के बाद उसने कुछ भी उचित न समझा। केवल निशानी की अंगूठी दिखा देना ही पर्याप्त समझा। राजा उत्कर्ष के दुर्भाग्य और राजपुत्र हर्षदेव के सौभाग्य से उसके हाथ मे हर्ष को बन्धन से मुक्त करने की सूचक अँगूठी को देखकर वे सब बड़े प्रसन्न हुए और फिर उसे साथ लेकर आनन्द से उछलते हुए वे सब हर्षदेव के समीप गए। वहाँ जाकर उन सबो ने उसके चरणो पर अपना मस्तक रख दिया और फिर बडी नम्रता के साथ प्रार्थना करते हुए कहा——

"अब आप यहाँ से शीघ्र ही बाहर चलिए।" उन सबो की बातो को सुनकर हर्ष को बडा आश्चर्य हुआ और वह उनकी बातो की सत्यता पर सन्देह करने लगा। इसीलिए वह थोडी देर तक खडा-खडा कुछ सोचता रहा। उसी समय राजधानी मे यह समाचार फैल गया कि "हर्षदेव को राजा उत्कर्ष ने मरवा डाला है।" जो जिस स्थान पर था वह वही रुक गया और हर्ष के लिए शोक प्रकट करने लगा।

जैसा नागरिकों ने समझा था वैसा ही विजयमल्ल ने भी समझा। हर्ष को मरा हुआ समझ कर उसका क्रोधानल धधक उठा। यद्यपि उस समय उसके साथियो और सहायको ने उसे समझाने का अधिक प्रयत्न किया तथापि उसके हृदय का क्रोधानल शान्त न हुआ। उसने तुरन्त अपने अस्त्रो को उठा लिया और परशुराम के समान प्रचण्ड होकर राजा उत्कर्ष की सेना का संहार करना आरंभ कर दिया। इतना ही नही, क्रोध के आवेश मे आकर राजभवन को आग लगाकर भस्म कर देने के लिए उद्यत हो गया। उसके इस इरादे को जानकर राजा उत्कर्ष के कई सैनिको ने "आपके ज्येष्ठ भ्राता हर्षदेव जीवित है" ऐसा कहकर उसे बडी कठिनाई से रोका।

राजा उत्कर्ष ने भी विजयमल्ल को हर्षदेव के जीवित रहने का विश्वास दिलाने के लिए हर्षदेव की पत्नी सुगला देवी को हर्ष का ताटक (कर्णभूषण) देकर उसके पास भेजा। उसे देख कर विजयमल्ल ने राजभवन मे आग लगा कर उसे भस्म कर देने का विचार छोड़ दिया और उत्कर्ष ने भी हर्षदेव को बन्धन से मुक्त कर देने मे ही अपना कल्याण समझा। तदनुसार नोनक, प्रशस्तकलश आदि मत्री स्वय हर्ष के समीप गये और उसको जजीरो के बन्धन से मुक्त कर चतुस्तम-मडप से बाहर जाने के लिए कहा। वह मत्र अर्थात् हर्षदेव को चतुस्तभ-मण्डप से बाहर जाने के लिए सूचना देने का विचार उन प्रशस्तकलश आदि मत्रियो के मुख से शोक के कारण अन्तिम क्षण के श्वासोच्छ्वास के समान निकलता-पैठता हुआ-सा बडी कठिनाई के साथ बाहर प्रकट हुआ।

उसके बाद हर्षदेव घोडे पर सवार होकर स्थान-स्थान पर एकत्रित हुए नागरिक जन-समूह के द्वारा की गई पुष्प-वृष्टि से आच्छादित होता हुआ रणभूमि मे खडे हुए राजा उत्कर्ष के समीप मत्रियो के साथ पहुँच गया। कनिष्ठ भ्राता उत्कर्ष ने भी उस समय अपने ज्येष्ठ भ्राता हर्षदेव से मिल कर उसका अभिनन्दन किया और कहा, "अभी तो आप विजयमल्ल के समीप जाकर इस युद्ध को तुरत बन्द करा दीजिए। फिर भविष्य के लिए हम लोग मिल कर यथायोग्य कर्त्तव्य का विचार करेगे।" उसके इस प्रकार कहने पर हर्ष वहाँ से लडाई को बन्द करा देने के लिए चला गया और उत्कर्ष अपने मत्रियो को साथ लेकर सुवर्ण, रत्न आदि बहुमूल्य वस्तुओ से परिपूर्ण राजकीय कोशागार की ओर गया।

अतिशय भयकर आपत्ति से उत्तीर्ण हो कर आते हुए हर्षदेव को देख कर विजयमल्ल आनन्द की अधिकता के कारण कुछ क्षणो के लिए स्तब्ध-सा खडा रहा। उसके बाद वह हर्ष के चरणो पर गिर पडा। हर्ष ने भी शीघ्र उसे उठा कर अपने हृदय से लगा लिया। बाद मे उन उपकार करने वाले और किये गये उपकार से नवजीवन-लाभ करने वाले दोनो मे कई प्रकार की प्रेम-पूर्ण बातें होती रही।

उस समय एक आप्त और विश्वस्त पुरुष ने विजयमल्ल से धीमी आवाज मे कहा, "सबसे पहिले आप हर्ष को मार डालिए और फिर उत्कर्ष को ऐसा करते ही आप यहाँ के निष्कण्टक राजा हो जायँगे।" परन्तु उस निर्दोष विजयमल्ल ने उसके कथन पर कुछ भी ध्यान नही दिया तथापि उन दोनो की बातचीत के ढग को देख कर परम चतुर हर्ष ने उस सकेत को पहिचान लिया और उस समय वह भयभीत होकर एक क्षण के लिए काँप उठा।

उस समय उस स्थान पर वह अकेला ही था। उसके पक्ष के लोगो मे से कोई भी वहाँ नही था। इसलिए दो विरोधी श्येन (बाज) पक्षियो के बीच मे फँसे हुए पक्ष से हीन और अपने

प्राणो को बचाने के लिए इधर-उधर आश्रय को खोजते हुए पक्षी के समान वह घोडे पर सवार होकर इधर-उधर भ्रमण कर रहा था ।

जब वर्षाकाल मे होने वाली जल-वृष्टि का समय समीप आ जाता है तब ग्रीष्मकाल के समय दावानल से उत्पन्न होने वाले वृक्ष के समस्त क्लेश नष्ट हो जाते हैं फिर भी बिजली के गिरने का भय उपस्थित हो जाता है तथा समुद्र मे मगर के मुँह से छूटकर निकले हुए मनुष्य को डूबने का डर सामने आ जाता है, इसी प्रकार आसन्न भावी (निकट भविष्य) शुभ फल के आनन्द का अधिक अनुभव होने के लिए विधि एक भय के दूर होते ही दूसरा भय उत्पन्न कर देता है ।

अश्व को घुमाने के बहाने से अपने जीवन की रक्षा करते हुए हर्षदेव के समीप इस परिवर्तन के वृत्तान्त को जानने वाले उसके कतिपय पदाति सैनिक उपस्थित हो गये । फिर हर्षदेव विजयमल्ल के साथ कुछ समय तक मंत्रणा करता रहा और फिर राजा उत्कर्ष को विद्रोह के शान्त होने का समाचार देने के लिए वहाँ से चला गया । वहाँ से चल कर वह राजभवन के निकट पहुँचा ही होगा कि इतने ही मे विजयसिंह ने उसके निकट आकर उसे राजभवन के अन्दर जाने से रोका और कहा, "एक बार तो आप बडी कठिनाई से मृत्यु के मुख से बचकर वापस आये हैं, अब दूसरी बार क्यो मृत्यु के निकट जाने का प्रयत्न कर रहे है । इसलिए हे सरल स्वभाव वाले राजपुत्र ! अब तो आप शंका-रहित होकर राजसिंहासन पर बैठ जाइए ।"

विजयसिंह के इन वचनो को सुनकर उसके सेवक कोशागार से सिंहासन को बाहर निकाल लाये और हर्षदेव भी शीघ्र ही उस सिंहासन पर बैठ गया । इतने मे उसकी पत्नी सुगला भी अत्यन्त धृष्टतापूर्वक अपने अनेक अक्षम्य अपराधो को छिपाती हुई महादेवी के पद को प्राप्त करने के लिए उसके पास सिंहासन पर आकर बैठ गई । उसके अभिषेक के समय की हर्षमयी ध्वनि को सुनकर मेघो की गर्जना से एकत्रित होने वाले चातको के समान उसके मन्त्रिगण भी चारो ओर से आकर उसके समीप एकत्रित हो गये ।

जिस समय उत्कर्ष ने सुना कि उसके विरोधी हर्ष का राज्याभिषेक कर दिया गया है, उस समय वह पागलो के समान व्याकुलता प्रकट करने लगा । 'जिस किसी भी उपाय से हो हर्ष का विनाश कर देना चाहिए' ऐसा वह अपने मन मे सोचने लगा । वह एक क्षण के लिए भी शान्त नही होना चाहता था । उसके मनोगत भावो को धूर्त विजयसिंह ने समझ लिया, इसलिए वह हर्ष के जीवन की रक्षा करने के उद्देश्य से उत्कर्ष के साथ कपट-नीति का प्रयोग करने का उपाय सोचने लगा । अन्त मे उसने उसे बलपूर्वक राजभवन से हटाकर दूसरे स्थान मे कैद कर दिया ।

राजसभा के अन्दर राजा हर्षदेव सिंहासन पर बैठा हुआ था । उसने और उसके मन्त्रियो ने देखा कि राज्य-भ्रष्ट और गतश्रीक (जिसके अधिकार से लक्ष्मी चली गई हो) उत्कर्ष परिमित सेवको के साथ चला जा रहा है । इन्ही समस्त घटनाओ को देखकर कहना पडता है कि सम्पदाएँ चिरकाल तक किसी के भी पास स्थिर नही रहती । इसके बाद उत्कर्ष की देखरेख के लिए विजयसिंह ने विश्वासपात्र रक्षको को नियुक्त कर दिया, फिर नवीन राजा हर्षदेव के निकट कर समस्त वृत्तान्त सूचित कर दिया ।

समस्त वृत्तान्त को ध्यानपूर्वक सुन लेने के बाद हर्षदेव कुछ समय तक मौन धारण किये बैठा रहा । परिवर्तनशील संसार मे चंचल स्वभाववाली लक्ष्मी अपने वशीभूत मनुष्यो को

कितने प्रकार से उत्थान और पतन के दृश्य दिखाती है, कदाचित् इसी को मनन करने मे ही उसने वह समय बिताया हो। इसके बाद उसने कारावास के कठिन समय के सहायक और सच्चे मित्र उन लोहर प्रान्त के रहने वाले ठक्कुर तथा उनके सैनिको को बुलवाया। जब वे सब आ गये तब उसने बडी प्रसन्नता के साथ उन सबो को अपने पास रख लिया और इस कार्य के सम्पादन करने के सम्बन्ध मे उसके मन मे विजयमल्ल का भी भय नही रहा।

विजयमल्ल भी अपने ज्येष्ठ भ्राता हर्षदेव के राज्याभिषेक-सम्बन्धी वृत्तान्त को सुनकर बडी प्रसन्नता के साथ उसके पास आ रहा था। जिस समय उसके आने का समाचार विदित हुआ उसी समय हर्षदेव के दूत अत्यन्त विनयपूर्वक बडी शीघ्रता के साथ उसी के (विजयमल्ल के) निवास-स्थान पर उसे ले गये। उसके बाद विजयमल्ल के सैनिक हर्षदेव के पास आये। उन्हे अपने समीप आया हुआ देख कर राजनीति-निपुण हर्षदेव ने उसी समय विजयमल्ल को अपने समीप बुलवा लिया।

जब वह उसके समीप आया तब हर्षदेव ने हाथ जोडकर कहा, "ये मेरे प्राण और यह राज्य आप की ही देन है। आपके अनुग्रह से ही मेरे समस्त सकट नष्ट हुए और मुझे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। मेरे भाग्य की अनुकूलता भी आपकी श्रेष्ठतम नीति तथा धीरता का ही फल है। इतना कह कर उसे उसके परिश्रम के बदले मे योग्य पारितोषिक प्रदान किया। इतना ही नही, उसे अपने पास सिंहासन पर भी बैठाया। यद्यपि हर्ष ने उस समय तक कारागृह के भीतर पहिने जाने वाले कपडे ही पहिन रखे थे तथापि राज्य-लक्ष्मी की समीपता के कारण उस राज्य-सिंहासन पर वह अत्यन्त सुशोभित हो रहा था।

उस प्रकार के साहसपूर्ण और क्रान्तिमय परिवर्तन के कार्य से थका हुआ वह राजा हर्षदेव सायकाल के समय गुरुतर भार को अपने मस्तक पर से उतार कर श्रान्त हुए भारवाहक मनुष्य के समान शय्या पर आकर लेट गया किन्तु इस परिवर्तनशील संसार मे रहने वाले प्राणियो के भाग्य की विलक्षण अस्थिरता पर विचार करते हुए उस राजा को नेत्र बन्द कर पड रहने पर भी निद्रा का सुख नही प्राप्त हुआ।

युद्ध मे विजयसिंह के द्वारा बांधा गया उत्कर्ण अपने समस्त मन्त्रियो के साथ भविष्य मे किये जाने वाले कार्यक्रम के विषय मे मन्त्रणा करने लगा। उस समय नोनक मन्त्री ने उसका भयानक रूप से तिरस्कार किया। जितने दूसरे मन्त्री थे सभी चुपचाप बैठे रहे। उत्कर्ण भी अपराधी के समान सब कुछ सुनता रहा। अन्त मे उसने उस मन्त्री से कहा, "यह समय परस्पर मतभेद उपस्थित करने का नही है। शत्रु का विजयी होना इस समय तीक्ष्ण कांटे के समान मेरे हृदय मे चुभकर कष्टदायक हो रहा है। जब तक मैं जीवित हूँ तब तक उसको सुख नहीं प्राप्त होने दूंगा। मुझे आप समस्त बुद्धिमान्, मननशील और दूरदर्शी मन्त्रियो पर आज भी पूर्ण रूप से भरोसा है। यदि आप लोग चाहेगे तो मेरी मनोकामना अवश्य पूर्ण रूप से सफलता को प्राप्त कर लेगी।"

उत्कर्ष के इस कथन का उत्तर देते हुए नोनक मन्त्री ने बड़े रूखे वचन उससे कहे—"राजन्! इस समय आपके ये सब वाक्य उसी प्रकार शोभा नही दे रहे हे जिस प्रकार सूर्य के निकल आने पर चन्द्रमा शोभा नही देता। अपनी मूर्खता से प्राप्त की हुई वस्तु को खो देने के बाद जिस समय कोई पुरुष पुन. दूसरे प्रकार की मूर्खता के वशीभूत होकर उस खोई हुई वस्तु को

प्राप्त करने का प्रस्ताव उपस्थित करता है उस समय उसका दुर्भाग्य ही उसे उचित परामर्श दे सकता है।"

नोनक की बातो से उत्कर्ष के सामने नैराश्य का अन्धकार छा गया। भिक्षा पाने की अभिलाषा करने वाला भिक्षुक जिस प्रकार दीनता की प्रतिमा बनकर दाता की ओर दृष्टिपात करता है उसी प्रकार उत्कर्ष भी नोनक की ओर कातरदृष्टि से देखने लगा। फिर भी उस हृदयहीन मन्त्री की वाणी मे सुहृदयता का सचार न हुआ। पहिले के ही समान उसने पुन. कठोर शब्द कहे।

"राजन्! जब राज्याधिकार था तब आपने भविष्य की चिन्ता न की। जब समय था तब उसके सकेत को आप न समझ सके। जिस समय राज्यलक्ष्मी दासी के समान आपको प्रसन्न करने मे तत्पर थी उस समय आपकी बुद्धि ने चेतनता से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। जिस समय राज्य-सुख के प्रवाह मे आप मग्न हो रहे थे उस समय आपने अपने मन्त्रियो की मन्त्रणाओ का उचित स्वागत नही किया। जिस क्षण आपके मार्ग मे कण्टक आने लगे उस क्षण आप उनके सम्बन्ध मे सन्यासी के समान भाव धारण करने लगे। जब समय हाथ से निकल गया तब फिर अतीत को लेकर मथन करने से लाभ क्या है?"

इतना सब सुन लेने पर भी उत्कर्ष ने उसके प्रति तनिक भी रोष प्रकट नही किया। वह उसे अपने विचारो के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करने लगा। अपने प्रयत्न मे सफल होने के लिए उसने उससे कहा "मैं यह स्वीकार करने को तैयार हूँ कि मेरी किंचित् असावधानता के कारण शत्रुओ को सफल होने का अवसर मिल गया है किन्तु यह स्वीकार करने को तैयार नही हूँ कि वे पूर्ण रूप से विजयी हो चुके है। जब तक उत्कर्ष जीवित है और जब तक उसके परम राजनीतिज्ञ मन्त्री उसकी सहायता करने को प्रस्तुत हैं तब तक यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकेगा कि काश्मीर का वास्तविक राजा कौन है? जिस प्रकार हर्ष ने राज्य-सिहासन पर बैठ कर अपने को राजा होना घोषित किया है उसी प्रकार सैकडो बार चूहे भी बैठ चुके होगे। इसलिए जिस किसी भी प्रकार हो, उसे राज्याधिकार से वचित करना ही पडेगा। मेरा यह दृढ विश्वास है कि आप सब एक मत होकर मेरा साथ अवश्य देंगे।"

नोनक आदि सभी मन्त्री उस समय उत्कर्ष की बातो से रुष्ट हो रहे थे। उसकी एक भी बात उनके हृदय मे स्थान नही पा रही थी। जब नोनक ने देखा कि उत्कर्ष पर स्वार्थान्धता के कारण उसकी एक भी बात का उचित प्रभाव नही पड रहा है तब उसने कठोरता की मात्रा को बढाते हुए उससे कहा "आपके लिए राजन् शब्द का प्रयोग भी सर्वथा अनुचित है। जिस प्रकार विधवा स्त्री के ललाट-प्रान्त मे सौभाग्यसूचक सिन्दूर का बिन्दु स्वय अपनी मर्यादा को खो देता है उसी प्रकार आप के प्रति प्रयोग किया जाने वाला राजन् शब्द भी अपनी प्रतिष्ठित मर्यादा को खो बैठा है। जब राज्याधिकार न रहा, जब राज्य का सिहासन विरोधी दल के अधिकार मे चला गया, जब शत्रुओ के नेता का राज्याभिषेक कर दिया गया तब फिर रिक्त पात्र के समान भयानक रूप से झनझनाने से लाभ क्या है? मानता हूँ कि हम सब मन्त्री वही है और यह भी मानता हूँ कि हम सबो की बुद्धि तथा प्रतिभा आज तक अपने स्थान पर अपना प्रभाव प्रदर्शित करने मे समर्थ है, किन्तु जिस निर्मल दर्पण पर वह प्रभाव प्रतिबिम्बित होता था अब वह दर्पण अपनी निर्मलता खो चुका है।"

इस प्रकार उत्कर्ष ने शङ्का उपस्थित की। उसकी शङ्का का समाधान करते हुए नोनक ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—"आज प्रात काल के समय मैंने आपको जो सलाह दी थी उसे आपने नही माना। इस अनीतियुक्त आचरण के कारण अब आपको जो आपत्ति भोगनी पडेगी उसे ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा कीजिए।"

"आपने कारागृहवासी हर्षदेव को जूठा खाने वाले मनुष्यो के अधीन कर रखा था। वह अब आपको चाण्डालो के अधीन करेगा। अब तो आपके लिए मरने के अतिरिक्त दूसरा कल्याण-कारक उपाय नही है परन्तु युद्ध समाप्त हो जाने के कारण वह मार्ग भी बन्द हो चुका। आपका शत्रु आपको अधिक से अधिक कष्ट अवश्य देगा। इतना ही नही, हम लोगो की भी अत्यन्त दुर्गति करेगा तथा हमारे पराजय के मर्मभेदक कटु फल का भी हमे अनुभव करायेगा। घातक परिणाम की ओर ध्यान न देकर हमारे द्वारा प्रयोग मे लाया गया उपाय हमारे सर्वनाश का कारण बन गया है। अतिजीर्ण वस्त्र को सीकर चाहे कितना ठीक किया जाये तो भी वह सैकडो स्थानो से फट जाता है। उसी प्रकार छोटे से प्रमाद से उत्पन्न होने वाले दोष को सुधारने का का प्रयत्न करने पर भी अधिक बिगाड हो जाता है।"

इस प्रकार नोनक मन्त्री की बातो को सुनकर उत्कर्ष उन सब लोगो के बीच से उठकर अपनी प्रियरक्षिता सहजा के साथ अन्दर के भाग मे चला गया और वहाँ उसने सहजा से "मैं सन्ध्या-वन्दन के लिए एकान्त मे बैठता हूँ" ऐसा कहा तथा अकेला पर्दे के अन्दर प्रवेश कर गया। उस समय उसके पास कोई अस्त्र-शस्त्र नही था, फिर भी उसने कपडा काटने की एक बडी कैंची लेकर उससे अपने गले की रक्तवाहिनी नसो को काट डाला। कैंची के गिरने के शब्द से सहजा के मन में शका उत्पन्न हुई और इतने मे ही उसने पर्दे के नीचे से रक्त की धारा को बहते हुए देखा।

वह तुरन्त पर्दे के भीतर चली गई। वहाँ जाकर देखती है कि जिस प्रकार वज्रपात होने से मध्य भाग के भग्न हो जाने के कारण धातु-राग के प्रवाह से युक्त पर्वत की चोटी दिखाई पडती है उसी प्रकार बहते हुए रुधिर-प्रवाह से युक्त उसकी विशाल ग्रीवा दिखाई पड रही है। इस भयानक दुर्घटना को देखकर उस सहजा ने उस समय जो आचरण किया उससे पतिभक्ति-परायणा ललनाओ के मस्तक सर्वदा के लिए उन्नत हो गये। चन्द्रमा को क्षीण होते देख रात्रि उसका साथ छोड देती है परतु सन्ध्या अस्त हो जाने वाले सूर्य के पद का अनुसरण करती है। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्यो को 'प्रेम मे परिवर्तन का सम्भव अन्तिम समय हो सकता है' ऐसा सोचकर स्त्रियो को नितान्त निन्दा के योग्य अथवा वन्दना के योग्य नही कहना चाहिए।

कुल तथा प्रियतम के प्रेम मे कय्या तथा सहजा दोनो समान होकर भी एक तो निन्दा के योग्य और दूसरी सर्वथा वन्दना के योग्य हुई। कय्या के समान सहजा भी देव-मदिर मे नृत्य करनेवाली देवदासी थी। उसे नाट्य-मडप मे राजा उत्कर्ष ने देखा था और उसके सौन्दर्य से मुग्ध होकर अन्त पुर मे उसे रख लिया था। उसने अपने प्रियतम के रक्तरूपी गैरिक से अपने शरीर पर अङ्गराग का लेपन किया और प्रेममय अन्तःकरण से अग्नि मे प्रवेश करके सुवर्ण के समान अपने प्रेम को उज्ज्वल और निष्कलक सिद्ध कर दिखाया। पहिले जब वेश्या थी तब उससे हर्ष-देव भी प्रेम करता था, इसलिए उसने उसे अग्नि मे प्रवेश करते समय मना किया था, परतु उसने नवीन राजा हर्षदेव के अनुनय की तनिक भी पर्वाह न कर अपने मरण के निश्चय को नही छोड़ा।

जिस समय उत्कर्ष की मृत्यु हुई थी उस समय उसकी अवस्था केवल चौबीस वर्ष की थी। उसने केवल बाईस दिन तक राज्य किया। उसका शव रात भर उसी प्रकार पड़ा रहा और दूसरे दिन प्रातःकाल उसका अग्नि-संस्कार किया गया। उसकी चचल नेत्रवाली पत्नियाँ लोहर प्रान्त मे रहती थी। उनमे से कुछ ललनाओ ने अग्नि मे प्रवेश करके शीघ्र ही पति के समागम का सुख प्राप्त कर लिया।

५ राजा हर्षदेव की कथा

ऊपर वर्णन की गई घटनाओ के बाद राजा हर्षदेव के सेवक जिस समय उत्कर्ष के मन्त्रियो के शस्त्र छीनने लगे उस समय परम स्वाभिमानी मत्री नोनक ने अपने प्राणो की पर्वाह न करते हुए उन्हे शस्त्र नही दिया। उसके उस व्यवहार को देखकर उसी के पक्ष के मत्री प्रशस्त-कलश ने उसे समझाते हुए कहा—"हम लोगो को छोडकर राजा हर्षदेव को मत्रणा देनेवाला दूसरा कोई योग्य पुरुष नही मिलेगा। इसलिए कुछ दिन बीत जाने पर वह स्वयं हम लोगो को छोड देगा। ऐसी दशा मे बुद्धिमान होकर भी आप अपने प्राणो की उपेक्षा क्यो कर रहे है ?" ऐसा कहकर उसने उससे शस्त्र दिला दिया और अपना भी शस्त्र बिना किसी सकोच के दे दिया।

उसके बाद राजा हर्षदेव ने नोनक, सिल्हार, भट्टार तथा प्रशस्तकलश आदि मन्त्रियो को हथकड़ियाँ और बेडियाँ पहिना कर कारावास मे भेज दिया। इस प्रकार दैव के समान विलक्षण घटना को सघटित करने वाले उस राजा हर्षदेव ने एक ही दिन मे अत्यन्त अद्भुत राज्य-परिवर्तन कर डाला। हमारी इस कथा मे यहाँ तक बहुत से राजाओ का भला-बुरा वर्णन प्रसग के अनुसार किया जा चुका है परन्तु अब दुर्भाग्य से बुद्धि के सामर्थ्य से बाहर ऐसा विषम प्रसग उपस्थित हो गया है कि इस हर्षदेव की कथा मे सब प्रकार के उत्तम प्रयत्नो के उदय और उन समस्त प्रयत्नो की निष्फलता का वर्णन करना पड़ेगा, जिसमे पाठको को सब प्रकार की सुव्यवस्था का निश्चय तथा उस निश्चय मे सब प्रकार की राजनीति का अभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगा।

इस कथा-प्रसग मे अत्यधिक शासन की चमक तथा अत्यधिक शासन के उल्लघन से उत्पन्न होनेवाली दुर्व्यवस्था तथा हानि के आभास का स्पष्ट वर्णन किया जायगा। इसी प्रकार राजा हर्षदेव की कथा अत्यधिक उदारता से युक्त तथा दूसरे के धन को अपहरण करने की पराकाष्ठा से परिपूर्ण है। इस कथा-प्रसग मे कारुण्य की अधिकता का सौन्दर्य तो है ही, साथ ही साथ हिंसा के उद्रेक के कारण भयकरता भी विद्यमान् है। इतना ही नही, धार्मिक सत्कर्मों की अधिकता से यह कथा लालित्ययुक्त है और पापमय आचरणो के बाहुल्य से कलकित भी है।

राजा हर्षदेव की यह कथा स्पृहणीय (सुनने की इच्छा करने योग्य) है, और वर्ज्य भी है। वन्दना के योग्य होने पर भी सर्वथा निन्दा के योग्य है। बुद्धिमान् मनुष्यो की दृष्टि मे कौतुकप्रद होकर उपहासास्पद है और कमनीय होकर भी शोचनीय है। यह वाछनीय है और अपकीर्ति के योग्य भी है तथा स्मरण रखने के योग्य होते हुए भी त्याग करने के योग्य है। इस प्रकार की विशेषताओ से युक्त कथा का अब वर्णन किया जायगा।

राजा हर्षदेव का निर्माण अवश्य तेजपूर्ण परमाणुओ से किया गया था अन्यथा वह बड़े-बड़े प्रतिभाशाली मनुष्यो को भी सूर्य के समान तेजस्वी तथा दुष्प्रेक्ष्य (कठिनाई से देखा जाने

वाला) कैसे मालूम होता ? हर्ष के समान तेजस्वी न तो मनुष्यो मे मिल सकता है और न देवताओ मे। यदि विद्वान् अनुसन्धान करेंगे तो दानवेन्द्रो मे कदाचित् उसकी समानता करने वाला कोई व्यक्ति मिल सकेगा।

उसके कानो मे सूर्य के समान जाज्वल्यमान् कुण्डल सुशोभित होते थे। वह बड़ी ऊँची पगडी पर उन्नत मुकुट धारण करता था। उसकी तेजपूर्ण दृष्टि प्रसन्नसिंह के समान थी तथा उसकी लम्बी और सुन्दर दाढी मुख की शोभा बढाती थी। उसके कन्धे वृषभ के समान पुष्ट थे और बडी-बडी भुजाएँ थी। शरीर का रङ्ग श्यामता लिए हुए रक्त वर्ण का था। उसका वक्षस्थल विशाल था और मध्य भाग पतला था। मेघो की गर्जना के समान उसके शब्द गम्भीर थे। इन समस्त विशेषताओ के कारण बडे-बडे अतिमानुष-सत्वशाली पुरुषो की भी प्रतिभा उसके आगे कुण्ठित हो जाती थी।

वह प्रार्थना करने वालो की वातो को स्वयं सुनना चाहता था। अपनी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए उसने राजभवन की चारो दिशाओ के चारो सिंहद्वारो पर चार बडी-बडी घटाएँ बँधवा दी थी और जिस प्रकार चातको की आर्तवाणी को सुन कर वर्षाकाल के बादल उनकी तृष्णा को शान्त करते हैं उसी प्रकार राजा हर्षदेव भी प्राथियो की करुण पुकार को सुनकर उनके दु खो को दूर कर देता था।

उसके आनन्दपूर्ण राजभवन मे सुन्दर एव विचित्र वस्त्रो से रहित तथा सुवर्ण के अलकारों से शून्य तथा अल्प सेवको वाला कोई नही दिखाई पडता था। असख्य मनुष्यो से घिरे हुए राजा हर्षदेव के राजभवन के सिंहद्वार पर समस्त देशो की सम्पत्तियो के समूह पडे दीखा थे। इसी प्रकार उसने राजभवन मे सुवर्ण के कगन तथा सुवर्ण के ग्रैवेयक (कठे) अलकारो को धारण किये हुए मन्त्री, प्रतीहार तथा सामन्त आदि राज-कर्मचारी इधर-उधर भ्रमण करते हुए दृष्टिगोचर होते थे।

इस प्रकार नवीन साम्राज्य के लाभ से सुशोभित एव प्रताप से जाज्वल्यमान् वह राजा अपने गुरु के समान आदरणीय विजयमल्ल की सम्मति के अनुसार राज्य-शासन का कार्य करता था। वह राजा कृतज्ञता के वशीभूत होकर विजयमल्ल के वचन को आदरपूर्वक मानता था। इसलिए उस विजयमल्ल की सभा मे भी सेवको की भीड सर्वदा बनी रहती थी।

उस राजा ने प्राचीन व्यवस्थाओ को सुचारु रूप से सुरक्षित रखने के लिए अपने पिता के समय के अनुभवी मन्त्रियो को ही अधिकार दिये थे। वह अपने नवीन सेवको के मत क अनुगामी नही बना। उसने कन्दर्प तथा मदन को क्रमश द्वाराधिकारी और कम्पनेश के पद पर नियुक्त किया। इसके बाद विजयसिंह आदि पहले जिन-जिन पदो पर कार्य करते थे, उन्ही-उन्ही पदो पर पुनः नियुक्त किये गये।

जब क्रोध पूर्ण रूप से शान्त हो गया और राज्य-शासन-सम्बन्धी कार्य सुव्यवस्थित हो गये तब उसने प्रशस्तकलश आदि को कारावास के बन्धन से मुक्त कर दिया तथा मुक्त किये जाने पर उनके व्यवहारो से सन्तुष्ट होकर उन्हे भी योग्य कार्यों पर नियुक्त कर दिया। परन्तु नोनक मन्त्री तथा धात्रेय भ्राता के अनन्त अपकारो को वह न भूल सका अतएव उन्हे न तो कारावास के बन्धन से मुक्त किया और न क्षमा प्रदान करने पर ही विचार किया, प्रत्युत् भयकर विद्रोही समझ कर उन दोनो को सूली पर चढा दिया। जब वे दोनो अपनी नरलीला समाप्त कर चुके

तब समय-समय पर महत्वपूर्ण कार्यों में तथा संकट से अवसर पर राजा हर्षदेव बुद्धिमान् और स्वामिभक्त नोनक को स्मरण कर पश्चात्ताप किया करता था।

अपकार करने वाला भी योग्य पुरुष किसी समय उपयोग मे आ सकता है, क्योंकि घर को जला देने वाली आग पर भी क्षुधा-निवारण करने के लिए भोजन पकाया जा सकता है। राजा हर्षदेव के सेवको ने विश्शावट्ट को पकड लिया और फिर उसी की पत्नी के सामने उसके नाक-कान काट लिए। इतने पर भी उनका क्रोध शान्त न हुआ तो उन सबो ने उसे सूली पर चढ़ा दिया।

जिस प्रकार वसन्तकाल मे फूला हुआ वृक्ष धरती के भीतर से, पहाड की कन्दराओ से अथवा वृक्षो के कोटर से निकली हुई काले रगवाली मधुमक्षिकाओ का विना किसी विरोध के पालन करता है, उसी प्रकार राजा हर्षदेव ने अपनी उन्नति के समय मे कारावास से मुक्त हुए अपने सेवको को अपने प्रवल भाग्योदय के हिस्सेदार वनाया अर्थात् उनका यथोचित आदर-सत्कार करते हुए उन्हे प्रसन्न करने के लिए उत्तमोत्तम पारितोषित दिये। रक्क के वंशज क्षेम के पौत्र तथा वज्र के पुत्र सुन्न और उसके भ्राता को राजा हर्षदेव ने अमात्य वर्ग मे प्रमुख अर्थात् प्रधान वनाया।

राजा हर्षदेव के समस्त मन्त्री वडी ठाठ-वाट के साथ रहा करते थे। राजा की तुलना मे उन सबो की शान किसी अश मे कम न थी। इसीलिए जब वह राजा अपने राज मे मन्त्रियो को साथ लेकर निरीक्षण के लिए पर्यटन करता था, उस समय उत्तम वेश तथा अलंकारो से भूषित मन्त्रियो को देखकर देखनेवालो के मन मे उनके राजा होने का भ्रम होने लगता था, अर्थात् देखनेवाले प्रत्येक मन्त्री को उसकी शान से उसको राजा समझने लगते थे।

राजा हर्षदेव अपने कनिष्ठ भ्राता जयराज को अपने प्राणो से भी अधिक प्रिय समझता था। उसने उसे सम्पूर्ण प्रतीहारो का अध्यक्ष वना दिया था। तन्वग का पुत्र धम्मट अपने दोनों भ्राताओ की मृत्यु के वाद उनके उपकार के ऋण से मुक्त होने के लिए गंगाजी की यात्रा करने चला गया था। कुछ दिन वीत जाने पर वह अपने भतीजो को साथ लेकर काश्मीर देश में वापस आ गया था। उसके वडे भाई ने अपने प्राण दे दिये थे, इस बात को सोचकर राजा हर्षदेव ने धम्मट तथा उसके भतीजो को अत्यधिक सम्मान प्रदान दिया।

इस प्रकार अपने भाग्योदय के कारण प्राप्त की गई राज्य-लक्ष्मी का वन्धु-वान्धवों, मित्रो, सहायको तथा अन्य योग्य पुरुषो मे विभाग करके राजा हर्षदेव राज्य का उपभोग करने लगा। किन्तु फिर भी खल स्वभाव वाले पुरुषो ने उसके सुखभोग मे विघ्न पहुँचाने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। उन सबो की प्रेरणा से विजयमल्ल के मन मे राजा हर्षदेव के प्रति विद्वेष उत्पन्न होने लगा और परिणाम यह हुआ कि वह विजयमल्ल राजा हर्षदेव के साथ द्रोह करने के लिए तैयार हो गया।

उसके मानसिक भावो को समझ लेने के वाद उसे राजा हर्षदेव के प्रति अधिक उत्तेजित करने के लिए उन खल पुरुषो ने उससे कहा, "आपने-अपने वाहु-वल से इस राज्य को जीता था। काश्मीर देश का राज्याधिकार आपको ही प्राप्त होना चाहिए था किन्तु आपकी भाग्यहीनता ने वैसा न होने दिया। यदि यह विचार मानने के योग्य नही है तो हम यह जानना चाहेगे कि आपने इस राज्य को जीतकर दूसरे के अधीन क्यो कर दिया?" उन खल पुरुषो के इस कुतर्क

का प्रभाव विजयमल्ल पर ऐसा पडा कि फिर से राज्य को प्राप्त करने के लिए उसने अपने ज्येष्ठ भ्राता हर्षदेव को मार डालने का विचार किया।

अपने इस मन्द अभिप्राय को पूर्ण करने के लिए उसने उसे अपने घर पर बुलवाने का निश्चय किया और उसी निश्चय के अनुसार यज्ञ के बहाने हर्षदेव को अपने घर पर प्रीति-भोज के लिए निमन्त्रित किया। उसका वह घातक विचार राजा हर्षदेव को भी विदित हो गया था। इसीलिए उसने अपने ऊपर आक्रमण होने की आशका से स्वय की रक्षा के लिए अपनी सेना को तैयार कर लिया था।

जब विजयमल्ल ने यह देखा कि राजा के सैनिक पूर्ण रूप से तैयार हो रहे हैं तब शीघ्रता से बाहर निकल कर राजा की अश्वशाला से उसने अश्व हरण कर लिये। जिस समय वह अश्वो को हरण कर लिये जा रहा था उस समय राजा के सैनिक उस पर प्रहार करने लगे। उस वीर ने तुरन्त उन पर आक्रमण कर दिया और भयकर युद्ध करते हुए वह विजयमल्ल नगर से निकल जाने का प्रयत्न करने लगा।

उस समय उसकी स्त्री उसी के पीछे उसे पकडे हुए घोडे पर सवार थी। विजयमल्ल ने उस दशा मे भी अपना शौर्य प्रकट करते हुए अतिमानुष संग्राम किया। उसी समय असामयिक जल-वृष्टि होने लगी और संपूर्ण पृथ्वी धारा-सम्पात से आच्छादित होकर विपर्यस्त-सी सर्वत्र दिखाई पडने लगी। उस संग्राम मे झझावात का शब्द सैकडो रण-दुन्दुभियो के नाद के समान हो रहा था और वह विजयमल्ल जल-वृष्टि तथा बाण-वृष्टि से आच्छादित हो रहा था।

उसके वीर सैनिक क्रमश हतोत्साह और कम हो रहे थे। जिस प्रकार समस्त प्राणियो को उनके पूर्व कर्म नही छोडते उसी प्रकार चण्डक के पुत्रो ने उसको मार डालने के उद्देश्य से उसका पीछा करना नही छोडा। भागते-भागते विजयमल्ल वितस्ता एव सिन्धु के सगम पर पहुँच गया था। उस समय उन दोनो नदियो मे बाढ आ रही थी इसलिए पुल टूट गया था, इतने पर भी वह परम साहसी वीर अश्व से उतर पडा और फिर पत्नी के जीवन की रक्षा करते हुए अपनी विशाल भुजाओ की सहायता से नदी के पार पहुँच गया। वह अत्यधिक साहसी तथा बलवान था, इसलिए ऐसे सकट-काल मे पत्नी को साथ लेकर नदी मे कूद पडा था उसके बाद उसका अश्व भी उसके पीछे तैरकर नदी के पार पहुँच गया।

सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि वह वीर अपने समस्त शत्रुओ के देखते-देखते अश्व पर बैठकर लहर के मार्ग से दरद देश की ओर चल पडा। यद्यपि द्वारपति कन्दर्प ने उसके जाने के सभी रास्ते रोक रक्खे थे तथापि वह किसी भी रुकावट की पर्वाह न करके एक विकटतम पर्वतीय मार्ग से पर्वतो को लांघकर, सभी ओर से पर्वतो द्वारा घिरी हुई दरद-पुरी मे पहुँच गया।

वहाँ के शासक राजा विद्याधर शाही ने उसका स्वागत-सत्कार किया। कुछ समय के बाद वहाँ पर उसके बहुत-से परिजन लोग आ पहुँचे। उसके बाद डामर लोग भी उससे मिल गये। उन सबो के मिल जाने से विजयमल्ल मे पुन नये उत्साह का सचार हुआ। उसने काश्मीर देश मे उपद्रव करने का निश्चय एक बार फिर किया और समय-समय पर राज्य की सीमा पर उपद्रव भी करने लगा था। विद्रोही विजयमल्ल को उपद्रव करते देख राजा हर्षदेव को बडा आश्चर्य होने लगा। इसके बाद वह राजा भी उसको दबाने की योजना करने लगा, परन्तु उसकी वह योजना सर्वथा निष्फल हुई।

जब तक शीतकाल के दिन अपने प्रभाव से संसार को कँपाते रहे तब तक विजयमल्ल दरदपुर मे ही बना रहा। उसके बाद सहायक डामरो ने उसे आमन्त्रित किया। उनके निमंत्रण को स्वीकार कर वह विजयमल्ल बडे अभिमान के साथ विजय-यात्रा के लिए चैत्र मास मे रवाना हुआ। वह स्वाभिमानी राजपुत्र अनेक प्रकार के सकटो से उत्तीर्ण होकर जीवन मे सफल हुआ था परन्तु जब दुर्भाग्य के दिन आते हैं तब प्राणियो की जो दशा होती है, वही दशा उस वीर विजयमल्ल की भी हुई। विजय-यात्रा मे चलते-चलते वह एक स्थान पर पट-मण्डल (तम्बू) मे ठहरा था। वहाँ अकस्मात् असमय मे हिम-वृष्टि होने लगी। इसीलिए उसे वही असमय मे मृत्यु के अधीन होना पडा।

जिस कार्य के उल्लास के लिए साहसी लोग महान् प्रयत्न करते है, विधाता का निर्मम विधान उसको छोटी-सी घटना के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। महातेजस्वी सूर्य अपनी सहस्र किरणो से जिन कमलो का उन्मीलन करता है, उन्ही कमलो को विधाता प्रतिकूल होते ही किसी एक हाथी के एक मात्र कर (सूँड) से उन्मूलित करा डालता है।

इस प्रकार द्वैराज्य की आशका से अर्थात् दो राज्यो की स्थापना होने की आशका से हर्षदेव का राज्य-वैभव कुछ समय तक सकुचित-सा हो गया था, परन्तु विजयमल्ल की मृत्यु के बाद फिर से उसका वह राज्य-वैभव उत्कर्ष को प्राप्त होने लगा। उसके शासन-काल मे 'राज' शब्द हर्ष के अतिशय उग्र होने के कारण तथा अन्य राजाओ मे नि सत्त्वता होने के कारण कही भी उचित अर्थ मे आरोपित नही हो सकता था, अर्थात् हर्षदेव का स्वभाव आवश्यकता से अधिक तीक्ष्ण था, इस लिए "रञ्जयति लोकान् इति राजा" इस अर्थ वाले 'राज' शब्द का उस पर आरोप नही किया जा सकता था और अन्य राजा लोग तृण के समान सारहीन थे, इसलिए उन्हे भी राजा नही कहा जा सकता था, अत उस समय 'राज' शब्द का आरोप कही भी उचित अर्थ मे नही कर सकते थे।

प्राचीन समय मे काश्मीर-राज्य के अन्तर्गत राजा के अतिरिक्त सभी लोग अपने बालों को खुले रखते थे। कोई भी अपने मस्तक को पगडी से अलकृत नही करता था। किसी के भी कानो मे कुण्डल नही दिखाई देते थे। कम्पनाधिपति मदन ने अपने बालो को सँवार कर उन्हे गूँथ लिया था तथा प्रधानमन्त्री जयानन्द ने चमकता हुआ रंगीन तथा सुन्दर अंगरखा पहिना था। इसलिए इन दोनो को राजा हर्षदेव का कोप-भाजन बनना पडता था। परन्तु उदार स्वभाव वाले राजा हर्षदेव ने इस सकुचित प्रथा का अत कर डाला और राजोचित वेष धारण करने के लिए सर्वसामान्य अधिकार प्रजाजन तथा राजकर्मचारियो को दे दिया।

फिर भी थोडे-से ऐसे अमात्य थे जो सुन्दर वेष और अलकारो से अपनी सुन्दरता को दर्शनीय बनाने का नित्य प्रयत्न किया करते थे। उनके उस शोभावर्द्धक वेष और अलकारो से युक्त सजावट को देखकर वह राजा हर्षदेव बडा प्रसन्न होता था और उन सबो की कुछ भी आलोचना न करके बडे ही गभीर भाव से दासियो के द्वारा उनकी आरती उतरवाता था तथा इस प्रकार उनका स्वागत-सत्कार कर उन्हे योग्य आसन पर बैठाता था।

वह बड़ा ही रसिक था। उसे दक्षिणात्य के रहने वाले मनुष्यो की पद्धति अधिक पसद थी। इसलिए उसने कर्णाटकी ढग के गोल टक चलाये थे। उसकी राजसभा मे कर्णाटक देश की प्रथा के अनुसार ताड़ के पखो से हवा की जाती थी। प्रत्येक सभासद् के ललाट पर बड़े-बड़े चन्दन-तिलक शोभायमान् होते थे और सुन्दर तथा लम्बी लम्बी छुरियाँ वे कमर मे बाँधते थे।

उस राजा के समीप सर्वदा रहने वाली चंचल भृकुटि-भूषिता ललनाएँ पीठ पर से लटकी हुई लम्बी-लम्बी गूँथी हुई सुन्दर वेणियो पर पुष्पो की मालाएँ लटकाया करती थी। उनके ललाटो पर अलकारो से मण्डित केशो की लटें शोभायमान् होती थी। उनके अपाग से लेकर कर्ण-प्रान्त तक अजन की रेखा विराजमान् होती थी जो चंचल स्वभाव वाले खजनो की समता कर सकने का सामर्थ्य रखती थी।

उन समस्त ललनाओ की वेणी के अग्रभाग मे सुवर्णमय जरी के गुच्छे लटकते रहते थे और उनके अधराम्बर अर्थात् लहँगो के नीचे का भाग पृथ्वी तल को स्पर्श करता था। उनके पयोधर आधी बाँह की कंचुकी से आच्छादित रहते थे और उनका हास्य कर्पूर-रज के समान धवल था। वे चचल भृकुटी के विलास को प्रदर्शित कर भ्रमण किया करती थी। यदि वे समस्त चचल नेत्र-वाली ललनायें पुरुष के वेष को धारण कर लेती तो ससार के प्राणि-मात्र को व्याकुल करने वाले साक्षात् कामदेव के समान दीखने लगती।

जिस प्रकार समुद्र से प्रणय करने के कारण मेघ समग्र ससार को जल प्रदान कर आनन्द-दायक होने का गौरव प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार राजा हर्षदेव के समीप आने वाले याचकगण अन्य याचको के मनोरथो को पूर्ण करने के योग्य बन जाते थे। उस अत्यन्त उदार तथा स्वर्ण की वृष्टि करने वाले राजा के परम अनुग्रह से धनवान् होने वाले गायक और वादक अपने अपूर्व ठाठ-बाट से राजाओ के साथ स्पर्धा करने के योग्य बन गये थे।

वेह राजा स्वयं समस्त विद्वानो मे सर्वश्रेष्ठ था फिर भी उसने बडे-बडे विद्वानो को रत्नो तथा अलकारो से भूषित किया था और पालकी, रथ, छत्र आदि बहुमानसूचक वस्तुएँ अर्पण की थी। विल्हण कवि राजा कलश के शासन-काल मे काश्मीर देश को छोडकर कर्णाटक देश के राजा परमार्डी के पास चला गया था। राजा परमार्डी ने उसे अपनी राजसभा मे विद्यापति के पद पर नियुक्त कर उसको अत्यधिक सम्मानित किया था।

इसके अतिरिक्त कर्णाटक देश के पर्वतीय प्रदेशो मे हाथी की सवारी पर बैठकर भ्रमण करते समय राजा के सम्मुख छत्र धारण करने का सम्मान केवल कवि विल्हण को ही प्राप्त हुआ था। इतना सब होने पर भी जिस समय उसने राजा हर्षदेव की उदारता और कवियो के साथ बन्धुत्व स्थापित करने की कीर्ति को सुना उस समय उस विद्वान् कवि के निकट कर्णाटक-नरेश परमार्डी का समस्त ऐश्वर्य तुच्छ-सा प्रतीत होने लगा।

राजा हर्षदेव की अनेक राजधानियो मे बहुत से गगनचुम्बी तथा शिखर-प्रदेश मे सुवर्णा-मलको (सोने के बने हुए आँवलो) से विभूषित राजभवन देखने वालो के हृदय मे अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न करते थे। तात्पर्य यह कि वे सब ससार की अद्भुत् वस्तु माने जाते थे। उस राजा ने जो उपवन तैयार कराये थे, वे सब देवताओ के राजा इन्द्र के नन्दनवन से स्पर्धा करने की पूर्ण योग्यता रखते थे। वह अपनी दानशीलता से समस्त कल्पवृक्षो को लज्जित करता था। इसीलिए उन समस्त उपवनो मे भिन्न भिन्न प्रकार के आनन्दवर्द्धक वृक्षो के रहने पर भी कल्प वृक्ष नही रहते थे। उस राजा ने एक परम मनोहर सरोवर भी बनवाया था। उसके आस पास भिन्न-भिन्न रग, आकार और स्वभाव वाले खग और मृग नित्य बने रहते थे। वह सरोवर बडा विशाल और अगाध जलराशि से सर्वदा परिपूर्ण रहता था।

राजा हर्षदेव जितनी विद्याओ को जानता था उतनी विद्याएँ उस समय का दूसरा कोई

मनुष्य नहीं जानता था। जानना तो दूर रहा, नाम तक भी बता सकना कठिन था। सच बात तो यह थी कि उन समस्त विद्याओं के नामों को जान लेना वृहस्पति के भी सामर्थ्य के परे था। संगीतमय काव्य का निर्माण करने वाले उस हर्षदेव के गीति-काव्य को सुन कर आज भी उसके शत्रु-लोग तक अपने नयनों से, अश्रु-बिन्दु गिराने लगते हैं।

वह राजा सर्वदा आनन्द और विलासमय जीवन व्यतीत करता था तथा दिन मे दो पहर सो लेता था और रात मे जाग कर सम्पूर्ण राजकार्य करता था। जिस समय वह राजकार्य करने के लिए राजसभा के मण्डप मे आसन ग्रहण करता था उस समय वह सभा-मण्डप असख्य दीपको के प्रकाश से जगमगाने लगता था। राजकार्य समाप्त कर लेने के बाद वह राजा वहाँ पर एकत्रित हुए समस्त विद्वान् पुरुषो के साथ शास्त्र-चर्चा, गीत और नृत्य आदि अनेक विनोद-पूर्ण साधनो से रातें बिताया करता था। उस राजसभा मे जब सम्भाषण बन्द हो जाता था तब केवल ताम्बूल-चर्वण करने के कारण उत्पन्न होने वाली तथा ललनाओ के केश-कलाप-स्थित शेफालिका (हरसिंगार) कुसुमो की मर्मर ध्वनि सुनाई पड़ती थी।

रात्रि के समय वह स्थान सभा-मण्डप के ऊपर लगे हुए शुभ्र वितानो के कारण बादलो से आच्छादित-सा जान पड़ता था। सभा-मण्डप मे असख्य दीपको के जलने से वह स्थान अग्निमय प्राकार से घिरा हुआ-सा दिखाई पड़ता था। सभी ओर सुवर्ण के दण्ड सुशोभित हो रहे थे, उनके कारण वह स्थान विद्युल्लता से युक्त-सा, खड्ग-समूहो से धूम्रयुक्त-सा, कमनीय कान्ताओ से, अप्सराओ से युक्त-सा, मन्त्रियो से सनक्षत्र-सा, विद्वानो से ऋषिगण-समेत-सा तथा गायको से गन्धर्व-मण्डित-सा सुशोभित होता था।

उस स्थान पर धनद और दण्डधर का निरन्तर निवास रहता था और दान तथा भय दोनो के लिए वह सभा-मण्डप क्रीडा-स्थान के समान था। इन्द्र से भी अधिक सम्पत्तिशाली उस राजा के सभा-मण्डप के सम्पूर्ण सौन्दर्य का वर्णन कर सकना किसी योग्य वाचस्पति की वाणी के ही द्वारा सभव हो सकता है। उस राजा के राज्य मे अधिकाश व्यवहार (लेन-देन) सोने के तथा चाँदी के दीनारो से हुआ करता था। ताँबे के दीनारो का बहुत कम उपयोग होता था।

सुन्न कुछ कारणो से धनहीन हो चुका था इसलिए उसका रहन-सहन साधारण मनुष्यो के रहन-सहन से भी कही अधिक गिरा हुआ था। उस पर विशेष अनुग्रह करके राजा ने उसको दण्डनायक का पद प्रदान किया था। उस पद को प्राप्त करते ही उसकी उन्नति पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। धन का अभाव नष्ट हो गया था, परन्तु ऐसे समय मे भी वह नीच मुष्टिपच (मुट्ठी भर अन्न खाकर जीवन धारण करने वाला अर्थात् कजूस) ही बना रहा, क्योकि उसके द्वारा बँधवाये गये जयवन, सूर्यामूलक तथा विजयेश्वर-क्षेत्र के मठ उचित धन-व्यय की व्यवस्था से शून्य होकर उसकी कृपणता की गवाही देते थे।

पट्ट की सम्पत्ति भूखे-प्यासे, रोगी, दुखी, दीन, अनाथ आदि आपत्तिग्रस्त मानवो के कष्ट-निवारण-कार्य मे लगाई जाने के कारण सर्वथा कृतार्थ अर्थात् पूर्ण रूप से सफल थी। इसी प्रकार धम्पक भी प्रतिवर्ष नन्दि-क्षेत्र मे सात दिन तक प्रभूत धन का व्यय कर न्याय-मार्ग से उपार्जित की गई अपनी सम्पदा को सफल करता था। याचको की असीम पीडा को नष्ट करने वाले उस राजा हर्षदेव ने कृष्णाजिन तथा उभयमुखी (थोडे ही दिनो मे प्रसव करने वाली) गौ आदि दोनो को देकर ब्राह्मणो की दरिद्रता से हीन बना दिया था।

शाही वंश की राजकुमारी महारानी बसन्तलेखा ने नगर मे तथा परम पवित्र त्रिपुरेश्वर-क्षेत्र मे मठ एव अग्रहार स्थापित किये। इस प्रकार उस समय उस राजा की राजसभा मे एक विलक्षण और अवर्णनीय माहेश्वरी कला का प्रादुर्भाव हो रहा था तथापि उस राजा का शासन-कार्य उदारतापूर्ण व्यवहार से युक्त नही कहा जा सकता। वास्तव मे बात यह थी कि वह राजा पुराने मन्त्रियो की तुलना मे नवीन मंत्रियो को अधिक प्रोत्साहन दिया करता था जिसका विषमय परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनो मे शनै-शनै पुराने मन्त्रियो के स्थानो पर नियुक्त किये गये नवीन मन्त्रियो का प्रभाव अधिक बढने लगा और वे प्राचीन मंत्रियो से विशेष रूप से द्वेष रखने लगे तथा सगठित प्रभाव से उन्होने राजा की बुद्धि मे भी एक प्रकार का विचित्र मोह उत्पन्न कर दिया। उन सबो ने अपने तर्क-वितर्क के शब्द-जाल मे ऐसा चमत्कार उत्पन्न कर दिया कि राजा बिना किसी तर्क के उन सबो के जाल मे फँस गया।

कुष्ठ रोग से पीडित हैं जिसके दोनो पैर ऐसा असमर्थ मयूर वेग से दौडने वाले बहुपाद अर्थात् अनन्तचरण सर्प को तुरन्त पकड लेता है और सहस्रपाद सूर्य को अनूरु (अरुण) चलाता है। बडे-बडे बलवान भी दुर्बल मानवो के द्वारा ठग लिये जाते हैं और असमर्थ लोग समग्र सामर्थ्य-शील अधिकारियों को सभ्रम मे डाल देते है, यह सब दैव का विचित्र खेल है। इसीलिए वह राजा हर्षदेव समस्त विद्याओ, सम्पूर्ण शास्त्रो और समग्र कलाओ मे निपुण होकर भी उन मूर्ख मन्त्रियो के द्वारा मोह-सागर मे गिरा दिया गया।

उसने अपने पिता के साथ की शत्रुता का प्रतिशोधन करने के उद्देश्य से पिता के द्वारा स्थापित किये गये मठ तथा नगर आदि स्मारक-चिह्नो को लूट कर नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। उस समय ऐसा कार्य करने मे वह तनिक भी सकुचित न हुआ। इतना ही नही, उसने अपनी उदारता की प्रशसा के आवेश मे आकर पिता के द्वारा लोभ के कारण किये गये महान् कोष-समूह का व्यय कर डाला और अभिमान के अधीन होकर अपने पिता का नाम "पापसेन" रख दिया।

महामोह के सागर में पडे हुए राजा हर्षदेव ने अपनी समस्त विवेचना-शक्ति खो दी थी। उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता अपने प्रभाव को प्रकट कर सकने मे असमर्थ थी। उसने अपने अन्त-पुर मे तीन सौ साठ शुद्ध शीलवाली प्रमदाएँ कही से लाकर रख ली थी। प्रत्येक प्रकार कीं स्त्रियों को अपने अन्त.पुर मे सर्वदा रखते हुए उस राजा ने केवल डोम तथा चाण्डाल घराने की स्त्रियो को ग्रहण नही किया था।

जिस समय वह राजा भोग-विलास और अभिमानपूर्ण कार्यों मे निमग्न था उसी समय भुवनराज ने गुप्त रूप से दुर्ग के रक्षको को उत्तेजित करके उनके सहयोग से लोहर-प्रान्त पर अधिकार स्थापित करने का विचार किया था। निश्चित किये हुए अपने विचार के अनुसार वह भुवनराज दर्पितपुर तक निर्विघ्न पहुँच गया था और वहाँ पर पहुँचते ही ज्यो ही उसने सुना कि द्वारपति कन्दर्प उसके विरुद्ध युद्ध करने के लिए उसके सम्मुख आने ही वाला है, त्यो ही वह आगे न बढ़कर वापस चला गया।

इसी प्रकार उस समय राजपुरी का शासक संग्रामपाल भी किसी कारण से दर्पोन्मत्त होकर राजा हर्षदेव के विरुद्ध हो गया था। द्वारपति कन्दर्प राजा के विरुद्ध उपद्रव करने वाले दुर्गरक्षको को दबाने का प्रयत्न कर रहा था, इसलिए राजा ने राजपुरी पर आक्रमण करने के लिए क्रुद्ध होकर दण्डनायक सुत्र को रवाना किया। वह बहुत बड़ी सेना अपने साथ लेकर

लोहर के मार्ग से जा रहा था, परन्तु उसे शीघ्र पहुँचना अत्यावश्यक था, फिर भी उसने अपनी अनुभवहीनता से लोहरकोट के पास के प्रदेशो मे डेढ मास व्यर्थ विता दिया। इसके बाद आषाढ मास के दिन समीप आ जाने से तथा शत्रु की अधिक प्रबलता को देखने के कारण वह डर गया और फिर वह आगे बढकर शत्रु पर आक्रमण करने का साहस न कर सका। युद्ध-सम्वन्धी विशेषता का अभाव अपना प्रभाव बडे विचित्र प्रकार से दिखाने के लिए आगे बढने लगा।

राजा हर्षदेव को भी उस प्रभाव ने अपने वशीभूत कर लिया। इस प्रकार जो न होना चाहिए था, वह भी हो गया। भूल तो दण्डनायक सुन्न ने की थी किन्तु उस पर किसी भी प्रकार का दोषारोपण नही किया गया किन्तु अपने कर्तव्य के पालन मे तत्पर द्वारपति कन्दर्प को ही राजा के उपालम्भ का एकमात्र पात्र वनना पडा। तव कन्दर्प ने राजपुरी की विजय किये विना अन्न न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की और राजा हर्षदेव के उपालम्भ से चिढ कर विना विशेष सामग्री के ही वहाँ से चल पडा। पहाडी प्रदेशो की कन्दराओ मे उसने पाँच दिन उपवास करके व्यतीत किये और छठे दिन वह वीर राजपुरी के समीप पहुँच गया। वहाँ से राजपुरी पहुँचने मे एक योजन का मार्ग वाकी था।

वहाँ पर से ही उसने शत्रु-पक्ष के सैन्य-वल का पता लगाया। उसे विदित हो गया कि शत्रु के पास का सैन्य-वल उसकी अपेक्षा कही अधिक है, फिर भी उसने शक्तिशाली शत्रु की सेना की तनिक भी पर्वाह न की और जिस प्रकार कदली के पल्लवो का मर्दन करते हुए सिंह कदली के वन मे प्रवेश करता है, उसी प्रकार उस द्वारपति कन्दर्प ने वीरतापूर्ण दर्प के साथ शत्रुओ के शस्त्र-समूहो को छिन्न-भिन्न करके राजपुरी मे प्रवेश किया।

दण्डनायक सुन्न के सैनिको मे से वुद्धराज के वश मे उत्पन्न हुआ अकेला सेनापति कुलराज ही उसके साथ उस नगरी मे प्रविष्ट हुआ था। उसने अपने अनुपम पराक्रम को प्रदर्शित करते हुए शत्रुओ के साथ घोर युद्ध किया था और अनेक शत्रु-सैनिको को ससार के वन्धन से मुक्त कर परलोक के मार्ग पर भेज दिया था। उसकी उन समय की वीरता और युद्ध करने की प्रणाली आश्चर्यजनक थी।

शत्रुसेना का सहार करते-करते वह राजपुरी के राजभवन के सम्मुख वाले आँगन मे पहुँच गया। शत्रु के सैनिको ने उसे पुन. घेर लिया। उसने वहाँ भी अपूर्व पराक्रम दिखाया किन्तु दैव के प्रतिकूल हो जाने के कारण वह वही शत्रुओ के द्वारा मारा गया और श्वेत छत्र के चिह्न से शत्रुओ ने उसे कन्दर्प ही मान लिया। उसके वाद दोपहर के समय वीरश्रेष्ठ कन्दर्प वीस-तीस योद्धाओ के साथ राजपुरी के राजभवन मे स्वय प्रविष्ट हुआ। उसके केवल तीन सौ पैदल सैनिको ने राजपुरी के राजभवन के सामने वाले मैदान मे शत्रुओ को पीठ न दिखाने वाले तीस हजार शत्रु-सैनिको को रोक रक्खा था।

उस युद्ध मे काश्मीर-निवासी दो सौ सैनिक मारे गये और चार सौ खश सैनिको को धराशायी होना पडा। इस प्रकार शत्रु की सेना के पराजित होने के वाद मृत वीरो के दाह-सस्कार के समय धधकती हुई चिताओ की अग्नि से वह युद्धभूमि मृत्यु की पाकशाला के समान दीखने लगी। इस प्रकार उस वीर-रत्न द्वारपति कन्दर्प ने अपने स्वामी के द्वारा अविचार तथा क्रोध के आवेश मे दिये गये उपालम्भ-रूपी वैताल को मास एव रुधिर समर्पण कर तृप्त कर दिया।

शत्रुओ को अपने हार जाने का बड़ा खेद हुआ। वे सब किसी गुप्त स्थानो मे जाकर एकत्रित हुए और विजय की अभिलाषा से पुनः युद्ध करने का विचार करने लगे। भिन्न-भिन्न प्रकार तर्क करते हुए उन सबो ने अपने-अपने हृदय मे नवीन उत्साह और साहस का सचार किया और जब एक पहर दिन शेष रह गया तब अकस्मात् कन्दर्प के ऊपर आक्रमण कर दिया। उनका वह आक्रमण बडा भयानक था। उस समय रक्षा के विचार से कन्दर्प ने उनके ऊपर ओषधियुक्त तैल से लिप्त वाण चलाये। उन वाणो के लगते ही शत्रुओ के वस्त्र जलने लगे और समस्त दिशाएँ प्रकाश से पूर्ण दिखाई पड़ने लगी।

इस चमत्कार को देख कर "यह आग्नेय अस्त्र को जानता है" ऐसा उन मूर्खों ने समझ लिया और अपने द्वारा किये गये पुन प्रत्याक्रमण की आलोचना करते हुए वे सब वहाँ से भाग गये। इसमे सन्देह नही कि भयकर सकट-काल मे भी महापुरुषो की धैर्यधारिणी बुद्धि को प्रगल्भता, प्रतिभा, ओज, प्रयोग की चतुरता तथा असभ्रम ये सब सदगुण कदापि नही छोडते। इसके बाद सूर्यास्त के समय राजधानी मे प्रवेश करते हुए कन्दर्प ने पुन राजभवन के बाहर के भाग को बहुत बड़ी सेना से घिरा हुआ पाया।

इस प्रकार की तैयारी देखकर वह फिर से युद्ध करने के लिए निकला परन्तु उसने भयकर रणाटवी को देखकर भय से अपने सैनिको को स्थगित करते हुए दण्डनायक सुन्न को आया हुआ सुना अर्थात् वीरश्रेष्ठ कन्दर्प को यह विदित हुआ कि यह सेना दण्डनायक की है, शत्रुओ की नही। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो अपने पक्ष के सैनिको को समर-भूमि मे गिरे हुए देखकर आवेश मे आकर उबल पड़ते है और कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो समरागण मे शत्रु-पक्ष के धराशायी वीरो को देखकर भयानक रूप से अपनी कायरता प्रकट करते हुए थर-थर काँपने लगते हैं। मानव-स्वभाव के इस विलक्षण अन्तर को कौन पहिचान सकता है ? चाहे कोई कितना ही अनुभवी क्यो न हो, अथवा मनोविज्ञान मे कुशलता क्यो न प्राप्त कर चुका हो तथापि इस स्थल पर उसकी भी प्रतिभा भ्रम मे पड जायगी।

उसके बाद कन्दर्प दण्डनायक के समीप गया। वहाँ जाकर देखता है कि वह भय से घबडाया हुआ है। किसी प्रकार उसमे साहस का सचार कर कन्दर्प अपने साथ उसे राजपुरी मे ले आया। उस समय उन दोनों के सम्बन्ध मे इतना ही कहा जा सकता था कि जिस प्रकार हंस के साथ स्पर्धा करने के लिए समुद्र के जल में गोता लगाने वाले कौए को डूबने से बचाकर हस बाहर निकालता है उसी प्रकार द्वारपति कन्दर्प ने दण्डनायक सुन्न के साथ वर्ताव किया।

जिस राज्य मे राजभक्त प्रजा का अभाव न हो, जिस राज्य की रक्षा के लिए असख्य सैनिक दिनरात प्रयत्न कर रहे हो, जहाँ पर नागरिको मे किसी भी प्रकार का मतभेद अथवा मनोमालिन्य न हो, और जो राज्य विपुल धनराशि से परिपूर्ण हो, ऐसे शत्रु-राष्ट्र मे इस प्रकार अपनी अपूर्व शूरता के प्रभाव से कन्दर्प के समान वीरवर के अतिरिक्त कौन प्रवेश कर सकता है।

उसके बाद कन्दर्प शरण मे आये हुए राजपुरी के राजा से कर लेकर एक महीने के ही भीतर अपने स्थान पर वापस आ गया। राजा हर्षदेव ने उसके सम्मुख जाकर उसका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। राजा के द्वारा किये गये उस प्रकार के स्वागत-सत्कार को देखकर दण्डनायक आदि राजकर्मचारियो के शिर मे पीडा होने लगी अर्थात् वे सब अपने मन मे द्वेष के वशीभूत होकर विशेष रूप से जलने लगे।

आनन्द नामक एक व्यक्ति परिहासपुर का व्यवस्थापक था। वह अत्यन्त दुष्ट और क्रूर स्वभाव का था। इसीलिए वहाँ के पारिषद्य ब्राह्मणों ने उसका नाम वातगट रखा था। बहुत से घूस खाने वाले मंत्रियों के अनुरोध से राजा हर्षदेव ने उसको वामन मंत्री के स्थान पर पादाग्र का अधिकार दिया था। वह द्वारपति के पद का इच्छुक था। इसलिए वीरश्रेष्ठ कन्दर्प के विरोधियों में वही सबका प्रधान था।

उसी समय लोहर प्रान्त में राजा के शत्रु बड़ी प्रबलता के साथ विद्रोह कर रहे थे। उन सबों का दमन कर सकना बड़ा कठिन कार्य समझा जा रहा था। जब राजा ने अपने मंत्रियों से उस सम्बन्ध में परामर्श करना चाहा तब आनन्द ने कहा, "महाराज! कन्दर्प के अतिरिक्त दूसरा कोई भी वीर इस कार्य के उपयुक्त नहीं है।" उसका कहना मानकर राजा ने तुरन्त कन्दर्प को वहाँ का मण्डलेश्वर बना दिया और शत्रुओं द्वारा फैलाये गये विद्रोह को शान्त करने के लिए भेज दिया। इस युक्ति से अपने अभ्युदय को चाहने वाले दुष्ट मंत्रियों ने मंत्रणा और पराक्रम से से सम्पन्न कन्दर्प को पशु के समान राजनीति के ज्ञान में शून्य उस राजा हर्षदेव के समीप से दूर हटा दिया।

जिन राजाओं में राजनीति का वास्तविक ज्ञान नहीं होता और जो पशुओं के समान विचारशून्य होते हैं वे झूठे और स्वार्थी मनुष्यों के कथन पर विश्वास कर लेते हैं तथा विद्वान् और उचित बोलने वाले मन्त्री को अपने निकट न रखकर "यह दूत का कार्य बड़ी उत्तम रीति से करेगा।" ऐसा समझकर बाहर भेज देते है तथा "आप्त-जनों के साथ विरोध हो जायगा" ऐसा सोचकर बुद्धिमान् मन्त्री का त्याग कर देते है और "यह अपना राज्य छीन लेगा" इस विचार से प्रबल सचिव को अपने यहाँ से हटा देते हैं। इन समस्त कार्यों का विषमय परिणाम यह होता है कि अन्त में इस प्रकार के राजाओं को जन्म भर पछताना पड़ता है और उनका सर्वनाश हो जाता है।

राजा हर्षदेव के आदेश को शिरोधार्य कर जब कन्दर्प काश्मीर से दूर देश को चला गया तब उसके ऊपर राजा का जो पुराना प्रेम था वह मुट्ठी में रखी हुई बालू की रेत के समान शीघ्र ही गलित हो गया और उचित अवसर पाकर कन्दर्प के विरोधियों ने राजा हर्षदेव से कहा "कन्दर्प पर कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए। यह सत्य है कि वह परम पराक्रमी और बुद्धिमान् है किन्तु राजहित में वह भयानक रूप से बाधक भी है। गुप्तचरों के द्वारा इस बात का पता लग चुका है कि वह उत्कर्ष के पुत्रों को ही लोहर प्रान्त का शासक बनाना चाहता है।"

इस बात को राजा ने सत्य मान लिया। बिना पूर्ण रूप से विवेचना किये ही उसने कन्दर्प को मार डालने का निश्चय कर लिया और उसी निश्चय के अनुसार मंत्री पट्ट तथा टक्क देश-निवासी असिधर को सेना के साथ रवाना किया। यह समस्त वृत्तान्त कन्दर्प को राजा के एक गुप्त पत्र से—जो कि भूल से उसके पास पहुँच गया था विदित हो गया। इसलिए उसे अत्यत दुःख हुआ और वह अपने समस्त आवश्यक कार्यों को छोड़कर विलम्ब तक आश्चर्य करता रहा।

पट्ट और असिधर जिस समय वहाँ पहुँचे उस समय कन्दर्प चौपड़ खेल रहा था। असिधर ने सेवक के समान उसके सामने जाकर उसे बन्दी बनाने के विषय में राजा के आदेश को सूचित किया और तुरन्त उसका हाथ पकड़ लिया। तब कन्दर्प ने अपना हाथ छुड़ाकर अँगूठे के अगले भाग को असिधर के हाथ पर रगड़ दिया। उस रगड़ से उसके हाथ की चमड़ी छिल गई और

वह उस पक्षी के समान जिसके पंख नोच लिये गये हों, विकल हो गया। फिर उस कन्दर्प ने सेवको के तारतम्य को न जानने वाले राजा तथा ऐसे राजा का आश्रित होकर अपनी दुर्दशा कराने वाले अपने आप को विशेष रूप से धिक्कारा। इसके बाद सामने खडे हुए पट्ट मंत्री से इस प्रकार के वचन कहे—

"राजा के द्वारा लिखे गये गुप्त पत्र से तथा उसके अनुसार कार्य कराने के लिए आनेवाले आप लोगो के व्यवहार से मेरे सामने का भ्रम दूर हो गया है। मैंने यह समझ लिया है कि महाराज को स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति नही है। वे दूसरो के परामर्श से ही कार्य करके अपने जीवन को धन्य बनाना चाहते है। इसलिए उनसे जाकर कह दीजिए कि वह मेरे कुटुम्ब के लोगो को सकुशल मेरे पास भेज दे। उन सबके आ जाने पर मैं इस कोट (किला) को छोडकर किसी दूसरे देश को चला जाऊँगा।"

उसके बाद राजा के द्वारा भिजवाये गये अपने परिवार के लोगो को साथ लेकर तथा शान्ति के साथ अपने अधिकार को छोडकर कन्दर्प वाराणसी को चला गया। उसने गया मे एक सामन्त को मारकर उसके स्थान पर दूसरे को नियुक्त किया और इस कार्य के द्वारा काश्मीर-देश के निवासियो को—जो कि गया-क्षेत्र मे श्राद्ध करने के लिए आया करते थे—श्राद्ध करते समय जो कर देना पडता था उसे बन्द करा दिया।

इसी प्रकार उस ओर सेना के साथ जाते हुए उस वीरश्रेष्ठ कन्दर्प ने मन्त्रियो को कष्ट देनेवाले डाकुओ के सरदारो का पूर्ण रूप से दमन कर उस मार्ग को निष्कण्टक कर दिया। वाराणसी मे भी एक बाघ को मारकर वहाँ के निवासियो को भय से मुक्त कर दिया और मठ-निर्माण आदि अनेक धार्मिक कार्यों के द्वारा उसने पूर्व दिशा के प्रदेश को सुशोभित कर दिया।

इस प्रकार कन्दर्प को काश्मीर देश से निकलवाकर दुष्ट मन्त्रियो ने अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया किन्तु थोडे ही दिनो मे वे पारस्परिक मत्सर के वशीभूत होकर आपस मे झगडने और राजा के कार्यों का नाश करने लगे। जिस प्रकार पर्याप्त आहार मिलने के कारण उन्मत्त हुए मेष (मेढा) अपने सीगो की खुजलाहट को मिटाने के लिए परस्पर टक्कर लेने लगते हैं और उनके उस टक्कर लेने के कारण बीच का खभा चकनाचूर हो जाता है उसी प्रकार परम स्वतन्त्रता के साथ निरन्तर कार्य करने के अभ्यास के कारण उद्दण्ड और दुर्दमनीय ईर्ष्या से व्याकुल होकर अपनी निर्मल बुद्धि खो देने वाले मन्त्री लोग जिस समय परस्पर झगडने लगते है उस समय अल्प काल मे ही राजा का विनाश हो जाता है। ईश्वर भी उस राजा की रक्षा करने मे समर्थ नही होता।

कुछ समय बीत जाने पर राजद्रोही और राज्याधिकार को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले तन्वग के पुत्र धम्मट ने राजा हर्षदेव की हत्या करने के लिए प्रयत्न करना आरम्भ किया। राजद्रोह के आक्षेप से स्वय को बचाने के लिए उसने "यह वेश्या का पुत्र है इसलिए राज्याधिकार पाने के लिए सर्वथा अयोग्य है। अत यदि इसके द्वारा राजा की हत्या करा दी जाय तो राज्य मुझको ही मिल जायगा।" ऐसा सोचकर राजा हर्षदेव के बन्धु जयराज को इस कार्य के लिए तैयार किया।

राज्याधिकार प्राप्त करने के मिथ्या प्रलोभन मे पडकर जयराज अपने आपको भूल गया। राजा हर्षदेव की हत्या करने के लिए वह बडे उत्साह से तैयारी करने लगा। सबसे पहले

उसने विलाव ग्राम के रहने वाले घातको को अपने पक्ष मे मिलाया और फिर राजा के अन्त.पुर की दो तीन रानियो को भी इस षड्यन्त्र मे सम्मिलित किया। परन्तु उन लोगो के उस दुष्ट निश्चय को कार्यरूप मे परिणत करने के पहिले ही सौभाग्य के प्रभाव से राजा ने धम्मट को बड़े सम्मान के साथ राजदूत बनाकर राजपुरी को भेज देने का विचार किया।

जिस समय धम्मट सहस्र मगल के घर पर उस मगलमय मुहूर्त की प्रतीक्षा मे निवास कर रहा था उस समय "अपना समस्त षड्यन्त्र व्यर्थ हो जायगा" ऐसी शका से व्याकुल होकर जयराज धम्मट के पास गया। दोनो मिलकर राजा की हत्या करने के सम्बन्ध मे गुप्त रूप से चर्चा कर रहे थे। उस समय उनकी परस्पर की बातचीत को दीवार की ओट मे खड़े हुए प्रयाग के एक सेवक ने सुन ली। वह तुरन्त प्रयाग के पास गया और बड़ी व्याकुलता के साथ समस्त बातो को कहकर शोक प्रकट करने लगा। उसे समझाकर प्रयाग राजा के समीप गया और अपने सेवक की बातो को कहकर चुपचाप खडा रह गया। विश्वासपात्र सेवक के कथन पर विश्वास कर राजा ने धम्मट को राजपुरी जाने से रोक दिया।

वश का विनाश होने के भय से राजा हर्षदेव ने कई दिनो तक इसका बदला नही लिया। उसने केवल आत्मरक्षा का पूर्ण रूप से प्रबन्ध कर लिया। उसी समय जयराज ने अपना षड्यत्र विफल होता हुआ देखकर पाज और वाज नामक शूर तथा प्रबल डामरो को बुलवा लिया। वे दोनो ही शमाला नामक ग्राम मे रहा करते थे। परन्तु उसके सेवको ने समस्त रहस्य प्रकट कर दिया और उसके चले जाने का समाचार भी राजा को सूचित कर दिया। उन सेवको के द्वारा समस्त घटना के वृत्तान्त को सुनकर राजा ने रात्रि मे ही चारो ओर रक्षको को नियुक्त कर दिया।

दूसरे दिन सवेरा होते ही धूर्त धम्मट वहाँ से जाने के लिये बाहर निकला और साथ मे जयराज को लेकर राजा हर्षदेव से मिलने के लिए चतुष्क मण्डप मे गया। वहाँ पर जाकर देखता है कि उस मण्डप के सभी द्वार बन्द हैं इसलिए धम्मट वहाँ से अपने भतीजे को और जयराज को साथ लेकर आस्थान-मण्डप मे पहुँच गया। जैसे ही वह वहाँ पर पहुँचा वैसे ही प्रयाग ने राजा के आदेश से उसके चारो ओर रक्षको को नियुक्त कर दिया और बड़े ही धीमे स्वर से धम्मट के के पास जाकर कहा "जयराज को तुरंत बाँध लो।"

उस बुद्धिमान् और राजकार्य-प्रवीण राजा हर्षदेव ने इस कार्य की योजना मे यही राज-नीतिज्ञतापूर्ण चतुरता की थी कि धम्मट जिस समय जयराज को कैद करने के लिए जायगा उस समय जयराज उस पर विश्वास करके प्राय. शस्त्र त्याग देगा और राजा के द्वारा दिये गये इस आदेश से धम्मट भी अपने मन मे समझ लेगा कि राजा को "इस षड्यत्र से मेरा कोई भी सम्बन्ध नही है" ऐसा विश्वास है।

यदि इस प्रकार के आदेश का पालन करते समय धम्मट और जयराज मे कही पारस्परिक झगडा हो गया तो उस समय इन दोनो मे से कोई भी अथवा दोनो ही आपस मे लड कर मर मिटेंगे। उस दशा मे भी अच्छा ही होगा और यदि ये दोनो गुप्त मित्रता के कारण मिल जायँगे तो इनको पकड कर मार डालने पर भी लोग मेरी निन्दा न कर सकेंगे।

जिस समय राजा हर्षदेव के सेवक प्रयाग ने धम्मट से जयराज को कैद करने के लिए कहा था उस समय क्षण भर के लिए उसकी बुद्धि चक्कर मे पड गई थी। सहसा उसने अपने को सम्हाला और फिर बड़ी प्रसन्नता के साथ "इस षड्यत्र मे मैं सम्मिलित नही हूँ ऐसा राजा हर्ष-देव को विश्वास है" इस प्रकार सोचकर जयराज से बडी गभीरता के साथ कहा—

"आपको यह जानकर आश्चर्य और खेद दोनो ही होगा कि आपके द्वारा किये गये किसी प्रकार के सन्देहपूर्ण व्यवहार से महाराज आपके ऊपर रुष्ट हो गये हैं। यद्यपि मैं आप पर विश्वास करता हूँ तथापि राजा के आदेश का भी पालन करना मेरा परम कर्त्तव्य है। अतएव यदि आप वास्तव मे निरपराध है तो इस बात को प्रमाणित करने के लिए आप बिना किसी तर्क के अपनी तलवार मुझे तुरत दे दीजिए।"

यद्यपि जयराज तलवार चलाकर युद्ध करने की विद्या मे पूर्ण रूप से पारगत था और दूसरे प्रकार के भी शस्त्रास्त्र चलाने मे परम कुशल था तथापि दुर्दैव के वशीभूत होकर अथवा धम्मट पर अधिक विश्वास होने के कारण उसने साधारण मनुष्य के समान बडी सरलता से अपनी तलवार दे दी। उसके बाद उसकी शोचनीय और व्याकुलतापूर्ण दशा को देखकर तन्वग के पौत्र तथा अज्जक के पुत्र टुल्ल ने उससे इस प्रकार तिरस्कारयुक्त परम कठोर वचनो मे कहा "हे निस्सत्व! बाध्य होकर कहना पड़ता कि आप राजा कलश के द्वारा कय्या के उदर से उत्पन्न नही हुए हैं किन्तु समस्त संसार के मानव-समाज का उपहास कराने वाले किसी क्लीब (नपुसक) से आप का जन्म अवश्य हुआ है।"

इस प्रकार धैर्य के परम उपासक और अधैर्य के परिणाम को न जानने वाले टुल्ल के वचनो को सुनकर जयराज की दशा शीतल जल के छिडकने से सोये हुए मनुष्य के समान हो गई अर्थात् टुल्ल के मर्मस्पर्शी वचनो को सुनकर जयराज एकदम ठण्डा पड गया। उसको बन्दी बनाने के बाद जब उससे उस षड्यन्त्र के विषय मे पूछा गया तब दुसह क्लेश और कठोर यातनाओ को सहकर भी उस धैर्यशाली वीर ने केवल अपने को अपराधी बतलाया और धम्मट का नाम भी नही लिया।

बाद मे जयराज को विष दिया गया ताकि वह समस्त यत्रणाओ से मुक्ति पाकर बिना किसी कष्ट के ससार से चला जाय परन्तु उसने विषनाशक मत्रो को सिद्ध कर लिया था इसलिए उसे दिया गया विष उसका कुछ भी अनिष्ट न कर सका। जब यह समझ लिया गया कि उस पर विष का प्रभाव कार्य नही कर सकेगा तब रात्रि के समय गले मे फांसी लगाकर उसे मार डाला गया। इसके बाद जय्य नामक प्रतीहार ने उसका मस्तक काट डाला और इसके धड को भट्टारनड्वला नामक झील के जल मे मछलियो को खाने के लिए डाल दिया।

इस प्रकार उस गभीर-हृदय एव राजनीति-निपुण राजा हर्षदेव ने लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ एकहत्तर के भाद्रपद मास मे उस जयराज की हत्या कराकर धम्मट के वध के लिए भी अपने मन मे विचार तथा प्रयत्न करना आरभ किया। फिर उस कार्य को पूर्ण करने के लिए शस्त्र धारण करने वालो मे श्रेष्ठ लोहर प्रान्त के निवासी वीर ठक्कुर कलशराज को राजा ने एकान्त मे आदेश दिया और कहा—"जब प्रयाग तुम्हारे पास अपने दूत को भेजेगा तब तुम इस कार्य को तुरत कर डालना।" इस प्रकार कहकर राजा ने उसका विशेष रूप से सम्मान किया।

उसके बाद जब दूत भेजने का समय आया तब प्रयाग के मन मे भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे। उसने यह भी सोचा, "यदि मैंने दूत भेज भी दिया किन्तु कार्य पूरा न हुआ तब तो बडा अनर्थ हो जायगा।" ऐसा सोचते ही वह राजा हर्षदेव के समीप गया और कुपित होने का-सा भाव दिखाकर कहने लगा "महाराज! धम्मट कोई साधारण पुरुष नही है। इसलिए अपने समस्त मत्रियो के साथ परामर्श करके इस काम को कीजिए जिससे कि भविष्य मे पश्चात्ताप न करना पडे।"

प्रयाग के इस कथन को ध्यानपूर्वक सुन लेने के बाद राजा हर्षदेव अपने पांच मन्त्रियो के साथ आस्थान-मण्डप मे बैठकर इस विषय पर विचार करने लगा। उस समय वामन मन्त्री ने आस्थान-मण्डप के समस्त द्वार बन्द करा दिये और अर्गलायुक्त प्रधान द्वार से अपनी पीठ को सटा कर कहा—"यदि आप चाहते है कि आपका यह विचार कार्यरूप मे परिणत हो जाय और किसी भी प्रकार की बाधा भी न उपस्थित हो तो उचित होगा कि इन समस्त मन्त्रियो से उस समय तक यही रहने के लिए कहा जाय जिस समय तक कार्य की सिद्धि न हो जाय।"

राजा हर्षदेव ने उसकी इस मत्रणा को सहर्ष मान लिया। जब राजा के आदेशानुसार प्रयाग ने कलशराज के समीप दूत भेजा तब वह घातक कलशराज अपने दो पुत्रो के साथ लेकर धम्मट के वध के लिए गया। उस समय धम्मट अपने दो-तीन सेवको के साथ राजधानी के भीतर बाजपक्षियो को धूप सेवन करा रहा था। सशस्त्र कलशराज को अपने सामने तथा उसके शस्त्रधारी दो पुत्रो को अपने पीछे खडा देखकर वह भयभीत तथा सशक हो गया और वह अपने सेवको से कुछ कहना चाहता था कि उसके पहिले ही वे सब उसे छोडकर वहां से भाग गये।

जब वह अकेला रह गया तब उसने तलवार निकालकर कलशराज को मारना चाहा कि इतने मे ही कलशराज ने तथा उसके दोनो पुत्रो ने आगे और पीछे की ओर से उस पर प्रहार किया और ऐसा घातक प्रहार किया कि वह अपने स्थान से उठते-उठते तत्काल मर गया। मरने से पहिले उसने भी घबडाहट के साथ कलशराज के ज्येष्ठ पुत्र पर तलवार चलाई थी परन्तु वह तलवार खराब हो चुकी थी इसलिए कलशराज के ज्येष्ठ पुत्र को विशेष घायल न कर सकी।

उसके दुर्भाग्य से ही उसी समय उसकी वह तलवार टूट गई थी, इसीलिए उस भयानक सकट के समय वह किसी भी प्रकार उसकी सहायता न कर सकी। जिस प्रकार चिडीमार पक्षी को मार कर फेंक देते है उसी प्रकार कलशराज आदि के द्वारा मार कर धरती पर गिराये गये धम्मट के शव को राजा की आज्ञा से चाण्डालो ने कुत्तो को खिला दिया। राजा ने नीचे आंगन मे आकर तन्वङ्ग के पौत्र रल्हण और मल्हण दोनो की—जिन्होने अपनी तलवार पृथ्वी पर रख दी थी—रक्षा की।

धम्मट के वध से टुल्ल आदि कतिपय वीर राजा हर्षदेव के इस घृणित कार्य को प्रशसा न कर सके। राजा के प्रति उनमे जो श्रद्धा और भक्ति थी, वह न रही। जिस राजा को वे विश्वास करने के योग्य समझते थे उसी राजा पर वे अविश्वास करने लगे। इसके बाद ही वे वीरोचित क्रोध के आवेश मे आकर राजा से युद्ध करने के लिए भी तैयार होने लगे। इतने पर वहां परम कपटी उदयसिह आ गया और उन सबो के क्रोधपूर्ण भावो की गभीरता तथा उसके परिणाम को सोचकर क्षण भर मौन रहा। फिर उसने अपने शब्दो के मायाजाल मे उन सबो को फांस लिया।

उसने बडे मधुर वचनो से कहा—"क्रोध के आवेश मे आकर कार्य करना उचित नही है। जो परिणाम पर विचार किये बिना कार्य करने पर तुल जाते है उन्हे मूर्ख ही कहा जायगा। इसलिये सोच-समझकर कार्य करने का प्रयत्न करो। मैं कहता हूँ कि तुम सब मेरे पुत्र हो। मेरे रहते हुए तुम सबो को परम शान्ति के साथ जीवन-निर्वाह करना चाहिए।'

इसी प्रकार उदयसिंह ने और भी अनेक बातें कीं। उस धार्मिक पर विश्वास रखकर जीवन की अभिलाषा से उन टुल्ल आदि वीरों ने अपने शस्त्र रख दिये और उसी के कथनानुसार अपनी पवित्रता को प्रकट करने के लिए राजा हर्षदेव के समीप चले जाने को तैयार हुए। तन्वङ्ग के घर पर ही बचपन से वहाँ का जूठा खाकर पला हुआ एक सेवक टुल्ल का छत्रधारी था। उस समय उसने हँसकर टुल्ल से कहा—"तन्वङ्ग के पौत्र टुल्ल! कुछ समय पूर्व आपने 'आप कव्या के उदर से उत्पन्न नहीं हुए हैं' ऐसा कठोर वचन जयराज से कहा था। इस समय क्या आप अपने उस वचन को भूल गये? आज आपके लिये भी वैसा ही सकट का समय आ गया है। मूढ! धैर्य धारण करने के अवसर पर क्यों व्याकुल हो रहे हो? इसमे सन्देह नहीं कि आप अवश्य जूठा खाने वाले मेरे पिता से उत्पन्न हुए है और मैं आपके परम यशस्वी पिता से उत्पन्न हुआ हूँ।"

ऐसा कहकर उस स्वाभिमानी वीर ने अपने जन्म की कलक-कलिमा का प्रक्षालन करने के लिए खड्ग-धारा-रूपी चमकते जल मे साहसपूर्वक अवगाहन किया। अर्थात् अपूर्व वीरता के साथ शत्रुओं से युद्ध किया। जब युद्ध के क्षेत्र मे उसका जीवन समाप्त हो गया तब राजा हर्षदेव के निकट पहुँचने के लिए रवाना हुए टुल्ल आदि को राजपुरुषो ने बाँध कर कारागृह मे भेज दिया। उस समय वे सब अपने यौवन के नव विकास-भार से उन्मत्त होकर वसन्तकालीन वृक्षो के समान सुशोभित हो रहे थे।

उन सबो के रूप, यौवन और माधुर्य को देखकर राजा का भावुक हृदय करुणा से पूर्ण हो गया और वह उनके जीवन की रक्षा के लिए उद्यत हो गया परन्तु टक्क देश का रहने वाले पापात्मा विम्बिय ने राजा के पवित्र अन्तःकरण को दूषित कर दिया और उसकी आज्ञा की भी प्रतीक्षा न करके उसके नेत्रो के सामने ही बलपूर्वक उन सबो को घसीट कर ले गया और रात्रि के समय जब सभी ओर सन्नाटा छा गया तब उन सबो के गले मे फाँसी का फन्दा डाल कर बडी निर्दयता के साथ मार डाला। टुल्ल, विजयराज, बुल्ल और गुल्ल नामक तन्वंग के वे चारो पौत्र मरकर वध्य-भूमि मे लुढकने लगे।

साधारणतया मरने के बाद देहधारियो की आकृति बडी भयावनी और कुत्सित हो जाती है किन्तु सबसे बडे आश्चर्य की बात तो यह है कि वे चारो मरने के बाद भी अत्यधिक सुन्दर दीख रहे थे। इसीलिए प्राचीन राजाओ की कथाओ का वर्णन करते समय वृद्ध लोग आज भी उन सबो के मरने के बाद की सुन्दरता की प्रशसा करते है और उस समय उनके नेत्रो से अश्रु की धारा बहने लगती है। निरन्तर ताम्बूल-चर्वण करने के अभ्यास से उनकी रक्तवर्ण वाली दन्त-पंक्ति उस वध्य-भूमि मे बहुत दिनो तक बिखरी हुई माणिक्य-माला के समान दिखाई पडती थी।

अपने वश का विनाश करते हुए राजा हर्षदेव ने अपने ही प्रयत्न से बढाये गये राजा उत्कर्ष के ज्येष्ठ पुत्र डोम्ब को गुप्त रीति से मरवा डाला। उसी प्रकार विजयमल्ल के छोटे और चतुर तथा चचल बालक जयमल्ल को भी अग्नि-कण के समान भविष्य मे अपने लिए प्राणघातक समझकर गुप्त उपायो के द्वारा बिना किसी विचार अथवा विवेचना के मरवा दिया।

प्रायः देखा गया है कि दुर्भाग्य के वशीभूत होकर राजा लोग अपने राज्य के आधार-भूत सम्पूर्ण आप्तजनो अर्थात् स्वजनो को अपना प्रतिस्पर्धी समझ लेते हैं और फिर अपने

राज्याधिकार के मद से उन्मत्त होकर उन्हे मार डालते है। इस प्रकार दानवी कार्य करने के बाद वे बडे गर्व के साथ प्रसन्नता प्रकट करते हुए विश्वास करने लगते है कि राजनीति के दृष्टिकोण से उनका कार्य निन्दनीय नही हो सकता। इतना ही नही, वे उस पापपूर्ण कार्य से "हमने अपने राज्य को निष्कण्टक बना दिया है" ऐसा भी मानने लगते हैं, परन्तु अन्त मे कोई दूसरा ही सौभाग्यशाली पुरुष उनके उस राज्य का उपभोग करता है।

मूढ अर्थात् ज्ञानशून्य पीपल का वृक्ष अपनी शाखाओं की छाया मे बढे हुए विशाल मधु के छत्ते को कोई भी भाग्यशाली पुरुष बिना किसी कष्ट के निकाल सके, इसीलिए उन शाखाओ को धीरे-धीरे हिलाया करता है और उस छत्ते की रक्षा करने वाली मधुमक्षिकाओ को अपने गिरते हुए पत्तो के द्वारा कठोर प्रहार करके मार डालता है। इसीलिए ज्ञाति-द्रोह-रूपी महापातक से नष्टबुद्धि वह राजा छोटे-छोटे बालकों से भी असभाव्य अर्थात् जिस काम को छोटे-छोटे बालक भी नही कर सकते उन समस्त कार्यों को करता हुआ चाटुकारो की अधीनता मे ही सुख समझने लगा।

वामन मन्त्री का पुत्र क्षेम चाटुकारो मे प्रधान था। जब उसने यह समझ लिया कि राजा के मन मे अपने पिता कलश के विषय मे अधिक विद्वेष है तब उसने कलशेश्वर के शिखर पर शोभा देने वाले सुवर्ण के छत्र मे लगे हुए सुवर्ण को वहां से निकाल लेने के लिये राजा को प्रेरित किया। परन्तु जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी उन्मत्त अवस्था मे दौडते-दौडते जिस समय गड्ढे मे गिरने लगता है, उसी समय धैर्यवान् महावत उसे रोक कर बचा लेता है, उसी प्रकार राजा के परम भक्त चतुर सेवक प्रयाग ने उपायपूर्वक राजा की उस इच्छा को नष्ट कर दिया।

जिस प्रकार निरन्तर चेष्टाशून्य शवो के शरीर मे प्रवेश मे वैताल प्रवीण होता है उसी प्रकार शवतुल्य चेष्टारहित राजाओ के चित्त मे प्रवेश करने के कार्य मे परम धूर्त चाटुकार लोग कुशल होते हैं। इन्ही गुणो से युक्त हलधर का पौत्र लोष्टधर था। उसने किसी समय एकान्त मे राजा हर्षदेव को प्रसन्न करने की अभिलाषा से कहा—"महाराज कलशेश्वर के मन्दिर के जो ग्राम है और जो सुवर्ण आदि वहां की सम्पत्ति है, वह सब तुरन्त छीन लीजिए। मैं उस नदी के पत्थरो से वितस्ता नदी पर अच्छा पुल बनवा दूंगा।"

"मैं आकाश पर चित्र-निर्माण करता हूं। कमल-नाल के धागो से उत्तम वस्त्र बुन देता हूँ। स्वप्न मे देखी गई सुवर्ण-राशि को ला सकता हूँ और बर्फ की सुदृढ चारदीवारी बना देता हूँ। इन सबके अतिरिक्त और भी अनेक अद्भुत् विद्याएँ जानता हूँ।" इस प्रकार धूर्त मनुष्य के द्वारा कही गई बातो पर भी मूढ और जडबुद्धि राजा लोग सत्यता का विश्वास कर लेते हैं क्योकि वह राजा ज्ञानशून्य होने के कारण लज्जावश कुछ भी नही कह सकता है और अपनी इसी दुर्बलता के ही कारण वह केवल उन धूर्तों के द्वारा ठग लिया जाता है।

उत्तम रीति से रोगी की परिचर्या-प्रणाली को जानने वाला व्यक्ति जिस प्रकार कुपथ्य करने के लिए उद्यत हुए रोगी को कुपथ्य से बचा लेता है उसी प्रकार प्रयाग ने अपने स्वामी राजा हर्षदेव के मन को उस कार्य से पलटा लिया। उसके बाद एक बार बातचीत के सिलसिले मे उसी लोष्टधर ने हँसते-हँसते राजा से कहा—"महाराज ! एक देव बन्धन मे पडे हुए हैं। किसी न किसी प्रकार उनको मुक्त कीजिए।"

लोष्टधर की इन बातो को सुनकर राजा ने थोड़े से आश्चर्य के साथ उससे पूछा—"तुम्हारे कहने का वास्तविक तात्पर्य क्या है ?" बड़ी नम्रता के साथ उत्तर देते हुए लोष्टधर ने राजा से कहा "प्राचीन काल की बात है। उद्भाण्डपुर मे भीमशाही नाम का एक राजा था। उसने कलशदेव के राज्य मे भीमकेशव नामक विष्णु की स्थापना की थी और उसकी देखरेख के लिए योग्य पुरोहित तथा पारिषद्यो को भी नियुक्त कर दिया था। थोड़े ही दिनो मे वे सब परस्पर झगड़ा करने लगे। नित्य नवीन विषयो पर आक्षेपात्मक वादविवाद होने लगे। इसीलिए बहुत दिनो तक उस मन्दिर के द्वार पर ताला लगा रहा। जब उन सबो का विवाद शान्त हो गया तब उस मन्दिर का द्वार खोला गया। द्वार के खुलते ही विदित हुआ कि देव-प्रतिमा के रौप्य कवच को कोई चुरा ले गया है। उस दिन से चोरी हो जाने के भय से उस विष्णु-मन्दिर के द्वारो पर ताले लगे हुए हैं और उस मन्दिर की समस्त सम्पत्ति उन्ही तालो मे बन्द पड़ी है। इसलिए चोर के भय को उत्पन्न करने वाले उस मन्दिर के समस्त धन को ले लेना चाहिए और भगवान् भीमकेशव भी आपके पुण्यप्रताप से वहाँ के बन्धन से मुक्त कर दिये जावें जिससे उनको यथासमय शास्त्र के अनुसार पुष्प, दीप, धूप आदि योग्य पूजा-सामग्री के उपभोग का सौभाग्य प्राप्त हो।"

इस प्रकार उसके द्वारा प्रेरित होकर राजा हर्षदेव ने भीमकेशव के मन्दिर के द्वार खुलवा दिये और वहाँ से सुवर्ण, रत्न आदि से परिपूर्ण विपल धनराशि राजा को प्राप्त हुई। तब राजा ने अपने मन मे सोचा कि जब इस प्रकार बहुत दिनो से बन्द पड़े हुये देव-मदिर मे इतनी विपुल सम्पत्ति विद्यमान थी तब बड़े-बड़े देव-मन्दिरो मे तो बहुत ही अधिक धन होना चाहिए।

इस घटना के बाद उस सम्पत्ति के बदले मे वहाँ के पारिषद्यो ने प्रायोपवेशन करके अपने ऊपर की भार उठाकर ले जाने की बेगार-प्रथा को राजा हर्षदेव से बन्द करा लिया। इसके थोड़े ही दिनो बाद धीरे-धीरे राजा हर्षदेव को अपनी सेना के भिन्न-भिन्न विभागो मे विशेष सुधार एव उन्नति करने के लिए अत्यधिक व्यय करने का व्यसन-सा लग गया। था इस लिए देव-मन्दिरो की समस्त सम्पत्ति लूटने का उसका स्वाभाव क्रमशः सुदृढ होता गया। कहने की आवश्यकता नही कि उस लोभी राजा ने प्राचीन काल के धार्मिक और दानशील राजाओ के द्वारा अर्पण की गई समस्त देव-मन्दिरो की आश्चर्य उत्पन्न करने वाली कल्पनातीत सम्पत्ति को बिना किसी सकोच के लूट लिया।

इतने पर भी उसकी धन-तृष्णा शान्त न हुई। इसलिए देवताओ की समस्त सम्पत्ति का हरण कर लेने के बाद देवताओ की धातु-निर्मित प्रतिमाओ को भी मन्दिरो से निकलवाने के लिए उसने उदयराज को देवोत्पाटन-नायक बना दिया था। वह उदयराज भी बड़ा कलुषित हृदय वाला था। जैसा राजा हर्षदेव था वसा ही वह भी था। जब वह दुष्ट उदयराज मन्दिरो से देव-प्रतिमाओ को निकलवाने के लिए जाता था तब सब से पहिले उन प्रतिमाओ को भ्रष्ट करने के लिए जिनके नाक, कान, हाथ पैर रक्तविकार से सड रहे थे ऐसे—नग्न भिक्षुको के हाथो से उन समस्त प्रतिमाओ पर मल और मूत्र छिड़कवाता था।

सुवर्ण, रजत आदि धातुओ से निर्माण की गई देवताओ की भव्य प्रतिमाएँ कूड़ा-कर्कट से भरे हुए गन्दे रास्तो से जलाने की लकड़ियो के समान घसीटी जाने लगी। पुष्पो के स्थान

पर उन समस्त प्रतिमाओं के ऊपर वे नग्न कोढी भिक्षुक थूक की वृष्टि करते थे और उनके पैरो मे रस्सी बांधकर उन्हे सडक पर घसीटा जाता था। उस हर्ष-रूपी तुरुष्क राजा ने अपने राज्य मे किसी भी ग्राम, पुर अथवा नगर मे एक भी मन्दिर ऐसा नही छोडा था जिसमे कि देव-प्रतिमा न तोडी गई हो।

राजा के उस उपद्रव से नगर मे श्रीरणस्वामी तथा दूसरे पत्तनो मे श्रीमार्तण्डदेव, केवल यही दो प्रभावशाली देवता बच गये थे। किसी समय दान के प्रसग मे उस त्यागशील राजा से परिहासपुर मे उत्पन्न हुए सुप्रसिद्ध गायकवर कनक ने तथा अन्य नगर-निवासी कुलश्री नामक श्रमणक ने बडे ही विनीत भाव से प्रार्थना करके बुद्ध भगवान् की दो विशाल प्रतिमाओ को उस आपत्ति से बचा लिया था।

समस्त ससार के नेत्रो मे चकाचौंध उत्पन्न करने वाली अद्भुत् और अपरिमित सम्पत्ति को प्राप्त कर लेने पर भी मनुष्यो को जब सन्तोष नही होता तब वे उसकी अपेक्षा और भी अधिक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लोभ मे फँस जाते है। उस दशा मे वे किसी भी प्रकार के दुष्कर्म करने मे तनिक भी कसर नही रखते। यह बात प्रसिद्ध है कि श्रीकमला के लीला-निकेतन कमल है और उन कमलो को प्राप्त करने के लिए गज व्याकुल हो उठते हैं फिर भी वे कमलाकर अर्थात् कमल-समूह को उखाड कर फेंक देने का पातक कर ही डालते हैं।

राजा हर्षदेव को उसके पितामह की सम्पत्ति प्राप्त हो चुकी थी। उसके बाद उसके पिता राजा कलश के द्वारा सचित की गई समस्त सम्पत्ति प्राप्त हो गई। इतना ही नही, लोहराधीश्वर उत्कर्ष जो विपुल धनराशि अपने साथ लाया था उस पर भी राजा हर्षदेव का अधिकार हो चुका था। इस प्रकार उसे अपरिमित कोश-सम्पत्ति मिल गई थी।

इसके अतिरिक्त प्राचीन काल के धर्मपरायण राजाओ ने जो सम्पत्ति देव-मन्दिरो को अर्पण की थी, उसे भी छीन लिया था। इतने पर भी उस धनलोभी राजा ने प्रजा को कष्ट देकर बलपूर्वक धन छीन लेने का विचार किया था। इसलिए ऐसे राजा को धिक्कार है! जैसा वह राजा था वैसे ही उसे मत्री भी मिल गये थे। न्याय की हत्या करके वे राजा के ही विचारो का समर्थन करने मे अपने को धन्य समझते थे। इसीलिए नाम-मात्र की आज्ञा उस राजा से लेकर उसके पापिष्ठ सचिवो ने प्रजा को पीडित करने वाले नवीन-नवीन अधिकारियों को नियुक्त किया और उनके उचित नाम भी रख दिये।

राजा की सेवा करने वाले लोग जैसा समय का प्रवाह देखते है उसी के अनुसार कार्य करने लगते हैं। उनकी भी इस वृत्ति को धिक्कार है! मनुष्य होकर भी जब वे मनुष्यो के साथ मनुष्यो के समान व्यवहार न कर सके और केवल स्वार्थान्ध होकर मानवता की हत्या करने पर ही तुल गये तब उनके उस जीवन को भी धिक्कार है! साथ ही साथ उन लोगो को भी धिक्कार है जो अपने वृद्धत्व, विद्वत्ता और सदाचार को भी ठुकरा कर केवल अपने स्वामी को ही प्रसन्न करने के लिए दुष्कर्म किया करते हैं।

राजा हर्षदेव का एक मत्री गौरक था। वह वयोवृद्ध और सदाचार-सम्पन्न भी था। उसने अपने समस्त सद्गुणो को ठुकरा दिया और अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार अर्थनायक के पद को स्वीकार कर लिया। फिर वह समस्त देव-मन्दिरो की पूजा आदि प्रबन्ध के लिए दिये गये ग्रामो को अपहरण करने मे सन्नद्ध होकर कार्य करना आरभ किया।

समरस्वामी के मन्दिर का पार्षद सहेलक था। उसे विजयमल्ल का आप्तजन समझकर राजा हर्षदेव उस पर रुष्ट था। इसलिए उसने दूना कर वसूल करके राजा को दे दिया। उसके इस कार्य से प्रसन्न होकर राजा ने उसे अर्थनायक बना दिया। इसके बाद वह धीरे-धीरे राजा के समीप पहुँच जाने के कारण बड़ा धनी और प्रभावशाली व्यक्ति हो गया। और अधिक क्या कहा जाय ? सब प्रकार के नायकों को नियुक्त करके समस्त प्रजा को लूटते हुए उस राजा ने पुरीषा-नायक (मलमूत्र आदि का अधिकारी) भी नियुक्त किया था। श्रीगर्भ मूलक प्रच्छन्न जड़ता के प्रभाव से राजा हर्षदेव के द्वारा सम्पादन की गई उस समस्त सम्पत्ति का उपयोग भी सम्पादन के अनुरूप ही होने लगा अर्थात् उस राजा ने जिस प्रकार अन्याय से धन एकत्रित किया था उसी प्रकार अन्यायपूर्ण कर्मों में वह उसको व्यय करने लगा।

मृगलोचनाओं की दुर्लभता, अश्वों के श्वास, चाटुकारों के दुर्वचनों का श्रवण और वैता-लिकों की मिथ्या प्रशंसा को प्राप्त करने के लिए राजा लोग अपनी लक्ष्मी का अपव्यय किया करते हैं। प्रियतमाओं के कोप और प्रसन्न-भाव के अन्वेषण में तथा अश्व, गज आदि वाहनों के वृत्तान्त को जानने में और सेवकों के चित्त की अनुवृत्ति में एवं मृगया से सम्बन्ध रखने वाली वार्ताओं में राजाओं का समय बालकों के समान व्यतीत होता है। राजा लोग विलास, हास, परिहास, आसन, अनुशासन, गमन, आगमन, दान, पान और भोजन आदि भली-बुरी सब प्रकार की चेष्टाओं में छाया के समान दूसरे मनुष्यों का अनुकरण करते हैं।

इसी प्रकार अनुभवशून्य ये समस्त नरेन्द्र चाटुकारों के द्वारा की गई मिथ्या प्रशंसा को सत्य मानकर अधिक प्रसन्न हो जाते हैं और अपने को अतिमानुष समझकर त्रिलोचन (भगवान् शंकर) का अवतार अथवा भगवान् विष्णु का अवतार मानने लगते हैं। इतना ही नहीं, अति-मानवता के आवेश में आकर मृत्यु को भी तुच्छ समझने लगते हैं। इन समस्त राजाओं पर रात्रि के समय सुन्दरी ललनाओं का अधिकार होता है और दिन में ये सब मन्त्रियों के अधीन रहा करते हैं। फिर भी इनका भ्रम अत्यंत अद्भुत है क्योंकि इस दशा में भी ये अपने को भगवान् विष्णु ही समझते हैं।

राजाओं और सुकुमारमति बालकों का स्वभाव प्रायः एक ही समान होता है। जो कोई भी व्यक्ति उनसे मधुर भाषण करता है। उसी को वे मधुर अर्थात् अच्छा समझते हैं और यदि किसी ने थू कर दिया तो उसके उत्तर में वे भी बिना किसी संकोच अथवा भय के तुरंत थूत्कार करने लगते हैं और यदि कहीं उन्हें त्रास दिया गया तो वे त्रस्त होकर भयानक रूप से चिढ़ जाते हैं। इस प्रकार राजाओं की जड़ता अर्थात् मूर्खता को लक्ष्य करके जो कटाक्ष किया जाता था वह राजा हर्षदेव की जड़ता के सामने तुच्छ प्रतीत होने लगा। तात्पर्य यह कि राजा हर्षदेव की जड़ता अन्य राजाओं की अपेक्षा कहीं अधिक अपनी सीमा पार कर गई थी।

उस राजा ने उत्तम वाद्य बजाने वाले भीमनायक के वाद्यपटह वाद्य से सन्तुष्ट होकर उसे एक हाथी और एक हथिनी दी थी। कनक नामक चम्पक का कनिष्ठ भ्राता गायन-कला में राजा हर्षदेव का शिष्य बन गया था। उसने बड़े परिश्रम से संगीत का अध्ययन किया था। उसके श्रम को सफल करने के लिए परम तेजस्वी और उदार राजा ने उसे एक लाख सुवर्ण के दीनार पारितोषिक के रूप में प्रदान किये थे।

किसी समय उस राजा ने कर्णाटक देश के शासक परमार्डि की चन्दला अथवा चन्द्रलेखा नामक सर्वाङ्ग सुन्दरी पत्नी को चित्र में देख लिया था। उस चित्र को देखते ही वह कामदेव के

धाणों से घायल हो गया। उसके मन के भावों में एक विचित्र प्रकार की चंचलता उत्पन्न हो गई। जीवन को सुख पहुँचाने वाले उसके पास जितने साधन थे, सभी प्रभावहीन हो गये। उसके हृदय की शान्ति उससे कहीं दूर चली गई। ऐसे ही समय में धूर्त चाटुकार लोग विचारशून्य और मन्दमति राजाओं को हँसते-हँसते कुत्तों के समान छून्छू कर के प्रोत्साहित एवं संघर्ष के लिए उत्तेजित कर देते है।

जब कुछ दिन बीत गये और चित्त शान्त न हुआ तब वह राजा समस्त लज्जा के बन्धनों को तोड़कर राजसभा में जा पहुँचा और चाटुकारों के प्रोत्साहन से उत्तेजित होकर चन्दला की प्राप्ति के लिए तथा परमार्डि को युद्ध में पराजित करने के लिए प्रतिज्ञा कर बैठा। साथ ही साथ उसने जब तक चन्दला की प्राप्ति न हो तब तक के लिए कच्चे कपूर का सेवन न करने की भी प्रतिज्ञा की। उस समय कवि-जन तथा चारण-वृन्द ने स्तुति के बहाने से किसी व्यक्ति विशेष को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार के शब्दों में उस विचारशून्य निर्लज्ज राजा का उपहास करना आरम्भ किया था—

"हे पथिक ! भाषा तथा वेश आदि से तुम दाक्षिणात्य के निवासी जान पड़ते हो और आपके समीप से आनेवाली सुगन्ध से विदित होता है कि आपके हाथ में कपूर का गोला अवश्य है। यदि वह कपूर पका हुआ हो तो महाराज हर्षदेव को भेंट कर दो, नहीं तो अपने ही पास उसे रहने दो क्योंकि इस समय इस प्रकार का कपूर नारियल के भीतर भी मिल सकता है। कर्णाटक देश के राजा परमार्डि का वध करके चन्दला की प्राप्ति द्वारा उसके आलिंगन का सुख प्राप्त करना तथा कल्याणपुर में प्रविष्ट होकर पिप्पला देवी के दर्शन करना और उस राजा के उपवन में एकत्रित कर गुप्त रीति से रखी गई अपरिमित सम्पत्ति को अपने अधीन करना—इन समस्त कार्यों के पूर्ण होने तक परम प्रतापशाली महाराज हर्षदेव ने पोतास कर्पूर का चर्वण त्याग दिया है।

राजा हर्षदेव की राजसभा में चाटुकारों की संख्या अधिक थी। मदन नामक एक चाटुकार बड़ा धूर्त था। चाटुकारिता के ही कारण उसने कम्पनेश का पद भी प्राप्त कर लिया था। उसकी बातों से राजा को बड़ी प्रसन्नता होती थी। उस धूर्त ने प्रयत्न करके कहीं से चन्दला का चित्र प्राप्त कर लिया था इसलिए वह उस चित्रलिखित चन्दला का प्रतीहार बन बैठा था। वह उस चित्रमयी चन्दला के लिए तथा उसके वस्त्रों और अलंकारों के निमित्त नित्य राजा से वेतन लेता था। इतना ही नहीं, ईर्ष्या के, मान के शमन के लिए समय-समय पर उचित पारितोषिक भी ले लिया करता था।

इन्हीं समस्त कार्यों से उस चाटुकार मदन की धूर्तता, निर्लज्जता और चंचलता का पता लग जाता है और यही सब कार्य राजा हर्षदेव की मूर्खता और उसके सनकी स्वभाव को सूचित करते हैं। कुछ दिन बीत जाने पर एक नवीन चमत्कार उत्पन्न किया गया। "यह कर्णाटक देश की रानी चन्दला की माता है। बहुत दिन पहिले ही यह स्वर्ग को चली गई थी किन्तु अथक परिश्रम करके इसको हम आपके लिए स्वर्ग से यहाँ ले आये हैं" ऐसा कहकर थोड़े-से धूर्त चाटुकारों ने एक वृद्धा को दिखला दिया था और उस मूर्ख राजा को ठग लिया था।

"ये देवाङ्गनाएँ है और रानी चन्दला की दासियाँ भी हैं" ऐसा कह कर कतिपय अन्य धूर्त चाटुकारों ने कुछ सुन्दरी देवदासियों को राजा के पास भेज दिया और उस राजा ने भी उन्हें वास्तव में देवाङ्गना मान कर बहुत-सा धन अर्पण किया तथा अपने महत्व को त्याग कर उनके चरणों

मे प्रणाम करने लगा । इस प्रकार के कार्य से वह जन-साधारण में भी उपहास का पात्र बन गया । चाटुकारो के कथनानुसार वे समस्त देवदासियाँ राजा के समीप आकर कहती—"महाराज! अब आप किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें । हम सब यह जान चुकी हैं कि आप की ऐसी दशा क्यो हैं । इस समय आप मदनजनित संताप से बडा कष्ट पा रहे हैं । हम सब मदन-पीडा-निवारक मंत्र जानती हैं अतएव उस संताप से इसी समय आप छुटकारा पा जायँगे ।" ऐसा कह कर वे उस राजा के सम्मुख मंत्र पढने का-सा अभिनय करती और उसकी बुद्धि को मोहित कर देती थी ।

इस प्रकार जब कुछ दिन और बीत गये तब देवाङ्गना बनने वाली उन देवदासियो की इच्छा के अनुसार उस भाग्यहीन राजा ने उनके साथ अग-सग अर्थात् सम्भोग भी किया वह मूर्ख राजा दीर्घायु लाभ कर चिरकाल तक जीवित रहना चाहता था, इसलिए उन समस्त कुलटाओं ने उसे सौ वर्ष की आयुष्य का आशीर्वाद दे दिया । इसी प्रकार वह राजा पिण्ड सिद्धि को प्राप्त करना चाहता था । न जाने कितनी बार उसने उसके लिए घोर प्रयत्न किये । जब सफल होने की आशा न रही तब वह उस ओर से विमुख हो गया किन्तु कुछ ही दिनो मे किसी धूर्त ने उसमे उस सिद्धि के लिए पुनः उत्सुकता उत्पन्न कर दी । इसलिए उस उत्सुक मूढ राजा को किसी डोम ने "यह रसायन पिण्ड-सिद्धि को देने वाला है" ऐसा कह कर उस रसायन को पिला दिया ।

राजा हर्षदेव की अन्य मूर्खताओ के सम्बन्ध मे क्या कहा जाय ? क्योकि उसने चाटुकारों की याचना के अनुसार अपने कोष के धन के समान अपनी आयु भी उन्हें दे दी । बल एव सौन्दर्य के अभिलाषी उस राजा ने जिन अन्यान्य अयोग्यतम उपायो का सेवन किया था, वे इससे भी अधिक लज्जाजनक हैं अतः कौन सदाचारी मनुष्य उन सबका वर्णन करेगा ?

इस प्रकार वह मूढमति राजा अपनी मूर्खता के द्वारा तथा दुष्ट मन्त्रियो के द्वारा सर्वदा के लिए घोर अन्धकारपूर्ण भयानक नरक में गिरा दिया गया था । जिस प्रकार प्राचीन काल के मेघवाहन आदि प्रजा हितैषी धार्मिक राजाओ के अलौकिक तथा अद्भुत कृत्यो के विषय मे अल्प बुद्धि वाले लोगो के हृदय सन्देह दोलान्दोलित हो जाते हैं, उसी प्रकार राजा हर्षदेव के द्वारा किये गये आश्चर्यजनक दुष्कर्मों के वर्णन पर कुछ समय के बाद लोग अवश्य अविश्वास करने लगेंगे ।

इस प्रकार के अनेक छल और कपटो से पूर्ण उस राज्य मे दुर्नीति के आचरण से सत्पथ-भ्रष्ट होने पर भी वह राजा आयु के अवशिष्ट होने के कारण छिद्रान्वेषण-परायण शत्रु-समूह के वशीभूत न हुआ । रात्रि के समय वह बडी प्रसन्नता के साथ नर्तकियो को नृत्य-कला की शिक्षा देता था । उस समय अनेक दीपको के प्रखर प्रकाश से जगमगाते हुए राजभवन मे स्वय भी अभिनय करता हुआ बाहर खडे रहने वाले लोगो को स्पष्ट रूप से दिखाई पडता था, फिर भी उसका भाग्य इतना तेजस्वी था कि किसी शत्रु के वाण का लक्ष्य बनकर उसे न तो मारना पडा और न घायल होना पडा । इन्ही समस्त घटनाओ पर पूर्ण रूप से आलोचना करने के बाद स्वीकार करना पडता है कि यह उसकी आयु के अवशिष्ट होने का ही परिणाम था अथवा उसके राज्य मे रहने वाली प्रजा के घोर पापो का फल था ।

कुछ दिन इसी प्रकार और बीत गये । इसके बाद सभी प्रकार की अपवित्रताओ के निवास-स्थान उस राजा के अन्तःपुर मे उसके अधःपतन का सूचक अन्तःपुर की ललनाओ का चरित्र-विप्लव होने लगा अर्थात् राजा हर्षदेव के अन्तःपुर में रहने वाली महिलाओ मे भयानक रूप से व्यभिचार

फैल गया। वहाँ के मदोन्मत्त तरुण पुरुष और यौवन के मद से उन्मत्त युवतियाँ राजा हर्षदेव के विनाश के लिए षड्यन्त्र रचने के कार्य मे सन्नद्ध हो गये।

जब इन समस्त गुप्त षड्यन्त्रो के रहस्य का पता लग गया तब क्रोध के आवेश मे आकर राजा ने उनमे से कतिपय स्त्रियो को तथा उनके गुप्त प्रेमी पुरुषो को कठोर दण्ड दिया। कुछ युवक राजा के क्रोध से भयभीत होकर अपने जीवन की रक्षा के लिए अपनी प्रेमिकाओ को राजा के अन्त.पुर से उठा कर उन्हे अपने साथ देशान्तर ले गये। राजा के जितने सेवक थे उनमे से प्राय सभी दुश्चरित्र थे, इसीलिए उस समय वे सभी सेवक राजा हर्षदेव से सशंक होकर रहने लगे और अपने मन की चिन्ता को दूर करने के लिए उसके विनाश की इच्छा करने लगे।

उस राजा की दुश्चरित्रता भी समस्त ससार मे उस सीमा तक प्रसिद्ध हो गई थी जिस सीमा तक राजा कलश जैसे परम व्यभिचारी पुरुष के पुत्र की हो सकती है। उस दुष्टात्मा राजा हर्षदेव का बाल्यावस्था मे जिन माताओ ने अपनी गोद मे बैठाकर वात्सल्यपूर्वक लालन-पालन किया था, उन्ही माताओ को उसने अपनी गोद मे बैठाकर चुम्बनपूर्वक उनका सम्भोग किया था। वह अपनी भगिनियो के साथ भी सम्भोग करता था। एक बार राजा कलश की बहिन की कन्या नागा ने उसे कुछ कठोर शब्द कहे थे, इसलिए उससे रुष्ट होकर उसने उसे बलपूर्वक पकड़वा मँगाया और जब वह आ गई तब उसके साथ बलात्कार से सम्भोग किया।

उस राजा ने तुरुष्क-शताधीश अर्थात् जिनके अधीन सौ-सौ तुर्क सैनिक रहा करते थे ऐसे सेवको को नियुक्त किया था और वह उनको पर्याप्त धन देता था। उस राजा की बुद्धि यहाँ तक दोषपूर्ण हो चुकी थी कि वह मृत्यु-काल पर्यन्त ग्रामीण सूकरो का मास भक्षण करता था। किसी समय राजपुरी के राजा की ओर से सेवा मे थोडी-सी त्रुटि हो गई थी इसलिए राजा हर्षदेव उस पर अत्यन्त रुष्ट हो गया था। उसके बाद उस मन्दबुद्धि ने राजपुरी पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया।

मार्ग मे उसकी अनुपम सैन्य-सामग्री को देखकर दूसरे राजाओ के मन मे उसके सम्बन्ध मे त्रैलोक्य पर आक्रमण करने के योग्य सामर्थ्य को धारण करने की आशका होने लगी। मार्ग मे राजा हर्षदेव ने पृथ्वीगिरि नामक दुर्ग को देखा। सामरिक दृष्टिकोण से उसका महत्त्व कुछ भी रहा हो किन्तु उसे देखकर राजा ने उसे जीत लेने का विचार कर लिया। फिर वह राजपुरी की ओर अग्रसर न हुआ और उस दुर्ग को चारो ओर से घेरकर वही ठहर गया।

एक मास से भी अधिक समय तक राजा हर्षदेव ने उस दुर्ग को चारो ओर से घेर रखा था, इसलिए दुर्ग के अन्दर रहने वाले दुर्ग के रक्षको के पास की अन्न तथा अन्य आवश्यक सामग्री समाप्त हो चुकी थी। इसीलिए वे सब अत्यधिक व्याकुल हो गये थे। राजपुरी के राजा सग्रामपाल ने उनको सहायता पहुँचाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया था। जब वह अपने प्रयत्न मे सफल न हो सका तब भयभीत होकर उसने राजा हर्षदेव को कर तथा बहुत कुछ अन्य सामग्री देना स्वीकार किया; परन्तु राजा हर्षदेव ने अपने राजहठ के कारण उसे ग्रहण नही किया और जब उसके सामने बहुत ही कठिन शर्ते रखी तब उसने विवश होकर लोभी दण्डनायक को अपने अनुकूल बनाने के लिए पर्याप्त मात्रा मे घूस दे दिया।

राजपुरी के राजा सग्रामपाल से घूस पाते ही दण्डनायक के विचार उसके प्रति अनुकूल हो गये। उसने तुरन्त राजा हर्षदेव के समीप जाकर उस दुर्ग के घेरे को हटा लेने के लिए आदेश करने की प्रार्थना की परन्तु हठधर्म का आश्रय लेनेवाले उस राजा ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार

नही किया। तब उसने धीरे से सैनिको को राजा से प्रवास का विशेष वेतन मांगने के लिए उत्साहित किया। वे समस्त सैनिक प्राय निम्न श्रेणी के थे इसलिए उस समय प्रवास मे उन पर दण्डनायक के कथन का प्रभाव तुरन्त पड़ गया। वे सब बिना किसी भय के राजा के समीप पहुँच गये और बडे कठोर वचन कहकर राजा को फटकारने लगे। फिर वे सब विशेष वेतन के लिए अड गये।

राजा का कोष वहाँ से दूर था इसलिए उन समस्त सैनिकों की अभिलाषा पूर्ण न हो सकी और उन्होने हुल्लड मचाना आरम्भ कर दिया। उनके उस प्रकार हुल्लड मचाने से राजा के मन मे भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे। किसी प्रकार उस समय उचित धैर्य को धारण कर उस हुल्लड को शान्त करने के लिए राजा ने प्रयत्न करना आरम्भ किया। ठीक ऐसे ही समय मे राजा के पास दण्डनायक दौडा हुआ आ पहुँचा और व्याकुलता प्रकट करते हुए कहने लगा—"महाराज! तुर्क लोग उपद्रव मचाने वाले हैं।" उसके बाद ही सभी ओर से यही समाचार राजा के पास आने लगा। जो कोई भी उसके पास आता, वह यही समाचार कह सुनाता।

दण्डनायक के द्वारा फैलाई गई इस झूठी अफवाह से राजा हर्षदेव डर गया। उसमे धैर्य की मात्रा बहुत कम थी, इसलिए वह भयभीत होकर अपनी सेना को वहाँ से हटाकर चल पडा और भय के कारण अपनी कोष-सामग्री को उसने मार्ग मे ही छोड दिया। जिस प्रकार निम्न श्रेणी की तलवार युद्ध मे धोखा दिये बिना नही रहती उसी प्रकार उत्तम रीति से परीक्षा किये बिना ही बढाया गया सेवक स्वामी को सकट के समय सहायता न देकर उसे और भी अधिक सकट मे डाल देता है।

सर्वप्रथम तो वह राजा ही स्वय अयोग्य था। किसी भी दशा मे वह अन्य योग्य पुरुषो को अपने समीप रखना भी नही चाहता था। इसलिए जिस प्रकार निम्न श्रेणी का अश्व अश्वशाला के समस्त अश्वो को दूषित कर देता है उसी प्रकार उस राजा ने राज्य-सम्बन्धी वैभव को कलकित कर दिया था। उस दिन से शान्तप्रताप (शान्त हो गया है प्रताप जिसका) ऐसे उस राजा का प्राचीन "प्रताप-चक्रवर्त्ती" यह प्रसिद्ध नाम भी सर्वत्र मलिन हो गया।

उस समय लज्जा से म्लान वदन वह राजा हर्षदेव जो कार्य अपने से तथा समस्त सेवको से सिद्ध न हो सका उस कार्य को अकेला होकर भी सिद्ध कर देने वाले वीर कन्दर्प को अपने से श्रेष्ठ मानने लगा। राजा के मन मे कन्दर्प को वापस बुलवाने का विचार उत्पन्न होने लगा था किन्तु उस दण्डनायक ने उस मूर्ख राजा के सुविचार को अपनी धूर्तता से दबा दिया था।

जब उस दण्डनायक के कपटमय व्यवहार का पता राजा को लग गया तब उसने कुपित होकर उसे कारागार मे बन्द करा दिया किन्तु वह विवशता के कारण उसके अक्षम्य अपराध के अनुसार उसे पूर्ण रूप से दण्ड न दे सका। उसे एक सुदृढ दुर्ग मे रखा गया था। वहाँ उसका जीवन एक प्रकार से सकटपूर्ण परिस्थिति मे ही था, परन्तु फिर भी उस लोभी ने अपने सेवको के द्वारा भेजे गये ताम्बूल तथा वस्त्र आदि के सग्रह करने का काम चालू रखा था। फिर कुछ दिनो के बाद उस राजनीतिक दृष्टिकोण से दूरदर्शिता के गुण से शून्य मूर्ख राजा हर्षदेव ने उस झूठे तथा लोभी सचिव को अपने विनाश का प्रधान कारण होने से प्राणदण्ड देने के योग्य होने पर भी कारागार से मुक्त कर दिया और पुराने पद पर फिर से उसे नियुक्त भी कर दिया।

लगे। मार्ग मे कोलाहलमय क्रन्दन करते हुए तथा शत्रु-सैनिको के द्वारा पीछा किये गये और भिन्न-भिन्न मार्गों से भागते हुए राजा के सैनिको को वर्षा के प्रभाव से बढी हुई मधुमती नदी ने अपने उदर मे चिरकाल के लिए आश्रय प्रदान कर दिया अर्थात् वे समस्त सैनिक उस नदी के प्रवाह मे डूबकर मर गये।

उस समय उस मधुमती नदी का दृश्य विचित्र हो गया था। राजा हर्षदेव के सैनिको के द्वारा त्याग किये गये क्षौम-वस्त्रो से हसमाला समेत-सी, ढालो के समूह से कमल-समूहसहित सी, खड्ग-समूह से शैवल-युक्त सी, अश्वो से शिलाखण्ड मण्डित-सी सुवर्ण के पात्रो से चक्रवाक-विभूषित-सी और चांदी के पात्रो से फेन-पटल-सुमण्डित-सी दिखाई पडने लगी थी। उस समय विजयी दरद वीरो के द्वारा मारे गये तथा जीवित अवस्था मे पकडे गये और मधुमती नदी के द्वारा बहा दिये गये राजा हर्षदेव के सैनिको की गणना कर सकना भी बडा कठिन कार्य था।

इस प्रकार अनाथ के समान दुर्दश ग्रस्त उस राजा हर्षदेव की सेना को उस एकाकी स्वाभिमानी मल्लराज के वीर पुत्र उच्चल ने अपने भ्राता सुस्सल की सहायता से बचाने का साहस-पूर्ण उद्योग किया। उस राजा हर्षदेव के सैन्यरूपी विश्व पर आक्रमण करने के लिए उद्योग कर चुकने वाले और प्रबलता के साथ लहराने वाले दरद-सैन्य-रूपी महासागर को उन दोनो अपूव साहसी और परम पराक्रमी वीर भ्राताओ ने वेलाद्रि (समुद्र के तट वाले पर्वत) के समान अचल बनकर वही रोक दिया। इस प्रकार राजा के सैन्य की रक्षा करके जब वे वापस आये तब उनकी बडी प्रसिद्धि हुई और राज्य श्री पतिवरा कन्या के समान उनके चमकते हुए तेज से उद्दीप्त दीखने लगी।

उस दिन से समस्त लोगो के अन्तःकरण मे यह विश्वास पूर्ण रूप से दृढ हो गया कि ये दोनो स्वाभिमानी वीर-रत्न ही राज्याधिकार के योग्य है और यह कायर राजा हर्षदेव राज्याधिकार के लिए सर्वथा अयोग्य है इस प्रकार वीरता का कार्य करके भी वे दोनो वीर राजा हर्षदेव से मिलने के लिए नही गये और न उन्होने पारितोषिक प्राप्त करने की अभिलाषा की। इसीलिए जन-साधारण के हृदय मे उनके प्रति श्रद्धा और भी अधिक दृढ हो गई।

उसके बाद राजा हर्षदेव शत्रुओ के त्रास से मुक्त होकर अपनी राजधानी मे प्रविष्ट हुआ और मल्लराज के पुत्रो का प्रताप सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। उन दोनो भ्राताओ के भावी उत्कर्ष के अनुरूप सब लोग उनको राम-लक्ष्मण की उपमा से अलकृत करने लगे तथा हर्षदेव को उसके भावी अपकर्ष के अनुरूप रावण की उपमा दी जाने लगी। इतना सब हो जाने के बाद भी वह राजा हर्षदेव के स्वभाव मे कुछ भी परिवर्तन न हुआ। राज्याधिकार के मद से और चाटुकार मन्त्रियो की धूर्त्तता से तथा समय और परिस्थिति के अनुसार विवेचना-शक्ति की न्यूनता से उसमे मूर्खता एव निर्लज्जता की ही अधिक मात्रा दिखाई पड़ने लगी। इसलिए वह राजा नित्यकर्म के समान खेद से रहित होकर पुन अपनी प्रजा को कष्ट देने लगा।

थोड़े-से अपराध के लिए भी नीच मनुष्य अपने समीप के सेवक को मार डालता है परन्तु अधिक अपराध करने वाले दूर देश के शत्रु को नही। तीक्ष्ण क्रोध करने वाला कुत्ता अपने समीप गिरते हुए पत्थर को काटने दौडता है परन्तु दूर से उस पत्थर को फेंकने वाले मनुष्य पर क्रोध नही करता। ठीक यही दशा उस मूर्ख राजा हर्षदेव की भी हुई। किसी समय मदन की सेवाओ से वह राजा उससे प्रसन्न हुआ था। इसीलिए उसने उसे कम्पनेश का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया था, परन्तु जब वह कायर राजा दरद-युद्ध से लौटकर राजधानी मे आया तब परस्पर लडाने की

भावना रखने वाले नीच चुगुलखोरो से उसे पता लगा कि मदन ने उसके पराजय के सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से राज-मर्यादा के विरुद्ध आलोचना की है।

इस समाचार को सुनते ही राजा हर्षदेव मदन पर विशेष-रूप से रुष्ट हो गया। इतना ही नही, बिना मन्त्रियो से परामर्श किये ही उसने उसकी हत्या कर डालने का निश्चय किया। फिर उस मदन पर यह दोषारोपण किया गया कि उसने महारानी की ओर से भेजे गये आज्ञा-पत्र का उल्लघन किया है। इधर मण्डव-राज्य से वापस आने पर जब मदन राजा से मिलने के लिए गया तब राजा ने उसके साथ अच्छे ढङ्ग से बातचीत नही की, इसलिए उसके मन मे शका तथा भय उत्पन्न हो गया और वह टक्क-देश के निवासी मन्त्री लक्ष्मीधर के घर मे जाकर रहने लगा।

मदन ने लक्ष्मीधर से अपने शकाजनित भय के उत्पन्न होने का समस्त वृत्तान्त कह दिया। लक्ष्मीधर ने भी उसके सम्बन्ध मे जो कुछ सुना था, स्पष्ट शब्दो मे कह सुनाया। बाद मे मदन को क्षमा कर देने के लिए मन्त्री लक्ष्मीधर ने राजा हर्षदेव से बडे आग्रह के साथ प्रार्थना की, किन्तु फिर भी कठोर हृदयवाला वह हठी राजा अपने निश्चय को छोड देने के लिए तैयार न हुआ और उस प्रार्थना की ओर कुछ भी ध्यान न देकर उसने पुत्र-समेत मदन को मरवा डाला। इस घटना को देखकर सैनिक लोग भी राजा हर्षदेव की मूर्खता पर हँसने लगे थे।

असमय मे वृक्षो का फूलना, राजा का कोप-स्मित (क्रोधपूर्ण रूखा हास्य) तथा वैताल का अट्टहास—ये सब घातक हुए बिना कदापि नही रह सकते। "हम पर राजा का अतिशय अधिक प्रेम है" ऐसा समझ कर प्राय लोग बडे अभिमान के साथ राजा की सभी प्रकार से सेवा किया करते हैं। जिस प्रकार सर्प का मन्त्र जानने वाला मान्त्रिक मन्त्र जानने के अभिमान से सर्प के काटने की कुछ भी पर्वाह नही करता और अन्त मे सर्प के काटने से ही मृत्यु को प्राप्त होता है उसी प्रकार राजा के प्रेम-पात्र बन जाने से जो लोग उसकी कुछ भी पर्वाह नही करते उन्हे अन्त मे उसी राजा के द्वारा ही घोर दुर्दशा का अनुभव करना पडता है।

इस प्रकार राजा अनन्तदेव की पत्नी महारानी सूर्यमती देवी का शाप राजा कलश के अन्तिम परामर्शदाता और परम धूर्त तथा चुगुलखोर मदन को फलीभूत हुआ। राजा हर्षदेव पराक्रमी पुरुष को देखकर अपने मन मे भय से काँप उठता था। इसी दुर्बलता के कारण उसने अपने वीर मन्त्री कलशराज को लक्ष्मीधर मन्त्री के भवन मे हथकडी और बेडी पहिनाकर कैद मे रख दिया था और वहाँ उसको अपमानित करने के उद्देश्य से उसके परम विरोधी उदय नामक मन्त्री को उस राजा ने शिक्षा देने के बहाने से उसके पास भेजा था।

उदय नाम का वह मन्त्री बडा कटुभाषी था। लक्ष्मी के मद से उसकी उद्दण्डता अपनी सीमा को पार कर चुकी थी। जब वह कैद मे पडे हुए मन्त्री कलशराज के समीप गया तब अभिमान के कारण वह अपने को बडा तेजस्वी समझने लगा। उसके उस भाव को देखकर स्वाभिमानी मन्त्री कलशराज भयानक क्रोधाग्नि से जल उठा और उसने अपने समीप खडे हुए एक सेवक के हाथ से तलवार छीनकर उसी समय उसका मस्तक काट डाला। उसके बाद ही मन्त्री उदय के सेवको ने क्रोध के आवेश मे आकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और मार डाला। इस प्रकार उस दुर्बुद्धि राजा हर्षदेव के दो मन्त्री एक ही साथ मारे गये।

राजा हर्षदेव की ओर से किये गये अत्याचारो से पीडित उस काश्मीर-मण्डल मे घाव पर नमक छिडकने के समान अनेक अन्यान्य दुःख-परम्पराएँ प्रकट होने लगी। जिन लोगो ने

घोष-यात्रा मे पराजित होकर वापस लौटकर आये दुर्योधन को जिस प्रकार कर्ण आदि धूर्तों ने मिथ्या प्रशसा के द्वारा प्रोत्साहित किया था उसी प्रकार राजा हर्षदेव को भी धूर्त्त चाटुकारो ने अपनी मायापूर्ण चाटुकारिता के द्वारा पुन. उत्तेजित करना आरम्भ किया। वाद-विवाद मे प्रतिवादी के द्वारा परास्त किया गया वादी प्रतिवादी को क्रोध के आवेश मे आकर गालियाँ देने लगता है और शील से भ्रष्ट होनेवाली पत्नी मिथ्या कलह के द्वारा अपने पति के मन को उद्विग्न करती है। सब प्रकार के वैभव तथा महत्त्व को गँवाने वाला कायस्थ (सचिव) राजा को सकट मे फँसाकर अपने पराभव का प्रतिकार करने लगता है।

सर्वश्रेष्ठ मत्री सहेलक ने बहुत-सा राजकीय धन निज के काम-काज मे खर्च कर डाला था। वह इस बात को भली-भाँति जानता था कि शासन-व्यवस्था के अनुसार उसने सर्वथा अनुचित कार्य किया है। साधारणतया ऐसा कार्य एक बडे अपराध के ही अन्तर्गत था। इसलिए यदि उसका पता राजा को लग जायेगा तो बडी दुर्दशा होगी, इस भय से अपनी रक्षा के लिए उस स्वार्थ-चतुर मत्री ने राजा को अनेक प्रकार के दुर्व्यसनो की ओर अपने मिष्ट भाषणो के द्वारा ढकेलना आरम्भ कर दिया।

थोडे ही दिनो मे उस धूर्त्त मत्री ने दरद लोगो की दुर्बलताओ का पता लगा लिया। साथ ही साथ इस बात का भी पता लगा लिया कि वे सब किस प्रकार पराजित किये जा सकते हैं। इस प्रकार उन सबो के छिद्र को ढूँढ कर उसने राजा को लोहर प्रान्त के रहने वाले लवन्यो के सहित दुर्गधात नामक दुर्ग को अपने अधिकार मे कर लेने के लिए प्रोत्साहित किया।

उस दुर्ग को प्राचीन काल मे राजा अनन्तदेव की आज्ञा से द्वारपति जनक ने उसके रक्षक लक्कनचन्द्र नामक डामर को मार कर अपने अधिकार मे कर लिया था। उसके बाद उसकी पत्नी ने राजद्वार पर प्रायोपवेशन करके बडे आग्रह के साथ राजा कलश को वह दुर्ग समर्पित किया था। कलश ने उस दुर्ग की रक्षा न की, इसलिए उस दुर्ग पर दरद राजा ने अपना अधिकार कर लिया था। उसके साथ ही साथ उस दुर्ग के समीप वाले उन अनेक गाँवो को दबा लिया था जो काश्मीर-राज्य की सीमा के भीतर थे।

इसलिए प्रधान मत्री सहेलक के कथन को सहर्ष स्वीकार कर राजा हर्षदेव ने उस दुर्ग को लेने के लिए प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। उस दुर्ग मे रहने वाले लोग किसानो के उपयोग के लिए बर्फ जमाकर रखते थे किन्तु दुर्भाग्यवश अनावृष्टि के कारण वहाँ का वह बर्फ समाप्त हो चुका था। यद्यपि यह बात किसी को भी नही विदित हुई थी तथापि राजनीति मे पारगत सहेलक मत्री को यह समस्त समाचार विश्वास-पात्र गुप्तचरो के द्वारा विदित हो चुका था। इसीलिए बिना विलम्ब के तुरन्त आक्रमण करने के लिए वह चतुर मत्री राजा हर्षदेव को निरन्तर प्रेरणा करने लगा।

उस समय चम्पक उस ओर का द्वारपति था और वह इस आक्रमण के लिए जाना ही चाहता था कि इतने मे वातगण्ड आनन्द ने राजा की आज्ञा से उस पर अपना अधिकार कर लिया। राजा ने उसे द्वारपति के पद से हटा कर मण्डलेश के पद पर नियुक्त किया था। वह उस प्रान्त के समस्त द्वारपतियो से शत्रुता करता था और उसने सेना मे अव्यवस्था फैला रखी थी। फिर भी द्वारपति चम्पक ने मधुमती नदी को पार करके अपनी सेना के द्वारा उस दुर्ग को चारो ओर से घेर लिया। राजा हर्षदेव ने अपने समस्त सामन्तो को चारो ओर से एकत्रित करके वहाँ भेज दिया था और स्वय सेना के पडाव से एक पडाव पीछे रहता था।

इसमे सन्देह नही कि काश्मीर-राज के सैनिक बडे पराक्रमी और असीम साहसी थे। युद्ध के क्षेत्र मे जीवन का मोह छोड देना और प्रसन्नतापूर्वक मृत्यु का स्वागत करने के लिए तैयार रहना उनकी विशेषता थी। इसीलिए दुर्ग के आश्रय मे रहकर ऊपर से बडे-बडे शिला-खण्डो को गिराते हुए दरद सैनिको के साथ काश्मीर की सेना ने युद्ध करना प्रारम्भ किया। गुग का पुत्र मल्लराज उच्चल और सुस्सल नामक अपने दो पुत्रो के साथ प्राजिमठिका नामक मोर्चे पर रहकर अचानक दरेदो पर दुसह और अति भयकर आक्रमण करता था।

कुछ समय पूर्व राज्य के प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डितो ने यह भविष्यवाणी की थी कि मल्ल-राज के दोनो पुत्र उच्चल और सुस्सल किसी न किसी समय अवश्य राज्याधिकार को प्राप्त कर लेंगे। उसी भविष्यवाणी की आशा के अवलम्बन से वे दोनो वीर उस दुर्ग को विजय करने के लिए जीवन और मरण को समान समझकर अपना वीरोचित प्रभाव और सम्मान बढा रहे थे। उस समय उस स्थान पर उन दोनो की समानता करने वाला दूसरा कोई अपूर्व साहसी वीर न था।

उन दोनो मे जो ज्येष्ठ भ्राता था वह राजा हर्षदेव से मन ही मन बडा द्वेष रखता था फिर भी होनहार की प्रबलता के वशीभूत होकर वह इस युद्ध मे सम्मिलित हुआ था। अना-वृष्टि से तथा उस प्रतापी राजा के प्रखर प्रताप से शोषित दरद-सैनिक उस समय किसी न किसी प्रकार उस दुर्ग की रक्षा कर रहे थे। उसके बाद राजा हर्षदेव के प्रताप का विरोध करने वाली विधाता की आज्ञा के समान जल और स्थल को एक कर देने वाली भयकर मेघ-वृष्टि हुई।

उस समय की उस विचित्रता पर अत्यधिक मनन करने के पश्चात् यही कहना पडता है मानो कभी-कभी विधाता को भी मानवो से कन्दुक-क्रीड़ा करने की इच्छा होने लगती है इसीलिए वह अपनी उस इच्छा को पूर्ण करने के लिए ऊपर की ओर जाते हुए प्रसन्नचित्त मानवो को तुरन्त नीचे की ओर गिरा कर उनके समस्त उत्साह को क्षण भर मे नष्ट कर देता है और जो मनुष्य क्रमश नीचे की ओर गिरते हुए अपने जीवन से भी हताश होने लगते हैं उन्हे ऊपर की ओर ले जाकर परम प्रसन्न कर देता है।

इसीलिए उस समय की वृष्टि से सम्पूर्ण दुर्ग का शिखर दुर्भेद्य बर्फ की बडी-बडी चट्टानो से आच्छादित हो गया। मानो अनुकूल विधाता ने उस दुर्ग की रक्षा करने के लिए बर्फ को ही सरक्षक-सा बना दिया था। उस भयानक जलवृष्टि से व्याकुल हुए राजा हर्षदेव के दुष्ट मंत्रियो की युद्ध-पिपासा तुरन्त मिट गई। उन सबो को अपने-अपने घरो की याद आने लगी। इसीलिए उन धूर्तों ने राजा की सेना मे पहिले के ही समान गडबडी मचाना आरम्भ कर दिया।

पहिले तो राजा हर्षदेव को युद्ध मे विजय-लाभ की बडी आशा थी। जलवृष्टि होने पर भी उसकी आशा मे कुछ भी परिवर्तन नही हुआ किन्तु जब सैनिको ने भयानक रूप से अशान्ति उत्पन्न कर हुल्लड मचाना आरम्भ किया तब उसके मन की वह आशा निर्मूल हो गई। जिस प्रकार जलप्रवाह के ऊपर की ओर जाने वाली मछली पर्वत के विशाल शिला खण्ड से टकरा कर वापस आ जाती है उसी प्रकार वह राजा हर्षदेव भी विजय की आशा को छोडकर वहाँ से अपनी राजधानी की ओर लौट पड़ा।

राजा के लौटते ही और भी गडबडी बढ गई। राजा के समस्त सैनिक अपना सब सामान, सम्पूर्ण बहुमूल्य वस्तुएँ, समस्त हथियार और कोष-राशि को छोडकर उसी समय भागने

लगे। मार्ग मे कोलाहलमय क्रन्दन करते हुए तथा शत्रु-सैनिको के द्वारा पीछा किये गये और भिन्न-भिन्न मार्गों से भागते हुए राजा के सैनिको को वर्षा के प्रभाव से बढी हुई मधुमती नदी ने अपने उदर मे चिरकाल के लिए आश्रय प्रदान कर दिया। अर्थात् वे समस्त सैनिक उस नदी के प्रवाह मे डूबकर मर गये।

उस समय उस मधुमती नदी का दृश्य विचित्र हो गया था। राजा हर्षदेव के सैनिको के द्वारा त्याग किये गये क्षौम-वस्त्रो से हसमाला समेत-सी, ढालो के समूह से कमल-समूहसहित सी, खड्ग-समूह से शैवल-युक्त सी, अश्वो से शिलाखण्ड मण्डित-सी सुवर्ण के पात्रो से चक्रवाक-विभूषित-सी और चांदी के पात्रो से फेन-पटल-सुमण्डित-सी दिखाई पडने लगी थी। उस समय विजयी दरद वीरो के द्वारा मारे गये तथा जीवित अवस्था मे पकडे गये और मधुमती नदी के द्वारा बहा दिये गये राजा हर्षदेव के सैनिको की गणना कर सकना भी बडा कठिन कार्य था।

इस प्रकार अनाथ के समान दुर्दशा ग्रस्त उस राजा हर्षदेव की सेना को उस एकाकी स्वाभिमानी मल्लराज के वीर पुत्र उच्चल ने अपने भ्राता सुस्सल की सहायता से बचाने का साहस-पूर्ण उद्योग किया। उस राजा हर्षदेव के सैन्यरूपी विश्व पर आक्रमण करने के लिए उद्योग कर चुकने वाले और प्रबलता के साथ लहराने वाले दरद-सैन्य-रूपी महासागर को उन दोनो अपूर्व साहसी और परम पराक्रमी वीर भ्राताओ ने वेलाद्रि (समुद्र के तट वाले पर्वत) के समान अचल बनकर वही रोक दिया। इस प्रकार राजा के सैन्य की रक्षा करके जब वे वापस आये तब उनकी बडी प्रसिद्धि हुई और राज्य श्री पतिवरा कन्या के समान उनके चमकते हुए तेज से उद्दीप्त दीखने लगी।

उस दिन से समस्त लोगो के अन्तःकरण मे यह विश्वास पूर्ण रूप से दृढ हो गया कि ये दोनो स्वाभिमानी वीर-रत्न ही राज्याधिकार के योग्य है और यह कायर राजा हर्षदेव राज्याधिकार के लिए सर्वथा अयोग्य है इस प्रकार वीरता का कार्य करके भी वे दोनो वीर राजा हर्षदेव से मिलने के लिए नही गये और न उन्होने पारितोषिक प्राप्त करने की अभिलाषा की। इसीलिए जन-साधारण के हृदय मे उनके प्रति श्रद्धा और भी अधिक दृढ हो गई।

उसके बाद राजा हर्षदेव शत्रुओ के त्रास से मुक्त होकर अपनी राजधानी मे प्रविष्ट हुआ और मल्लराज के पुत्रो का प्रताप सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। उन दोनो भ्राताओ के भावी उत्कर्ष के अनुरूप सब लोग उनको राम-लक्ष्मण की उपमा से अलकृत करने लगे तथा हर्षदेव को उसके भावी अपकर्ष के अनुरूप रावण की उपमा दी जाने लगी। इतना सब हो जाने के बाद भी वह राजा हर्षदेव के स्वभाव मे कुछ भी परिवर्तन न हुआ। राज्याधिकार के मद से और चाटुकार मत्रियो की धूर्तता से तथा समय और परिस्थिति के अनुसार विवेचना-शक्ति की न्यूनता से उसमे मूर्खता एव निर्लज्जता की ही अधिक मात्रा दिखाई पड़ने लगी। इसलिए वह राजा नित्यकर्म के समान खेद से रहित होकर पुन अपनी प्रजा को कष्ट देने लगा।

थोडे-से अपराध के लिए भी नीच मनुष्य अपने समीप के सेवक को मार डालता है परन्तु अधिक अपराध करने वाले दूर देश के शत्रु को नही। तीक्ष्ण क्रोध करने वाला कुत्ता अपने समीप गिरते हुए पत्थर को काटने दौडता है परन्तु दूर से उस पत्थर को फेंकने वाले मनुष्य पर क्रोध नही करता। ठीक यही दशा उस मूर्ख राजा हर्षदेव की भी हुई। किसी समय मदन की सेवाओ से वह राजा उससे प्रसन्न हुआ था। इसीलिए उसने उसे कम्पनेश का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया था, परन्तु जब वह कायर राजा दरद-युद्ध से लौटकर राजधानी मे आया तब परस्पर लडाने की

भावना रखने वाले नीच चुगुलखोरो से उसे पता लगा कि मदन ने उसके पराजय के सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से राज-मर्यादा के विरुद्ध आलोचना की है।

इस समाचार को सुनते ही राजा हर्षदेव मदन पर विशेष रूप से रुष्ट हो गया। इतना ही नही, बिना मन्त्रियो से परामर्श किये ही उसने उसकी हत्या कर डालने का निश्चय किया। फिर उस मदन पर यह दोषारोपण किया गया कि उसने महारानी की ओर से भेजे गये आज्ञा-पत्र का उल्लघन किया है। इधर मण्डव-राज्य से वापस आने पर जब मदन राजा से मिलने के लिए गया तब राजा ने उसके साथ अच्छे ढङ्ग से वातचीत नही की, इसलिए उसके मन मे शका तथा भय उत्पन्न हो गया और वह टक्क-देश के निवासी मन्त्री लक्ष्मीधर के घर मे जाकर रहने लगा।

मदन ने लक्ष्मीधर से अपने शकाजनित भय के उत्पन्न होने का समस्त वृत्तान्त कह दिया। लक्ष्मीधर ने भी उसके सम्बन्ध मे जो कुछ सुना था, स्पष्ट शब्दो मे कह सुनाया। बाद मे मदन को क्षमा कर देने के लिए मन्त्री लक्ष्मीधर ने राजा हर्षदेव से बड़े आग्रह के साथ प्रार्थना की, किन्तु फिर भी कठोर हृदयवाला वह हठी राजा अपने निश्चय को छोड देने के लिए तैयार न हुआ और उस प्रार्थना की ओर कुछ भी ध्यान न देकर उसने पुत्र-समेत मदन को मरवा डाला। इस घटना को देखकर सैनिक लोग भी राजा हर्षदेव की मूर्खता पर हँसने लगे थे।

असमय मे वृक्षो का फूलना, राजा का कोप-स्मित (क्रोधपूर्ण रूखा हास्य) तथा वैताल का अट्टहास—ये सब घातक हुए बिना कदापि नही रह सकते। "हम पर राजा का अतिशय अधिक प्रेम है" ऐसा समझ कर प्राय लोग बडे अभिमान के साथ राजा की सभी प्रकार से सेवा किया करते है। जिस प्रकार सर्प का मन्त्र जानने वाला मात्रिक मन्त्र जानने के अभिमान से सर्प के काटने की कुछ भी पर्वाह नही करता और अन्त मे सर्प के काटने से ही मृत्यु को प्राप्त होता है उसी प्रकार राजा के प्रेम-पात्र बन जाने से जो लोग उसकी कुछ भी पर्वाह नही करते उन्हे अन्त मे उसी राजा के द्वारा ही घोर दुर्दशा का अनुभव करना पडता है।

इस प्रकार राजा अनन्तदेव की पत्नी महारानी सूर्यमती देवी का शाप राजा कलश के अन्तिम परामर्शदाता और परम धूर्त्त तथा चुगुलखोर मदन को फलीभूत हुआ। राजा हर्षदेव पराक्रमी पुरुष को देखकर अपने मन मे भय से काँप उठता था। इसी दुर्बलता के कारण उसने अपने वीर मन्त्री कलशराज को लक्ष्मीधर मन्त्री के भवन मे हथकडी और बेडी पहिनाकर कैद मे रख दिया था और वहाँ उसको अपमानित करने के उद्देश्य से उसके परम विरोधी उदय नामक मन्त्री को उस राजा ने शिक्षा देने के बहाने से उसके पास भेजा था।

उदय नाम का वह मन्त्री बडा कटुभाषी था। लक्ष्मी के मद से उसकी उद्दण्डता अपनी सीमा को पार कर चुकी थी। जब वह कैद मे पडे हुए मन्त्री कलशराज के समीप गया तब अभिमान के कारण वह अपने को बडा तेजस्वी समझने लगा। उसके उस भाव को देखकर स्वाभिमानी मन्त्री कलशराज भयानक क्रोधाग्नि से जल उठा और उसने अपने समीप खडे हुए एक सेवक के हाथ से तलवार छीनकर उसी समय उसका मस्तक काट डाला। उसके बाद ही मन्त्री उदय के सेवको ने क्रोध के आवेश मे आकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और मार डाला। इस प्रकार उस दुर्बुद्धि राजा हर्षदेव के दो मन्त्री एक ही साथ मारे गये।

राजा हर्षदेव की ओर से किये गये अत्याचारो से पीडित उस काश्मीर-मण्डल मे घाव पर नमक छिडकने के समान अनेक अन्यान्य दुःख-परम्पराएँ प्रकट होने लगी। जिन लोगो ने

सूर्य के रहने पर भी अर्थात् दिन-दहाड़े राजभवन मे से सुवर्ण की थाली चुरा ली, ऐसे भयानक चोर धनिक नागरिको को लूटने लगे। इस उपद्रव के साथ ही साथ महामारी का भी वहाँ आगमन हुआ। सर्वत्र हाहाकार मच गया। सभी दिशाओ मे भयानक क्रन्दन-ध्वनि तथा प्रेत-वाद्यो की हृदय-विदारक आवाज सुनाई पड़ने लगी।

लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ पचहत्तर मे सम्पूर्ण काश्मीर-मण्डल के समस्त ग्राम नदियो मे बाढ आ जाने के कारण जलमग्न हो गये। इसलिए समस्त आवश्यक वस्तुओ का घोर दुर्भिक्ष हो गया। अन्न के न मिलने पर त्राहि-त्राहि मच गई। जो बेचारे दीन, अनाथ और निर्धन थे, उनके जीवन की समाप्ति यो ही होने लगी। पाँच सौ दीनारो के देने पर एक खारी चावल मिलने लगा था और दो पल द्राक्षारस का मूल्य एक दीनार हो गया था।

छ दीनार दे देने पर एक पल ऊन मिल सकता था और नमक, मिर्च, हीग आदि वस्तुओ का तो नाम-मात्र के लिए भी दर्शन नही हो सकता था। नदी का जल फूले हुए और सड़कर सर्वत्र भयकर दुर्गन्ध को फैलाते हुए मृत प्राणियो के शरीरो से आच्छादित हो गया था। उन शवो का समूह पर्वत पर से टूट कर और नदी के प्रवाह के साथ बह कर नीचे की ओर आये हुए देवदारु वृक्षो के वन के समान दिखता था।

राजधानी के चारो ओर हरे-भरे वृक्ष अपनी शोभा से प्रकृति-सुन्दरी को अधिक सुदृश्य बना रहे थे। उन समस्त घने वृक्षो के कारण ऐसा मालूम होता था मानो स्वर्गीय सुषमा के सर्वस्व नन्दन-कानन मे ही वह राजधानी इन्द्र की पुरी की समता कर रही हो, किन्तु विधाता से यह भी न देखा गया। एक दिन राजा हर्षदेव ने "इन वृक्षो के व्यवधान से राजधानी दूर से नही दिखाई पड़ती" ऐसा सोचकर नगर के चारो ओर लगे हुए समस्त हरे-भरे वृक्षो को काट डालने का आदेश दे दिया।

अपने-अपने बाल-बच्चो के सहित घर मे रहते हुए सद्-गृहस्थो के समान पुष्प और फलो से परिपूर्ण वृक्षो को राजा के आदेश से काट डाला गया। इस दुर्घटना से दु खित होकर कुटुम्बी जनो के समान मधुकर उन समस्त वृक्षो के लिए स्थान-स्थान पर शोक करने लगे। इसी प्रकार अत्यन्त पीड़ित प्रजा पर भी वह दुष्ट राजा हल के भार को खीचते-खीचते शिथिल हुए वृद्ध वृषभ (बूढे बैल) के मस्तक पर पाषाण-ताड़न के समान प्राणघातक अत्याचार करता था।

उसने कायस्थ कर्मचारियो के द्वारा अनेक प्रकार के नये-नये कर वसूल करके प्रजा को इतना कष्ट दिया कि नगर तथा ग्रामो की साधारण-सी मृत्तिका भी राजकीय कर के बिना न रह सकी। उसके बाद जिस समय डामर लोग विद्रोही होकर उद्धत होने लगे उस समय उस राजा ने साक्षात् यमराज का रूप धारण कर लिया और उस प्रान्त के मण्डलेश्वर आनन्द को उनका उच्छेद करने के लिए आदेश दिया।

उसने राजा की आज्ञा के अनुसार सर्वप्रथम मडव-राज्य के अन्तर्गत होलडा प्रान्त के असंख्य डामरो को घोसलो मे रहते हुए पक्षियो के समान अपने-अपने स्थानो पर रोक कर वही मार डाला। इस प्रकार जिस समय वह लवन्य डामरो का नाश कर रहा था उस समय यदि कोई ब्राह्मण भी अपने केशो को ऊपर की ओर बाँधकर और विकट आकृति को धारण कर मडव प्रान्त की ओर से निकलता था तो वह भी उसके द्वारा जीवित नही छोड़ा जाता था। लवन्य डामर मानकर बेचारे निरपराध पथिक लोग भी सूली पर चढा दिये जाते थे। इसीलिए वह

प्रदेश भैरव की पाकशाला (रसोईघर) के समान भयकर और निर्जन अरण्य-सा दिखाई पड़ने लगा।

मण्डलेश्वर आनन्द भी भयानक पुरुष था। जिस प्रकार वह राजा आज्ञा देते समय परिणाम पर विचार नही करता था, उसी प्रकार उसका वह कर्मचारी आनन्द भी आज्ञा का पालन करते समय कार्य के परिणाम पर विचार करना ही मूर्खता समझता था। इसीलिए राजा की कठोर आज्ञा का पालन करते हुए उसने एक लवन्य जाति की क्रूर स्त्री को बड़ी निर्दयता के साथ सूली पर चढा दिया था। इस घटना से समस्त लवन्य उस मण्डलेश्वर से भयभीत होकर किसी दूसरे स्थान मे भाग गये। उनमे से कुछ लोग म्लेच्छ-देशो मे जाकर गो-मास भक्षण करने लगे और कुछ लोग चक्की पीसने लगे तथा कुछ लोग रहट चलाने लगे।

मण्डलेश्वर आनन्द ने उस हर्षदेव-रूपी भैरव के पास उपायन के रूप मे अनेक लवन्यो मस्तको की अखण्ड के मुण्ड-मालाएँ भेजी। राजद्वार पर चारो ओर घंटाओ के समान डामरो की करोटियो अर्थात् खोपड़ियो से बनी हुई तोरणावलियाँ दिखाई पड़ती थी। जो कोई मनुष्य डामर का मस्तक काट कर लाता था उसे पारितोषिक के रूप मे सुवर्ण-ककण (कगन) तथा वस्त्र आदि राजभवन के द्वार पर लटका दिये गये थे। डामरो के मुन्डो से चिपके हुए मास को खाने के लिए सुविस्तृत नृमुन्ड-तोरणावली पर बैठे हुए गिद्ध, कौए आदि पक्षिगण राजद्वार का सेवन करने लगे।

राज्य मे भ्रमण करते समय राजा हर्षदेव का जहाँ-जहाँ पडाव होता था, वहाँ-वहाँ के लोग उसके स्वागत के लिए लवन्य डामरो के मुण्डो से बनी हुई बडी-बडी तोरणावलियाँ अपने घरो के द्वार पर लटकाते थे। श्मशान के समान मृत शरीरो से परिपूर्ण उस भयानक देश मे सडे हुए शवो की दुर्गन्ध से नासिका और चिल्लाते हुए शृगालो की भयानक आवाज कानो को दु सह कष्ट होता था।

उस क्रूर मण्डलेश्वर ने वलेरक प्रपा नामक प्रान्त से लेकर लोक-पुण्य पर्यन्त के मार्ग मे दोनो ओर डामरो को सूली पर चढ़ाकर मार्ग के दोनो ओर की सीमा-सी बना दी थी। इस प्रकार उसने मडव-राज्य के अन्तर्गत रहने वाले समस्त डामरो का सत्यानाश करके क्रम-राज्य मे भी उसी प्रकार डामरो का सर्वनाश करने के लिए उसी समय प्रस्थान किया। उसके उस प्रस्थान से ऐसा विदित होता था मानो ससार का सर्वनाश करने के लिए स्वय यमराज ही अपने दल-बल के साथ चला जा रहा हो अथवा यो समझ लेना चाहिए कि प्रलयकालीन घोर सकट ही साकार रूप धारण कर विचरण करने के लिए निकला हो।

मण्डलेश्वर आनन्द की क्रूरता के सम्बन्ध मे सभी की वाणी मूक हो चुकी थी। जो जिस स्थान पर था वह उसी स्थान पर खडा रह गया। उसे समझाने का अथवा उसकी आलोचना करने का साहस किसी भी व्यक्ति मे नही था। जिस समय क्रम राज्य के डामरो ने उसे अपने प्रान्त की ओर आते हुए सुना उस समय उन्हे अपने अवश्यभावी मरण का निश्चय हो चुका था, इसलिए उन सबो ने लौलह नामक स्थान पर एकत्रित होकर विशाल सेना का संग्रह किया। इसके बाद वे अपने मोर्चे पर डट कर उस मण्डलेश्वर के साथ लडे तथा बड़े भयानक रूप से मारकाट मचा दी। इसीलिए मण्डलेश्वर आनन्द को कई दिनो तक वहाँ रुक जाना पडा।

उस क्रूर स्वभाव वाले महा अत्याचारी पापात्मा हर्षदेव के सम्बन्ध मे और अधिक क्या कहा जाय ? हमारे विचार से इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि कोई राक्षस ही हर्षदेव के

रूप को धारण कर वहाँ उत्पन्न हुआ है। जिस पवित्रतम काश्मीर-मण्डल की पूजा देवता तथा ऋषि किया करते थे उसी को किसी कारणवश नष्ट-भ्रष्ट कर देना इसका मुख्य उद्देश्य है। क्योकि रात्रि के समय उल्लास, दिन मे शयन, क्रूरता, उद्दण्डता, बातचीत मे क्षुद्रता और यमराज के करने योग्य कार्य मे (मनुष्यो के प्राण हरण करने मे) प्रीति तथा इसी प्रकार के अन्य राक्षसोचित धर्म उस हर्षदेव को अत्यंत रुचिकर थे, ऐसा उस समय के विद्वानो का कथन है।

उसी समय मे यौवन के मद से उन्मत्त मल्लराज का कनिष्ठ पुत्र सुस्सल लक्ष्मीधर मत्री की पत्नी का प्रणय-पात्र बन गया था। सुस्सल लक्ष्मीधर मत्री का पडोसी था, इसलिए उसकी पत्नी उस सुन्दर और युवक राजकुमार पर अनुरक्त हो गई थी। उसको बन्दर के समान कुरूप अपना पति अच्छा नही लगता था।

जब से सुस्सल उसका प्रणय-पात्र बना तब से वह अपने पति लक्ष्मीधर से प्रेमपूर्वक बातें भी न करने लगी। यदि लक्ष्मीधर उसे प्रेमपूर्वक बुलाता भी तो वह उस से कुपित हो जाती और चुपचाप उसके पास से उठ कर चली जाती। पहिले तो लक्ष्मीधर कुछ भी रहस्य न समझ सका। किन्तु जब उसे समस्त रहस्य का पता लग गया तब वह भी ईर्ष्या के वशीभूत हो गया और अवसर पाकर राजा हर्षदेव से कहने लगा—"महाराज! आप ने बहुत से अगण्य (गणना करने के लिए जो किसी भी दशा मे योग्य न हो उन समस्त) ज्ञाति-बान्धवो का तो वध कर डाला किन्तु मेरी समझ मे यह नही आ रहा है कि उद्धत स्वभाववाले और भविष्य मे राज्याधिकार को प्राप्त करने के योग्य इन उच्चल तथा सुस्सल दोनो भ्राताओ का वध आप किसलिए नही करा रहे है।"

मत्री लक्ष्मीधर द्वारा कहे गये इस प्रकार के वचनो को सुनकर भी इसके पूर्व मार डाले गये बान्धवो की हत्या के पश्चात्ताप से व्याकुल हुए उस राजा ने क्रोध नही किया। वह उस समय चुपचाप बैठा ही रहा। जब मत्री लक्ष्मीधर ने देख लिया कि उस समय उसके कहने का कुछ भी सतोषजनक प्रभाव राजा पर नही पडा तब उसने इस विषय मे दूसरो के द्वारा भी राजा से कहलाना आरभ किया और स्वय भी कई बार कहा, फिर भी राजा हर्षदेव ने कई दिनो तक उस ओर ध्यान नही दिया, क्योकि उनकी शूरता और उद्धता को सोचकर उनको मरवा डालने का साहस नही होता था। फिर थोड़े ही समय मे ज्ञाति-प्रीति, अनुवृत्ति, उपकृति इत्यादि सब कुछ भूल कर मत्रियो के परामर्श से राजा हर्षदेव ने उन दोनो भ्राताओ को मरवा डालने का निश्चय किया।

राजा के इस दुष्ट अभिप्राय को इनके साथ प्रेम करने वाली थवकना नामक वेश्या ने उनसे कह दिया। उसके कहने के बाद उनके मित्र दर्शनपाल ने भी उस सम्बन्ध मे उनके सशय को दूर कर दिया। जब उन्हे यह पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि राजा हर्षदेव उन दोनो को यथाशीघ्र यमलोक का दर्शन कराना चाहता है तब वे दोनो रात्रि के समय चुपचाप दो-तीन सेवको को साथ मे लेकर वहाँ से चल दिये। वे दोनो वीर-रत्न लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ छिहत्तर के मार्गशीर्ष (अगहन) मास मे नगर से निकल कर उत्रास ग्राम के रहने वाले डामरो के स्थान पर पहुँच गये।

प्रशस्तराज नामक लवन्य डामर ने उन दोनो का उचित स्वागत-सत्कार किया। सहसा आने का कारण भी पूछा। उससे उस समय जितना कहा जाना उचित था, उतना

उन दोनो ने उस से कह दिया। प्रशस्तराज का छोटा भाई सिल्लराज था। उन दोनो भाइयो मे परस्पर मेल नही था। प्रशस्तराज उसके साथ द्रोह करना चाहता था इसलिए उसने उन दोनो वीर भ्राताओ को किसी प्रकार समझा-बुझाकर वहाँ से दूसरे प्रान्त मे भेज दिया। वहाँ से चले जाने के बाद ज्येष्ठ भ्राता उच्चल राजपुरी को गया और कनिष्ठ भ्राता सुस्सल कालिंजर को चला गया।

जब वे दोनो काश्मीर की राजधानी को छोड कर चले गये तब वह बडी भयानक-सी हो गई। नगर-निवासी उन दोनो के चले जाने पर बडा दु.ख प्रकट करने लगे। उन्हे ऐसा जान पड़ने लगा मानो उन सबो का कोई अपना सगा चला गया हो। उन दोनो के बिना वे सब अपने को पूर्ण रूप से अनाथ समझने लगे। किसी को भी राजा हर्षदेव पर विश्वास न रहा। साथ ही साथ शकुनशास्त्र के जानने वाले उस राजा के मन मे भी भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक अपशकुनो को देख कर शका होने लगी।

वह निरंतर चिन्तित-सा रहने लगा। जिस किसी प्रकार हो वह उन दोनो भ्राताओ को जीवित नही रहने देना चाहता था। अतएव उसने लक्ष्मीधर मत्री के द्वारा राजपुरी के राजा सग्रामपाल को धन देकर उच्चल को मार डालने के लिए कहलाया। जिस समय उच्चल राजपुरी मे पहुँचा था उस समय उसने उसका बडा आदर-सम्मान किया था, परन्तु जब यमराज के समान निर्मम हर्षदेव का भय लगने लगा तब वह उसका और भी अधिक आदर करने लगा। दैवयोग से धैर्यहीन बन कर दुष्ट मनुष्य शका और भय प्रकट करने लगता है; और ऐसा ही करते-करते वह उदय होने वाले शत्रु के महत्व को कही अधिक बढा देता है। इस प्रकार की घटनाएँ इस ससार मे प्राय हुआ करती है।

राजपुरी के लोग काश्मीर मे होने वाले अनर्थो का अपने हृदय से अभिनन्दन करते थे और फिर हर्षदेव का प्रबल शत्रु उच्चल जब वहाँ पहुँच गया था तब फिर वहाँ पर होने वाले षड्यत्रो के सम्बन्ध मे कहना ही क्या है? उसके बाद उच्चल ने अपने पास आने-जाने वाले कतिपय पक्षपात करने वाले लोगो के द्वारा डामरो को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करना आरम्भ किया। राजा हर्षदेव के अत्याचार से अत्यन्त पीडित डामर उच्चल के आश्रय को प्राप्त करने के लिए बडे उत्साह के साथ अपने दूतो के द्वारा तथा उसके अन्तरग मनुष्यो के द्वारा अनेक उपायन (भेंट, नजर आदि) भेजकर उससे काश्मीर को वापस आने के लिए प्रार्थना करने लगे।

सूर्यवर्मचन्द्र के पुत्र जनक नामक डामर ने भी अपने चतुर दूतो के द्वारा उसे काश्मीर को वापस आने के लिए प्रोत्साहित किया। डामरो के दूतो को आते हुए देख कर सग्रामपाल ने हर्ष का भय त्याग दिया और वह प्रकट रूप से उच्चल का अत्यधिक सम्मान करने लगा। इसके बाद उसने कार्य-गौरव के वशीभूत होने के कारण नम्रतापूर्वक मस्तक पर कपूर-चूर्ण चढाकर उसे अभयदान दिया और फिर युद्ध के लिए विजय-प्रयाण करने को कहा। इतने मे उस प्रान्त के प्रधान ठक्कुर कलशराज को राजा हर्षदेव ने धन देकर सग्रामपाल के पास भेजा। उसने एकान्त मे सग्रामपाल को समझाते हुए कहा—

"आप राजा हर्षदेव की आराधना को छोड कर इस उच्चल की भलाई क्यो चाहते हैं? यह तो कामधेनु को ठुकराकर बकरी की सेवा करने के समान बडा ही तुच्छ कार्य है। काश्मीर राज्य के प्रतापशाली राजाओ के सामने वह क्या है? राजा हर्षदेव की तुलना मे उसका कुछ भी

महत्त्व नही है। उस बेचारे मे शक्ति ही क्या है ? इसलिए राजा हर्ष की आराधना करके आप स्वयं को निर्भय बना लीजिए और उच्चल को राजगिरि के दुर्ग मे रख दीजिए, जिससे हर्षदेव को भी भय बना रहेगा तथा वह हमारा स्थायी मित्र बन कर हमारे कथनानुसार चलता रहेगा।

इस प्रकार कलशराज ठक्कुर के वचन सुनकर स्वार्थी तथा विवेक से शून्य खशो के राजा उस सग्रामपाल ने "ऐसा ही होगा" कह कर उसके कथन को स्वीकार कर लिया। फिर उसने कलशराज से स्पष्ट शब्दो मे कहा—"उस बलशाली वीरश्रेष्ठ उच्चल को कैद करने मे मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, इसलिए मैं किसी न किसी बहाने से उसे आप के पास भेज दूंगा। आप ही उसे कैद कर लीजिएगा।" ऐसा कह कर सग्रामपाल ने कलशराज को अपने स्थान पर वापस रवाना किया और उसके बाद उच्चल के पास आकर कहा—"कल आप प्रात काल मे कलशराज ठक्कुर से अवश्य मिल लीजिएगा, क्योकि वह इस प्रान्त का प्रधान अधिकारी है। उससे मिल लेने के बाद आप यहाँ भविष्य के लिए निरापद हो जावेगे और बाद मे मैं भी आपके शत्रुपक्ष का विनाश करने के लिए अपने सैनिको को सहायतार्थ देकर आप को शत्रु पर आक्रमण करने के लिए भेज सकूंगा।"

उच्चल को सग्रामपाल पर उसके द्वारा सज्जनतापूर्ण व्यवहार किये जाने के कारण पूर्ण विश्वास था ही। वह विश्वासघात करेगा ऐसा उच्चल स्वप्न मे भी कल्पना नही कर सकता था। इसलिए सग्रामपाल के कथनानुसार दूसरे दिन जब वह कलशराज ठक्कुर से मिलने के लिए रवाना होने लगा तब उसे अनेक प्रकार के अपशकुन हुए। वह बडी दुश्चिन्ता मे पड गया। उसके बाद उसे अपने विश्वास-पात्र-मित्रो के द्वारा गुप्त रूप से उस षड्यत्र का पता भी लग गया। रहस्य-भेद हो जाने के कारण वह सग्रामपाल के पास जाने के लिए लौट पडा।

जब कलशराज ने इन समस्त बातो को सुना तब वह भयानक रूप से क्रुद्ध होकर सेना-समेत उस पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ। वीरश्रेष्ठ उच्चल भी कलशराज को अपने ऊपर आक्रमण करने के उद्देश्य से आते देखकर वीरोचित अभिमान के साथ सेवक-वर्ग-समेत उसका सामना करने के लिए डट गया। फिर उन दोनो के सघर्ष को प्रारम्भ होते देखकर सग्राम-पाल तुरन्त उस स्थान पर आ पहुँचा और मध्यस्थ बनकर उच्चल को शान्त किया तथा कलशराज के सहित उसे अपनी राजसभा मे ले गया।

उस समय उच्चल के सेवक उससे "उस ओर जाना ठीक नही है" ऐसा कह रहे थे, परन्तु उसने उन्हे फटकार दिया और वह पूर्ण रूप से तैयार होकर उस खशराज सग्रामपाल की राज-सभा मे गया। उस समय क्रोध के कारण उच्चल के अधरोष्ठ का कम्पन हो रहा था। वहाँ पर प्रलयकालीन सूर्य के समान अतिशय तीक्ष्ण और तेजोनिधि उस कोपायमान वीर-रत्न उच्चल की ओर सग्रामपाल अथवा कलशराज ठक्कुर दोनो देख नही सकते थे।

कुछ क्षणो के बाद एकान्त मे उस महान् तेजस्वी वीर उच्चल ने सान्त्वना प्रदान करते हुए मन्त्रि-समेत खशाधीश्वर सग्रामपाल से क्रुद्ध होकर कठोर शब्दो मे कहा—"यह सत्य है कि इस समय काश्मीर का राज्याधिकार हर्षदेव को प्राप्त है और मैं राजपुरी मे वहाँ से भाग कर आया हूँ किन्तु यह कदापि सत्य नही हो सकता कि काश्मीर के वर्त्तमान राजवश से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि आप सब यह भलीभाँति समझे होते तो मेरा अनिष्ट करने के लिए विश्वासघात

का कार्य न करते। आप सबो को यह नित्य स्मरण रखना चाहिए कि उच्चल और हर्षदेव दोनो एक ही गगन-मण्डल मे प्रकट होने वाले वे मेघ है जो इस समय दुर्भाग्य-रूपी वायु से प्रताडित होकर भिन्न-भिन्न दिशाओ की ओर उड़ने लगे हैं।"

प्राचीन काल की बात है। दार्वाभिसार देश मे नर नामक भारद्वाज गोत्री राजा राज्य करता था। वह बडा धार्मिक और न्यायपरायण था। जिस प्रकार वह सुखी था उसी था उसी प्रकार उसकी प्रजा भी सुखी थी। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीवन के ये चारो फल सर्वसाधारण को आनन्द देने मे समर्थ हो रहे थे। ऐसे उस प्रतापी राजा के वश को प्रकाशित करने वाला उसका पुत्र नरवाहन हुआ। पिता के ही समान नरवाहन भी प्रजा-हितैषी था। प्रजा-मात्र को निरन्तर सुख पहुँचाना ही उसके जीवन का मुख्य ध्येय था। इसीलिए सर्वसाधारण के हृदय-मन्दिर मे वह देवता के समान पूजा जाता था। ससार मे उसकी बडी प्रसिद्धि हुई।

उसके सुयश की महिमा को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए उसके यहाँ फुल्ल नामक पुत्र ने जन्म लिया। वह फुल्ल अपने पिता नरवाहन के ही समान प्रजा को नित्य प्रफुल्लित रखता था। उसके शासनकाल मे प्रजा-वर्ग ने अपने-अपने जीवन की विशेष उन्नति कर ली थी। फुल्ल के यहाँ परम प्रतापी सातवाहन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सातवाहन का पुत्र चन्द हुआ। चन्द का पुत्र चन्दुराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उस चन्दुराज के गोपाल तथा सिंहराज नामक दो पुत्र हुए।

"सिंहराज के अनेक पुत्र हुए। उसने अपनी कन्या दिद्दा का विवाह क्षेमगुप्त नामक काश्मीर-नरेन्द्र के साथ किया। उस दिद्दारानी ने अपने पति का स्वर्गवास हो जाने के बाद पुत्र न होने के कारण अपने भ्राता उदयराज के पुत्र सग्रामराज को राज्य का अधिकारी बनाया और दिद्दारानी के दूसरे भ्राता कान्तिराज के यहाँ जस्सराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सग्रामराज का पुत्र, अनन्तदेव हुआ। वैसे ही जस्सराज के तन्वग और गुग नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। अनन्तदेव से कलशराज का तथा गुग से मल्लराज का जन्म हुआ। कलशराज से हर्षदेव आदि की उत्पत्ति हुई है और मल्लराज के पुत्र हम दोनो भ्राता उच्चल और सुस्सल हैं।"

"इस प्रकार वश की परम्परा का सुस्पष्ट क्रम होने पर भी हमारे विषय में ये काश्मीर-राजवश के कौन हैं? मूर्ख लोग ऐसा प्रश्न करने लगते है। ध्यान रखना चाहिए कि यह वसुन्धरा वीर पुरुषो द्वारा ही भोग की जाती है। जो कायर हैं वे कदापि इसका भोग नही कर सकते। वसुन्धरा को भोगने के कार्य मे वश की परम्परा के क्रम का कहाँ उपयोग होता है और वीर पुरुष के लिए अपनी दोनो भुजाओ के अतिरिक्त दूसरा कौन सहायक हो सकता है?"

"मानता हूँ कि मुझे जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थियो के बीच से चलना पडा है किन्तु आज-तक दयनीय और शोचनीय मनुष्यो के सामने अपने मस्तक पर हाथ रखकर मैंने अपने काश्मीर-राजवश को कलकित नही किया है, यह वास्तव मे मेरे लिए बडी प्रसन्नता का विषय है। अब आप लोग मेरी कार्य कर सकने वाली शक्ति को देखिएगा।" ऐसा कहकर वह परम तेजस्वी वीर-चूडामणि उच्चल अपने एक सौ पैदल सैनिको को साथ लेकर विजय प्राप्त करने के लिए वहाँ से रवाना हो गया।

सबसे पहिले रास्ते मे उसके सामने मारे गये खरगोश को हाथ मे लिये हुए शिकारी आया। उस परम मागलिक शकुन को देखकर वह शत्रु के राज्य-वैभव को अपने अधीन हुआ-सा मानने लगा। फिर कुछ दूर जाते ही रास्ते मे काश्मीर-राज्य से निर्वासित किये गये। वाट्टदेव आदि

डामर रहट खीचना, चक्की पीसना आदि कार्यों को छोड़कर उसके साथी वन गये। उस समय संग्रामपाल नगर के बाहर अपने कटक अर्थात् छावनी मे था। वहाँ से उसके साथ उच्चल राजपुरी मे आया। वहाँ पर आते ही सग्रामपाल की रानियो से उसका स्वागत किया और उसे खिन्न देखकर अनेक प्रकार के आश्वासन दिये और प्रसन्न करने का प्रयत्न किया।

वहाँ भोजन करके सायकाल के समय वह अपने निवास-स्थान की ओर जाने के लिए रवाना हुआ ही था कि इतने मे कलशराज ठक्कुर के सैनिको ने उस पर आक्रमण किया। इस घटना को देखकर सग्रामपाल की रानियो ने उसे वही पर रोक लिया और द्वार को बन्द कर दिया। वहाँ पर उसके सैनिक तथा कलशराज के सैनिको का घोर संग्राम हुआ। उसमे लोष्ठावट्ट आदि उच्चल के सैनिक मारे गये। कुछ समय तक युद्ध हो जाने के वाद प्रधान पुरुषो ने मध्यस्थ वनकर उस सघर्ष को शान्त करा दिया।

उसके साथ के सैनिक पहिले से ही अल्पसख्यक थे और उस युद्ध मे मारे जाने के कारण और भी अत्यल्प रह गये। चैत मास की पूर्णिमा के दिन उसे इस भयानक सकट का अनुभव करना पडा, परन्तु उसने किसी प्रकार से भी त्रस्त और व्याकुल न होकर वैशाख कृष्ण पचमी को विजय के लिए पुन: प्रयाण किया। उसने वाट्टदेव आदि अपने अनुयायियो को अपने-अपने मार्ग से लूटमार आदि उपद्रव करते हुए आने का आदेश देकर स्वय क्रम-राज्य के मार्ग से काश्मीर-देश मे प्रवेश करने का विचार किया।

राजा हर्षदेव ने उदयसिह के मरने के वाद क्षेमराज के पुत्र कपिल को लोहर प्रान्त का द्वाराधीश नियुक्त किया था। उसने अपनी सीमा का उल्लघन कर काश्मीर की सीमा मे प्रवेश करते हुए उच्चल को देखकर भी नही रोका। वह स्वय सवसे पहिले अग्रसर होकर ढाल और तलवार हाथ मे लेकर चल दिया। फिर पर्णोत्स प्रदेश मे कपिल के राज्यपक्षीय सैनिको तथा उच्चल के डामर सैनिको का संघर्ष हो गया। उसमे वीर उच्चल ने शत्रुपक्ष के सैनिको को मार भगाया।

सुज्जक नामक राजा का द्वारपति नि शक होकर वैठा था। यह देखते हुए भी कि राजा का शत्रु राज्य पर चढा आ रहा है फिर भी उसने उसे रोकने का कुछ भी प्रयत्न न किया। उसे उच्चल ने तुरन्त वांध लिया और मास-भक्षण करने की अभिलाषा करने वाले भूखे श्येन (वाज) पक्षी के समान वह काश्मीर-देश पर झपटा। उसे आया हुआ देखकर राजा हर्षदेव के परम विरोधी डामर और खश-जाति के लोग चारो ओर से उसी समय उसके समीप एकत्र हो गये और फिर तन-मन से उसकी सहायता करने के कार्य में लग गये। उस समय उन सवो के आनन्द का ठिकाना न रहा।

सहसा गगन-मण्डल से गिरे हुए-से अथवा धरती के गर्भ से निकले हुए-से उस महापराक्रमी वीर-रत्न उच्चल को अचानक असभावित रूप से आते देखकर राजा हर्षदेव भय से कांपने लगा। "कदाचित् यह उद्दण्ड उच्चल क्रम-राज्य के मण्डलेश आनन्द का वध न कर डाले और इस प्रकार के हिंसात्मक कार्य से वह अपनी जड को सव तरह से मजवूत न कर ले?" इस प्रकार तर्क-वितर्क कर राजा हर्षदेव अत्यन्त व्याकुल हो गया। "जिस किसी भी प्रकार हो इस विद्रोही का अवश्य दमन करना चाहिए" ऐसा निश्चय कर उसने दण्डनायक को उससे युद्ध करने के लिए आदेश दिया।

जब उसने देखा कि दण्डनायक ने सैनिकों को एकत्र करने में ही अधिक विलम्ब लगा दिया है तब उसे बड़ा क्रोध आ गया। एक क्षण के लिए भी विलम्ब न करके उसने पट्ट को विशाल सेना देकर अपने शत्रु उच्चल से युद्ध करने के लिए भेजा। चलने को तो वह राजा हर्षदेव के सामने से बड़ी शीघ्रता से चला और ऐसा वीरतापूर्ण भाव प्रदर्शित किया कि राजा को उसके विजयी होकर लौट आने में कुछ भी सन्देह न रहा। न मालूम दुर्भाग्य से सहसा हतवीर्य हो जाने के कारण अथवा स्वामि-द्रोह के विचार से आक्रान्त हो जाने के कारण उस पट्ट ने शत्रु पर आक्रमण करने के अवसर की उपेक्षा कर मार्ग में ही विलम्ब करना आरम्भ कर दिया।

उसके अतिरिक्त राजा ने तिलकराज आदि जिन-जिन अन्य शूरवीरों को शत्रु का सामना करने के लिए भेजा, वे सब पट्ट के समीप तक पहुँचने के बाद आगे नहीं बढ़े। उनके बाद राजा ने नायक को विशाल सेना-समेत रवाना किया, परन्तु वह भी आगे नहीं बढ़ सका और व्याकुल होकर वहीं रुक गया। इधर उच्चल की जड़ मजबूत होने लगी। वराहमूल नामक स्थान में प्रवेश करते हुए उस उच्चल को शत्रु की सेना से भाग कर आई हुई राज्य-लक्ष्मी के समान सुलक्षणा अश्वा (घोड़ी) मिल गई थी। उसी प्रकार जब वह भगवान् वराहदेव के दर्शन के लिए गया तब वराहदेव के मस्तक पर से पुष्प-माला उसके मस्तक पर गिर गई। उस माला के उसके मस्तक पर गिरने से यह अनुमान होने लगा मानो वराह भगवान् के दांतों पर निवास करनेवाली वसुन्धरा ने उसके गले में स्वयंवर की वरमाला पहिना दी हो।

फिर वह विजयाभिलाषी उच्चल विजय-यात्रा के लिए अग्रसर हुआ। वैद्यकुल अथवा वैश्य-कुल में उत्पन्न हुए काक आदि वीरों ने उसे मार्ग में रोका था, इसलिए वह हुष्कपुर को छोड़कर क्रम-राज्य की ओर से चल पड़ा। उस समय यह समाचार पाकर कि बड़ी वीरता के साथ उच्चल आ रहा है, वहाँ के डामरों ने प्रोत्साहित होकर मण्डलेश्वर आनन्द को पलायन के लिए बाध्य कर दिया। उन सबों ने उसके साथी यशोराज आदि बड़े-बड़े वीरों को युद्ध में मारकर उसको परास्त और हतोत्साह कर दिया था, इसलिए उसका प्रताप अत्यन्त क्षीण हो गया था।

जब दण्डनायक पीछे की ओर हटते-हटते तारकमूल नामक स्थान पर पहुंच गया तब उच्चल के नेतृत्व में डामर लोग भी उसका पीछा करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उस स्थान पर असंख्य सैन्य-सहित उस दण्डनायक ने उच्चल-रूपी प्रलयकालीन मेघ को रोकने के लिए पूर्व दिशा की ओर से बहनेवाले झंझावात का स्वरूप धारण किया अर्थात् दण्डनायक ने उस स्थान पर उसका डटकर सामना किया। वहाँ के संग्राम-स्थल पर विजयश्री-रूपी हस्तिनी के लिए उन्मत्त दो हाथियों के समान उन दोनों पक्ष के सैनिकों का कई दिनों तक बराबरी का महान् संघर्ष चलता रहा।

उसी समय में उच्चल के मातुल (मामा) आनन्द ने भी असंख्य डामरों को एकत्रित करके मडव-राज्य में उपद्रव मचाना आरंभ कर दिया। जिस प्रकार शीतकाल के बीत जाने पर धरती के गर्भ से असंख्य भ्रमर बाहर निकलने लगते हैं वैसे ही उस विप्लव में चारों ओर से डामरों के समूह आकर एकत्रित हो गये थे। उस समय में क्षीणभाग्य राजा हर्षदेव का कायस्थ महत्तम सुहेल ही द्वारपति तथा कम्पनेश के पद पर कार्य करता था। आनन्द ने कई बार उस पर आक्रमण करके उससे युद्ध किया, फिर भी उसने मडव-राज्य को नहीं छोड़ा। उस समय उसका यह कार्य भी कम महत्व का न था।

उसके बाद विचित्र प्रतापशाली उच्चल ने उसकी विशाल सेना को चारो ओर से घेर कर उस मण्डलेश्वर को बांध लिया। मण्डलेश्वर के वे सब सैनिक सशस्त्र, सकवच और अश्वारूढ होकर भी कैसे बंध अथवा घिर गये थे, इस बात का उन्ही को पता न था। इस प्रकार बंध अथवा घिर जाने पर भी वह श्रेष्ठ द्वारपति अपने स्वामी की भलाई के लिए सोचने लगा, क्योकि मानी पुरुषो के हृदय से स्वामिभक्ति मरने के समय तक नही हटती।

"ऐसा अवसर फिर कभी नही मिल सकेगा।' इस प्रकार कहकर उसने उच्चल के हृदय मेविश्वास उत्पन्न कर दिया और नगर मे यथाशीघ्र प्रवेश करने के लिए उसे उत्साहित किया। उसका कहना मानकर जब उच्चल नगर मे प्रवेश करने लगा तब "इस कार्य से इसकी बडी बदनामी होगी' ऐसा विचार कर उसने उसके सैनिको के द्वारा पुर, ग्राम आदि स्थानो मे वेरोक-टोक लूटमार मचवा दी। उसके बाद उसने उच्चल को परिहासपुर नामक नगर मे भेज दिया। वहाँ पर पानी और गड्ढे तथा भयकर दलदल होने के कारण वहाँ से निकलना बडा ही कठिन था।

वहाँ पर एक चौक मे उच्चल ने और दूसरे मे मण्डलेश्वर ने अपना पडाव डाल दिया। उन दोनो चौको मे रात्रि के समय आग लगाकर दोनो को जला देने के लिए मण्डलेश्वर ने अपने सेवको को आदेश दिया, परतु उसके सम्बन्ध मे अत्यन्त आदर होने के कारण उन सबो ने वैसा नही किया। मन के समान जिसका शरीर भी साहस करने के लिए पूरी क्षमता रखता हो, उस आत्मनिरपेक्ष वीर पुरुष का कौन-सा मनोरथ सिद्ध नहीं होता? कछुआ दुर्बल और डरपोक है इसलिए वह अपने शरीर के ऊपर दुर्भेद्य कवच धारण करता है और सिंह रणकर्म मे साहस और अदम्य उत्साह धारण करने वाला है इसलिए वह कवच से शून्य है।

विचारहीन विधाता नीच लोगो को सुरक्षित रखने के लिए उनका बडे उत्तम प्रकार से पक्षपात करता है और वीरतापूर्ण कार्य करने वाले प्राणियो के शरीर को चारो ओर से विकल और असुरक्षित रखता है। इस प्रकार के कार्य करने वाले विधाता को कोटिश धिक्कार है। उसके बाद उस मण्डलेश्वर ने राजा हर्षदेव के समीप दूत भेजकर सदेश कहलाया कि इस उच्चल-रूपी शृगाल को मैंने आपके समीप लाकर छोड दिया है। अब आप शीघ्र आकर इसे अपना निशाना बना कर शिकार कर लीजिए।

इस सदेश ने राजा हर्षदेव को असमंजस मे डाल दिया। कुछ देर के बाद वह समस्त सामन्त और सैन्य को साथ लेकर "आज या तो विजय प्राप्त होगी अथवा मृत्यु की शरण मे जाना होगा" ऐसा निश्चय किया और फिर नगर के बाहर निकला। वह समय अतिशय भयानक और प्राणो की रक्षा के लिए संशय का था। इसलिए भविष्य की अनिश्चयता पर विचार करके राजा हर्षदेव ने समस्त अपराधियो के सभी प्रकार के अपराधो को क्षमा कर देने का ढिंढोरा पिटवा दिया था, इसलिए उसके उस कार्य से प्रसन्न होकर समस्त नागरिक उसके पक्ष मे हो गये थे।

इतने ही समय मे शत्रु की सेना भरत-सेतु नामक स्थान पर आ पहुँची थी। इसलिए राजा के समस्त सैनिक शीघ्र ही अपने अश्वो को सरपट दौडाते हुए वहाँ पहुँच गये और असीम साहस तथा अपूर्व वीरता के साथ उन सबो ने शत्रु की सेना को परास्त करना आरभ किया। क्षुभित सागर के समान राजा की सेना को आती हुई देखकर मण्डलेश्वर आनन्द ने शत्रु की सेना के भीतर प्रवेश करके उसको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इस पराभव के बाद उच्चल के डामर

सैनिकों में से जो चंचल थे, वे तो तुरन्त भाग गये और जो थक गये थे वे राजविहार के भीतर जाकर छिप गये। उनके नायक भिल्लसेन नामक डामर को भीतर जाते देखकर "यह उच्चल है" ऐसा समझ कर राजा हर्षदेव के लोगों ने उस विहार मे आग लगा दी।

उस समय दर्शनपाल के पितृव्य सोमपाल के साथ शत्रु के अश्वारोही सैनिको से अधिक समय तक युद्ध करते हुए उस स्वाभिमानी उच्चल को बडे प्रयत्न से जनकचन्द्र आदि डामरो ने मृत्यु-मुख के समान उस भयानक संग्राम से दूर हटाया। वह गैरिकोवाल नामक ग्राम के समीप से वितस्ता नदी को तैर कर डामरो के साथ फिर से तारकमूल नामक स्थान पर वापस चला गया। इस छोटी-सी विजय से किसी एक छोटे-से जुआडी के समान वह राजा हर्षदेव सन्तुष्ट होकर मण्डलेश्वर आनन्द की प्रशंसा करता हुआ नगर को वापस गया।

"शत्रु जीवित है" ऐसा सुनकर भी उसने उसका पीछा नही किया, इसीलिए उस समय युद्ध मे हारे हुए भी डामर लोग फिर से प्रोत्साहित होने लगे। पहिले तो युद्ध के मैदान को छोड कर समस्त डामर अपने-अपने घर चले गये थे। इधर उच्चल को भी किसी न किसी प्रकार अपने प्राणो की रक्षा करनी पडी थी। जब उसकी बुद्धि स्थिर हुई तब उन समस्त डामरो को सभी स्थानो से बुलाकर पुन संगठित करने के लिए उसने ज्येष्ठ मास मे विचार किया। उस समय उस स्वाभिमानी वीर की सहायता करने वाली उसकी केवल दो भुजाएँ थी। उसे सभी प्रकार से दूसरो के आश्रय मे रहना पडता था, इसीलिए दुर्भिक्ष के समय मे किये गये उसके महान् उद्योग मे अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जाती थी।

उन्ही दिनो मे अति दरिद्र होकर भी उच्चल ने जिस मूर्ति को हाथ तक न लगाया था उस परिहासपुर-स्थित परिहासकेशव की रजतमयी (चांदी की) मूर्ति को राजा हर्षदेव ने तुडवा डाला। उस मूर्ति को वहाँ से उखाडते ही उसी समय कबूतरो के पङ्खो के समान कबरे रङ्ग की धूल उडने लगी और उससे दशो दिशाएँ आच्छादित हो गई। वह धूल राजा हर्षदेव के मस्तक कटने तक निरन्तर बनी रही। उस मूर्ति की स्थापना के पूर्व उस मण्डल मे दिन के समय मे भी अन्धकार का साम्राज्य सभी दिशाओ मे व्यापक हो रहा था। फिर श्रीपरिहास-केशव की मूर्ति की स्थापना हो जाने के बाद उस रजतमयी तेजस्वनी प्रतिमा के प्रखर प्रताप से सर्वत्र प्रकाश फैल गया था—ऐसी किम्वदन्ती प्रसिद्ध थी। बाद मे उस प्रभावशालिनी प्रतिमा के उखड जाते ही उसी प्रकार डेढ महीने तक वैसा ही अन्धकार लोगो को दिखाई पडता रहा।

शत्रु का उपद्रव शान्त हो जाने के कारण राजा हर्षदेव को थोडी-सी शान्ति प्राप्त हुई थी। इतने मे ही उच्चल का कनिष्ठ भ्राता सुस्सल शूरपुर की ओर से प्रकट हुआ अर्थात् उसने शूरपुर के आसपास भयानक रूप से उपद्रव मचाना आरम्भ किया। वह अवनाह नामक ग्राम मे रहता था। राजा हर्षदेव के विरुद्ध उपद्रव करने का विचार उसमे था ही नही। उसका ज्येष्ठभ्राता उच्चल जो कुछ कर रहा था उससे उसका कुछ भी सम्बन्ध न था, किन्तु होनहार की प्रबलता भी बडी विचित्र होती है। उसे इस प्रकार उद्योग से हीन देखकर उसके पिता मल्लराज ने उच्चल की प्रशसा करते हुए उसे उपालम्भपूर्ण (ताना देते हुए) अनेक कटु सन्देशो से प्रेरित किया था। इसलिए वह अपनी चिरकालीन उदासीनता को छोड कर पुन सचेत हो गया था। वह कल्ह राजा के दिये हुए कतिपय अश्वो को लेकर वहाँ से रवाना हुआ था। चूंकि वह इसके पूर्व राजा हर्षदेव के सम्बन्ध मे अतिशय श्रद्धा और सम्मानपूर्ण भावना रखता था, इसलिए उसने इतना विलम्ब किया था।

वह बड़ा मायावी था इसलिए राजा हर्षदेव के साथ प्रबलतर शत्रु-भाव होने पर भी आरम्भ से अन्त तक अपने मनोगत अभिप्राय को गुप्त रखकर ऊपर से प्रेम-भाव प्रदर्शित करता था। उसने शूरपुर नामक द्रंग (सीमा-प्रान्त का नाका) के समीप माणिक्य नामक सेनापति को जीतकर विजय-लक्ष्मी और विपुल सम्पत्ति को प्राप्त किया। उस सम्पत्ति से उस अभ्युदय-पात्र सुस्सल का सम्पूर्ण भविष्यकालीन कार्यक्रम आश्चर्यजनक, ऐश्वर्ययुक्त और गौरवपूर्ण हो गया। इस समाचार को पाते ही राजा हर्षदेव ने उसी समय उच्चल की ओर से अपना ध्यान हटाकर मण्डलेश्वर और पट्ट आदि वीरो को शीघ्रता के साथ सफल होने वाले उस सुस्सल से युद्ध करने के लिए भेजा।

उस शौर्यशाली वीर सुस्सल ने शूरपुर मे राजा हर्षदेव के भेजे हुए समस्त योद्धाओ को परास्त कर दिया। उनमे से असख्य वीर वैतरणी नदी के जल मे डूब कर सीधे यमलोक को चले गये। वहाँ पर स्वामिद्रोही दर्शनपाल ने अपना पराक्रम अधिक दिखलाया, परन्तु स्वामिद्रोह के कारण खिन्न हुई विजय-लक्ष्मी ने उसके अपवित्र शरीर को स्पर्श नही किया। यद्यपि उसने युद्ध के मैदान मे वीरता के प्रदर्शन मे तनिक भी त्रुटि नही होने दी तथापि उसके दुर्भाग्य ने उसे पराजित करा दिया। उस सग्राम-भूमि से भागे हुए राजा के सैनिको मे से जो शेष रह गये वे दूसरे दिन समीप मे ही पुण्यलोक मे रहने वाले सहेलक के पास पहुँच गये।

सहेलक ने भी उच्चल-रूपी प्रलयकाल के आगमन की आशका से उन समस्त सैनिको को तथा अपने साथ के सैनिको को साथ लेकर नगर की ओर शीघ्रगति से प्रयाण किया। इस प्रकार जब सुस्सल ने युद्ध की भूमि मे राजा हर्षदेव के सैनिको की दुर्दशा कर डाली तब तारक-मूल-निवासी उच्चल का प्रभाव फिर से बढ़ गया। उसके सहायक समस्त डामर पैदल सैनिक थे इसलिए वे राजा के अश्वारोही सैनिको से अधिक भयभीत होते थे। इसीलिए वे सब वहाँ से चलकर लोहर प्रान्त के पर्वतीय दुर्गम मार्ग से राजा पर आक्रमण करने का विचार करने लगे। अन्त मे उसी विचार के अनुसार वे उसी मार्ग से राजा पर आक्रमण करने के लिए आये भी गये।

राजा हर्षदेव ने उदयराज को द्वारपति के पद पर नियुक्ति कर मण्डलेश्वर को फिर से उच्चल के साथ युद्ध करने के लिए रवाना किया। उधर उच्चल का मामा आनन्द जिस समय पद्मपुर पहुँचा उस समय राजा हर्षदेव के सभी मन्त्री इतने भयभीत हो गये कि उनमे से कोई भी कम्पनेश के अधिकार को स्वीकार नही करता था। राजा हर्षदेव को उस समय बड़ा कष्ट हुआ। उसने खिन्न होकर दीर्घ नि श्वास छोड़ते हुए "कौन मेरा है ?" ऐसा कहा। इतना सुनते ही चन्द्रराज ने उसके हाथ से कम्पनेश के अधिकार की माला ले ली।

वह चन्द्रराज उन जिन्दुराज आदि वीरो के वश मे उत्पन्न हुआ था, जिनके यहाँ खाट पर पड़े रह कर मरना एक प्रकार का घोर अभिशाप माना जाता था। इसलिए उस वीर चन्द्र-राज ने अपने वश के गौरव को सुरक्षित रखने के लिए जो कार्य उचित था, वही साहसपूर्वक किया। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के समान वह भी सब कुछ नष्ट होने के बाद अर्थात् अन्तिम समय मे सेनापति बनाया गया था। नगर से वीरोचित दर्प के साथ निकल कर उसने बात की बात मे पद्मपुर से राजा के शत्रु उच्चल के मामा आनन्द की सेना को भगा दिया। बाद मे वह धीरे-धीरे आगे के प्रदेशो पर भी अधिकार करने लगा।

उसने श्रावण शुक्ला नवमी के दिन शत्रु-पक्ष के कम्पनेश (सेनापति) आनन्द को अवन्तिपुर मे मार डाला । उस कम्पनेश के सैनिक गोवर्धनधर के समीप राजा के सैनिको से युद्ध कर रहे थे और वह उन्हे वैसा ही छोड कर पास के प्रदेशो मे ही अपने थोडे-से चुने हुए सेवको के साथ संगीत सुनने मे तन्मय हो रहा था । उसी दशा मे चन्द्रराज के अश्वारोही सैनिको ने वितस्ता नदी के किनारे वाले मार्ग से वहाँ पहुँच कर उसे देखा और अचानक आक्रमण करके मार डाला । इसमे सन्देह नही कि जो पुरुष प्रमादी होते हैं उनका कल्याण हो सकना असम्भव है ।

चन्द्रराज ने उसका मस्तक राजा हर्षदेव की सेवा मे भेज दिया । उसे देखकर उस अदूरदर्शी राजा ने दैव को अपने अनुकूल मानते हुए पुन' विजय की आशा की । जिस प्रकार आगे की ओर जाता हुआ सिंह कभी-कभी पीछे की ओर देखकर फिर से पलट कर आने का सन्देह उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार प्रतिकूल देव भी कभी-कभी अनुकूलता दिखाकर मानव-हृदय मे अद्भुत आशा का संचार कर देता है ।

उसके बाद अपनी सेना को पुन'सगठित करता हुआ परम साहसी चन्द्रराज अपने अठारह सैन्य-विभागो सहित चल पडा और मार्ग मे स्थान-स्थान पर पराक्रम दिखलाता हुआ विजय-क्षेत्र मे पहुँच गया । उस समय मे तुलाधर (तौल करने वाले व्यक्ति) के समान विधाता तुला के दोनो पुटो (पलड़े) के सदृश उन दोनो कटको की असमानता को सहन न कर सका, क्योकि तीसरे ही दिन आकस्मिक और असामयिक वृष्टि होने के कारण मण्डलेश्वर की सेना को विवश होकर लोहर प्रान्त की ओर भागना पडा । शीत और वायु से पीडित सैनिक लोग कीचड से भरे हुए खेतो मे फँस गये । उन सबो ने हताश होकर पशुओ के समान अपने अश्व, खड्ग, कवच आदि समस्त वस्तुओ को उसी समय वहीं छोड़ दिया । ऐसी भयानक परिस्थिति मे दयार्द्र-हृदय उच्चल मण्डलेश्वर के प्राणो की रक्षा करना चाहता था, परन्तु जनकचन्द्र आदि डामरो ने उसे मार ही डाला ।

स्वामिद्रोह की शका से कलकित राजा हर्षदेव के सेवक-वृन्द मे से उसी एक सचिव-रत्न ने अपने शरीर को मूल्य के रूप मे दे कर दुर्लभ सुयश को मोल लिया था । "वह देवशर्मा आदि स्वामिभक्तो के साथ स्पर्धा करने के लिए उत्सुक था ।" यदि ऐसा वीर चन्द्रराज के सम्बन्ध मे कहा जाय तो कुछ मनुष्य हमारे ऊपर विपरीत लेखन का दोषारोपण अवश्य करने लगेंगे । यद्यपि यह सत्य है कि सासारिक प्रत्येक कार्य मे यश और अपयश, मान और अपमान, सुख और दु ख आदि सब दैव के अधीन होता है तथापि उस सकट-काल मे लवन्यो का पराभव और नाश तथा शत्रु के षड्यन्त्र को विफल कर देना आदि चन्द्रराज के कार्यों की कौन प्रशसा नही करेगा ।

समस्त संसार के जल को अपने उदर मे ग्रहण करने वाले समुद्र को बडवानल भयदायक होता है और उसको नष्ट करने के लिए हलाहल विष वर्तमान है तथा कालकूट के प्रतिकार के लिए धन्वन्तरि भी विद्यमान है । इस प्रकार इस ससार मे एक के लिए दूसरा प्रतियोगी प्रत्येक समय प्रत्येक स्थान पर रहा करता है । इसलिए बेचारे समुद्र को जड कहकर दोष देना किसी भी दशा मे उचित नही है क्योकि जीवन की सिद्धि तो नित्य दैव के ही अधीन रहा करती है । अतएव इस विचार को स्वीकार कर उसकी यथार्थ स्तुति करने मे ही गुणग्राहकता व्यक्त होती है ।

जिस समय चन्द्रराज की माता गज्जा ने सुना कि उसका पुत्र युद्ध करते हुए शत्रुओं के द्वारा मार डाला गया है उस समय उसकी दशा बडी विचित्र हो गई । पुत्र-शोक के कारण न तो

वह अधीर हो सकी और न स्वामी-कार्य के लिए निरन्तर प्रयत्नशील पुत्र के अपूर्व त्याग की ही प्रशंसा कर सकी। जिस प्रकार सन्ध्या-काल मे कमलिनी न तो विकास को प्राप्त होती है और न ह्रास के ही लक्षणो को प्रकट कर पाती है उसी प्रकार स्वामी-कार्य के लिए अनवरत प्रयत्नशील सन्तान को उत्पन्न करने वाली स्त्रियो मे सर्वापेक्षा अधिक पूजनीया वह चन्द्रराज की माता हर्ष और विषाद की समस्थिति पर ही बनी रही। उसके बाद अपने वास्तविक गौरव को प्रकट करते हुए उसने अग्नि मे प्रवेश किया।

राजा हर्षदेव के द्वारा जिस किसी साहसपूर्ण कार्य मे अपने पुत्र को नियुक्त किये जाने पर वह स्नेह से मोहित होकर राजा से कहा करती थी—"महाराज! इस पुत्र के अतिरिक्त मेरी और कोई दूसरी सन्तान नही है। इसलिए मेरे इस इकलौते बेटे को जहाँ प्राण जाने का भय हो वहाँ किसी दुस्साहसपूर्ण कार्य मे नियुक्त कदापि न कीजिएगा।" उसके इस कथन पर राजा हर्षदेव कहता "माता जी! जिस प्रकार आपके इस पुत्र के अतिरिक्त दूसरी कोई सन्तान नही है उसी प्रकार मेरे पास भी उसके समान कोई भी सच्चा सेवक नही है, इसीलिए मेरा एकमात्र सहारा वही है।" अपने गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्र के सम्बन्ध मे राजा हर्षदेव की इस प्रकार की भक्ति और श्रद्धा को देखकर स्वाभिमानवती सती अधिक सन्तुष्ट हो जाती थी किन्तु पुत्र के मरने पर वह अपने जीवन को ही बोझ समझने लगी थी इसीलिए उसने उसका भी मोह छोडकर अग्नि देवता की शरण ले ली थी।

इन्ही दिनो मे उच्चल हिरण्यपुर मे गया था। उसके वहाँ पहुँचते ही वहाँ के रहने वाले समस्त योग्य ब्राह्मणो ने उसका राज्याभिषेक कर दिया। इस प्रकार की घटनाओ को होते देखकर राजा हर्षदेव अधिक व्याकुल होने लगा। उसकी उस दशा को देखकर उसने उसके मन्त्रियो ने सलाह देते हुए कहा—"महाराज! इस समय आपके शत्रु लोग अधिक प्रबल हो रहे हैं। इसलिए समस्त परिजनो को साथ लेकर आप लोहराचल को चले जाइए। कुछ समय के बाद नवीन राजा के सम्बन्ध मे उत्कण्ठित होने वाली प्रजा जब अपनी उत्कण्ठा को शान्त कर लेगी तब विवश होकर वही प्रजा आग्रह करके आप को लिवा लायेगी अथवा आप स्वय भी आ सकेंगे।"

अपने परामर्शदाता मन्त्रियो की बातो को सुनकर राजा हर्षदेव ने उनसे कहा—"इसमे सन्देह नही कि आप सबो की यह मन्त्रणा बिना किसी तर्क के मानने योग्य है किन्तु इस सकट-काल मे मैं अन्त.पुर की ललनाओ, कोष तथा राजसिंहासन आदि असाधारण वस्तुओ को छोड़कर तुरन्त जाना नही चाहता।"

इस पर उन आप्त मन्त्रियो ने फिर से राजा हर्षदेव को समझाते हुए कहा "महाराज! आप अश्व पर आरूढ़ होकर तुरन्त यहाँ से रवाना हो जाइये। आपके चले जाने पर आपके अश्वारोही वीर अन्त पुर की ललनाओ तथा कोष आदि वस्तुओ को लेकर आपके पास शीघ्र ही उपस्थित हो जावेंगे। अब बाकी रह गया राजसिंहासन, उस पर तो आपके पहिले के श्वपाकी कामुक (चाण्डाली को चाहने वाले अथवा चाण्डाल-कन्याओ से सम्भोग करने वाले) राजा लोग भी बैठ चुके हैं, अब उसी सिंहासन पर यदि दूसरा कोई राजा बैठ जायगा तो उसमे उसकी कौन-सी मान-हानि हो जायगी।"

राजा हर्षदेव ने गम्भीरता के साथ उदासीनता मिले हुए क्रुद्ध भाव से कहा "आप सब अपनी इस मंत्रणा को अपने पास रहने दीजिए। दूसरा कोई मार्ग बतलाने का कष्ट स्वीकार करें।" इस प्रकार राजा के द्वारा प्रेरित किए गये मन्त्री लोग क्रोध के आवेश

मे उत्तेजित होकर बोले "महाराज! आपकी आज्ञा के अनुसार कार्य करना हम लोगो का धर्म है। आप जिस प्रकार की मत्रणा सुनना चाहते हैं उसे राजा होने के कारण सुनने की कृपा कीजिए।"

"इस भूमिका के साथ वे सब मन्त्री एकमत होकर कहने लगे "क्षात्र-धर्म के आदर्श को मानकर पृथ्वी पर शासन करने वाले राजाओ को दैन्य-प्रदर्शन करने का कोई अवसर जीवन मे आता ही नही है। उनके मत के अनुसार तो युद्धभूमि मे मृत्यु का स्वागत करना ही आशीर्वाद समझा जाता है। सकट-जाल मे फँसे हुए राजा के वास्तविक शत्रु आप्त जन, बन्धु-बान्धव तथा सचिव नही हैं। उसके वास्तविक शत्रु उद्योगहीनता, लज्जा, भय तथा मंत्रियो के साथ मतभेद होना आदि हैं। जो राजा आलसी बनकर सम्पूर्ण कार्यों का भार अपने सेवको के ऊपर छोड देता है उसका लकडी के सहारे चलने वाले अन्धे के समान पद-पद पर पतन होता है अर्थात् उसे निरतर सकटो का सामना करना पडता है।"

"अपने शत्रु को अपने से छोटा मानकर 'इसके ऊपर शस्त्र का प्रयोग करते हुए मुझे लज्जित होना चाहिए' ऐसा निश्चय कर उस छोटे-से शत्रु को उपेक्षा की दृष्टि से देखने वाले अदूरदर्शी राजा को शीघ्र ही लज्जित होना पडता है और अपनी इसी दुर्बलता के द्वारा वह राजा स्वय अपने शत्रु को बढाता है। समय के विचित्र प्रभाव से महेन्द्र (देवताओ के राजा इन्द्र से भी श्रेष्ठ व्यक्ति) को कृमि (सबसे छोटा कीडा) बनना पडता है और कृमि महेन्द्र बन जाता है। इसलिए अमुक पुरुष बहुत बडा है और अमुक पुरुष अप्रतिष्ठित है, इस प्रकार का विचार सर्वथा मिथ्या अभिमान है।"

"किसी भी विजयाभिलाषी राजा के मन मे भय उत्पन्न होते ही उसका पराभव अवश्य होता है। सभी प्रकार से विकल अर्थात् अपूर्ण शत्रु के द्वारा कभी-कभी समस्त सम्पदाओ से से परिपूर्ण राजा को भी दीनता प्राप्त हो जाती है। जो पुरुष उज्ज्वलतम विभूति का पात्र, सुप्रतिष्ठित तथा भयरहित है, उसका दीन और दूसरो के आश्रय मे रहने वाले कापुरुष के द्वारा पराभव होता ही नही है और न उस पुरुष को किसी का भय हो सकता है। मत्रियो के पारस्परिक मतभेद के कारण साधारण कार्य भी पूर्ण होना कठिन हो जाता है क्योकि मथानी की रस्सी के क्रमवार आकर्षण के समान दोनो समुदायो की ओर से उस कार्य की क्रमश खीच-तान होने लगती है। सम्पूर्ण अगो से हीन होने पर भी समग्र-शक्तियो से सम्पन्न आशावादी राजा के राज्य और आयुष्य का नाश अकेला एक शत्रु ही कर सकता है।"

"राजा के तो यत्र-तत्र-सर्वत्र शत्रु होते ही हैं और पृथ्वी पर एक राजा के बाद दूसरा राजा शासक बनता ही है, इसलिए यदि आप हम लोगो के मतानुसार चलेंगे तो आपको फिर राज्य की प्राप्ति हो सकेगी। यदि देव की प्रतिकूलता के कारण राज्य न मिल सका तो असख्य वीर योद्धाओ से घिरे हुए राजाओ को समर-भूमि मे पौरुष दिखलाकर मृत्यु का स्वागत करने से जो विमल कीर्ति और अनुपम शोभा प्राप्त होती है, वह आपको अवश्य प्राप्त होगी।"

"जिस समय वीर पुरुष का केवल रुण्ड समरागण मे नृत्य करने लगता है, उस समय धनुष की डोरी का टकार-शब्द वीणा के तारो की झकार के समान उसके नृत्य में सहयोग प्रदान करता है और शृगाल उसके सामने उपस्थित होकर अपने मुख के भीतर से निकलती हुई ज्वालाओ के दीपको से उसकी आरती उतारने लगते हैं। उस समय उसके शरीर मे रहने वाला अभिमान शान्त हो जाता है और शरीर की सफलता से सफल मनोरथ होने वाले वे वीर लोग धन्य होकर

वीर-शय्या पर चिरकाल के लिए शयन करते हैं। इस प्रकार इस अन्तिम कृत्य को श्रेष्ठ समझ कर जुआड़ियों के समान राज्य की बाजी लगाकर खेलते हुए क्षत्रिय लोग सदा के लिए संकट-जाल से छुटकारा पा जाते है।"

मन्त्रियों की इस मन्त्रणा को राजा हर्षदेव ने स्वीकार नहीं किया और जब दूसरी मन्त्रणा देने के लिए फिर से आग्रह किया तब वे शोकग्रस्त होकर दीर्घ नि:श्वास छोड़ते हुए समय और परिस्थिति के अनुसार कठोर वचन कहने लगे—"महाराज! यदि आप अपने प्राणों की पर्वाह न कर इस संकटमय समय में राजा उत्कर्ष के समान प्राण त्याग कर सकते हो तो बहुत उत्तम होगा, नहीं तो आपको शत्रुओं की ओर से अवश्य भयकर अपमान सहना पड़ेगा।" इस पर राजा हर्षदेव ने उनसे कहा—"मैं स्वयं आत्महत्या करने में सर्वथा असमर्थ हूँ, इसलिए ऐसे संकटमय समय में आप लोग ही मुझे मार डालिएगा।"

साधारण कायर पुरुष के समान भीरुताग्रस्त उस राजा के उन वचनों को सुनकर समस्त मन्त्रियों के नेत्र अश्रुओं से पूर्ण हो गये और शोक प्रकट करते हुए उन सबों ने राजा से कहा—"महाराज! दुर्भाग्य से यदि ऐसा विकटतम प्रसंग उपस्थित भी हो गया और हम लोगों में में उसके प्रतिकार की शक्ति भी न रही तो भी उस समय आपके कथानुसार उसे भयकर दुष्कर्म को करने के लिए हमारे हाथ किस प्रकार उठ सकेंगे?" इसीलिए कहना पड़ता है कि वास्तव में उस राजा ने अवश्य उन पुरुष-रूपी पशुओं का पोषण किया था, क्योंकि दीन और हताश राजा हर्षदेव के ऐसे दुःखपूर्ण वचनों को सुनकर भी उन सबों ने उसका प्रतिकार नहीं किया।

युग के अन्त तक जी कर भी जो शरीर एक दिन अवश्य नष्ट होनेवाला है, उस शरीर मात्र के त्याग से सिद्ध होने वाले कार्य में अपने स्वामी के लिए शरीर-त्याग के कर्म में कृपणता दिखलाने वाले सेवकों को अनेक बार धिक्कार है। जिस स्वामी के स्नेह की ओर ध्यान देकर स्त्रियाँ भी सरलतापूर्वक अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं, उस स्वामी के स्नेह को पुरुष होकर भी जो लोग भूल जाते हैं, उनसे बढ़कर अधम कौन हो सकता है? जो मनुष्य अपने स्वामी को नट के समान शोक, भय, दीनता आदि विकारों को प्रदर्शित करता हुआ देखकर भी स्वस्थतापूर्वक बैठे रहते हैं, उन नराधमों के कारण यह पृथ्वी तीर्थों से युक्त होने पर भी अपवित्र ही बनी रहती है।

जिन मनुष्यों ने अपने बालक को भूखों मरते, अपनी स्त्री को दूसरों के घर की दासी बनते, अपने सच्चे मित्र को दुःख सहते, दूध देनेवाली गाय को क्षुधा की पीड़ा से करुण आक्रन्दन करते, माता-पिता को रुग्णावस्था में पथ्य न मिलने के कारण मृत्यु के मुख में प्रवेश करते और स्वामी को शत्रुओं के द्वारा पराजित होते देख लिया हो, उन्हें नरक में भी इससे अधिक और कौन-सी यातना सहन करनी पड़ेगी?

राजा हर्षदेव, उन नर-पशुओं से फिर कहने लगा "देखिए प्रारंभ में मैंने कितने श्रेष्ठ कर्म किये हैं, परन्तु इस समय भूत के द्वारा वशीभूत किये गये मनुष्य के समान मेरी निर्मल बुद्धि में मोह उत्पन्न हो गया है। वर्तमान युग में मैंने जिस शान से राज्य का उपभोग किया है उस शान से कोई भी दूसरा राजा इच्छा के अनुसार विशाल वैभव से सम्पन्न होकर भविष्य में अपने राज्य का उपभोग न कर सकेगा—ऐसा मेरा निश्चय है। 'राजा के ओष्ठाग्र पर कुबेर और यम दोनों वत्ता निवास करते हैं' इस प्रकार की लोक-ख्याति इस कलियुग में केवल मेरे ही सम्बन्ध में चरितार्थ हुई है।"

"नियति के द्वारा निर्दिष्ट किये गये समय के आ जाने पर रुद्र, उपेन्द्र, महेन्द्र आदि देवताओ को भी जिस मार्ग से अवश्य जाना पडता है, तब उसके सम्बन्ध मे मनुष्य को भूल कर भी शोक नही करना चाहिए। परंतु मुझे इसी बात का कष्ट हो रहा है कि यह भूमि आज तक कुलवती ललना के समान उत्तम दशा मे थी, अब वही मेरे दोष से बाजार की स्त्री के समान बलात्कार-पूर्वक उपभोग की जाने के योग्य बन जायगी। आज से जो मनुष्य राजनैतिक षड्यत्र रचने मे सिद्धहस्त होगा वही इस प्रकाशहीन राज्य को हस्तगत करने की आशा कर सकेगा।"

"इसके लिए मैंने जो अलौकिक कार्य किये है, वे सब व्यर्थ सिद्ध हुए। इसलिए भविष्य मे उदय होने वाले अल्पसत्व अर्थात् पौरुषविहीन लोग मेरी हँसी उडाने का प्रयत्न करेंगे। किसी भी उद्योग मे सफलता प्राप्त होने पर वह उद्योग उस समय के अनुरूप था या नही, इस ओर ध्यान न देते हुए प्रायः सभी उसकी प्रशसा करने लगते है। समुद्र-मंथन को सफल हुए देखकर उस कार्य मे पर्वत-पक्षछेदक इन्द्र की सहायता होने पर भी और जिसका रस मृत्यु-प्रदायक है, ऐसे वासुकी नाग के रज्जु के रूप मे रहने पर भी विपरीत कारणो के परीक्षण द्वारा मन्दराचल पर्वत को कोई बुरा नही कहता।"

"मैने शास्त्रो के तात्पर्य को जानते हुए जनता के उपजीवन के लिए समय-समय पर श्री-गर्भत्व का प्रदर्शन किया अर्थात् अपने धन से प्रजा को धनवान बनाने का प्रयत्न किया, वही सब कार्य मेरी मूर्खता के सिद्ध होने के कारण बन गये। अब अँगुली के पर्व (पोर) के समान अत्यल्प बुद्धिवाला उज्वल भी अपने काले दाँत दिखाता हुआ मेरी विडम्बना करने लगेगा। मैं आज इतना विवश हो रहा हूँ, इसका मुख्य कारण अपमान है, भय नही, और इसी बात को प्रमा-णित करने की अभिलाषा से मैं इस प्रकार की मृत्यु को उत्तम समझता हूँ। वह 'राजा अपने ही लोगो के हाथ से न मारा गया होता तो कौन उससे पृथ्वी को छीन सकता था' इस प्रकार की किम्वदन्ती के द्वारा मैं अपने सुयश की रक्षा करना चाहता हूँ।"

"प्राचीन काल मे अनेक राजाओ के मस्तक पर तपते हुए मुक्तापीड नामक राजा को उसके शत्रुओ ने मौका पाकर भयानक संकट मे डाल दिया था। वह राजा उत्तरापथ मे अनेक मार्गों से घूम रहा था और उसने उन मार्गों मे स्थान-स्थान पर अपने सिपाहियो को रख दिया था। ऐसी परिस्थिति मे परिमित अनुचरो से युक्त उस राजा को शत्रुओ ने किसी दुर्गम मार्ग मे रोक लिया था। युक्त करने के उपयुक्त सामग्री की कमी के कारण विवश हुए उस राजा मुक्तापीड को आठ लाख सैनिको से युक्त राजा शल्य ने बाँध लेने की प्रतिज्ञा की थी।"

"राजा मुक्तापीड ने साम, दाम आदि उपायो द्वारा उस आपत्ति से छूटना कठिन समझकर घबडाते हुए अपने प्रधान मत्री शिवस्वामी से समयानुसार कर्त्तव्य पूछा था। उस मत्री ने भी उस सकट के उपाय को असाध्य समझकर उचित और अनुचित कर्त्तव्य को निश्चित कर राजा से कहा था—अपनी कलक ही कीर्ति का अभिमान रखने वाले स्वाभिमानी पुरुषो के लोभ के क्षोभ से शून्य निर्मल हृदय मे रहनेवाली अकुण्ठित प्रतिभा ही युक्तियो से पूर्ण कर्त्तव्य और उपाय को प्रदर्शित कर देती है। प्राप्त की गई कीर्ति को सुरक्षित बनाये रखना ही कार्य-निपुण बुद्धिशाली पुरुष का प्रधान कर्त्तव्य है। साम्राज्य का उपार्जन आदि व्यापार तो उसके लिए आनुषगिक अर्थात् गौण कर्त्तव्य हैं।"

"जिस प्रकार जलता हुआ कपूर अपनी सुगन्ध से जाना जा सकता है उसी प्रकार शरीर के नष्ट होने पर भस्मावशेषता को प्राप्त होने वाला प्राणी अपनी ख्याति से ही पहिचाना जाता है।

माता) ने अपने घर मे आग लगाकर उसमे अपने आप को भस्म कर डाला। उसी समय मे शाही वंश मे जन्म लेने वाली राजा की पत्नियो ने राजा से कहा—"यह मल्लराज ऊपर से तो मुनियो के समान अत्यंत शुद्ध और बडा धर्मपरायण दिखाई पडता है फिर भी अन्त करण से हृदयहीन यमराज के समान कठोर हृदय रखने वाला क्रूरतम पुरुष है। मौन-व्रत आदि दम्भपूर्ण कार्यों के द्वारा यह हमारे सचिव-वर्ग मे भेद उत्पन्न कर रहा है और यह अपने पुत्र को राज्याधिकार प्राप्त कराने के लिए निरंतर उत्कण्ठित हो रहा है, इसलिए इस परम शत्रु को नि:शक होकर तुरत मरवा डालना चाहिए।"

इस कार्य के लिए स्वय राजा हर्षदेव ने तैयारी की और सेना को साथ मे लेकर उसके भवन को चारो ओर से घेर लिया। मल्लराज भी अपने द्वार पर खडे हुए प्राणो के याचक राजा हर्षदेव की अभिलाशा को पूर्ण करने के लिए अपने भवन से बाहर निकला। वह निर्मल बुद्धिवाले मननशील मुनियो के समान सरल और शान्त स्वभाव का व्यक्ति था। उसने राज्य के अभिलाषी अपने पुत्र उच्चल और सुस्सल दोनो के आग्रह और प्रार्थना को ठुकराकर केवल सदाचार के अनुरोध से राजा हर्षदेव के पक्ष का त्याग नही किया था तथा राजा के हृदय मे अपनी ओर से सुदृढ विश्वास उत्पन्न करने के लिए अपनी द्वितीय पत्नी के पुत्र सल्हण आदि को राजा के समीप जमानत के रूप मे रख कर वह शान्तिपूर्वक अपने भवन पर रहने लगा था। ऋषियो के समान परम पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले तथा यावज्जन्म अग्नि की उपासना करने वाले उस महात्मा मल्लराज पर आसन्न-मृत्यु वह भाग्यहीन राजा हर्षदेव अकस्मात् रुष्ट हो गया था।

जिस समय राजा हर्षदेव के सैनिको ने युद्ध के लिए उसका आह्वान किया था, उस समय वह देवपूजन के कार्य मे व्यस्त था। सैनिको की पुकार को सुन कर वह उसी वेश मे घर के भीतर से बाहर आया था। उस समय वह अत्यंत सुशोभित हो रहा था। वह यज्ञोपवीत पहिने हुए था। उसके हाथ मे रुद्राक्ष की जयमाला थी और उसके ललाट पर भस्म को रेखाएँ अपनी विमल प्रसन्नता प्रकट कर रही थी। वह उस समय परम तेजस्वी साक्षात् परशुराम के समान दिखाई पड रहा था। वह कुछ समय पूर्व स्नान से निवृत्त हुआ था, इसलिए उसका धवल और कृष्ण केशमय जटा-समूह देह-त्याग के समय मस्तक पर धारण किये गये प्रयाग के गंगा-यमुना जल के समान दृष्टिगोचर हो रहा था। वह मल्लराज मस्तक पर धारण किये वीरपट्ट से पगडीयुक्त और खेटक (ढाल) से क्षत्र-समेत तथा कोशहीन तलवार से दण्डधारी होकर असि-धारा तीर्थ का वास्तविक प्रवासी दीखता था।

उसके निकट रहकर उत्तम प्रकार के सुखोपभोग तथा यथायोग्य सम्मान पानेवाले सद्भृत्य उसके पहिले ही शत्रुओं से युद्ध करने के लिए बाहर निकलकर स्वर्ग की ललनाओ के सम्भोग-सुख को प्राप्त करने के लिए अग्रसर बन चुके थे। उनके साथ ही साथ रथ्यवट्ट तथा विजय एव पुरोहित और उसका कोष्ठक (पाकशाला का प्रधान व्यवस्थापक तथा उसका वीर सैनिक) सज्जक युद्धभूमि मे शत्रुओ के द्वारा आहत होकर मृत्यु का आलिगन कर चुके थे और इस सत्कार्य से उनका निर्मल यश समग्र ससार मे व्याप्त हो गया था।

उसका द्वारपाल उदयराज समरागण मे शत्रुओ के द्वारा भयानक रूप से घायल होकर भी आयु की अविशिष्टता के कारण प्राणो से शरीर को पृथक् न कर सका। इसी प्रकार उसका कर्मचारी अज्जक भी घायल होकर बच गया था। शत्रुओ के द्वारा द्वार को चारो ओर से घिरा हुआ देखकर वह वीर मल्लराज निर्भय होकर उनके मस्तको पर कूद पडा। शैवाल-सदृश खड्ग-समूह मे

तथा कमल के समान खेटक (ढाल) वृन्द मे भ्रमण करता हुआ जरा-धवलित केश वह वीर राजहंस के समान सुशोभित हो रहा था। परन्तु उसका शरीर शीघ्र ही सैकडो स्थानो पर तीक्ष्णतर शरो से छिन्न-भिन्न हो गया और वह वीरश्रेष्ठ संग्राम-भूमि मे पितामह भीष्म के समान वीर-शय्या पर चिरकाल के लिए सो गया।

उसके बाद राजा हर्षदेव ने समरांगण पर अनन्त काल के लिए चिरनिद्रा का आलिंगन कर सोये हुए उसका मस्तक कटवा कर बडे अभिमान के साथ उसकी पीठ पर घोड़ा दौडाया। मृत्यु के द्वार तक पहुँचे हुए उस मूढ राजा का यह पैशाचिक कर्म क्या शोचनीय न था? राजवंश मे उत्पन्न होने वाली कुमुदलेखा तथा उसकी भगिनी वल्लभा दोनो ने अपने देव-तुल्य पूजनीय पति स्वाभिमानी मल्लराज की मृत्यु के बाद अपने वंशगत मान-प्रतिष्ठा के गौरव की रक्षा के लिए अपने भवन मे आग लगाकर अपने शरीर को तुरन्त भस्मावशेष कर डाला।

राज और अवकेल्य की कन्याएँ असमती तथा सहजा महायशस्वी मल्लराज के पुत्र रल्हण और सल्हण की स्वाभिमानिनी पत्नियाँ थी। वे दोनो भी आत्मगौरव की पवित्रता को ध्यान मे रखती हुई आग में जलकर चिरकाल के लिए कलंक-कालिमा के भय से मुक्त हो गई। मल्लराज के अन्तःपुर मे रहने वाली स्त्रियो मे से जिन सौभाग्यवती ललनाओ ने सब प्रकार के सुखो का उपभोग किया था ऐसी छ ललनाएँ अग्नि से तुरन्त प्रवेश कर गईं। यह घटना वितस्ता नदी के बायें तट पर मल्लराज के भवन मे हुई थी, इसलिए उस विशाल भवन की जलती हुई ज्वालाओ के ताप से तथा उस दु खित परिवार के शोकजनित उष्ण अश्रुजल से वितस्ता नदी का जल भी उत्तप्त हो गया था।

भविष्य मे काश्मीर-नरेश होने वाले उच्चल-सुस्सल की माता नन्दा मल्लराज के दाहिने तीरवाले भवन के अन्तःपुर मे थी। वह उस भवन के सर्वोच्च शिखर पर से उत्तर तथा दक्षिण की ओर से अपने दोनो पुत्रो की सेनाओ के शिविर में महानसो (पाकशाला) के भीतर से उठते हुए धुएँ की ओर अत्यत आतुरता के साथ देख रही थी। उसने भी इस वितस्ता के बायें तट पर होने वाले इस भयकर काण्ड को देखकर अपने को जला डाला।

अग्नि मे प्रवेश करते समय उस सती ने "हे मेरे पुत्रो! तुम्हारे पिता का इस प्रकार वध करने वाले शत्रु के वंश का परशुराम के समान तुम दोनो शीघ्र ही उच्छेद करोगे" ऐसा शाप दिया और खड़ी-खडी वह जलती हुई भयानक अग्नि मे प्रवेश कर गई। उस समय प्रचण्ड अग्नि की वे प्रखर ज्वालाएँ उसकी प्रिय सखियो के समान उसे घेर कर नृत्य कर रही थी। उसकी धात्री (उपमाता) चन्द्रा अपनी कन्या के समान उस राजकन्या को तिलाजलि देने के दृश्य को देखने मे असमर्थ होने के कारण जलती हुई आग मे कूद कर मर गई।

दर्शनपाल की हत्या करने के लिए राजा हर्षदेव प्रतिक्षण उत्कण्ठित रहता था किन्तु सौभाग्य से अथवा उसकी आयु कुछ दिनो तक और शेष थी, इस कारण से वह बडी विचित्र घटनाओ के हो जाने से बच गया था। या यह समझ लेना चाहिए कि वह भविष्य मे अपमान-रूपी कटु फल का आस्वादन करने के निमित्त और एक वर्ष के लिए जीवित रह गया था।

उच्चल तथा सुस्सल दोनो भ्राताओ को अपने पिता के पैशाचिक वध का वृत्तान्त भाद्रपद कृष्ण नवमी को विदित हुआ। इससे उनको अत्यत शोक हुआ, परन्तु वह शोक उसी से उत्पन्न होनेवाले क्रोध ने आच्छादित हो गया। दूसरे ही दिन सुस्सल ने क्रोध के आवेश मे आकर राजधानी की ओर वीरतापूर्ण दर्प के साथ प्रयाण किया और मार्ग मे आनेवाले वल्लिपुर तक के गाँवो

शान्त हुए यशस्वी और शान्त हुए कामदेव, इन दोनो के लिए क्रमश स्तुति-पाठक की जिह्वा और अगना के कटाक्ष ये दोनो अद्‌भुत जीवित स्थान है। अपने सुयश की रक्षा करना ही ही प्राणी के लिए कल्प-कल्पान्तर तक अपना स्थायित्व सिद्ध करना है। कीर्ति-रूपी शरीर को बनाये रखने मे ही उन परमाणुओ का कार्य सम्पूर्ण होता है।''

"वीर पुरुषो को अपने विरोधियो के विषय मे निरन्तर सावधान रहने वाले विधाता की ओर ध्यान देते रहना चाहिए, क्योकि वह सर्वदा उनकी उन्नति तथा धन के विनाश के लिए प्रयत्न करता है। उन्नत पुरुष को सहसा नीचे गिरा देने का विधाता को व्यसन-सा लग गया है। इस प्राकृतिक व्यसन के अनुसार वह स्वय के उत्पत्ति-स्थान कमल-कुल मे उत्पन्न हुए पद्‌म-खण्ड को भी द्विजपति (चन्द्रमा) के अस्त होते ही अपवित्र अथवा मदोन्मत्त मातग (हाथी अथवा चाण्डाल) के हस्त (सूंड अथवा हाथ) के द्वारा अपमानित कराता है। जो पुरुष लोगो की ख्याति का अचानक नाश करने वाले विधाता की बुद्धि की अवहेलना कर अपने सुयश की रक्षा नही करते, उनके लिए रक्षा करने के योग्य दूसरी कौन-सी वस्तु हो सकती है।''

"उत्तम वश मे उत्पन्न होने के कारण राजाओ मे अपने सुयश की प्रतिष्ठा को उज्वल करके सद्‌वशज वेत्रांकुर के समान जो अपने को अग्नि मे जलाकर भस्मीभूत कर डालते हैं—ऐसा साहसपूर्ण कार्य करने वाले राजा लोग इस ससार मे बहुत ही कम है और जो अपने सुयश की प्रतिष्ठा का सरक्षण नही कर सकते, वे विधाता के क्रोध से शत्रु-राजाओ के द्वारपालो के हाथो का सहारा लेकर अनेक बार राजद्वार मे आने-जाने के कष्ट का अनुभव करते हैं। महाराज अब आपने जिन राजोपभोगो का अनुभव किया था, वे सब प्राय नष्ट हो चुके हैं—ऐसा निश्चय कर अपने सुयश की प्रतिष्ठा के महत्त्व की रक्षा के लिए आपको प्राण-पण से प्रयत्न करना चाहिए।''

"आज आपको सहसा शीघ्र-परिणामी दण्डकालसक नामक रोग हो गया है—ऐसा सर्वत्र प्रसिद्ध कर दीजिए और इस भयानक संकट को नष्ट करने का उपाय कल मैं आपसे निवेदन करूँगा।'' ऐसा कहकर वह प्रधान मत्री वहाँ से निकल कर अपने निवास-स्थान को चला गया। राजा ने भी मत्री के कथनानुसार दण्डकालसक रोग का बहाना बनाकर जोर-जोर से कराहना आरम्भ कर दिया और मरणप्राय अवस्था को प्रदर्शित करते हुए नेत्रो को बन्द कर पृथ्वी पर लोटना आरम्भ किया। स्वेदन, सवाहन, वमन आदि उपायो से जब उसका वह रोग नाम-मात्र के लिए भी शान्त नही हुआ तब यह अवश्य मर जायगा—ऐसा सब लोग कहने लगे। उस उपाय को बतलाने वाले उस प्रधान मत्री ने कृतज्ञता को व्यक्त करते हुए अग्नि मे प्रवेश किया क्योकि उसने अपने स्वामी की मृत्यु को निश्चित मान लिया था।

इस प्रकार उसने दाक्षिण्य के अनुरोध से राजा को कर्त्तव्य-शेष अर्थात् भविष्य का कर्त्तव्य अपने शब्दो के द्वारा प्रकट न कर कार्य द्वारा प्रदर्शित कर दिया और राजा ने भी युक्ति के साथ कर्त्तव्य को प्रदर्शित करने वाले उस मत्री की मन ही मन अधिक प्रशसा की। फिर उस राजा ने भी "मैं इस भयानक पीड़ा को सहन करने मे सर्वथा असमर्थ हूँ'' ऐसा कहते हुए बड़े स्वाभिमान के साथ अग्नि मे प्रवेश किया। इस प्रकार उस मनस्वी राजा मुक्तापीड ने अपने कुयश को उत्पन्न न होने देने के लिए प्राणो को तुच्छ समझ कर अपने लिए स्वर्गारोहण-सोपान का निर्माण-सा कर लिया था। इस प्रकार दैव के प्रभाव से आने वाली अपकीर्ति का मनस्वी राजा लोग अपनी बुद्धि से अथवा अपने मत्रियो की मत्रण से निवारण करते हैं ऐसा कहकर राजा हर्षदेव ने मौन धारण कर लिया।

फिर मन्त्रियो ने राज वश के बीज की रक्षा के लिए राजकुमार भोज को लोहरकोट भेज देने के लिए राजा से कहा । राजकुमार मगल-प्रस्थान रखकर वहाँ से रवाना होने लगा था कि इतने मे दण्डनायक के कथन से मोहित होकर राजा ने उसे वापस बुला लिया । विनाश-काल आ जाने के कारण राजा हर्षदेव की वह बुद्धि, वह साहसपूर्वक आरम्भ और सकट मे भी सार्वत्रिक धैर्य—ये सब एकदम नष्ट हो गये । लक्ष्मी-रूपी बिजली, कीर्ति-रूपी बलाका और प्रताप-रूपी इन्द्र-धनुष—ये सब भाग्य-रूपी मेघावली के पीछे रहा करते हैं अर्थात् जहाँ भाग्य-रूपी मेघमाला का उदय होता है, वही ये भी उपस्थित रहते हैं ।

भाग्य के अधिक बलशाली होने के समय जिस एकाकी राजा ने अपनी शूरता, धीरता और वीरता आदि सद्गुणो के प्रभाव से लोगो के मन मे "यह इन्द्र पर आक्रमण क्यो नही करता है ?" ऐसी सम्भावना उत्पन्न कर दी थी, वही राजा दुर्भाग्य का उदय होते ही सर्वथा पगु, जड, अन्ध और विमूढ होकर निर्बल हो जाता है और उसके पैर इस पृथ्वी पर कैसे टिक सके ! ऐसा लोगो के मन मे सन्देह उत्पन्न होने लगता है । राजा हर्षदेव ने शत्रु का सामना करने के लिए जो तन्त्रियो की सेना भेजने के लिए तैयार की थी उसके सैनिक लोग नगर मे रहते हुए भी राजा से प्रवास-धन (भत्ता) माँगने लगे । बहुत से राजसेवको ने शत्रु का आश्रय ग्रहण किया । केवल थोडे-से सैनिक राजभवन मे रह गये थे, वे भी केवल शरीर से वहाँ थे, उनका मन तो शत्रु की ओर जा चुका था । उनमे से दो-तीन व्यक्तियो ने शत्रु के आश्रय मे रहने का सकल्प भी नही किया था, परन्तु उनकी प्रशसा न करना ही उत्तम है क्योकि उन्होने स्त्रियो के समान अपने प्राण दे दिये थे ।

काणवती नामक नर्त्तकी ने जयमती नामक एक अज्ञात कुल की बालिका को पुत्री के समान पाला था । उसका कौमार्य खण्डित होने पर वह तारुण्य की अवस्था मे उच्चल से प्रेम करने लगी थी । फिर धन के लोभ से मण्डलेश्वर आनन्द की रक्षिता बन गई । उस मण्ड-लेश्वर के मारे जाने के बाद वह नर्त्तकी जयमती लज्जा को तिलाजलि देकर उच्चल के समीप फिर से पहुँच गई और पहिले के ही समान उससे प्रेम करने लगी और दैवयोग से कुछ समय के बाद वही काश्मीर-राज्य की पटरानी भी होगी ऐसा वह अपने मन मे विश्वास करने लगी ।

राजा हर्षदेव के सेवक सर्वथा निर्भय होकर सामूहिक रूप से एकत्रित हो जाते थे और उसके सामने ही उच्चल के विषय मे चर्चा करने लगते थे । इसी प्रकार केवल वेतन के भक्त वे राजसैनिक किसी भी साधारण सैनिक को अपना प्रतिनिधि चुन लेते थे और वह "समस्त सेना-धिकारी निकम्मे और लोभी हैं" ऐसी अपमानजनक घोषणा करके वीर योद्धाओ के प्रशंसनीय धैर्य को नष्ट कर देता था । उसी प्रकार वह स्वय अयोग्य होकर भी दूसरे लोगो का उपहास तथा मर्मोद्घाटन करता था और रसद मिलने के समय अपने अधिकार के लिए विशेष रूप से झगडने लगता था । वह अपने स्वामी की दानशूरता का वर्णन बडी कुशलता के साथ करता था । इस प्रकार के कपटपूर्ण आचरण से राजा की प्रत्येक सेना का प्रत्येक सैनिक अपने समुदाय का अगुवा बन कर समस्त सेना मे विष उत्पन्न करने वाली फूट को उत्पन्न कर उसे फैलाने का प्रयत्न करता था ।

मल्ल-कुल के ऊपर राजा हर्षदेव अत्यत क्रुद्ध था, इसलिए उसने मल्ल-कुल मे उत्पन्न तथा श्रीरेखारानी के भतीजे के पुत्र व्यड्डुमगल को आकस्मिक आक्रमण द्वारा मरवा डाला । मल्ल के श्यालक (साले) की कन्या व्यड्डुमगल की पत्नी थी । उसने और उसकी सास (व्यड्डुमगल की

को जलाकर राख का ढेर बना दिया तथा वहाँ से विजय-क्षेत्र की ओर रवाना हुआ। उसका सामना करने के लिए जब चन्द्रराज रवाना हुआ तब पट्ट और दर्शनपाल आदि अपनी-अपनी सेना को लेकर उसे छोड़कर चले गये। इस प्रकार आत्मीय जनो के द्वारा धोखा दिये जाने पर भी चन्द्रराज अपनी बची हुई सेना को लेकर आगे बढ़ा और शत्रु की विशाल सेना के साथ अधिक समय तक प्राण-पण से डटकर युद्ध किया।

उस समर-क्षेत्र मे राजा हर्षदेव के आत्मीय अक्षोटमल्ल तथा चचरि-वंश मे उत्पन्न हुए मल्ल—इन दोनो ने बडी वीरता के साथ युद्ध किया। उन दोनो की युद्ध-कुशलता को देखकर शत्रु-पक्षीय सैनिको को बडा आश्चर्य हुआ। क्षण भर के लिए वे यह भी न समझ सके कि विजय की अनुकूलता कौन प्राप्त कर सकेगा। विलम्ब तक भयानक युद्ध करते हुए वे दोनो वीर निष्कलंक वीरता के साथ स्वर्ग की ललनाओ का सुख उपभोग करने के योग्य पात्र बन गये। उन दोनो के समान महान् संघर्ष के कारण सर्वत्र व्याप्त होने वाली धूलि-रूपी अंधकार मे जिसका छत्र चन्द्रमा के समान चमक रहा था, ऐसा वीर चन्द्रराज अपने सच्चे सेवक इन्दुराज के समेत देवांगना के दिव्य शरीर का आलिंगन करने के लिए स्वर्गलोक को सिधार गया। उस वीर चन्द्रराज के मारे जाने के कारण अत्यंत रुष्ट होकर विधाता ने राज हर्षदेव की आशा-रूपी कमलिनी के मूलकन्द का विनाश कर डाला था।

जिस समय सुस्सल ने अपने सैनिको के साथ विजयेश्वर-क्षेत्र मे प्रवेश किया उस समय पट्ट आदि हर्षदेव के पक्षवाले योद्धा-गण व्याकुल होकर प्राणो की रक्षा करने के लिए विजयेश्वर के मन्दिर मे घुस गये और उन्होने वहाँ के विशाल प्रवेश-द्वार को बडी दृढ़ता के साथ भीतर से बन्द कर लिया। वहाँ का आस्थानीय पद्म बडा साहसी था। मन्दिर मे छिपकर जीवन की रक्षा करने की अपेक्षा शत्रु से युद्ध कर मृत्यु की शरण मे चला जाना उसे अधिक उत्तम जँचा। इस-लिए वह बाहर के मैदान मे शत्रुओ से वीरतापूर्वक युद्ध कर मृत्यु के मुख मे चला गया। उसी प्रकार लक्ष्मीधर अपने प्राणो की पर्वाह न कर शत्रुओ से युद्ध करता रहा, परन्तु अंत मे उसे डामरो ने बाँध लिया।

विजयेश्वर के कोप-भवन की छत पर चढकर सुस्सल वहाँ के समस्त दृश्यो को देख रहा था। उसने नीचे की ओर दृष्टिपात करके देखा कि मैदान मे खडे हुए हर्षदेव के पक्षवाले सैनिक मारे भय के पशुओ के समान अतिशय व्याकुल हो रहे हैं। वह अत्यंत धूर्त्त था, इसलिए उसने संकेत द्वारा उन लोगो मे से पट्ट और दर्शनपाल—दोनो को अभयदान कर अपने समीप बुलवाया। उस छत पर चढने के लिए सीढ़ियाँ न थी, इसलिए सुस्सल के सेवको ने उनके हाथ मे रस्सी देकर मृतको के समान ऊपर की ओर खीचा। किसी प्रकार वे दोनो सुस्सल के पास पहुँचे। बडी देर तक वे मस्तक झुकाये खडे रहे। सुस्सल ने भी उनसे कोई वार्त्ता नही की। कुछ देर के बाद बडे लज्जित भाव से वे सुस्सल से प्रार्थना करते हुए कहने लगे—"विधाता के लिखे हुए अंको के अनुसार जो होने को था, वह हो चुका। राजा हर्षदेव की सेवा का फल पूर्णरूप से प्राप्त हो चुका है। अब तो जीवन आप के हाथ है। यदि आप आज्ञा दें तो हम दोनो यहाँ से तुरन्त किसी दूसरे देश को चले जायँ। समरांगण से प्रीति करना हम दोनो का उद्देश्य नही रह गया है।"

सुस्सल भी बडा अनुभवी और बुद्धिमान् था। उसने दोनो की प्रार्थना के अनुसार आदेश प्रदान करने की प्रतिज्ञा कर उनके मन की ग्लानि को दूर किया तथा मधुर भाषण और मांस आदि सुस्वादु भोजन के द्वारा उनका उचित सत्कार किया। उसके इस व्यवहार से उन दोनो के

देशान्तर जाने की उत्कण्ठा कुछ शिथिल पड़ गई। दूसरे दिन उस सुस्सल ने पिशाच के वशीभूत किये गये मनुष्य के समान ऐसा भयानक और घृणित कार्य किया जिसके स्मरण से विश्व की रचना करने वाला विधाता भी रोमाचित हो गया होगा।

राजा हर्षदेव की सेना मे हर्षदेव का ममेरा भाई राजा जासट तथा उमाधर आदि तीन राजा, राजवशी, राजपुत्र, सामन्त, प्रतिष्ठित अश्वारोही वीर, तत्री और अठारह सैन्य-विभागो के अगणित सैनिक थे। वे सब उसकी शरण आये थे। उसने विजयेश्वर के मन्दिर के विशाल प्रवेश-द्वार को खोलकर हाथ मे नगी तलवार लिए हुए उन सैनिको मे प्रवेश किया तथा उन सबो को खूब फटकारा। फिर उन्हे शरणागत जानकर विजयेश्वर को साक्षी बनाते हुए उन्हे अभयदान दिया और फिर मन्दिर की छत पर जाकर बैठ गया। वहाँ बैठ कर उसने हर्षदेव के समस्त सैनिको के शस्त्र छीन लिये और उन सबो को बँधवा कर सेवको द्वारा अपने पास बुलवाया।

उस समय जिस छत पर सुस्सल बैठा था, वह छत उन हर्षदेव-पक्षीय सैनिको के हाथो से छीने गये खड्गो की सुनहरी और रूपहरी मूठो से पुष्पित-सी दिखाई पड रही थी। उसने पशुओ के समान उन शस्त्रहीन सैनिको को पशुपालको के समान डामरो के अधीन कर दिया और वहाँ तीन दिन ठहरा। फिर वह सुवर्णसानूर नामक ग्राम मे पहुँच गया। वहाँ पर पट्ट तथा दर्शनपाल दोनो को स्वेच्छानुसार विदेश जाने के लिए आज्ञा दी। वहाँ से रवाना होकर पट्ट शूरपुर को चला गया। वहाँ पहुँचने पर उसको उसकी पत्नी घर से आकर मिली, तब उस अल्पसत्व ने विदेश जाने का विचार छोड दिया। दर्शनपाल ने तो केवल विदेश-गमन का जोश बतलाया था और बाद मे पट्ट की मित्रता के बहाने से अपने विचार को त्याग दिया।

सुस्सल स्वय राज्याधिकार प्राप्त करने का अभिलाषी था। इसलिए वह इस ओर भी प्राणपण से प्रयत्न करने लगा था कि उसके पहुँचने से पहिले उच्चल राजधानी पर अधिकार न करने पाये। उच्चल और सुस्सल दोनो भ्राता प्राय समान-वयस्क थे और दोनो समान रूप से उद्दण्ड स्वभाव के थे, इसलिए उन्हे पारस्परिक ज्येष्ठत्व और कनिष्ठत्व का कुछ भी ध्यान न था। उस बलशाली सुस्सल ने दो-तीन दिनो मे आसपास के अनेक स्थानो पर अधिकार कर लिया और वह राजधानी के समीप पहुँच गया। वह कलशपुर को जलाकर राख का ढेर बनाने के लिए तैयार ही था कि इतने मे बुप्प अथवा भोजदेव नामक राजा कलश का पुत्र उससे युद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकला।

"अपने समान वह भी दुष्ट स्वभाव का होगा और अपने लिए दु खप्रद भी होगा" इस विचार से राजा हर्षदेव ने उस राजकुमार को भावी दुर्भाग्य के प्रभाव से सर्वदा बलहीन बना कर रखा था। उस समय तो निरुपाय होकर उसे स्वतन्त्रता प्रदान करनी पडी। उसके बाद वह वीर भोजदेव किन-किन युद्धो मे सैनिको का प्रधान नही बना था? यदि उसे अपने प्रपितामह राजा अनन्तदेव के समान राजकुमारोचित उच्चतम शिक्षा दी गई होती तो वह वीर उत्साह-पूर्वक समस्त दिशाओ को शत्रुशून्य कर डालने मे किसी प्रकार की भी त्रुटि नही कर सकता था।

इस ससार मे ऐसे मनुष्य बहुत ही कम हैं जो नीति को न जानते हो परन्तु उस नीति के प्रयोग मे सफल होना बहुत कठिन है, अर्थात् जानी हुई नीति को कार्य रूप मे परिणत करना प्रत्येक नीतिज्ञ की शक्ति के परे है। जैसे प्रत्येक मनुष्य शस्त्र-विद्या का जानकार हो सकता है परन्तु अचूक निशाना लगाने वाले पुरुष दुर्लभ हैं। वह युवराज भोजदेव तिमि नामक मत्स्य

(मछली) के लिए तिमिंगिल नामक महामत्स्य (बहुत बड़ी मछली) के समान उद्दाम पराक्रम-शाली सुस्सल के लिए अत्युद्दाम पराक्रम-सम्पन्न होने के कारण दुःसह हो गया था।

पिता के कृतघ्न होने पर यदि सन्तान भी कृतघ्न हो तो उसे कैसे अयोग्य कहा जा सकता है ? तिल घुन लगे हुए भले ही क्यों न हो, परन्तु सुगन्धयुक्त सुमनों के सहवास से उत्पन्न होने वाली सुगन्ध उनके तेल मे प्रकट हुए बिना क्या रह सकती है ? राजा हर्षदेव ने देवेश्वर के पुत्र पित्थ का अत्यधिक गौरव बढ़ा दिया था, फिर भी उस पापी ने राजा के पक्ष को त्याग कर शत्रु-पक्ष का आश्रय स्वीकार किया। फिर जब सुस्सल से युद्ध प्रारम्भ हुआ तब पित्थ के पुत्र मिल्ल से राजा हर्षदेव ने अपनी ओर से उसके प्रति अनादर को प्रकट करते हुए उससे राजकीय अश्व वापस माँगा था।

इस व्यवहार से खिन्न होकर मिल्ल ने राजा से कहा "महाराज ! आज आप को मेरी वास्तविक योग्यता का पता चल जायगा।" ऐसा कह कर वह वहाँ से रवाना हो गया और उस स्वाभिमानी वीर ने रणभूमि मे प्रवेश कर खड्ग-धारा-रूपी जल से अपने कलंक को धो डाला। इस घटना से उसे कृतघ्न राजा के अन्तःकरण मे उसके वास्तविक स्वरूप को न जानने के कारण सर्वस्व-नाश की अपेक्षा भी अधिक दुःख हुआ। वैभव से सर्वदा संमोहग्रस्त राजा लोग अपने सेवक की वास्तविक योग्यता को तब समझ पाते हैं जब कि उनके पास शाब्दिक पुरस्कार के अतिरिक्त कुछ देने के लिए शेष नही रहता।

भोजदेव के द्वारा पराजित किया गया सुस्सल युद्धक्षेत्र से भाग गया और उसने लवणोत्स मे अपना डेरा जमा लिया। फिर वहाँ से वह दो-एक बार आ भी गया था। सूर्यदेव के तीव्रतर आतप (कड़ी धूप) से तथा युद्धजनित श्रम से थका हुआ युवराज वापस आ गया था और वह राजा हर्षदेव के सहित एक उपवन मे विश्राम के लिए पर्यंक (पलंग) पर लेट गया। इतने मे राजभवन के उत्तर की ओर से नदी के उस पार से "मल्लराज का ज्येष्ठ पुत्र उच्चल आक्रमण कर रहा है, इसलिए नदी का पुल तुरन्त तोड़ दिया जावे" इस प्रकार का भयानक कोलाहल सुनाई पड़ने लगा।

दुष्ट स्वभाववाले कृतघ्न दण्डनायक ने "यदि आप आज ही राजधानी मे पहुँच न सकेंगे तो राज्य-सिंहासन आपको न मिलकर आपके कनिष्ठ भ्राता सुस्सल के अधीन हो जायगा क्योंकि विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि वह राजधानी के बहुत समीप आ चुका है।" इस प्रकार का सन्देश उच्चल के पास भेजा था। इसलिए वह बड़े वेग से आक्रमण करने के लिए आया और मार्ग मे नरेन्द्रेश्वर के समीप सम्मुख युद्ध के लिए उद्यत हुए देवनायक को युद्ध में परास्त कर उसने तुरन्त यमलोक को भेज दिया।

उसके बाद नगराधिकारी नाग अश्वारोही सैनिको के व्यूह को साथ लेकर बहुत बड़ी सेना के सहित उसके सम्मुख युद्ध करने के लिए गया। उसी के पास प्रधान सेना थी, वह सुस्सल को जीत कर आया था, इसलिए राजा हर्षदेव को उस पर अधिक भरोसा था। इसलिए उच्चल-सम्बन्धी भय अथवा आशंका राजा को न थी। उच्चल के पास सेना बहुत कम थी इसलिए वह नाग से डरता था, परन्तु उस नाग ने अपनी पगड़ी उतार कर नम्रता के साथ उसको प्रणाम किया। उच्चल ने मण्डलेश्वर आनन्द के समान उसे भी अपने शत्रु हर्षदेव का प्रिय पात्र समझ कर उसका विश्वास नही किया और उसे अपने घर जाने के लिये कहा। तब उस विश्वासघातक पापात्मा ने वैसा ही किया। उस नाग को स्वामिद्रोह और राजद्रोह इन दोनो का फल इसी जन्म

में तथा शीघ्र ही मिल गया। बात यह हुई कि कुछ समय के बाद वह दुष्ट उसी मंडल मे सकट-पूर्ण अवस्था मे फँसकर भिक्षा-वृत्ति के द्वारा अपने शेष जीवन को व्यतीत करने लगा और इस प्रकार का कष्टमय जीवन बिताकर वह मृत्यु के मुख मे चला गया।

उसके बाद राजा हर्षदेव ने नदी के किनारे पहुँच कर देखा कि डामर-समूह पुल पर से चले आ रहे हैं। उन समस्त डामरो का वेश बड़ा विकृत था और उनका रंग भी श्याम वर्ण का था। दावानल से जले हुए जिस प्रकार जंगल के वृक्ष काले हो जाते हैं उसी प्रकार वे भी काले थे। उन सबो की आकृति बड़ी भयावनी थी। ऐसा जान पड़ता था मानो यमराज के दूत चले आ रहे हो। उनके मध्य मे कृष्ण पक्ष की रात्रि मे चमकीले शुक्र के प्रकाश के समान चमकते हुए और शुभ्र कवच को धारण किये हुए जनकचन्द्र सुशोभित हो रहा था।

राजा हर्षदेव ने नदी के ऊपर उस विशाल नौकाओ के पुल को अपने लाभ और उपभोग के लिए ही तैयार कराया था, परन्तु उस सकट-काल मे वही पुल दुर्भाग्य के प्रभाव से सर्वस्व-नाशकारी शत्रु के कार्य का साधक बन गया। शत्रु को बहुत समीप आया देखकर राजपत्नियाँ व्याकुल हो गईं। उन सबो ने प्राणो का त्याग करने का निश्चय कर लिया और वे जलती हुई लकड़ियो को हाथ में लेकर शतद्वार नामक राजभवन के ऊपरी भाग मे चतुष्किका नामक प्रकोष्ठ (कोठे) पर चढ गईं।

नगर मे निवास करने वाली जनता तटस्थ के समान निश्चिन्त होकर सेतु (पुल) के अग्र-भाग मे शत्रुओ के साथ किये गये युद्ध को आश्विन के महीने मे रामलीला के उपलक्ष मे किये जाने वाले क्रीडा-युद्ध के समान खडे रहकर देख रही थी। राजा हर्षदेव को विजय-प्राप्ति की पूर्ण आशा थी, इसलिए उसने राजभवन मे आग न लगाने के लिए रानियो को सन्देश के द्वारा सूचित किया था और वह पुल के द्वार पर युद्ध कर रहा था। पुल के अग्रभाग मे खडे हुए राजा हर्षदेव के हाथी का तनुत्राण (कवच) बाणो के प्रहार से छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ा था, इसलिए जनकचन्द्र आदि डामरो ने उस हाथी पर बाणो की वर्षा विशेष रूप से आरम्भ कर दी।

शत्रु-पक्ष के सैनिको द्वारा चलाये गये तीक्ष्ण बाणो के प्रहारो से उस हाथी का मर्म-स्थान घायल हो गया। वह हाथी तुरन्त चीत्कार करता हुआ पराङ्मुख होकर अपनी सेना को चरणो से कुचलने लगा। राजा हर्षदेव के प्रतिकूल भाग्य के समान उस विमुख हाथी के द्वारा कुचली गई राजा हर्षदेव की सेना के अश्वरोही तथा पैदल सैनिक व्याकुल होकर इधर-उधर भाग गये। शत्रु के सैनिको से विताड़ित वह राजा हर्षदेव युद्ध से विमुख हो गया और पुल को लाँघकर इस पार आ गया। इसके बाद भयभीत होकर शतद्वार नामक राजभवन के आँगन मे अपने अश्वारोही सैनिको के साथ प्रवेश कर गया।

जो राजा हर्षदेव एकान्त मे उज्ज्वल वेश के बिना नही देखा गया था, जिसका मुख भोजन के समय मे भी मलिन अथवा अस्वच्छ नही देखा गया था उसी राजा हर्षदेव का शरीर उस समय सूर्य के तीक्ष्ण आतप के ताप से तथा रिपुजनित भय से द्विगुणित स्वेदमय हो रहा था और कन्धो पर से खिसकते हुए कवच उसके सेवक लोग बार-बार ठीक करते थे। उसका अश्व अचानक बार-बार ही एँडी की चोट लगने के कारण दौड़ने के लिए व्याकुल होने लगता था। उसको रोकने के लिए राजा हर्षदेव भी उसकी लगाम को बार-बार बलपूर्वक खीच रहा था।

उसके सिर के बाल बहुत थोड़े रह गये थे, इसलिए तालु के ऊपर के भाग मे खल्वाटता (गन्जापन) आ गई थी, इसलिए वह आसपास के अवशिष्ट केशो को तलवार लिए हुए हाथ से

कानों के पीछे की ओर हटा रहा था। उसके कानों में कुण्डल नहीं थे। उसकी लटकती हुई कर्णपाली सूखे गले पर लटकने वाली नागिन के समान दिखाई पड़ रही थी। ताम्बूल के न मिलने से उसके सूखे अधर लाख से चुपड़े गये-से दीख रहे थे। वह उन सूखे अधरों को बड़े कष्ट के साथ जीभ के अगले भाग से चाट रहा था। उसके नेत्रों की पुतलियाँ तक धूल से भर गई थी इसलिए उसका मुख रूखा और धूसरित हो रहा था। वह हताश होकर राजभवन की छत पर खड़ी हुई रानियों को ऊँचा मुँह करके बार-बार देख रहा था। उस समय उस राजा हर्षदेव को आग लगाकर जल जाने के लिए तैयार उन ललनाओं को आग न लगाने के लिए संकेत करते हुए और व्याकुल-चित्त होकर उस राजभवन के आँगन में घूमते हुए समस्त लोगों ने देखा।

उस राजभवन के अति निकट मल्लराज का भवन था अतएव जनकचन्द्र ने नदी के इस पार आकर उसमें आग लगा दी। उस ओर से जलती हुई आग को राजधानी की ओर आते देखकर युवराज भोज को अपने पिता के हाथ से राज्य के चले जाने का पूर्ण रूप से निश्चय हो गया और उसने वहाँ से पलायन करने का उपक्रम किया। वह वीर राजकुमार नडों (एक प्रकार का तृण) के समान राजभवन के द्वार को रोक कर खड़े हुए शत्रुओं के सशस्त्र सैनिकों की भीड़ को तितर-बितर करता हुआ घोड़े पर सवार होकर पाँच-सात अश्वारोही वीरों के साथ निकल गया और सिंहराजमठ के पास पुल को पार कर लोहर की ओर चल पड़ा। राजकुमार के दृष्टि-पथ से ओझल हो जाने पर राजा हर्षदेव के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये और वह थोड़े-से अश्वारोही सैनिकों के साथ राजभवन से बाहर आकर युवराज जिस दिशा की ओर गया था उसी दिशा की ओर शून्य दृष्टि से देखने लगा।

उसी अवसर पर अग्नि में प्रवेश करने के लिए तैयार हुई रानियों की रक्षा करने के लिए थोड़े से राजसेवकों ने चतुष्किका को पत्थरों से तोड़ना आरम्भ कर दिया। उस समय शाही राजकन्याओं ने अर्थात् रानियों ने वास्तविक बात को न जानते हुए चतुष्किका के ऊपरी भाग में आग लगा दी। इस दृश्य को देखते ही राजा हर्षदेव के सेवक-जन तथा डामर-मडल आदि विद्रोही लोग परस्पर मारपीट करते हुए उस जलते हुए राजभवन के भीतर प्रवेश कर लूट-खसोट करने लगे। उस गड़बड़ी में असंख्य लोगों को यह संसार छोड़कर इच्छा के न रहते हुए भी यमराज के यहाँ जाना पड़ा। कोई घायल होकर कराहने लगा। किसी के ऊपर से असंख्य मनुष्य चले गये।

बाद में यह दशा हुई कि किसी को अपना-पराया भी न सूझने लगा। जो जिसे चाहता वह उसे मार कर आगे बढ़ जाता। किसी का तो सर्वस्व नष्ट हो गया और कोई सर्वस्वहीन होता हुआ भी उस समय सर्वस्व का अधिकारी बन गया। अनेक मनुष्यों की तो जन्म भर की दरिद्रता ही मिट गई और वहाँ पर लूट करते हुए अनेक मनुष्यों को ऐसी अपूर्व वस्तुएँ प्राप्त हुई जिनके कारण उन्हें अधिक उपहास का पात्र बनना पड़ा। किसी मूर्ख ने कर्पूर के टुकड़े को मिश्री का टुकड़ा समझ कर अपने मुख में डाल लिया और जब उससे उसका सारा मुँह जल उठा तब उस कर्पूर के पात्र को उस मूर्ख ने नदी में फेंक दिया।

बहुत से मूर्खों ने सुनहरे बेलबूटों से सुसज्जित वस्त्रों को उनमें से सुवर्ण प्राप्त करने की अभिलाषा से जला डाला और बड़े आदर के साथ उन समस्त वस्त्रों की राख के ढेर को एकत्रित कर लिया। कहीं-कहीं पर अविद्ध मौक्तिकों (बिना छेद की मोतियाँ) के समूह को चावल समझ-

कर मूर्ख स्त्रियो ने चक्की मे पीस डाला। इस प्रकार उन मूर्खों के द्वारा विम्बित की गई उस काश्मीर राज्य की अतुल सम्पत्ति भविष्य मे पुन उस रूप मे कदापि नही दिखाई पडी।

विद्याधरियो के समान उज्ज्वल वेश धारण करने वाली और सर्वपेक्षा अधिक सुन्दरी राजपत्नियो को उपद्रवी तथा क्रूर डामर लोग बलपूर्वक उडाकर लिये जा रहे थे। उस भयानक आपत्ति-काल मे बसन्तलेखा आदि राजपत्नियो ने, उनकी पुत्रवधुओ ने, और राजकन्याओ ने इस प्रकार सब मिलकर सत्रह स्वाभिमानशालिनी ललनाओ ने निरुपाय होकर अपनी स्त्रियोचित मान-मर्यादा के गौरव की रक्षा करते हुए अग्नि मे प्रवेश किया और जिनमे अपूर्व त्याग के लिए साहस की कमी थी तथा जिनके ऊपर विधाता का भयानक कोप था, एव जिनके जीवन का कोई आदरणीय आदर्श न था, वे समस्त स्त्रियाँ डामरो के द्वारा उडाई गईं। जलते हुए राजभवनो के काठ के खभो का चटचट शब्द प्रखर उष्णता के कारण उबलती हुई आकाश गगा के प्रचण्ड घोष के समान प्रतीत होता था।

हवश्री नामक प्रपा (पौशाला) के पीछे की ओर खडे होकर राजा हर्षदेव उन समस्त दृश्यो को देख रहा था और शोकग्रस्त हो अपने मन मे इस प्रकार का विचार कर रहा था—'शास्त्र के निर्माताओ ने सत्, रज और तम—इन तीन गुणो के आधार पर राजाओं के उत्तम, मध्यम और अधम ये जो तीन भेद किये हैं, वे सब भेद यथार्थ हैं। इसमे सन्देह नही कि जो राजा स्वधर्मनिष्ठ, प्रजा का परिपालक, समस्त यज्ञो का कर्ता, विषयो मे अनासक्त, शत्रु-समूह को जीतने वाला, दानवीर, क्षमाशील, शूर और लोभहीन होता है वह सात्विक राजा देहान्त के बाद अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है, किन्तु प्रजा-पीडन के सन्ताप से जो भयानक अग्नि उत्पन्न होती है वह राजा के कुल, ऐश्वर्य और जीवन को पूर्ण रूप से नष्ट किये बिना शान्त नही होती।"

उस समय तक राजा हर्षदेव के पास थोडी-सी सेना शेष रह गई थी, इसलिए उच्चल राजभवन मे आग लगाकर डामर-समूह के साथ नदी के उस पार चला गया था। राजा हर्षदेव समर-क्षेत्र मे युद्ध कर अपने जीवन-नाटक के अन्तिम दृश्य का पटाक्षेप करना चाहता था परन्तु पैदल सैनिको मे पद-पद पर मतभेद होने के कारण वह व्याकुलता के वशीभूत हो गया था और इसीलिये किसी भी प्रकार का निश्चय नही कर पाया था। अनन्तपाल आदि राजपुत्रो की सम्मति के अनुसार वह युद्ध के लिए तैयार होता था परन्तु दण्डनायक उसे युद्धभूमि मे जाने से बराबर रोकता था।

चम्पक ने "युद्ध कीजिए अथवा लोहर की ओर चले जाइए" इस प्रकार राजा से कहा। प्रयाग को लोहर की ओर जाना ही उचित जँचता था। वह युद्ध करने के पक्ष मे नही था। युवराज भोजदेव के चले जाने के बाद उस ओर के समाचार न मिलने के कारण व्याकुल होकर राजा हर्षदेव ने चम्पक को भोजदेव का पता लगाने के लिए जाने को कहा। उस समय चम्पक ने अत्यन्त दुःखित होकर कहा "महाराज! ऐसा करने से आपकी सेवा मे अकेला प्रयाग ही रह जायगा। इसलिए मुझे तो आप अपने समीप से मत हटाइए।"

चम्पक के इस कथन को सुनकर राजा हर्षदेव ने आँसू गिराते हुए कहा—"ऐसा मैंने सुना है कि आप कृतघ्न नही हैं, फिर आप मेरे कथन को क्यो नही मान रहे हैं? जिस प्रकार अधा मनुष्य सर्वत्र सूर्य के प्रकाश से आलोकित दिन मे भी समस्त दिशाओ मे घोर अन्धकार का ही अनुभव करता है और उसे कही कुछ भी दिखाई नही पडता उसी प्रकार पुत्र के बिना मैं भी

कहीं कुछ नहीं देख रहा हूँ। वह हमारे ही साथ रहकर बढ़ा है, इसलिए तुम जैसे राजभक्त और कर्तव्यपरायण मंत्री को उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए।"

उस मंत्री के युवराज भोजदेव से एक घोड़ी के लिए कुछ झगड़ा हो गया था, इसलिए राजा हर्षदेव ने उससे इस प्रकार के व्यंग वचन कहे थे। राजा हर्षदेव के द्वारा कहे गये व्यंग-पूर्ण उन वचनों को सुन कर वह मंत्री चम्पक अधिक लज्जित और अत्यंत दुखी हुआ तथा युवराज भोजदेव का पता लगने के लिए वहाँ से चल पड़ा। उसके साथ उसके भाई तथा सेवक आदि सब मिलाकर पचास अश्वारोही वीर थे, किन्तु नदी के उस पार पहुँचने तक उनमें से उसके समेत केवल पाँच मनुष्य रह गये थे।

उन चार साथियों में चम्पक के दोनों भाई और घोड़े पर सवार शेषराज का पुत्र तथा धनक ये वीर थे। मार्ग में शेषराज का अश्व मर गया था, इसलिए उसे भी पैदल चलना पड़ा। वे पाँचों वीर बहुत देर तक राजकुमार भोजदेव को खोजते फिरे, परन्तु उसका पता लगा सकने में समर्थ न हुए। तब सन्ध्या के समय वे सब वितस्ता नदी तथा सिन्धु नदी के संगम-स्थान पर पहुँच गये। इसी प्रकार राजा हर्षदेव ने अपने पुत्र का पता लगाने के लिए और भी अनेक आप्तजनों को भेजा। अनेक सेवक तो इसी बहाने से उसके पास से चल दिये थे।

जिस दण्डनायक ने राजपुरी आदि के युद्धों में राजा हर्षदेव से रुष्ट होकर शत्रु-पक्ष की ओर से घूस ले ली थी और राजा हर्षदेव को धोखा दिया था, जिस दुष्ट ने योग्य सैनिकों से चिढ कर उन्हें सेना से निकाल दिया था और राजा हर्षदेव की सम्पूर्ण सेना को निस्सार बना दिया था और जब राजा युवराज भोजदेव को लोहर भेज रहा था, तब भी जिस पापी कृतघ्न ने उस कार्य में विघ्न उपस्थित किया था, इसी प्रकार जिस धूर्त ने राजा हर्षदेव को युद्ध में संलग्न देखकर शत्रु को राजधानी में प्रवेश करने का अवसर दे दिया था और जिसने राजा हर्षदेव का सर्वस्व नष्ट कर डाला था, वही दण्डनायक उस समय भी राजा हर्षदेव के उचित कर्तव्य का निषेधक बन गया था।

उस समय राजा हर्षदेव भयंकर संकट में फँस चुका था इसलिए वह कि कर्तव्यविमूढ हो रहा था। उसमें किसी भी कर्तव्य को निश्चित कर सकने की शक्ति नहीं रह गई थी। उसकी बुद्धि चंचल और भ्रान्त हो चुकी थी और उसके धैर्य का बाँध भी टूट गया था। जिस प्रकार बाँसुरी के सभी छेदों में यदि वायु का प्रवेश होने लगता है तो मधुर स्वर कदापि नहीं निकल सकता उसी प्रकार परस्पर विरुद्ध अनेक मतों से बाधा प्राप्त हुए विचार कदापि निश्चित रूप को प्राप्त नहीं हो सकते। स्वामी के भाग्य-क्षय का यही लक्षण है कि उसे साधारण मनुष्य भी बिना पूछे ही अपनी इच्छा से अपने मन के अनुसार सलाह देने की धृष्टता करने लगता है।

जब राजा हर्षदेव युद्ध के लिए वहाँ से चलने को तैयार हुआ तब त्रैलोक्य नामक सारथि ने घोड़ों की लगाम पकड़ कर राजा हर्षदेव से दण्डनायक की बड़ी प्रशंसा की और फिर बड़ी नम्रता के साथ कहा—"महाराज! प्राचीन काल में आप के पितामह ने एकांग तथा अश्वारोहियों को साथ में लेकर विजयलक्ष्मी को प्राप्त किया था। इसलिए उन लोगों को एकत्रित करने के लिए हमको अक्षपटल नामक कार्यस्थान (कचहरी) में चलना चाहिए। वहाँ से उन सब लोगों को साथ में लेकर हम लोग एकत्रित हुए शत्रु की पैदल सेना पर पीछे से एकदम बाज के समान आक्रमण कर देंगे और इस प्रकार साधारण पक्षियों के समान शत्रु के उन सैनिकों को नष्ट कर देंगे।"

त्रैलोक्य की बातों को ध्यानपूर्वक सुन लेने के बाद राजा हर्षदेव ने उसके कथनानुसार कार्य करना भी उचित समझ लिया और ज्यों ही वह उसके साथ चलने को तैयार हुआ त्यों ही उसकी सेना में कोलाहल मच गया। जिस प्रकार जोरदार पानी की वर्षा से घबड़ा कर तमाशा देखने वाले लोग उसे छोड़ कर इधर-उधर भाग जाते हैं उसी प्रकार सैनिक लोग भी इधर-उधर भाग गये। राजा हर्षदेव ने वितस्ता नदी को पार कर इस पार आये हुए शेपराज के पुत्रों को युवराज भोजदेव के मार्ग-व्यय के लिए अपने कण्ठ का रत्नहार तथा अन्य आभूषण उतार कर दे दिये थे। वे आरामिक अर्थात् माली का काम करते थे। उनको अपने राज-भोग्य उत्तम आभूषण देने के बाद उन आभूषणों से हीन वह राजा हर्षदेव एकदम निस्तेज और शोभाहीन दिखाई पड़ने लगा।

उसके सैनिक उसे पग-पग पर त्याग कर जा रहे थे। वह अक्षपटल कार्यस्थान तथा अन्य राजकीय कार्यस्थानों में अधिक समय तक भटकता फिरा, किन्तु वहाँ पर उसे कोई भी नही मिल सका। इस प्रकार समस्त स्थानों से निराश होकर राजा हर्षदेव सन्ध्या के समय प्रत्येक मन्त्री के भवन के द्वार पर आश्रय के लिए गया, परन्तु द्वार पर खड़े हुए उस राजा हर्षदेव को किसी भी मन्त्री ने अपने भवन के भीतर नही बुलवाया। केवल प्रायोपवेशन के कार्य में कुशल महादुष्ट ब्राह्मण-वर्ग अन्त में किसी के भी कार्य में कदाचित् ही उपयुक्त हो सकता है, इसलिए उन नीच तम ब्राह्मणों पर राजाओं का विश्वास रखना ही सर्वथा व्यर्थ है।

इस प्रकार उस नगर में जितने प्रतिष्ठित लोग थे उन सब के भवन पर आश्रय पाने की आशा से भटकता हुआ राजा हर्षदेव कपिल नामक मन्त्री के द्वार पर गया। वह मन्त्री लोहर-कोट को चला गया था। अपने भवन के द्वार पर आये हुए राजा हर्षदेव का समयोचित आदर-सत्कार करती हुई कपिल की पत्नी ने बड़ी नम्रता के साथ कहा- "महाराज! जब आपने यहाँ तक आने का कष्ट स्वीकार किया है तब रात्रि भर यहीं विश्राम करने की भी कृपा कीजिए। भयानक संकट-काल में आपका इस प्रकार इधर-उधर अनाथों के समान भटकना सुरक्षा के दृष्टि-कोण से उचित नही है। मैं स्वीकार करती हूँ कि विधाता के प्रतिकूल होने पर मनुष्यों के सभी प्रयत्न सर्वथा व्यर्थ हो जाते हैं फिर भी निश्चय रूप से यह भी नही कहा जा सकता कि किस समय विधाता की अनुकूलता प्राप्त हो जाय।"

"जीवन-मरण, हर्ष-विषाद, उत्थान पतन, जय-पराजय और स्वागत-तिरस्कार आदि का कोई निश्चित समय नही होता। ये सब कालचक्र पर घूमने वाले वे संकेत हैं जिनसे मानव-जीवन की क्षणभंगुरता का अनुमान किया जा सकता है। जो सत्य है वह चिन्ता करने के योग्य नही है और जो असत्य है वह विश्वास करने के योग्य कदापि नही हो सकता। अतएव आप इस समय सत्य और असत्य दोनों से ही अपने को मुक्त कर निश्चिन्त होने की कृपा कीजिए। ज्यों ही प्रभात होगा त्यों ही आपके लिए नौकाओं का प्रबन्ध कर दिया जायगा और आप सकुशल लोहरकोट को चले जाइएगा।"

इस प्रकार कपिल की स्त्री के द्वारा समझाये जाने पर भी दुर्भाग्य से मोहित हुए राजा हर्षदेव ने उसके हितकारक वचनों को नही माना। पिता के समान द्रोह करने में निपुण उस कपिल मन्त्री के पुत्रों ने उस राजा को कष्ट में देखकर, जिस प्रकार कर्जदार लोग साहूकार को देखकर अपना मुँह छिपाने लगते हैं, उसी प्रकार अपने को तुरन्त छिपा लिया। उस समय राजा हर्षदेव को अपनी सदोषता का पता लगा, क्योंकि उसके पूर्व तो दुष्ट हृदय वाले मन्त्रियों ने

उसके द्वारा किये गये दुराचरणो पर और उन दुराचरणो से क्रुद्ध हुई जनता के द्वारा की गई निन्दाओ पर पर्दा डाल रखा था। उस समय राजा हर्षदेव सर्वथा निराश हो चुका था। उसके मन मे अपने समीप के सेवको पर भी विश्वास न रह गया था।

अन्त मे वह प्रद्युम्न तीर्थ की पहाडी पर पहुँचा। उसको लांघ कर जाने के वाद उसके पास बहुत थोडे सेवक रह गये थे। जो लोग अपने को छत्तीस उच्चतम कुलो मे उत्पन्न हुआ समझते थे और जो तेजस्वी, प्रभावशाली तथा सूर्य की अपेक्षा भी अपने को अधिक श्रेष्ठ मानते थे, उन्हीं अनन्तपाल आदि राजपुत्रो ने अपने-अपने घोडो को लेकर राजा हर्षदेव को रास्ते मे ही छोड दिया। उसके वाद राजा हर्षदेव जोहिल मठ के निकट पहुँच कर घोडे पर से उतर पडा। वही पर छोटे भाई के साथ दण्डनायक ने भी उसका साथ छोड दिया। "यहाँ पर मेरी ससुराल है। यहाँ आज की रात विताने के लिए आपके रहने के योग्य उत्तम स्थान देखकर मैं अभी उपस्थित होता हूँ" ऐसा वहाना वनाकर वह धूर्त दण्डनायक राजा हर्षदेव के पास से चला गया।

जिस समय दडनायक जाने की तैयारी कर रहा था, उस समय प्रयाग ने उसके छोटे भाई से राजा हर्षदेव के मार्ग-व्यय के लिए अंगद अर्थात् सुवर्ण का भुजवन्द मांगा था, परन्तु उसने उसे न देकर केवल थोडा-सा सत्तू दे दिया था। वाद मे राजा हर्षदेव के पास केवल एक वस्त्रात्मक सम्पत्ति, केवल स्वय का जीव तथा अकेला सेवक प्रयाग इतने ही अवशिष्ट रह गये थे। उसी अवसर पर चम्पक महामात्य के सेवक जेलक का मुक्तक नामक रसोइया अनायास ही उनके समीप आ पहुँचा था। उस समय वह राजा हर्षदेव का परम विश्वास-पात्र अनुचर वन गया था।

इधर-उधर भटकते हुए उन तीनो व्यक्तियो से समीप की एक पर्वतीय गुहा के भीतर रहनेवाली किसी एक स्त्री ने कहा "यहाँ से आगे का रास्ता नदी मे वाढ आ जाने के कारण अनेक स्थानो मे गड्ढो से युक्त और चलने के योग्य नहीं है।" उस स्त्री की इन वातो को सुनकर जव राजा हर्षदेव वितस्ता नदी के तट पर रुक गया तव प्रयाग ने नदी के उस पार जयपुर कोट को जाने के लिए मल्लाहो को वुलवाया। प्रयाग ने पहिले से ही राजा हर्षदेव को आश्रय के निमित्त भीमादेव के घर पर भेज देने के लिए वहाँ के कतिपय शस्त्रधारी सैनिको के साथ सलाह कर ली थी।

यद्यपि भीमादेव उच्चल के पक्षपातियो मे से था, तथापि उसने "यदि राजा हर्षदेव स्वय आश्रय के लिए मेरे भवन पर उपस्थित होगा तो मैं उसी का पक्ष ग्रहण करूँगा" ऐसी प्रतिज्ञा की थी। फिर भी भाग्यहीन और आत्मविनाश के लिए अग्रसर तथा किसी भी समीपस्थ व्यक्ति के दृष्टिपात मात्र से भयभीत होनेवाला राजा हर्षदेव मल्लाहो के द्वारा लाई गई नौका पर नही वैठा। जिस प्रकार सर्प के दृष्टिपात से जलता हुआ दीपक वुझने-सा लगता है, उसी प्रकार शरीर धारण करने वालो का वुद्धि-दीपक विनाश के समय उपस्थित हुए काल-सर्प के दृष्टिपात से शीघ्र ही आसन्न-निर्वाण हो जाता है। स्वामिद्रोह के सुभिक्ष से परिपूर्ण उस भयकर समय मे भी अपने स्वामी को छोडकर दूसरे की ओर आंख उठाकर भी न देखनेवाली किसी उच्चकुलीन वधू के समान जिस नीलाश्व डामर विम्व ने राजा हर्षदेव के पक्ष का त्याग नही किया था, उस विम्व को भी उस समय मे आश्रयाभिलापी वह राजा अपने दुर्भाग्य से स्मरण न कर सका।

उसके बाद स्वामिद्रोह के पातक से कलंकित, दूषित और भ्रष्ट पृथ्वी को जलधारा से धोकर कर पवित्र करने के लिए बादलों के वृन्द सामूहिक रूप से मूसलाधार वृष्टि करने लगे। निर्जन भूमि, निरंतर मूसलाधार वृष्टि, भयानक अंधकार तथा क्षण-क्षण में शत्रु का भय -इस प्रकार उस भाग्यहीन राजा के लिए कौन-सी दुःखदायिनी घटना शेष रह गई थी। वास्तव में उस समय राजद्रोही बन आने वाले किसी भी व्यक्ति का यहाँ नामोल्लेख करना किसी भी प्रकार उचित न होगा, किन्तु सत्य इतिहास-लेखन के अनुरोध से स्मरण न करने के योग्य व्यक्तियों के नामों का भी हमें यहाँ उल्लेख करना पड़ रहा है।

राजा हर्षदेव जिस स्थान पर पहुँचा था वह श्मशान-भूमि थी। वहाँ सोमानन्द नामक किसी सिद्ध योगी के द्वारा पूजित भगवान् सोमेश्वर नामक शंकर का मन्दिर था। उस मन्दिर के चारों ओर विशाल और ऊँचे-ऊँचे वृक्ष-समूह से ढकी हुई वाटिका थी। उसमें गुण नामक एक क्षुद्र तपस्वी की कुटी थी। उसने वह क्षुद्र भिक्षक "विरह-भुजंगी" नाम से विख्यात भिश्वा नामक वृद्ध वेश्या के साथ रहकर कुटनेपन का काम करता था।

वह कुटी प्रतापगौरीश के मन्दिर के समीप थी। उस कुटी में मुक्तक राजा हर्षदेव को रात बिताने के लिए जा रहा था। मुक्तक का सहारा लेकर राजा हर्षदेव और राजा हर्षदेव का सहारा लेकर प्रयाग इस प्रकार वे तीनों घोर अंधकारमयी रजनी में बीच-बीच में बिजली की चमक से पृथ्वी को देखते हुए जा रहे थे। उस समय राजा हर्षदेव का मस्तक पगड़ी से शून्य था। वृष्टि के कारण उसके भीगे हुए कपड़े शरीर से चिपक गये थे और वह बार-बार कीचड़ में फिसल पड़ता था। प्रयाग और मुक्तक दोनों बड़ी कठिनता से उसे उस कुटी तक ला सके थे। जिस प्रकार उत्पल को रुद्र का स्मरण हो आया था उसी प्रकार उस विकट संकट-काल में शोक करते हुए राजा हर्षदेव को दुष्ट मन्त्रियों के कथन से निर्वासित और आपत्ति को निवारण करने में समर्थ वीर-रत्न कन्दर्प का स्मरण हो आया था।

जिस समय वे तीनों उस कुटी के पास पहुँचे थे उस समय भिक्षुक गुण कहीं अन्यत्र गया हुआ था, इसलिए मुक्तक ने दीवार पर चढ़कर उस कुटी के आँगन में प्रवेश किया और आँगन के द्वार की अर्गला (सिटकिनी) को खोल दिया। बाद में प्रयाग के साथ राजा हर्षदेव उस आँगन में गया। उस कुटी के भीतर प्रवेश करते समय राजा हर्षदेव के दाहिने पैर में ठोकर लग गई थी, इसलिए रक्त बहने लगा था। इस प्रकार के अपशकुन को देखकर राजा हर्षदेव ने अपनी मृत्यु अति समीप आ गई है, ऐसा जान लिया। उस कुटी की कोठरी के द्वार पर ताला लगा था, इसलिए राजा हर्षदेव को भयंकर मेघाच्छादित घोर अन्धकारमयी वह रजनी उस आँगन में बैठकर डरते-डरते बितानी पड़ी थी।

उस समय राजा हर्षदेव का सम्पूर्ण शरीर कीचड़ से भरा हुआ था। वृष्टि के शान्त होने के बाद उसने सेवक के साधारण कम्बल से अपने शरीर को ढक कर कीचड़ से भरी हुई पृथ्वी पर खड़े-खड़े शेष रात्रि को बिताया था। वह कभी उठता था, कभी बैठता था, कभी उठ-कर चलने लगता था। इस प्रकार किसी भी कार्य में लगकर अपनी दुःखमयी अवस्था को भूलने का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु व्याकुलता के कारण उसे नींद नहीं आ रही थी और वह अपने आपको किसी अत्यन्त ऊँचे स्थान पर से अत्यन्त गहरे गढ़े में गिरा हुआ सा अनुभव कर रहा था।

वह राजा हर्षदेव "मैं कौन हूँ ! आज मुझे किसने अभिभूत कर रखा है ? मैं कहाँ हूँ ? इस समय मेरा कौन सेवक है ? अब मेरा क्या कर्त्तव्य है ?" इस प्रकार सोचकर बार-बार कांप उठता था। "मेरा राज्य छीन लिया गया है। मेरी प्रिय पत्नियाँ अग्नि मे जलकर भस्म हो गई हैं। मेरा पुत्र चला गया है। मैं बन्धु-बान्धवो से रहित एकाकी तथा पाथेय से भी हीन हूँ। मुझे एक भिक्षुक की कुटी के आँगन मे बैठ कर कालयापन करना पड़ रहा है।" इस प्रकार एक-एक दुःख के विषय मे गंभीरता के साथ विचार करते हुए उस राजा को अपने समान दुखग्रस्त और इस प्रकार की दुर्दशा का अनुभव करने वाला मनुष्य समस्त ससार के पुराणो तथा इतिहासो की कथाओ मे भी नहीं मिल रहा था।

इधर युवराज भोजदेव भी बचे हुए अपने दो तीन अश्वारोही साथियो के सहित नगर के समीप भाग से निकल कर हस्तिकर्ण नामक स्थान पर पहुँच गया था। चलते समय उस भोज-देव के मन मैं इस बात का पूरा विश्वास था कि यदि इन्द्र भी मेरा शत्रु होगा, उस दशा मे भी मैं पांच या छ दिनो मे अपने राज्य को फिर से अपने अधिकार मे कर लूंगा। मनुष्य गर्भवास की अवस्था मे अवस्थित जीव के समान पुरुषार्थ के भीतर आकर कौन-सा कार्य नही करना चाहता ? किन्तु जिस प्रकार गर्भवास से मुक्त होकर इस ससार मे आये हुए जीव को पूर्वजन्म के कर्मों की हवा मुग्ध कर देती है, उसी प्रकार दैव भी उस मानव को अचानक मोहित कर ही देता है।

युवराज की माताओं के द्वारा दिये गये पाथेय को लाने के लिए नागेश्वर नामक सेवक गया था। उसकी प्रतीक्षा मे युवराज भी हस्तिकर्ण के समीप की रगवाट नामक वाटिका के भीतर ठहरा हुआ था। उस समय तक उसे विशेष कोई चिन्ता नही थी। जब उसे अपने सेवक नागेश्वर के आने की सूचना मिली तब वह बड़ी प्रसन्नता के साथ वहाँ से बाहर निकला। दुर्भाग्य के प्रभाव से उसे अपनी उस प्रसन्नता से भी हाथ धोना पडा। बात यह हुई कि वह ज्यो ही वाटिका के बाहर आया त्यो ही नागेश्वर और उसके साथियो ने एक ही साथ उस पर प्रहार करना आरभ कर दिया।

इस प्रकार उन महापातकियो की कृतघ्नता को देखकर अपने क्षात्र-धर्म पर दृढ रहने वाले उस वीरव्रती युवराज भोजदेव ने जो पराक्रम प्रदर्शित किया उससे सभी आश्चर्यान्वित हो गये। युद्ध मे सिंह के समान अपने विरोधियो का संहार करते हुए उस आदर्श वीर ने रुधिर-रूपी अङ्गराग (उबटन) से अपने शरीर को लिप्त कर वीर-शय्या को गौरव प्रदान किया। उसके साथ ही साथ अनुपम पराक्रमशाली उसके मामा का पुत्र पद्मक और उसका प्रेम-पात्र क्रीड़ा-सहचर (खेल का साथी) खेल, ये दोनो वीर युद्ध करते हुए मृत्यु के मुख मे प्रवेश कर गये।

उधर उच्चल रात्रि के समय शूरमती देवी के मठ मे प्रवेश कर चुका था। वहाँ उसका भाई सुस्सल युद्ध के व्यापार से थककर लवणोत्स से आ पहुँचा। "राजकुमार भोजदेव मारा जा चुका है और अब अकेला ही नाम मात्र का राजा हर्षदेव शेष रह गया है।" ऐसा समाचार सुनकर उन्हे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उनके हृदय को निरतर पीड़ा पहुँचानेवाला कॉटा निकल गया है। अब केवल उस कॉटे की नोक भर बाकी रह गई है। उन दोनो भाइयो को राजा हर्षदेव की असहनीय शासन-नीति के कारण जो देशान्तर-प्रवास का अत्यधिक कष्ट उठाना पडा था, अब वे उस कष्ट को भूल गये थे और उन्हे राज्याधिकार प्राप्त न होने पर भी कुछ थोड़ा-

सा राज्य का सुख अवश्य प्राप्त हो गया था, फिर भी वह राज्य-सुख की प्राप्ति उन्हें अप्राप्ति के समान ही विदित हो रही थी।

उधर दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही मुक्तक उस भिक्षुक को कहीं से खोजकर वहाँ ले आया। उसने आते ही सब से पहिले राजा हर्षदेव को प्रणाम किया और फिर उस कुटिया का द्वार खोला। ज्यों ही कुटिया का द्वार खुला त्यों ही उसकी दुरवस्था का प्रकट रूप दिखाई पड़ने लगा। वह कुटिया डाँस और मच्छरों की ही निवास-भूमि थी। वहाँ की पृथ्वी पर तृण बिछा हुआ था। मुक्तक ने उस पर थोड़ा-सा पानी छिड़क दिया तब राजा हर्षदेव ने उसके भीतर प्रवेश किया।

जिस राजा हर्षदेव के मुख से निकले हुए शब्दों को श्रवण करने का सुअवसर पाकर बड़े-बड़े राजा-महाराजा लोग अपने को सौभाग्यशाली मानते थे, वही राजा हर्षदेव विधाता की प्रबल प्रतिकूलता के कारण उस समय में भयभीत होकर उस दरिद्र भिक्षुक से बड़ी नम्रता के के साथ चाटुकारिता करते हुए बातें करने लगा। उस भिक्षुक की भिक्षानुरूप अनागरिक भाषा, ग्राम्य भोजन तथा चतुरताहीन व्यवहार आदि ढङ्ग को देखकर राजा हर्षदेव को अत्यधिक कष्ट हुआ। उसके बाद प्रयाग ने उस भिक्षुक को अपना अन्तर्वस्त्र अर्थात् अन्दर पहिनने का कपड़ा बेचने के लिए देकर उसके धन से भोजन-सामग्री लाने को भेजा।

प्रत्यक्ष में कुत्सित और कटु वचन कहने वाला तथा परोक्ष में रहस्य-भेद करने के कारण भयोत्पादक वह कुत्सित तापस राजा हर्षदेव को भयानक शत्रु के समान दुःखप्रद प्रतीत हो रहा था। दोपहर के समय वह क्षुद्र तपस्वी अपनी सहचरी तपस्विनी के साथ भोजन-सामग्री के बर्तन को मस्तक पर रखकर वहाँ उपस्थित हुआ। उस तपस्विनी को देखते ही राजा हर्षदेव के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अभी तक तो मुझे मुक्तक और यह भिक्षुक दो ही जानते थे। इन दोनों के जानने से कोई विशेष आशंका की सम्भावना नहीं थी, किन्तु अब इस तपस्विनी को भी यहाँ इस प्रकार मेरे आने का समस्त वृत्तान्त विदित हो गया है, अतएव ऐसे विकट संकट-काल में मेरे जीवन की आशा बहुत कम रह गई है।

फिर प्रयाग के द्वारा लाये गये अन्न को राजा हर्षदेव ने प्रयाग के अनुरोध से केवल स्पर्श ही किया, खाया नहीं। उस समय उसका हृदय तीव्रतम दुःख के कारण अतिशय व्याकुल हो रहा था। आँगन में खड़े हुए प्रयाग ने उस तपस्विनी से "क्या कोई विशेष समाचार है?" इस प्रकार का प्रश्न किया। तब उसने अपनी ग्राम्य भाषा में युवराज भोजदेव के मारे जाने का वृत्तान्त सरल और स्पष्ट रूप से कह दिया।

उस तपस्विनी के इस कथन को सुनकर प्रयाग ने "यह बात सर्वथा असत्य है" ऐसा कहा, किन्तु राजा हर्षदेव ने अपने वाम नेत्र तथा वाम बाहु के फड़कने आदि अपशकुनों को देखकर उस कथन को असत्य नहीं माना। इस दुःखप्रद समाचार से दुर्दशा में फँसे हुए उस राजा को इतना तीव्रतम दुःख हुआ कि उसका वर्णन करने में राजा के कट्टर से भी कट्टर शत्रु को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। उस राजा ने राजनैतिक कपटमय प्रपंच के वशीभूत होकर उस राजकुमार को जो यन्त्रणाएँ दी थीं, उनके द्वारा उसने अपने मन में स्वयं को ही जन्मतः राजकुमार को संकट में डालने का मुख्यतम कारण माना।

यद्यपि वह युवराज वीर पुरुषों के द्वारा इच्छा की जाने वाली शौर्यवृत्ति के साथ युद्ध करके मरा था तथापि अधिक वात्सल्य होने के कारण राजा को "वह अपने ही उत्संग (गोद)

मे सोया है और उसकी बाल्यावस्था मे ही मृत्यु हो गई है" ऐसा प्रतीत हो रहा था। "अपने यौवनोन्नत वक्षस्थल पर वह राजकुमार खेल रहा है तथा उसके गले मे मोतियो की माला सुशोभित हो रही है' ऐसी कल्पना करते हुए और उसे अशीर्वाद देते हुए उस राजा का मन अत्यन्त विह्वल हो रहा था। "जिसकी रक्षा करना नितान्त आवश्यक और सर्वथा उचित था, वह राजकुमार तो स्वर्ग को सिधार गया और मैं इतना वृद्ध होकर भी अनुचित आचरण द्वारा अपने इस कुत्सित जीवन की रक्षा कर रहा हूँ।" इस प्रकार की विचारधारा मे निमग्न होकर राजा हर्षदेव अत्यन्त लज्जित हुआ।

इस भाँति राजा हर्षदेव ने पुत्र-शोक के कारण अनिर्वचनीय व्यथा से व्यथित होकर उसी क्षुद्र तापस की कुटी मे दूसरी रात भी बिता दी। उस रात्रि मे प्रयाग ने राजा हर्षदेव से भगवन्मठ जाने के लिए प्रार्थना की थी, परन्तु शोक के दुष्परिणाम से नष्टमति होकर उस राजा ने वहाँ से अन्यत्र जाने के लिए अपने मन मे संकल्प भी नही किया। वह रात्रि चन्द्रमा के बिम्ब से टपकते हुए ओस-कण-रूपी अश्रु-बिन्दुओ की वृष्टि के द्वारा तथा वियोगी चक्रवाक-युगल (चकोर-चकोरी) के करुण क्रन्दन-रूपी शोकाक्रोश के द्वारा दुःख को प्रकट कर रही थी।

फिर प्रातःकाल होते ही प्रयाग ने अपने स्वामी को क्षुधा और पिपासा से म्लान देखकर उस तपस्वी से भोजन लाने के लिए प्रार्थना की। तब वह तापस वहाँ से चला गया और शीघ्र ही वापस आकर उसने उन दोनो के सामने व्यंजनसहित उत्तम अन्न से परिपूर्ण दो पात्र रख दिये और कहा—"किसी एक सद्गृहस्थ के घर मे यज्ञ-महोत्सव था। वहाँ से मैं ये दो पात्र लाया हूँ।" इस प्रकार उसके वचन को सुनकर प्रयाग ने दीर्घ और उष्ण निश्वास छोड़ते हुए कहा—"महाराज! स्वामी का इस प्रकार वियोग सहकर, जबकि वह आपत्तिमय अवस्था से पीडित हो रहा है, देखिए, फिर भी इन लोगो को यज्ञ आदि महोत्सव करने का साहस हो रहा है।"

प्रयाग की बातो को सुनकर राजा हर्षदेव ने कहा—"तुम इस प्रकार मूर्खों के समान क्यो बोल रहे हो? जो गया वह गया ही है। उसके चले जाने से दूसरे की कौन-सी क्षति हो जाती है? सब अपने-अपने सुख को चाहते हैं। कोई किसी के लिए शोक नही करता। जबकि संसार के एक मात्र नेत्र और जो समस्त संसार को आलोक प्रदान करते है ऐसे भगवान् सूर्य के लोकान्तर चले जाने पर समस्त विश्व अपने भवनो मे सुख तथा शान्ति के साथ विश्राम करता है। ऐसी दशा मे दूसरा कौन सोचेगा कि मुझसे पृथक् होकर अर्थात् मेरे न रहने पर यह अखिल विश्व किस प्रकार रहेगा? मुझे पहिले अपने पुत्र के स्नेह का जो विश्वास था, अब उसके मरण का समाचार सुनकर वैसा दूसरे स्नेह का विश्वास नही हो सकता। इसी प्रकार दूसरे मनुष्यो के स्नेह का भी यही ढंग है। दूसरो की बात को तो जाने दो, मुझे ही पहिले देख लो कि मैं अपने जीवन के भी जीवन-स्वरूप पुत्र को मरा हुआ सुनकर भी स्वस्थ के समान जी रहा हूँ। फिर दूसरे मनुष्यो को किस प्रकार दोषी कहा जा सकता है?" ऐसा कहकर राजा हर्षदेव ने मौन धारण कर लिया।

इसके बाद प्रयाग ने उन दोनो पात्रो को त्याग कर गुप्त रूप से उस भिक्षुक को फिर से योग्य भोजन-सामग्री लाने के लिए कहा। 'मेरे पास कल के धन मे से खर्च करने के बाद बचा हुआ धन आज के खर्च के लिए पर्याप्त नही है तथापि किसी न किसी प्रकार प्रयत्न करके देखता हूँ" ऐसा कहकर वह भिक्षुक खेद प्रकट करता हुआ वहाँ से रवाना हुआ। जिस प्रकार अल्पसत्व

अर्थात् दुर्बल मनुष्य से पारद-भस्म (पारे का भस्म) पचाया नही जा सकता, उसी प्रकार क्षुद्र हृदय वाले मनुष्य किसी भी रहस्य को अपने मन मे नही रख सकते।

उस भिक्षुक का मनोरथ नामक एक बान्धव था। उसने यह रहस्य उससे कह दिया। तब मनोरथ ने उस भिक्षुक से कहा "यह राजा उच्चल का परम शत्रु है। इसलिए उसको इसकी सूचना देने से हम दोनो को उसके पास से पर्याप्त पारितोषिक प्राप्त होगा और हम दोनो ही धनाढय बन जायेंगे।

इस प्रकार प्रलोभन देकर उस भिक्षुक को मनोरथ ने विद्रोही बना दिया। वह द्विज न होकर किसी नीच कुलोत्पन्न दास का पुत्र होगा क्योकि उचित और अनुचित कर्म तथा स्वभाव ही इस बात के सूचक प्रमाण होते हैं। राजा हर्षदेव का वृत्तान्त उन दोनो ने इलाराज से कहा। फिर उसने उच्चल को सूचित किया। समस्त समाचार को ध्यानपूर्वक सुन लेने के बाद उच्चल ने भी राजा हर्षदेव को पकडने का काम इलाराज को ही सौंप दिया। इस विषय मे कई एक ऐतिहासिको का कथन है कि उस क्षुद्र तपस्वी तथा मनोरथ नामक द्विज को इलाराज के पास विभूतिमिश्र नामक कायस्थ ने पहुँचाया था। यह बात सरासर मिथ्या है। हो सकता है कि किसी ने किसी के द्वारा इसका प्रचार करा दिया हो।

ऐसी मिथ्या बात के प्रचारित होने का कारण उस विभूतिमिश्र का चारित्र्य अथवा बर्ताव ही हो सकता है। यह बात प्रसिद्ध है कि कुछ समय के बाद उस दुष्ट कायस्थ को चाण्डाल के कधे पर बैठाकर सर्वत्र घुमाया गया था और अनेक प्रकार से उसकी दुर्गति की गई थी तथा अपमानित भी किया गया था और अन्त मे कारागार मे रहकर अनेक यातनाओ को भोगते हुए उसे मृत्यु के वशीभूत होना पडा था। यह सब उसके द्वारा किये गये दुष्कर्मों का ही दुष्परिणाम था।

इधर राजा हर्षदेव क्षुधा से अत्यत व्याकुल हो रहा था और प्रयाग भी उससे भोजन करने के लिए बार-बार आग्रह कर रहा था। अन्त मे पुत्र के नवीनतम शोक से व्यथित होने पर भी राजा हर्षदेव ने प्रयाग के अनुरोध से भोजन करना स्वीकार किया। जिस प्रकार पक्षी का नन्हा-सा बच्चा भोजन-सामग्री को लाने के लिए गये हुए अपने माता-पिता की प्रतीक्षा करते हुए घोसले के बाहर बार-बार मुँह निकाल कर देखता है, उसी प्रकार प्रयाग भी उस कुटी की खिडकी से भोजन लेकर आने वाले उस भिक्षुक को आया हुआ जानकर बार-बार बाहर की ओर देख रहा था। इतने मे उसने उस कुटी को चारो ओर से सशस्त्र सैनिको के द्वारा घिरा हुआ देखा और आँगन के प्रवेश-द्वार की अर्गला को तोडने के शब्द भी उसे सुनाई पड़े।

इस प्रकार से विश्वासघात हुआ जानते हुए राजा हर्षदेव ने आँगन मे खडे रहकर मुक्तक को बुलाते हुए उस विश्वासघातक के अधम तापस को सैनिको के साथ देखा। फिर भी उसने निर्भय होकर कुटी का द्वार खोल दिया और मुक्तक को बाहर भेजकर अपने पास की कटार को म्यान से निकाल कर अपने हाथ मे ले लिया। इतमे में एक साहसी, अहकारी और क्रूर स्वभाव वाला कवचधारी सैनिक अपने हाथ मे नगी तलवार लेकर उस कुटी के भीतर प्रवेश कर गया। उस सैनिक को संकीर्णतम तापस-कुटी के भीतर बडी कठिनता से खडे हुए व्यायाम-कुशल राजा हर्षदेव ने पृथ्वी पर गिरा दिया। "पृथ्वी पर गिरे हुए जिस किसी मनुष्य को मारने से क्या प्रयोजन है?" इस प्रकार निरर्थक अहकार से ग्रस्त हुए राजा हर्षदेव ने अपने मन मे कहा।

एक दूसरा सैनिक कुटी के छाजन को उखाड कर भीतर उतर रहा था और तीसरा ऊपर चढ रहा था। इन दोनो ने राजा हर्षदेव को उस प्रथम सैनिक की पीठ पर शस्त्र हाथ मे लिये हुए खड़ा देखा। इस दृश्य को देखते ही वे भयभीत होकर पृथ्वी पर गिर पडे। उस समय उस सैनिक की पीठ पर खडा हुआ राजा हर्षदेव हाथ मे दण्ड को धारण कर रुद्र नामक दानव की पीठ पर खडी हुई चामुण्डा के समान सुशोभित हो रहा था। राजा हर्षदेव के जीवन का यह अन्तिम युद्ध वीरो के सिंहनाद, रणवाद्यो के उत्साहवर्धक शब्द अथवा शस्त्रो की झनझनाहट आदि से सुशोभित नही हो रहा था। प्रत्युत जिस प्रकार भांडे के भीतर प्रवेश किये हुए मूषक को चारो ओर से घेर कर मार्जार (विलाव) खडे हो जाते हैं उसी प्रकार थोड़े-से शस्त्रधारी डामर उस कुटी के भीतर प्रवेश कर गये थे और राजा हर्षदेव को चारो ओर से घेर कर खडे हो गये थे।

इसके बाद एक दूसरा शस्त्रधारी सैनिक कुटी के छाजन पर से भीतर की ओर उतरा और उसने राजा के सेवक प्रयाग के कन्धे पर तथा मस्तक पर प्रहार करके राजा हर्षदेव के ऊपर भी सहसा आक्रमण किया तथा राजा हर्षदेव के द्वारा किये गये प्रहार को बचाकर उसके वक्षस्थल मे बडी शीघ्रता के साथ दो बार खजर घुसेड दिया। उस प्रहार से घायल हुए राजा हर्षदेव ने "महेश्वर! महेश्वर!" इस प्रकार अपने इष्टदेव का दो बार नाम स्मरण किया और फिर छिन्नमूल वृक्ष के समान प्राणशून्य होकर पृथ्वी पर गिर पडा।

इसमे तनिक भी सन्देह नही कि राजा हर्षदेव चक्रवर्ती राजा था, फिर भी कालचक्र के प्रभाव से उसे भयभीत होकर पलायन करना पडा और फिर किसी के घर मे छिपे हुए चोर के समान उस सकुचित और गन्दी कुटी मे प्राणत्याग करना पड़ा। आधुनिक काल के राजाओ मे हर्षदेव के समान परम ऐश्वर्यशाली दूसरा कोई भी राजा नही हुआ और न उसके समान दूसरे किसी भी राजा को इस प्रकार गर्हित रूप से प्राण त्याग ही करना पड़ा।

युद्ध से विमुख हो जाने के कारण ही महामना राजा हर्षदेव ने अपना समस्त वैभव और उस वैभव से उत्पन्न होने वाले सुखो अपने आप खो दिया अथवा वह स्वायत्त सिद्धि न होकर सचिवायत्त सिद्धि था। यही एक मात्र उसमे दूषण था अर्थात् वह स्वय कुछ भी नही सोचता था और राज्य से सम्बन्ध रखने वाले समस्त कार्यों को मन्त्रियो की सलाह से करता था। यही एक मात्र दोष राजा हर्षदेव का था और समस्त अनर्थों के कारण तो उसके मन्त्रियो के दोष थे ऐसा भी कहा जा सकता है। राजा हर्षदेव लौकिक वर्ष चार हजार एक सौ सतहत्तर मे भाद्रपद मास की शुक्ला पचमी के दिन मारा गया। उस समय उसकी अवस्था बयालीस वर्ष आठ मास थी।

राजा हर्षदेव की जन्म-कुण्डली मे दुर्योधन के समान अपने ही कार्य के द्वारा अपने वंश के उच्छेदन करने का योग था। उसकी जन्म-कुण्डली मे जन्म-लग्न कर्क था और शनि तथा मगल पचम् भवन मे थे और बुध तथा वृहस्पति छठे स्थान में बैठे हुए थे। सूर्य और शुक्र सप्तम् थे तथा चन्द्र दशम् स्थान मे था। इसी प्रकार जब चन्द्र शुक्र तथा पाप ग्रह क्रमशः दशम्, सप्तम् और पचम् स्थानो मे बैठे हुए थे तब ऐसे कुयोग मे उत्पन्न हुए कौरवादिको ने अपने वश का नाश किया था—इस प्रकार ज्योतिष-संहिताकारो का कथन है।

जिस समय राजा हर्षदेव के रक्त से सर्वसहा वसुन्धरा को कलंकित अथवा अनुरजित किया गया था उस समय सम्पूर्ण काश्मीर देश की दशा बडी विचित्र हो गई थी। जिस देश के

रहने वाले मनुष्य अपने सज्जनतापूर्ण व्यवहार से देवताओं को भी लज्जित कर देते थे उसी देश के मनुष्य यह भी भूल गए थे कि मनुष्यों के प्रति उनका वास्तविक कर्त्तव्य क्या था ? मानवता की हत्या करने वाले यह भी नहीं जानते थे कि वास्तविक वीरता कहते किसे हैं ?

कहना तो यों चाहिए कि उस समय सम्पूर्ण काश्मीर देश अब्रह्मण्य-सा (जहाँ पर ब्रह्म की सत्ता ही न हो अथवा जहाँ के निवासी ब्रह्म के अस्तित्व को ही न स्वीकार करते हों) हो गया था। इसीलिए मृत्यु को प्राप्त हुए राजा हर्षदेव के मस्तक को किसी एक चोर के मस्तक के समान काटकर उसके शत्रु उच्चल के पास भेजा गया। राजा हर्षदेव के मस्तक का छेदन करते समय स-सागरा वसुन्धरा कम्पित हो उठी तथा मेघों से शून्य आकाश से मूसलाधार जल-वृष्टि होने लगी।

राजा हर्षदेव का कटा हुआ मस्तक एक लम्बे भाले की नोक पर रख कर उसकी बड़ी दुर्दशा की गई। इतने पर भी उन नर-पिशाचों को सन्तोष न हुआ। फिर उन सबों ने उसी दशा में उसे चारों ओर बड़ी प्रसन्नता के साथ नचाया और उसके सम्बन्ध में न कहे जाने वाले शब्दों को भी ऊँचे स्वर से कहना आरम्भ किया। इसी घोर पाप के कारण उन समस्त मानवता-द्रोही पापात्माओं को भविष्य में अत्यंत कष्ट भोगना पड़ा।

प्राचीन काल के राजाओं ने काश्मीर देश में देवताओं की प्रतिमाओं का शास्त्र की विधि के अनुसार स्थापित करना अपना धर्म समझा था किन्तु जिस प्रकार इस देश में राजा हर्षदेव के शासन-काल से ही देवताओं की प्रतिमाओं का उखाड़ना, तोड़ना आदि दुष्कार्यों का प्रारंभ हुआ, उसी प्रकार राजाओं के मस्तक को काट लेने का चलन भी राजा हर्षदेव मस्तक के कटने से ही प्रारम्भ हुआ। जब राजधानी के भीतर वह मस्तक नचा लिया गया और वे समस्त नचाने वाले पिशाच थक गये तब वह मस्तक बड़ी प्रसन्नता के साथ उच्चल के सामने रखा गया।

उस मस्तक को देखते ही सौजन्य के कारण उच्चल ने फिर उसकी ओर मस्तक उठाकर नहीं देखा और वह मस्तक नीचा किये बड़ी देर तक आँसू बहाता रहा। उसके बाद उसने उस मस्तक का यथाविधि अग्नि-संस्कार कराया। बड़े कष्ट और लज्जा की बात है कि उस हर्षदेव-जैसे चक्रवर्ती के शरीर का अग्नि-संस्कार किसी चोर के समान उच्चल की आज्ञा के बिना न हो सका। सेवकों से परित्यक्त, वशहीन राजा हर्षदेव के शरीर को गौरिक नामक काष्ठ-विक्रेता ने अनाथ शव के समान नग्न ही जला डाला।

राजा हर्षदेव की यह कथा रामायण तथा महाभारत की कथा के समान लम्बी और अवर्णनीय आश्चर्य को उत्पन्न करने वाली है। सम्पत्तियाँ भाग्य-रूपी मेघों में चमकने वाली बिजली के समान अत्यधिक चंचल हैं और अतिशय उत्कट तथा अतिशय अद्भुत् वैभव का अवसान भी उसी प्रकार तिरस्कार करने के योग्य है। फिर भी मोह से हतबुद्धि होने के कारण मनुष्यों का काल्पनिक विभव के अनुभव का अभिमान शांत नहीं होता यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है।

राजा हर्षदेव के अन्तःपुर में अनेक रानियाँ थीं, फिर भी उनमें से एक ने भी उसके लिए शोकजनित क्रन्दन नहीं किया और उस राजा के हजारों सेवकों के होने पर भी उसकी मृत्यु के शोक से खिन्न होकर किसी सेवक ने भी प्राण-त्याग अथवा तीर्थ वास स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार केवल अपने सुख में तल्लीन-चित्त होकर रहने वाले मनुष्यों की स्नेहशून्यता

को देखकर भी जो व्यक्ति विरक्ति-संयुक्त होकर अरण्य-वास को हर्षपूर्वक अंगीकार नहीं करते, उन्हें कोटि-कोटि बार धिक्कार हो !

प्रारंभ में शाश्वत ऐसी कोई भी वस्तु नहीं होती और यही दशा अन्तिम समय की भी है। मध्य काल में अचानक अच्छी दशा अथवा बुरी दशा के अनुरोध से कोई भी कार्य अल्प समय के लिए किसी भी प्राणी के द्वारा पूर्ण हो जाता है और वह प्राणी पद तथा मस्तक विहीन नट के समान इस मिथ्याभास-रूपी संसार के पर्दे के भीतर छिपकर कहाँ चला जाता है ? इस रहस्य को आज तक हम नहीं जान सके हैं।

जिस प्रकार दिन-श्री देवताओं के द्वारा त्याग किये गये हिमगिरि-शिखर को छोड़कर देवगिरि सुमेरु के दिव्य तट का आश्रय ग्रहण करती है उसी प्रकार सातवाहन-वंशोत्पन्न श्री (राज्यलक्ष्मी) उदयराज के वंश में निवास को छोड़कर कांतिराज के वंश में प्रतिष्ठित हो गई। इस तरंग में उदयराज-वंशज के छ राजाओं का वर्णन किया गया है। इन सबों ने काश्मीर में सत्तानवे वर्ष ग्यारह मास और सत्ताइस दिन तक अर्थात् तीन दिन कम अट्ठानवे वर्ष तक राज्य किया।



१ राजा उच्चल की कथा

काश्मीर के राज्य-सिंहासन पर अपना अधिकार स्थापित कर लेने के बाद भी नवीन राजा उच्चल ने उसी प्रकार न तो किसी के प्रति क्रोध प्रकट किया और न दया को ही प्रदर्शित किया। जिस प्रकार मन्थन के पूर्व समुद्र ने न तो विष प्रकट किया था और न अमृत ही। प्रारम्भ में उसके भाई सुस्सल और डामरों की सेना दोनों ने ही मिलकर इतने उद्दण्डतापूर्ण कार्य किये जिससे कि वह अपने सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय न कर सका। जिस प्रकार अनावृष्टि और वायु के कारण मेघ जल-वृष्टि करने में असमर्थ हो जाते हैं उसी प्रकार उन समस्त उद्दण्ड स्वभाव वालों के कारण वह राजोचित कर्तव्य-पालन में असमर्थ रहा।

एक तो सुस्सल यों ही यौवन के मद से उन्मत्त था, दूसरे उसमें अपने कार्य के परिणामों पर विचार कर सकने का सामर्थ्य भी न था इस पर भी उस वात्सल्यशील राजा ने उसे गौरव प्रदान कर दिया था, इसीलिए यह सब कठिनाई उपस्थित हो चुकी थी। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी के रस को खींच लेता है उसी प्रकार सुस्सल भी नंगी तलवार ले और हाथी पर सवार हो धन-धान्यपूर्ण पृथ्वी में लूटमार किया करता था।

राजभ्राता होने के कारण सभी चुपचाप उसके अन्याय को सह लेते थे और उच्चल भी उसका विरोध करने का साहस न कर पाता था। एक दिन सुस्सल ने अपने भ्राता राजा उच्चल से कहा—"इन डामरों से सर्वदा सशंकित रहना पड़ता है, इसलिए जिस समय ये सब अपने स्थान में एकत्र हों उसी समय इनके स्थान में आग लगा देनी चाहिए जिससे कि ये सब एक ही साथ जलकर भस्म हो जायें।" किन्तु धर्मपरायण होने के कारण राजा उच्चल ने उसके परामर्श के अनुसार कार्य-सम्पादन करना अनुचित समझा।

जिस राजा के मन्त्री और सामन्त लुटेरे हो और जिसका भ्राता स्वय राजा होने के ही समान आचरण करता हो तथा जिसका राज्य कोषहीन हो, उस राजा के सामने सभी प्रकार की आपत्तियाँ नित्य बनी रहती हैं। उच्चल भी समस्त आपत्तियो से घिर चुका था। जब उसने यह पूर्ण रूप से समझ लिया कि उसका भाई सुस्सल समझाने से नही मानेगा तब उसने अपने ही समान उसका राज्याभिषेक कर उसे सम्मान प्रदान किया और फिर स्वतत्र रूप से शासन करने के लिए उसे काश्मीर राज्य के अन्तर्गत लोहर प्रान्त मे भेज दिया।

चलते समय सुस्सल ने हाथी, हथियार, पैदल सैनिक, अश्वारोही सैनिक, समस्त धन, अमात्य आदि सभी को अपने साथ ले लिया। उसका बडा भाई उच्चल भ्रातृ-स्नेह के कारण किसी भी प्रकार का विरोध भी न कर सका। सुस्सल के मन मे इस बात की आशका थी कि कही दुर्ग के रक्षक उसे दुर्ग मे प्रवेश न करने दें इसलिए वह अपने साथ प्रताप नामक उत्कर्ष के पुत्र को भी लेता गया था। जब वह दुर्ग के रक्षको के समीप पहुँचा तब बडे ही विनीत भाव से कहने लगा—"मैं इस राजपुत्र को राजा बनाकर इसका प्रतिहार बनना चाहता हूँ।" उसकी इन बातो से प्रभावित होकर समीप के सरदार उस राजा के सामने ऐसे विनीत भाव से खडे हो गये मानो के सब उसी वे अपने ही सेवक हो।

कनक नाम का गायक भी सुस्सल के साथ ही था। जब सुस्सल के अनुचर वर्ग सात दिनो तक रास्ते मे ही रुके रहे और अनेक प्रकार के प्रयत्न करने पर भी वे आगे न बढ सके तब कनक को उन सब का साथ छोड देने का अच्छा अवसर मिल गया। वह उस अवसर का लाभ उठाता हुआ वहाँ से निकल भागा और सासारिक कष्टो से ऊबकर उसने बनारस मे प्राणो का त्याग कर दिया। राजा हर्ष के सेवको मे से वही एक था जिसने उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी।

जिस प्रकार चन्दन का वृक्ष अपने आश्रित सर्पों के प्रति दयालुता प्रदर्शित करता हुआ उन्हे बिना किसी विरोध के उच्च से उच्चतर शाखाओ तक पहुँचने की सुविधा प्रदान करता है उसी प्रकार उदार स्वभाव वाले राजा उच्चल ने समस्त दस्युओ को उनकी सेवाओ का स्मरण करते हुए राज्य-शासन-सम्बन्धी उच्च से उच्चतर पदो का गौरव प्रदान किया अर्थात् उन सबो को ऊँचे-ऊँचे पदो पर नियुक्त किया। उसी समय जनकचन्द्र ने उच्छृङ्खल होकर ऐसी विकट उद्दण्डता की जिससे कि राजा उच्चल और अन्य डामर सर्वथा प्रभावहीन हो गये। सिवा जनकचन्द्र के और किसी का भी प्रभाव प्रजा-वर्ग पर नही पडता था।

राजा हर्ष के एक पुत्र का नाम भोज था। उसकी रानी विभवमती उरशा के राजा अभय की कन्या थी। उससे एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। चूँकि उसके जन्म से पहिले दो या तीन पुत्र जन्म लेकर मृत्यु के मुख मे प्रवेश कर गए थे इसलिए गुरूओ ने उसे चिरजीवन प्रदान करने के उद्देश्य से उसका अमागलीक नाम "भिक्षाचर" अर्थात् भिखारी रख दिया था। यद्यपि यह दो वर्ष का बालक शत्रुओ का ही वशधर था और आगे चलकर इससे अनिष्ट की आशका भी अधिक थी, इसलिए इसके साथ शत्रुओ के ही समान बर्ताव करना चाहिए था तथापि राजा उच्चल ने जनकचन्द्र की बातो से प्रभावित होकर उसकी रक्षा की और उसे अपनी रानी की गोद में सौंप भी दिया।

जनकचन्द्र उस बालक भिक्षाचर को अपनी देखरेख मे रखकर उसके नाम से काश्मीर राज्य मे अपनी शासन-सत्ता स्थापित करना चाहता था इसीलिए उसके मनोगत भावो को

समझकर राजा उच्चल ने कुटिलतापूर्ण राजनीति का सहारा लिया। उसने अपने मन में पूर्ण रूप से विचार करके यह स्थिर कर लिया कि डामर और जनकचन्द्र सभी तो समान शक्तिवाले हैं। राज्य-सम्बन्धी पद-गौरव लाभ करने के लिए सभी समान रूप से लालायित हैं। कोई भी एक दूसरे के अधीन रहकर काम करने को प्रस्तुत नहीं है इसलिए ऐसे अवसर पर मुझे सज्जनता को अपनाये हुए तटस्थ ही रहना चाहिए। ऐसा स्थिर कर उसने यह घोषणा कर दी कि मैं जनकचन्द्र को प्रतिहार का पद प्रदान करना चाहता हूँ। जैसे ही उसने यह घोषणा की वैसे ही जनकचन्द्र के विरोधी भीमदेव आदि डामर ईर्ष्यालु हो गये।

जब उन सबों की ईर्ष्याग्नि पूर्ण रूप से उत्तेजना को प्राप्त हो गई और वे अपने मन की शान्ति एकदम खो बैठे तब जनकचन्द्र और भीमादेव के साथियों ने युद्ध करना ही निश्चय कर लिया और उसी निश्चय के अनुसार वे सब अपने-अपने नेताओं के साथ पण (बाजी) रखकर एक दूसरे को युद्ध के लिए ललकारने लगे। पुल पर चढ़कर राजा ने भी उन सबों को युद्ध करते हुए देखना चाहा और अपनी इसी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए वह चतुष्किका नामक स्थान पर पहुँच गया। यद्यपि उस समय उसके सचिव उसे उस स्थान से वापस ले जाने का प्रयत्न कर रहे थे तथापि वह वहाँ से हटा नहीं और क्रमशः चतुष्किका के ऊपर चढ़ता ही गया। वहाँ पर पहुँचते ही उसने देखा कि उभय पक्ष के डामर-समूह युद्ध के लिए एकत्रित हो चुके हैं। थोड़ी ही देर में वे सब एक दूसरे को ललकारते हुए द्वन्द्व-युद्ध करने लगे और फिर सहसा उत्तेजित होकर भयानक रूप से युद्ध करने लगे।

उस समय युद्ध की भीषणता इतनी बढ़ गई थी कि किसी को भी अपना पराया नहीं सूझता था। जिस समय युद्ध करते-करते वे सब चतुष्किका नामक पुल के समीप आये उस समय नदी के किनारे से जनकचन्द्र के सैनिकों ने राजा की ओर भी बाणों की वर्षा करनी आरंभ कर दी। सनसनाहट के साथ उन बाणों ने राजा के शरीर को स्पर्श करते हुए चतुष्किका के खभों में अपने आप को समाप्त कर दिया। उस समय उनके कम्पन से ऐसा प्रतीत होता था मानो वे सब क्रोध के आवेश में ही काँप रहे हों। उस परिस्थिति में राजा के सेवकों ने बलपूर्वक उसे वहाँ से हटाकर चतुष्किका मण्डप के भीतर बन्द कर दिया और ऐसी व्यवस्था की जिससे कि राजा की सुरक्षा हो सके। इसके बाद उस समर-स्थल में जनकचन्द्र और भीमादेव दोनों एक दूसरे को मार डालने के उद्देश्य से भयानक रूप से असि-युद्ध (तलवार द्वारा युद्ध) करने लगे।

उस तुमुल युद्ध में कालपाश का पुत्र अर्जुन ने जो कि भीमादेव का पराक्रमी अनुगत था, अपनी कटारी से जनकचन्द्र को घायल कर दिया। जब जनकचन्द्र घायल हो गया तब उसने क्रोध के आवेश में आकर राजा जिस मण्डप में सुरक्षित बैठा हुआ था उसके द्वार को पदाघात द्वारा खोलना चाहा क्योंकि उसने यह अनुमान कर लिया था कि उसकी हत्या कराने की सारी व्यवस्था उसी राजा के द्वारा ही की गई थी। चूँकि मण्डप का द्वार दृढ़ता के साथ पहले ही बन्द कर लिया था इसलिए अधिक प्रयत्न करने पर भी वह उसे न खोल सका। फिर वह भयभीत होकर वहाँ से स्नानद्रोणी (स्नान करने के स्थान) में छिप गया और उसकी हत्या करने के लिए भीमादेव कटारी लेकर उसका पीछा करने लगा। इसी बीच में भीमादेव का पारिवारिक गणनाध्यक्ष (हिसाब-किताब रखने वाला अर्थात् मुनीम), जो कि वहीं खभे के समीप छिपा हुआ था, ने अपनी तलवार से तुरत जनकचन्द्र के शरीर को दो खण्डों में विभक्त कर दिया। इतना ही नहीं, उस व्यक्ति ने छिपे हुए ही जनकचन्द्र को मार कर भागते हुए उसके छोटे भाई

गग्गा और सड्डा को भी अपनी तलवार से घायल कर दिया । जिस प्रकार विद्युत् किसी भी विशाल वृक्ष को नष्ट करने के बाद फिर दृष्टिगोचर नही होती उसी प्रकार दुस्साहसपूर्ण कार्य करने वाला पुरुष भी सर्वसम्मानित व्यक्ति को शत्रु के रूप मे नष्ट करने के बाद फिर ससार मे चिरस्थायित्व नही प्राप्त करता, अर्थात् उसे भी शीघ्र ही नष्ट होना पडता है ।

यही कारण है कि जनकचन्द्र को भी महाराज हर्षदेव की मृत्यु के ठीक डेढ महीने बाद ही इस प्रकार मृत्यु के मुख मे जाना पडा । वह वर्ष भी तेरह महीने का था, अर्थात् उस वर्ष मे दो भाद्रपद (भादो के महीने) थे । अथवा यह भी हो सकता है कि जिस राजा हर्षदेव ने जनकचन्द्र के लिए अनेक प्रकार के उपकार के कार्य किये थे उसी राजा हर्षदेव से उसने द्रोह किया था । ऐसे भयानक पाप के बोझ से दब जाने के कारण ही उसे इस प्रकार अपने जीवन की अन्तिम घडी देखनी पडी थी ।

उस जनकचन्द्र की मृत्यु से राजा उच्चल मन ही मन अधिक प्रसन्न हुआ किन्तु प्रकट रूप से वह उसके लिए शोक का प्रदर्शन करते हुए उसकी हत्या करने वाले पर क्रुद्ध होने का सा भाव दिखाने लगा । जनकचन्द्र की हत्या करने वाला भीमादेव राजा उच्चल के प्रकट भावो से भयभीत हो गया और वह किसी न किसी प्रकार अपने प्राणो की रक्षा करता हुआ वहाँ से भाग गया । किन्तु गग्गा तनिक भी भयभीत नही हुआ । वह पहिले के ही समान राजा उच्चल पर अटल विश्वास किये उसके समीप बना रहा ।

इसके बाद राजा उच्चल ने गग्गा को अपने घावो की उचित चिकित्सा कराकर स्वास्थ्य लाभ करने के लिए लोहर प्रान्त मे भेज दिया । इतना ही नही जितने डामर शेष रह गए थे और जो भयभीत हो रहे थे उन सबो को भी उनके पदो से च्युत करके सीधा उनके अपने जन्म-स्थान को भेज दिया था । इस प्रकार लुटेरो के उपद्रवो और अत्याचारो से राज्य को गुप्त कूटनीति और प्रकट दमन-नीति के द्वारा मुक्त कर लेने के बाद राजा उच्चल मे क्रमश आत्म-विश्वास की भावना प्रबल होने लगी ।

ज्योही राज्य-शासन-सम्बन्धी कार्यों मे उसने अपना उचित प्रभाव प्राप्त किया त्यों ही उस विजयाभिलाषी राजा उच्चल ने क्रमराज्य के अन्तर्गत रहने वाले डामरो को उनकी अश्वारोही तथा अन्य सैनिकों की सेना तोड को देने के लिए बाध्य किया । वहाँ से वह मडव राज्य की ओर अग्रसर हुआ । वहाँ का कालिय नाम का डामर अपने अन्य साथियो का संगठन कर विद्रोह करने लगा था । अपने प्रबल पराक्रम से राजा उच्चल ने सबो को परास्त किया और फिर एक-एक करके शूली पर चढा दिया । विद्रोहियो का नेता अपने साथियो के साथ चिरकाल के लिए शान्त हो गया ।

दूसरा विद्रोही इल्लाराज था । वह बडा प्रभावशाली और पराक्रमी था । उसके साथ अधिक बलशाली सैनिक भी थे । उन सब के कारण वह राजा उच्चल को तुच्छ समझता था । इसीलिए राज्य भर मे उपद्रव कर प्रजामात्र को सताने लगा था । इतना ही नही, उसने अपने सैनिको को साथ लेकर नगर को भी घेर लिया था और राजा से युद्ध करने को तैयार हो गया था । इसलिए राजा उच्चल ने विद्रोहियो का दमन करते हुए उस इल्लाराज को भी नष्ट कर डाला था ।

राजा उच्चल गग्गा को अपने ही पुत्र के समान अधिक स्नेह करने लगा था । कहा नही जा सकता कि इसका कारण क्या था । हो सकता है कि पूर्वजन्म के सस्कार ही प्रबल होकर

उसे इस प्रकार स्नेह करने के लिए बाध्य किये हो अथवा न्याय-परायणता के ज्ञान की गंभीरता का अनुभव करने के कारण ही राजा उसे इस प्रकार स्नेह करने लगा हो। यह बात प्रसिद्ध हो चुकी थी कि प्रजा को तनिक भी कष्ट पहुँचाने वाला व्यक्ति राजा उच्चल का कोप-भाजन हो जायगा और उसे किसी भी दशा मे क्षमा नही मिल सकेगी क्योकि राजा उच्चल अधिक प्रजाप्रिय राजा है। उसे प्रजा का कष्ट सहन नही होता। इतना सब होते हुए भी राजा उच्चल ने गगा पर कदापि क्रोध नही प्रकट किया यद्यपि उसने प्रजा को सताने वाले अनेक अपराध किये थे।

राज्य-शासन-सम्बन्धी कार्यों में उसे किस नीति को अपनाना चाहिए यह वह सोचा करता था। सोचते-सोचते उसे राज्याधिकार प्राप्त करने का दिवस-स्मरण हो आया और यह भी स्मरण हो आया कि उस दिन उसने परम बुद्धिमान् भीमादेव से उचित परामर्श देने के लिए आग्रह भी किया था। भीमादेव ने जो कुछ कहा था उसे वह पूर्ण रूप से स्मरण करने लगा। स्मरण करने से ही उसे दो बातें स्मरण हो आई। वह उन्ही को विशेष रूप से मन्त्रो के समान बारम्बार स्मरण कर अपने राज्य-शासन के मूल मन्त्र बनाने का विचार करने लगा। विचार दृढ हो जाने के बाद एक मन्त्र के अनुसार वह जनता के विचारो का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रात काल होते ही राजभवन से बाहर निकल जाता और सूर्यास्त होने तक बाहरी न्यायालयो की कार्य-पद्धति का ध्यानपूर्वक अवलोकन करता और दूसरे मन्त्र के अनुसार ज्यो ही उसे किसी भी सूत्र से किसी भी व्यक्ति के विद्रोही होने का समाचार प्राप्त होता त्यो ही वह उस विद्रोही का अन्त करने के लिए प्रस्थान कर देता चाहे वह अर्धरात्रि का ही समय क्यो न होता।

जितने भी राजा हो चुके हैं उन सब मे राजा उच्चल ही अटल धैर्यवान् और बडा मनस्वी राजा था इसीलिए उसका आचरण भी बडा ही निर्मल था। यहाँ तक कि धन-लिप्सा भी उसके आचरण मे कलक नही लगा सकी थी। इस परिस्थिति मे मैं कह सकता हूँ कि अभी तक पापी राजाओ का वर्णन करने के कारण मेरी वाणी मे जो कलक लगा हुआ था वह अब राजा उच्चल जैसे धर्मपरायण और सदाचार-सम्पन्न राजाओ के गगाजी के समान परम पवित्र निर्मल सुयश गान से अवश्य मिट जायगा।

यह सत्य है कि उसके शासन-सम्बन्धी समस्त अग सर्वथा अपूर्ण थे फिर भी उसने न्याय को पहिचानने के मार्ग मे छाये हुए सघन अन्धकार को दूसरे अनूरु के समान शीघ्र ही दूर कर दिया था। जिसकी जांघें न हो उसी को अनूरु कहते है। यही अनूरु भगवान् भास्कर का सारथी कहा गया है। जिस प्रकार पूर्णांग न होने पर भी सूर्य का सारथी अनूरु अधकार को दूर कर देता है उसी प्रकार राज्य-शासन के कार्य मे अपूर्णांग होने पर भी राजा उच्चल ने न्याय के मार्ग को प्रकाशमान् बना दिया था।

राज्य के न्यायालयो मे न्यायाधीश के पद पर कार्य करने वालो से उसने विशेष रूप से ध्यान देकर न्याय-सम्बन्धी कार्यों को करने के लिए कहा था। साथ ही साथ यह भी कहा था कि यदि वे सब अपने कर्तव्य के पालन मे असावधान रहेगे अथवा उसे कही किसी के प्रायोपवेशन करने का सम्वाद प्राप्त होगा तो वह आत्मघात कर डालेगा। उसकी इस भयानक प्रतिज्ञा को सुनकर सभी न्यायाधीश सावधान होकर प्रजा के अभियोगो पर विचार किया करते थे।

राजा उच्चल के विचार बड़े उच्च कोटि के थे। यदि वह कही किसी भी व्यक्ति का करुण विलाप सुन पाता था तो उसके हृदय को बडा आघात पहुँचता था। परिणाम यह होता था कि करुण विलाप करने वाले व्यक्ति को जिसने सताया था वह तुरन्त दण्ड पा जाता था और फिर उसे क्षमा नही दी जाती थी। इस प्रकार के अपराध के कारण होने वाले अपराधो मे यदि वह स्वय भी होता तो उसे भी अवश्य दण्ड मिल सकता था।

यदि राज्य के किसी कर्मचारी की त्रुटियो के कारण किसी भी व्यक्ति को विलाप करना पडता था तो राजा उच्चल उस राज्य के कर्मचारी पर अधिक क्रुद्ध हो जाता था और ऐसा दण्ड देता था कि राज्य के उस कर्मचारी के समस्त बन्धु-बान्धव भी विलाप करने लगते थे। राजा उच्चल की प्रधान नीति ही दुर्बल मनुष्यो की सहायता करनी थी इसलिए राज्य के अन्तर्गत रहने वाले समस्त नागरिक बलशाली हो गये थे और उनकी तुलना मे राज्य के समस्त कर्मचारी कही दुर्बल हो चुके थे।

राजा उच्चल घोड़े पर सवार होकर अकेला ही राज्य भर मे भ्रमण किया करता था और उन लोगो से बाते करता था जो यह नही जानते थे कि वही काश्मीर का शासक राजा है। प्रसगवश वह उन लोगो से भी राज्य-प्रबन्ध से सम्बन्ध रखने वाली बातो को पूछता था। यदि वे लोग कही किसी भी प्रसग मे राजा उच्चल के किसी भी दोष को कह देते थे तो वह अपने उस दोष को तुरन्त दूर कर देता था। चाहे वह किसी भी प्रकार का हो। जब राजा उच्चल कही भी पहुँच जाता था तब वह अपनी उपस्थिति को सार्थक सिद्ध कर देता था। कही भी उसकी उपस्थिति निष्फल नही हुई इसीलिए प्रार्थी जन-समुदाय के लिए वह साक्षात् कल्पवृक्ष के समान मनचाहा फल देने वाला हो गया था।

राजा उच्चल की प्रशसा कहाँ तक की जाय। जिस समय वह भाषण करता था उस समय उसके प्रत्येक शब्द से अमृत की वर्षा होने लगती थी और जिस समय वह किसी पर दया करता था उस समय ऐसा ज्ञात होता था मानो उसने अपना सर्वस्व ही अर्पण कर दिया हो। जनप्रिय तो इतना था कि जिस समय वह विश्राम करने के लिए राजभवन के विश्रामागार मे प्रवेश करता था उस समय भी वह अपने सेवको को अपने समीप से दूर हटाना उचित नही समझता था। उसकी सेवा मे निरन्तर तत्पर रहने वाले सेवक अपने कर्तव्य का पालन करते-करते थक जाते थे। फिर भी वे उससे कभी अप्रसन्न नही होते थे और उसके दर्शनो की लालसा नित्य किया करते थे। इस-लिए दिन भर कार्य करने के बाद जब वे रात्रि मे तीन या चार बार उससे मिलने आते थे तब वह सहर्ष उनसे मिला करता था।

जब उसके सेवक उसकी सेवा करने के लिए उसके सम्मुख उपस्थित होते थे तब वह उनके प्रति अधिक दया का व्यवहार कर उनकी सेवाओ का पारितोषिक प्रदान किया करता था। सत्य बात तो यह है कि वह सभी से लिए इन्द्रजाल के द्वारा तैयार किये गये वृक्ष के समान तुरत फल देने वाला था। ऐसा ही कोई होगा जिसे उसकी सेवा करने पर अभीष्ट फल न मिला हो। जिस प्रकार अपने प्रिय पुत्रो के सकटो को सुनकर पिता समस्त कार्यों को छोड देता है और सकटो के दूर करने का शीघ्र प्रयत्न करता है उसी प्रकार प्रजा के सकटो को सुनते ही राजा उच्चल अपने समस्त कार्यों को छोड देता था और सकटो से प्रजा का उद्धार करने के लिए दौड पडता था। जब कभी राज्य के अन्तर्गत दुर्भिक्ष का प्रकोप आरभ हुआ और प्रजा को अन्न-

कष्ट होने लगा तभी उसने अपने भाण्डार मे सचित अन्न को अल्प मूल्य मे विक्रय कर दुर्भिक्ष के कारण होने वाले अन्न-कष्ट को को तुरत किया।।

राजा उच्चल की सहृदयता भी अपूर्व थी। उसके राज्य मे जितने भी लुटेरे और डाकू थे, उन सबो को भी उसने उन समस्त अत्याचारपूर्ण कलकित जीवन से मुक्त कर दिया। उसने उन सबो को ऐसा अपनाया कि वे सब सज्जन पुरुषो के समान सदाचारपूर्ण जीवन बिताने लगे और वे ही राज्य के कोषागार के सरक्षक भी बनाये गये। वह यह भी निरन्तर सोचा करता था कि वास्तव मे उसकी सहायता पाने के अधिकारी कैसे व्यक्ति हो सकते हैं और राज्य के भीतर किन-किन प्रान्तो मे किस प्रकार के सकट उपस्थित हुआ करते है। यह सब यथार्थ रूप से जान लेने के उद्देश्य से उसने गुप्तचरो को भी नियुक्त किया था। वे राज्य भर मे गुप्त रूप से भ्रमण किया करते थे और जहां जैसी घटना होती थी वहां की उस घटना को उसी रूप मे कह दिया करते थे।

यो तो राजा उच्चल मे सद्गुणो का अभाव नही था किन्तु सब से अधिक श्रेष्ठ सद्गुण यह था कि उसमे धन-विषयक लोभ नही था। ऐसा ज्ञात होता था मानो उसके समस्त सद्गुण के ऊपर यह सद्गुण विशेष रूप से पल्लवित हुआ था। दुश्चरित्रता के अपराध मे वह दण्डनीय पुरुषो को अर्थ दण्ड अवश्य देता था किन्तु इस प्रकार आये हुए धन को स्पर्श तक नही करता था। उस धन को किसी पुण्य कार्य मे व्यय करके वह उसे भी पवित्र बना देता था।

यदि कभी किसी प्रार्थी को कोई वस्तु देने का वचन देता था तो अपने वचन की रक्षा के के लिए एक वस्तु के स्थान मे हजार वस्तुएँ देता था। इसीलिए जब प्राथियो के "मुझे दो मुझे दो" शब्द सुनाई पड़ते थे उसी समय राजा उच्चल के 'तुरत दो, तुरत दो" ऐसे शब्द सुनाई पड़ते थे। उसने जितने भी दान दिये थे सभी उच्च भावनाओं से प्रेरित होकर दिये थे। उसका ऐसा कोई भी दान नही था जो कि अनुदात्त हो, अथवा विलम्ब से दिया गया हो या परिमाण अथवा सख्या मे कम कर दिया गया हो, असत्कारपूर्वक किया गया हो अथवा राज्य के कर्मचारियो या अन्य अनुचरो ने बीच मे ही आधा कर दिया हो।

उत्सवो के अवसरो पर वह चित्रलिखित वृक्षो के समान केवल दर्शनीय नही रहता था, अपितु जिन लोगो के सम्बन्ध मे वह जान लेता कि वे सब वास्तव मे अर्थ-सकट मे पडे हुए है, तुरत उन्हें प्रसन्न रहने और कार्य-साधन के लिए धन द्वारा सहायता पहुँचाता था। जिस प्रकार ग्रहो के सयोग से इन्द्र जल द्वारा पृथ्वी को लबालब भर देता है उसी प्रकार शिवरात्रि आदि उत्सवो पर राजा उच्चल जनसमूह को धन द्वारा पूर्णरूप से तृप्त कर देता था।

निस्सन्देह राजा हर्षदेव का नाम अधिक प्रसिद्ध है किन्तु उत्सवो के अवसरो पर केवल पान मे ही राजा उच्चल इतना धन व्यय कर देता था कि उसके उस कार्य की तुलना मे राजा हर्षदेव भी न्यूनता के अधिकारी हो जाते थे। जिस समय उसने राजा के पद को प्राप्त किया था उस समय वह स्थान मिट्टी के ढेले के ही समान था अर्थात् सर्वथा लक्ष्मी से रिक्त था, फिर भी उस पद से ही उसने ऐसा अमित दान दिया कि कुबेर भी उस प्रकार का दान देने मे समर्थ नही हो सकते थे।

अन्य राजाओ के समान उच्चल भी काश्मीर का ही निवासी था। किन्तु उसने उन सबो के समान न तो भवनो का निर्माण कर वहां की भूमि पर और न असख्य घोडो को मोल लेकर लुटेरो पर ही धन का अपव्यय किया था। सभी दिशाओ और सभी कायो की ओर उसने अपने

को संलग्न कर दिया था इसीलिए वह सभी विषयो का पूर्ण ज्ञाता हो गया था। परिणाम यह हुआ कि वह राज्य के अन्तर्गत रहने वाले समस्त गृहधारियो के ही समान चेतनस्वरूप हो गया था, अर्थात् सभी उसे अपने से अभिन्न समझते थे।

वह ब्राह्मणो को राजोचित भोजन, व्याधि-पीडितो को उपयुक्त ओषधि तथा जीविका-विहीन व्यक्तियो को योग्य वेतन दिया करता था। पितृश्राद्ध, ग्रह-शान्ति, अरिष्ट-निवारण तथा ग्रहण आदि के अवसरो पर वह ब्राह्मणो को हजारो गौएँ, घोडे और अमित धन दान करता था। उसके शासन काल मे अग्नि के उत्पात से नन्दी-क्षेत्र पूर्णतया जल गया था उसने उसे तुरन्त पहिले की अपेक्षा कही अधिक सुन्दर बनवा दिया था। उस धर्मपरायण राजा मे प्राचीन प्रसिद्ध मन्दिरो का जीर्णोद्धार करने का व्यसन-सा लग गया था इसीलिए उसने चक्रधर, योगेश और स्वयभू के भव्य मन्दिरो का जीर्णोद्धार भी किया था।

राजा हर्षदेव ने परिहासपुर से जिस परिहासकेशव की मूर्ति को निकलवा लिया था उसने उसी परिहासपुर मे उस मूर्ति को पुन स्थापित किया था। उस निर्लोभ राजा ने राजा हर्षदेव द्वारा हटवाये गये पूर्ववर्णित शुकावली द्वारा त्रिभुवनस्वामी के मन्दिर को फिर से सजा दिया था। जिस राजसिंहासन को राजा जयापीड ने प्राप्त किया था और राजा हर्षदेव का उच्छेद करते समय जो अग्नि से जल गया था उस राजसिंहासन को उसने फिर से नये ढग से निर्माण कराया था।

राजा उच्चल की अधिक प्रेमाधिकारिणी होने के कारण जयमती को उस राजसिंहासन के अर्द्धभाग मे बैठने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यद्यपि वह अति साधारण वश मे उत्पन्न हुई थी तथापि उसने रानी के पद-गौरव को किसी भी अश मे न्यून नही होने दिया था। वह भी दयालुता, मधुरता, उदारता, धार्मिक व्यक्तियो के प्रति श्रद्धा-परायणता, सुशीलता, अनाथ और पीडितो के प्रति सहृदयता आदि सद्गुणो के कारण लोक मे प्रसिद्धि-लाभ कर चुकी थी। साधारणतया स्त्रियाँ परमसुन्दरी होने पर राजा की अधिक प्रिय पात्री होते ही राक्षसियो के समान प्रजा पर भयानक क्रोध कर राज्य के विनाश का कारण बन जाती है किन्तु जयमती ऐसी नही थी।

राजा उच्चल बडा प्रजा-वत्सल था। उसके समस्त सद्गुणो मे धन-विषयक निर्लोभ ही विशेष महत्व का था। वह नित्य रटा करता था कि हिंसापरायण, पाप-कर्म करने वाले दूसरो की सम्पत्ति लूटने के इच्छुक राजकर्मचारी गुण्डे और राक्षस के समान होते हैं। इस नीतिपूर्ण वाक्य पर पूर्ण रूप से विश्वास करके उसने कायस्थो का उन्मूलन कर डाला था और इसलिए कि वे सब कर्मचारी प्रजा को शीघ्र नष्ट करने वाले हैजा, उदरशूल तथा अन्य घातक रोगो से भी बढकर प्लेग के समान ही थे। कर्कट (केकडा) अपने पिता की हत्या करता है और दीमक अपनी माता को मार डालता है किन्तु शक्तिसम्पन्न होते ही कायस्थ किसी को भी नही छोडता। जिस प्रकार वेताल अपने आश्रयदाता और सम्मानकारी को बिना हिचक के ही मार डालता है उसी प्रकार कायस्थ भी अपने उन्नायक और प्रशसक को मार डालने मे तनिक भी सकोच नही करता है।

जिस प्रकार विषवृक्ष जिस स्थान पर उत्पन्न होता है उस स्थान को दूसरे की पहुँच से बाहर रहकर विचित्रता उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार राजकर्मचारी भी करते हैं। ऐसे दुष्टो का दमन करने के लिए राजा उच्चल ने उनमे से कुछ को पदच्युत कर दिया था, कुछ को पद-

हानि कर दी थी और कुछ को कारागार मे वन्द कर दिया था। सहेला आदि प्रधान-प्रधान व्यक्तियो को भी उसने कार्यस्थानो से हटा दिया था और कारागार मे उन सबो को फटे कपडे पहिनने के लिए वाध्य कर दिया था।

उसने भूतभिश्च का उपहास कराने के लिए उसे उसकी स्त्रीसहित चारणो के समान वस्त्र धारण कराये और फिर डोम्भ सैनिक की भांति दौडाया भी। उसके लम्बे शरीर, उसकी वंधी हुई दाढी, अपूर्व पगडी, हाथ मे वल्लम और जांघोसहित वँधे हुए घुटनो को देख कर सभी को हँसी आ गई थी। कर्मचारियो मे से जो अधिक विलासप्रिय थे उन्हे उसने नचवाया भी और वह भी वेश्याओ के साथ ही। कुछ कर्मचारियो के मस्तक को आधा मूँडकर और आधे मे सेन्दूर भरकर नगा कर डाला और फिर उन्हे गाडियो मे जोत दिया।

इसके वाद वे सव अपमानित कर्मचारी मिट्टी के घडे वजाने और मस्तक को अलकृत करने के कारण विशेष नामो से प्रसिद्ध होने लगे थे। जो कर्मचारी कार्यस्थानो से हटा दिये गये थे उन मे से कुछ फटे-पुराने गन्दे कपडो से मुँह ढके हुए इधर-उधर भीख माँगते हुए दिखाई पडने लगे थे। जो कर्मचारी प्रौढ हो चुके थे वे सुख-लाभ की अभिलाषा से आचार्यों के यहाँ जाकर वालको के समान विद्या का अध्ययन करने लगे थे। कुछ कर्मचारी प्रातःकाल होते ही अपने वच्चो समेत भीख माँगने वालो के समान स्तोत्रो का पाठ कर लोगो का मनोरजन करने लगे। कुछ निकाले गये कर्मचारी पुन नियुक्त होने का प्रयत्न करने लगे और अपने उद्देश्य मे सफल होने की आशा से अपनी माता, वहिन, कन्या और पत्नी को भी सामन्तो की सेवा मे भेजने लगे।

दूसरे शठ अपनी जन्म-कुण्डली, स्वप्न-विचार, शकुन और शुभ लक्षणो को लेकर ज्योतिपियो को तङ्ग करने लगे। जो कर्मचारी कारागार मे वन्द थे वे सब उतरे हुए चेहरे, रूखे केशो और दाढ़ी-मूछो, दुवले शरीर और पैरो की वेड़ियो की झकारो से प्रत्यक्ष पिशाच के समान जान पडते थे।

जिस समय राजा उच्चल ने उन समस्त कर्मचारियो से राज्य के चिह्नो को ले लिया था उस समय वे अपने वन्धु-वान्धवो को भली भाँति देखकर पहिचान गये थे। इससे बाद वे आंसुओ को वहाते हुए महाभारत के स्तवराज नामक स्तोत्र का पाठ करने लगे थे तथा दुर्गोत्तारिणी विद्या का जाप भी करने लगे थे। इस प्रकार राजा उच्चल के शासन-काल मे नित्य दुष्टता करने वाले कायस्थ चिरकाल के लिए दुर्भाग्य के अधीन कर दिये गये थे और इसलिए कि वे वुद्धिमान राजा को अन्य राजाओ के समान अपने मायाजाल मे नही फांस सके थे। वे सब कायस्थ नाना प्रकार के उत्तम भोजनो तथा अन्य उपहारो द्वारा दूसरे राजाओ को अपने वश मे कर लेते थे किन्तु राजा उच्चल को वे अपने वश मे नही कर सके थे। उसने उन समस्त प्रजा के शत्रुओ को वडी वुद्धिमत्ता से दवाया था और नियमित रूप से उन सव के स्थान पर पवित्र आचरण करने वाले अध्यक्षो को नियुक्त किया था।

"महाराज! अग्नि के उत्पात से जले हुए भूतेश के नगर को जिस प्रकार आपने अपने आदेश से पुन निर्माण कराकर पहिले के ही समान दर्शनीय वना दिया है उसी प्रकार कायस्थो, राजकुटुम्वियो, शासन-पद्धतियो, मन्त्रियो और प्रायोपवेशनकारियो रूपी पाँचो अग्नियो से जले हुए अपने नगर को भी पहिले के ही समान परमदर्शनीय वना देने की कृपा कीजिए।" जव

राजा उच्चल को यह ज्ञात हुआ कि शिवरात्रि के अवसर पर शिवरथ ने ऐसी प्रार्थना की है तब उसने उसे प्रधान अध्यक्ष का पद देना निश्चय कर लिया।

यद्यपि उच्चल को व्यवहार आदि का विशेष ज्ञान न था तथापि उसने अपने धार्मिक कार्यों से धर्म के अनुयायियो मे सत्युग की स्थिति का ज्ञान उत्पन्न कर दिया था। उसने दुष्ट कायस्थो को दण्ड देने मे जो शीघ्रता की थी उसकी प्रशसा सभी विद्वानो ने की थी। जो कोई भी दण्ड का उचित उपयोग जानता होगा वह कदापि टट्टुओ की जाति कायस्थो के (जो कि पिशाचो के ही समान राज्य के शत्रु थे) दण्ड मे विलम्ब करने की नीति को उचित नही समझेगा। यदि इनके दण्ड-विधान मे तनिक भी विलम्ब किया गया तो ये उतने ही समय मे दण्डदाता का विनाश कर डालते हैं। विचारशील राजा उच्चल किसी भी समय दण्डनीय व्यक्ति के पुत्र, मित्र, स्त्री और बान्धवो को दण्डनीय नही घोषित करता था और न उनका अहित ही करता था।

वह दण्डनीय व्यक्तियो को लोष्टधर तथा अन्य गुप्त उपायो से कष्ट देकर दण्ड देता था। परिणाम यह होता था कि उसकी कही निन्दा नही होती थी। राज्याधिकार प्राप्त करने के पहिले जितने भी सकल्प किये जाते थे, राज्याधिकार प्राप्त करते ही राजाओ द्वारा वे सब संकल्प उसी प्रकार भुला दिये जाते थे, जिस प्रकार जन्म ग्रहण करते ही प्राणी गर्भ-स्थिति के समस्त भावो को भुला देता है, किन्तु राज्याधिकार प्राप्त करने के पूर्व जितने भी सकल्प उच्चल ने किये थे, राज्याधिकार प्राप्त करने पर भी उसे वे सब उसी प्रकार नही भूले थे जिस प्रकार किसी-किसी मनुष्य को अपने पूर्वजन्म की बातें नही भूलती हैं।

जब वह देख लेता था कि उसका कोई शत्रु उसके साथ विश्वासघात नही करना चाहता अथवा उसका कोई सेवक विश्वासघात करने की चेष्टा कर रहा है तब वह उभय दशा मे उन सबो के साथ उचित व्यवहार कर उनके मर्म-स्थल तक पहुँच जाता था। जिस प्रकार उपपति दुष्ट स्त्रियो द्वारा उनके पूर्वपतियो के साथ किये गये विश्वासघात के कार्यों को भुला देता है उसी प्रकार आजकल मूर्ख राजा भी विश्वासघातक सेवको द्वारा उनके पहिले के स्वामियो के साथ किये गये विश्वासघात के कार्यों को भुला देता है।

राजा उच्चल सत्य और असत्य का निर्णय करने का विशेष सामर्थ्य रखता था इसीलिए कहना पडता है कि उसने पृथ्वी के समान ज्ञान भी शेषनाग से ही प्राप्त किया होगा। यही कारण है कि एक व्यापारी और ग्राहक के बीच उपस्थित होनेवाले झगडे के निपटाने मे जो सशय हो रहा था और जिससे न्यायालय के अधिकारी और अन्य अनुभवी चकित तथा किंकर्तव्य-विमूढ हो रहे थे, वह उसे सरलता से दूर कर सका था। घटना इस प्रकार की थी—

एक धनवान् व्यक्ति था। आपत्ति-काल मे काम आनेवाले धन को सुरक्षित रखने के लिए उसने एक व्यापारी से बातें की थी। अपने वास्तविक भाव को छिपाकर उस व्यापारी ने उस धनवान् व्यक्ति से मित्रता कर ली थी। विश्वास जम जाने पर उस व्यापारी के पास एक लाख दीनार जमा कर दिये थे। इसके बाद वह आवश्यकतानुसार कभी-कभी कुछ दीनार लेता भी गया था। जब बीस या तीस साल का समय बीत गया तब उस व्यक्ति ने उस व्यापारी के यहाँ से बचे हुए समस्त दीनारो को ले लेने की इच्छा प्रकट की। वह दुष्ट व्यापारी कुल दीनार हडप लेना चाहता था इसीलिए नाना प्रकार के बहाने बताकर वह दीनार देने मे बडा विलम्ब करने लगा।

नदियो के द्वारा जो जल समुद्र मे लाया जाता है वह पुनः मेघो के द्वारा प्राप्त हो जाता है किन्तु जो धन किसी व्यापारी के यहाँ जमा कर दिया गया वह फिर कभी नही प्राप्त होता। जब कभी किसी व्यापारी पर धन हडपने का अभियोग किसी न्यायालय मे उपस्थित किया जाता है उस समय वह व्याघ्र से भी अधिक भयावना रूप धारण कर लेता है। और वह भी इसलिए कि उसका तेल के समान चिकना मुख, कम से कम बोलना और सरल आकृति बडी ही प्रभावशालिनी हो जाती है। व्यापारी अर्थात् बनिया अपने जीवन की अंतिम घडी तक धूर्तता का त्याग नही करता। जब कभी कोई विवाद उपस्थित होता है तभी वह ऐसी सरलता के साथ मुस्कुराता है और पिछली मित्रताओ की ऐसी दुहाई देता है कि सुननेवाले व्यक्ति तुरन्त विश्वास कर लेते हैं कि उसने धूर्तता का त्याग कर सच्चे व्रत को ग्रहण कर लिया है।

वेश्या, कायस्थ, दिविर और बनिया स्वभाव से ही वंचक माने गये हैं। ये सभी पक्के गुरुओ के शिष्य होते है इसलिए विषैले बाणो से भी अधिक ये प्राणघातक कहे गये हैं। ललाट मे चन्दन लगाने और श्वेत वस्त्र धारण करने तथा धूप से सुगन्धित होने के कारण जो व्यक्ति किसी किराट पर विश्वास करने लगता है उसका विनाश अवश्य होता है। जो बनिया ललाट मे, नेत्रो मे, कानो मे और वक्ष मे चन्दन लगाता है वह षट्बिन्दु बिच्छू के समान अधिक भयानक होता है और क्षण भर मे ही दूसरो के जीवन का अन्त कर देता है। बनिया का रङ्ग पाण्डु और श्याम होता है, अग्नि के धुएँ से वह पसीजने लगता है, सुई के समान उसका मुख नुकीला होता है और उदर की गम्भीरता अथाह होती है। ऐसा बनिया तुम्बीफल के समान तुरन्त रक्त और मास को खीच लेता है।

ऐसे स्वभाव वाले बनिये मे दीनार जमा करने वाला व्यक्ति जब विशेष रूप से आग्रह करने लगा और बनिये के पास किसी प्रकार का बहाना न रह गया तब वह भौहे तरेर कर बडे क्रोध के साथ अपना बहीखाता दिखाते हुए कहने लगा—"तुमने व्यापार मे लाभ उठाने के लिए दीनार जमा किये थे। उनसे जो व्यापार किया गया उसमे घाटा ही हुआ। इसके अतिरिक्त पुल पार करने की चुगी देने के लिए तुम छः सौ दीनार ले गये थे। पुराने जूते और कोडे बनाने वाले चर्मकार को एक सौ दीनार दिये गये। जिस समय तुम्हारी दासी की लडकी के पैर मे फोडा हुआ था उस समय उसे पचास दीनार का घी दिया गया था। जब कुम्भकार की स्त्री के मस्तक पर लदे हुए समस्त बर्तन गिरकर चूर-चूर हो गये थे और वह अपनी उस आकस्मिक हानि के कारण विलाप करने लगी थी तथा तुम उसके प्रति दयालु हो गये थे तब तुमने उसे तीन सौ दीनार दिलवाये थे। अच्छी तरह देख लो, ये भी भोजपत्र पर स्पष्ट लिखे हुए हैं। तुम ने अपने घर पर जो बिल्ली पाल रखी थी और जिसे अधिक दुलार किया करते थे उसके और उसके बच्चो के लिए एक सौ दीनार के चूहे और मछली का रस बाजार से मँगाया था। श्राद्धपक्ष अर्थात पितृपक्ष मे चावल का आटा, घी, मधु और पैरो मे लगाने का मलहम बनाने के लिए माखन आदि के मोल लेने मे सात सौ दीनार व्यय हुए थे। जिस समय तुम्हारे छोटे बच्चे को कफ ने जकड लिया था उस समय वह मधु और अदरख ले गया था। जिस बच्चे को अभी तक गूँ-गाँ भी करना नही आता वह क्या बतलायेगा? उस हिसाब मे मे भी एक सौ दीनार लिखे हुए हैं। जिस समय तुम्हे किसी पागल ने घेर लिया था और बिना कुछ लिये तुम्हे नही छोड रहा था उस समय उससे छुटकारा पाने के लिए तुमने उसे तीन सौ दीनार दिलाये थे। यदि न देते तो वह पागल तुम्हें जी भर पीटता और अन्त मे तुम्हारे गुप्त

प्रत्यगो को नष्ट कर तुम्हारे जीवन को भी नष्ट कर देता। धूप, शन्दामूल और पलाण्डु (पियाज) आदि जो गुरुओ के चरणो मे अर्पण किये गये थे उन सबके लिए भी अनुमानतः एक या दो सौ दीनार अवश्य व्यय किये गये थे।"

इस प्रकार उस बनिये ने उलटा-सीधा करके सारा हिसाब समझाते हुए कहा—"मैने आज तक तुम्हे जितने दीनार दिये हैं सभी को जोडकर हिसाब बतला दिया है। इन समस्त रकमो के अतिरिक्त और भी रकमे ऐसी हैं जिन्हे तुम्हारे हिसाब मे से काटनी चाहिए थी किन्तु बडे खेद के साथ कहना पडता है कि इस समय वे सब रकमे स्मरण नही है। जो रकम तुम्हें अधिक दी गई है उसका ब्याज भी अभी नही जोडा गया है।

उस बनिये की बातो को सुनकर दीनार जमा करने वाला व्यक्ति अवाक् हो गया। उस समय उसे क्या उत्तर देना चाहिए था, यह भी वह निश्चय न कर सका। मूर्ति के समान वह चुपचाप सब कुछ सुनता ही गया। इसके बाद वह बनिया ब्याज का हिसाब जोडने लगा। तिथि, सप्ताह, महीना और वर्ष आदि को जोडते समय वह-बार बार अपने पोरो पर अँगुलियो को नचाने लगा। न जाने कितने बार उसने उस प्रकार से ब्याज निकालने के समय को जोडा फिर भी उसका जोडना समाप्त न हुआ। जिस प्रकार ससार का चक्र अनन्त माना गया है उसी प्रकार उसके जोडने का चक्र भी अनन्त हो चुका था। इसके बाद उसने उस व्यक्ति के नाम जितने दीनार निकाले थे, उन सब को उसने मूल रकम मान ली थी और फिर पूर्वोक्त प्रकार से जोडे गये समय का ब्याज भी निकाला था। इतना सब कर लेने के बाद वह अपने नेत्रो को आधा मूँदकर बडे धीमे स्वर से ओठो के भीतर ही कहने लगा—

"तुम यह लोहे की कील मेरे पास से ले जाओ। तुमने मेरे पास जो रकम जमा की थी वह तुम्हे पूरी-पूरी मिल चुकी है। अब तुम मुझसे कुछ भी नही पाओगे किन्तु अभी मुझे तुमसे बहुत कुछ मिलना है। तुम्हे मैंने बहुत दिन पहिले कुछ दीनार कर्ज मे दिये थे और इस विश्वास पर कि तुम बात के धनी हो और यथासमय कुल रकम मय ब्याज के अदा कर दोगे। कितना समय बीत गया। तकाजा न करने का यह परिणाम हुआ कि तुम वह रकम देने का नाम तक नही ले रहे हो और जो रकम जमा कर गये थे उसे कौडी-कौडी चुकता कराये लिए जा रहे हो। तुम्हे स्वय अपने इस कार्य पर लज्जित होना चाहिए। प्रतिष्ठित व्यक्ति को इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है?"

उस बनिये की धूर्ततापूर्ण बातो को सुनते ही दीनार जमा करने वाला व्यक्ति चकित हो गया और अपने मन मे सोचने लगा—"यह बनिया अपने लेन-देन के व्यवहार मे नित्य सत्य को ही सामने रखता रहा है। जन-साधारण मे यह धर्मपरायण होने का भी गौरव प्राप्त किये हुए है। इसके सुन्दर भवन मे लक्ष्मी का अभाव नही है। दान-पुण्य मे भी यह अपार धनराशि व्यय किया करता है। मित्रतापूर्ण व्यवहार और मधुर सम्भाषण मे भी यह कुशलता प्राप्त किये हुए है। ऐसी दशा मे यह जो कुछ कह रहा है वह सब सत्य ही होगा। सभव है कि मुझे ही स्मरण न हो।"

किन्तु उसी क्षण उसके विचारो मे सहसा घोर परिवर्तन हो गया। उसकी समझ मे यह आ गया कि यह बनिया पक्का धूर्त है। दान-पुण्य आदि जितने भी धार्मिक कार्य इसके द्वारा किये जाते है सभी मे इसकी पाखण्डमयी भावना बनी रहती है। इसकी मित्रता का कुछ भी मूल्य

नही है। धन-लिप्सा के अधिक वशीभूत होने के कारण यह उचित और अनुचित सभी प्रकार के कर्म कर सकता है। इस समय इसकी मधुर बातें उसी प्रकार भयानक जँच रही हैं जिस प्रकार मधुभरी हुई छुरिका; जो है जो मीठी किन्तु कार्य मे भयानक हो जाती है।"

ऐसा सोचकर वह न्यायालय की शरण मे दौड़ा गया और उस कठोर हृदयवाले धूर्त बनिये के विरुद्ध जमा की गई रकम हड़प लेने के अपराध मे अभियोग चला दिया। सब प्रकार से प्रयत्न करने पर भी सत्य का निर्णय न किया जा सका। न तो न्यायालय के न्यायाधीश ही कुछ समझ सके और न उस बेचारे को ही कुछ विशेष लाभ हुआ। जीत बनिये की ही समझी गई।

बनिया मन ही मन अधिक प्रसन्न होने लगा और दीनार जमा करने वाला मनुष्य सत्य और न्याय की दुहाई देने लगा। जब किसी भी उपाय से सत्य का निर्णय किया जा सकना असभव हो गया तब न्यायालय के न्यायाधीशो ने विवश होकर राजा उच्चल के पास उस विवाद-पूर्ण अभियोग को भेज दिया और समस्त घटना का वर्णन भी कर दिया। न्यायाधीशो के द्वारा भेजे गये उस अभियोग पर पूर्ण रूप से मनन कर लेने के बाद राजा उच्चल ने उस बनिये और दीनार जमा करने वाले मनुष्य—दोनो को ही राजसभा मे उपस्थित होने के लिए आदेश-पत्र निकाल दिया। दोनो ही उस आदेश-पत्र के अनुसार राजसभा मे उपस्थित हुए। उन दोनो के उपस्थित होते ही राजा उच्चल ने उस बनिये से कहा—"इस मनुष्य ने जो दीनार तुम्हारे पास जमा किये थे यदि उनमे से कुछ तुम ले आ सको तो मैं तुरन्त अपना निर्णय घोषित कर दूँ।"

राजा उच्चल के इस प्रकार कहते ही वह बनिया दीनार ले आने के लिए अपने घर की ओर दौड़ा गया। जब वह जमा किये गये दीनारो मे से कुछ तुरन्त ले आया और राजा उच्चल ने उन समस्त दीनारो का निरीक्षण भली भाँति कर लिया तब वे सब मन्त्रियो के देखने के लिए भी उनके सामने बढ़ा दिये गये। जब समस्त मन्त्रियो ने भी बनिये के द्वारा लाये गये दीनारो को देख लिया तब राजा उच्चल ने कहा "काश्मीर मे अनेक राजाओ ने राज्य किया है। सभी ने अपने-अपने नाम से दीनार प्रचलित किये हैं। क्या किसी राजा ने ऐसा भी किया है कि भविष्य मे होने वाले राजाओ के नाम से दीनार प्रचलित किये हो?"

राजा उच्चल के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए समस्त मन्त्रियो ने समस्वर से कहा—"महा-राज! ऐसा तो कभी नही हुआ है।"

मन्त्रियो के उत्तर को सुनकर राजा उच्चल ने कहा "यदि ऐसा कभी नही हुआ है तो फिर यह किस प्रकार सभव हो सकता है कि जो दीनार राजा कलश के शासन-काल मे जमा किये गये हो उनमे मेरे नाम के भी दीनार दिखाई पड़ें। इसी से प्रमाणित है कि बनिये के पास जो एक लाख दीनार जमा किये गये थे उनमे से जिस प्रकार दीनार जमा करने वाला मनुष्य ले-लेकर अपना काम चलाता था उसी प्रकार यह बनिया भी अपना काम चलाता रहा है। यदि दीनार जमा करने वाले मनुष्य को बनिये से लिये गये दीनारो का ब्याज देना आवश्यक है तो जिस दिन से इस मनुष्य ने बनिये के पास एक लाख दीनार जमा किये हैं उस दिन से लेकर आज तक का ब्याज इसे भी बनिये से मिलना चाहिए। मूल धन के सम्बन्ध मे कहना ही क्या है? वह तो बनिया इस मनुष्य को देगा ही। मुझ जैसा व्यक्ति जिसे इस प्रकार के धूर्ततापूर्ण कार्यों से बड़ी घृणा है—केवल इतना ही निर्णय कर सकता है। सत्य कहता हूँ कि राज्य मे जन साधारण को ठगने वाले धूर्तों के प्रति लोक-प्रसिद्ध यशस्करदेव के ही समान

कठोरतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। न्याय के दृष्टिकोण से उचित है कि जिस व्यक्ति पर सन्देहात्मक दोषारोपण किया गया हो अथवा सदिग्ध अभियोग हो, उस पर दयापूर्ण दण्ड का आदेश दिया जाय; किन्तु जिस मनुष्य ने जान-बूझकर धूर्तता का जाल बिछाने की चेष्टा की है उस पर कठोर से कठोर दण्ड का आदेश अवश्य देना चाहिए।"

राजा उच्चल बडा विचारवान् और धीर पुरुष था। वह प्रत्येक कार्य मे शीघ्रता करने का पक्षपाती न था। वह यह भली भाँति जानता था कि किस प्रकार उचित समय की प्रतीक्षा की जानी चाहिए। हृदय के भीतर प्रवेश किये हुए तीर की नोक को निकाल सकना जिस प्रकार कठिन कार्य है उसी प्रकार विवादग्रस्त विषयो मे भी छिपे हुए सत्य को निकाल सकना कठिन कार्य है। किन्तु ऐसे विषयो के उपस्थित होने पर राजा उच्चल बडे धैर्य के साथ कार्य करता था और शीघ्रता न कर जब तक सत्य प्रकट नही होता था तब तक निरन्तर विचार किया करता था। वह सर्वदा सावधान रहता था। प्रजा के कल्याण-साधन मे तत्पर रहना उसका स्वभाव था। मानव-मात्र के हित के लिए जिस प्रकार मनु ने अपनी समस्त विद्या, बुद्धि और प्रतिभा को लगा दिया था उसी प्रकार राजा उच्चल ने भी राज्य की प्रजा को सुखी बनाने के लिए लगा दिया था। प्रजा के सरक्षण-कार्य मे वह नित्य जागरूक रहा करता था। यही कारण था कि उसकी प्रसिद्धि सर्वत्र होने लगी थी।

प्राय. देखा गया है कि अपनी चरम सीमा को प्राप्त करते ही नि स्वार्थ मित्रता मे स्वार्थ का प्रवेश हो जाता है, निरभिमानी व्यक्ति भी अपने प्रबल पराक्रम पर गर्व करने लगते हैं, पवित्रता मे अद्वितीय स्थान प्राप्त कर लेने पर भी सती स्त्रियो को लोकापवाद के जाल मे फँसना पडता है, जिन भाषणो से समस्त जनता को प्रसन्नता हुआ करती है उन्ही से जनता को अप्रसन्न होना पडता है, जिस विद्या के चमत्कार से विद्वान् पुरुष शासन-सत्ता को भी अपने आदेश पर चलाया करते हैं, उसी विद्या के कारण उन्हे शासन-सत्ता के अधीन भी होना पडता है, उच्छृखलता का विरोधी युवक भी यौवन के उन्माद से अव्यवस्थित स्वभाववाला हो जाता है और कलक से शून्य शासन सत्ता को भी कलकित होना पडता है।

यही कारण है कि काश्मीर के राजाओ मे चन्द्रमा के समान अपनी कीर्ति-कौमुदी से प्रजा-मात्र को प्रसन्न करने वाला राजा उच्चल भी मत्सरता के वशीभूत हो गया और उच्छृङ्खल होकर ऐसे पापमय कार्य कर डाले जिनसे कि जानसाधारण मे भयानक रूप से भय का सचार होने लगा। ऐसा ज्ञात होने लगा मानो आकाश से ही सहसा उल्कापात हो गया हो और लोग सशकित होने लगे हो। वास्तव मे बात यह थी कि वह यह नही चाहता था कि उदारता, शूरता, बुद्धिमत्ता, धीरता, यौवन की विशेषता आदि गुणो मे दूसरा कोई उसकी बराबरी कर सके। जो कोई कही भी उसकी बराबरी करना चाहता था, वह तुरत मत्सरता के वशीभूत होकर उसके मान और प्राण दोनो को ही नष्ट कर देता था। उसकी ऐसी मत्सरता ने असख्य मनुष्यो के मान और प्राणो को नष्ट कर दिया था।

इन सब भयानक कार्यों के साथ ही साथ राज्य के अन्तर्गत रहने वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने भी राजा उच्चल को नीचा दिखाने का प्रयत्न करना आरम कर दिया था। राजा उच्चल के कठोर भाषणो से वे अप्रसन्न हो चुके थे। सहन करते-करते जब वे अधीर होने लगे तब विवश होकर राजा उच्चल के विरुद्ध आचरण करने पर तुल गये। यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि जीवित मनुष्य सोये हुए सर्प के समान होता है। जिस प्रकार सर्प चुपचाप सोया करता है

था। उसने ऐसा कोई भी कार्य नही किया था जिससे उसकी राजभक्ति मे कलक लगने का भय रहा हो। फिर भी राजा उच्चल ने बिना किसी कारण के द्वारपति के पद से उसे च्युत कर दिया। राजा द्वारा किये गये इस अपमान से खिन्न होकर वह विजयक्षेत्र चला गया और मनुष्य की सेवा से वैराग्य लेकर विजयेश्वर की सेवा करता हुआ धार्मिक व्रतो का पालन करने लगा।

काकवशीय तिलक आदि जितने प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और जो सेना मे प्रधान के पद को सुशोभित कर चुके थे वे सब राजा उच्चल के उग्र व्यवहार से भयभीत हो गये थे। फिर भी उन सबो ने समयानुसार ऐसा नम्र व्यवहार किया कि उन पर रुष्ट होने के अनेक अवसर आने पर भी राजा उच्चल रुष्ट न हो सका। निस्सन्देह वे सब बडे चतुर और मृदुता के व्यवहार मे कुशल थे।

भोगसेन नाम का एक दीन-हीन व्यक्ति था। न तो उसके पास कोई सेवक था और न रहने के लिए स्थान ही था। जीर्ण वस्त्र धारण कर वह अपने दिन बिताया करता था। वह राजा उच्चल की सेवा करने का अवसर पा गया था। उसने उस अवसर के प्रत्येक क्षण का पूर्ण रूप से सदुपयोग किया था। सेवा करते समय वह उच्चल को ही अपना ईश्वर मानता था और अनन्य भाव से उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट किया करता था। उसकी इस प्रकार की अनन्य सेवा-परायणता से प्रसन्न होकर राजा उच्चल ने उसे राजस्थानाधिकार (प्रधान न्यायाधीश) के पद पर नियुक्त कर दिया था। उस पद के गौरव से भोगसेन सम्माननीय पुरुषो मे विशिष्ट पुरुष माना जाने लगा था तथा उसका बल-विक्रम भी अधिक हो गया था।

गग्गचन्द्र नामक व्यक्ति की सेवा मे अनेक बलवान् सैनिक रहा करते थे। उनके कारण उसका पराक्रम अधिक बढ गया था। साधारणतया उसका सामना करने के लिए कोई भी पुरुष नही तैयार होता था। किन्तु इन्द्रद्वादशी के उत्सव पर ज्योही उसने युद्ध करते हुए भोगसेन की उग्र वीरता और भयानक शक्ति को देखा त्योही वह साधारण मनुष्य के समान वहाँ से भाग गया था। भागते समय उसने पीछे की ओर दृष्टिपात करके यह भी न देखा कि उसके पीछे कौन आ रहा है।

सड्डु नामक एक साधारण सैनिक था। रड्डु, छुड्डु तथा व्यड्डु नामक उसके तीन पुत्र थे। राजा उच्चल ने उन तीनो को ही अपना मत्री बनाया था। विजयसिह के पुत्र तिलक और जनक थे। वे दोनो बडे ही निर्धन थे। यथासमय उन्हे भरपेट भोजन भी नही मिलता था। किन्तु किन्तु ज्योही उन्हे राजा उच्चल की सेवा करने का अवसर मिल गया त्यो ही उनके भाग्योदय का समय भी आ गया। देखते ही देखते सब निर्धनता के अभिशाप से छुटकारा पा गये और राजसभा मे भी अमात्यो की श्रेणी मे स्थान प्राप्त कर विशेष सम्मान के अधिकारी माने जाने लगे।

यम, ऐला, अभय और बाण आदि कितने वीर पुरुषो ने द्वारपति के पद को सुशोभित किया है तथा अन्य पदो के गौरव को प्राप्त किया है, इसका अनुमान कर सकना बडा कठिन कार्य है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार विद्युत् का प्रकाश क्षण भर मे ही विलीन हो जाता है उसी प्रकार उन सबो का वैभव भी अल्प समय मे ही नष्ट हो गया था। वे फिर भविष्य मे नही पनप सके थे।

राजा उच्चल ने राज्य के समस्त पुराने कर्मचारियो को हटा दिया था और उनके रिक्त स्थानो की पूर्ति के लिए नवयुवको की नियुक्ति की थी। पुराने कर्मचारियो मे प्रशस्तकलश जैसे दो-तीन कर्मचारी रह गये थे। जिस प्रकार नवीन लहलहाते हुए वृक्षो के बीच मे पुराने मुरझाये हुए वृक्ष शोभा पाते है उसी प्रकार उन नवयुवक कर्मचारियो मे वे पुराने कर्मचारी शोभा पाते थे, अर्थात् उन सबो का कुछ भी महत्त्व नही रह गया था वे किसी न किसी प्रकार वे अपने दिन बिता रहे थे।

कन्दर्प नामक एक प्रभावशाली व्यक्ति था। वह जैसा कर्त्तव्य-परायण था वैसा ही नीति-निपुण भी था। दूरदर्शिता मे भी वह अद्वितीय था। किसी कारण से राजा उच्चल ने उसे राज्य-सम्बन्धी अधिकारो से हटा दिया था। किन्तु जब उसने उसके समस्त सद्गुणो पर मनन किया तब उसके अभाव को अनुभव करने लगा और दूत भेजकर उसे पुन: बुलाने का प्रयत्न किया। कन्दर्प ने राजा उच्चल के उग्र स्वभाव को भलीभाँति समझ लिया था इसलिए उसके विशेष रूप से अनुरोध करने पर भी उसने किसी भी अधिकार को नही ग्रहण किया था।

राजा उच्चल के समान नवीन राजा के शासन-काल मे राज्य के अन्तर्गत सभी कुछ नवीनतामय हो गया था। राजसभा मे होनेवाले विवाद, विधान और इसी प्रकार के अन्य समस्त विषय पूर्णरूप से नवीन परिपाटी के अन्तर्गत हो गये थे। लक्ष्मी तो मानो वेश्या के ही समान है जो कि अपने समस्त शरीर पर जादू का चूर्ण लगाये रहती है। यही कारण है कि क्षण भर मे ही बडे-बडे धीर पुरुषो को भी अपने वश मे कर लेती है और जब वे पूर्ण रूप से उसके अधीन हो जाते हैं तब उन्ही के द्वारा समस्त मर्यादाओ का उल्लघन भी कराने लगती है। जिन्हे राज्यलक्ष्मी के प्राप्त होने का सौभाग्य प्राप्त होता है उन पर राज्य-वैभव से प्राप्त होने वाला अधिक उच्च पद मृत व्यक्तियो की प्रेतात्मा के समान चढ जाता है और इसलिए कि वे सब भलीभाँति देख लें कि उनके बान्धवो मे ही कितने उत्कट शत्रु हैं जिससे कि उन सबो का बन्धु-बान्धव-सम्बन्धी समस्त अनुराग नष्ट हो जाय।

यही कारण है कि समस्त सुख-सम्पदा के रहते हुए भी राजा सुस्सल अपने भाई राजा उच्चल से राज्य छीन लेने की अभिलाषा से उस पर आक्रमण करने को उद्यत हुआ था। अकस्मात् इस वृत्तान्त को सुनकर कि राजा सुस्सल बाज पक्षी के समान ही काश्मीर राज्य पर टूट पडा है और वराहवार्त्ता नामक स्थान को पार कर आगे की ओर बढता चला आ रहा है। इस समाचार को सुनते ही राजा उच्चल उत्तेजित हो उठा। सुस्सल का इस प्रकार का आक्रमण करना उसने सर्वथा अनुचित समझा। भाई के ऊपर भाई का आक्रमण और वह भी छोटे भाई का बडे भाई के ऊपर! कितने बडे आश्चर्य का विषय है। कुछ भी हो, जब भाई ने शत्रुता का भाव धारण किया है तब उसके साथ शत्रु के ही समान व्यवहार करना चाहिए।

राजा उच्चल ने तुरन्त सुस्सल से युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। उसके साथ वीर पुरुषो की बडी सेना थी। उस सेना के साथ उसने जाते ही सुस्सल और उसकी सेना पर आक्रमण कर दिया। उसके उस आक्रमण को सुस्सल न सह सका। उसका समस्त साहस और शौर्य जाता रहा। जब तक वह अपने स्थान को सुरक्षित करे तब तक उच्चल ने उसे परास्त कर दिया। उसे तुरन्त युद्ध की भूमि से भाग जाना पडा। वह अपने प्राणो की रक्षा करते हुए इतनी शीघ्रता से भागा था कि युद्ध करने की जितनी सामग्री लाया था वह सब ज्यो की त्यो पडी ही रह गई।

और किसी को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता किन्तु ज्यो ही किसी ने उससे छेड़छाड़ की और उसे उत्तेजित कर दिया त्यो ही वह क्रुद्ध होकर छेड़छाड़ करने वाले मनुष्य के प्राण तक ले लेने को तैयार हो जाता है उसी प्रकार चेतन मनुष्य को भी समझ लेना चाहिए । जब तक उनके स्वाभिमान को आघात नही पहुँचता तब तक वे शान्त रहते हैं किन्तु यदि कही किसी ने उनके स्वाभिमान पर आघात किया तो वे उसका विनाश करने पर तुल जाते हैं।

यह ससार ही विचित्र है । जिधर दृष्टि जाती है उधर ही कोई न कोई नवीन विचित्रता दृष्टिगोचर होती है किन्तु जब ध्यानपूर्वक समस्त जीवधारियो पर दृष्टि डाली जाती है तब ऐसा कोई भी जीवधारी नही मिलता जिसके शरीर, वश, चरित्र आदि मे किसी न किसी प्रकार का कलक न लगा हो। जिस ब्रह्मा ने ससार की रचना की है उसको ही क्यो न लिया जाय ? उसका जन्म कमल जैसे जड पदार्थ से हुआ है और वह जड पदार्थ कमल भी कीचड से उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मा का शरीर भी उज्ज्वल नही है। एकदम कपिल वर्ण अर्थात् धूमिल रग है। उसके मस्तक भी कटे हुए हैं। अपूर्णता के कारण उसका अपना कोई भी महत्त्व नही है । चरित्र इतना दूषित है कि उसका वर्णन न करना ही उचित है। और जितने दोष हैं वे भी असंख्य हैं। अत-एव जिस ससार की रचना करने वाला ब्रह्मा ही असख्य दोषो का आगार है, यदि उस समार के जीवधारी दोषपूर्ण दृष्टिगोचर होते है, तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है।

किन्तु राजा उच्चल उपर्युक्त बातो को ध्यान मे नही ला सका था। किसी दिन उसने ऊपर कह गये विचारो पर मनन भी नही किया था। वह ससार को निर्दोष समझता था और समस्त मनुष्यो को पवित्र देखना चाहता था। इसीलिए जब वह अपने किसी सेवक के दोषो को देख लेता था तब कठोर शब्दो मे उसकी आलोचना करने लगता था। फिर वह कभी यह भी नही सोचता था कि उसकी उस कठोर आलोचना का प्रभाव उस सेवक पर कैसा पड़ेगा। इस प्रकार की कटु आलोचना करने मे वह इतना अभ्यस्त हो गया था कि प्रतिदिन प्रकट रूप से सेवको के वश, चरित्र और व्यक्तिगत रहन-सहन को लेकर कटु आलोचना करना उसका एक प्रकार का नियमित कार्य-सा हो गया था। बेचारे सेवक चुपचाप उसकी बातो को सुन लेते थे। उत्तर दे सकने की भी शक्ति उनमे न थी, इसलिए राजा उच्चल का स्वभाव और भी अधिक उद्दण्ड होता गया ।

इतना ही नही उनमे एक नये प्रकार का व्यसन भी उत्पन्न हो गया था और वह भी बडा प्रबल था। वह दो शक्तिशाली व्यक्तियो मे भयानक रूप से द्वेष की अग्नि उत्पन्न कर देता था और फिर उनका मल्लयुद्ध कराकर आनन्दित होता था। इस प्रकार के युद्ध मे श्रद्धालु होने के कारण उसने एक नही अपितु असख्य मनुष्यो का घात करा दिया था। प्रत्येक महीने मे इन्द्र की पूजा का महोत्सव मनाया जाता था। वह उत्सव इतनी धूम-धाम से मनाया जाता था कि उसमे प्राय सभी नागरिक सम्मिलित होते थे। इसी प्रकार के और भी महोत्सव हुआ करते थे। उन समस्त महोत्सवो मे जो योद्धा द्वन्द्वयुद्ध मे वीरतापूर्वक भाग लिया करते थे उन्हें राजा उच्चल विशेष रूप से पारितोषिकस्वरूप पर्याप्त धनराशि दिया करता था। उसके शासन-काल मे ऐसा कोई भी महोत्सव नही हुआ था जिसमे रगभूमि का प्रांगण रक्त से रंजित न हुआ हो और न विलाप ही सुनाई पडा हो।

उच्च वंश के भूषण स्वरूप योद्धागण महोत्सवो भाग लेने के लिए बडी प्रसन्नता के साथ अपने भवनो से चलते थे और ऐसा जान पडता था मानो विजयोल्लास के वशीभूत होकर ही वे

सब चले जा रहे हो; किन्तु महोत्सव के अन्त मे राजप्रासाद के प्रांगण से वे सब अंग-प्रत्यंगहीन दशा मे अपने बान्धवो द्वारा लाये जाते थे। चमकीले काले केश वाले, सुन्दर दाढी वाले और आकर्षक शारीरिक गठन वाले योद्धाओ को मरा हुआ देखकर राजा उच्चल तनिक भी शोकाकुल नही होता था। कहना तो यो चाहिए कि उसे अधिक प्रसन्नता होती थी। राज्य के अन्तर्गत जितने भी योद्धा थे, सभी की स्त्रियाँ उस समय तक निरन्तर चिन्तित रहा करती थी जिस समय तक घर से गये हुए उनके पति राजप्रासाद से सकुशल लौट नही आते थे। उन सबके सकुशल लौट आने पर वे सब स्त्रियाँ परमात्मा को कोटि-कोटि धन्यवाद देती थी और अपने भाग्य की भी सराहना करती थी।

राजा उच्चल का दर्प दिन-प्रतिदिन बढता ही गया। ज्यो-ज्यो लोग उसके आदेशो का पालन बिना किसी तर्क के करने लगे त्यो-त्यो वह अपने को आवश्यकता से अधिक प्रभावशाली समझने लगे। परिणाम यह हुआ कि राज्य से सम्बन्ध रखने वाले कार्यों के करने मे वह अधिक स्वतत्र हो गया। मत्रियो से परामर्श करना भी वह अनुचित समझने लगा। शासन-सम्बन्धी जितने विधान थे सभी को वह तुच्छ मानने लगा। वह जो कहता वही विधान बन जाता था। इस प्रकार कार्य करने पर भी जब किसी ने कोई विरोध नही किया तब वह और भी अधिक अभिमान के वशीभूत हो गया और बडे गर्व के साथ कहा करता था "जो मैं चाहता हूँ वह तुरत होना चाहिए।" इतना ही नही, वह कभी-कभी साधारण सेवको को मत्री के समान कार्य करने के लिए विवश कर देता था और अपनी इस इच्छा के विरुद्ध एक भी बात सुनना उचित नही समझता था।

राजा उच्चल के चरित्र मे विद्वेष का प्रवेश हो ही चुका था। उस विद्वेष के कारण उसका हृदय भी कलुषित हो गया था। किस व्यक्ति के प्रति उसका कैसा व्यवहार होना चाहिए, इसका भी ज्ञान उसमे न रह गया था। बढ़ते हुए विद्वेष ने इसे पूर्ण रूप से कलुषित बना दिया था। उसने ऐसे ही विद्वेष के आवेश मे आकर अनेक राजकर्मचारियो को व्यर्थ मे पदच्युत कर दिया था, उनके समस्त अधिकार छीन लिये थे तथा अनेक प्रकार से उन्हे अपमानित भी किया था।

उसके प्रधान सेनापति (कम्पनाधीश) का नाम दछक था। वह बडा प्रभावशाली और पराक्रमी था। उसके पद-गौरव को तुच्छ समझाकर जिस समय राजा उच्चल ने उसके प्रति क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा उस समय वह इतना भयभीत हुआ कि उसे विषलाटा मे जाकर अपने प्राणो की रक्षा करनी पडी थी। किन्तु जब मृत्यु का समय समीप आ जाता है तब कही भी रक्षा नही होती। यही कारण है कि विषलाटा मे जाने पर भी दछक के जीवन की रक्षा नही हो सकी। वहाँ पर जाते ही खशो ने उस पर आक्रमण कर दिया था और उनके उसी आक्रमण से उसे मृत्यु की शरण मे जाना पडा था।

द्वाराधीश का पद भी बडे गौरव का था। रक्कक नाम के व्यक्ति को उस पद पर राजा उच्चल ने नियुक्त किया था। उसने राजा उच्चल की इतनी सेवा की थी कि वह उस पर अधिक प्रसन्न रहा करता था। प्रसन्नता ही के कारण उसने रक्कक को अधिक बढा कर उस गौरवपूर्ण पद का अधिकारी बना दिया था। उस पद पर पहुँचते ही रक्कक की शक्ति बढने लगी थी। उसकी बढती हुई शक्ति को देखते ही राजा उच्चल ने तुरत उसे उस पद से हटा दिया था। माणिक्य नाम का व्यक्ति सेनापति के पद पर कार्य करता था। वह बड़ा कर्त्तव्यपरायण और नीतिनिपुण

यहाँ तक कि पानी की जिन ढोलियो को साथ लाया था उन्हे भी अपने साथ नही ले जा सका था। युद्ध मे सुस्सल को पराजित कर राजा उच्चल राजधानी मे लौट आया।

दूसरे ही दिन उसे पुनः समाचार प्राप्त हुआ कि परम पराक्रमशाली सुस्सल फिर से आक्रमण करने के लिए ससैन्य चला आ रहा है। इस समाचार को पाते ही राजा उच्चल ने गग्गचन्द्र को एक वडी सेना के साथ तुरन्त भेज दिया। गग्गचन्द्र साधारण पुरुप नही था। वह अपने समय के वीर पुरुपो मे अधिक प्रसिद्ध था। राजा उच्चल के आदेश से उसने सुस्सल की सेना पर ऐसा आक्रमण किया कि वह तुरन्त छिन्न-भिन्न हो गई। प्राणो की रक्षा करते हुए सभी सैनिक इधर-उधर भागने लगे। युद्ध की भयानक अग्नि की ज्वाला को सह सकने मे सुस्सल के असख्य सैनिक असमर्थ रहे। जव उन्हें कोई उपाय न सूझा तव वे विवश होकर समस्त क्लेशो से छुटकारा पाने के लिए स्वर्ग-स्थित नन्दन-कानन मे विहार करने वाली देवागनाओ के रथ पर सवार हो गये अर्थात् स्वर्गधाम को चले गये।

सहदेव और युधिष्ठिर नाम के दो राजपुत्र थे। उन पर उनके स्वामी का जो कुछ भी ऋण था उसे उन दोनो ने उस युद्ध मे अपने अपने प्राणो को समर्पित कर पूर्ण रूप से चुकता कर दिया था। राजा उच्चल से पास घोड़ो की कमी न थी। एक से बढ़कर एक घोडा उसके पास था किन्तु सुस्सल की सेना से जो अच्छे-अच्छे घोडे भाग निकले थे उन सवो को गग्गचन्द्र ने तुरन्त पकड लिया और राजा उच्चल के सामने उपस्थित किया। उन घोड़ो को देखते ही राजा उच्चल के आश्चर्य की सीमा न रही। वह विलम्व तक कौतुकपूर्ण दृष्टि से उन घोड़ो की ओर देखता रहा।

इसके वाद ज्यो ही राजा उच्चल को यह समाचार प्राप्त हुआ कि सुस्सल क्रम-राज्य की ओर अग्रसर होने वाला है और इस समय सेल्यपुर के मार्ग मे पड़ाव डाले हुए है, त्यो ही वह उसका पीछा करने के लिए राजधानी से चल पडा। जैसे ही सुस्सल ने यह देखा कि उसका वडा भाई उच्चल समीप ही आ गया है वैसे ही वह अपने थोडे से सैनिको के साथ दरद देश की भूमि मे प्रवेश कर गया। जिस समय राजा उच्चल को यह विदित हुआ कि सेल्यपुर के रहने वाले लोष्ठक नामक डामर ने ही सुस्सल के भाग जाने का मार्ग खोल दिया था उस समय उसके क्रोध की सीमा न रह गई थी। उसने तुरन्त लोष्ठक को यमलोक भेज दिया और फिर राजधानी का मार्ग पकड लिया।

इसमे तनिक भी सन्देह नही था कि सुस्सल ने पूर्ण रूप से शत्रुता कर ली थी। नीति के अनुसार उसके प्रति किसी भी प्रकार का कठोर व्यवहार किया जा सकता था किन्तु छोटे भाई के प्रति वडे भाई का जैसा स्नेहपूर्ण व्यवहार होना चाहिए, राजा उच्चल ने वैसा ही व्यवहार करना उचित समझा। इसीलिए सुस्सल के भाग जाने और लोहर पर्वत में अनुपस्थित रहने पर भी राजा उच्चल ने उसके राज्य को अपने अधीन करने का कुछ भी प्रयत्न नही किया।

राज सुस्सल की धर्मपत्नी का नाम मेघमजरी था। वह वडी सती-साध्वी थी। उसके पिता का नाम विजयपाल था। उसका नाना कल्ह कालिजर का राजा था। उसके न तो पुत्र था और न दूसरी कोई कन्या थी। विजयपाल के परलोक सिधार जाने पर अपने ही राजप्रासाद मे उसने मेघमजरी को अपने पुत्र के ही समान वडे स्नेह के साथ पाला-पोषा था। राजा सुस्सल भी वडा प्रभावशाली था। उसके प्रताप का वर्णन कहाँ तक किया जाय। उसके प्रताप के महत्व का

अनुमान इसी से कर लेना चाहिए कि जिस समय वह लोहर प्रान्त मे नही था उस समय मे भी उसके विरोधियो तथा शत्रुओ मे इतना साहस न था कि वे वहाँ के किसी बालक का भी अनिष्ट कर सकते ।

राजा सुस्सल बडा ही धीर पुरुष था । आपत्ति-काल मे घबडा जाना उसके स्वभाव के विरुद्ध था । उसने भी दरद देश को छोड दिया था और दुर्गम पर्वतो के मार्ग को पार करता हुआ तथा मार्ग मे पडने वाले अन्य विघ्नो से अपने को मुक्त करता हुआ वह कई महीनो के बाद अपने राज्य मे आ गया था । उसके लोहर प्रान्त मे आते ही समस्त प्रजा को बडा हर्ष हुआ था क्योकि उसके लिए सभी चिन्तित रहा करते थे ।

जब यह सब सकट-काल दूर हो गया और सुस्सल शान्ति के साथ रहने लगा तब राजा उच्चल जैसे धीर पुरुष के विरुद्ध जितने भी उपद्रव खडे हुए सभी बात की बात मे दूर कर दिये गये । कोई भी उपद्रव अधिक समय तक नही टिक सका ।

राजा कलशदेव के पुत्र भोज को अपने वश मे करने के बाद भीमादेव बडा प्रसन्न हुआ । वह तुरन्त उसे दरद देश के राजा जगद्दल के पास ले गया और उससे उसकी सहायता करने के लिये कहा । जगद्दल ने उसकी सहायता करना स्वीकार कर लिया । राजा हर्षदेव की उपपत्नियो मे से किसी एक के गर्भ से उत्पन्न हुआ सल्ह और दर्शनपाल का भ्राता सजपाल ये दोनो ही भोज के प्रबल सहायक हो चुके थे । जब यह समस्त वृत्तान्त राजा उच्चल को विदित हुआ तब वह बुद्धिमान राजा कूटनीति के आधार पर कार्य करने को विवश हुआ; क्योकि वह समझ चुका था कि भोज को काश्मीर का राजा बनाकर भीमादेव आदि उसी के नाम पर राज्य का समस्त सुख भोगने के लिए कटिबद्ध हो चुके है । जिस नीति का उन सबो ने अवलम्बन किया है उसी नीति का अवलम्बन करना ही उचित है । ऐसा विचार कर राजा उच्चल ने ऐसी नीति चली कि दरद का राजा के आक्रमण करने के विचार को ही छोड दिया और चुपचाप अपने देश को लौट गया । उसके साथ ही साथ सल्ह भी चला गया । किसी प्रकार छिपता हुआ भोज भी अपने प्रान्त को चला गया और सजपाल ने जाकर राजा सुस्सल के यहाँ नौकरी कर ली ।

थोडे ही दिनो मे भोज के ही सेवक ने उसके साथ विश्वासघात किया । उसने राजा उच्चल से घूस लेकर उसे पकडवा दिया । राजा उच्चल ने ज्यो ही उसे पा लिया त्यो ही डाकुओ के समान उसे फाँसी पर चढा दिया । देवेश्वर का पुत्र पित्थक भी काश्मीर राज्य का अधिकार चाहने लगा था । अपनी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए ज्यो ही वह आगे बढा त्यो ही डामरो की सेना लेकर राजा उच्चल भी युद्ध करने के लिए निकल पडा । डामरो ने इतनी वीरता के साथ युद्ध किया कि पित्थक के समस्त सहायक युद्धभूमि को छोडकर भाग गये और उसे भी युद्धक्षेत्र से भागकर किसी दूर देश मे आश्रय करना पडा ।

मूर्ख मनुष्य जिन्हें कुख्याति ही प्रिय है और जो पशुओ के समान बिना किसी भावना के इधर-उधर भ्रमण किया करते हैं वे नित्य उपहास के ही पात्र बनते है । एक रसोइया था जो बाजार मे भोजन पकाकर बेचा करता था । अपने समय मे वह बडा षड्यन्त्रकारी था । जब वह किसी से अपना परिचय देता था तब अपने को मल्ल का पुत्र रामल कहा करता था । इस प्रकार उसकी ऐसी ही प्रसिद्धि हो गई थी । उस समय के जितने भी विप्लवकारी नेता थे सभी को वह जानता था और उन्हीं से धन, मान और पारितोषिक आदि प्राप्त कर वह धनवान हो चुका था । कितने ही

विप्लवकारियो के साथ उसने विश्वासघात किया था किन्तु फिर भी वह अपनी धूर्तता के कारण उन सबो का प्रिय पात्र बना हुआ था।

गर्मी के दिनो मे जब कडी धूप पडने लगी और उसे कष्ट होने लगा तब वह अकेला ही काश्मीर मे चला आया था। उसकी नाक कटी हुई थी इससे राजा उच्चल के सेवको ने उसे तुरन्त पहिचान लिया था। फिर वह राजा उच्चल की सेनाओ मे भी देखा गया। जहाँ लोग आनन्द के साथ बाते कर रहे थे वहाँ भी वह अपने वशगत व्यवसाय के अनुसार भोजन-सामग्री बेचने का काम करने लगा था।

भाग्य मे विधाता ने जो कुछ भी लिख दिया है जब वही होकर रहता है और उसको अन्यथा सिद्ध कर सकने का सामर्थ्य किसी मे भी नही है तब मनुष्य अपने पद-गौरव को बढाने की लालसा से व्यर्थ मे ही धूर्तता और धोखा देने वाली नीति को अपनाता है। मनुष्य जितने भी प्रयत्न करता है वे सब घास मे लगी हुई अग्नि के समान ही है। भाग्य-रूपी वायु के प्रभाव से वह प्रबल भी हो सकती है और क्षण भर मे ही बुझ कर शान्त भी हो सकती है। भाग्य मे जो कुछ बदा रहता है उसे भोगना ही पडता है। यदि कोई यह चाहे कि वह उस स्थान से भाग कर उससे रक्षा पा जायगा तो यह उसकी सरासर भूल है। जिस प्रकार पूँछ के जल जाने पर कोई पक्षी फिर जलती हुई अग्नि की ज्वालाओ से नही बच पाता उसी प्रकार भाग्याधीन मनुष्य को भी समझ लेना चाहिए।

जिस मनुष्य के भाग्य मे जितना सुख भोगना बदा है वह उतना सुख अवश्य भोगेगा और जितने दिनो तक जीवित रहना है उतने दिनो तक अवश्य जीवित रहेगा। निश्चिय समय के पूर्ण अथवा निश्चित सुखो के भोग के पूर्व यदि कोई किसी मनुष्य का जीवन नष्ट करना चाहे तो अपने प्रयत्न मे कदापि सफल न होगा। भाग्य द्वारा सुरक्षित व्यक्ति पर चाहे कितनी ही आपत्तियाँ क्यो न आये, चाहे उसके जीवन को नष्ट करने के लिए निरन्तर अग्नि और विष के प्रयोग ही क्यो न किये जायँ, चाहे तलवार और तीर का निशाना बनाकर प्राण लेने का उद्योग ही क्यो न किया जाय, चाहे घोर निर्दयता के साथ सर्वोच्च पर्वत के शिखर पर से ही क्यो न गिराया जाय अथवा मन्त्र-तन्त्र आदि के कितने ही मारण-प्रयोग क्यो न किये जायँ किन्तु किसी का भी कुछ प्रभाव न पडेगा। वह व्यक्ति सभी दशा मे सुरक्षित ही रहेगा। राजा उच्चल ने भिक्षाचर को मार डालने की आज्ञा दे दी थी। उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए वधक (प्राण-घातक) रात्रि के समय मे जयमती के भवन से भिक्षाचर को वध्य भूमि मे ले गये थे। वध्यभूमि मे ले जाकर उन सबो ने उसके शरीर से एक बडा पत्थर बांध दिया था और उसे मरा हुआ जानकर वितस्ता नदी के प्रवाह मे बहा दिया था। उस समय वायु ने तुरत ही लहरो के द्वारा उसे किनारे पर लगा दिया था। वहाँ एक दयालु ब्राह्मण ने उसे देख लिया था। जब दया के वशीभूत होकर उसने उसके पास जाकर उसे देखा तो उसके हृदय की गति का स्पन्दन स्पष्ट विदित हो गया। ब्राह्मण ने जिसे मरा हुआ समझा था वह जीवित है---यह सोचकर उसे बडी प्रसन्नता हुई। उसने तुरत उसके शरीर से बँधे हुए पत्थर को खोल दिया। थोडी देर मे भिक्षाचर पूर्ण रूप से सचेत हो गया। इसके बाद उस ब्राह्मण ने उसे आसमति के सरक्षण मे दे दिया। आसमति दिद्दारानी की ज्ञाति थी और उसी के पद-गौरव के सम्मानार्थ वह शाही राज-कुमारी दिद्दा भी कही जाती थी। निस्सन्देह आसमति परम बुद्धिमती महिला थी। वह बडे

ही गुप्त रूप से भिक्षाचर को वहाँ से ले गई और फिर सुदूर दक्षिणापथ मे ले जाकर उसे यथोचित रूप से पाला-पोषा और बड़ा किया।

मालव देश का राजा नर वर्मा था जब उसने भिक्षाचर के सम्बन्ध का समस्त वृत्तान्त जान लिया तब उसने बड़े ही गुप्त रूप से उसे अपने यहाँ रख लिया और अपने ही पुत्र के समान उसका लालन-पालन करने लगा तथा शास्त्र और शस्त्र विद्या का अभ्यास कराकर पूर्ण रूप से पारगत बनाने का प्रयत्न करने लगा। कुछ लोगो का यह भी कथन है कि जिस समय उच्चल ने भिक्षाचर को मार डालने की आज्ञा दी थी उस समय जयमती ने ही इस कार्य के भार को अपने ऊपर ले लिया था और राजा को प्रसन्न करने के लिए उसने किसी दूसरे बालक को जो कि भिक्षाचर के ही समान आयु मे था, मार डाला था तथा गुप्त रूप उसे बचा लिया था। दूर देश से आये हुए दूतो के द्वारा जब राजा उच्चल को भिक्षाचर से सम्बन्ध रखनेवाला वृत्तान्त विदित हुआ तब वह मन ही मन बड़ा दु खी हुआ और रानी जयमती पर अधिक सन्देह होने के कारण उसने उससे अनुराग करना ही बन्द कर दिया। फिर वह विशेष रूप से चिन्ता करने लगा। भिक्षाचर का प्रवेश काश्मीर की राज्य-सीमा न होने पाये यही उसका उद्देश्य था। सोचते-सोचते उसने जो कुछ स्थिर किया उसी के अनुसार कार्य करने लगा। मालव देश से लेकर काश्मीर राज्य की सीमा तक के मार्ग मे जितने भी राजा थे उन सबो से उसने मित्रतापूर्ण सन्धि कर ली; किन्तु सन्धि करने का उद्देश्य क्या है यह किसी से भी नही कहा। केवल इतना ही भाव प्रकट किया की पारस्परिक सहयोग की भावना को बढ़ाना ही इस संधि का मुख्य उद्देश्य है। राजनीति मे कुशल होने के कारण वह अपने हृदय के वास्तविक विचार को किसी से भी नही कह सकता था।

जो मनुष्य मूर्ख होता है वह अपनी धर्मपरायण पत्नी पर प्रकट रूप से सन्देह करता है और शत्रुओ को बड़े प्रेम से अपनाता है। परिणाम यह होता है कि वह मूर्ख इस प्रकार के कार्यों द्वारा स्वय अपने विनाश का कारण बन जाता है।

कुछ लोगो का यह भी कथन है कि जिस समय भिक्षाचर मार डाला गया था उस समय दिद्दा ने किसी एक बालक को जो कि भिक्षाचर के ही समान देखने मे था, पाल लिया था और आगे चलकर उसी नाम से उसे प्रसिद्ध भी कर दिया था। चाहे यह वृत्तान्त सत्य हो अथवा पूर्वोक्त वृत्तान्त सत्य हो, किन्तु यह मनाना ही पडेगा कि भिक्षाचर का महत्त्व अधिक बढ गया था और स्वय उसका भाग्य भी उसके उस महत्त्व को नष्ट कर सकने मे समर्थ न था।

कभी-कभी पूर्व की घटनाओ के परिणामो की विभिन्नता बड़ी आश्चर्यमयी हो जाती है। सोचा कुछ जाता है और होता कुछ है। इस विचित्र विभिन्नता के कारण जो चमत्कारपूर्ण दृश्य दिखाई पड़ते हैं वे न तो स्वप्न मे देखे जाते हैं, न कल्पना द्वारा ही देखे जा सकते है और न इन्द्रजाल-विद्या के प्रभाव से ही उनका देखा जाना सभव हो सकता है।

जिस प्रकार नगर, ग्राम और अन्य स्थानो को जलाने के लिए झाडियो मे अग्नि गुप्त रूप से बढने लगती है उसी प्रकार मानव-सहार के लिए वह राजकुमार भिक्षाचर भी गुप्त रूप से बढने लगा था। जिस प्रकार विषवृक्ष के समीप ही प्रतिविषा नाम का पौधा उग आता है और उसके प्रभाव को नष्ट कर देता है और शुद्ध तथा निर्मल जल को नष्ट करने वाला वर्षाकाल

अगस्त्य के उदय होते ही शान्त हो जाता है उसी प्रकार ससार मे नित्य एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट करने वाले प्राणी, लक्षण और वृक्ष आदि उत्पन्न हो जाते हैं। यह तो ससार की रचना करने वाले विधाता की अपूर्व दूरदर्शिता है। प्रथम उत्पन्न हुई वस्तु से ज्यो ही ससार को भय होने लगता है अथवा वह वस्तु स्वत भयानक तथा हानिकर सिद्ध होने लगती है त्यो ही विधाता उसकी काट के लिए उसी के पास ही एक दूसरी वस्तु उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार वह अपने रचना-कार्य की कुशलता द्वारा समस्त ससार की रक्षा किया करता है। जिस समय भिक्षाचर गुप्त रूप से शास्त्र और शस्त्र विद्या का अभ्यास करने मे लगा हुआ था उसी समय राजा सुस्सल को एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। उसके जन्म-काल से ही सुस्सल की सर्वत्र विजय होती रही इसी-लिए उसने अपने उस नवजात पुत्र का नाम जयसिंह रखा। जिस प्रकार बुद्ध का नाम सर्वार्थसिद्ध अक्षरश चरितार्थ हुआ है उसी प्रकार जयसिंह का नाम भी अक्षरश चरितार्थ हुआ है। सर्वार्थसिद्ध का शाब्दिक अर्थ है वह व्यक्ति जिसमे लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ पूर्ण रूप से हो और रूढि अर्थ मे केवल बुद्ध का ही बोधक है। जयसिंह का शाब्दिक अर्थ है जय दिलाने वाला सिंह किन्तु रूढि मे केवल इसी राजा तक ही सीमित नही है। बुद्ध और जयसिंह मे केवल इतना ही अन्तर रह गया है अन्यथा नाम के गौरव मे कुछ भी अन्तर न था।

जिस समय राजा उच्चल ने उस बालक जयसिंह के कुकुम से रँगे हुए सुन्दर पैरो के लक्षणो को देखा उस समय वह वात्सल्य के वशीभूत हो गया था। अपने छोटे भाई सुस्सल के प्रति उसमे जितना क्रोध था वह सब बात की बात मे शान्त हो गया। उस बालक के चरण-लक्षणो से ही प्रभाव तुरत दृष्टिगोचर हुआ कि जो शत्रुता उसके पिता और उसके पितृव्य (चाचा) के बीच अनेक दिनो से चली आ रही थी उसका क्षण भर मे ही अन्त हो गया था तथा इस प्रकार शत्रुता का अन्त होते ही दोनो राज्यो के लोग सुख और शान्ति के साथ जीवन बिताने लगे थे।

निरन्तर युद्ध के व्यापारो से राजा उच्चल क्षण भर के लिए भी शान्ति नही पाता था किन्तु सुस्सल के साथ सद्भावनापूर्ण समझौता होने के बाद ही उसे भी शान्ति का सुख सुलभ होने लगा था। उसका ध्यान लोकोपकारी धार्मिक कार्यों के प्रति आकर्षित होने लगा था। उसने अपने स्वर्गवासी पिता के सुयश को बढाने के लिए उसी के नाम से एक मठ तैयार कराना आरभ कर दिया था। जब वह मठ तैयार हो गया तब उसके उद्घाटन के अवसर पर एक बडा महोत्सव मनाया गया और उस उपलक्ष मे गो, भूमि, स्वर्ण और वस्त्र आदि विशेष रूप से याचको को दिये गये। कहना तो यो चाहिए कि जिस प्रकार कल्पवृक्ष के समीप जाने पर याचको की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं उसी प्रकार उस महोत्सव में राजा उच्चल ने समस्त याचको को उनकी मनचाही वस्तुएँ प्रदान की थी। उसके उस कार्य से सभी दिशाओ मे उसकी उदारता के गीत गाये जाने लगे थे। जनसाधारण को तो अधिक आश्चर्य हुआ था ही किन्तु दूर दूर के देशो से आये हुए याचको ने जो बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त की थी उन सब को देख-देखकर दूर-दूर देश के राजा भी बडा आश्चर्य करने लगे थे। जो वस्तुएँ राजभवनो मे शोभा देने योग्य थी वे सब याचको के हाथो मे स्थान पाकर अपना अपूर्व चमत्कार प्रकट करने लगी थी तथा अपने उसी चमत्कार के प्रभाव से राजा उच्चल की उदारतापूर्ण दानशीलता का परिचय भी देने लगी थीं।

इतना ही नही, राजा उच्चल ने दूर-दूर देशो के राजाओ के पास भेंटस्वरूप जो बहुमूल्य वस्तुएँ भेजी थी उन सब को पाकर वे सब भेजने वाले के वैभव पर आश्चर्य प्रकट करने लगे थे। यद्यपि उन समस्त राजाओं के पास धन की कमी न थी और बहुमूल्य वस्तुएँ भी उनके पास थी तथापि राजा उच्चल द्वारा भेजे गये उपहार के सामान को देख कर वे सब अपने समस्त वैभव को तुच्छ समझने और उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशसा करने लगे थे।

अपने पति राजा उच्चल को अपनी सेवाओ से प्रसन्न कर रानी जयमती ने जो धन प्राप्त किया था उसका उत्तम प्रकार से सदुपयोग करने के उद्देश्य से उसने भी एक दूसरा मठ और विहार को निर्माण कराया था। निस्सन्देह राजा उच्चल ने अपने पूर्वजन्म मे जितने भी पुण्य के कार्य किये थे उनमे कोई न कोई त्रुटि अवश्य हो गई थी। यही कारण है कि उसने जिस उद्देश्य से उस मठ का निर्माण कराया था, वह पूरा न हो सका और वह मठ जन-साधारण मे नवमठ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। राजा उच्चल की बहिन का नाम सुल्ला था। वह उसकी भी स्मृति को चिरस्मणीय बनाना चाहता था। अपनी इस अभिलाषा को चरितार्थ करने के लिए उसने अपने पिता के नाम से निर्माण कराये मठ के ही सामने अपनी बहिन के नाम से एक दूसरे मठ का निर्माण कराया किन्तु उस मठ का भी वही परिणाम हुआ जो उसके पिता के नाम से बनवाये गये मठ का हुआ था अर्थात् वह मठ भी सुल्ला मठ के नाम से प्रसिद्ध न हो सका।

इसमे सन्देह नहीं कि वह कभी यह भी न सोच सका था कि उसकी मृत्यु उसके मस्तक पर ही मँडरा रही है। इसीलिए उसने मठ आदि जो कुछ भी निर्माण कराये थे उनकी उचित व्यवस्था के लिए वृत्ति आदि का भी प्रबन्ध नही किया था। कदाचित् उसने अपने को चिर-जीवी समझ लिया हो अथवा अन्य किसी कारण से वृत्ति आदि की व्यवस्था करने मे असावधान रहा हो।

मठ आदि निर्माण-कार्य समाप्त होने के कुछ समय बाद राजा उच्चल क्रम राज्य मे गया था। कुछ दिन ठहरने के बाद वह वहाँ से स्वयम्भू अग्नि का दर्शन करने के लिए बर्हणचक्र नामक पहाडी ग्राम की ओर अग्रसर हुआ। चलते-चलते जैसे ही वह कम्बलेश्वर नामक ग्राम की ओर जाने वाले मार्ग पर बढा वैसे ही वहाँ पर उस स्थान के सशस्त्र चाण्डाल दस्युओ ने उसे सहसा घेर लिया।

उस समय उसके साथ बहुत ही थोडी सेना थी। चाण्डाल-दस्युओ ने उसे तुरंत मार कर गिरा देना चाहा। उसमे साहस अपूर्व था। अल्प-सख्यक सैनिकों के रहने पर भी वह घबडाया नही। वह जिस स्थान तक पहुँच चुका था। उसी स्थान पर दृढतापूर्वक खडा रहा और दस्युओ के शस्त्र-प्रहारो को रोकता रहा। परिणाम यह हुआ कि वे सब दस्यु सभी प्रकार से प्रहार करने पर भी उसे मार कर गिरा न सके किन्तु उसका आगे बढ़ सकना असभव कर दिया था।

जब राजा उच्चल ने देख लिया कि आगे का मार्ग बन्द है तब उसने अपने थोडे से सेवको के साथ घूम-फिर कर गहन पर्वत-कन्दराओ में एक रात बिता दी। उसी समय उसके अन्य साथी और सैनिको मे यह दारुण सवाद फैल गया कि राजा उच्चल का स्वर्गवास हो गया है। यह सवाद बडी शीघ्रता के साथ फैलता गया। रोकने का प्रयत्न करने पर भी न

रुका। सभी दिशाओ मे क्षोभ उत्पन्न करता हुआ एक से दूसरे के पास पहुँचता गया। जिस प्रकार पर्वत की कन्दरा से निकली हुई साधारण हवा जगल मे प्रवेश करते ही प्रबलता धारण कर लेती है उसी प्रकार यह छोटा-सा दारुण वृत्तान्त साधारण सेना-निवास (कम्पन) से निकल कर राजधानी मे पहुँचते ही बडे महत्व का हो गया था।

उन दिनो कामदेव नामक सैनिक का वशधर और रड्डु आदि का भाई छुड्डु नगराधिकारी के पद पर कार्य करता था। राजा उच्चल के स्वर्गवास के सवाद से जनता मे जो क्षोभ उत्पन्न हुआ था उसने उसे शान्त कर दिया। इसके बाद वह अपने भाइयो के साथ राजभवन के अस्त्रागार मे चला गया और वहाँ जाकर भविष्य के कार्यक्रम पर विचार करने के लिए उन सब को प्रोत्साहित करने लगा।

"किसे राजा बनाना चाहिए?" इस प्रश्न को लेकर जिस समय वे सब विचार करने लगे थे उसी समय अपने ही कुटुम्बियो के बीच कुटिलता करने वाला सड्डु-नामक कायस्थ कहने लगा—"इस प्रश्न को अधिक जटिल बनाना ही मूर्खता है। अपने अनेक मित्रो, बन्धु-बान्धवो और सेवको के कारण तुम सबो की शक्ति अतुल है। सरलता से जीत सके ऐसा कोई भी वीर नही है। इसलिए इस प्रकार मिले हुए निष्कण्टक राज्य को पाकर किसी दूसरे पुरुष को राजा नही बनाना चाहिए। इस समय मैं यही उचित समझता हूँ कि तुम्ही लोगो मे से किसी एक को राज्य-सिंहासन पर बैठ जाना चाहिए।"

सड्डु के इस प्रलोभनकारी कथन का प्रभाव उन सबो पर विशेष रूप से पड गया। वे सब स्वभाव से ही पापात्मा थे इसीलिए उन सबो के हृदय मे राजा बनने की अभिलाषा ने उत्कट रूप धारण कर लिया। फिर क्या था? परिणाम पर पूर्ण रूप से विचार किये बिना ही वे सब तुरन्त राजसिंहासन पर बैठ जाने का प्रयत्न करने लगे। वास्तव मे बात यह थी कि उन सबो के सम्बन्ध मे यह प्रसिद्ध हो चुका था कि वे सब राजा यशस्करदेव के ही वशधर थे। इसी लोक-प्रसिद्धि के कारण वे सब अपने को राजसिंहासन पर बैठने के अधिकारी भी समझने लगे थे।

सत्य तो यह था कि उन सबो के जीवन मे प्रवंचना ही मुख्य थी। न्याय, धर्म, सदाचार और सज्जनता किसे कहते हैं, इन सब का उन्हे ज्ञान तक भी न था। इसलिए उन सबो के जो विरोधी थे वे सब उनके मन्द अभिप्राय को समझकर उत्तेजित हो गये और क्रोध के आवेश में आकर तथा राजसिंहासन पर बैठने की लालसा को बढने से रोककर कहने लगे—

"राजसिंहासन पर बैठने की अभिलाषा से तुम सब अपने को राजा यशस्करदेव के वशधर होने का गौरव अनुभव करने लगे हो। तुम सबो की यह धूर्ततापूर्ण कीर्ति कितनी निन्दनीय हो सकती है, इसका अनुमान तुम सब स्वय कर सकते हो। सत्य को छिपाकर मिथ्या का प्रचार करना और उसी मिथ्या प्रचार के प्रभाव से राजसिंहासन पर अधिकार करना प्रत्येक दृष्टिकोण से अनुचित है। यदि राजसिंहासन पर बैठना ही है तो बैठ सकते हो किन्तु इस प्रकार के उपायो द्वारा नही।"

सड्डु ने जो कुछ भी कहा था उससे उसकी जन्मगत नीचता ही प्रमाणित होती थी। वास्तव मे उसने किसी उच्च, सस्कार-सम्पन्न परिवार मे जन्म ग्रहण नही किया था। यदि ऐसे परिवार मे जन्म ग्रहण किये होता तो वह अधम ऐसा अनुचित परामर्श देने का धृष्टतापूर्ण दुस्साहस न करता। उसने तो बोझ ढोनेवाले लवट के वश मे जन्म ग्रहण किया था। यद्यपि उसका पिता

क्षेमदेव अति साधारण कर्मचारी था और उसके पास कोई विशेष सम्पत्ति अथवा जीविका के लिए दूसरा कोई साधन न था तथापि सड्डु मे दुस्साहसी पुरुषो के समान क्रूर से क्रूर कर्म कर सकने की भयानक शक्ति थी। पाप से सम्बन्ध रखनेवाला चाहे जैसा कर्म हो उसके करने मे उसे कुछ भी संकोच नही होता था।

एक बार उसने राजभवन से सुवर्ण का बना हुआ कलश चुराया था। जब चोर का पता लगाया जाने लगा तब उसके आचरणो से उसी पर सन्देह किया गया था; किन्तु अपनी अपूर्व धूर्तता के कारण वह चोरी के उस कलक के एकदम बच गया था। ऐसा वह धूर्त था। छड्डु आदि से राज सिहासन पर बैठ जाने के लिए कहते-कहते उसने अपने हाथ मे कटारी ले ली थी और नगे सिर टहलना आरम्भ कर दिया था। इतना ही नही हँस-हँस कर वह दूसरो का अपमान भी करने लगा था और ऐसा भाव प्रदर्शित करने लगा था मानो वह भी किसी राजा का पुत्र था। ऐसे ही भाव के आवेश मे आकर वह अपने सामने तीनो लोको को भी तुच्छ समझने लगा था। जिस समय वह अपनी अँगुलियो को इधर-उधर नचा रहा था, उसी समय अनिष्टकारी फल उत्पन्न करनेवाली राजसिहासन पर बैठने की चिन्ता ने उसे भी अपने अधीन कर लिया था, अर्थात् वह भी राजसिहासन पर बैठने की इच्छा करने लगा था।

ऐसे दुष्ट, लम्पट और अधम सड्डु के परामर्श से प्रभावित होकर तथा अपने हृदय की उत्कट अभिलाषा से संचालित होकर वे सब छुड्डु आदि समस्त राजशक्ति को हडप लेने के लिए प्रयत्नशील होने लगे थे किन्तु ज्यो ही उन्हे यह समाचार विदित हुआ कि राजा उच्चल अभी जीवित है त्यो ही उतनी वह अभिलाषा नष्ट हो गई थी तथा राजसिहासन पर बैठने की आशाएँ भी एकदम शान्त हो गई थी; किन्तु उसी समय से लेकर आगामी समय तक वे समस्त आशाएँ निरन्तर उन सब के हृदय मे बनी रही और उसी प्रकार बनी रही जिस प्रकार रात्रि के समय उनीदी आँखो की पुतलियाँ बनी रहती हैं; जो न तो खुलती ही हैं और न तो मूँदती ही हैं। तात्पर्य यह कि वे सब अपनी आशाओ को न तो प्रकट कर सकते थे और न छिपा सकते थे। इसीलिए वे उद्विग्न रहा करते थे।

धीरे-धीरे समय बीतता गया। उन सबो के प्रति राजा उच्चल का जितना भी स्नेह था वह क्रमश घटने लगा। परिणाम यह हुआ कि वे सब राजस्थान नामक महत्वपूर्ण स्थान से हटा दिये गये और उनके अधिकारो को न्यून करके राजा ने उन्हें साधारण पदो पर नियुक्त कर दिया। प्रत्येक मनुष्य के प्रति कठोर शब्दो का प्रयोग करना राजा उच्चल का स्वभाव हो गया था। जैसा रूखा व्यवहार वह सबो के साथ करता था वैसा ही रूखा व्यवहार करते हुए उनके प्रति भी उसने मर्मस्पर्शी शब्दो का प्रयोग किया था।

राजा हर्षदेव के शासन-काल मे ही उन सबो के पिता का स्वर्गवास हो गया था। उस समय उनकी विधवा माता पूर्ण युवती थी। यौवन के ही कारण उसमे मादकता की भी कमी न थी। वे सब उसी के साथ रहा करते थे। उन्ही दिनो उन सबो ने अपने पडोसी और परम मित्र मय्यामत्तक नामक किसी एक सैनिक पर यह सन्देह किया था कि उन की विधवा माता के साथ उसका अनुचित सम्बन्ध है और इसी सन्देह के कारण उसे मार भी डाला था। जब राजा को यह वृत्तान्त विदित हुआ तब उसने अपने मन में विचार किया।—"जब वह स्त्री भ्रष्ट चरित्र की थी तब उसे भी क्यो न दण्ड दिया गया" ऐसा विचार कर राजा क्रोध के आवेश मे आ गया और आज्ञा देकर उस स्त्री की भी नाक कटवा ली थी।

इस वृत्तान्त को राजा उच्चल उन सबो के सामने कहा करता था और जब वे कहीं चले जाते थे तब पूछा करता था कि उस नकटी स्त्री के पुत्र इस समय कहाँ पर क्या कर रहे हैं ? राजा उच्चल जो कि कायस्थो के लिए यमराज के ही समान था उसने पहिले तो सड्डु को बृहद्गज तथा अन्य गजो का अधिकारी बनाया था किन्तु बाद मे उसे भी उस अधिकार से च्युत कर दिया था। बात यह हुई थी कि सड्डु ने अपने गणनापति (खजांची) को बहुत ही सताया था और उसे विशेष रूप से पीडा पहुँचाने लगा था। जब उसका दुर्व्यवहार असहनीय हो गया और रक्षा का कोई उपाय न दिखाई पडा तब उस गणनापति ने राजा उच्चल के पास जाकर सारा भेद खोल दिया था और उसने (सड्डु ने) राजकोष का जितना धन अपहरण किया था वह भी स्पष्ट शब्दो मे बतला दिया था।

जब राजा उच्चल ने रुष्ट हो कर उससे प्रवेशभागिक का अधिकार छीन लिया तब उस भयानक पुरुष ने रड्डु, छुड्डु, और अन्य उच्चाभिलाषी व्यक्तियो को उनके पूर्वसकल्पित विचारो के अनुसार कार्य करने के लिए उत्तेजित किया। इसके बाद उन सबो ने राजा उच्चल को मार डालना निश्चित किया और उचित समय की प्रतीक्षा करते हुए वे सब हंसरथ जैसे पापपरायण व्यक्तियो से भी सम्पर्क स्थापित करने लगे। जो राजा उच्चल के प्राणो को लेना चाहते थे वे सब एकत्र हुए और पीवकोशपूर्वक शपथ भी ग्रहण की, फिर भी चार-पाँच वर्ष तक वे अपने कार्य-साधन के योग्य उचित समय न पा सके।

यद्यपि के सब बहुधा भिन्न-भिन्न स्थानो मे रहा करते थे और उनकी वह योजना भी अधिक दिनो की हो चुकी थी और उसमे अनेक व्यक्ति सम्मिलित थे तथापि प्रजा के पापो के कारण कहीं भी उसका रहस्य-भेद न हुआ। निस्सन्देह यह सब से अधिक आश्चर्य की बात थी। जब वे कभी एकत्र होते थे तब परस्पर यही कहा करते थे "राजा तुम्हीं को नित्य मर्मस्पर्शी बातें कहा करता है।" इस प्रकार कह-सुनकर वे सब राजा उच्चल के प्रति भयानक रूप से अश्रद्धा उत्पन्न किया करते थे और अपने वक्ष, बगल तथा पीठ आदि स्थानो मे गुप्त अस्त्रो को धारण कर वे निरन्तर राजा उच्चल के पीछे लगे रहते थे।

प्रारम्भ मे राजा उच्चल अपनी रानी जयमती के प्रति अधिक अनुरक्त था। एक क्षण के लिए भी रानी का विच्छेद उसे असह्य था। यद्यपि वह शक्तिसम्पन्न राजा था तथापि रानी जयमती के लिए वह साधारण प्रेमी के ही समान था और उसी रूप मे उसके साथ व्यवहार किया करता था, अर्थात् रानी के सामने वह राजोचित गौरव की गरिमा को ही भूल जाता था किन्तु उसके स्वभाव मे सहसा ऐसा परिवर्तन हो गया कि वह बराबर दो वर्षो से रानी जयमती के प्रति उदासीन-सा रहने लगा। सभव है कि सन्निकट मृत्यु के लक्षणो के ही कारण उसका स्वभाव ऐसा हो गया हो। कुछ लोगो का यह कथन है कि रानी का भिक्षाचर की रक्षा करना ही उसकी उदासीनता का कारण हो गया था। कुछ लोगो का यह भी विचार है कि बिजली के समान क्षण भर अपना चमत्कार दिखाने वाला अस्थिर प्रेम ही उसकी उस उदासीनता का वास्तविक कारण था।

कुछ भी हो, रानी जयमती से विरक्त होकर राजा उच्चल बिज्जला नाम की अपनी दूसरी पत्नी से अधिक अनुराग करने लगा था। बिज्जला श्रीसम्पन्न वर्तुल भूपाल की पुत्री थी। जब से उसका विवाह राजा उच्चल के साथ हुआ था तब से लेकर उस समय तक उसने

उसका वैसा अनुराग नही प्राप्त किया था जैसा कि रानी जयमती से विरक्त होने पर प्राप्त किया था ।

ठीक ऐसे ही समय मे राजपुरी का राजा सग्रामपाल स्वर्गवासी हो गया और उसका सोमपाल नामक पुत्र राज्य का अधिकारी हो गया। जब राजा उच्चल को यह सब समाचार विदित हुआ और यह भी ज्ञात हुआ कि राजपुरी के लोगो मे जो प्रमुख षड्यन्त्रकारी थे उन सबो ने द्वेष के कारण सोमपाल के बडे भाई को कारागार मे बद कर दिया है और उसके समस्त राज्याधिकारो को भी छीन लिया है तब उन समस्त अन्यायियो को दण्ड देने के विचार से वह राजपुरी के प्रति क्रुद्ध हो गया। इसके बाद उसने अपनी पुत्री का विवाह सोमपाल के साथ कर दिया। उसकी पुत्री का नाम सौभाग्यलेखा था। जैसा उसका नाम था वैसा ही उसका प्रभाव था। तात्पर्य यह कि सौभाग्यलेखा के शुभलक्षणो से यही ज्ञात होता था मानो वह साक्षात् लक्ष्मी का ही स्वरूप है ।

उस विवाह के उपलक्ष मे जो महोत्सव किया गया था वही राजा उच्चल के जीवन का अन्तिम महोत्सव था। उस महोत्सव मे प्रजावत्सल राजा उच्चल ने अपार धनराशि व्यय किया था। जितने भी याचक आये सभी को इतना धन दिया गया कि उन सबो ने याचक की वृत्ति को ही त्याग दिया। जो जैसी कामना लेकर आया था उसकी वैसी ही पूर्ति की गई। प्राथियो के लिए चिन्तामणि बना हुआ वह राजा उच्चल सभी को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहा ।

जब वैवाहिक महोत्सव समाप्त हो गया और उसका जामाता (दामाद) बिदा हो गया तब उसने साधारण से अपराधो के ही कारण समस्त तन्त्रियो को उसने अधिकारो से च्युत कर दिया किन्तु उसके विरुद्ध जितने षड्यन्त्रकारी थे उनको पूर्ववत् स्वतन्त्र ही रहने दिया। जिस भोगसेन को उसने द्वारपाल का अधिकार दिया था, क्रोध के आवेश मे आकर उसे भी उस अधिकार से च्युत कर दिया। परिणाम यह हुआ कि भोगसेन भी उसका शत्रु बन गया ।

भोगसेन बडा ही पराक्रमशाली व्यक्ति था। जिस समय वह द्वारपाल के पद पर कार्य करता था उसी समय उसने समस्त डामरो को परास्त कर दिया था। वीरता मे उसका सामना कर सके ऐसा कोई वीर न था। जब राजा उच्चल ने उसे द्वारपाल के पद से हटा दिया तब वह उसके भाई सुस्सल को पराजित करने के लिए लोहर प्रान्त की ओर अग्रसर हुआ। उसके इस प्रकार अग्रसर होने पर राजा उच्चल को बडी चिन्ता हुई। यद्यपि यह प्रसिद्ध था कि सुस्सल के प्रति उसमे शत्रुता का भाव ही अधिक है तथापि उन दिनो उसके उस शत्रु-भाव मे भ्रातृ-स्नेह भी सम्मिलित था इसलिए उसने लोहर प्रान्त की ओर अग्रसर होते हुए भोगसेन को रुक जाने के लिए आदेश किया किन्तु भोगसेन ने उसके आदेश का उल्लघन करते हुए बडी उद्दण्डता के साथ उत्तर दिया जिसे सुनकर राजा उच्चल के क्रोध की मात्रा कही अधिक बढ गई। धीरे-धीरे राजा उच्चल द्वारा भोगसेन के अपमानित होने का समाचार फैल गया। निस्सन्देह भोगसेन राजा उच्चल का परम हितैषी मित्र था। उसका इस प्रकार अपमानित होना बडे आश्चर्य का विषय हो गया था। जब समाचार को विश्वास के योग्य मान लिया गया तब रड्ड, छुड्ड आदि उसके समीप गये और उसे भी अपने गुप्त षड्यन्त्र मे सम्मिलित कर विशेष रूप से प्रसन्नता प्रकट करने लगे ।

जिन लोगो को अपमानित किया गया था, जिन लोगो मे उच्चाभिलाषाएँ थी, जिन लोगो की जीविका छीन ली गई थी और जिन लोगो ने अपनी स्वतन्त्र संस्था भी स्थापित कर ली थी, उन सबो को राज्य से निर्वासित न करने का कारण केवल यही कहा जा सकता है कि राजा उच्चल स्वयं यमलोक जाने के लिए अधिक उत्सुक रहा होगा।

जिस समय महाकुटिल सड्ढ ने यह देखा कि रड्ड, छुड्ड आदि ने भोगसेन को अपने दल मे सम्मिलित कर लिया है और उस पर पूर्ण रूप से विश्वास करने लगे हैं उस समय उसने उन सबो को बहुत फटकारा क्योंकि वह जानता था कि भोगसेन-जैसा वीर पुरुष कदापि गुप्त षड्यन्त्र के रहस्य को नही छिपा सकेगा। यही सोचकर उसने उन सबो से कहा भी था "अपने-अपने जीवन को अर्पण करके भी आज राजा उच्चल की हत्या कर डालनी चाहिए यदि ऐसा न किया गया तो भोगसेन किसी न किसी समय समस्त गुप्त षड्यंत्र का रहस्य प्रकट कर देगा और उसका जो भयानक परिणाम होगा उसकी कल्पना भी इस समय कर सकना बडा कठिन कार्य है।"

सड्ढ ने सत्य ही कहा था। गुप्त षड्यन्त्र का रहस्य प्रकट करने के लिए भोगसेन बडा उत्सुक था। इसी उद्देश्य से वह राजा उच्चल से एक बार मिला भी था और एकान्त मे कुछ कहने के लिए अपना विचार भी प्रकट किया था। उसके अभिप्राय को न समझकर राजा उच्चल ने बडी उपेक्षा के भावो को प्रदर्शित करते हुए कहा था "तुम क्या कहना चाहते हो ? मैंने तुम्हें पुन द्वारपाल का पद न देने का दृढ संकल्प कर लिया है।" राजा उच्चल की इन बातो से भोगसेन के हृदय को अधिक आघात पहुँचा था। वह चुपचाप वहाँ से चला आया था और गुप्त षड्यन्त्रकारियो के साथ मिल गया था।

भोगसेन के प्रति राजा उच्चल ने जैसा व्यवहार किया था वह नीतिपूर्ण नही था। उस पर मनन करने के पश्चात् कहना पडता है कि जिस प्रकार अधिक ताप से व्याकुल हुआ मनुष्य घोर निद्रा मे पड जाने पर जगानेवाले को ही घृणापूर्ण दृष्टि देखने लगता है उसी प्रकार जो मनुष्य सर्वथा अपने को भाग्य के अधीन छोड देता है वह भी अपने सावधानकर्त्ता को घृणापूर्ण दृष्टि से देखने लगता है।

षड्यन्त्रकारियो पर सड्ढ के कहने का प्रभाव विशेष रूप से पड चुका था अतएव तंत्रियो का दल अपने सशस्त्र सहयोगियो के साथ अपने निश्चित क्रम के अनुसार सुरक्षा के लिए राजभवन मे प्रवेश कर गया और उस दल ने थोडे-से चाण्डालो को राजभवन के भीतर प्रवेश कराकर एक ऐसा संकेत बतला दिया था कि उसी से वे सब कुछ समझ गये थे। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट रूप से कह दिया गया था—"रात्रि के समय हम सब जिस पर प्रहार करें उस पर तुम सब तुरन्त प्रहार करना आरंभ कर देना।" इसके बाद वे सब षड्यंत्रकारी राजभवन के बाहरी भाग मे खडे हो गये और राजा उच्चल के जितने सेवक वहाँ पर थे उन सब से कहने लगे "आज राजा तुम सबो पर अधिक क्रुद्ध हो चुका है। कहा नही जा सकता कि किसको कैसा दण्ड दे।" सबो की बातो से वे सब भयभीत हो गये और तुरत उस स्थान से भाग खडे हुए। उन सबो के जाते वहाँ सन्नाटा छा गया और राजा उच्चल की सहायता करने वाला कोई न रह गया।

रात्रि के समय का भोजन समाप्त करने के बाद राजा उच्चल अपने भवन से निकल कर विज्जला के भवन की ओर जाने का विचार कर ही रहा था कि इतने मे ही उसके समस्त

शरीर मे कामदेव का प्रभाव व्यापक हो गया। वह कामासक्ति के वशीभूत होकर तुरत अपने भवन के मध्यभाग से निकल पडा। उसके सेवक मार्ग दिखालाने के लिए दीपक लिये हुए आगे-आगे चलने लगे। जैसे ही उसने भवन के बीच वाले मण्डप में प्रवेश किया वैसे ही अपने थोडे-से अनुचरो के साथ सड्ढ ने पीछे से उस मण्डप के द्वार को बन्द कर दिया। दूसरी ओर के द्वार को दूसरे लोगो ने बन्द कर दिया।

जब सभी ओर के द्वार बन्द कर दिये गये तब समस्त षड्यन्त्रकारी एक साथ तैयार हो गये और राजा उच्चल को घेर कर खडे हो गये। इसके बाद उनमे से एक ने घुटने टेक कर विशेष समाचार कहने के बहाने उसे रोक लिया और दिग्न नामक ब्राह्मण के पुत्र तेज ने तुरत उसके (उच्चल के) केशो को पकड कर उसके शरीर मे कटारी चुभो दी। उसके ऐसा करते ही अनेक कटारियाँ उसके शरीर मे प्रवेश कर गईं और उसके समस्त अग-प्रत्यगो से रक्त की धारा प्रवाहित होने लगी। जिस समय उसके स्वर्ण-निर्मित आभूषणो को रजित करती हुई रक्त की धारा बह रही थी उस समय ऐसा ज्ञात होता था मानो सुमेरु पर्वत के शिखरो पर विशालकाय सर्प ही भ्रमण कर रहे हो।

इस प्रकार घायल होते ही राजा उच्चल "द्रोह-द्रोह" कहकर चीत्कार करने लगा और फिर उसने बलपूर्वक उन सबो के हाथ से अपने केशो को छुडा लिया। साथ ही साथ चमडे की जिस डोरी से उसके खेल की कटारी की मूठ बँधी हुई थी उसे भी अपने दाँतो से काट डाला। वास्तव मे बात यह हुई थी कि सुजनाकर नामक उसका कटारीवाहक सेवक यह देख कर कि उसके विरोधी उस पर प्रहार कर रहे हैं, मारे डर के उसके पक्ष को छोड़ कर भाग गया था। राजा उच्चल बडी कठिनाई के साथ अपने पास की छुरिका को म्यान से निकाल सका था। वह छुरिका भी बालको के लिए खेल के योग्य थी। उसके द्वारा आत्मरक्षा कर सकना सर्वथा असभव था।

यद्यपि उसकी समस्त अँतडियाँ बाहर निकली आ रही थी तथापि उसने पुन अपने बिखरे हुए बालो को सम्हाला और पास की छोटी-सी कटारी को तुरत अपने घुटनो के बीच मे रख लिया। फिर उसने घोर गर्जना करके तेज पर प्रहार किया और ऐसा पराक्रम दिखाया कि वह देखते ही अचेत होकर धरती पर गिर पडा। उसके इस प्रकार गिरने से ऐसा ज्ञात होने लगा मानो उसके समस्त मर्म-स्थानो मे एक ही साथ आघात पहुँचा हो। तेज को गिराकर उसने पीछे से आक्रमण करने वाले रड्ड को भी घायल किया। इसके बाद सिंह के समान गर्जना कर वह व्यड्ढ के ऊपर टूट पडा और उसके भी अग-प्रत्यगो को छिन्न-भिन्न कर दिया। यह सब कर लेने के बाद उसने दूसरे कवचधारी सशस्त्र पुरुष पर आक्रमण किया। उच्चल के आक्रमण करते ही वह अपने को सम्हाल न सका और तुरत घोर यत्रणा के कारण तडप-तडप कर मर गया।

इस प्रकार अपने समस्त आक्रमणकारियो को मार कर उसने अपना मार्ग मुक्त कर दिया और जैसे ही वस उप स्थान से आगे बढा वैसे ही वहाँ का द्वार बन्द मिला। बाहर पहरेदार उपस्थित थे किन्तु वे यह न जान सके कि राजा उच्चल ही द्वार को खुलाना चाहता है। जब राजा उच्चल दूसरे द्वार को खुलाने के लिए आगे बढा तब उसे रोककर छुड्ड समाने खडा हो गया और कहने लगा—"अब आप कहाँ जा रहे हैं? ऐसा कहकर उसने तलवार से प्रहार किया। ठीक ऐसे ही समय मे राजा उच्चल ने मुँह फेरे हुए और काठ की तूलिका से दीवाल पर चित्र बनाते हुए भोगसेन को द्वार के मार्ग पर देखा। वह तुरत उसके पास दौडा गया और जाकर कहने लगा—

"तुम यहाँ इस प्रकार खडे क्या ताक रहे हो।" भोगसेन लज्जित होकर ऐसा बोला कि राजा उच्चल को कुछ सुनाई तक न पडा।

राजा उच्चल का प्रदीपवाहक रय्यावट्ट था। यद्यपि उस समय उसके पास कोई अस्त्र नही था तथापि वह वहाँ से भागा नही। अपने पीतल के प्रदीप से ही वह युद्ध करने लगा और बडी वीरता के साथ लडा। जब सभी आक्रमणकारी चारो ओर से उस पर टूट पडे तब वह वीर-गति को प्राप्त हो गया। चम्पा का रहने वाला सोमपाल नामक राजपुत्र पहिले तो उन आतता-यियो से खूब लडा किन्तु जब वह उन सब के प्रहारो से घायल हो गया। तब फिर किसी प्रकार अपने जीवन की रक्षा करना भी वह भूल गया और ऐसा कार्य किया जिससे कि उसके स्वाभिमान मे तनिक भी कलक न लगा। श्री शूरपाल का पौत्र और राजक का पुत्र अज्जक अपनी कटार को पीछे छिपाकर ऐसा भागा मानो कुत्ता अपनी पूँछ दबाये हुए भाग रहा हो।

इन समस्त घटनाओ के बीच से अपने जीवन की रक्षा करने के लिए राजा उच्चल प्रयत्नशील होने लगा। ज्यो ही वह किसी प्रकार घुटनो के बल वहाँ से भाग जाने को तैयार हुआ त्यो ही चाण्डालो ने उसे घेर लिया और उसके घुटनो को ही काट डाला। घुटनो के कटते ही वह धरती पर लुढक गया। ठीक ऐसे ही आपत्ति-काल मे शृंगार नामक एक विश्वासपात्र कायस्थ आ गया। राजा उच्चल के जीवन की रक्षा करने के लिए उसने अपने शरीर को ही उसके शरीर पर अर्पण कर दिया। शत्रुओ ने उसके शरीर को भी अपने प्रहारो से घायल कर दिया और राजा उच्चल के शरीर पर से बलपूर्वक हटा दिया।

इतने पर भी राजा उच्चल निराश नही हुआ था। वह अपने जीवन की रक्षा करने के प्रयत्न मे तत्पर हो रहा था इसीलिए वह किसी न किसी प्रकार वहाँ से निकल जाने का उपक्रम करने लगा था। इतमे ही हत्यारो का समूह उस पर टूट पडा और ऐसा अस्त्र-शस्त्रो से घायल किया कि राजा उच्चल जिस स्थान पर था उसी स्थान पर पडा रहा गया। उसके शरीर भर मे अस्त्र-शस्त्र ही दिखाई पडते थे। उन्हे देखकर ऐसा अनुमान होता था मानों स्वयं काली ने ही नीलकमलो की माला पहिना कर उसका वरण कर लिया हो। इसके बाद अधम सड्ड ने आप ही आप यह कहते हुए "यह धूर्त अभी मृत्यु को नही प्राप्त हुआ है। केवल मृतक के समान पडा हुआ है" उसके गले को काट डाला। इतना ही नही, उसकी अँगुलियो को भी काटा और रत्न-जटित अँगूठियो को निकाल कर बडे अभिमान के साथ कहने लगा—"मैं वही व्यक्ति हूँ जिसे इसने सभी अधिकारो से च्युत कर दिया था।"

दीर्घबाहु वाला वह राजा उच्चल धरती पर ऐसा पडा हुआ था मानों गाढ निद्रा मे पडा सो रहा हो। उसके केशो से उसका मुख ढका हुआ था और गले के हारो से वह सर्वथा मुक्त था। उस समय भी उनके एक पैर मे जूता शोभा दे रहा था। लोगो के प्रति राजा उच्चल में सहानुभूति का जो अभाव था उसका ही उसे अपने जीवन की अन्तिम घडी मे इस प्रकार के वीरतापूर्ण कार्य द्वारा प्रायश्चित्त-सा करना पडा था। राजा उच्चल का एक सेवक था। उसका नाम शूरट था। वह बाहर जा-जाकर हत्यारो के कार्यों की घोर निन्दा करने लगा था। उसके उस कार्य से भोगसेन क्रुद्ध हो गया अतएव उसने उसे तुरत यमलोक भेज दिया। सब ने बडे आश्चर्य की बात तो यह हुई कि जिस समय ध्यानपूर्वक देखा गया उस समय यह स्पष्ट हो गया कि राजा उच्चल अपने भवन से विज्जला के भवन की ओर चला था किन्तु भूल से वह उस ओर न जाकर काली के मन्दिर के मार्ग पर पहुँच गया था।

निस्सन्देह राजा और शहद की मक्खियाँ दोनो ही एक समान हैं। राजा अपने राज्य मे भोग-वासना को चरितार्थ करने मे लगे रहते है और भिन्न भिन्न प्रकार की भोग-सामग्रियो तथा वस्त्राभूषणो से अपने मन को प्रसन्न किया करते हैं। इसी प्रकार शहद की मक्खियाँ भी उपवनों मे अपनी-अपनी रस-लालसा को चरितार्थ किया करती हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार की कलियो का रस पान कर अपने जीवन को धन्य समझ लेती हैं; किन्तु जिस प्रकार वायु द्वारा आन्दोलित होने वाली लतिका के ही कारण वे समस्त शहद की मक्खियाँ नष्ट हो जाती है उसी प्रकार दैव के द्वारा होनहार के आन्दोलित होते ही राजा भी नष्ट हो जाते हैं। यह कितने बडे दु ख की बात है।

लंका का राजा रावण त्रिलोक-विजयी था। उसका सामना कर सके ऐसा कोई योद्धा अथवा महारथी ससार मे न था किन्तु जब उसका अतिम समय आया तब साधारण पशुओ (वानरो) ने ही उसे परास्त कर दिया। इसी प्रकार कुरुपति भी कम प्रतापी और पराक्रम-शाली न था। असख्य राजा उसे अपना प्रधान मानते थे। अन्त समय मे उसे भी अपने मस्तक पर मूर्ख मनुष्य का पदाघात सहन करना पडा। इस प्रकार प्राय देखा गया है कि लोक-प्रसिद्ध महापुरुषो को अन्त मे बडी ही लज्जाजनक पराजय को स्वीकार करना पडा है और उसी पराजय ने उन्हे साधारण मनुष्यो की श्रेणी मे पहुँचाया भी है। ऐसी दशा मे "मैं महान् हूँ" ऐसा स्वाभिमान किसी का भी नही स्थिर रह सकता।

मृत्यु हो जाने के बाद जिस राजा उच्चल को उसके शत्रुओ ने त्याग दिया था वही सब उसका अतिम सस्कार करने के लिए उसे अनाथ के समान नग्न अवस्था मे ही छतरियो की डडियो से घसीटने लगे थे। इसके बाद किसी ने राजा उच्चल की भुजाओ को उसके गले से बाँध दिया और किसी ने उसके पैरो को उसकी भुजाओ से मिला दिया। इस प्रकार वे सब राजा उच्चल को घसीटते हुए ले जाने लगे। उस समय राजा उच्चल का गला नीचे की ओर झूल रहा था। मस्तक के बिखरे बाल लटक रहे थे। शरीर रक्त से रजित हो चुका था। उसके घावो से वायु की सनसनाहट-सी निकल रही थी। इस प्रकार नग्न अवस्था मे अनाथ के समान उस मृतक राजा उच्चल को राजभवन से घसीटते हुए निकाल कर वे सब शत्रु उसे श्मशान की भूमि मे ले गये। फिर भी शत्रुओ का दल भयभीत हो रहा था। किसी प्रकार महासरित् और वितस्ता के सगम-स्थित द्वीप पर ले जाकर उन सबो ने शीघ्रातिशीघ्र उसका अग्नि-सस्कार कर दिया। न तो राजा उच्चल की हत्या होते हुए किसी ने देखा और न किसी ने उसके शव का अग्नि-सस्कार ही देखा। बात की बात मे वह ऐसा अदृश्य हो गया मानो कही भाग गया हो। जिस समय राजा उच्चल की मृत्यु हुई थी उस समय उसकी आयु एकतालीस वर्ष की थी और उसके निधन की तिथि लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ सत्तासी की पौष शुक्ल छठ थी।

२ रड्ड (शखराज) तथा राजा सल्हण की कथा

राजा उच्चल के स्वर्गारोहण से बाद रक्त मण्डित रड्ड राजसिंहासन पर बैठ गया। खड्ग और कवच को धारण कर जिस समय वह राजसिंहासन पर बैठा था उस समय ऐसा ज्ञात होता था मानो श्मशान के शिलाखण्ड पर साक्षात् वेताल ही बैठ गया हो। राजसिंहासन पर आरोहण करते ही रड्ड ने अपना नाम शखराज रख लिया था।

जिस समय राजा उच्चल की मृत्यु का समाचार लोगो को विदित हुआ उस समय एक प्रकार का महान् आन्दोलन होता-सा दिखाई पडा। गर्गचंद्र आदि जो वीर पुरुष थे वे सब राजा उच्चल के विरोधियो पर उत्तेजित हो गये और आक्रमण करने पर तुल गये। जैसे ही रड्ड को यह सब वृतान्त विदित हुआ ही वैसे ही वह भी युद्ध के लिए तैयार हो गया और तुरत राजसिंहासन से उतर कर अपने वन्धु वान्धवो तथा अनुचरो के साथ युद्ध की भूमि मे पहुँच गया। वहाँ उसके साथी और सहायको ने वडी वीरता के साथ युद्ध किया और अन्त मे अपने जीवन को विसंजन कर युद्धभूमि के गौरव को कही अधिक वढा दिया। वट्ट और पट्ट नाम के दो तंत्री भी उसके वान्धव थे और कट्टसूर्य आदि सैनिक भी उसके सहायक थे। वे दोनो तंत्री और वे समस्त सैनिक रड्ड के पक्ष से शत्रुओ पर आक्रमण करने लगे। उस समय युद्ध की भूमि मे युद्ध करते-करते उन सबो ने शत्रुओ के दांत खट्टे कर दिये थे किन्तु अन्त मे राजभवन के समीप सिंहद्वार के सामने उन्हे मृत्यु का ही स्वागत करना पडा।

युद्ध की रंगभूमि मे जिस प्रकार अभिनेता ढाल और तलवार लेकर नृत्य करता हुआ अपने विरोधियो पर आक्रमण करता है उसी प्रकार रड्ड भी राजभवन के प्रांगण मे युद्ध का अभिनय-सा करने लगा था। सभी दिशाओ से आक्रमण करने वाले शत्रुओ को मार-मार कर उसने धराशायी कर दिया था। उसके उस प्रकार युद्ध करने से शत्रुओ का समूह व्याकुल-सा हो गया और विजय की आशा भी सन्देहपूर्ण होने लगी किन्तु सहसा ऐसा भयानक आक्रमण हुआ कि रड्ड उसे न सम्हाल सका और तुरत युद्ध की भूमि मे घायल होकर गिर पडा।

गर्गचन्द्र इस भयानक निष्ठुर युद्ध से यहाँ तक उत्तेजित हो चुका था कि उसे मर्यादा का भी ज्ञान न रहा। उसने तुरत आदेश किया कि दुष्टो ने जो भयानक राजद्रोह का अपराध किया है उसका उचित दण्ड प्राण-हरण ही है अतएव रड्ड को अवश्य मार डालना चाहिए। दिद्दामठ के समीप नागरिको ने व्यड्ड को मार कर उसके ऊपर धूल और पत्थरो को डाल दिया था तथा उसके मस्तक को गन्दी नाली मे फेंक दिया था।

जिन लोगो ने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया था वे सब अपने कर्मों का उचित फल तुरत पाने लगे। उनके शत्रुओ ने रस्सियो से उनके पैरो को बांधा और घसीटना आरंभ कर दिया तथा समस्त नागरिक उन पर थूकने भी लगे। हसरथ आदि किसी प्रकार भाग कर सड्ड से जा मिले और वहाँ जाकर कुछ दिनो तक मृत्यु से भी अधिक दुःखदायिनी विपत्ति की व्यथा को सहने लगे।

भोगसेन, जिसे इस वात का अभिमान था कि उसके छोटे भाई ने गर्गचन्द्र को युद्ध मे परास्त दिया है, जिस समय उपर्युक्त वृत्तान्त को सुनता है उस समय अपने सामने प्रलयकाल का दृश्य देखने लगता है। किसी प्रकार अपने हृदय मे साहस का संचार करता हुआ वह युद्ध करने लिए अग्रसर होता है किन्तु ज्यो ही अपने साथियो के सैनिको को भागते हुए देखता है त्यो ही अपने थोडे से अनुचरो के साथ वह वही जाकर छिप जाता है और वहाँ भी मारे भय के थर-थर कांपने लगता है।

इस प्रकार गर्गचन्द्र ने केवल अपने वाहुवल से षड्यन्त्रकारियो मे से अनेक को यम-लोक के द्वार पर पहुँचा दिया और उनकी गुप्त संस्था को भी छिन्न-भिन्न कर डाला। सत्य तो यह है कि एकाकी गर्गचन्द्र ने जैसा अन्तिम साहस और पराक्रम दिखाया है वैसा न तो इतिहास मे मिलता है और न कही किसी वीर के सम्वन्ध मे सुनाई पडता है।

विश्वासघातक रड्डु, जिसने शंखराज का नाम धारण किया था, कुकर्म करने वाले नराधमो की गति को प्राप्त हो गया था और वह भी केवल एक रात्रि तथा दिन के एक प्रहर तक राज्य करने के बाद ही। ये समस्त विश्वासघातक बड़े अभिमान के साथ अपने को राजा यशस्करदेव के वंशधर होने की घोषणा किया करते थे इसलिए राजा वर्णट के समान इन्हे भी क्षण भर का राज्याधिकार प्राप्त हुआ था।

किरात वनो मे जाते है और वहाँ जाल बिछाकर तथा अग्नि जला कर सिंह आदि वन-पशुओ का संहार करते हैं किन्तु आगे चलकर वे ही किरात पर्वत-शिखर से शिलाखण्ड के आकस्मिक पतन होने पर मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। इसी से स्पष्ट है कि संसार मे सभी प्राणियो और मनुष्यो का अन्त केवल मृत्यु के द्वारा ही होता है। ऐसी दशा मे "मैं हन्ता हूँ और यह मेरे द्वारा निहत हुआ है" यह क्षणिक भेद अपना कोई विशेष महत्व नही रखता। जो पुरुष अपने विवाह के साथ शुभ अवसरो पर स्त्रियो द्वारा गाये जाने वाले मंगल-गीतो को सहर्ष सुनते हैं वे भी अन्त समय मे बड़े दुःख के साथ अपनी पत्नियो के ही विलाप को सुना करते हैं। अपने शत्रु को मार कर जिसने कल परमोल्लास प्रकट किया था उसे भी यह देखना पड़ता है कि उसका घातक आनन्द की अधिकता से अधीर हो रहा है। जिस माया के चक्कर मे पड़कर मनुष्य को अन्धा बनना पड़ता है, उस माया को धिक्कार है।

राजद्रोहियो का दुस्साहसपूर्ण कार्य एक ऐसे वृक्ष के समान है जो संध्या समय सींचा जाता है, रात्रि मे फल देता है और दूसरे ही दिन जिसके कुफल पकने लगते हैं। कुछ भी हो, अपना निश्चित कार्य समाप्त कर तथा अपने क्रोध को शान्त कर गर्गचन्द्र राजसिंहासन के समीप जाकर गिर पड़ा तथा अपने स्वर्गवासी स्वामी राजा उच्चल के लिए विलम्ब तक विलाप करता रहा। जिस समय वह राजसिंहासन के समीप अश्रुपात कर रहा था उस समय समस्त नागरिक भी भय से मुक्त होकर अपने सर्वप्रिय राजा के लिए शोक प्रकट करने का अवसर पा गये।

रानी जयमती मे कपटशीलता की मात्रा अधिक थी। वह जीवित रहने के लिए अधिक उत्सुक थी। उसने गर्गचन्द्र के हृदय मे करुणा के भावो को उत्पन्न करने के लिए उसे अपनी सारी सम्पत्ति दे दी और कहा—"भाई! तुम मेरे लिए कोई उचित प्रबन्ध कर दो।" उसने उसकी बातो को बड़े ही सरल स्वभाव से मान लिया और तुरन्त उसके लिए एक चिता तैयार करा दी।

स्त्रियो का हृदय बड़ा ही गहन होता है। जिस प्रकार उनके सुन्दर केश घुँघराले होते हैं वैसे ही उनका हृदय भी कुटिल होता है। जैसे उनके आकर्षक नेत्र चंचल होते हैं वैसे ही उनके विचार भी चंचल होते हैं, जिस प्रकार वे अपने वक्षस्थल पर सुगोल और कठोर कुचो को धारण किये रहती हैं। उसी प्रकार हृदय भी कठोर बनाये रखती है। अतएव स्त्रियो के चरित्र और स्वभाव को समझ सकना बड़ा कठिन कार्य है। अपने पति के साथ विश्वासघात कर उसकी हत्या करा डालती हैं और फिर अपने को सती-साध्वी प्रमाणित करने के लिए उसी के साथ दृढ़तापूर्वक चिता मे जल भी जाती हैं। ऐसी दशा मे इन स्त्रियो को किस प्रकार समझा जा सकता है।

जलती हुई चिता मे प्रवेश करने के लिए रानी जयमती डोली पर चढ़कर चल पड़ी किन्तु मार्ग मे उसे अधिक समय लग गया। इतने मे ही बिज्जला आगे बढ़ी और उसके सामने ही चिता मे प्रवेश कर गई। इसके बाद जिस समय रानी जयमती चिता मे प्रवेश करने लगी उस

समय आभूषणो के चुराने के लोभ से किसी चोर ने उसके अंगो को आघात पहुँचा दिया था। जिस समय जनसमूह ने देख लिया कि छत्र और चामर के सहित दोनो रानियाँ एक ही साथ चिता की अग्नि मे जल रही हैं उस समय अधीर होकर वह विलाप करने लगा और इतना अश्रुपात किया कि उसके नेत्र व्यथा से जलने लगे।

यह सब हो जाने के बाद गर्गचन्द्र ने अपने महत्वपूर्ण चरित्र की पवित्रता का ऐसा प्रदर्शन किया कि सभी मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशसा करने लगे। वास्तव मे बात यह हुई थी कि समस्त नागरिको ने गर्गचन्द्र से राजसिंहासन पर बैठ जाने के लिए विशेष रूप से आग्रह किया था किन्तु उसने उनके उस आग्रह को नही माना था। वह कुछ ऐसे व्यक्तियो को खोज रहा था जिनके गोद मे राजा उच्चल के बालक पुत्र को सौंपा जा सके और जो उसे उचित रूप से राज्याभिषेक करा कर राजा बना सकें। किन्तु उसे कोई भी इस योग्य न दिखाई पडा। जिस-जिसके चरित्र पर उसने ध्यान दिया वही पूर्ण रूप से अयोग्य और उपहास का पात्र-सा दिखाई पडा। राजा बना सकना तो दूर रहा, भिक्षा माँग कर जीविका चला सकना भी असंभव-सा प्रमाणित होने लगा।

मल्लराज की रानी का नाम श्वेता था। उसके गर्भ से तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। सल्हण उन तीनो मे ज्येष्ठ था। मध्यम पुत्र स्वर्ग सिधार गया था और सबसे छोटा लोठन था। जिस समय उन दोनो को मार डालने के लिए शखराज खोज रहा था उस समय वे दोनो ही सुरक्षा के उद्देश्य से नवमठ मे भाग गये थे। जब समस्त षड्यन्त्रकारी पराजित हो गये तब निर्लज्ज धूर्त तन्त्रियो, अश्वारोही सैनिको और सचिवो ने उन सबो के पक्ष को त्याग दिया और पुन: एकत्र होकर मल्लराज के ज्येष्ठ पुत्र सल्हण को नवमठ से ले आये। जब गर्गचन्द्र को और कोई योग्य पुरुष न मिला तब उसने उसी का तुरन्त राज्याभिषेक कराकर राजसिंहासन पर बैठा दिया। धिक्कार है ऐसी राजसत्ता को जिसके एक दिन, एक रात्रि और चार पहर मे एक पीढी के तीन-तीन शासक हुए हो। जिन राजसेवको ने सध्या के समय राजा उच्चल की सेवा की थी और प्रात काल मे रड्ड की सेवा मे तल्लीन हो चुके थे वही दोपहर के समय राजा सल्हण की सेवा मे तत्पर दिखाई पडने लगे।

लोहरकोट मे रहते हुए जिस समय राजा सुस्सल ने अपने भाई राजा उच्चल के निधन का वृत्तान्त सुना उस समय उसका मन भयानक उत्तेजना के वशीभूत हो गया था। यद्यपि डेढ दिन के बाद उसने उस वृत्तान्त को सुना था तथापि उसके लिए वह एकदम ताजा ही था और ऐसा आश्चर्यजनक था जिस पर कि पूर्ण रूप से विश्वास किया जाना भी असभव था। जब गर्गचन्द्र का भेजा हुआ दूत पहुँचा और धरती पर गिरकर विलाप करने लगा तब राजा सुस्सल का समस्त सन्देह दूर हो गया और वह भी अपने बडे भाई के लिए फूट-फूट कर रोने लगा।

सर्वप्रथम गर्गचन्द्र ने जिस दूत को राजा सुस्सल के पास भेजा था उससे सल्हण के राज्याभिषेक तक का कुछ भी समाचार सुस्सल को नही ज्ञात हुआ था। केवल इतना ही ज्ञात हुआ था कि उसका भाई मार डाला गया है और उसे तुरन्त काश्मीर मे पहुँचना चाहिए। वास्तव मे बात यह हुई थी कि जिस समय गर्गचन्द्र ने दूत को भेजा था उस समय वह यह न सोच सका था कि इतनी शीघ्रता के साथ शत्रुओ का दमन किया जा सकेगा। उसे कार्य बडा कठिन दिखाई पड रहा था। दूत के द्वारा भाई के मृत्यु-सवाद को सुनकर राजा सुस्सल रात्रि भर बडे करुण शब्दो मे विलाप करता रहा। जब सबेरा हुआ तब अपने सैनिको को साथ लिये

बिना ही वह काश्मीर की ओर चल पड़ा। मार्ग में गर्गचन्द्र का भेजा हुआ दूसरा दूत मिल गया। बाद में होने वाली समस्त घटनाओं को बतलाकर उसने निवेदन करते हुए कहा—"विश्वास कीजिए कि अब आप का जाना आवश्यक नहीं है। षड्यन्त्रकारियों को पूर्ण रूप से कुचल दिया गया है और आपकी अनुपस्थिति में आपके कनिष्ठ भ्राता सल्हण को राजा बनाया गया है। अब आप के जाने का कुछ भी प्रयोजन नहीं रह गया है।"

उस दूत के द्वारा गर्गचन्द्र के सन्देश को सुनकर राजा सुस्सल मन ही मन क्रोध से अधीर हो उठा और फिर हँसते हुए इस प्रकार अपने अनुचरों से कहने लगा "तुम सबों में कौन ऐसा है जो काश्मीर की ओर जाने को तैयार नहीं है। यह नित्य स्मरण रखना चाहिए कि काश्मीर का राजमुकुट हम लोगों की पैतृक सम्पत्ति नहीं है और न काश्मीर का राज्याधिकार हमारी वंश-परम्परा से चला आ रहा है। यदि ऐसा ही होना स्वीकार भी कर लिया जाय तो भी राज्य का उत्तराधिकारी राजा का ही पुत्र होना चाहिए। किन्तु यथार्थ में सत्य तो यह है कि हम दोनों भ्राताओं ने ही अपने बाहुबल से काश्मीर का राज्याधिकार प्राप्त किया है। हम दोनों ने ही इस राज्य को जीता है, किसी ने दया के वशीभूत होकर दान नहीं दिया है। जिन शक्तियों और उपायों से हमने पहिले-पहिल इस राज्य को अपने अधीन किया था क्या वे सब शक्तियाँ, उपाय और साधन कहीं चले गये हैं।

इस प्रकार अपने समस्त अनुचरों से कहकर राजा सुस्सल काश्मीर के मार्ग पर चल पड़ा और गर्गचन्द्र को अपने पक्ष में मिलाने के लिए एक दूत के बाद दूसरे दूत को निरन्तर भेजता गया। चलते-चलते वह काष्ठवाट के समीप पहुँच गया। इधर सल्हण के पक्ष का पूर्ण रूप से समर्थन करते हुए गर्गचन्द्र ने काश्मीर से आगे बढ़ कर हुष्कपुर में डेरा डाल दिया। सन्ध्या के समय गर्गचन्द्र के पास भेजा गया राजा सुस्सल का दूत लौट आये और आकर कहने लगा—"यद्यपि बाहरी रूपरेखाओं तथा बातों से सिद्ध है कि सल्हण के पक्ष का समर्थक गर्गचन्द्र आप से युद्ध करने को उत्सुक नहीं है तथापि उसके अन्य लक्षणों से कहना पड़ता है कि आपके प्रति उसके विचार अच्छे नहीं हैं।"

इतना सब सुन लेने पर भी राजा सुस्सल अपने मार्ग से विचलित होना उचित नहीं समझ रहा था। उसने तुरन्त अपने धात्रेय भ्राता हिताहित को गर्गचन्द्र के पास भेजा। ठीक ऐसे ही समय में भाग्य के चक्कर में पड़ा हुआ भोगसेन भी आ पहुँचा। वह अपने साथ बिल्ववन के खाशकों को भी लाया था। उन्हीं खाशकों को आगे कर वह राजा सुस्सल के सामने खड़ा हो गया। फिर उसने अश्वारोही कर्णभूति को राजा सुस्सल के पास भेजा और उसके द्वारा यह कहला कर "भोगसेन गर्गचन्द्र को युद्ध में हरा देगा" उसकी अनुकूलता को प्राप्त कर लिया। इसी एक घटना से लोगों ने स्पष्ट धारणा बना ली कि राजा उच्चल की हत्या करने वालों को प्राणदण्ड देने के लिए राजा सुस्सल उचित समय की प्रतीक्षा कर रहा है—ऐसा विश्वास करना ही सरासर भूल है। गर्गचन्द्र ने भी दूतों के द्वारा बड़े कठोर शब्दों में कहा था "मैं यह देख रहा हूँ कि आपके भाई की हत्या करने वाले निरन्तर आपके द्वारा सम्मानित हो रहे हैं। उनके पक्ष का समर्थन करने में ही आप अपना गौरव समझ रहे हैं। ऐसी दशा में आपके पक्ष को ग्रहण करना मेरे लिए सर्वथा असम्भव है।"

कुछ भी हो, राजा सुस्सल ने गर्गचन्द्र के संदेशों को प्रकट नहीं होने दिया और इस भय से कि कहीं अधकार में भोगसेन मार्ग से ही भाग न जाय इसलिए अपने विचारों को रचनात्मक

रूप देने मे विलम्ब करने लगा। ज्यो ही वह रात्रि समाप्त हुई और पौ फटने लगी त्यो ही उसने उस भोगसेन पर आक्रमण कर दिया और उसके भाई के साथ उसे भी मार डाला। उस समय के युद्ध मे भाग लेने के लिए कर्णभूति दौड पडा और अपनी वीरता से अपने व्यक्तित्व के गौरव को बढा दिया। उसके सौतेले भाई तेजसेन ने भी कम वीरता नही दिखाई थी। इसके बाद राजा सुस्सल के आदेश से तेजसेन और अश्वपति लवराज का पुत्र मरिच शूली पर चढा दिया गया।

जहाँ तक साहस और वीरता का प्रश्न है, कहना पडता है कि उस समय राजा सुस्सल ने जो कुछ भी किया था वह समय और परिस्थिति को देखते हुए अनुचित नही था। यो तो राजा मे क्षमा करना, पारितोषिक देना और दण्ड देना आदि सभी कार्यो का समान रूप से सामर्थ्य रहना माना ही गया है फिर भी उस समय राजा सुस्सल के साथ इतना कम सैन्य-बल था कि उससे उसका सम्हल सकना भी सन्देहपूर्ण हो गया था। जिस सजपाल को राजा सुस्सल ने पहिले से ही काश्मीर की ओर भेज दिया था वह भी वह जिन बीत जाने के बाद ही घोड़ो के सहित उससे मिल पाया था। ज्यो ही घोड़ो के सहित सज्जापाल आया और राजा सुस्सल का सैन्य-बल पहिले की आपेक्षा कुछ अधिक बढा त्यो ही असख्य अश्वारोही सैनिको के साथ गर्गचन्द्र का सेनापति सूर्य आ पहुँचा

जब राजा सुस्सल के आप्तजनो ने यह भली भाँति देख लिया कि वे सब आये हुए अश्वारोही सैनिक अपने सेनापति के आदेश से हानि पहुँचाने का उपक्रम करने लगे हैं तब वे सब राजा सुस्सल के पास गए और अपने विचारो को प्रकट करते हुए कहने लगे "महाराज! शत्रुओ का समूल विनाश करना चाहिए।" पहिले तो राजा सुस्सल ने उन सबो की बातो पर विशेष ध्यान नही दिया और अपने निश्चित किये हुए विचारो पर ही दृढ रहा किन्तु जब वे सब अधिक आग्रह करने लगे तब बडी कठिनाई के साथ वह कवच धारण कर घोड़े पर सवार होने को तैयार हुआ।

इतने मे ही शत्रुओ के पक्ष से बाणो की वर्षा होने लगी और इतनी सघन वर्षा हुई कि टिड्डीदल से आच्छादित होने के समान समस्त गगन-मण्डल तुरन्त आच्छादित हो गया। कौन कहाँ है यह भी न दिखाई पडने लगा। शत्रुओ ने जिस विश्वासघातकता के साथ बाणो की वर्षा आरम्भ कर दी थी उससे उन्हे अपनी सफलता के लक्षण स्पष्ट दिखाई पडने लगे थे। इसलिए वे बड़े उत्साह के साथ अविराम गति से बाणो की वर्षा करने मे दत्तचित्त हो गये थे। राजा सुस्सल के सैनिको पर उन सबो ने सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग किया था। उन सब के उस प्रकार अस्त्र-शस्त्रो के प्रयोग करने से राजा सुस्सल का साहस नष्ट हो गया। वह विचलित-सा होने लगा। जब उसने देख लिया कि उसके सैनिको से कुछ घायल होकर गिर पडे हैं और कुछ वीरगति को प्राप्त चुके हैं तथा जो शेष रह गये है, वे इधर-उधर भाग कर अपने जीवन की रक्षा करने मे व्यस्थ है तब वह भी अकेला ही शत्रुओ के बीच से शीघ्रता के साथ भाग निकला।

भागते-भागते वह घोड़े के साथ उस पुल को पार कर गया जो नित्य झूले के समान झूलता रहता था और जिसके नीचे सिन्धु के समान गर्जना करने वाली नदी बहा करती थी तथा जिसे पार करने मे पक्षी भी भयभीत हुआ करते थे। जैसे ही राजा सुस्सल युद्धभूमि से भागा था वैसे ही सजापाल ने दो-तीन अश्वारोही सैनिक उसके पीछे दौडा दिये थे और स्वय भी शत्रुओ के मार्ग को रोकता हुआ पीछे-पीछे जाने लगा था। जब राजा सुस्सल भागता हुआ खशो के

निवास वीरानक नामक स्थान में अपने बीस-तीस अनुचरों के साथ पहुँच गया। तब उसके शत्रुओं ने उसका पीछा करना बन्द कर दिया और काश्मीर की ओर लौट पडे।

अपने अनुचरो के साथ राजा सुस्सल उसी स्थान पर रुक गया। कई दिन बीत जाने पर उसने बड़ी निर्भीकता के साथ वहाँ के निवासी खशो पर आक्रमण कर दिया और मनमाना दण्ड भी दिया। जिस राजा सुस्सल के पास न तो पहिनने के लिए कपडे थे और न भोजन के लिए अन्न ही था, उसने ऐसा साहसपूर्ण कार्य कर डाला! आश्चर्य है तो केवल इसी बात का।

इस प्रकार सौभाग्य की प्रबल अनुकूलता से मृत्यु के चंगुल से बचता हुआ वह वीरानक से आगे बढा और हिमपात के कारण पार करने मे जो मार्ग कठिन हो गये थे उन सब को साहस तथा दृढतापूर्वक पार करता हुआ पुनः लोहर प्रान्त मे पहुँच गया। इसमे सन्देह नही कि उसे पद-पद पर मृत्यु का सामना करना पडा था तथा उसे कुछ दिन और जीवित रहना था, इसीलिए वह बच गया था। लोहर मे आते ही उसने अपने जीवन के सभी उद्देश्यो को भुला दिया और केवल काश्मीर पर विजय प्राप्त करने की ही योजना पर विशेष रूप से मनन करने लगा। राजा सुस्सल के भाग जाने पर गर्गचन्द्र के क्रोध की मात्रा अपनी सीमा को पार कर गई। उसके हृदय मे शत्रुता के भाव प्रबल हो उठे। उसने तुरन्त राजा सुस्सल के धात्रेय भ्राता हिताहित को बन्दी बना लिया और उसके हाथ-पैरो को एक साथ बांधकर द्वारसेतु नामक स्थान से वितस्ता नदी मे प्रवाहित कर दिया। हिताहित का एक सेवक था। उसका नाम क्षेम था। जिस समय उसने अपने स्वामी का फेंका जाना देख लिया, उस समय वह भी तुरन्त वितस्ता नदी मे आत्म-समर्पण करने को तैयार हो गया और सब के देखते ही देखते पुल के ऊपर से नदी मे कूद पडा। इस प्रकार नदी के प्रवाह मे गिरने पर भी उसने उच्च पद प्राप्त कर लिया।

इन समस्त घटनाओ के बाद गर्गचन्द्र ने सल्हण को राजसिंहासन का अधिकारी बना दिया और उसके द्वारा किये गये उपकारो के बदले मे सल्हण ने भी उसे राज्य-सम्बन्धी विशेष अधिकार प्रदान कर दिये। यह स्पष्ट है कि गर्गचन्द्र ने ही सल्हण के विरोधियो को नष्ट किया था तथा राजमुकुट भी दे दिया था। उसके अतिरिक्त न तो सल्हण का कोई मंत्री ही था और न उसमे वीरता ही थी, इसीलिए उसका मन इतना भ्रान्त हो गया था कि संसार की समस्त वस्तुएँ उसके सामने चक्कर खाती-सी दिखाई पडती थी। न तो उसमे राजनीति का ज्ञान था और न उसमे राजोचित शूरता ही थी, न चतुरता थी और न सीधापन ही था। न वह दान देने मे उदार था और न धन अपहरण करने का ही लोभी था। ऐसा वह राजा था। उसके शासन-काल मे लुटेरे दिन-दहाडे राजभवन की सीमा के भीतर ही लोगो को लूट लेते थे। ऐसी दशा मे राह चलने वाले लोगों की दशा के सम्बन्ध मे कहा ही क्या जा सकता है?

काश्मीर के जिस राजसिंहासन पर बैठकर पगुरानी दिद्दा ने स्त्री होने पर भी अधिक दिनो तक वीरोचित भावनाओं के साथ जनता का शासन किया था उसी काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठकर हृष्ट-पुष्ट राजा सल्हण पुरुष होते हुए भी, भय से विचलित होकर धीरता खो बैठा था। भ्रष्टाचार के सम्बन्ध मे भी कहाँ तक वर्णन किया जाय? जिस स्त्री के साथ राज-सल्हण आज सम्भोग करता था, दूसरे दिन उसी स्त्री के साथ उसका भाई लोठन सम्भोग किया करता था। इस प्रकार वे दोनो राज्याधिकार के सुख को समानता के साथ भोग किया करते थे। ऐसे राजा के शासन-काल मे न तो मनुष्य के चरित्र का महत्त्व रह गया था और न सेवको की कर्त्तव्यशीलता की ही प्रशंसा रह गई थी। राजा स्वयं भ्रष्ट और ज्ञानशून्य था, इसलिए वह

यद्यपि सुस्सल ने गर्गचन्द्र के साथ संधि कर ली थी तथापि वह उस पर विश्वास नहीं करता था और उचित समय की प्रतीक्षा मे दिन बिताने लगा था। ऐसे ही समय में उसने काश्मीर की ओर दृष्टिपात किया और तुरन्त सज्जपाल को अग्रदूत बनाकर भेज दिया। उसी समय राजा सल्हण ने लक्कक को द्वाराधिकारी बनाकर पर्याप्त साधनो के साथ काश्मीर से भेजा था। वह मार्ग के अनेक सकटो को पार करता हुआ किसी प्रकार वराहमूल नामक स्थान तक पहुँच पाया था कि इतने मे ही उसके द्वारा किये गये अपराधो का स्मरण कर गर्गचन्द्र ने अपने अश्वारोही सैनिको के साथ पीछे से आक्रमण कर दिया तथा उसके साथ ही साथ वराहमूल नगर को भी लूट लिया।

उस भयानक लूटमार के स्थल से लक्कक भाग गया और उसके सैनिक समरागण मे युद्ध करते-करते नश्वर शरीर का त्याग कर पृथ्वी से दूर होते गये तथा दिव्य शरीर धारण कर अप्सराओ के साथ विहार करने लगे। जिस समय नायक अदृश्य हो गया उस समय जिस प्रकार बीच की बडी मोती गिर जाने से हार की समस्त मोतियाँ पृथ्वी पर बिखर जाती है उसी प्रकार उप्प, छुड्ड आदि जितने सद्वश मे उत्पन्न होने वाले वीर पुरुष थे, सभी युद्ध करते-करते पृथ्वी पर छा गये। जब लक्कक का कोई भी सहायक न रहा तब उसने सज्जपाल की शरण ले ली और अभयदान पा जाने पर राजा सुस्सल के पक्ष को भी ग्रहण कर लिया।

जब शत्रुओ पर आक्रमण करने के लिए सज्जपाल चला गया था तब अपने पक्ष के नागरिको और डामरो के अनुरोध से राजा सुस्सल भी चल पड़ा था और चलते-चलते समीप आ गया था। "मैं राजा सुस्सल को आपके साथ सन्धि करने के लिए बाध्य कर लूंगा।" इस प्रकार राजा सल्हण से कह कर सहेलक भी उससे पक्ष मे आ मिला था। जिस प्रकार चातक बादलो के अभ्युदय की प्रतीक्षा किया करते हैं उसी प्रकार समस्त नागरिक राजा उच्चल के लघु भ्राता राजा सुस्सल के अभ्युदय की कामना कर रहे थे, इसीलिए केवल सल्हण को छोडकर सभी ने उसके पक्ष को ग्रहण कर लिया था।

इसके बाद गर्गचन्द्र की धर्मपत्नी छुड्डा अपनी दो पुत्रियो के साथ उसके सामने आ पहुँची और विवाह कर देने के लिए प्रस्तुत हो गई। उन दोनो में से एक का नाम राजलक्ष्मी था। उसे राजा ने अपनी पत्नी बनाना स्वीकार कर लिया। दूसरी का नाम गुणलेखा था। उसे उसने अपनी पुत्रवधू बनाना निश्चित किया।

जिस समय क्रमश अग्रसर होता हुआ सज्जपाल बढता जा रहा था उस समय सल्हण और उसका छोटा भाई भागकर राजभवन मे आश्रय लेने का प्रयत्न कर रहे थे। अन्त मे सज्जपाल ने उन दोनो को घेर लिया। इतने मे ही राजभवन के सिंहद्वार पर राजा सुस्सल भी पहुँच गया। ऐसे ही समय मे उसके विपक्षी के अनुचरो मे से किसी एक ने उसके देखते ही देखते एक द्वार को गिरा दिया, किन्तु वह उससे घायल होने से बच गया जिससे कि शत्रुओ का मनोरथ सिद्ध न हो सका। जिस समय शत्रु अपने सैनिको के साथ भीतर से बन्द किये गये राजभवन मे छिपकर अपने प्राणो की रक्षा कर रहा था उस समय राजा सुस्सल के सैनिक यह भय करने लगे थे कि कही से गर्गचन्द्र न आक्रमण कर दे। यद्यपि गर्गचन्द ने अपनी दो पुत्रियो का विवाह का सम्बन्ध स्थापित कर लिया था तथापि राजा सुस्सल के सैनिक उस पर विश्वास नही करते थे। उस स्थान पर खड़े रहना आवश्यक था, इसीलिए वे अब उस स्थान पर खड़े थे किन्तु पत्ते के हिलते ही वे भय से काँपने लगते थे।

सारा दिन यो ही बीत गया। राजा सुस्सल के सैनिक भय से व्याकुल होने पर भी खडे ही रह गये। राजभवन मे प्रवेश करने का मार्ग नही मिल रहा था। यद्यपि सैनिको मे से कुछ ने आग लगाकर राजभवन को जला देना निश्चय कर लिया था तथापि पारिवारिक स्नेह के प्रभाव से प्रभावित होकर राजा सुस्सल ने उस समय वैसा नही करने दिया था। जब सूर्य के डूबने का समय आ गया तब पत्थर फेंक-फेंककर सज्जपाल ने खिडकियो को तोडना आरम्भ कर दिया और अन्त मे अधिक प्रयत्न करने पर एक खिड़की तोड़कर राजभवन के भीतर प्रवेश कर गया। वहाँ के प्रागण मे जितने भी मनुष्य थे उन सब पर उसने प्रवेश करते ही आक्रमण कर दिया। लक्कक नामक पैदल सैनिक ने भी उसका अनुगमन किया और यह सोचकर कि जिस प्रकार अग्नि मे पतिगे जल कर नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार शत्रुओ के दल मे प्रवेश करने वाला सज्जपाल भी नष्ट हो जायगा।

जिस प्रकार सिन्धु प्रान्त मे उत्पन्न होने वाले घोडे के लिए प्रार्थी होने वाले अर्जुन का अनुगमन वायु के पुत्र भीमसेन और शिनि के पुत्र सात्यकि ने किया था उसी प्रकार दरदो के आक्रमण करने पर तथा काष्ठवाट के भयानक युद्ध मे वीरता दिखाने वाला और उसी का ही प्रतिबिम्बस्वरूप वह और मठाधिकारी केशव उसके पीछे-पीछे राजभवन मे गया था और मण्डप से निकल कर जब उन्होने बडी कठिनाई से प्रागण के प्रवेश-द्वार को खोला था तब राजा सुस्सल भी वहाँ पहुँच गया था। उस समय उभय पक्ष की सेनाओ मे भयानक युद्ध होने लगा था और असख्य सैनिक वीरगति प्राप्त कर स्वर्गलोक सिधारने लगे थे। पतगग्राम का रहने वाला अज्जक नामक ब्राह्मण जो राजा सल्हण का मत्री था, युद्ध करते-करते स्वर्ग-की ललनाओ के सभोग का अधिकारी हो गया। राजा सल्हण के अनुग्रह से गजाधिकारी का पद प्राप्त करने वाला कायस्थ रुद्र भी युद्धभूमि मे अपना शरीर त्याग कर धन्य हो गया।

जिस प्रकार सन्ध्या के समय बसेरा लेने वाले पक्षियो के चहचहाने से वृक्ष शब्द-पूरित हो जाता है और एक ही पत्थर के फेंकने से उन पक्षियो के उड जाने पर शान्त हो जाता है, उसी प्रकार वह राजभवन का प्रागण जो कि युद्ध होने के कारण अस्त्र-शस्त्रो की झनझनाहट से प्रतिध्वनित हो रहा था, वह घोडे पर सवार राजा सुस्सल के एक ही बार सिंहनाद करने से चित्रवत् शान्त हो गया। उसने अभी राजसिंहासन पर आरोहण भी न किया था और ज्यो का त्यो राजभवन के प्रागण मे खडा रहकर सिंहनाद भर ही किया था कि इतने मे परमोल्लास के साथ सभी ओर से "राजा सुस्सल की जय" इस प्रकार के शब्द सुनाई पडने लगे और विजय के वाद्य भी बजने लगे।

मल्लराज के वश मे वैसी अपमानजनक स्थिति मे कोई नही पडा था जैसी अपमान-जनक स्थिति मे सल्हण और लोठन पड़ चुके थे। राजभवन के प्रागण मे वे दोनो ही कवच धारण किये हुए अपने-अपने घोडे पर सवार उपस्थित थे। सुस्सल ने उसी दशा मे उन दोनो का आलिगन किया और कहा—"तुम दोनो ही अभी बच्चे हो। तलवार ग्रहण करने के योग्य नही हो।" ऐसा कहकर उसने उन दोनो को तलवार त्याग देने के लिए बाध्य कर दिया।

इसके बाद प्रहरियो द्वारा सुरक्षित मण्डप मे उन दोनो को ले जाने का आदेश देकर राज्याधिकार प्राप्त करने वाला सुस्सल राजसभा मे प्रवेश कर गया। इस प्रकार तीन दिन कम चार महीने तक राज्य करने के बाद सल्हण लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ अट्ठासी के वैशाख महीने के शुक्ल पक्ष की तृतीया को बन्दी बना लिया गया।

जितने भी कार्य करता था, वे सभी विचारशील मनुष्यो के निकट उपहास के योग्य हो जाते थे।

उसने अपने भाई लोठन के श्वसुर ऊजसूह को द्वाराधिकारी बना दिया था। ऊजसूह तो तपस्वियो की गोष्ठियो मे शोभा पाने योग्य था और किसी परम पराक्रमशाली व्यक्ति को द्वाराधिकारी बनाना चाहिए था। किन्तु, बुद्धिहीन राजा ऐसा कब कर सकता था। जब ऊजसूह राजसभा मे आता तब कहता "मैं अपनी मत्र-सिद्धि के प्रभाव से सुस्सल के कारण उत्पन्न होने वाले समस्त सकटो से राजा सल्हण की रक्षा कर लूंगा। ज्यो ही मैं लक्षवार अपने मत्र को जपूंगा त्यो ही आक्रमण करने के लिए आया हुआ सुस्सल तुरत नष्ट हो जायगा।" इस प्रकार की अनेक बातें कह कर वह राजा सल्हण और उसके कर्मचारियो को प्रसन्न किया करता था तथा अपने प्रति उन सबो के हृदय मे अगाध श्रद्धा उत्पन्न करने का प्रयत्न कर अपने जीवन को धन्य समझने लगता था।

गर्गचन्द्र के सम्पर्क से राजा सल्हण बडा ही कपट स्वभाव का हो गया था। उसने उसके कहने पर नीलाश्व के डामर बिम्बा को पकड लिया था। वह (गर्गचन्द्र) उस (बिम्बा) को बडी घृणापूर्ण दृष्टि से देखा करता था, इसीलिए उसके आदेश से ही उसने (राजा सल्हण ने) उसके (बिम्बा के) शरीर से एक पत्थर बँधवा कर उसे वितस्ता नदी मे बहा दिया था। राजा बनाने वाला गर्गचन्द्र अपने विरोधियो का सर्वनाश करने पर तुल गया था। अपने इस कार्य को सफल बनाने के लिए उसने विषमय भोजन दे-देकर असख्य हालाह डामरो को मार डाला था। सल्हण तो कहने भर के लिए राजा था। वास्तविक राजा तो गर्गचन्द्र ही था, इसीलिए राज्य-सम्बन्धी बाहरी और भीतरी सभी प्रकार के छोटे-बड़े कार्य गर्गचन्द्र के ही आदेश से हुआ करते थे। इतना ही नही, उस समय लोगो का जीवन-मरण भी गर्गचन्द्र के ही आदेश पर अवलम्बित था।

एक बार जबकि गर्गचन्द्र लहर नामक स्थान से लौटकर राजा सल्हण के समीप आया था तब समस्त नागरिक भय से व्याकुल होकर उसके विरुद्ध उत्तेजित हो उठे थे। कारण यह था कि समस्त नगर मे यह बात फैल गई थी कि गर्गचन्द्र का क्रोध बढ चुका है। आते ही वह राजा के समस्त कर्मचारियो को नौकाओ के ऊपर शूली दे देगा। इस प्रचार के कारण दो-तीन दिनो तक लोग ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के समान भयवश काँपते रहे और स्त्रियो के गर्भपात तक हो गये। जनसाधारण को इस प्रकार भयभीत देखकर तिलकसिंह आदि वीर पुरुष उत्तेजित से उठे और फिर उन सबो ने राजा सल्हण से आज्ञा लिये बिना ही गर्गचन्द्र के निवास पर अचानक आक्रमण कर दिया। उन सबो के इस प्रकार आक्रमण करते ही उत्तेजित होकर जनता भी उनके साथ हो गई और भिन्न-भिन्न प्रकार अस्त्र-शस्त्रो को लेकर गर्गचन्द्र के भवन की ओर दौड पडी। किन्तु, इतने पर भी वह किसी भी प्रकार विचलित नही हुआ। उसके भवन की समीप वाली गली मे दिल्ह भट्टारक और लक्कका आदि निर्लज्जतापूर्वक घोडे पर सवार झूमते हुए भी देखे गये।

उस समय राजा सल्हण ने गर्गचन्द्र के भवन पर आक्रमण करने वाले लोगो को रोकने का भी प्रयत्न नही किया था, प्रत्युत् उसने उसके विपरीत आचरण करना आरम्भ कर दिया था। जिस समय उसे यह ज्ञात हुआ कि आक्रमणकारियो का समूह शिथिल पडता जा रहा है उस समय उसने उन सबको उत्साहित और उत्तेजित करने के लिए अपने भाई लोठन को भी भेज दिया था। गर्गचन्द्र के सैनिक पहिले से ही मार्ग रोके हुए खडे थे, इसलिए लोठन न तो गर्गचन्द्र

के भवन को घेर सका और न आग ही लगा सका। उस समय केवल लोठिकामठ के मठाधिकारी केशव ने ही थोड़ा साहसिक कार्य किया था। वह तीर चलाने मे कुशल था, इसलिए उसने तीरो की ऐसी वर्षा की थी कि गर्गचन्द्र के समस्त सैनिक व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे थे।

दिन भर इसी प्रकार का कार्यक्रम चलता रहा। धीरे-धीरे सन्ध्या का समय आ पहुँचा। जब सायंकालीन प्रकाश के समान समस्त राजपुरुष चले गये तब अपने अनुचरो के साथ गर्गचन्द्र घोड़े पर सवार होकर बाहर निकला और बिना किसी प्रकार की रोक-टोक के निर्विघ्न लहर पहुँच गया। फिर वहाँ से सीधा त्रिपुरेश्वर चला गया। वहाँ ऊजसूह अस्वस्थ अवस्था मे पडा हुआ था। उसने उसे उसी अवस्था मे बन्दी बना लिया और अपने साथ ले आया। दूसरे दिन उसने ऊजसूह को बन्धन से मुक्त कर दिया और कहा "इस तपस्वी मनुष्य को बन्दी बनाना ही व्यर्थ है।" यदि गर्गचन्द्र चाहता तो सल्हण को भी राजसिंहासन से उतार सकता था। उस समय वह सुस्सल को भी अपना परम शत्रु समझता था। सभव है कि उसी के भय से उसने सल्हण को राज्याधिकार से च्युत् न किया हो।

कुछ भी हो, उसके लहर से लौटकर आते ही समस्त नगर-निवासी भय से व्याकुल हो उठे थे, इसीलिए वे अपने-अपने घरो को नित्य बन्द रखने लगे थे। राजा सल्हण भी अधिक व्याकुल हो उठा था इसीलिए वह गर्गचन्द्र को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगा था। उस लहर मे महात्मा सहेलक उसके दूत के रूप मे कार्य कर ही रहा था।

किसी न किसी प्रकार से उसने गर्गचन्द्र को इसलिए तैयार कर लिया कि वह राजा के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दे। किन्तु, ज्योही गर्गचन्द्र के अनुचरो ने यह वृत्तान्त सुना त्योही घोर विरोध करते हुए कहा कि जो राजा केवल छाया के समान अथवा भूत के ही समान है। उसे पुत्री नही दी जायगी और न उसके साथ किसी भी प्रकार का समझौता ही किया जायगा। फिर उसने राजा सुस्सल के साथ संधि कर ली और बार-बार कहे जाने पर भी उसने राजा सल्हण के साथ सम्बन्ध स्थापित नही किया।

जिस समय समस्त राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था, उसी समय उसके गुप्तचरो ने सड्ढ, हसरथ और नोनरथ को पकड कर राजा के सामने उपस्थित कर दिया था। राजा ने भी उन सबो को तुरन्त यमलोक पहुँचा दिया था। जब तक उन सबो के प्राण शरीर से नही निकल गये थे तब तक जलते हुए लोहे के फलो से, सूइयो से तथा इसी प्रकार के अन्य निर्मम प्रयोगो से उन्हें भयानक कष्ट दिया गया था। निस्सन्देह वनो मे छिप-छिपकर जीवन-निर्वाह करने वाली भीमसेन की पत्नी मल्ला को अग्नि मे प्रवेश कर पति का अनुगमन करने को आज्ञा देकर राजा ने उचित कार्य किया था। जिस प्रकार दिल्ह भट्टारक राजा से भयभीत रहा करता था उसी प्रकार राजा भी उससे सशंकित रहता था। इसीलिये समय पाकर राजा ने उसे विष देकर मृत्यु-लोक पहुँचा दिया था। दिल्ह भट्टारक न तो राजपुरुषो मे था और न अधिक भयानक ही था जिससे कि उस पापी राजा ने उस प्रकार गुप्त रीति से उसे मार डालना उचित समझा था। राजा के इस अमानुषिक कार्य की घोर निन्दा करती हुई स्वाभिमानी स्त्रियो के समान दिल्ह भट्टारक की बहिन अग्नि मे प्रवेश कर गई। यद्यपि राजा सल्हण का राज्य-काल थोडे ही समय के लिए था तथापि आतंको के कारण वह उसी प्रकार असहनीय हो गया जिस प्रकार लम्बी रात्रि के लम्बे दुःस्वप्न हुआ करते हैं।

३ राजा सुस्सल की कथा

जिस प्रकार गगन-मण्डल पर सूर्य के चढते ही समुद्र शान्त हो जाता है उसी प्रकार राजा सुस्सल के राजसिंहासन पर आरोहण करते ही जनता का समस्त आन्दोलन शान्त हो गया। विद्रोह की आशका सशकित होने के कारण वह अपने पास निरन्तर नगी तलवार रखा करता था, इसीलिए वह शिकारियो के सम्मुख मुख फैलाये रहने वाले सिंह के समान भयानक प्रतीत होता था। नीति के सम्बन्ध मे उसकी निष्ठा इतनी दृढ थी कि जिन लोगो ने उसके भाई के साथ विश्वासघात किया था, उनके परिवार वालो की तलाशी लेते समय उसने छोटे-छोटे बच्चो को भी नही छोडा था। उसने जनता के द्वारा की गई दुर्जनता को भली-भाँति समझ लिया था, इसलिए कार्य-साधन के अवसर को छोडकर अन्य समय मे किसी के साथ भी मृदुता का व्यवहार नही किया था। था तो वह बडे ही कोमल स्वभाव का किन्तु ऊपर से बड़ा ही भयानक प्रतीत होता था और उसी प्रकार जिस प्रकार जनता का दमन करने के लिए दीवाल पर सर्प की आकृति बना दी गई हो। उसके समान समय का ज्ञाता, उचित अवसरो पर त्याग करने वाला, प्रगल्भ, प्रतिभा-सम्पन्न, सगीतज्ञ और दूरदर्शी कोई भी नही हुआ था।

यद्यपि उसका चरित्र उसके बडे भाई के ही समान था तथापि कुछ अशो मे अधिकता थी, कुछ अशो मे न्यूनता थी और कुछ अशो मे समानता थी। यद्यपि देखने मे दोनो का ही क्रोध समान था तथापि व्यवहार मे बडा अन्तर था। बडे भाई का क्रोध पागल कुत्ते के विष के समान था और उसका मक्खी के डक के समान था। वेशभूषा आदि को लेकर वह कभी किसी की निन्दा नही करता था, किन्तु यदि कोई सेवक अपनी सीमा को पार कर उद्धत होने का प्रयत्न करता था तो उसका वह प्रयत्न राजा सुस्सल के लिए असह्य हो जाता था। द्वन्द्व-युद्ध कराकर अभिमानी व्यक्तियो की हत्या कराना उसकी नीति के विरुद्ध था। यदि कभी असावधानता से ऐसा कही हो भी गया तो उसके लिए वह अधिक पश्चाताप किया करता था। भूतपूर्व राजा उच्चल की वाणी की कठोरता से जो असहनीय चिन्ता उत्पन्न हुआ करती थी, वह हिंसा आदि बाधाओ से वर्जित राजा सुस्सल के आत्मीय भाव के कारण तुरन्त दूर हो गई थी।

उसमे धन-विषयक लिप्सा अधिक थी, इसलिए उसने अधिक से अधिक धन सग्रह कर लिया था और दान आदि के अवसरो को सीमा मे बाँध दिया था। वह नवीन निर्माणो और असख्य घोडो को रखना अपने जीवन का प्रिय कार्य समझता था, इसलिए उसके समय मे कारीगर और घोडो के व्यापारी अधिक धनी हो गये थे। जिस समय राज्य मे किसी भी प्रकार की आपत्ति उपस्थित हो जाती थी उसी समय उसे दूर करने के लिए वह अथक परिश्रम किया करता था और आवश्यकतानुसार धन के व्यय मे भी सकुचित नही होता था। इन्द्र द्वादशी के पर्व को मनाते समय वह इतना वस्त्र और पारितोषिक दिया करता था कि अपने से पूर्व राजाओ की धूमधाम को फीका कर देता था।

जिस प्रकार साधारणतया राजा उच्चल सभी सेवको से सरलतापूर्वक मिल कर उनका प्रिय बन जाता था उस प्रकार राजा सुस्सल से मिल सकना असभव हो गया था। राजा उच्चल के समान घोडे की सवारी का व्यसनी दूसरा कोई राजा नही हुआ था और न राजा सुस्सल के ही समान घोडे की सवारी मे मुदक्ष कोई दूसरा राजा हुआ था। अकाल उपस्थित होते ही राजा

उच्चल उसे दूर कर देता था, किन्तु राजा सुस्सल के शासन-काल मे स्वप्न मे भी अकाल के दर्शन नही हुए थे और अधिक कहाँ तक कहा जाय? केवल इतना समझ लेना चाहिए कि त्याग, धन-विषयक निर्लोभ और सुप्रापता (सरलता मे मिल सकना) को छोड कर शेष सभी बातो मे वह अपने बडे भाई से कही अधिक बढ गया था।

उच्चल के जिस पुत्र सहस्रमगल को गर्गचन्द्र राजसिंहासन पर बैठाना चाहता था उसी को क्रुद्ध होकर उसने निर्वासित कर दिया था। जिस समय सहस्रमगल भद्रावकाश नामक स्थान मे ठहरा हुआ था उस समय उसके पुत्र प्रास ने डामरो को स्वर्ण आदि देकर एक नये षड्यन्त्र की रचना की थी। उसी समय गर्गचन्द्र ने भी प्रतिकूल भावो को अपना लिया था और इसलिए कि वह राजा सुस्सल की इच्छा के अनुसार उच्चल के पुत्र का त्याग करना उचित नही समझ रहा था। इसके बाद राजा सुस्सल के भेजे हुए असख्य सैनिको को गर्गचन्द्र ने उसी प्रकार नष्ट कर दिया था जिस प्रकार दावानल घास को जला कर नष्ट कर देता है। देवसरस का निवासी विजय जो कि गर्गचन्द्र का साला था, उसने भी विद्रोह करके राजा के अश्वारोहियो को मार डाला था। यद्यपि यह सब विद्रोह उसके राजसिंहासन पर बैठने के कुछ दिन उपर महीने के बाद ही हुआ था तथापि उस धैर्यवान् राजा का मन तनिक भी विचलित नही हुआ था।

वितस्ता और सिन्धु के संगम पर तथा सुरेश्वरी और अमरेश की पवित्र भूमि के सामने ही गर्गचन्द्र ने राजा के अश्वारोहियो को परास्त किया था। उस भयानक सग्राम मे शृङ्गार तथा कपिल नामक मत्री और कर्ण तथा शूद्रक नामक तन्त्रियो के भाई भी मारे गये थे। उस युद्ध मे जितने वीर मारे गये थे सभी कुशल योद्धा थे, इसलिए मृतको मे से यह निर्णय कर सकना कठिन हो गया था कि इनमें से कौन अधिक श्रेष्ठ है? विजयेश्वर मे विजय ने राजा के ममेरे भाई कम्पनेश हर्षमित्र को पराजित कर दिया था। राजन्य के वंश मे उत्पन्न मगलराज का पुत्र तिल्ह और त्रिव्वाकर आदि अन्य तंत्री भी उस युद्ध मे मारे गये थे।

राजा की सेना मे जितने भी वीर पुरुष थे उनमे से सज्जपाल ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित हुआ था। यद्यपि उसके साथ बहुत ही कम सेना थी तथापि असख्य अश्वारोहियो के कारण बलशाली होता हुआ भी गर्गचन्द्र उसे पराजित नही कर सका था। इसके बाद राजा ने लक्कक आदि को विजय-क्षेत्र मे भेजकर भगी हुई सेना को वही रोक लिया और फिर स्वय दृढचित्त होकर गर्गचन्द्र को पराजित करने के लिए चल पडा। चलते-चलते वह उस स्थान पर पहुँच गया जिस स्थान पर गर्गचन्द्र द्वारा मारे गए सैनिक पडे हुए थे। दूसरे ही दिन उसने असख्य चिताएँ तैयार कराई और उन सब का दाह-सस्कार किया।

राजा सुस्सल ने गर्गचन्द्र को इतना पीडित किया कि उसे बाध्य हो अपने भवन मे आग लगानी पडी और फिर फलाह की ओर भाग कर आश्रय ग्रहण करना पडा। फिर उसने रत्नवर्ष नामक पहाडी दुर्ग मे अपने को छिपाने का प्रयत्न किया। वहाँ पहुँचते-पहुँचते न तो उसके पास घोडा रह गया था और न कोई सेवक ही साथ था। राजा सुस्सल ने दूर से ही उसे घेर लिया। पीछे-पीछे सज्जपाल भी वहाँ पहुँच गया और उसने उसे पूर्ण रूप से अपने घेरे मे ले लिया। तब उसने राजा सुस्सल के चरणो मे आत्म-समर्पण कर राजा उच्चल के पुत्र को दे दिया। कर्णकोष्ठ का पुत्र मल्लकोष्ठक गर्गचन्द्र का शत्रु था। वह समीप आ गया था तब राजा ने उसे भी दबा दिया था, इसलिए गर्गचन्द्र को राजा सुस्सल पर अधिक विश्वास हो गया था।

इसके बाद विजय आदि के नष्ट होने पर जब समस्त विप्लव शान्त हो गया तब गर्गचन्द्र के आत्म-समर्पण को स्वीकार कर राजा सुस्सल नगर मे चला आया। फिर वह लोहर प्रान्त मे गया। वहाँ उसने सल्हण और लोठन को बन्दी बना लिया तथा कल्ह और सोमपाल आदि द्वारा सेवित होने के कारण अधिक प्रसन्न हुआ। काश्मीर लौट आने पर उसने गर्गचन्द्र को अधिक से अधिक महत्त्वशाली इसलिए बना दिया जिससे की वह उसकी विशेष सेवा कर सके। जिस समय वह अपने पूर्ण प्रताप के कारण सूर्य के समान प्रखर होने लगा था उस समय उसकी पटरानी तथा उसका राजकुमार जयसिंह अपनी दयालुता के कारण वृक्षो की शीतल छाया और घने वनो के शीतल पवन के समान सुखदायक होने लगे थे।

पराजित हो जाने के बाद भी देवसरस के निवासी वृहट्टिक्क यथा सूक्ष्मटिक्क नामक डामर और विजय के वंशज राजा सुस्सल के विरुद्ध विप्लव करने योग्य समय के प्रतीक्षा करने लगे थे, अतएव जिस समय राजा सुस्सल लोकपुण्य नामक स्थान पर आया था उस समय रोते-पीटते हुए अनुगामियो के साथ वे उसके सामने पहुँच गये थे और सनाथ किये जाने की प्रार्थना करने लगे थे। यह जानकर कि विजय गर्गचन्द्र का सम्बन्धी है, इसलिए राजा ने उसके प्रति दयालुता का वर्ताव किया था, किन्तु सदाचार का परित्याग कर उसने उन दोनो डामरो को बेतो से पिटवा दिया था। इस पर वे और उनके अभिमानी अनुगामी म्यान से अपनी-अपनी तलवारे निकाल कर राजा के सबल सैनिको पर टूट पड़े थे। ऐसे ही समय मे भोगदेव नामक श्वपाक ने अपनी कृपाण से राजा सुस्सल पर आक्रमण कर दिया था और उसके पीछे से धीर गज्जक ने भी अपनी तलवार चला दी थी।

राजा की आयु दीर्घकालीन थी, इसलिए वह उस समय के आक्रमण से बच गया था और उसके आक्रमणकारियो को ही मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा था। बाण के वंश मे उत्पन्न होने वाला शृङ्गारसीह जो कि राजा सुस्सल का सुदक्ष अश्वाधिकारी था वह आक्रमणकारियो से राजा की रक्षा करते समय वही मार डाला गया था। फिर वृहट्टिक्क तथा भोगदेव आदि को राजा के सैनिको ने ही मार डाला था और आगामी विप्लव का कारणस्वरूप सूक्ष्मटिक्क भागकर अपना जीवन बचा ले गया था। गज्जक तथा विद्रोह से सम्बन्ध रखने वाले अन्य व्यक्ति तुरत सूली पर चढ़ा दिये गये थे। इस प्रकार गर्गचन्द्रके प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार करने के कारण राजा सुस्सल का जीवन संकट मे फँस गया था।

जब तक समय नही आता तब तक वज्रपात से भी मनुष्य की मृत्यु नही होती और समय आ जाने पर साधारण पुष्प ही उसकी मृत्यु का कारण बन सकता है। जो मोतियाँ बडवानल धारण करने वाले समुद्र के वक्ष में श्रीहीन नही होती वही युवती स्त्रियो के वक्ष मे उनके यौवन के ताप से ही श्रीहीन हो जाती हैं।

इन सब घटनाओं के बाद राजा सुस्सल को दूसरो का गौरव असह्य होने लगा था। इसलिए पिछली सेवाओ पर कुछ भी विचार न करते हुए उसने सज्जपाल आदि को राज्य से निर्वासित कर दिया था। काक-वंशवालो का सम्बन्धी जिसका नाम यशोराज था, जब वह भी राजा के द्वारा निर्वासित कर दिया गया था तब उसने सहस्रमगल का पक्ष ग्रहण कर लिया था। सहस्रमगल समृद्धशाली था। वह राजा सुस्सल का विरोध करना चाहता था, इसलिए उसने उसको और अन्य निर्वासित व्यक्तियो को अपने यहाँ आश्रय देकर अपनी प्रतिष्ठा को विशेष रूप

से बढ़ा लिया था। इसके बाद उसने विरोध करने के लिए प्रस्थान भी कर दिया था। उसका पुत्र प्रास कान्द के मार्ग से काश्मीर मे प्रवेश करने के लिए बढ़ चला था, किन्तु ज्यो ही उसे यह ज्ञात हुआ कि राजा सुस्सल के सैनिको ने यशोराज को घायल कर दिया है त्यो ही वह भयभीत होकर वही से लौट गया।

इसी प्रकार अन्य सेवक, जिन्हे राजा सुस्सल ने राज्य से निकाल दिया था, सहस्रमंगल से आ मिले थे, इसलिए उसकी विशेष ख्याति होने लगी थी। जिस समय यह नया उपद्रव तैयार होने लगा था उस समय तीन पर्वतीय राजा अर्थात् चम्पा के जासट, वल्लापुर के स्वामी वज्रधर और वर्तुल के अधीश्वर राजा सहजपाल तथा इन के साथ ही साथ त्रिगर्त्त और वल्लापुर के युवराज जो कि वल्ह और आनन्दराज के नाम से प्रसिद्ध थे, ये पाँचो किसी एक स्थान मे मिल चुके थे और परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होकर यात्रा करते हुए कुरुक्षेत्र पहुँच गये थे। वहाँ उन्हें वही भिक्षाचर मिल गया जिसे आसमती ने नरवर्मा के यहाँ से हटा लिया था और मार्ग व्यय के लिए स्वर्ण भी दे दिया था।

पारिवारिक सम्पर्क तथा अन्य राजाओ द्वारा सम्मानित होने के कारण जासट ने भिक्षाचर का विशेष रूप से सत्कार किया और उसे आग्रहपूर्वक वल्लापुर ले आया। जैसे ही वह वहाँ पहुँचा वैसे ही विम्ब आदि निर्वासित व्यक्तियो ने उसे अपना कर उसके महत्व को बढ़ा दिया। परिणाम यह हुआ कि सहस्रमंगल की प्रतिष्ठा न्यून हो गई। इतना ही नही, यह कह कर कि राजा हर्षदेव का पौत्र है और इसके रहते हुए राजसिंहासन पर बैठने वाले दूसरे व्यक्ति होते ही कौन हैं अथवा दूसरे व्यक्तियो का राज्य के सिंहासन पर बैठने का अधिकार ही क्या है लोग सहस्रमंगल का पक्ष त्याग कर उसके पक्ष को ग्रहण करने लगे। राजा सुस्सल द्वारा निर्वाचित राजपुत्र दर्यक ने उसके सभी उपकारो को भुलाकर पारिवारिक स्नेह-बन्धन के कारण भिक्षाचर के पक्ष को स्वीकार कर लिया। उसका पिता कुमारपाल भिक्षाचर के पिता का मामा था। उसके अभाव मे राजा सुस्सल ने उसे अपने पुत्र के ही समान पालन किया था, किन्तु उसने भिक्षाचर के पक्ष को ग्रहण करते समय उन सभी बातो को भुला दिया था।

इसके बाद युवराज वल्ह और जासट के आग्रह करने पर वल्लापुर के स्वामी पद्मक ने भिक्षाचर के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया और उसी प्रान्त के गयपाल नामक ठक्कुर ने अपने भूपालो को एकत्र कर उसे उसके पितामह के पद पर बैठने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। इन समस्त वृत्तान्तो को सुनते ही राजा सुस्सल व्याकुल हो उठा। फिर वह शक्तिशाली गयपाल विश्वास-घातकता के साथ उसके सम्बन्धियो द्वारा मार डाला गया। उन सबो से युद्ध करने के लिए ज्यो ही पद्मक आगे बढ़ा त्यो ही भिक्षाचर के पक्ष का प्रधान योद्धा दर्यक भी युद्धभूमि मे मृत्यु की शरण में चला गया। इन समस्त वीर पुरुषो के मारे जाने पर भिक्षाचर को उसी प्रकार असहाय अवस्था मे पड जाना पडा जिस प्रकार अनावृष्टि के समय वाधा-प्राप्त मेघ असहाय अवस्था मे पड जाते हैं।

जब आसमती परलोक सिधार गई और आक्रमण करने के लिए उसके द्वारा दिया गया धन समाप्त हो गया तब उसका श्वसुर भी उसके प्रति उदासीनता दिखाने लगा था। ऐसी दशा में उसने केवल अन्न और वस्त्र पाने के लोभ मे ही जासट के यहाँ चार-पाँच वर्ष बिता दिये थे। इसके बाद चन्द्रभागा नदी के तट पर रहने वाला देवपाल ठक्कुर उसके साथ अपनी कन्या बप्पिका क

विवाह कर उसे अपने यहाँ ले गया था। कुछ दिनो तक वहाँ सुख-शान्ति के साथ रहने पर उसके हृदय का समस्त भय जाता रहा। साथ ही साथ उसकी दीनता और बालसुलभ चपलता भी दूर हो गई।

इतने ही समय के अन्तर मे महस्रमंगल का पुत्र प्रास उन्मत्त के समान इधर-उधर भ्रमण करता हुआ तथा राजा सुस्सल की उत्तेजना को बढाता हुआ सिद्धपथ के मार्ग से काश्मीर मे प्रवेश कर विप्लव मचाने का विचार करने लगा था, किन्तु उसके पापपरायण सेवको ने उसे पकड कर राजा सुस्सल को अर्पण कर दिया था। ऐसे सकट-काल मे सज्जपाल ने अपना उत्तम आदर्श प्रकट कर दिया था। यद्यपि उसे अधिक आघात पहुँचा था तथापि द्रोह से विमुख होकर उसने देशान्तर की ओर प्रस्थान कर दिया था। ऐसे साहसी और आदर्श पुरुष की प्रशसा कहाँ तक की जाय ? उसके असीम साहस के कारण देशान्तर मे यशोराज भी अधिक प्रसिद्ध हो गया था। इससे अधिक आश्चर्य की और कौन-सी बात हो सकती है ?

फिर राजा सुस्सल ने महात्मा सहेल तथा अन्य प्रधान कर्मचारियो को हटा कर गौरक नामक कायस्थ को प्रधान मत्री बनाया। वह विजयेश्वर के एक तपस्वी का सम्बन्धी था और जिस समय राजा सुस्सल लोहर मे था उस समय अपनी सेवाओ द्वारा उसने उसकी अनुकूलता प्राप्त कर ली थी। इसीलिए प्राचीन कर्मचारियो को हटाकर राजा ने उसे क्रमश: उन्नत करते हुए प्रधान मत्री बनाया था। इस पद को प्राप्त करते ही उसने शासन-व्यवस्था को बदल दिया था। राज्य के भिन्न-भिन्न कर्मस्थानो मे कार्य करने वाले कर्मचारियो की वृत्ति को बन्द कर उसने राज्य के कोश को भरना आरम्भ कर दिया था। जिस प्रकार मिठास के कारण घातक विष नही दिखाई पडता है उसी प्रकार उसके मृदु व्यवहार के कारण उसकी दुष्टता लोगो की दृष्टि मे नही आई थी।

जिस प्रकार नवीन हिम मेघो द्वारा जमा किये गये पूर्व के हिम को नष्ट कर देता है उसी प्रकार उसके द्वारा कृपणता के साथ सचित किया गया धन राजकोष मे पूर्वसचित धन को नष्ट करने लगा था। क्योकि जब राजकोष मे कृपणता द्वारा सचित किया धन पहुँच जाता है तब उसका उपभोग शत्रु अथवा लुटेरे ही करते हैं। राजा सुस्सल मे भी लोभ की मात्रा कम न थी। लोभ के कारण ही जितना धन एकत्र होता था उसे लोहर के पहाडी दुर्ग मे भेज देता था।

महोत्पातो के समान गौरक के अधीनस्थ कर्मचारी वट्ट, पजक आदि समस्त पृथिवी को नि सार कर चुके थे। कर्मचारियो के मस्तक पर शिला के समान रहने वाला राजा उच्चल जब मर गया तब से वे सब कर्मचारी जिस प्रकार शिकारी शिकार को पीडित किया करता है उसी प्रकार राजा को पीडित करने लगे थे।

प्रशस्तकलश का भतीजा कनक नामक कायस्थ था। उसने अपने धन का सदुपयोग करने के अविच्छिन्नसत्र (जहाँ पर दिन-रात अन्न का दान किया जाता था) खोल दिया था। देश-देशान्तर के अकाल-पीडित मनुष्य वहाँ आकर अन्न-कष्ट से उद्धार पा जाते थे। इस प्रकार के कार्य से केवल उसी ने पुण्य लाभ किया था। राजा उच्चल की मृत्यु के समय जिन लोगो की सद्भावना की परीक्षा हो चुकी थी उन्ही को उन्मत्त राजा सुस्सल ने कर्मस्थानो मे प्रधान का स्थान प्रदान किया था। उन लोगो मे तिलकसिंह नाम का एक व्यक्ति था। वह द्वाराधिकारी बनाया गया था और उससे काने भाई जनक को राजस्थान अर्थात् प्रधान न्यायाधीश का पद दिया गया था।

राजा सुस्सल के तीक्ष्ण प्रताप के प्रभाव से तिलकसिंह ने द्वाराधिकारी होते हुए भी उरशा के अधिपति पर आक्रमण कर उसे कर देने के लिए उसे बाध्य कर दिया था। फिर काकवशोत्पन्न तिलक कम्पनेश बनाया गया। जिस प्रकार वायु से वृक्ष कांपने लगते हैं उसी प्रकार उसके कम्पनेश होते ही समस्त शत्रु कांपने लगे थे। राजा सुस्सल का प्रताप इसलिए धन्य है कि उसके ग्रामीण सैनिक सज्जक ने भी उसके शत्रु को पराजित कर दिया था। जिसके कारण वह शेड राजस्थान का अधिकारी बनाया गया था। काकवशोत्पन्न अट्टमेलक नाम का सेवक भी मूल्यवान् था। वह इतना बुद्धिमान् था कि जैसे ही उसे राजा के समीप जाने का अधिकार प्राप्त हुआ वैसे ही उसे मन्त्री का पद प्राप्त हो गया था। इस प्रकार कुछ समय तक राजा सुस्सल स्वाभिमान के मद को त्याग कर यथा-योग्य गुणों के अनुसार नये-नये मन्त्रियों को नियुक्त करता रहा। इसके बाद उसने वितस्ता के तट पर अपने, अपनी सास और अपनी पत्नी के नाम से तीन विशाल मन्दिर का निर्माण कराना आरम्भ कर दिया था। किसी समय अग्नि के उत्पात से दिद्दाविहार जल कर नष्ट हो चुका था। उसे भी उस अमित धनदाता ने नवीनता प्रदान कर दी थी।

जब राजा सुस्सल अट्टालिका पुरी गया था तब वहाँ पर कल्ह आदि आप्त पुरुषों ने गर्गचन्द्र का उच्छेद कर देने के लिए आग्रह किया था। उनका कहना था कि शिकार के समय उसने उन सबों का अपमान करते हुए उनमें राजा के प्रति द्वेष उत्पन्न करने का प्रयत्न किया था। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि गर्गचन्द्र उन सबों से अधिक शक्तिसम्पन्न था और उसका उच्छेद उचित नहीं था, फिर भी उन समस्त आप्तजनों के नित्य कान भरने पर राजा सुस्सल के विचार उसके प्रतिकूल हो ही गये। इधर गर्गचन्द्र के एक सेवक ने उसे तुरन्त सावधान कर दिया और किसी एक राजा ने भी कहा कि राजा सुस्सल उसे लोहर में बन्दी बनाना चाहता है। ऐसा सुनते ही वह भी सशंकित हो गया। और अपने पुत्र को साथ लेकर तुरन्त अपनी भूमि में भाग गया। कुछ दिनों के बाद राजा सुस्सल भी प्रस्थान कर अपने देश काश्मीर में पहुँच गया।

जिस समय परस्पर शंका करने के कारण राजा सुस्सल और गर्गचन्द्र में अधिक भेदभाव उत्पन्न होने लगा उस समय षड्यन्त्रकारी दोनों पक्षों से मिल कर उनकी शत्रुता को अधिक बढ़ाने लगे। गर्गचन्द्र का साला विजय राजा सुस्सल का अधिक प्रियपात्र था। फिर भी राजा ने उसे अपने समीप से हट जाने के लिए आदेश कर दिया। जब वह चला गया तब राजा को अधिक पश्चात्ताप होने लगा था। उसी समय उसने जिस गर्ग के शत्रु मल्लकोष्ठक को उसके सामने बन्दी बनाया था, तुरन्त बन्धन से मुक्त कर दिया। इतना ही नहीं, उस क्रुद्ध राजा ने अन्य डामरों के साथ उसका वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसे शक्तिशाली पद प्रदान कर दिया।

फिर जब राजा सुस्सल के अश्वारोही सैनिक गर्गचन्द्र से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े, तब उसने पहिले के ही समान अमरेश्वर नामक स्थान में उन सबों को यमलोक भेज दिया। राजा सुस्सल के पक्ष में जितने भी योद्धा थे उन सबों में शमाला निवासी डामर पृथ्वीहर ने ही अपनी अतुल वीरता के कारण प्रसिद्धि-लाभ किया था। युद्ध में गर्गचन्द्र से पराजित होकर भागते समय द्वाराधिकारी तिलक सिंह ने जैसी शूरता दिखाई थी उसी से वह उपहास का पात्र बन गया था। मृत्यु के मुख में जाते-जाते जो थोड़े से घायल सैनिक बच रहे थे उनके अस्त्र-वस्त्र आदि समर्पण कर देने पर गर्गचन्द्र ने दयालुता के वशीभूत होकर उन्हें छोड़ दिया था। जिस समय युद्ध में मरे हुए सैनिकों के शव जलाये जाने लगे थे, उस समय राजकीय सेना-निवास में चिताओं को गिन सकना भी कठिन कार्य था।

जब राजा सुस्सल अपनी सेना लेकर आया और गर्गचन्द्र का भवन जला दिया गया तब वह लहर छोड़कर घुडावन नामक पर्वत की ओर चला गया। पर्वत की तराई में स्थान-स्थान पर राजा सुस्सल के सैनिक पड़ाव डाले हुए पड़े थे। उसे उन सबों से निरन्तर युद्ध करना पड़ा था। इतना ही नहीं, अचानक आक्रमण कर अनेक रातों तक उसने राजा की सेना को व्याकुल कर रखा था और ऐसे ही एक युद्ध में उसने त्रैलोक्यराज तथा अन्य प्रमुख क्षत्रियों को चिरनिद्रा में सुला दिया था। हिमपात के कारण फाल्गुण का महीना यों ही कष्टप्रद था, उस पर राजा सुस्सल स्वयं उसे कष्ट देना चाहता था। इन दोनों से युद्ध करने वाले उसके सेवक भी इने-गिने ही थे। फिर भी धैर्यवान् गर्गचन्द्र ने अपना साहस नहीं खोया।

राजा सुस्सल के जितने भी सैनिक और योद्धा थे सभी उससे तंग आ चुके थे। केवल काक-वंशोत्पन्न साहसी तिलकसिंह जो कि कम्पनेश के पद पर कार्य कर रहा था वही पर्वत के शिखर पर उसे पराजित कर सका था। उसके द्वारा अधिक पीड़ित होने पर गर्गचन्द्र ने अपनी स्त्री और कन्या को राजा सुस्सल की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए भेज दिया था। उसके आने पर राजा सुस्सल ने भी अपने क्रोध के भावों को छिपाते हुए अनुग्रह का भाव प्रकट कर दिया था। सन्धि स्थापित हो जाने के बाद अपने क्रोध को छिपाये हुए राजा सुस्सल ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया और मल्लकोष्ठ का दमन न करके उसे ऊँचे पद पर नियुक्त कर उसका गौरव बढ़ा दिया। दो-तीन महीने तक गर्गचन्द्र लहर में मल्लकोष्ठ की असहनीय स्पर्धा को सहन करता रहा। उसके लिए उसकी वह स्पर्धा बड़े अपमान का कारण बन चुकी थी फिर भी राजा सुस्सल उसके प्रति उदासीन ही बना रहा।

इतने ही समय में राजा सुस्सल ने गुप्त रूप से उसकी सेना में फूट उत्पन्न कर दी और उसके सेवकों में से कर्ण आदि को अपने पक्ष में मिला लिया। फिर निम्न श्रेणी के सम्बन्धियों के स्थान पर आसन पाने के कारण गर्गचन्द्र बड़ा दुःखी हुआ और उन्हीं सेवकों के परामर्श से पत्नी-पुत्र-समेत राजा सुस्सल के समीप चला आया। किसी समय जबकि राजा सुस्सल स्नान करने के लिए स्नान-द्रोणी के पास खड़ा था तब उसने समीप खड़े हुए गर्गचन्द्र को फटकारते हुए तलवार अर्पण कर देने के लिए विवश कर दिया था।

जब अपमान के समय में पौरुष-गर्वित गर्गचन्द्र जैसे पुरुषों ने भीरु पुरुषों के समान क्लीवत्व प्रकट कर दिया था तब फिर भला दूसरे पुरुषों से साहस-प्रदर्शन की आशा किस प्रकार की जा सकती है? कहाँ वह दर्प जो राजाओं को बनाता और बिगाड़ता था और कहाँ यह नीचवर्गीय मनुष्यों का-सा कायरतापूर्ण आचरण! स्पष्ट है कि विधाता की इच्छा ही यन्त्रचालित पुतलों के समान संसार में समस्त मनुष्यों को इधर-उधर नियन्त्रित रूप से नचाया करती है।

युद्धभूमि में गर्गचन्द्र की ओर न ताक सकने वाले कुछ धूर्त, जो राजा सुस्सल के प्रिय बने हुए थे, उस समय उसके हाथों में हथकड़ियाँ डालने लगे। सुप्रसिद्ध संग्राममठ के समीप वाले मन्दिर में ठहरे हुए कल्याण आदि ने प्रांगण में राजा सुस्सल के प्रवेश करते ही युद्ध करना बन्द कर दिया था और स्वयं राजा द्वारा प्रिय आश्वासन पाने पर तथा अपने पिता को जीवित जानकर इच्छा के न रहते हुए भी गर्गचन्द्र के पुत्र विदेह ने तलवार को त्याग दिया था। इसके बाद जैसा भोजन अपने बन्धु-बान्धवों को देना चाहिए वैसा ही भोजन राजा सुस्सल राजभवन में पत्नी-पुत्र-समेत बन्दी किये गये गर्गचन्द्र को परम उदारता के साथ देने लगा था।

गर्गचन्द्र का पुत्र चतुष्क जो कि अपने भवन से भाग गया था, उसे नीच कर्ण ने कहीं देख लिया था। इसीलिए उसे पकड़ कर राजा सुस्सल को अर्पण कर दिया था। जिस प्रकार भीतर से भली-भाँति न अच्छे होने वाले घाव के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय कर सकना कठिन है उसी प्रकार जिस राजा के हृदय में बद्धमूल कोप प्रच्छन्न बना रहता है उसके अनुग्रह के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय कर सकना असम्भव हो जाता है। जब राजा सुस्सल दरदराज मणिधर से उसके काश्मीर आने के कारण मिलने के लिए नगर से चला गया था उसी समय अपने भृत्यों द्वारा गर्गचन्द्र की हत्या का भी प्रबन्ध कर गया था।

दो-तीन महीने तक कारागार में बन्द रहने के बाद वह रात्रि में अपने तीनों पुत्रों के साथ फाँसी पर लटका दिया गया था। इसके बाद जिस प्रकार उसने बिम्बा आदि के साथ व्यवहार किया था उसी प्रकार के व्यवहार के साथ वह भी अपने पुत्रों सहित गले में पत्थर बँधवा कर राज-भृत्यों द्वारा जल में बहा दिया गया था। लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ चौरानवे के भाद्रपद मास में उसकी हत्या कराके राजा सुस्सल ने यह समझ लिया था कि उसे पूर्ण रूप से शान्ति मिल जायगी किन्तु उसे नये उपद्रवों के कारण दुःख ही प्राप्त हुआ।

फिर वह कालिंजर-नरेश कल्ह और पटरानी की माँ मल्ला की मृत्यु पर अधिक शोकाकुल हो गया। ऐसे ही समय में सोमपाल का भाई नागपाल अपना देश छोड़कर राजा सुस्सल की शरण में आ पहुँचा था। जब उसका सौतेला बड़ा भाई प्रतापपाल सोमपाल के आदेश से मार डाला गया था तब उसने भी उसके घातक मंत्री की हत्या कर डाली थी और भयभीत होकर भाग आया था। इस घटना से राजा सुस्सल क्रुद्ध हो उठा था और प्रणय के वशीभूत हुए सोमपाल के किसी भी प्रस्ताव को न मानकर उसने उससे युद्ध करना ही निश्चित कर लिया था। जब सोमपाल ने यह समझ लिया कि युद्ध अनिवार्य है, तब उसने वल्लापुर से उसके शत्रु भिक्षाचर को बुला लिया। जिस समय राजा सुस्सल को यह विदित हुआ कि सोमपाल ने उसके शत्रु को बुला लिया है उस समय उसके क्रोध की सीमा न रही। उसने उस पर तुरत आक्रमण करने के लिए परम पराक्रम के साथ राजपुरी की ओर प्रस्थान कर दिया।

सोमपाल के भाग जाने पर राजा सुस्सल ने नागपाल को राजसिंहासन पर बैठा दिया और उसके शत्रुओं में भय उत्पन्न करते हुए वहाँ सात महीने बिता दिये। वहाँ वह राजा इन्द्र (वज्रधर) के समान शोभा देने लगा था। जिस समय वहाँ के वज्रधर आदि राजा उसकी सेवा करने का अवसर पा गये उस समय अपनी सेवाओं से उन सबों ने उसे इतना प्रसन्न कर दिया कि उसे बाध्य होकर उन पर अनुग्रह करना पड़ा था। चन्द्रभागा तथा अन्य नदियों के तट पर उसके अश्वारोही सैनिक इतनी वीरता के साथ चक्कर लगाया करते थे कि शत्रु उनकी ओर दृष्टिपात कर सकने में भी समर्थ नहीं होता था।

मार्ग-रक्षण-कार्य में दीक्षित पृथ्वीहर डामर तथा कम्पनेश तिलक उससे आगे चला करते थे। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर राजा सुस्सल ने शत्रु देश के अन्तर्गत ब्रह्मपुरी तथा अन्य मन्दिरों की रक्षा की थी, इसलिए उसे मौलिक फल की प्राप्ति हो गई थी। जो शक्ति में इन्द्र के समान था उस राजा सुस्सल की प्रशंसा कहाँ तक की जाय? यहाँ तक कि वह घोड़ों के लिए घास भी अपने ही देश से मँगाया करता था।

इन समस्त घटनाओ के ही अन्तर्गत एक घटना यह भी हो गई कि राजा सुस्सल के परमप्रिय आप्तजन सुजनवर्धन ने वहाँ से दूर रहने वाले गौरक के विरुद्ध राजा को उत्तेजित कर दिया था। राज्य-रक्षा के लिए राजा स्वयं उसे अपने मण्डल मे छोड आया था, किन्तु जब इधर-उधर की लगाने वालो ने यह समझा दिया कि उसने समस्त राज्य पर हडप लिया है तब उसके प्रति राजा का मन क्षुब्ध हो गया था। जिस समय राजा सुस्सल ने नगराधिकारी जनक को इस सम्बन्ध मे फटकारा था उस समय उसने अपने भाई तिलकसिंह को राजा के प्रति उत्तेजित कर दिया था। इससे क्रुद्ध होकर राजा सुस्सल ने द्वाराधिकारी का पद उससे छीन लिया और उसके स्थान मे पर्णोत्स-निवासी अनन्त के पुत्र आनन्द को नियुक्त कर दिया। वास्तव मे प्रशसा के योग्य वहाँ की जनता थी जिसने अपना प्रबल प्रताप दिखाने वाले राजा सुस्सल का पक्ष न ग्रहण कर सोमपाल से ही सम्बन्ध बना रखा था। फिर लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ पचानवे के वैशाख मास मे राजा सुस्सल वहाँ से अपने मडल मे लौट आया था और उसके पीछे-पीछे राज्याधिकार खोकर नागपाल भी चला आया था। काश्मीर मे आते ही उसकी धन-लिप्सा अधिक बढ गई थी, इसलिए उसने प्रजा को सताना आरम्भ कर दिया था और आवश्यक व्यय मे भी न्यूनता कर दी थी। इसके बाद ज्यो ही उसने गौरक को पदच्युत कर उसके अधीनस्थ अन्य कर्मचारियो को दड दिया था त्यो ही उसके समस्त मत्री उससे अप्रसन्न हो गये थे। नवीन मत्रियो मे शक्ति की कमी थी और शासन मे आकस्मिक परिवर्त्तन हो चुका था, इसलिए राजा सुस्सल को अधिक आर्थिक हानि उठानी पडी थी। उसने जितना सोना लोहर के दुर्ग मे भेजा था वह सब स्वर्ण की ईंटो मे परिवर्तित कर दिया गया था, इसलिए वह पहाडी दुर्ग सुमेरु पर्वत के समान दिखाई पडने लगा था। गर्गचन्द्र के अनुगामियो को दड देने के लिए उसने गर्गचन्द्र के ही मत्री गज्जक को लहर मे दडाधिकारी बना दिया था। इससे उत्पीडन के भय से डर कर गर्गचन्द्र के अनुगामियो ने मल्लकोष्ठक का आश्रय ग्रहण कर लिया और उत्तेजित होकर उसने भी गुप्त रूप से गज्जक को मृत्यु की शरण मे पहुँचा दिया। जिस समय लहर मे विप्लव हो रहा था उस समय राजा सुस्सल ने अपने साथ के मल्लकोष्ठक के बडे सौतेले भाई अर्जुन को वन्दी बना लिया था और विढ्क के भाई तथा उसके वशज सहुचन्द्र के पुत्र हस्त को भी वन्दी बना कर उसे (विढ्क को) पूर्ण हित का आश्वासन प्रदान किया था।

इतना ही नही, पूर्व के वैर को स्मरण करते हुए उसने सपुत्र सूर्यक तथा आनन्दचन्द्र आदि को कारागार मे डाल कर सदाचार की सीमा का ही उल्लघन कर डाला था। फिर उसने लहर के लिए प्रस्थान कर दिया था। मल्लकोष्ठक तुरत भाग गया और अर्जुनकोष्ठक को शूली पर चढा कर प्राण त्याग करना पडा था। सैन्य स्थापित कर जब राजा सुस्सल यहाँ से नगर मे लौट आया, तब जिस प्रकार लोग अपने बन्धु-घातक के प्रति कलह-परायण हो उठते हैं उसी प्रकार समस्त डामर उसके प्रति कलह-परायण हो उठे थे। राजा सुस्सल पृथ्वीहर के प्रति भी क्रुद्ध हो चुका था, इसलिए पूर्व मे की गई उसकी समस्त सेवाओ को भुलाकर उसने उस पर आकस्मिक आक्रमण करने के लिए कम्पनेश तथा अन्य मत्रियो को आज्ञा दे दी।

किसी प्रकार की कठिनाइयो का सामना करता हुआ पृथ्वीहर भाग गया और जयन्ती जिले में रहने वाले क्षीर नामक अपने एक बान्धव के यहाँ पहुँच गया। फिर वह विद्रोही दिन-दहाडे अवन्तिपुर आदि नगरो मे भ्रमण करने लगा और किसी ने भी उसे बाधा पहुँचाने की चेष्टा न की। प्रमाद-वश राजा सुस्सल द्वारा किये गये कर्मों का यह परिणाम हुआ कि दिन-प्रतिदिन विद्रोह की

माना बढ़ने लगी और प्रजा का नाश होने लगा, क्योंकि पृथ्वीहर छुटकारा पाये हुए वेताल के समान ही उद्दण्ड हो चुका था। वृद्ध होने पर भी क्षीर बडा कर्मठ था और उसकी बुद्धि भी तीक्ष्ण थी। उसने समागासा मे पृथ्वीहर-समेत अठारह डामरो को एकत्र कर लिया। सशंकित होकर राजा सुस्सल तुरन्त विजयेश्वर की ओर चल पडा और सुसंगठित संघ मे सम्मिलित होने वाले डामरो को पराजित करने के लिए कम्पनेश तिलक को भेज दिया।

जिस प्रकार पूर्व दिशा से प्रवाहित होने वाली वायु मेघो को छिन्न-भिन्न कर देती है उसी प्रकार उस अतुल विक्रमी ने युद्ध करके उन सबो को छिन्न-भिन्न कर दिया था। डामरो पर विजय प्राप्त करने के बाद वह लौट आया। उस समय उसे राजा द्वारा अधिक सम्मान मिलना चाहिए था, किन्तु उसे अपने पास आने तक की भी आज्ञा न देकर राजा ने उसका अपमान ही किया था। जब राजा सुस्सल नगर मे लौट आया तब तिलक भी खिन्नता के साथ अपने भवन मे चला गया और स्वामी के कार्य मे शिथिलता प्रकट करने लगा।

निम्न श्रेणी के सेवको के साथ रखे गए, सम श्रेणी के सेवको की वृद्धि होने पर शेष जो रह गये, वे केवल शत्रुओ से युद्ध करने के समय प्रमुख पद पाने वाले और शान्ति-काल मे उस पद से हटाये जाने वाले जो कार्य के समय विशेष कुशलता दिखाते हैं और कार्य समाप्त हो जाने पर अपमानित किये जाते हैं, ऐसे सेवक राजा से विरक्त होकर उसे उसी प्रकार छोड देते हैं जिस प्रकार सर्पों से युक्त गृह को गृह के निवासी छोड देते हैं।

जब वह अपने कार्य की उपेक्षा करने लगा तब जिस प्रकार प्रलयकर मेघ खेतो के धान्य को नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार समस्त डामर सर्वत्र राजा के भाण्डार को नष्ट करने लगे। उन सबके उपद्रवो से ब्राह्मणो का समुदाय व्याकुल हो उठा। प्रत्येक नगर मे ब्राह्मणो ने प्रायोपवेशन करना और अग्नि मे जलना आरम्भ कर दिया था। उसी समय महामारी (प्लेग) से घोडे और ऊँट भी मरने लगे थे। इसलिए ऐसा ज्ञात होता था मानो समस्त देश के ऊपर भयानक संकट ही छा गया हो। आसन्न विद्युत्-पतन के समय जिस प्रकार वायु से वृक्षो की पंक्ति कम्पायमान हो जाती है उसी प्रकार आसन्न संकट-काल के समय लोग भयभीत होकर काँपने लगे।

इसके बाद लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ छानवे के आरम्भ होते ही डामरो का समूह उसी प्रकार पतन की ओर बढने लगा था जिस प्रकार गर्म वायु के स्पर्श से बर्फ पिघल कर नीचे की ओर बहने लगता है। सर्वप्रथम देवसरस के विप्लव का आरम्भ हुआ था और वही वह कष्टप्रद घोडे के समान परिपक्व भी हुआ था। टिक्क तथा उसके अन्य बान्धवो को एक संघ मे सम्मिलित कर शक्तिशाली विजय ने पडाव डाले पडी हुई राजा की सेना को बढ़ कर घेर लिया था। उस सेना का नायक नागवद्ध नामक कायस्थ का पुत्र था। वह उन समस्त विद्रोहियो से विलम्ब तक युद्ध करता रहा। इधर राजा ने कम्पनेश को मनाना आरम्भ कर दिया और उसके मानने पर वह भी विद्रोहियो से युद्ध करने के लिए चल पडा। धैर्यशाली विजय से युद्ध करने पर उसका भी जीवन और विजय सन्देहात्मक हो चुकी थी। जब मल्लकोष्ठक भी लहर मे प्रबल होने लगा तब वैशाख के महीने से राजा ने भी अल्योरक नामक नगर की ओर प्रस्थान कर दिया। रात्रि के समय शत्रुओ ने उसके सैनिको को सशंकित कर ऐसे संकट मे डाल दिया था, जैसे संकट मे मरने वाले मनुष्य को दु:स्वप्न डाल दिया करते हैं।

जिस राजा सुस्सल ने केवल बाहु-बल से समस्त शक्तिशाली पुरुषो मे प्रमुख स्थान प्राप्त किया था, जिस राजा सुस्सल ने अपने परम पराक्रम से हर्षदेव जैसे राजा को परास्त कर दिया था, जिस

राजा सुस्सल ने अपने प्रबल प्रताप से कई बार परशुराम के समान पृथ्वी को जीता था, वही राजा सुस्सल देव के प्रकोप के कारण शक्तिहीन हो गया और युद्ध में विजयश्री की आशा छोड़कर तुरन्त भाग गया।

उसके भाग जाने पर हाडिग्राम से प्रमुख स्थान प्राप्त करने वाले पृथ्वीहर ने सहसा साहसी सज्जक पर आक्रमण कर दिया और उसकी दुर्गति कर डाली। फिर उस निष्ठुर ने उसका पीछा किया और नगर के समीप पहुँचकर नया मठ जला दिया। इसके बाद उसने और उसके सहायक क्रूर डामरों ने मैदान में चरते हुए राजा के और राजसेवकों के घोड़ों को सर्वत्र पकड़ना आरम्भ कर दिया। उन सबके इस कार्य से राजा सुस्सल अधिक कुपित हो गया। अन्त में उसने उस कुपद्धति का सहारा लिया जो कि भाग्यहीन पुरुषों के लिए उचित थी। उसने पृथ्वीहर के प्रतिभू (जमानतदार) डामर को मरवा डाला और मृतक शरीर के पीठ पर कमल की जड़ें रखकर पके हुए मांस के समान उसके समीप रात्रि में भेज दिया। इसी प्रकार उसने विद्दक के पास उसके भाई हम्व का शरीर भेजा था और ऐसे ही शरीर उनके भाइयों और पिताओं के पास भेजे गये थे। सिपिफना ग्राम निवासी जयक के पास उसकी माता नाक-कान कटी दशा में भेजी गई थी। क्रोध के आवेश में आकर उसने नगर में सपुत्र सूर्यक को शूली पर चढ़ा दिया था और इसी प्रकार अनेक व्यक्तियों को चाहे वे प्राणदण्ड के योग्य रहे हों या न रहे हों, मरवा डाला था।

जब वह इस प्रकार यमराज के समान शासन करने लगा तब उसके समस्त कर्मचारी सशंकित होकर घृणा करने लगे। जिस अनीति-मार्ग का अनुसरण करने के कारण राजा हर्षदेव को राजसिंहासन छोड़ना पड़ा था और जिसकी निन्दा राजा सुस्सल ने स्वयं की थी, अब वही उस अनीति-मार्ग का अनुसरण करने लगा था।

इसीलिए कहना पड़ता है कि युद्ध के व्यापार में संलग्न व्यक्तियों की गंभीर काव्य की रचना करने वालों की, द्यूत-क्रीडा में आसक्त मनुष्यों की और राजसत्ता के अधीन जीवन बिताने वाले पुरुषों की त्रुटियों पर आलोचना उसी व्यक्ति को करनी चाहिए जिसने अपने व्यावहारिक जीवन में कोई त्रुटि न होने दी हो।

राजा सुस्सल को भी परिस्थितियों से बाध्य होकर हिंसा-परायण होना पड़ा था। यदि वह उस समय उस प्रकार के प्रयत्न न करता तो मल्लकोष्ठक आदि की शक्ति क्षीण नहीं हो सकती थी। इसके बाद कुछ समय बीत जाने पर हर्ष के नाती भिक्षाचर को विजय विषलाटा के मार्ग से ले आया था और देवसरस से ही आक्रमण कर देने के विचार करने लगा था किन्तु कम्पनेश ने उसे मार भगाया था। भागते-भागते वह पर्वत के शिखर से धरती पर गिर पड़ा था फिर उसे पहिचान लेने के बाद यमलोक भेज दिया गया था और विजयी कम्पनेश ने विजय के वृक्ष से प्राप्त हुए फल के समान उसके मस्तक को राजा के पास भेज दिया था। फिर भी अकृतज्ञ राजा को सन्तोष न हुआ, अतएव उसने उसकी आश्चर्यजनक विजय की न तो प्रशंसा की और न किसी प्रकार का सम्मान ही प्रदान किया। इतना ही उसने उसका अपमान करते हुए यह संदेश कहला भेजा, "वास्तव में यह मानना चाहिए कि पर्वत के शिखर ने ही कम्पनेश के स्थान से शत्रु को मारा है अतएव इस विजय पर तुम्हें गर्व नहीं करना चाहिए।"

जब तिलक ने समझ लिया कि राजा पूर्ण रूप से अकृतज्ञ है तब वह उसके प्रति अश्रद्धालु हो गया और विद्रोही बन बैठा। यदि वह प्रतिकूल ही हुआ होता तो न्याय-परायण व्यक्ति उसकी

निन्दा न करते, किन्तु उसने विश्वासघात करने का रूप ग्रहण कर लिया था। उसके कारण उसके नाम का उल्लेख करना भी अनुचित समझा जाने लगा। नीतिप्रिय पुरुष संभव है कि अवसरवादियो की प्रशंसा करने लगे, किन्तु उच्चकोटि के सज्जन पुरुष जब अपने जीवन को संकटापन्न कर दूसरो का हित-साधन करते हैं तब कृतज्ञतापूर्ण शब्दो के साथ ही उनकी प्रशंसा की जाती है। चाहे कोई कितना ही धैर्यशाली व्यक्ति क्यो न हो, यदि वह जलते हुए वस्त्रो का, सर्प द्वारा दर्शन किये गये धर्म का, शत्रु द्वारा जानी गई योजना का, शीघ्र ही गिर जाने वाले प्राचीन गृह का, सेवाओ को सहर्ष न स्वीकार करने वाले राजा का एव संकट-काल मे दूर रहने वाले मित्र का त्याग नही करता है तो कार्यकाल के आरम्भ में ही उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। सफल होना तो दूर की बात समझ लेनी चाहिए। ऊपर वर्णन किये गये नीतिपूर्ण मार्ग का अनुसरण न कर जो क्रोध के आवेश मे आकर अपने स्वामी से द्रोह करने लगते हैं, यदि वे महापापी नही हैं तो फिर और कौन महापापी होगा। माता-पिता तो जन्म प्रदान कर केवल एक ही बार उपकार करते हैं किन्तु स्वामी निरन्तर उपकार किया करता है, अतएव स्वामी के साथ द्रोह करने वाला पुरुष मातृ-पितृघाती पुरुष से भी कही अधिक महापापी है।

जब विजय मार डाला गया और दूसरे विद्रोही ही बचे रह गये तब लोगो का हृदय अधिक चिन्तायुक्त हो गया और जनता की इस भावना को तत्वज्ञानी ही अधिक समझ सके थे। कुछ दिनो तक विप्लव शान्त रहा, किन्तु फिर उसने उन्मत्त भेड के समान अपना उग्र रूप धारण कर लिया था। मल्लकोष्ठक भिक्षाचर को पुन बुलाना चाहता था, इसीलिए उसने अपने अश्वारोही सैनिको को विषलाटा भेज दिया था। जब राजा से उदासीन रहने वाले कम्पनेश ने राजा को सूचित किया कि भिक्षाचर समीप आ गया है तब क्रुद्ध होने के कारण राजा ने उसे रोकते हुए कहला भेजा "उसे बिना रोक-टोक के बढ आने दो जिससे कि मैं उसे उसी प्रकार मार सकूं जिस प्रकार अश्व-पृष्ठ से ही शिकारी आगे-आगे चलने वाले शृगाल को मार डालता है।"

यद्यपि राजा को यह भली-भाँति ज्ञात था कि किन-किन उपायो से राजद्रोह उत्पन्न हुआ करता है तथापि दुर्दैव के प्रभाव से प्रभावित होकर उसने भयानक भूल कर डाली। राजा की भावना और उसकी आज्ञा का मर्म समझ कर विद्रोही तिलक ने उस अवसर से लाभ उठाने की इच्छा से पर्वत के मार्ग द्वारा भिक्षाचर को ले जाने के लिए डामरो को तैयार कर दिया। इसके बाद ही सर्वत्र लोकचर्चा के अन्तर्गत भिक्षाचर की प्रशंसा होने लगी जिससे कि राजा को अधिक सशंकित होना पडा।

"वह शिष्ट वाणी का प्रयोग करता है, एक ही बाण से दश शिलाओ को भेद देता है, एक सौ योजन पैदल जाकर भी लौट आता है फिर भी थकता नही है।" इस प्रकार के वाक्यो द्वारा श्वेत-केश वाले वृद्ध पुरुष भी जनता मे उसका गौरव बढाने लगे थे। प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसका सम्बन्ध सार्व-जनिक कार्यों से रहा हो या न रहा हो, बडे उत्साह के साथ भिक्षाचर से सम्बन्ध रखने वाले वृत्तान्तो को कहा-सुना करता था मानो उसके राज्य-लाभ करने पर प्रत्येक व्यक्ति को आधा राज्य मिलने वाला रहा हो।

नदियो के स्नानगृह मे स्नान करने वाले कार्यच्युत प्राचीन कर्मचारी, राजभवन मे रहने वाले नाम-मात्र के राजकुमार, स्वभाव से दुष्ट और बडे-बडे घोडो पर सवार होने की इच्छा रखने

वाले कुछ सैनिक, शिष्यों को नाखूनों से खरोचने वाले पाठशालाओं के उपाध्याय, वृद्धा देवदासियाँ, दूसरों का धन हड़पकर धर्म-ग्रन्थ सुनने वाले व्यापारी, प्रायोपवेशन की योजना को सफल बनाने में निपुण पुरोहित पारिषद्य के ब्राह्मण, नगर के समीपवर्ती भागों से आने वाले शस्त्रधारी डामर जो किसानों से ही मिलते-जुलते थे वे, जो अपने को और दूसरों को राजद्रोहात्मक कथाओं में सम्मिलित करते थे वे, और जो इस पृथिवी में मुख्य रूप से राजा का अहित चाहते थे, वे सभी उपर्युक्त वार्त्ता से प्रसन्न होने लगे थे।

जब भिक्षाचर के आगमन की वार्त्ता ने प्रसार का रूप धारण कर लिया तब जनता चंचल हो उठी और राजा चिंतित होने लगा। इसके बाद पर्वत के संकीर्ण मार्ग वाले वृक्षों की सघन छाया से जहाँ कि अतुल पराक्रमी पृथ्वीहर सोया करता था, बाहर निकल आया और युद्ध में उसने राजा की सेना को नष्ट कर दिया। अनन्तवशोत्पन्न तथा कालवशोत्पन्न दोनों ही आनन्द जो कि द्वारनायक थे और तिलकसिंह ये तीनों ही मंत्री युद्धभूमि से भाग गये। जेठ के महीने में विजय मारा गया था और आषाढ शुक्ल छठ को राजा की यह हार हुई थी जिससे कि वह पुन. संकट में पड़ गया था। जिस प्रकार गौओं के उछलने से, सर्पों के वृक्षारोहण से, चींटियों को अंडे लेकर जाने से लोग यह जान जाते हैं कि वर्षा होने वाली है उसी प्रकार अशुभ लक्षणों से राजा ने भी आसन्न संकट को समझ लिया था, इसीलिए वह उचित उपायों द्वारा रक्षा का प्रबंध कर चुका था। यही कारण है कि उसने आषाढ शुक्ल तृतीया को अपने पुत्र, अपनी रानी तथा अन्य कुटुम्बियों को लोहर के दुर्ग में पहुँचा दिया था। जब वह उन सबके पीछे-पीछे जाने लगा था तब पुल के टूट जाने से लोष्ठ आदि ब्राह्मण वितस्ता में गिर कर प्रवाह के साथ बहने लगे थे। इस अशुभ लक्षण से संकटापन्न होकर वह उन सबों के साथ हुष्कपुर के समीप पहुँच गया और दो-तीन दिन के बाद नगर में लौट आया। पत्नी और पुत्र के बिना वह ऐसा दिखाई पड़ता था मानो भाग्य और प्रताप दोनों ने ही उसका साथ छोड़ दिया हो सौभाग्य से ही उसे यह सूझ गया कि पत्नी और पुत्र को लोहर के दुर्ग में भेज देना चाहिए। यद्यपि वह मन ही मन अधिक अधीर हो चुका था तथापि उसे अपने भाग्य का पूर्ण अभ्युदय देखना विधि-विधान द्वारा निश्चित हो चुका था। यद्यपि राजा हर्षदेव के समान उसने स्वयं अपने लिए दुर्भाग्य को उत्पन्न किया था तथापि दूरदर्शिता के कारण अपने पुत्र के द्वारा वह आज भी राजसत्ता का सुख भोग रहा है।

इसके बाद भिक्षाचर को लाने वाले लहर के सैनिक उसे श्रावण के महीने में मडव राज्य के डामरों के पास ले गये। फिर जिस प्रकार बराती दूल्हे को उसकी ससुराल ले जाते हैं उसी प्रकार मडव राज्य के डामर भी अपनी सेना के साथ उसे (भिक्षाचर को) लहर ले गये। उन सबका यथोचित स्वागत करने के बाद मल्लकोष्ठक तथा अन्य नेताओं ने उन समस्त प्रभावशाली डामरों को अपने-अपने प्रान्त में कम्पनेश को तंग करने के लिए भेज दिया। जब शत्रुओं का समूह सभी दिशाओं से घेर कर समीप आने लगा तब अतुल धन व्यय करके राजा सैनिकों का संग्रह करने लगा। ऐसे भयानक संकट-काल में जब राजा ने अमित धनराशि लुटाना आरम्भ कर दिया तब लोहार, बढ़ई आदि कारीगरों ने भी शस्त्र ग्रहण कर लिया। युद्ध के लिए तैयारी करने वाले सेनापति घोड़ों की पीठ पर हथियार लादकर नगर के भीतर अभ्यास करने लगे।

अभी भिक्षाचर भय ग्राम में ही था कि इतने में लहर के विद्रोहियों ने आगे बढ़कर अमरेश्वरी में स्थित राजा के सैनिकों पर आक्रमण कर दिया और हिरण्यपुर के समीप युद्ध करके राजसैनिकों

के नायक श्री विनायकदेव आदि को मार डाला। युद्ध के प्रारम्भ-काल मे ही जिस समय शत्रुओं ने राजकीय सेना के किसी एक अच्छे घोडे को अपने अधिकार मे पाया था, उस समय उन्हे ऐसा ज्ञात होने लगा मानो उन्हे राजलक्ष्मी ही मिल गई हो। राजधानी के समीप ही क्षिप्तिका नामक नदी के तट पर युद्ध करके पृथ्वीहर ने राजा के असख्य साहसी योद्धाओ को मार डाला था। यद्यपि तिलक विजयेश्वर मे उपस्थित था तथापि खड्गवी और होलडा निवासी डामरो ने महत्सरित् के तट पर आक्रमण कर ही दिया था। उन्होने समस्त नगर को घेर लिया था और दिन-रात चिल्लाते हुए कही-कही आग लगा दिया था और कही-कही के निवासियो को लूटना आरम्भ कर दिया था।

जब कि युद्ध से लौटे हुए घायलो की सख्या बढती जा रही थी, सम्बन्धियो की मृत्यु के कारण जनता का विलाप तीव्र होने लगा था, युद्ध से भागे हुए सैनिको की सख्या भी अधिक हो रही थी, प्रतीक्षाकुल व्यक्तियो का समूह बढता जा रहा था, वाणो की वर्षा हो रही थी, शस्त्र छीने जा रहे थे, घोडे भगाये जा रहे थे, मृतको को लाने वाली जनता के कारण धूल उडने लगी थी और बिना किसी रोक-टोक के दिन-प्रतिदिन राजपथ पर विप्लव होने लगा था तब वाद्य बजाती हुई अश्वारोही सेना के प्रस्थान करने से लाभ ही क्या था ?

शत्रु-दल नित्य प्रात काल होते ही परम पराक्रम के साथ आक्रमण किया करता था, इसलिए यह प्रतिदिन सोच लिया जाता था कि आज निश्चय ही राजा के साथ ही साथ समस्त युद्ध समाप्त हो जायगा। राज्य को भयानक सकटापन्न स्थिति मे देखकर भी जिस राजा सुस्सल ने साहस को नही खोया उससे बढकर धीर पुरुष दूसरा और कौन होगा ? घायलों के घावो पर पट्टियो का बाँधा जाना, तीरो के नोको का निकाला जाना तथा उचित परिमाण मे धन और पथ्य दिया जाना आदि सभी कामो को वह स्वय प्रत्येक समय देखा करता था। प्रवास-वेतन, पारितोषिक और दवाइयो मे जितना धन राजा ने अपने सैनिकों पर व्यय किया था उसकी गणना नही की जा सकती। सेना-निवास के अन्तर्गत नित्य हजारो मनुष्य और घोडे युद्ध मे विपन्न होने के कारण या घायल होने के कारण नष्ट होने लगे।

इसके बाद राजा के शक्तिशाली अश्वारोही सैनिको ने आक्रमण कर मल्लकोष्ठक तथा अन्य लहर-निवासी विद्रोहियो की प्रगति को रोक दिया। ऐसे ही समय मे राजा के आभ्यान्तरिक असन्तुष्ट व्यक्तियो के परामर्श से सब प्रत्याक्रमण की आशा से भिक्षाचर को सकीर्ण मार्ग से सुरेश्वरी ले गये। वे सभी धनुष चलाने मे कुशल थे, इसलिए झील के छोटे से बाँध पर होने वाले युद्ध मे विजयी हो गये थे तथा अश्वारोही सैनिको द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले भय से भी मुक्त हो गये थे। इसी सकट-काल मे विश्वासघातक कम्पनेश ने विजयेश्वरी में रहते हुए भी दिखावे के लिये युद्ध करके डामरो को अधिक शक्तिशाली बनाने का अवसर दे दिया था।

यह सोचकर "ये लवन्य लोग मुझे किसी भी दशा मे शक्तिहीन नही समझेंगे और जब मैं हट जाऊँगा तब मार्ग में भी किसी प्रकार का उपद्रव नही खडा करेंगे" उसने प्रस्थान करने पर भी लौट पडना उचित समझा और उस समय जबकि विजयेश्वरी मे अपना पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए अज्जराज की सेना आ गई थी। उसके ढाई सौ योद्धाओ को मार कर विश्वासघातक कम्पनेश ने विजयेश्वरी को छोड दिया और नगर के मार्ग को पकड़ लिया।

उसका पीछा करने का साहस किसी भी डामर मे न था, इसलिए उसके भय से पर्वत-शिखरो पर चढे हुए वे सब केवल चिल्लाते ही रहे, किन्तु मार्ग नही रोक सके। जब वह मडव राज्य को छोडकर नगर मे आ गया तब सकटो मे व्याकुल हुए राजा ने उसका बडा स्वागत किया। किन्तु, उस समय उसने राजा द्वारा किये गये पहिले के अपमानजनक व्यावहारो को स्मरण कर उसका उपहास ही कर डाला। यद्यपि उसने अन्य मत्रियो के समान ही कम्पन मे प्रवेश किया था तथा उस युद्ध-काल मे उसने अपने पद के अधिकारो के अनुसार एक भी हितकर कार्य नही किया था, केवल दर्शक के समान बैठे रहने मे ही उसने अपना गौरव समझा था।

फिर तो मडव राज्य के समस्त डामरो ने बढकर महासरित् के तट को अपने अधिकार मे कर लिया था और शत्रुओ मे साम, भेद आदि का जैसा उपयोग किया जाता है वैसा उपयोग भी सोचा जाने लगा था, किन्तु भेद खुल जाने के कारण उन उपायो मे से एक भी सफल न हो सका। यद्यपि इसके पूर्व राजा ने अनेक भूपतियो के राज्यो पर आक्रमण किया था तथापि उपस्थित सकट-काल मे नगर का सरक्षण ही उसके बाहुबल का सर्वश्रेष्ठ फल मान लिया गया था।

राजा के पक्ष से युद्ध करने के लिए राजकुमारो के साथ द्वारपति अमरेश मे पहुँच गया था और राजस्थानीय आदि मत्री राजानवाटिका के समीप जा पहुँचे थे। यद्यपि उन सबो ने सुदूर देशान्तर में जाने के समान राजा से अधिक से अधिक प्रवास का वेतन लिया था तथापि युद्ध कही भी नही किया था। जिसका परिणाम यह हुआ कि राजा के शत्रु सर्वत्र विजयी होने लगे और राजसैनिको के पराजय से पृथ्वीहर को पूर्ण रूप से विजय का गौरव प्राप्त होने लगा। जिस प्रकार से मदिरापान से उन्मत्त हुआ वेताल प्राणियो का सहार कर डालता है उसी प्रकार युद्ध मे उसने राजा की सेना के प्राय: समस्त योद्धाओ का सहार कर डाला था। फिर भी एक युद्ध मे इन्छटि-वशोत्पन्न उदय नामक एक नवयुवक ने एकाकी युद्ध करके ही अपनी वीरता से उसके छक्के छुडा दिये थे। बडे दर्प के साथ द्वन्द्व युद्ध करते हुए उसने पृथ्वीहर को घायल कर दिया था, उसकी दाढी नोच ली थी और उसके हाथ से तलवार भी छीन ली थी।

जिस समय नगर के समीप भयानक रूप से युद्ध हो रहा था उस समय तीरो की वर्षा से नगर के भीतर अनियत्रित रूप से स्त्री-बच्चो आदि की मृत्यु होने लगी थी। जबकि नगर के भीतर इस प्रकार का हत्याकाण्ड प्रबल होने लगा था, राजा को किसी विशेष दुर्बलता ने घर दबाया जिसके कारण वह राजभवन से बाहर निकलने का भी साहस न कर सका था। राजा के इस प्रकार राजभवन मे बन्द रहने से सोमपाल को अपना कार्य-साधन करने का अवसर मिल गया। उसने तुरन्त अट्टालिका मे आग लगा दी और लूटना आरम्भ कर दिया। ग्राम्य शृगाल को सिह की कन्दरा के सामने पहुँच कर अपना पराक्रम दिखाने का अवसर तभी प्राप्त होता है जब कि सिह हाथी से युद्ध करने लगता है।

काश्मीर और लोहर, इन दोनो राज्यो के भयानक रूप से नष्ट-भ्रष्ट तथा शत्रुओ द्वारा पददलित हो जाने का परिणाम यह हुआ कि राजा सुस्सल अधिक लज्जा के कारण अपनी ओर भी दृष्टिपात न कर सका। निस्सन्देह यह समय उसके लिए सभी प्रकार की आपत्तियो से पूर्ण था। असह्य कष्टो ने उसे सकटापन्न कर रखा था और वह सभी दृष्टिकोणो से भाग्यहीन हो चुका था। फिर भी वह जीवन धारण कर रहा था। किन्तु, उसी समय राजानवाटिका के विरक्त ब्राह्मणो ने प्रायोपवेशन

आरम्भ कर दिया था । कहने के लिए उनका वह प्रायोपवेशन कल्याण के उद्देश्य से ही किया गया था किन्तु वास्तव मे वह प्रायोपवेशन अशुभकारक ही था ।

राजा से प्रार्थना करते हुए उन सबो ने कहा था "आपके जितने मत्री हैं सभी युद्ध से दूर रहना चाहते हैं । आप उन सबो से जमानत ले लीजिए और तुरन्त लोहर भेज दीजिए । यदि ऐसा न किया गया और यह सकट बढता ही रहा तो जैसा क्रम हम सब देख रहे हैं उससे भयभीत होने लगे हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि यदि शरत्-काल की पकी हुई फसल को शत्रु ले गया तो फिर हमे भोजन कौन देगा ? हम धान्य का प्रबन्ध किस प्रकार कर सकेंगे ?"

जब से राजा ने उन समस्त मत्रियो को नियुक्त किया था तब से लेकर उस समय तक वह उन्हे अधिक विश्वासपात्र ही समझता था। किसी भी प्रकार का सन्देह करने का अवसर भी न मिला था, किन्तु जब उन समस्त ब्राह्मणो ने मत्रियो के युद्ध से तटस्थ रहने का वृत्तान्त कह सुनाया तब वे समस्त मत्री तुरन्त सशकित हो गये । वे समस्त ब्राह्मण भी कम धूर्त न थे । यो तो एक तिनके को भी तोड सकने की शक्ति उनमे न थी, किन्तु वे प्रार्थना द्वारा राजा को उच्छृखल बनाकर अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के किए बाध्य करने लगे थे । विरोधी सैन्य-दल के समान राजा के पक्ष मे ही एक दूसरा दल तैयार हो गया और उस दल मे उसके ही कर्मचारी और उग्र स्वभाव वाले पारिषद्य के पुरोहित आदि सम्मिलित हो गये ।

उन सबो को शान्त करते समय जिन सब त्रुटियो ने जन्म लिया था उन्ही के कारण समस्त राज्य मे अव्यवस्था फैल गई और सभी दिशाओ मे लूटमार होने लगी । जिन दुष्टो ने कभी राज-सभा को देखा तक न था और न राजकार्य-सम्बन्धी ज्ञान ही पाया था वे भी राजा द्वारा समझाये जाने पर नाना प्रकार के कठोर शब्दो का प्रयोग करने लगे थे । इसीलिए जिस प्रकार पैर की पीडा की अपेक्षा गले की पीडा अधिक कष्टदायक होती है उसी प्रकार राजा के लिए भी यह विद्रोह लवन्य-विद्रोह की अपेक्षा अधिक कष्टप्रद हो गया था । किसी न किसी प्रकार षड्यन्त्रकारियो के नेताओ को स्वर्ण आदि घूस देकर बड़ी कठिनाई के साथ उसने कुछ अश तक प्रायोपवेशन को रोक दिया था ।

ऐसे ही समय मे भिक्षाचर का सेनानायक विजय जो कि वर्णसोम के वश उत्पन्न हुआ था, अनेक शस्त्रधारी सैनिको के साथ बलपूर्वक नगर मे घुस आया, किन्तु राजा के अश्वारोही सैनिको ने उसे तुरन्त यमलोक का रास्ता दिखा दिया । इसमे सन्देह नही कि वह जिस समय अपने प्रबल परा-क्रम के साथ अपना मार्ग मुक्त करता हुआ आया था उस समय राजा सुस्सल की स्थिति बडी ही चिन्ताजनक हो गई थी । यह एक प्रकार निश्चित-सा हो गया था कि उसके हाथ से राज्याधिकार छिन जायगा ।

इधर लवन्यो के बीच पृथ्वीहर का प्रताप कुछ-कुछ क्षीण होने लगा था, इसलिए उसके साथ सधि करके शत्रुओ मे भेद-भाव उत्पन्न करने की इच्छा राजा सुस्सल के हृदय मे प्रबल होने लगी थी। डामर जो कि युद्ध मे विशेष रूप से सफल हो चुके थे, वे भी राजा सुस्सल के साथ सधि करने की इच्छा प्रकट करने लगे थे । इसीलिए उभय पक्ष की सेनाएँ शान्त हो गई थी जिससे कि ऐसा ज्ञात होने लगा था मानो विप्लव का अन्त हो चुका हो । किन्तु, जिस समय राजा सुस्सल ने पृथ्वीहर को नागमठ मे ले आने के लिए अपने विश्वासपात्र तीन मन्त्रियो को भेजा था उस समय उसने गुप्त रूप से आक्रमण कर उन तीनों को ही मार डाला था । उस आक्रमण मे उन मन्त्रियो के पक्ष का समर्थन करने वाले तिलकसिंह के तीन सेवक अर्थात् तिलकसिंह का भात्रेय भ्राता मम्मक, गुग ब्राह्मण और राम नामक

वारिक (अर्दली) भी मारे गये थे। गौरक जो कि राजा सुस्सल का प्रतिभू (जमानतदार) था उसे भी शत्रुओं ने निर्दयतापूर्वक मार डाला। भूतपति शिव का स्मरण करते हुए जिस समय उसने प्राणों का त्याग किया था उस समय उसके मित्र भी उसकी दुर्दशा पर विलाप करने लगे थे, इस पर शत्रुओं ने उन सबों को भी मार डाला था।

जब यह दारुण सम्वाद लोगों को विदित हुआ तब भयानक कोलाहल होने लगा। राजा के प्रति अश्रद्धालु होकर जनता ने उसके लिए कटु और अप्रिय शब्दों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। उस भयानक कोलाहल का परिणाम यह हुआ कि राजा को आश्विन शुक्ल चतुर्दशी का दिन बड़े ही संकट में बिताना पड़ा था। वह इतना विकल हो गया था कि उसकी अपनी बुद्धि काम नहीं दे रही थी। इसलिए वह अयोग्य व्यक्तियों से भी अपने कर्त्तव्य के सम्बन्ध में परामर्श करने लगा था। उसके ऐसे संकट-काल में ऐसा ही कोई होगा जो मन ही मन न हँसा हो अथवा प्रसन्न न हुआ हो। जबकि राजा सुस्सल किसी न किसी प्रकार अपने ऊपर आ पड़ने वाले संकटों को सहन कर रहा था उसी समय अवसर पाकर उसके सेवक शत्रु-दल में मिल गये।

कम्पनेश तिलक का सौतेला भाई बिम्ब शत्रुओं के पक्ष में चला गया और उसने उनसे द्वार-कार्य का भार ग्रहण कर लिया। जनकसिंह ने भिक्षाचर के पास निरन्तर गुप्तचर भेजना आरम्भ कर दिया और उसके साथ अपनी भतीजी का विवाह कर देना भी स्वीकार कर लिया। प्रतिदिन राजा के अश्वारोही तलवारें, कवच, घोड़े और अन्य सामान ले लेकर भिक्षाचर के पास जाने लगे। और अधिक कहाँ तक कहा जाय, जो सेवक दिन में राजा सुस्सल के सामने रहा करते थे वे ही निर्लज्जता के साथ प्रकट रूप से रात्रि में भिक्षाचर के सामने देखे जाते थे।

जब इस प्रकार राजा की सत्ता यहाँ तक क्षीण हो गई कि लोग एक पक्ष से दूसरे पक्ष में बिना रोक-टोक के आने-जाने लगे तब एक नया संकट उपस्थित हो गया। बात यह हुई कि शरद्-कालीन खेतों की उपज को डामरों का समूह उठा ले गया जिससे कि जनता ने अपना घर-द्वार छोड़ कर इधर-उधर सर्वत्र भागना आरम्भ कर दिया। उस समय जनता में यह मिथ्या विश्वास दृढ़ हो गया था कि यदि राजा सुस्सल राज्याधिकार से च्युत हो जायगा तो भिक्षाचर समस्त राज्य को स्वर्ण-मय बना देगा। अंधों के समान दूसरों का अनुसरण करने वाली जनता ने कभी यह भी नहीं सोचा था कि क्या कभी कोई भिक्षु उदार भी हुआ है अथवा जो आदि से ही भिक्षु है उसके पास इतना अधिक धन कहाँ से आ जायगा। चन्द्र की नवीनतम कला की रेखा के सामने लोग अम्बर (वस्त्र) पाने की अभिलाषा से मस्तक झुकाया करते हैं जब कि वह रेखा ही स्वयं क्षणिक दर्शनीय होकर अम्बर (आकाश) में ही लीन हो जाती है। जिस लोलुपता के वशीभूत होकर लोग सत्य और मिथ्या के ज्ञान से भी हीन हो जाते हैं ऐसी लोलुपता को धिक्कार है।

युद्ध में जब राजा की सेना सफल होती तब लोग अपना मस्तक झुका लेते थे और जब भिक्षाचर के सैनिक विजयी होते तब उन्हें अधिक प्रसन्नता होती थी। फिर एक ऐसा समय आ गया कि ब्राह्मण और कुत्ते के चुटकुले की भाँति एक दूसरे से भयभीत होकर राजा और डामरों के सैनिकों ने पारस्परिक विरोध को त्याग कर युद्ध करना बन्द कर दिया। यह सत्य था कि उनमें से कोई भी एक दूसरे के मनोगत भावों को नहीं जानता था इसीलिए अपने सेवकों द्वारा किये जाने वाले विश्वासघात के भय से राजा भाग जाने की तैयारी करने लगा था और शत्रुओं का दल

राजा की शक्ति के कारण भयभीत होने लगा था। जब राजा ने यह समझ लिया कि उसका कोई विश्वास-पात्र नहीं रह गया है और उसके बान्धव तक भी विद्रोह में भाग लेने लगे हैं तब उसने राजधानी मे रहने और राजधानी से भाग जाने, उभय दशा मे ही अपने जीवन को सकटपूर्ण स्थिति मे समझ लिया। अपने को घोर सकट मे समझ कर जब उसने सैनिको के ऊपर वस्त्र, स्वर्ण और रत्न आदि उपहारो की वर्षा करनी आरंभ कर दी थी तब उन सबो ने उन समस्त उपहारो को तो ले लिया, किन्तु राजा की प्रशसा न करके उसके लिए कटु शब्दो का ही प्रयोग करने लगे थे।

"यह नष्ट हो चुका है, यह अब अधिक दिनो तक नही रहेगा" इस प्रकार अपने सम्बन्ध मे निर्भीकता के साथ लोगो को कहते सुनकर राजा उसी प्रकार व्यथित हुआ जिस प्रकार चिकित्सको द्वारा त्याग किये जाने पर रोगी व्यथित होता है। यद्यपि उसके सेवक उस समय तब भी उसकी सभी आज्ञाओ का तुरत पालन किया करते थे तथापि जब उसकी ओर दृष्टिपात करते थे तब उसकी उस दशा पर उनका अभिमान और प्रसन्नता का भाव ही प्रकट होता था। हाय! साहसी होने पर भी उसकी दशा साधारण मनुष्य के ही समान हो गई थी। वह इतना भयभीत हो चुका था कि राज-भवन से बाहर निकल सकना भी उसके लिए कठिन हो गया था।

जिस समय पारस्परिक मतभेद उपस्थित हो जाने के कारण डामरो का समूह वहाँ से प्रस्थान करने का विचार करने लगा था उसी समय राजा के सैनिको ने उसे असहाय अवस्था मे छोड दिया। नगी तलवारे ले-लेकर उन्होने राजभवन के सभी द्वारो को घेर लिया और प्रवास का वेतन पाने की अभिलाषा से प्रायोपवेशन करना आरभ कर दिया। जब राजा ने उन्हें धन दे दिया तब उन्होने उसे कुवेर के समान समझ लिया, इसलिए अधिक से धन पाने की लालसा से वे उसके प्रति सद्भाव प्रदर्शित न कर अपमानसूचक व्यवहार ही करने लगे। इतना ही नही, जिस प्रकार मरने के लिए तीर्थस्थान मे जाने वाले रोगी मनुष्य को महाजन रोक लेता है उसी प्रकार उन समस्त निर्लज्ज सैनिको ने भी उसे रोक लिया और धन देने पर विवश किया।

स्थानपालो (मन्दिर के पुरोहितो) ने भी प्रायोपवेशन करना आरभ कर दिया और बलपूर्वक उसे बैठा लिया तथा सुवर्ण-भाण्ड आदि को चूर्ण कराकर बाँट देने के लिए बाध्य किया। इसके बाद जो नगर बालको और वृद्धो के कोलाहल से प्रतिक्षण विक्षुब्ध सागर के समान अशान्त होने लगा था उस नगर को शान्त कर सकने का सामर्थ्य उस राजा में न रहा। एक दिन प्रात काल होते ही जब कि सैनिको में से कुछ ने राजभवन के द्वार को बन्द कर रखा था, राजा ने देखा कि समस्त नगर विक्षुब्ध-सा होने लगा है उसी समय उसने नगराधिकारी जनक को आज्ञा दी—"नगर के सभी स्थानों मे जाकर समस्त कोलाहल और अशान्ति को बन्द कर दो।" जब वह चला गया तब राजा नगर छोडकर भाग जाने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। बडी कठिनाई के साथ धन आदि देकर तथा मधुर शब्दो का प्रयोग कर राजा ने उन समस्त सैनिको से छुटकारा पाया और फिर पूर्ण रूप से शस्त्र से सुसज्जित होकर अपनी महिलाओ के साथ वह राजभवन से बाहर निकल आया। घोडे पर सवार होकर वह आँगन पार कर ही रहा था कि इतने में लुटेरो ने राजभवन को लूटना आरभ कर दिया।

राजसिंहासन को छोडकर ज्यो ही वह चला गया त्यो ही उसके सैनिको में से कुछ अश्रुपात करने लगे, कुछ ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगे और कुछ उसके सेवको को ही लूटने लगे। लज्जित, कुपित

और भयातुर राजा जिस समय मार्ग पर चल रहा था उस समय पाँच-छ हजार सैनिक भी उसके पीछे चलने लगे थे। यह लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ छानवे के मार्गशीर्ष कृष्ण छठ का वह दिवस था जिसका केवल एक ही प्रहर शेष रह गया था और जिसके रहते ही राजा सुस्सल को विद्रोह से व्याकुल होकर अपने सेवकों के साथ श्रीनगर छोडकर चला जाना पडा था। पद-पद पर उसके सेवक घोडे आदि ले-लेकर उसे छोडने लगे थे। इस प्रकार चलते-चलते रात्रि के समय वह अपने थोडे-से सैनिको के साथ प्रतापपुर मे पहुँच गया। जब तिलक उसके सामने आया तब ऐसे विश्वस्त भाव से मिला मानो उसका सगा-सम्बन्धी हो और उसकी दशा से शोकातुर होकर बडी देर तक अश्रुपात करता रहा। फिर भी इस भय से कि कही तिलक धोखा न दे, वह स्वय वहाँ से शीघ्रतापूर्वक चला गया और दूसरे ही दिन हुष्कपुर वाले उसके भवन मे पहुँच गया। इसके बाद स्नान आदि से निवृत्त होकर विजयाभिलाषी राजा ने क्रम राज्य मे जाने और वहाँ जाकर तिलक के प्रभाव से नवीन सेना का सग्रह करने का विचार किया।

ऐसे ही समय मे युद्धाभिलाषी कल्याणवाड आदि डामरो को तिलक ने गुप्त रूप से बुला लिया, परिणाम यह हुआ कि राजा सुस्सल को अपना साहसपूर्ण विचार छोड देना पडा। इतना ही नही, तिलक के षड्यन्त्र के कारण राजा सुस्सल को उसका वह भवन भी छोडना पडा था तथा मार्ग रोकने वाले दस्यु डामरो को स्वर्ण आदि उपहार मे देकर अपने अनुकूल करना पडा था। यदि वह ऐसा न करता तो वहाँ से निकल सकना भी कठिन हो जाता। जैसे ही वह वहाँ से चला त्यो ही तिलक ने उसका साथ छोड दिया, किन्तु दया के वशीभूत होकर उसके भाई आनन्द ने एक पडाव तक उसका (राजा सुस्सल का) साथ दिया था।

अपने सेवको द्वारा त्याग दिये जाने पर भी वह हताश नही हुआ। अपने विक्रम तथा धन आदि के दान द्वारा मार्ग के लुटेरो को एक ओर हटाता हुआ वह विधि-विधान द्वारा निश्चित दीर्घजीवी व्यक्ति के समान समस्त विघ्नो को सकुशल पार कर गया।

सिंह के पजे जिनसे कि पहाडी और वृक्षो से युक्त वनो की सघनता चिरकाल से सुरक्षित होती चली आई है, समय के प्रभाव से शिशु के गले मे झूलते-से दिखाई पडते हैं और हाथी के दाँत जिनसे कि वह युद्ध के समय अस्त्रो का काम लेता है वही खेल के समय खिलाडी द्वारा तोड दिये जाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि ससार मे किसी का भी महत्वपूर्ण पद चिरस्थायी नही हो सका है। विक्रम, त्याग, यश और प्रज्ञा आदि जितने भी मानवी सद्गुण हैं वे विचित्र गतिशील भगुर जीवन मे कदापि चिरस्थिरता नही प्राप्त कर सकते। जब कि प्रतापी सूर्य भी निरन्तर अपनी स्वाभाविक गति मे परिवर्तन लाता हुआ उग्रता को छोडकर मृदुता को अपना लेता है तब फिर साधारण मनुष्य की शक्ति मे चिरस्थिरता किस प्रकार आ सकती है।

कुछ भी हो, जिस समय राजा सुस्सल ने शत्रुओ द्वारा जलाई गई अट्टालिका को देखा उस समय उसे बडा शोक हुआ। वह अधिक समय तक उसे न देख सका। यद्यपि कुपित होने के कारण उसके साथ के सैनिक मौन साधे रहे तथापि वह उसकी ओर ध्यान देकर सीधा लोहर के पर्वत पर चढ गया। वह उस समय इतना लज्जित हो गया था कि अपने परिवार के व्यक्तियो से मिल सकना भी उसके लिए कठिन हो गया था। किसी प्रकार वह शयनागार मे पहुँच कर चुपचाप लेट गया और दिन-रात अपने जीवन की दुर्घटनाओ को सोच-सोच कर दु खानल मे जलने लगा था।

उस समय उसका शयनागार एक ऐसा अन्धकारपूर्ण स्थान था जहाँ कि दिन मे भी दीपक जलाने

की आवश्यकता होती थी। वह उसी स्थान में पड़ा रहने लगा और उदारता के वशीभूत होकर भोजन के समय अपने सेवकों से ही मिलता रहा। शरीर में उबटन लगाना, घोड़े पर सवार होना, नृत्य गीत जैसी मनोरंजक कलाओं को अपने यहाँ स्थान देना तथा हास्य, विनोद आदि करना जितने भी चित्त को प्रसन्न करने वाले कार्य हैं, उसने उन सबको तुरत छोड़ दिया था। वह बड़े कष्ट के साथ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा दिखाये गये तटस्थता, मूर्खता, हिंसा-परायणता, द्रोह-परायणता तथा अन्य असद्भावनापूर्ण व्यवहारों को क्रम से स्मरण करने लगा था और अपनी रानी से भी कहने लगा था। अतुल धनराशि का अधिकारी होने के कारण उसने अपना देश छोड़कर उसका अनुगमन करने वाले व्यक्तियों पर विशेष रूप से अनुग्रह करना उचित समझा और विशेष दया का भाव प्रदर्शित करते हुए धन देकर उन्हें पूर्ण रूप से धनवान् बना दिया।

ज्यों ही वह काश्मीर छोड़कर चला आया था त्योंही प्राचीन राजभवन के सामने समस्त सैनिकों के साथ मंत्रिमण्डल जमा हो गया था। मंत्रियों, अश्वारोहियों, सामन्तों, तंत्रियों तथा नागरिकों की सम्मति से नगराधिकारी जनकसिंह उस समय सबों का प्रधान बनाया गया था। इसके बाद मल्लकोष्ठक आदि भिक्षाचर के मित्र भी आये और चले गये। वहाँ जाकर उन सबों ने विश्वास-स्थापन के लिए उसके पुत्र और भतीजे को प्रतिभू (जमानतदार) स्वरूप बना देने पर उसे बाध्य किया। फिर भयातुर स्त्रियों, बच्चों और जनसमूह-पूरित नगरी में उस रजनी का प्रवेश होता है जिसमें कि कहीं कोई राजा न था और सभी दिशाओं में भय का साम्राज्य छाया हुआ था। उस राजा से शून्य नगरी में कुछ असहाय व्यक्ति मार डाले गये और कुछ व्यक्तियों के घरों में फिर से आग लगा दी गई।

किसी प्रकार उस रजनी का भी अन्त हुआ और बड़े धूमधाम से उस नगरी में भिक्षाचर का स्वागत किया गया। समस्त सामन्त, मन्त्री, एकांग और सैनिकों का समूह उस विजयी भिक्षाचार से बड़े प्रेम के साथ मिलने लगा। उस समय उसके क्षितिज-पर्यन्त फैले हुए सैनिक भिन्न-भिन्न मार्गों से गर्जना करते हुए चल रहे थे और अश्वारोहियों से घिरा हुआ वह भिक्षाचर एक उत्तम घोड़े पर सवार था और वह घोड़ा भी अपनी स्वाभाविक चंचलता के कारण नृत्य करता हुआ-सा चला जा रहा था।

उस समय भिक्षाचर लगाम को पकड़े हुए बाँये हाथ से टेढ़े हुए शिरोवेष्ठन (पगड़ी) को ऊपर की ओर उठाकर ठीक कर रहा था और उसके स्वेदयुक्त दक्षिण कर से दृढतापूर्वक पकड़े हुए खड्ग से परावृत्त हुए किरण-समूह से कर्ण-स्थित कुण्डल चमक रहे थे। उसने बहुमूल्य एवं दृढतर कवच शरीर पर धारण किया था। वह कवच उसकी ग्रीवा को कष्टप्रद हो रहा था। उसका मुख-मण्डल अत्यन्त तेजस्वी और उग्र दिखाई पड़ रहा था। उसकी भौंहें टेढ़ी और ललाट की ओर ऊँची चढ़ रही थीं। वह बाजार में लूटमार करने वाले मनुष्यों को तिरस्कारपूर्वक फटकार रहा था और अपने मस्तक तथा नेत्रों के संकेत से भयभीत नागरिकों को आश्वासन दे रहा था। उसके रणवाद्यों की भीषण ध्वनि से नागरिकों के आशीर्वाद तथा जयघोष दब जाते थे और लोगों के कान बधिर होने लगे थे।

जिस प्रकार दाई छोटे से शिशु के समीप निरन्तर बनी रहती है। उसी प्रकार मल्लकोष्ठक भी भिक्षाचर के समीप रहकर सभी कार्यों में उसका उपदेशक बन गया था। भिक्षाचर से मिलने के लिए जितने भी व्यक्ति आये उन सब के सम्बन्ध में "ये आपके पिता के मित्र थे। जब आप शिशु थे

तब यही आपको अपनी गोद मे ले-लेकर खेलाया करते थे। सत्य तो यह है कि यही प्राप्त किये गये राज्याधिकार के मूलाधार हैं।" इसी प्रकार के वाक्यो का प्रयोग कर उसने उससे उन सब का परिचय कराया था।

इस प्रकार काश्मीर राज्य मे प्रवेश कर भिक्षाचर सर्वप्रथम जनकसिंह के भवन पर गया और कुछ दिन पूर्व उसने जिस कन्या के साथ भिक्षाचर का विवाह करना निश्चय किया था उस कन्या को पत्नी के रूप मे ले आया। यहाँ यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि जब तक उसने उस कन्या को पत्नी के रूप मे नही प्राप्त कर लिया था तब तक उसने राज्याधिकार प्राप्त कर राजोचित गौरव प्राप्त करने के लिए राजभवन मे नही प्रवेश किया था।

जबकि गर्भ-स्थित शिशु पर स्त्रियाँ अपनी समस्त आशाओ को स्थापित कर प्रसन्नता प्रकट करती हैं उस दशा मे यदि उसने अपने नष्ट कुल का पुनरुद्धार कर प्रसन्नता के भावो को प्रकट किया था तो उचित ही किया था, अतएव किसी को भी उस पर अथवा उसकी सफलता पर उपहासात्मक भाव नही प्रकट करना चाहिए। भिक्षाचर के इस आश्चर्यजनक वृत्तान्त पर किसी भी विजयाभिलाषी व्यक्ति को उपहास की दृष्टि से नही देखना चाहिए। सम्भव है कि उस समय भी उन्हे शत्रुओ के बीच ही रहना पड रहा हो फिर भी उच्च विजयाकांक्षा के कारण वे उन समस्त शत्रुओ को चित्रलिखित से ही समझने लगते हैं। विजयाभिलाषी मनुष्यो के विचार और कार्य ही विचित्र हुआ करते हैं।

सुस्सल ने जिस समय काश्मीर राज्य को छोडा था उस समय शोषण करके ही छोडा था। यही कारण था कि काश्मीर का राज्याधिकार न रहने पर भी वह धनपति कुबेर के समान ही माना जाता था। कुछ भी हो, जो कुछ शेष रह गया था उसी को लेकर नवीन राजा भिक्षाचर परम प्रसन्नता के भावो को प्रकट करने लगा था। अस्त्र-शस्त्र, कवच, तलवार और घोडे आदि जो कुछ भी राजलक्ष्मी के रूप मे रह गये थे उनकी भी संख्या कम न थी। जब राजा भिक्षाचर, डामरो, लुटेरो और मंत्रियो ने यह समझ लिया कि वे सब पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो चुके हैं तब उन सबो ने उन समस्त वस्तुओ को परस्पर बँटवारा कर लिया।

ग्रामो मे ही जीवन बिताने वाले दस्यु जो कि पिशाचो के समान भयानक दिखाई पडते थे, वे सब राजधानी मे रह-रहकर स्वर्ग का-सा सुख अनुभव करने लगे थे। राजसभा मे भी राजा भिक्षाचर का कोई विशेष गौरव अथवा प्रताप नही प्रकट होता था। वहाँ भी वह उन्ही लम्बे-लम्बे कम्बलो के वस्त्र धारण किये हुये ग्रामीणो से घिरा रहता था। जब वह अपने साथ के डामरो से मिलता तो उस समय ऐसा विचित्र भाव प्रकट करता कि उससे वे उसके प्रति अधिक श्रद्धालु हो जाते थे। उनकी उन श्रद्धा-परायणता का यह परिणाम हुआ कि वह जनसाधारण में अवतार के नाम से प्रसिद्धि-लाभ करने लगा था। सभी कहने लगे थे कि हो न हो, भिक्षाचर भी ईश्वर का ही एक अवतार है। डामरो का समूह तो इतना अन्धविश्वासी हो गया था कि वह उसे असंदिग्ध भाव से अवतारी पुरुष मानने लगा था। इतना सब होते हुए भी वह भिक्षाचर राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्यों मे निरन्तर भूल करने लगा था। इसका मुख्य कारण यह था कि उसने कभी किसी को राज्य का शासन करते हुए नही देखा था। जिस प्रकार किसी योग्य चिकित्सक के समीप रहकर औषधियो के प्रयोग का ढङ्ग न सीखने वाला नवीन चिकित्सक औषधियो के प्रयोग मे नित्य भूल करता रहता है और अपने उस व्यवसाय मे असफलता का ही दर्शन पाता है उसी प्रकार भिक्षाचर भी असफल होने लगा था। कुछ भी हो

जब जनकसिंह ने अपनी भतीजी का विवाह उसके साथ कर दिया तब कम्पनाधिपति तिलक ने भी अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया और इस प्रकार उसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर उसके पक्ष को ग्रहण कर लिया।

राजपुरी के शासक का कटकवारिक (एक उच्चपदस्थ राजकर्मचारी) जुग जिस समय उच्चाधिकार प्राप्त कर पादाग्र का अधिकारी बना दिया गया उस समय उसने अपने को परम धन्य समझा और फिर राजा भिक्षाचर के हितों की उपेक्षा करता हुआ वह निरन्तर अपने ही हितों के साधन में तत्पर रहने लगा। सत्य तो यह था कि वास्तविक राजसत्ता प्रधान मंत्री (सर्वाधिकारी) बिम्ब के ही अधिकार में थी। भिक्षाचर तो केवल नाम मात्र के लिए राजा की पदवी को पाकर अपने को सुखी समझ रहा था।

बिम्ब एक ऐसा व्यक्ति था जिसने अपना समस्त अधिकार वेश्याओं के अधीन कर रखा था और नित्य व्यभिचार के मार्ग पर चलना ही सुख-सधिन का उपाय समझ लिया था। उसके जीवन का आदर्श किसी भी दृष्टिकोण से प्रशंसनीय नहीं था। इतना अधिक पतित होने पर भी उस समय तक वह सज्जन और दुर्जन को समझ सकने में पारगत था। दर्यक का सौतेला भाई ज्येष्ठपाल था। उसमे विचित्र शूरता थी। अपनी उसी शूरता के कारण उसने भी राजा भिक्षाचर के विश्वास-पात्रों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने का सौभाग्य-लाभ कर लिया था। जिस प्रकार मधुमक्खियाँ कमल के आसपास उड-उडकर चक्कर काटने लगती हैं और फिर उसी पर बैठ जाती हैं उसी प्रकार भिक्षाचर के पितामह के समय के मूर्तामिश्च आदि मंत्री उसकी राजलक्ष्मी की परिक्रमा करते हुए उसके समीप आने लगे थे।

राजनीति-सम्बन्धी ज्ञान से शून्य होने के कारण भिक्षाचर मे भोलापन ही अधिक था। उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठाने वाले मंत्री अपने कर्तव्य-पालन मे नित्य असावधान रहा करते थे। मंत्रियों के असावधान होने के कारण उग्र स्वभाव वाले डामर प्रबल होकर राज्य की प्रजा को डाकुओं के समान लूटने लगे थे। परिणाम यह हुआ कि भिक्षाचर के अधिकार मे आने वाले उस नवीनतम राज्य का प्रारम्भ से ही अब पतन होने लगा था। एक से एक बढकर नवीन सुन्दरी युवती स्त्री के सम्पर्क मे, एक से एक बढकर मधुर सुस्वाद भोजन-सामग्री के रसास्वादन मे और एक से एक बढकर आनन्दवर्द्धक राजसुखों के उपभोग में राजा भिक्षाचर पड गया था। इसीलिए वह राज्य-शासन-सम्बन्धी कार्यों को देखता भी नहीं था।

सुखों के उपभोग मे वह इतना अधिक आसक्त हो गया था कि उसे अपनी उन्नति के कार्यों से भी घृणा-सी होने लगी थी। जिस प्रकार अधिक वर्षा के समय लोग निद्रा के वशीभूत हो जाते हैं उसी प्रकार वह अधिक मदिरापान के कारण मदालस हो जाता था। जिस समय मन्त्रिमण्डल राज-सभा मे उसकी उपस्थिति की प्रतीक्षा करता था। उस समय वह मदिरापान कर सो जाना चाहता था, इसलिए राजपुरुषों द्वारा वह धक्का मार-मार कर राजसभा में पहुँचाया जाता था। वहाँ पर पहुँचते ही यदि कोई मंत्री बडे गर्व के साथ उसे सम्बोधन करते हुए सहानुभूति-मिश्रित कठोर शब्दों का प्रयोग करता तो वह उससे तनिक भी अप्रसन्न नही होता था, अपितु अपने भोलेपन के कारण वह उसे अपने पिता के ही समान मानकर उसके प्रति श्रद्धालु हो जाता था।

वेश्याओं का उच्छिष्ट भोजन ग्रहण कर उदर से पोषण करने वाले भ्रष्टाचार-परायण व्यक्तियों द्वारा वह नित्य घिरा रहता था। वे सब जैसे थे वैसे ही उनके विचार भी थे। जिस प्रकार निरक्षर

व्यक्ति को साक्षर बनाने का प्रयत्न किया जाता है उसी प्रकार वे सब भ्रष्टचारी व्यक्ति भी उस भिक्षाचर को भट्टचेटोचित चेष्टाओ (वेश्याओ के सेवकों अर्थात् भड़ुओ के योग्य कार्यों) में प्रवीण बनाने का प्रयत्न करने लगे थे। जिस प्रकार जल के ऊपर खींची गई रेखा तुरन्त नष्ट हो जाती है उसी प्रकार उस भिक्षाचर के विचारो की स्थिरता भी नष्ट हो जाती थी। किसी भी विचार में वह स्थिर नही रहता था। बाते भी ऐसी किया करता था जिनका कि कुछ भी महत्व न था। इसलिए उसके प्रियजन भी सभी कार्यों मे उसके आदेशो की अवहेलना करने लगे थे। उसके हृदय का खोखलापन इसी से प्रमाणित है कि वह कभी कोई मौलिक बात अथवा अपनी कोई भावना नही प्रकट करता था। जैसा मन्त्री कहते थे वैसा वह भी कहता था। उनके प्रतिकूल कहना वह किसी भी दशा मे उचित नही समझता था।

दुष्ट स्वभाव वाले मन्त्री उस भोले भिक्षाचर को अपने-अपने भवनो में ले जाते थे। वहाँ ले जाकर उत्तम-उत्तम भोजन-सामग्रियो द्वारा उसका स्वागत करते थे और जिस प्रकार पितृहीन धनी युवक के साथ दुष्टो द्वारा व्यवहार किया जाता है उसी प्रकार उसके साथ व्यवहार करते थे। प्रधान मन्त्री बिम्ब की स्त्री परम सुन्दरी थी। वह भिक्षाचर पर मुग्ध हो चुकी थी। जब कभी भिक्षाचर बिम्ब के भवन मे जाता और भोजन करने लगता तब वह उसके समीप जाती और जिस प्रकार कामातुर घोडी अपने प्रेमी घोडे के सामने से घास लेकर भाग जाती है उसी प्रकार वह भी भिक्षाचर के हाथ से उसका ग्रास छीन कर भाग जाती थी और फिर अपने पति की दृष्टि को बचाकर कुच, वक्ष और कटाक्ष के प्रदर्शन द्वारा उसके हृदय को व्याकुल बना देती थी। राजा होने के बाद भिक्षाचर का चरित्र जैसा भ्रष्ट हो चुका था उसका वर्णन किया जा चुका है। अब उसके सहायकों का वृत्तान्त कहा जाता है। भिक्षाचर के प्रधान सहायक पृथ्वीहर और मल्लकोष्ठक थे। जैसे ही राज्याधिकार प्राप्त हुआ वैसे ही ये दोनो परस्पर द्वेष के वशीभूत हो गये। परिणामस्वरूप दोनो ही परस्पर लडने लगे। उनके उस कलह से कभी-कभी समस्त राजधानी भय से कांप उठती। जब भिक्षाचर ने उनके बढ़ते हुए मनोमालिन्य की भयकरता का अनुभव कर लिया तब उसे भी बडी चिन्ता होने लगी। उसने तुरन्त उन दोनो के भवनों मे जाकर उनमे मैत्री-भाव बढाने का प्रयत्न किया। उसने यहाँ तक प्रयत्न किया कि वे दोनो अपनी सन्तानो का एक-दूसरे के साथ विवाह कर परस्पर प्रेमपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर ले, किन्तु अपने-अपने हृदय मे महत्वाकांक्षा को धारण करने के कारण उन्होंने उसकी एक भी न सुनी और अपने द्वेष-भाव के कारण पूर्ववत् शत्रुता के भावो को उचित समझा।

जब भिक्षाचर ने स्वय पृथ्वीहर के वश मे उत्पन्न होने वाली कन्या के साथ विवाह कर लिया तब तो मल्लकोष्ठक के क्रोध की सीमा न रही। भयानक क्रोध के आवेश मे आकर उसने स्पष्ट रूप से भिक्षाचर को त्याग दिया। काने जनक ने भी यह भुला दिया कि वह राजा भिक्षाचर का श्वसुर है और उससे द्रोह करना आरम्भ कर दिया। इतना ही नही षड्यन्त्र की रचना करते हुए उसने ओजानन्द जैसे ब्राह्मण मन्त्रियो को राजा के विरुद्ध आचरण करने पर विवश कर दिया। परिणाम यह हुआ कि राजा भिक्षाचर जो कि राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्यों से नित्य तटस्थ रहा करता था और जिसका जीवन व्यभिचारी, लम्पट और दुष्ट स्वभाव वाले सेवको के ही केन्द्र मे बंधा-सा रहता था, बडी भयानक मानसिक उलझन में पड गया। वह जो कुछ भी करता वही अव्यावहारिक-सा हो जाता, इसीलिए यत्र-तत्र-सर्वत्र उसकी निन्दा होने लगी थी।

जिस राज्य की प्रजा के स्वामी डामर बन गये थे और जहाँ ब्राह्मणों की स्त्रियों ने चाण्डालों के हाथ से किये गये प्रहारों को सहन किया था वहाँ कौन-कौन अन्य उपद्रव न हुए होंगे। उस समय जब कि पृथ्वी पर कोई राजा नहीं रहता अथवा असंख्य व्यक्तियों को राज्याधिकार या राजपद मिल जाता है, तब घोर अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है, मानव-जीवन का समस्त व्यापार अस्त-व्यस्त हो जाता है और यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि किस समय कैसे संकट का सामना करना पड़े।

राजा भिक्षाचर के शासन-काल में दीन्नार नामक प्राचीन सिक्कों का प्रचलन एकदम बन्द हो गया था। उनके स्थान में नये सिक्के प्रचलित किये गये थे। यदि कभी कोई प्राचीन सिक्कों को बेचना चाहता था तो उसके एक सौ दीन्नारों को बेचने पर नवीन सिक्के अस्सी मिलते थे। इस प्रकार राज्य का शासन करने पर जब कुछ दिन बीत गये और राजा भिक्षाचर में नये प्रकार का राजोन्माद उत्पन्न हो गया तब उसने अपने प्रधान मन्त्री बिम्ब को एक बड़ी सेना के साथ राजपुरी के मार्ग से जाकर लोहर प्रान्त के विरुद्ध सुस्सल पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया।

इसके बाद उसने सोमपाल के साथ तुरुष्क-सेना की सहायता प्राप्त करने के लिए सल्लार विस्मय के समीप जाना निश्चय किया और तदनुसार उसके समीप जाकर उसके साथ मित्रता कर ली। जिस समय उसने सल्लार विस्मय के साथ मित्रता की थी उस समय तुरुष्कों के प्रत्येक अश्वारोही सैनिक ने एक-एक रस्सी दिखाते हुए बड़े दर्प के साथ कहा था "इस रस्सी में बाँधकर मैं सुस्सल को घसीटते हुए ले आऊँगा।" काश्मीरियों, खशों और तुरुष्कों के एक साथ मिल जाने पर सभी को विश्वास हो गया कि लोहर प्रान्त में रहने वाले सुस्सल की बात ही क्या है, ये सब चाहेंगे तो समस्त संसार की प्रत्येक वस्तु को जड़ से उखाड़ कर फेंक देंगे।

प्रधान मन्त्री बिम्ब राजा भिक्षाचर जैसे उन्मत्त हाथी के लिए अंकुशधारी महावत के समान था। उसके रहते हुए उच्छृंखल होने का अवसर बहुत कम मिला करता था, किन्तु ज्योंही वह काश्मीर छोड़कर चला गया त्यों ही राजा भिक्षाचर एकदम निरंकुश हो गया। इसके बाद उसने सभी मर्यादाओं का उलंघन कर डाला और भयानक रूप से उच्छृंखल होकर मूर्खतापूर्ण कार्य करने में ही अपने जीवन को अर्पित कर दिया। अपने पति बिम्ब के रहने पर उसकी पत्नी भिक्षाचर से अधिक नहीं मिल पाती थी। उसके लोहर प्रान्त की ओर प्रस्थान करने पर वह अधिक प्रसन्न हुई, उसने बड़े प्रेम के साथ भिक्षाचर को अपने भवन पर आमन्त्रित किया और यथोचित रूप से स्वागत कर उसे अपनाया भी।

इसके बाद रुचिकर भोजन आदि से सेवा कर आलिंगन-दान द्वारा उसे पूर्ण रूप से प्रसन्न किया। फिर तो वह उसी स्त्री के भवन पर ही रहकर जीवनोपयोगी भोगों में आसक्त रहने लगा। मन्त्री की स्त्री ने भी अपने जीवन को सफल समझा। परिणाम यह हुआ कि राज्य में कहाँ क्या हो रहा है इसका ज्ञान तक भी उस राजा भिक्षाचर में न रहा। सत्य है कि जिसका पतन-काल समीप आ चुका हो वह भला कब सांसारिक अप्रिय आलोचनाओं अथवा लज्जाजनक अपवादों से विचलित हो सकता है।

उस स्त्री के यहाँ वह लम्पट प्रेमी के समान भोजन करने, मिट्टी, काँसे और पीतल के वर्तनों को बजा-बजा कर आनन्द अनुभव करने में भी लज्जित नहीं होता था। राजोचित मर्यादा के अनु-

भार उसमे जो गौरव होना चाहिए था वह भी न रह गया था। उस स्त्री के सहवास में ही उसने जीवन का सारा गौरव समझ रखा था। धीरे-धीरे दिन बीतने लगे और वह अपनी सत्ता को भी खोने लगा। अन्त मे वह समय आया जब कि उसका समस्त वैभव नष्ट हो गया और उदर-पोषण के लिए भोजन मिल सकना भी कठिन होने लगा। उसकी दुर्दशा को देखकर जिस जनता ने सर्वप्रथम धन-लिप्सा, कठोरता और अन्य पाप-परायणता के कारण सुस्सल को निन्दनीय घोषित किया था उसी जनता ने पुन उसकी (सुस्सल की) प्रशसा करना आरम्भ कर दिया था। राज्य की वही प्रजा, जिसने सुस्सल के विरुद्ध षड्यन्त्र किया था, विप्लव को सफल बनाया था, उसकी विशेष रूप से धनहानि की थी, उसके सम्मान मे बट्टा लगाया था, और जो व्यवहार नही करना चाहिए, वह भी किया था, पुन उसके काश्मीर मे प्रत्यागमन की आकाक्षा करने लगी थी। उपर्युक्त प्रतिकूलता और अनुकूलता के भावो का क्या कारण हो सकता है यह आज तक समझ मे नही आ रहा है। स्पष्ट प्रमाणो का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए नेत्र आज भी लालायित हो रहे हैं। जितना विचार किया जाता है उतना ही इस प्रश्न का उत्तर पाने मे एक नवीन प्रकार की उलझन सामने आ जाती है। यह निश्चयपूर्वक कह सकना कठिन हो जाता है कि किन कारणो से काश्मीर की प्रजा राजा सुस्सल से असतुष्ट हो गई थी और पुन. किन कारणो से प्रसन्न होने लगी थी। एक क्षण मे उसने राजा सुस्सल के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण व्यवहार करना उचित समझ लिया था और पुन. एक ही क्षण मे भूतपूर्व समस्त घटनाओ को भूलकर उसके प्रति सद्भावनापूर्ण अनुराग प्रकट करना आरम्भ कर दिया था। इस सम्बन्ध मे यदि कुछ कहा जा सकता है तो केवल इतना ही कि जन-साधारण का स्वभाव पशुओ के समान ही हुआ करता है। अतएव जिस प्रकार पशुओ द्वारा किये गये किसी भी कार्य का कोई कारण नही होता है उसी प्रकार जनसाधारण द्वारा किये गये कार्यों को भी कारणरहित समझ लेना चाहिए।

कुछ भी हो जब भिक्षाचर अपने राजोचित पद-गौरव को नष्ट करता हुआ इन्द्रियजनित काम-वासना को चरितार्थ करने मे तल्लीन हो गया और प्रधान मत्री बिम्ब के लोहर प्रान्त की ओर चले जाने से राज्य का प्रबन्ध भी शिथिल पडने लगा। तब मल्लकोष्ठक तथा जनक आदि जितने भी भिक्षाचर के विरोधी थे सभी ने गुप्त रूप से काश्मीर राज्य का त्याग करने वाले सुस्सल के पास दूत भेज दिये और उन्ही दूतो के द्वारा यह कहला भेजा। "समय सभी प्रकार से आपके अनुकूल हैं अतएव काश्मीर राज्य पर पुन अधिकार प्राप्त करने के लिए आपको नवीन उत्साह के साथ प्रयत्न करना चाहिए।"

जिस समय राजा सुस्सल और भिक्षाचर के विरोधियो के बीच इस प्रकार की गुप्त वार्ता चल रही थी उसी समय तिलक के अनुचरो ने अक्षोसुवा नामक अग्रहर को लूट लिया। जितने ब्राह्मण थे सभी को अनेक प्रकार के सकटो का सामना करना पडा। जब उन सबो के लिए सुरक्षा का कोई भी उपाय न किया गया, तब उन्होने राजा भिक्षाचर के प्रति असतोष प्रकट करते हुए प्रायोपवेशन करना आरम्भ कर दिया। उन सबो के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए जितने भी अग्रहारधारी ब्राह्मण थे, सभी ने उनके उस प्रायोपवेशन को सफल बनाने के लिए प्रायोपवेशन मे सम्मिलित होना अपना कर्त्तव्य समझ लिया।

इस प्रकार उस समय प्रायोपवेशन करने वाले ब्राह्मणो की सख्या क्रमश. बढने लगी और जब वे सब अधिक सख्या मे हो गये तब विजयेश्वर-क्षेत्र मे उन सबका एक विराट् सम्मेलन हुआ।

जिसका परिणाम यह हुआ कि नगर में भी राजानुवाटिका के ब्राह्मणो ने प्रायोपवेशन करना आरम्भ कर दिया। इसके बाद ओजानन्द तथा अन्य प्रमुख ब्राह्मणो ने भी देव-मन्दिरो के पुजारियो तथा पुरोहित-परिषद् के सदस्यो को ऐसा उत्तेजित कर दिया कि वे भी गोकुल मे प्रयोपवेशन करने लगे।

जैसा विराट् सम्मेलन गोकुल के प्रागण मे उन समस्त मन्दिर के पुजारियो तथा पुरोहित-परिषद् के सदस्यो का हुआ था वैसा विराट् सम्मेलन उसके पूर्व और कभी नही हुआ था। देव-मन्दिरो की जितनी भी प्रतिमाएँ थी सभी उस प्रागण मे जमा कर दी गई थी। श्वेत छत्र, चामर और नाना प्रकार के वस्त्रो तथा अलकारो से सुसज्जित उन देव-प्रतिमाओ की प्रभा से समस्त प्रांगण जगमगा उठा था। उस स्थान पर एकत्रित हुए सभी ब्राह्मण कोलाहल कर रहे थे, नगाडे बजाये जा रहे थे और नाना प्रकार के अन्य वाद्यो की ध्वनि से दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थी।

जब उन समस्त ब्राह्मणो का प्रायोपवेशन और आन्दोलन अधिक बढने लगा तब राजा भिक्षाचर के दूत उन सब के समीप आने लगे और अपने बुद्धि-बल से समझाते हुए उन्हे शान्त करने का प्रयत्न करने लगे। उस समस्त दूतो के समझाने का प्रभाव कुछ भी न पडा। उनकी बातो को सुनकर ब्राह्मणो ने उत्तेजित होकर कहा "राजा भिक्षाचर से हमे कोई आशा नही है। हम सबो का वास्तविक कल्याण तब होगा जब वह लम्बी दाढी वाला इस काश्मीर राज्य मे आ जायगा।"

लम्बी दाढी वाले से उन सबका अभिप्राय राजा सुस्सल से था। जिस प्रकार अबोध बालक अपने खिलौने को समझते हैं उसी प्रकार वे भी राजा सुस्सल को समझने लगे थे, इसीलिए उन सबो ने बिना किसी विशेष विचार के उसके प्रति इस शब्द का प्रयोग किया था। इतना ही नही, उन सबो के उस प्रायोपवेशन-आन्दोलन को देखने के लिए जितने भी नागरिक दिन-प्रतिदिन अधिक सख्या मे गये उन सबो से भी प्रायोपवेशनकारी ब्राह्मण-पुरोहितो ने राजा भिक्षाचर के विरुद्ध जो कुछ भी कह सकते थे, मुक्तकण्ठ से कहा। उन सबके मुक्तकण्ठ से राजा भिक्षाचर के विरुद्ध योजना प्रस्तुत करने की बातो से पुरोहितो और नागरिको के मन मे प्रतिक्षण यही आशका प्रबल होने लगी कि कही उन सब पर राजा भिक्षाचर आक्रमण न कर दे। इसलिए वे भी अपूर्व साहस के साथ उससे युद्ध करने को तैयार हो गये। नगर का नगर जनकसिंह के वश मे हो गया था और वह राजा सुस्सल को पुनः काश्मीर राज्य के सिंहासन पर बैठाना चाहता था इसीलिए जनता के हृदय मे भय उत्पन्न होने पर भी साहस की मात्रा उत्तरोत्तर बढती जा रही थी।

जब राजा भिक्षाचर के दूत अग्रहारधारी ब्राह्मणो को शान्त न कर सके तब राजा भिक्षाचर ने स्वय उन समस्त ब्राह्मणो के समीप जाना निश्चय किया। तदनुसार वह सर्वप्रथम विजयेश्वर-क्षेत्र मे गया। वहाँ पर एकत्रित हुए समस्त ब्राह्मणो से मिला और प्रायोपवेशन-आन्दोलन बन्द कर देने के लिए उनसे आग्रह भी किया, किन्तु उन समस्त ब्राह्मणो ने उसके उस आग्रह को ठुकरा दिया। फिर वह अन्य प्रकार के सदुपायो द्वारा उन्हे शान्त करने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु उसके समस्त प्रयत्न असफल सिद्ध हुए। उसी समय उन समस्त ब्राह्मणो के सामने ही तिलक ने राजा भिक्षाचर से कहा "यदि आप इन समस्त प्रायोपवेशनकारी ब्राह्मणो को शान्त करना

चाहते हैं तो तुरन्त डामरो को मरवा डालिए ।" उस समय वह स्वस्थ था और उसकी बुद्धि शुद्ध थी, इसलिए उचित और अनुचित कार्य का विवेचन कर सकने मे वह पूर्ण रूप से समर्थ था । इसीलिए उसने तिलक के उस परामर्श के अनुसार कार्य करना किसी भी दृष्टिकोण से उचित नही समझा ।

जिस समय पृथ्वीहर तथा अन्य लवन्यो ने तिलक की उक्त मनोवृत्ति के वृत्तान्त को राजा भिक्षाचर से सुना, उस समय उन सवो ने उसके प्रति अपने हृदय मे अटल विश्वास के भावो को स्थान दे दिया, किन्तु तिलक से निरन्तर भयभीत रहना भी उचित समझ लिया । इसके वाद राजा भिक्षाचर प्रयाग के भानजे लक्ष्मक से रुष्ट हो गया था । लक्ष्मक राजभवनाध्यक्ष के पद पर कार्य करता था । जब उसे यह ज्ञात हुआ कि राजा भिक्षाचर उसे वन्दी वनाकर कारागार मे डाल देना चाहता है तव वह अवसर पाकर भाग गया और राजा सुस्सल की शरण मे पहुँच गया ।

विजयेश्वर-क्षेत्र से नगर मे लौट कर आते ही राजा भिक्षाचर ने तुरन्त उन समस्त नागरिको को, जो कि विना किसी विशेष कारण के ही उससे रुष्ट हो गये थे, एक स्थान पर एकत्रित किया और एक प्रकार का अधिवेशन करते हुए उन सवो को समझाने का प्रयत्न किया । यद्यपि उस समय उसने जो कुछ कहा था वह सत्य से अधिक सम्वन्ध रखता था तथापि जनता के हृदय मे उसके प्रति जो अश्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी उसके कारण उसकी समस्त वाते व्यर्थ हो गई । उसने भी यह समझ लिया कि इन समस्त विद्रोहियों को समझा कर शान्त कर सकना वडा कठिन कार्य है ।

इतने ही समय के भीतर लोहर प्रान्त मे स्थित राजा सुस्सल पर आक्रमण करने के लिए सोमपाल तथा विम्व आदि पर्णोत्स नामक स्थान मे पहुँच गये । ऐसे ही समय मे कल्ह के वश मे उत्पन्न हुआ कालिजर का राजा पद्मरथ राजा सुस्सल के साथ कल्ह तथा कल्ह के परिवार वालो द्वारा की गई पूर्व की मित्रता को स्मरण कर उससे मिलने के लिए आ गया । इसके वाद वैशाख शुक्ल त्रयोदशी के दिन स्वाभिमानी राजा सुस्सल अपने शक्तिशाली शत्रुओ से परम पराक्रम के साथ युद्ध करने लगा । जिस किसी भी व्यक्ति ने उस समय उसके युद्ध-कौशल तथा अपूर्व वल-विक्रम का अवलोकन किया था वह आज भी वर्णन करते हुए कहता है कि राजा सुस्सल के हृदय मे अपमानजनित जितनी भी क्रोधाग्नि थी, उसे उसने सर्वप्रथम पर्णोत्स के युद्ध मे ही शान्त कर लिया था ।

जिस प्रकार वाहर गया हुआ सिंह वन-प्रदेश में आते ही अपनी समस्त शक्तियो को प्राप्त कर वलवान् हो जाता है उसी प्रकार पर्णोत्स के युद्ध से लौटते ही राजा सुस्सल ने अपनी समस्त शक्तियों को पुनः प्राप्त कर लिया था । उसके नैराश्यमय जीवन मे फिर से नवीन आशाओ का सचार होने लगा था । उसने अमित शक्तियो को पाकर तुरन्त तुरुष्को की सेना पर आक्रमण कर दिया था । उन सवो ने अपने साथ की जिन रस्सियो से उसे वाँध कर घसीटने का विचार किया था उन्ही रस्सियो से वाँध-वाँध कर उसने उन सवो को यमलोक पहुँचा दिया था । वितोला नदी के तट पर उसने जो भयानक युद्ध किया था उसमें उसने सोमपाल के मामा को उसी प्रकार समाप्त कर दिया था जिस प्रकार भूखा वेताल अपने मुख के ग्रास को तुरन्त समाप्त कर देता है । और कहाँ तक कहा जाय ? अपनी

थोडी-सी सेना से ही उससे शत्रु-पक्ष की विशाल सेना को मार-काट कर छिन्न-भिन्न कर दिया था। ऐसी दशा में उस पर आक्रमण करने का कौन साहस कर सकता था ?

काश्मीर-निवासियो की महिमा का वर्णन किन शब्दो मे किया जाय। उचित और अनुचित का ज्ञान मानो उनमे था ही नही। एक स्वामी के पक्ष से दूसरे स्वामी के विरुद्ध युद्ध भी करते और फिर अपनी ही हार से अपने किसी स्वामी का सम्मान बढाते तथा किसी स्वामी को अपमानजनक परिस्थिति मे छोड देते थे। जिस समय तुरुष्को के साथ सोमपाल युद्धभूमि से भाग गया था उस समय काश्मीरियो ने भी बडी निर्लज्जा के साथ बिम्ब के पक्ष को त्याग दिया था और बडी प्रसन्नता के साथ सुस्सल के पक्ष को ग्रहण कर लिया था। ये धृष्ट मनुष्य बडे विचित्र स्वभाव के प्राणी थे। एक दिन पूर्व उन्होंने जिस व्यक्ति के विरुद्ध युद्ध-यात्रा की थी और युद्धभूमि मे ललकारा भी था, उसी व्यक्ति के सामने अपना मस्तक झुकाने मे भी सकुचित नही होते थे।

दो-तीन दिन के बाद अपने पक्ष मे आ-आकर मिलने वाले डामरो तथा नागरिको के साथ राजा सुस्सल ने काश्मीर-राज्य पर पुनः आक्रमण करने के लिए प्रस्थान कर दिया। उसके प्रस्थान करने के पूर्व ही सहदेव का पुत्र राजपुत्र कल्हण क्रम राज्य के निवासी डामरो को एकत्र करने के लिए चला गया था। राजा भिक्षाचर की सेना मे जितने भी अधिकारी थे, उन सब मे बिम्ब ही उसका अधिक विश्वास पात्र था, किन्तु उस बिम्ब ने भी भिक्षाचर का साथ छोड दिया और राजा सुस्सल के पक्ष को ग्रहण कर लिया। जनकसिंह के साथ जितने मत्री और तत्री थे, वे भी निर्लज्जापूर्वक राजा सुस्सल के पक्ष मे मिलते हुए देखे गये थे।

कण्डिलेत्र नामक ग्राम मे जन्म लेने वाला एक सैनिक था। अपने शुभ लक्षणो के कारण वह अधिक प्रसिद्ध हो गया था। मागिल नामक प्रान्त जहाँ कि किसी का भी निवास न था, वही वह रहा करता था। सुस्सल के समीप जाने वाले मनुष्यो को उसने रोकने का कुछ भी प्रयत्न नही किया था इसीलिए राजा भिक्षाचर ने पृथ्वीहर को साथ लेकर उसे दण्ड देने के लिए प्रस्थान किया था।

उस सैनिक पर विजय प्राप्त कर क्रोध के आवेश मे भिक्षाचर ने सुस्सल के समीप जाने का विचार करने वाले जनकसिंह की हत्या करने की योजना प्रस्तुत की थी, किन्तु हत्या करने के पूर्व ही समस्त वृत्तान्त जनकसिंह को विदित हो गया था। वह नगर मे रहने के कारण तुरन्त समस्त नागरिको, अश्वारोहियो तथा तत्रियो को एकत्र कर प्रबल वेग से भिक्षाचर के विरुद्ध खडा हो गया। वह समझ कर कि उसने राजसिंहासन को अपने अधिकार मे कर लिया है, राजा भिक्षाचर भी पृथ्वीहर के साथ शीघ्र गति से नगर की ओर चल पडा।

यद्यपि राजा भिक्षाचर के द्वारा उसे समझाकर शान्त करने का प्रयत्न किया गया था। तथापि समस्त प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हो गये थे। जनकसिंह ने एक भी बात नही सुनी थी और सदाशिव के मन्दिर के सामने वाले पुल पर बडे साहस के साथ भिक्षाचर के सैनिकों से युद्ध आरम्भ कर दिया था। जय और पराजय की चिन्ता को छोडकर जनकसिंह के सैनिक भी अपूर्व साहस के साथ युद्ध करते हुए दिखाई पडते थे। किसी न किसी प्रकार अपने भतीजे अलक के साथ पृथ्वीहर ने दूसरे पुल से आगे बढने का साहस किया था। पुल पार करने के बाद ही उसने जनकसिंह की समस्त सेना को नष्ट कर राजा भिक्षाचर को उस युद्ध मे विजयी बना दिया था।

जब समस्त तन्त्री, अश्वारोही और नागरिक इधर-उधर भाग गये तब अपने बन्धनों के साथ रात्रि मे जनकसिंह भी लोहर की ओर भाग गया। सवेरा होने पर ज्यो ही उसका पीछा करने के लिए राजा भिक्षाचर और पृथ्वीहर तैयारी करने लगे त्यो ही धृष्ट अश्वारोही तथा अन्य सैनिक उनके पक्ष मे आ मिले। पुरोहित-परिषद् के समस्त सदस्यो तथा ब्राह्मण-पुजारियो ने तुरन्त प्रायोपवेशन करना बन्द कर दिया और भयभीत होकर समस्त देव-प्रतिमाओ को अपनी बगल मे दाबे हुए वे उस स्थान से भाग गये। जो थोडे-से ब्राह्मण देव-प्रतिमाओ की सूनी टोलियो की रक्षा करने के लिए उस स्थान पर रह गये थे उन्होंने ज्यो ही प्रायोपवेशन बन्द कर देने की सूचना दे दी त्यो ही राजा भिक्षाचर ने उन्हे किसी भी प्रकार से कष्ट पहुँचाना अनुचित समझ लिया था।

जब हम देखते हैं कि एक दिन जिन अश्वारोहियो ने बडी संख्या मे जनकसिंह की सेना मे भाग लिया था, दूसरे ही दिन वे सब राजा भिक्षाचर की सेना मे भाग लेने लगते हैं तब हमे बडा आश्चर्य होता है। तिलकसिंह का पुत्र जो कि राजा भिक्षाचर का साला था, वह उन समस्त अधिकारो का अधिकारी बना दिया गया जिन सब का अधिकारी उसका पितृव्य जनकसिंह था। राजा भिक्षाचर के प्रताप से उसका भी प्रताप चमकने लगा था किन्तु उसे यह ज्ञान नही था कि जिसके प्रताप से वह जगमगा रहा है उसका अन्त समीप ही चला आ रहा है। कुछ भी हो, जनकसिंह के भाग जाने पर अपने विरोधियो के घोडे और भवन आदि नष्ट कर देने का अवसर राजा भिक्षाचर को मिल गया।

इतने ही समय के भीतर हुष्कपुर मे सुल्हण तथा सिम्व आदि ने एक बडी सेना को एकत्र कर तिलक आदि पर आक्रमण कर दिया था और पूर्ण रूप से उन सबकी शक्ति को छिन्न भिन्न कर अपने को विजयी बना लिया था। इसके बाद मल्लकोष्ठक और जनकसिंह आदि जितने भी प्रमुख व्यक्ति अपने सैनिको के साथ सुस्सल से मिलने आये थे उन सबो को तथा पर्याप्त सैन्य-बल पर अपना प्रभाव स्थापित करने वाले समस्त सामन्तो को साथ लेकर सुस्सल ने लोहर के मार्ग से प्रस्थान कर दिया था। देखते ही देखते दो तीन दिन के भीतर उसकी समस्त सेना सम्पूर्ण देश मे छा गई थी। इतना ही नही, वे सब नगर के समीप भी आ गये थे फिर भी शत्रु-पक्ष का कोई भी व्यक्ति उन सबो को नही देख पाया था।

जिस समय सुस्सल ने नगर के बाजार की गलियो मे प्रवेश किया था उस समय लम्बी दाढी, टेढी भौंहो और फूलती हुई नासिका के कारण उसके मुख की आकृति बडी भयावनी हो गई थी। जो कोई भी उसे देखता, वही उसके क्रुद्ध स्वरूप को देख कर भयभीत हो जाता था। उसका सामना करने के लिए जो थोडे से अश्वारोही और विश्वासघातक सैनिक आये थे वे सब उसको देखते ही भाग गये थे। इसी प्रकार और जितने भी सैनिक आये थे उनके पराजित हो जाने पर उसने उनकी बडी निन्दा की थी। सूर्य की प्रखर किरणो से तप जाने के कारण उसका समस्त शरीर काला पड गया था जिससे कि वह साक्षात् यमराज के समान भयानक दिखाई पड रहा था। जिन नागरिको ने सर्वप्रथम उसके साथ अनुचित व्यवहार किया था जब वे अपनी-अपनी शुभकामनाएँ प्रकट करते हुए पुष्पो की वर्षा करने लगे थे तब उसने उन सब के प्रति बडी घृणापूर्ण दृष्टि से देखा था। उसने बडी असावधानता के साथ अपने कवच को धारण कर रखा था। केवल नाम के लिए अपने कन्धे पर छोड़ रखा था। उसके लम्बे-लम्बे केश जो शिरस्त्राण के नीचे लटक रहे थे वे और उसके नेत्रो की

भौंहे सभी धूलि से धूसरित हो गई थी। अपने समस्त अश्वारोहियो के बीच वह तलवार को म्यान मे डाले हुए घोडे पर सवार दृष्टिगोचर हो रहा था। सभी दिशाओ से पृथ्वी को आच्छादित करने वाले उसके सैनिक सिंहनाद करते हुए भेरियाँ बजा रहे थे। इस प्रकार बल-विक्रम के साथ सुस्सल ने नगर मे प्रवेश किया था।

लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ सत्तानवे की ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया के दिन ठीक छ महीने बारह दिन के बाद सुस्सल ने पुन नगर मे प्रवेश किया था। राजभवन मे प्रवेश करने के पूर्व उसने भिक्षाचर का अनुसन्धान करना आरम्भ कर दिया था। इधर उसके नगर मे प्रवेश करने के पूर्व ही भिक्षाचर राजभवन से निकल कर भाग गया था। अनुसन्धान करते-करते सुस्सल क्षिप्तिका नदी के तट पर पहुँच गया था। वहाँ से उसने लवन्यो के साथ भिक्षाचर को देख लिया था। अपने शत्रुओ को नदी के तट पर आते हुए देख कर पृथ्वीहर के साथ भिक्षाचर शीघ्र गति से भागने लगा था किन्तु ज्यो ही मार्ग पर आया त्यो ही उसे अन्य लवन्य मिल गये थे। उन सबो के मिल जाने से ही उसमे फिर से साहस का सचार हुआ था और वह आगे न बढ कर जिधर से आया था उधर ही लौट पडा था।

राजा सुस्सल ने उसे युद्ध मे परास्त कर दिया था। पृथ्वीहर की ज्ञातिसिंह जो कि युद्ध मे घायल होकर पृथ्वी पर गिर पडा था, उसे बाँध लिया था। इन समस्त कार्यों को कर लेने के बाद सुस्सल ने राजभवन मे प्रवेश किया था। जैसे ही उसने राजभवन मे प्रवेश किया वैसे ही उसके मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह राजभवन तो ठीक उस वेश्या के समान है जिसे अभी अन्य पुरुष अर्थात् उसका विपक्षी भिक्षाचर भोगकर भाग गया है। ऐसा विचार आते ही राजभवन के प्रति उसके मन में एक प्रकार की विचित्र घृणा उत्पन्न हो गई।

काश्मीर राज्य को छोड देने के बाद भिक्षाचर पृथ्वीहर तथा अन्य लोगो के साथ पुष्पाणनाड नामक ग्राम की ओर चला गया। वह ग्राम सोमपाल के राज्य मे था। उसके काश्मीर राज्य से भाग जाने के बाद राजा सुस्सल ने समस्त डामरो को अपने पक्ष मे मिला लिया था और वट्ट के पुत्र मल्ल को खेरी का अधिकारी बना दिया था तथा इसी प्रकार हर्षमित्र को कम्पनेश का पद प्रदान कर दिया था। पूर्व मे किये गये अपकारो को स्मरण करते ही वह देश, काल तथा पात्र आदि को भूल जाता था। जिन लोगो ने उसका अपकार किया था उन पर दयालु होना उसके स्वभाव के विरुद्ध हो गया था। भिक्षाचर के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली गध को सहन कर सकने मे वह असमर्थ हो गया था। जिस राजसिंहासन पर भिक्षाचर बैठा था। उसने उसके असख्य खड कर डाले थे और फिर उन खडो को सेवको को दे दिया था।

डामरो मे से जिन्होंने अपनी शठता को नही छोडा था, उन्होंने धन प्राप्त कर लिया था और जो उस समय भी राजा सुस्सल से भयभीत हो रहे थे वे उसके विरुद्ध विप्लव करने का प्रयत्न निरन्तर करने लगे। राज्याधिकार से च्युत हो जाने के बाद भिक्षाचर अपने सहायक सोमपाल के राज्य मे रहने लगा था और उसके दान-मान द्वारा पुन शक्ति-सचार करने के प्रयत्न मे तत्पर हो गया था। विम्व जो कि सहायता पाने की लालसा से विस्मय के समीप गया हुआ था, उसके विरोधियो द्वारा उसके वन्दी बनाये जाने पर बडी वीरता से युद्ध कर परलोक सिधार गया था। विम्व के न रहने पर भिक्षाचर ने जो सबसे अधिक अनुचित कार्य किया था वह यह था कि निर्लज्जतापूर्वक उसकी स्त्री को अपनी रखेली बना लिया था।

शक्तिशाली पृथ्वीहर पुष्पाणनाड से चल कर शूरपुर मे युद्ध करने लगा था और थोडी-सी सेना के रहने पर भी उसने वट्ट के पुत्र को युद्ध मे पराजित कर भाग जाने के लिए विवश कर दिया था। वट्ट के पुत्र मल्ल के भाग जाने पर वह भिक्षाचर को पुन लौटा लाया था और डामरो पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से मडव राज्य के अन्तर्गत डामरो की भूमि की ओर चल पडा था। मख, जय्य आदि प्रमुख डामरो के अपने पक्ष मे मिल जाने पर उसने कम्पनेश हर्षमित्र को पराजित करने के लिए विजयक्षेत्र की ओर प्रस्थान कर दिया था।

वहाँ पर पहुँचते ही उसने युद्ध मे हर्षमित्र को पराजित कर दिया। जब एक भी सैनिक सहायता के लिए न रह गया तब हर्षमित्र ने विजयेश्वर को छोड दिया और भयभीत होकर भागते-भागते अवन्तिपुर मे शरण ले लिया। विजयक्षेत्र तथा समीपवर्ती नगरो और ग्रामो के निवासी भया-तुर होकर भागते-भागते चक्रधर के मन्दिर मे प्रवेश कर गये और उन्होंने अपनी स्त्रियो, बच्चो, पशुओ, और धन-धान्यो से उस स्थान को पूर्ण कर दिया। इसी प्रकार राजा सुस्सल के सैनिको ने भी अस्त्र-शस्त्र और अश्वो से उस स्थान को भर दिया था।

भिक्षाचर के सैनिक जो कि दिग्-दिगन्तर तक छाये हुए थे, वहाँ के जनसमूह को लूट लेने का विचार करने लगे और अपनी लालसा को चरितार्थ करने के लिए उन्होंने उन पर चढाई कर उन्हे घेर लिया था। सभी शरणार्थी मन्दिर के प्रागण मे एकत्र हो चुके थे और वह स्थान लकडी की दीवालो तथा फाटको के कारण इतना सुरक्षित था कि भिक्षाचर के सैनिक न तो उन्हे मार सकते थे और न बन्दी बना सकते थे। उसी सेना मे निर्घुट जाति का एक दुष्ट डामर था। उसका नाम जनकराज था। उसने कतिस्थली नामक ग्राम मे जन्म लिया था। जिस समय उसने अपने शत्रु कर्पूर नामक व्यक्ति को उन समस्त शरणार्थियो के बीच देखा उस समय उसने बडी निर्भयता के साथ उस स्थान मे अग्नि लगाकर अपनी मूर्खता को प्रदर्शित कर दिया था। वहाँ एकत्र हुआ असख्य जनसमूह देखते ही देखते जल कर भस्म हो गया था।

जिस समय अग्नि की ज्वाला सर्वप्रथम दृष्टिगोचर हुई थी उस समय जनसमूह से भयानक चीत्कार और करुण क्रन्दन सुनाई पडने लगा था। जिस स्थान पर सुई रखने तक की जगह न थी उस स्थान पर शत्रु के आगमन से भयभीत होने वाले घोडे अपनी-अपनी रस्सियो को तोड कर यमराज के वाहन भैंसे के समान दौडने तथा असख्य मनुष्यो को मृत्यु की शरण मे पहुँचाने लगे थे। गगन-मण्डल धुएँ और आग की चिनगारियो के कारण पिंगल वर्ण के पिशाच के समान दिखाई पड रहा था। अग्नि की ज्वालाएँ बिना धुएँ की अग्नि प्रकट करने के कारण ऐसा प्रतीत होती थी मानो अधिक उत्तप्त हो जाने के कारण स्वर्ण के मेघ ही फटे जा रहे हो।

अग्नि की लहराती हुई लपटे आकाश मे इस प्रकार दिखाई पडती थी मानो भयानक अग्नि-काण्ड के समय भागते हुए देवताओ की लाल पगडियाँ गिरती दिखाई पडती हो। जिस प्रकार वायु-मण्डल के अधिक उत्पन्न हो जाने पर गगा से भयानक शब्द उत्पन्न होता है उसी प्रकार बाँसो की गाँठो के चटखने से भयानक चटचटाहट उत्पन्न हो गई थी। चिनगारियाँ इतनी शीघ्र गति से गगन-मण्डल मे उड रही थी कि उन्हे देख कर यही अनुमान होता था मानो उस भयानक अग्निकाण्ड से भयभीत होकर असख्य आत्माएँ भागी जा रही हो।

शावको के विरह से, व्याकुल हुए पक्षियो के विलाप से, गगन-मण्डल और अग्नि से जलते हुए प्राणियो के विलाप से पृथ्वी-मण्डल प्रतिध्वनित होने लगे थे। जिस समय स्त्रियाँ विलाप करती हुई

अपने भाइयो, पतियो, माताओ और पुत्रो से लिपट-लिपट कर भय से अपने नेत्रो को बन्द कर रही थी उसी समय अग्नि की ज्वालाओ ने उनके जीवन को समाप्त कर दिया था। जो थोडे-से मनुष्य किसी प्रकार साहसपूर्वक वहाँ से निकल भागे थे उन्हे यमदूतो के समान बाहर खडे हुए निर्मम डामरो ने तलवार से काट-काट कर मार डाला था। बडे से बडे अग्नि-काण्ड मे इतने अधिक प्राणी नही नष्ट हुए थे जितने कि इस साधारण अग्नि-काण्ड मे देखते ही देखते प्राणी नष्ट हो गये थे।

जब चक्रधर के मन्दिर के भीतर वाले प्रागण के समस्त प्राणी जल कर भस्म हो गये और बाहर खडे हुए समस्त हत्यारो का हृदय शान्त हो गया तब उस स्थान मे सहसा भयानक सन्नाटा छा गया। जिस समय अग्नि के बडे-बडे अगार टूटने लगते थे अथवा मृतको के शरीर से चर्बी पिघल कर निकलने लगती थी केवल उसी समय विचित्र प्रकार की चटचटाहट सुनाई पडती थी।

अस्थि, मास, रुधिर, चर्बी आदि की अनन्त धाराएँ प्रवाहित होकर भयानक रूप से वीभत्स दृश्य का सृजन करती हुई योजनो तक के भूभाग मे अपने विस्तार का प्रसार करने लगी थी। इस प्रकार चक्रधर के मन्दिर मे दूसरी बार भयानक अग्नि का उत्पात हो गया था। पहली बार तो सुश्रवा के कोप से हुआ था और दूसरी बार दस्युओ अर्थात् डामरो के विप्लव से हुआ था। जिस प्रकार त्रिपुर-दहन के समय अथवा खाण्डव-वन-दहन के समय भयानक अग्निदाह का काण्ड हुआ था, उसी प्रकार समस्त पृथ्वी-मडल का अन्त कर देने वाले इस अग्निदाह का काण्ड हुआ था, जिसमे असख्य प्राणियो को अपने जीवन की आहुति प्रदान करनी पडी थी।

श्रावण शुक्ल द्वादशी का दिन परम पवित्र दिन था। उसी दिन भिक्षाचर ने यह घोर पाप कर्म किया था। परिणाम यह हुआ कि भाग्यलक्ष्मी और राजलक्ष्मी दोनो ने ही उसे त्याग दिया था। असख्य नगरो और ग्रामो के घर सूने हो गये थे क्योकि वहाँ के निवासी अपने-अपने कुटुम्बियो के साथ उसी अग्नि मे जलकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर चुके थे। नौ नगर मे जन्म लेने वाला मल्ल नामक डामर कापालिक के समान शवो को उलट-पुलट कर देखने लगा था और जब उसे अपनी अभीष्ट वस्तु मिल जाती थी तब प्रसन्नता की अधिकता के कारण अपने आप को भूल जाता था।

वहाँ से चल कर भिक्षाचर फिर विजयक्षेत्र की ओर मुड गया और वहाँ जाकर दुष्ट नागेश्वर को वन्दी बना लिया। इसके बाद भयानक यातनाएँ दे-देकर उसे मार भी डाला। अपने पितामह के देश मे उसने ऐसा कोई भी कार्य नही किया था जो कि निन्दनीय न रहा हो, किन्तु जिस समय उसने अपने पिता के हत्यारे को मार डाला था उस समय सभी उससे प्रसन्न हो गये थे। हर्षमित्र की पत्नी जिसे उसके स्वामी ने युद्ध से भागते समय छोड दिया था, विजयेश्वर के मन्दिर-प्रागण से पृथ्वीहर के द्वारा प्राप्त कर ली गई थी। राजा सुस्सल ने इस प्रकार होने वाली जनसमूह की हत्या का अपराध अपने ही ऊपर ले लिया था, इसलिए उसने युद्ध के लिए तुरत प्रस्थान कर दिया था। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यही है कि मनुष्य मोह-जाल मे पडा रहने के कारण कभी यह नही सोचता कि अपने जिस शरीर के लिए वह परलोक तक के सुखो को नष्ट कर देने वाले कर्मों को कर डालता है, उसका वह शरीर कितना क्षणभगुर है।

इसके बाद राजा सुस्सल ने सिम्ब को कम्पनाधिपति बना दिया था और विजयेश्वर क्षेत्र तथा अन्य स्थानो के डामरो को मार कर भगा दिया था। फिर पृथ्वीहर मडव राज्य से शमाला की ओर बढ गया था, किन्तु वहाँ युद्ध मे मल्लकोष्ठक से पराजित होने के कारण उसे अपने उस प्रान्त से भी भाग

जाना पडा था। कुछ शवो को वितस्ता नदी के प्रवाह मे वहा दिया गया था और जिन समस्त शवो को निकाल सकना कठिन हो गया था, उन समस्त शवो को चक्रधर के मन्दिर-प्रागण मे ही जला दिया गया था।

फिर रल्हण ने क्रम राज्य के अन्तर्गत कल्याणवाडि तथा अन्य व्यक्तियो को पराजित कर दिया था। इसीलिए अनन्त का पुत्र आनन्द द्वाराधिपति वना दिया गया था। परम शक्तिशाली पृथ्वीहर जिस समय शूली पर चढाये गये अपने ज्ञातिसिंह के शव को लिये जा रहा था उसी समय क्षिप्तिका नदी के तट पर जनकसिंह आदि ने उसे घेर लिया और युद्ध करने पर विवश कर दिया।

भाद्रपद मास मे एक दिन ऐसा आता है जव कि समस्त काश्मीर राज्य मे तीर्थ-जल मे अस्थि-विसर्जन करने जाने के उपलक्ष मे समस्त दिशाएँ स्त्रियो के भयानक करुण विलाप से गूँजने लगती हैं, किन्तु जितने दिनो तक जनकसिंह आदि के साथ पृथ्वीहर का युद्ध होता रहा उतने दिनो तक वीरो के स्वर्ग-सिधारने पर समस्त नगर-स्त्रियो के करुण विलाप से परिपूर्ण रहा। यशोराज का साला श्रीवक वडा शूर था। जव वह देश-देशान्तर से लौट आया तव राजा सुस्सल ने उसे खेरी कार्य का समस्त अधिकार दे दिया। उस कार्यभार को अपनाते ही उसने साम्य-भाव को धारण कर लिया। परिणाम यह हुआ कि न तो उसने लवन्यो के प्रति शत्रुता का व्यवहार किया और न उन्होंने ही उसके प्रति विरुद्धाचरण करना उचित समझा। दोनो ही गुप्त रीति से एक दूसरे के हित-साधन मे तत्पर रहने लगे। इसके वाद राजा सुस्सल ने पुन आश्विन महीने मे शमाला की ओर प्रस्थान किया, किन्तु मनीमुष ग्राम के समीप शत्रुओ ने उसे घेर लिया और युद्ध मे पराजित भी कर दिया।

भिक्षाचर जो कि उन दिनो निरन्तर युद्ध कर रहा था उत्तरोत्तर अधिक शक्तिशाली होता जा रहा था। वहाँ पर उसने सर्वप्रथम ऐसा वल-विक्रम प्रदर्शित किया जिसके कारण उसने समस्त वीर पुरुषो मे प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था। राजा सुस्सल की सेना मे तुक्क ब्राह्मण आदि जितने भी प्रमुख वीर थे वे सव भयानक वृष्टि होने के कारण सर्वथा असहाय अवस्था मे पड गये थे। ऐसे ही सकट-काल मे भिक्षाचर तथा पृथ्वीहर आदि ने उन सवो को उस सकट से मुक्त कर सर्वदा के लिए यमलोक को भेज दिया था। उभय पक्ष की सेनाओ मे जितने भी वीर पुरुष थे, उनमे से ऐसा कोई नही था जो कि युद्धक्षेत्र मे भ्रमण करने वाले भिक्षाचर का सामना कर सकता।

इस अनेक वर्ष-व्यापी युद्ध-व्यापार के सचालन मे पृथ्वीहर तथा भिक्षाचर ने अपनी सवारी के लिए दो घोडियाँ चुन ली थी। एक का नाम कादम्वरी था और दूसरी पताका के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी थी। कादम्वरी का रग पीला था और पताका श्वेत रग की थी। जिस युद्धक्षेत्र मे असख्य घोडे नष्ट हो गये थे उसमे वे वडी विचित्रता के साथ मृत्यु के मुख मे पडते-पडते वच जाती थी। इतना ही नही, वे इतनी शीघ्र गति से भागती थी कि उनका पीछा कर सकना भी कठिन था। सव से वडी अद्भुत वात यह थी कि वे कभी थकती नही थी।

अपने उस घोर सकट-काल मे सैन्यो का सरक्षण, निरन्तर श्रम करने के वाद भी अक्लान्त भाव, सम्मुख आने वाले समस्त क्लेशो के सहन करने का अभ्यास आदि सभी मे भिक्षाचर कुशल था, इसलिए उसके समान कही भी कोई दूसरा वीर पुरुष न था। राजा सुस्सल की सेना मे ऐसा कोई भी कुशल व्यक्ति न था जो कि सकट-काल मे सैनिको को सँभाल सकता और यही कारण था कि अनेक अवसरो पर वे शत्रुओ द्वारा मार डाले जाते थे। जिस प्रकार सकट-काल मे गजेन्द्र हाथियो के

बच्चो को बचा लेता है उसी प्रकार अनेक नवीन पराजयो मे भी भिक्षाचर ने डामरो के अनेक सैनिको को बचा लिया था। उस सकट-काल मे केवल पृथ्वीहर ने ही भिक्षाचर की सच्ची सेवा की थी। उसकी रक्षा के लिए वह सर्वदा प्रयत्नशील बना रहता। और कहाँ तक उसकी सेवाओ का वर्णन किया जाय। रात्रि के समय वह भिक्षाचर के ही द्वार पर सोया करता था।

उस समय से लेकर उत्तरोत्तर भिक्षाचर महाशक्तिशाली वीर पुरुष के समान निरतर युद्ध मे आगे और पीछे सभी दिशाओ से अपनी सेना का सरक्षण उसी प्रकार करने लगा जिस प्रकार श्राद्ध के समय विश्वेदेवा किया करते हैं। वह प्रत्येक दशा मे अमित साहस और धैर्य धारण किये रहता था। वह जब कहता तब इस प्रकार कहता

"मैं जो कुछ भी प्रयत्न कर रहा हूँ वह राजसिंहासन पाने की लालसा से नही कर रहा हूँ। मैं अपने इन समस्त प्रयत्नो से उस कलक को धो देना चाहता हूँ जिसका कि लगाव मेरे पूर्वपुरुषो के कार्यों से रहा है। जनता के ये सरक्षक जो कि मृत्यु-काल समीप आने पर असहाय अवस्था मे जनता को छोड कर भाग जाते है अवश्य ही उस जनता से द्रोह करेगे जिसका कि अपना कोई सरक्षक है, किन्तु वे द्रोही यही सोचा करते हैं कि जनता के जो वास्तविक सरक्षक थे उनका वश ही नष्ट हो गया है। इसी प्रकार की विचारधारा मे पड कर मैंने भी समस्त कठिनाइयो, आपत्तियो और दु.खो को सहन कर अपने ही बन्धु-बान्धवो को जो कि इस समय शत्रुता करने पर तुले हुए हैं, सभी प्रकार से सताना निश्चय कर लिया है। जिसके हृदय मे इस प्रकार की महत्त्वाकाक्षाएँ निरन्तर वृद्धि कर रही हो और जो यह जानता है कि विधि-विधान द्वारा निश्चित किये गये समय के पूर्व किसी भी मनुष्य की मृत्यु नही होती है उसे किस प्रकार असीम साहसिकता के कार्यों से रोका जा सकता है? ऐसी दशा मे किसी भी समय खुल जाने वाली कर-नीति की आवश्यकता ही क्या है? जब हम यह जानते हैं कि हमारा उद्देश्य महान् है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने जिस मार्ग का अवलम्बन लिया है वह ऋषियो का ही बताया हुआ है तब फिर छल-कपटपूर्ण नीति का अवलम्बन किसी भी दशा मे उचित नही है।"

भिक्षाचर की असाधारण शक्ति उत्तरोत्तर बढती ही जा रही थी और डामरो का समूह इसीलिए उससे भयभीत-सा होने लगा था। यही कारण था कि उन सबो ने उसके शत्रु राजा सुस्सल को मार डालने का कुछ भी प्रयत्न नही किया था। साधारणतया यह देखा गया है कि जो व्यक्ति राजवश में जन्म ग्रहण करते हैं वे राज्याधिकार प्राप्त करने के पूर्व ही अन्य राजा की शासन-नीति का अध्ययन कर क्रमश. राजनीति का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु भिक्षाचर को ऐसा अवसर नही प्राप्त हुआ था। न तो उसने शासन करते हुए अपने पितामह को देखा था और न अपने पिता की ही शासन-नीति का अवलोकन किया था।

जन्म से ही उसे अपने जीवन की रक्षा करने मे दूसरो का दया-पात्र बनना पडा था। सौभाग्य से जब राज्याधिकार प्राप्त हुआ तब दुर्भाग्य से वह राजनीति से शून्य ही था। इसीलिए राजसिंहासन पर आरोहण करते ही उसे नीति के मार्ग से भ्रष्ट होना पडा था। यदि उसे पुनर्वार राज्याधिकार प्राप्त हो जाता तो उसके राज्य-भ्रष्ट होने की कलक-कथाएँ कही भी न सुनाई पडती। मनुष्य की गणना ही क्या है, उस समय उसका भाग्य-देवता भी उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखने का साहस नही कर सकता था।

वह लवन्यो की कपट-नीति को भली-भाँति जानता था, फिर भी उनके प्रति विशेष रूप से सावधान न रहकर बडे ही स्वाभाविक ढग से अपने जीवन का निर्वाह करता था। ऐसा भाव प्रकट करता था मानो उसके हृदय मे चिन्ता का कोई बोझ ही न था। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास था कि उसका शत्रु किसी समय अवश्य मारा जायगा और उसके मरते ही उसे राज्याधिकार तथा राज-सिंहासन दोनो ही प्राप्त हो जायँगे।

डामरो ने जिस नीति को अपनाया था उससे राजा सुस्सल ने अपना ही हित होना निश्चय कर लिया था। उसने यह समझ लिया था कि डामरो का समूह पूर्ण रूप से भिक्षाचर के पक्ष मे नही है। इसलिए शीघ्र ही विजय-लाभ करने की उत्सुकता के वशीभूत होकर वह नीति अथवा शक्ति का प्रयोग करने के विचार मे तल्लीन हो गया था। वह पूर्व मे किये विश्वासघातकता के कार्यों को स्मरण कर किसी भी युद्ध मे अपने सैनिको के बल-विक्रम पर विश्वास नही करता था। इसीलिए उसके सैनिक भी उसे सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखा करते थे। यही कारण था कि अनेक वर्ष-व्यापी युद्ध-व्यापार मे उसे विजय-श्री नही प्राप्त हुई थी।

भिन्न-भिन्न प्रकार के मत-मतान्तर नित्य उत्पन्न हुआ करते थे। कभी कोई मत एक के पक्ष मे होता और दूसरे ही क्षण दूसरे के पक्ष मे हो जाता था। केवल मत-मतान्तर के निर्णय मे ही समय नष्ट हुआ करता था। शासन-सम्बन्धी कार्य जिनसे कि प्रजा का वास्तविक हित होना सम्भव था, एक प्रकार से उपेक्षा के विषय हो गये थे। राज्य का राज्य उपेक्षा का विषय बन गया था। किसी का भी ध्यान उस ओर नही आकर्षित होता था। इसीलिए राज्य की समस्त प्रजा बडी शोचनीय दशा मे पड गई थी।

काश्मीर राज्य की उस शोचनीय दशा को स्मरण कर वहाँ के राजाओ के सम्बन्ध मे यही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार उन्मत्त हाथी उन्ही वृक्षो की पत्तियो को उखाड कर फेक देता है जिन वृक्षो को उसी हाथी के कारण शिकारियो द्वारा अग्नि का प्रयोग किये जाने पर अग्नि की ज्वालाओ से भी झुलसना पडा था। ऐसे उन्मत्त हाथी को असख्य बार धिक्कार है और उन राजाओ को भी धिक्कार है जिनकी उपेक्षा-वृत्ति से प्रजा को कष्ट सहना पडता है।

राज्य के अन्तर्गत रहने वाली प्रजा सर्वदा निर्दोष रहती है। राजसत्ता प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले उन्ही के नाम पर आन्दोलन अथवा विप्लव की रचना करने लगते हैं। एक पक्ष दूसरे पक्ष पर विजय प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के उचित और अनुचित उपाय किया करता है, किन्तु जब दो परस्पर-विरोधी पक्ष मे युद्ध होने लगता है तब पराजित होने वाला पक्ष भाग कर और विजय-लाभ करने वाला पक्ष लूट कर प्रजा के ही धन-धान्य का अनिष्ट करता है। इसीलिए इस प्रकार के राजसत्ताभिलाषी मनुष्यो को बारम्बार धिक्कार है।

इस प्रकार काश्मीर की राजसत्ता के विभक्त हो जाने पर राजा सुस्सल ने भिक्षाचर की सेना को पराजित कर दिया था। उन दिनो असमय मे हिमपात होने लगा था इसलिए भिक्षाचर की सेना को बडी-बडी कठिनाइयों का सामना करते हुए पर्वतीय प्रदेशो के सकीर्ण मार्ग में जाकर आश्रय लेना पडा था। भिक्षाचर और पृथ्वीहर को फिर एक बार पुष्पाणनाड नामक ग्राम मे जाकर आश्रय ग्रहण करना पडा था और उनके साथ के जितने लवन्य थे उन्होंने राजा सुस्सल के सामने आत्म-समर्पण कर दिया था तथा कर देकर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न भी किया था। परम साहसी

कम्पनाधिपति सिम्ब ने भी युद्ध मे डामरो को परास्त कर सम्पूर्ण मडव राज्य में विप्लव को शान्त कर दिया था।

यहाँ तक अपने विपक्षियो तथा उनकी शक्तियो को छिन्न-भिन्न कर राजा सुस्सल ने ज्यो ही किंचित् शान्ति-लाभ की त्यो ही वह अपने अनुगामियो के साथ पूर्व की शत्रुता को स्मरण कर तदनुसार व्यवहार करने लगा था। क्रोध के आवेश मे आकर उसने मल्लकोष्ठक को भी यमलोक भेज देने का विचार कर लिया था, किन्तु ज्यो ही उल्हण ने राजा सुस्सल के उस मन्द अभिप्राय को उससे कहा था त्यो ही वह भयभीत होकर राज्य से निकल भागा था। इस प्रकार मल्लकोष्ठक को भी उस क्रोधी राजा ने देश से निर्वासित कर दिया था।

इसके बाद उसने अनन्त के पुत्र आनन्द को कारागार मे बन्द कर सैन्धव प्रान्त निवासी राजवंशोत्पन्न प्रज्जि को द्वाराधिकारी के पद पर नियुक्त कर दिया था। फिर वह विजयक्षेत्र मे चला गया था और सिम्ब के साथ नगर मे लौट कर आते ही अपने समस्त विश्वास-पात्र सेवको को कारागार मे बन्द कर दिया था।

उसके अन्त करण मे जलने वाली वह क्रोधाग्नि जिससे कि उसने अपने समस्त सेवको को जला देना चाहा था, पूर्व की अनुस्मृति-रूपी वायु से अधिक बढ गई थी और उस क्रोधाग्नि ने उसके हृदय की दया-रूपी जल को भी पूर्ण रूप से सोख लिया था। इतना ही नही, उसके मन मे क्रमश नवीन-नवीन भयानक आशकाएँ उत्पन्न होने लगी थी। उन समस्त आशकाओ के वशीभूत हो जाने के कारण उसने सिम्ब तथा उसके लघु भ्राता सिंह और थक्कनसिंह को शूली पर चढाकर मार डाला था।

इतना सब कर चुकने के बाद उसने श्रीवक को कम्पन के समस्त अधिकार प्रदान कर दिये थे और जनकसिंह को बन्दी बनाकर प्रज्जि के भ्राता सुज्जि को प्रधान न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर दिया था। उस समय से उसके समस्त आप्तजन और मत्री विदेशी होने लगे थे। देशी व्यक्तियो मे केवल वही रह गये थे जिन्होंने उसके घोर सकट-काल मे भी उसका साथ नही छोडा था और अनुगमन करते हुए लोहर भी चले गये थे। इसीलिए सभी उससे भयभीत होने और उसका पक्ष छोड कर शत्रु के पक्ष मे मिलने लगे थे। राजभवन में जितने भी मनुष्य थे उनमे से निन्यानवे तो शत्रु-पक्ष मे चले गये थे और प्रतिशत एक ही व्यक्ति ऐसा रह गया था जिसने राजा सुस्सल का पक्ष नही छोडा था।

जबकि सभी प्रकार से समस्त विप्लव शान्त हो गया था तब फिर उसे ऐसा कार्य नही करना चाहिए था। किन्तु, इतनी सहनशीलता और दूरदर्शिता उसमे थी ही नही। इसलिए उसने अपने प्रतिहिंसापूर्ण कार्यो से एक नवीन आन्दोलन उत्पन्न कर दिया था। वह ऐसा भयानक आन्दोलन था जो कि न तो दमन किया जा सका और न समाप्त ही हो सका। वास्तव मे प्रशसा के योग्य वही राजा हुआ करता है जिसमे अपने सेवको को परिस्थिति विशेष मे किये गये अपराधों के कारण क्षमा करने की शक्ति होती है क्योंकि जब राजा के कुपित होने पर कोई एक सेवक भयभीत हो जाता है तो उसका वह प्रभाव अन्य सेवको पर भी तुरन्त पड जाता है जिसका कि परिणाम राजा के लिए बडा ही अहितकर हो जाता है।

जिस समय राजा सुस्सल ने अपने सेवको से बदला लेना चाहा था और वे उससे भयभीत हो गये थे उसी समय मल्लकोष्ठक आदि ने भिक्षाचर और पृथ्वीहर आदि को शूरपुर के मार्ग से पुन आ जाने के लिए आमन्त्रित किया था। तदनुसार वे भी लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ सत्तानबे के माघ महीने में आ उपस्थित हुए थे। उन सबो के पुन आ जाने का सम्वाद पाते ही राजा सुस्सल ने

राज-भवन को तुरन्त छोड दिया था और वितस्ता नदी-रूपी परिखा से घिरे हुए नवमठ मे यह सोच कर चला गया था कि किसी भी दशा मे शत्रु वहाँ तक नही पहुँच सकेगा।

लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ अट्ठानवे के चैत्र महीने में डामरो का समूह युद्ध करने के लिए आगे बढ आया था और सर्वप्रथम मल्लकोष्ठक ने ही उन सबो से युद्ध करना आरम्भ कर दिया था। जिस समय वह अश्वारोही सैनिको के साथ नगर मे युद्ध कर रहा था उस समय राजा सुस्सल की समस्त पत्नियाँ भयातुर होकर राजभवन की अटारियो के ऊपर चढ गई थी और उसके उस युद्ध-व्यापार को देखने लगी थी। इधर भिक्षाचर ने भी क्षिप्तिका नदी के तट पर अपना पडाव डाल दिया था। राजभवन मे जितने भी वृक्ष थे उन सबो को काट-काट कर डामरो ने चूल्हो मे जला दिया था और जो घास उपवनो मे शोभा बढाने के लिए मालियो द्वारा सींच-सींच कर उगाई गई थी और जिसकी निरन्तर रक्षा की जाती थी, वह घास घोडो का चारा बन गई थी।

मडव राज्य के डामरो को एकत्र कर जिस समय पृथ्वीहर विजयक्षेत्र मे एक नवीन सेना के सगठन-कार्य मे लगा हुआ था उसी समय प्रज्जि आदि को मल्लकोष्ठक के साथ युद्ध करने का आदेश देकर राजा सुस्सल, जो कि असीम साहस के साथ शत्रु पर विजय पाने का प्रयत्न कर चुका था, वैशाख के महीने मे उस पर आक्रमण कर बैठा था। उसके उस प्रकार सहसा आक्रमण कर देने का यह परिणाम हुआ था कि पृथ्वीहर की सेना को घायल और हताश होकर युद्धभूमि से भाग जाना पडा था। बडी कठिनाई का सामना करते हुए वे सब पुल के उस पार पहुँच सके थे। वहाँ पहुँच कर उन सबो ने इसी से अपने को सन्तुष्ट कर लिया था कि उनके प्राण निकलते-निकलते बच गये थे।

राजा सुस्सल की आज्ञा को शिरोधार्य कर प्रज्जि मल्लकोष्ठक के साथ युद्ध करने मे तल्लीन हो गया था। वह उसके साथ युद्ध कर ही रहा था कि इतने मे सुज्जि को युद्ध मे पराजित कर पृथ्वीहर का छोटा भाई मनुजेश्वर नगर मे प्रवेश कर गया था। वितस्ता नदी का पुल पहिले से ही तोड दिया गया था इसलिए वह नदी के उस पार नही जा सका था। जब उसे दूसरा कोई उपाय नही सूझा तब उसने नदी-तट के समीपवर्ती घरो मे आग लगा दी थी और उन सबको जलती हुई अवस्था मे छोडकर वह क्षिप्तिका नदी की ओर अग्रसर हो गया था।

इधर राजा सुस्सल यह मान कर कि लवन्यो ने नगर को अपने अधिकार मे कर लिया है, व्याकुल हो उठा था। उस व्याकुलता के कारण ही वह विजयक्षेत्र से अपनी समस्त सेना को हटाकर नगर की ओर लौट पडा था। व्याकुल होकर लौटने के कारण उसकी समस्त सेना भी शत्रु के आक्रमण करने की आशका से भयभीत हो गई थी। चलते-चलते अपनी सेना के साथ वह जिस समय गम्भीरा के पुल पर आया उस समय उसकी भयभीत हुई सेना यथाशीघ्र पुल पार करने के लिए उतावली हो उठी थी। सेना का प्रत्येक सैनिक सबसे पहिले दूसरे पार पहुँच जाना चाहता था इसलिए एक-एक कर उस पार जाना किसी को भी सुविधाजनक नही जँच रहा था। एक ही साथ सभी शीघ्र गति से उस पुल के ऊपर पहुँच गये थे। उस बोझ को वह पुल न सँभाल सका और ज्यो ही वे सब बीचोबीच पहुँचे त्यो ही वह टूट गया।

लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ अट्ठानवे के ज्येष्ठ कृष्ण छठ के दिन राजा सुस्सल की सेना के असख्य सैनिक जल के प्रवाह मे मग्न होकर उसी प्रकार नष्ट हुए थे जिस प्रकार इसके पूर्व चक्रधर के मन्दिर-प्रागण मे असख्य मनुष्य अग्नि मे जलकर नष्ट हो गये थे। व्याकुल हुई सेना को शान्त करने के लिए राजा सुस्सल अपनी भुजाओ को उठाकर आगे बढा। आगे बढते ही वह भी नदी के

प्रवाह मे गिर पडा । बात यह हुई थी कि उस समय उसके सैनिको मे चेतनता का अभाव-सा हो गया था । अपने-अपने जीवन की रक्षा के लिए सभी तत्पर हो रहे थे । ऐसी अव्यवस्थित स्थिति मे पीछे से भयभीत सैनिको का धक्का लग गया था और उसी धक्के से ही राजा सुस्सल को भी नदी मे गिरना पडा था ।

जैसे ही वह नदी के प्रवाह मे गिरा वैसे ही तैरना न जानने वाले सैनिक जीवन की रक्षा के लिए उसके शरीर से लिपट गये थे । बडी कठिनाई के साथ उन सबो से छुटकारा पाकर और तैरना जानने वाले सैनिको के हथियारो से घायल होकर वह किसी प्रकार नदी के दूसरे पार आ गया । जो सेना उस पार रह गई थी उसे वही रहने दिया । बाद मे उसकी वह सेना सामन्तो के साथ मिल गई थी । वह जितनी सेना साथ मे लेकर चला था उसका हजारवाँ भाग शेष रह गया था । उसी को साथ लेकर वह वहां से चल पडा था ।

यद्यपि उसकी विशाल सेना का अधिकाश नष्ट हो गया था तथापि उसने अपना धैर्य नही खोया था । जैसे ही उसने नगर मे प्रवेश किया था वैसे ही वह मल्लकोष्ठक आदि से युद्ध करने लगा था । इधर अपने स्वामी द्वारा त्याग किये गये सैनिको को विजय की माता सिल्ला विजयक्षेत्र से देवसरस नामक स्थान मे ले गई थी । जिसके कारण पृथ्वीहर ने आक्रमण कर उसे मार डाला था और उसके स्थान पर टिक्क को प्रतिष्ठित कर राजा सुस्सल की सेना को छिन्न-भिन्न कर डाला था ।

पृथ्वीहर के आक्रमण करने पर राजा सुस्सल की सेना के समस्त सैनिक प्राणो की रक्षा करते हुए तुरन्त भाग गये थे । कल्याणराज नामक एक ब्राह्मण ही उस सेना के सैनिको में रह गया था । वह सामरिक व्यायाम-प्रणाली मे परम कुशल था । युद्ध करते-करते वही वीरगति को प्राप्त हुवा था । राजा सुस्सल की जिस सेना मे उसके मन्त्री, डामरो का समूह और सामन्तगण वर्तमान थे उसी सेना मे से पृथ्वीहर ने अनेक सैनिको को जीत कर बन्दी बना लिया था । उन भागे हुए समस्त प्रमुख व्यक्तियो का पीछा करते हुए उसने वितस्ता के समीप ओजानन्द ब्राह्मण तथा अन्य व्यक्तियो को, जो कि उस सेना से निकल कर भागे जा रहे थे, बन्दी बना लिया था और बाद मे शूली पर भी चढा दिया था । जनकसिंह, श्रीवक तथा अन्य मन्त्री और दूसरे राजपुत्र किसी प्रकार पर्वत-श्रेणी को पार कर विषलाटा मे खशो की शरण मे चले गये थे ।

ज्यो ही पृथ्वीहर को इस प्रकार विजय-श्री प्राप्त हो गई त्यो ही उसने डामरो को एकत्र कर लिया । इसके बाद भिक्षाचर को साथ लेकर बडी-बडी उच्चाभिलाषिणी आशाओ के साथ राजधानी के नगर के समीप पहुँच गया था । पहिले के ही समान इस बार भी राजा सुस्सल राजधानी के नगर मे ही अवरुद्ध हो चुका था । जब उसके निकल भागने का कोई भी मार्ग न रहा तब उभय पक्ष की सेनाओ मे भयानक युद्ध होने लगा । जिस ओर दृष्टि जाती थी उसी ओर असख्य मनुष्य और घोडे मरे-कटे तथा घायल पडे हुए दिखाई पडते थे । उस समय पृथ्वीहर मडव राज्य के समस्त डामरो की सेना का सचालन स्वय कर रहा था । जिस ओर वह शीघ्रगति से बढा चला जा रहा था उस ओर से राजभवन मे प्रवेश कर सकने का कार्य निर्विघ्नता के साथ पूर्ण हो जायगा, ऐसा उसका विश्वास था ।

भिन्न-भिन्न सामन्तो के वश मे जन्म लेने वाले शूरवीर काश्मीरी सैनिकों के साथ मिलकर युद्ध करने वाले डामरो को पराजित कर सकना बडा कठिन कार्य था । भिक्षाचर के पक्ष में हजारों

काश्मीरी सैनिक थे। सभी उच्च वंश में उत्पन्न हुए थे। काक-वंशोत्पन्न शोभक आदि उसी के पक्ष में थे। रत्न आदि जो लोक-प्रसिद्ध व्यक्ति थे उन्होंने भी उसी के ही पक्ष को ग्रहण करना उचित समझा था। युद्ध के समय बजने वाले वाद्यों की तुमुल ध्वनि को सुनकर पृथ्वीहर के आनन्द की सीमा न रही। अपनी सेना के कोलाहल का भेद कर जो वाद्य-ध्वनि सुनाई पड़ रही थी उससे उसके हृदय में बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया था। अपने उस कौतूहल को तृप्त करने के लिए उसने समस्त वाद्य-यन्त्रों को गिनना आरम्भ कर दिया था। गिनते-गिनते वह थक गया था, किन्तु फिर भी निश्चित संख्या नहीं जान सका था। केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि तुरही तथा अन्य बड़े-बड़े वाद्यों को छोड़कर छोटे-छोटे वाद्य जो कि प्राय: श्वपाकों द्वारा बजाये जाते हैं, संख्या में बारह सौ थे। उत्सुकता के वशीभूत होकर पृथ्वीहर इतना ही गिन पाया था।

इसमें सन्देह नहीं कि राजा सुस्सल की सेना के असंख्य सैनिक नष्ट हो गये थे और उसके पास जो थोड़े-से सैनिक रह गये थे, वे अँगुलियों से ही गिने जा सकते थे, फिर भी उसने अपना साहस और धैर्य नहीं नष्ट होने दिया। जो थोड़े-से उसके देशी सैनिक रह गये थे, उन्हें और साथ के बीस-तीस राजपुत्रों को लेकर वह असीम साहस के साथ निकल पड़ा था और शत्रु से युद्ध करने लगा था। इच्छटि वंशोत्पन्न दो राजन्य उदय और धन्यक, चम्पाधिपति उदय और वल्लापुरेश्वर ब्रह्मजज्जल, हरिहड-निवासी मल्हणाहस के सामन्त तेज तथा क्षत्रिकाभिजिका के सव्यराज आदि, भावुक के वंश में जन्म ग्रहण करने वाले नील तथा विडाल के पुत्रगण, रामपाल और उसका नवयुवक पुत्र सहजिक ये सभी तथा भिन्न-भिन्न वंशों में उत्पन्न होने वाले अन्य व्यक्ति राजा सुस्सल के पक्ष में थे। उस भयानक युद्ध की उत्तेजना के समय उनका उत्साह कहीं अधिक बढ़ गया था। शत्रुओं का समूह जो राजभवन के भीतर प्रवेश करने पर तुला हुआ था। उसे उन सबों ने युद्ध के व्यापार में ऐसा संलग्न कर रखा था कि वे जहाँ तक बढ़ आये थे वहीं तक रह गये थे। तनिक भी आगे बढ़ सकना उनके लिए कठिन हो गया था।

रिल्हण ने तो ऐसा युद्ध किया था मानो राजा सुस्सल का ही सगा बेटा हो। विजय आदि अन्य योद्धाओं ने भी बड़ी वीरता के साथ शत्रु के सम्मुख युद्ध किया था। किसी भी दशा में वे पीछे हटते अथवा पीछे रहते नहीं देखे गये थे। सैनिकों के आगे रहकर शत्रु से युद्ध करना उन्होंने अपना मुख्य धर्म समझ लिया था। सुज्जि और प्रज्जि ये दोनों ही निरन्तर युद्ध करते हुए देखे गये थे। स्वयं अधिक से अधिक प्रयत्न करने वाला राजा सुस्सल उनकी देखभाल करने लगा था। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो वे उसकी भुजाएँ हों और वह उन भुजाओं का कवच बन गया हो।

वास्तव में बात यह थी कि राज्य की जो कुछ भी आय थी उसको समान रूप से बटवारा कर राजा सुस्सल उन दोनों को दे दिया करता था, इसीलिए उस संकट-काल में वे दोनों ही बड़ी विश्वास-पात्रता के साथ उसके पक्ष का समर्थन कर युद्धभूमि में शत्रु से लोहा ले रहे थे। इसी प्रकार भागिक, शरद्भासि, मुम्मुनि, मुगट और कलश आदि जितने भी योद्धा राजा सुस्सल के पक्ष में थे, सभी बड़ी तत्परता के साथ शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर अपनी युद्ध-विद्या की कुशलता का सदुपयोग करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। टक्क प्रान्त का शासक जो कि लवराज का पुत्र था और जिसका नाम कमलिय था, वह भी राजा सुस्सल के पक्ष में था।

उस समय राजा के जितने भी सैनिक शत्रुओं से युद्ध कर रहे थे वह उन सबों के अग्रभाग में था और बड़ी वीरता के साथ युद्ध करने में लगा हुआ था। उस शक्तिशाली राजपुत्र के कठोर प्रहारों

को सह सकने मे शत्रु-पक्षीय अश्वारोही सैनिक असमर्थ हो गये थे। वह जिस समय विपक्षी दल के अश्वारोहियो पर घातक प्रहार करता था उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो मन्दोन्मत्त हाथी अश्व-समूह पर प्रहार कर रहा हो। उसका छोटा भाई संगिक और भतीजा पृथ्वीपाल ये दोनो ही उसके उसी प्रकार पार्श्वरक्षक थे जिस प्रकार पांचाल देशीय अर्जुन के पार्श्व रक्षक वने हुए थे।

यद्यपि काश्मीर राज्य की प्रजा राजा सुस्सल के विपक्ष मे थी तथापि अपने इन रत्नरूपी सेवको तथा अधिक से अधिक स्वर्ण व्यय करके क्रय किये गये अश्वो के कारण उसने उस युद्ध मे विजय-श्री को प्राप्त कर लिया था। जब कभी कोई युद्ध का व्यापार उपस्थित तब वह निरन्तर अविचल ही बना रहा। असीम साहस और धैर्य के कारण उसका मन सर्वदा सुस्थिर ही बना रहा। जिस प्रकार उत्सव-काल मे एक गृहस्थ एक कमरे से दूसरे कमरे मे शान्तिपूर्वक आता-जाता रहता है उसी प्रकार वह भी राजभवन के भीतर चला-फिरा करता था।

इसमे सन्देह नही कि जब किसी प्रकार का संकट अपना प्रारंभिक रूप मे प्रकट करता था तब वह सशंकित हो उठता था किन्तु ज्यो ही वह संकट अपना स्वरूप पूर्णरूप से प्रकट कर उसके सामने आ जाता था त्यो ही उसका सामना करने के लिए उसमे असीम साहस और उत्साह हो जाता था। यह सत्य है कि जिस समय संकट-काल सहसा उपस्थित हो जाता है उस समय मनुष्य व्याकुल होकर हताश होने लगता है किन्तु ज्यो ही मनुष्य का जीवन संकटो के मध्य पड जाता है त्यो ही उन सबसे उद्धार पाने के लिए वह पूर्ण उत्साह के साथ अथक परिश्रम करने लगता है। इसीलिए कहा गया है कि जिस प्रकार हाथ से छूने पर जल बडा शीतल जान पडता है किन्तु उसमे प्रवेश कर स्नान करते ही उसकी समस्त शीतलता-जनित विभीषिका दूर हो जाती है उसी प्रकार संकट-काल प्रारम्भ मे जितनी व्याकुलता उत्पन्न करता है उतनी आगे चलकर नही कर पाता है। इसीलिए नगर के जिस किसी भाग मे घोर अन्धकार के समान ज्यो ही शत्रुओ की सेना आक्रमण करने के लिए अग्रसर होती थी त्यो ही अन्धकार रूपी उस शत्रु-सेना को दूर हटा देने के लिए चाँदनी के समान राजा सुस्सल की सेना आ पहुँचती थी।

किसी एक समय शत्रु-सेना ने सामूहिक रूप से आक्रमण करने के लिए एक निर्दिष्ट समय और संकेत निश्चित कर लिया था। तदनुसार उन सबो ने कार्य करना आरम्भ कर दिया था। डामरो की सेना ने भी उसी संकेत के अनुसार सामूहिक आक्रमण करने के विचार से महासरित् को पार कर नगर को अपना लक्ष्य बना लिया था। उस समय राजा सुस्सल के पास जितने सैनिक थे सभी नगर के भिन्न-भिन्न भागों मे विभक्त हो गये थे। उतने बडे नगर मे कौन किस स्थान पर था इसका पता लगा सकना भी कठिन कार्य था। ऐसी दशा मे उन समस्त सैनिको का तुरन्त एक साथ मिल सकना सर्वथा असंभव था।

उस समय राजा सुस्सल के पास थोडे-से अश्वारोही सैनिक थे। अतएव जिस समय शत्रुओ ने नगर पर आक्रमण किया था उस समय वह उन्ही अश्वारोही सैनिको को साथ लेकर युद्ध-क्षेत्र मे उतर पडा था। जिस प्रकार हेमन्त ऋतु की वायु से गिरे हुए पत्तो का ढेर बात की बात मे उड जाता है उसी प्रकार राजा सुस्सल द्वारा आक्रमण किये जाने पर डामरो का समूह क्षण भर भी युद्ध-भूमि मे स्थिर न रह सका। देखते ही देखते वह युद्ध-भूमि से भाग गया। काक के वंश मे उत्पन्न हुए आनन्द,

लोष्टशाही तथा अनल आदि जितने भी प्रतिष्ठित व्यक्ति डामरो की उस सेना मे थे, सभी राजा सुस्सल के सैनिको द्वारा यमलोक पहुँचा दिये गये थे ।

डामरो मे से जो घायल होने के कारण नही भाग सके थे और मरे हुए मनुष्यो के बीच जीवित अवस्था मे पडे हुए थे उन्हे घसीट-घसीट कर निकालने और उग्र रूप धारण करने वाले राजा सुस्सल के सामने घूसे मार-मार कर मार डालने का कार्य करते समय राजा के अनुगामियो ने चाण्डालो का ही रूप धारण कर लिया था । भिक्षाचर का पक्ष ग्रहण करने वाले जो व्यक्ति शेष रह गये थे वे भयभीत होकर गोपाद्रि नामक पर्वत पर चढ गये थे किन्तु वहाँ पर पहुँचते-पहुँचते वे सब विपक्षी दल द्वारा घेर लिये गये थे । इसीलिए कहना पडता है कि वे सब मृत्यु के मुख मे ही पहुँच गये थे । उन सबो की रक्षा करने के लिए स्वाभिमानी भिक्षाचर ने एक ऐसे मार्ग से अपने घोडे को बढाया था जो मार्ग पक्षियो के लिए भी दुर्गम था ।

पृथ्वीहर के गले मे तीर लग जाने से वह एक प्रकार शक्ति से हीन हो चुका था । फिर भी उसमे साहस का अश शेष रह गया था । इसीलिए उस अवस्था मे भी वह पर्वत पर चढने का प्रयत्न कर रहा था और बडी कठिनाई के साथ चढ पाया था । इसी प्रकार उसके साथ के दो तीन साहसी सैनिक भी पर्वत-शिखर पर चढने के प्रयत्न मे सफल हो गये थे । जिस प्रकार समुद्र को आगे बढने से रोक देते हैं उसी प्रकार राजा सुस्सल के सैनिको ने उन सबो को आगे बढने से रोक दिया था । जब कोई भी उपाय न सूझा तब भिक्षाचर के सैनिक उस गोपाचल को छोडकर दूसरे पर्वत पर चढ गये थे ।

इसके बाद ही राजा सुस्सल की सेना की बाँई ओर से मल्लकोष्ठक की सेना अपने पैदल और अश्वारोही सैनिको द्वारा क्षितिज प्रान्त की समस्त वस्तुओ को प्रकम्पित करती हुई आती दिखाई पडी । उस समय राजा सुस्सल की समस्त सेना शत्रुओ के पीछे-पीछे दौडने के कार्य मे व्यस्त थी और वह उन सब से कही दूर रहकर एकाकी खडा हुआ था । इसलिए सभी ने यह समझ लिया था, "निस्सन्देह राजा मार डाला गया है ।" उस आकस्मिक आक्रमण का आरम्भ होते ही ज्यो ही राजा सुस्सल पीछे हटने लगा था त्यो ही वहाँ के उस युद्ध-क्षेत्र में अपने छोटे भाई के साथ प्रज्जि आ गया था ।

आषाढ कृष्ण अष्ठमी के दिन उस स्थान में अश्वारोहियो का ऐसा जमघट हो गया था और वे ऐसा लडे थे कि उनकी तलवारो की झनझनाहट से ही उनके प्रति प्रकट किये जाने वाले साधुवाद के शब्द ध्वनित होने लगे थे । प्रज्जि और सुज्जि इन दोनो ने ही युद्ध करके उसे और उसके पुत्र को उसी प्रकार पराजित कर दिया था जिस प्रकार सावन और भादो के महीने अपनी अपार जल-वृष्टि द्वारा वायु के प्रकोप से बढते हुए दावानल को शान्त कर देते हैं ।

यो तो अनेक वर्षों से युद्ध का व्यापार चल रहा था किन्तु उस दिन का वह युद्ध मानवोचित शूरता, वीरता, सहिष्णुता तथा अपूर्व साहसिकता का वास्तविक निर्णायक युद्ध था । विपक्षियो का वह दल जो राजा सुस्सल पर विजय पाना चाहता था, विलम्ब से आने के कारण लहर के सैनिको से नही मिल पाया था । उस सकटमय दिवस मे राजा सुस्सल ने भिक्षाचर ने राजा सुस्सल के बल-विक्रम को भले प्रकार समझ लेने का अवसर प्राप्त कर लिया था ।

इधर पृथ्वीहर ने मडवराज्य से आये हुए समस्त सैनिकों को यह आदेश दिया "इससे पहिले तुम सबों ने जिस स्थान से आक्रमण किया था, इस बार भी उसी स्थान पर अधिकार कर राजा सुस्सल की सेना पर आक्रमण कर देना।" इस प्रकार आदेश देकर वह क्षिप्तिका नदी के तट पर से आक्रमण करने के लिए वहा से चला गया था और वहाँ पर पहुँचते ही आक्रमण भी कर दिया था।

ठीक ऐसे ही समय मे देशान्तर से यशोराज लौट आया था। राजा सुस्सल शत्रु-दल को दबा देने के लिए अधिक उत्सुक हो रहा था। इसीलिए उसने यशोराज को तुरन्त मण्डलेश के पद पर नियुक्त कर दिया था। इसके पूर्व जब कि वह खेरी का अधिकारी था, डामरो ने उसके बल-पौरुष का प्रत्यक्ष दर्शन किया था। इसलिए उसने ज्यो ही युद्ध के क्षेत्र मे पदार्पण किया त्यो ही वे सब मारे भय के थर थर काँपने लगे थे। उस समय उन समस्त डामरो की दशा विचित्र-सी हो गई थी। मण्डलेश का पद एक प्रकार शासक का ही पद था। राजा का प्रतिनिधि होने योग्य व्यक्ति ही उक्त पद का अधिकारी माना जाता था। इसलिए यशोराज को शासन का पूर्ण अधिकार देकर राजा सुस्सल ने उसे कुकुम-लेपन, छत्र अश्व और अन्य सम्मानप्रद चिह्न आदि भी प्रदान कर दिया था। इतना नही, जनता द्वारा उसे स्वय जैसा सम्मान प्राप्त था वैसा ही सम्मान अर्थात् राजोचित सम्मान प्राप्त कराया था। जिस प्रकार चिरकाल से निरन्तर रोग से ग्रसित रहने वाला व्यक्ति अपने रोग को साध्य समझ कर रोग से मुक्त होने की उत्कट अभिलाषा से पुराने चिकित्सको को छोडकर नये चिकित्सक मे अपनी समस्त आशाओ को स्थापित कर देता है उसी प्रकार अनेक वर्षों के लगातार सकटो से दुःखी होने वाली जनता ने अपने दुःखो को साध्य समझ कर उन सबसे छुटकारा पाने के लिए राज्य के समस्त प्रमुख व्यक्तियो की ओर से अपने ध्यान को हटाकर के यशोराज के ऊपर अपना समस्त विश्वास स्थापित कर दिया था।

गर्गचन्द्र के पुत्रो मे से जो शेष रह गये थे उनमे से पचचन्द्र सर्वापेक्षा ज्येष्ठ था। वह भी बड़ा साहसी और वीर योद्धा था। उसकी समस्त योग्यताओ पर विचार करके राजा सुस्सल ने मल्लकोष्ठक का विरोध करने के कार्य मे उसे नियुक्त कर दिया था। यद्यपि वह उस समय साधारण बालक ही था और अपनी माता छुड्डा द्वारा पाला-पोषा जाने पर क्रमश बड़ा हो रहा था। तथापि अपने पिता के सेवको का वास्तविक सहयोग प्राप्त कर उसने अपने प्रान्त मे साधारण ख्याति प्राप्त कर ली थी।

यशोराज की सहायता से राजा सुस्सल ने युद्ध मे जिन समस्त डामरो को पराजित किया था उनमे से कुछ तो आत्मसमर्पण कर उसके पक्ष मे आ गये थे और जो शेष रह गये थे, वे प्राणो की रक्षा करते हुए युद्ध-भूमि से भाग गये थे। जब विजय लाभ की आशा न रही तब भिक्षाचर के साथ पृथ्वीहर सीधा अपने स्थान की ओर चला गया और उसके चले जाने पर मल्लकोष्ठक का सामना करने के लिए राजा सुस्सल ने अमरेश्वर की ओर प्रस्थान कर दिया।

मल्लकोष्ठक का भवन सदाशिव नामक शिव-मन्दिर के समीप मे था। युद्ध में तल्लीन रहने के कारण वह भवन सूना ही पडा हुआ था। युद्ध-भूमि से भागने पर उसने रात्रि में जिन चोरो को आगे-आगे भेज दिया था उन्होंने ही वहाँ जाकर उस सूने भवन मे आग लगा दी थी। पृथ्वीहर जो कि बारम्बार आक्रमण करने पर तुला हुआ था, उसे क्षिप्तिका नदी के किनारे प्रज्जि, सुज्जि आदि ने

युद्ध कर परास्त कर दिया था। वितस्ता नदी का तट बडा सुहावना था। वहाँ नित्य जनता आनन्द लाभ करती थी किन्तु दुष्ट लवन्यो द्वारा नगर मे लगातार कई बार आग लगाई जाने के कारण वह तट एकदम सूना हो गया था।

इन समस्त घटनाओ के बाद राजा सुस्सल ने अपने साथ एक विशाल सेना लेकर बडी शीघ्रता के साथ लहर पर आक्रमण कर दिया था और वहाँ के अनेक स्थानो पर जीवन और मरण, दोनो को ही समान समझ कर बडी वीरता के साथ युद्ध किया था। इसके बाद वह सिन्धु-नदी के तट पर पार जाने के विचार से आ गया था किन्तु वहाँ कोई पुल नही था। मशको के सहारे पार जाना निश्चित किया गया था। तदनुसार एक एक मशक को लेकर वह और उसके साथ के सैनिक सिन्धु नदी के प्रवाह मे कूद पडे थे। बीच मे ही मशक के फूट जाने से कन्दराज आदि उसके अनेक अनुचर नदी के प्रवाह मे बहने लगे थे और कुछ दूर जाते ही डूब गये थे। इस प्रकार वे सब देखते ही देखते अन्त मे समानता का बर्ताव करने वाली मृत्यु के मन्दिर मे पहुँच गये थे।

राजा सुस्सल द्वारा भगाये जाने पर मल्लकोष्ठक दरदो के देश मे चला गया था और उसके भाग कर जाने के बाद अपने पुत्र-सहित छुड्डा ने लहर मे अधिक प्रभावशाली स्थान प्राप्त कर लिया था। इसके बाद लवन्य जय्यक विषलाटा से जनकसिंह और श्रीवक आदि को लेकर राजा सुस्सल के पास आ गया था। लहर मे ही सैन्य-सचालन तथा युद्धादि करते-करते राजा सुस्सल ने ग्रीष्म ऋतु को बिता दिया था और ज्यो ही शरद् ऋतु का आगमन होने लगा त्यो ही वह यशोराज के साथ शमाला पहुँच गया था।

मनीमुष नामक स्थान मे जो युद्ध हुआ था उस युद्ध मे पृथ्वीहर के भय से छिन्न-भिन्न हुई राजा सुस्सल की सेना का सरक्षण करते हुए सज्ज का पुत्र राजपुत्र डोम्ब परलोक सिधार गया गया था। सुवर्णसानूर नामक ग्राम मे और शूरपुर आदि स्थानो मे शत्रुओ द्वारा प्रत्या-क्रमण किये जाने पर राजा सुस्सल ने निरन्तर युद्ध किया था और उन समस्त युद्धो मे जय तथा पराजय दोनो को ही परिस्थिति विशेष के कारण प्राप्त किया था। सुप्रसिद्ध कल्याण-पुर के समीप होने वाले युद्ध मे जिस समय पृथ्वीहर आदि द्वारा श्रीवक परास्त हो चुका था उसी समय युद्ध-भूमि मे नागवट्ट आदि ने मृत्यु का आलिगन कर चिरशान्ति प्राप्ति कर ली थी।

पौष के महीने मे पृथ्वीहर ने देवसरस के टिक्क को गर्ग की स्त्री छुड्डा की हत्या करने के लिए सुवर्णसानूर ग्राम से भेजा था। वह शक्तिशालिनी महिला, जिसने अपने पुत्र और राजा सुस्सल के सैनिको की सहायता से अपने समस्त शत्रुओ को युद्ध मे पराजित कर दिया था, टिक्क द्वारा सहसा आक्रान्त होने पर युद्ध करते-करते युद्ध की भूमि मे ही मार डाली गई थी। स्त्री का वध सभी दशाओ मे महापाप माना गया है। जो वास्तविक वीर होते हैं वे कदापि स्त्रियो पर अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग नही करते हैं, मार डालना तो दूर की बात है। किन्तु उस महापापी टिक्क ने स्त्री पर अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग कर एक महापाप किया और अन्त मे उसकी हत्या का दूसरा महापाप भी किया। उसके इस भयानक कुकृत्य को देखते हुए उसमे और पशु, म्लेच्छ, डाकू और राक्षस मे कुछ भी अन्तर नही दिखाई पड रहा है।

लहर के वे निवासी, जो कि युद्ध-भूमि मे अपनी स्वामिनी उस अबला स्त्री की हत्या होते समय पशुओ के समान भयभीत होकर युद्ध-भूमि से भाग गये थे, पुन अपनी-अपनी तलवारे लेकर युद्ध-भूमि मे आ गये थे। कितने बडे आश्चर्य की बात है! ज्यो ही राजा सुस्सल को यह समाचार विदित हुआ कि कुछ समय पूर्व जो मडवराज्य किसी सीमा तक शान्त कर दिया था पुनः अशान्त होने लगा है त्यो ही वह विजयेश्वर की ओर चल पडा था।

मल्लराज के पुत्रो मे यदि कोई विशेष दोष था तो वह वाणी का दोष था। वे अशिष्ट वाणी के प्रयोग मे सर्वदा से अभ्यस्त थे। किस के प्रति कैसी वाणी का प्रयोग होना चाहिए, इसे वे जानते ही न थे। इसीलिए उनकी अशिष्ट वाणी ने ही पूर्व से सूचित कर दिया था कि उन सब की शक्ति का अन्त सहसा किसी भी समय हो जायगा। आजकल जितने भी सेवक दृष्टिगोचर होते हैं सभी का स्वभाव विचित्र पाया गया है। जब तक उन सबकी ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है तब तक उन सबकी वास्तविकता खुलती नही है किन्तु ज्यो ही छलनी से आटा आदि छानने के समान उन सब की छान-बीन की जाती है त्यो ही वे सब पापो के छिलके के समान सिद्ध होने लगते हैं और उन सबका चरित्र भी भ्रष्ट ही पाया जाता है।

बाल्यकाल से ही अशिष्ट वाणी का प्रयोग करने और भद्दी-भद्दी गालियाँ देने का राजा सुस्सल अभ्यासी हो चुका था। जब किसी भी व्यक्ति के प्रति वह अशिष्ट वाणी और गालियो का प्रयोग करता था, वही अपना घोर अपमान समझने लगता था। जब उसने यशोराज के प्रति भी उसी अशिष्ट वाणी और उन्ही भद्दी गालियो का प्रयोग किया था तब वह उससे रुष्ट हो गया था और तभी से विरुद्धाचरण भी करने लगा था। दुर्जनता के व्यवहार का कहाँ तक वर्णन किया जाय। यह दुष्ट व्यक्ति एक विशाल सेना के साथ अवन्तिपुर मे नियुक्त किया गया था। वही से इसके मन मे द्रोह का भाव प्रबल होने लगा था। उसने उचित और अनुचित कार्य पर तनिक भी विवेचन नही किया था और तुरन्त वहाँ से भागकर शत्रु के पक्ष को ग्रहण कर लिया था।

जब वह अच्छे से अच्छे सैनिको के साथ शत्रु-पक्ष मे चला गया और राजा सुस्सल को समस्त वृत्तान्त विदित हुआ तब वह विह्वल हो उठा था। उसे सभी दिशाओ मे अन्धकार ही अन्धकार दिखाई दिखाई पडने लगा था। जब उसके हृदय मे भिन्न-भिन्न प्रकार की आशकाएँ उत्पन्न होने लगी और उन आशकाओ के कारण वह भयभीत होने लगा तब उसने विजयक्षेत्र से प्रस्थान कर दिया था। चोरो, लुटेरो, डाकुओ और इसी प्रकार के अन्य दुर्जनो द्वारा किये गये अपमान को भी सहन कर राजा सुस्सल जिस राजसिंहासन के लिए अपने जीवन की रक्षा करने मे व्यग्र था, उस राजसिंहासन को शतश धिक्कार है।

माघ के महीने मे विजयक्षेत्र से भागकर वह राजधानी के नगर में आ गया था। यहाँ आते ही उसने देखा कि उसका सेवक वय भी विद्रोही हो गया है। वय के विद्रोही होने का ऐसा कुप्रभाव पडा कि वह अपने रोम तक को विश्वास के अयोग्य समझने लगा था। इसके बाद जब उसने समस्त काश्मीरियो और अपने समस्त सेवको को विश्वासघातक समझ लिया तब वह प्रज्जि की गोद मे अपना मस्तक रखकर शान्ति लाभ की आशा करने लगा था। जिस प्रकार पूर्व समय मे विदेश से काश्मीर मे आये हुए रुद्रपाल आदि ने अपने विक्रम, त्याग, विनय, अद्रोह आदि अनेक प्रकार के सद्गुणो से लोक स्मृति के मार्ग से राजाओ की प्रसिद्धि को भी दूर हटा दिया था उसी प्रकार प्रज्जि ने भी किया था। उसके उत्तम-शासन-प्रबन्ध के कारण लोग राजाओ के नाम तक को भी भूल गये

थे। उसका चरित्र भी परम पवित्र था। यद्यपि उस समय काल की कुटिलता से ससार-चक्र व्यवस्थित सा होने लगा था तथापि उसने उस समय भी अपने ज्ञान और बाहु-बल के प्रताप से शास्त्र और शस्त्र दोनो की ही मर्यादा के गौरव को सुरक्षित रखता था।

उधर शत्रु-पक्ष से मिल जाने के बाद यशोराज मत्रणा करते समय भिक्षाचर से कहने लगा था "आपके विक्रम से भयभीत होने के कारण डामरो का समूह यह नही चाहता कि आप राज-सिंहासन का अधिकार प्राप्त कर ले। अतएव उचित होगा कि हम लोग फिर से एक नये प्रकार का आन्दोलन करना आरंभ कर दे। नगर से आई हुई सेना जोकि इस समय मेरे पास है, उसकी सहायता और अपने प्रयत्न से हम लोग अवश्य शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर राजसिंहासन को अपने अधिकार मे कर लेगे। यदि इस बार के प्रयत्न मे भी असफल रहे तो इस देश को छोडकर दूसरे किसी देश मे जाकर आश्रय ग्रहण कर लेगे।" वे दोनो इसी प्रकार की मत्रणा मे लगे ही हुए थे कि इतने मे यह समाचार पाकर कि छुड्डा की हत्या कर डाली गई है, मल्लकोष्ठक भी दरदो के देश से लौट आया था और पूर्ववत् अपना अधिकार प्राप्त कर प्रभावशाली होने का गौरव लाभ करने लगा था।

इसके बाद ससार-चक्र को उलट देने वाले भयानक लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ निन्यानवे का आरम्भ-काल उपस्थित होता है। यह ऐसा प्रलयकर वर्ष था जिसमे प्राणो की रक्षा कर सकना भी कठिन-कार्य हो गया था। असख्य प्राणियो के जीवन का अन्तक यही एक वर्ष था। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्राणियो का सहार करने वाले यमराज को भी यह यह अपने ही साथ ले आया हो।

वसन्त काल मे डामरो का समूह पहिले के ही समान अपने निश्चित मार्गों से चलकर राज-धानी के समीप आ गया था और फिर सामूहिक रूप से नगर को घेर कर उसने राजा सुस्सल को नगर के भीतर ही अवरुद्ध कर लिया था। नगर के भीतर अवरुद्ध हो जाने पर भी असीम साहसी राजा सुस्सल जिस प्रकार पूर्व के विप्लवो मे अधीर न होकर पूर्व सहनशीलता के साथ उपद्रवकारियो के समस्त अत्याचारो को सहन किया करता था उसी प्रकार इस बार भी सहन करने लगा था।

नगर मे प्रवेश करने वाले डामर यत्र-तत्र-सर्वत्र मारने, काटने, लूटने, और आग लगाने के भयानक कार्य करने लगे थे। उनके उत्पातो से समस्त नगर त्राहि-त्राहि करने लगा था। पिछले विप्लवो के समय मे भी मार-काट, लूट और अग्नि-दाह के कार्य किये गये थे किन्तु इस विप्लव के समय उन समस्त अत्याचार पूर्ण कार्यों की भयकरता इतनी अधिक बढ गई थी कि लोग पिछले विप्लवो के अत्याचारो को तुच्छ समझने लगे थे। यशोराज, भिक्षाचर और पृथ्वीहर आदि नगर मे टूट पडने के विचार से महासरित् के तट पर जाकर खडे हो गये थे। वह ऐसा स्थान था जहाँ से वे निर्विघ्नता के साथ अपने-अपने प्रयत्नो मे सफल हो सकते थे।

युद्ध करते-करते कई दिन बीत गये। जय और पराजय का कुछ भी निर्णय न हो सका। इतने मे ही किसी एक युद्ध मे यशोराज के ही सैनिक ने भूल से उसे अपना शत्रु समझ कर यमराज देश मे पहुँचा दिया था। जिस समय उभय पक्ष की सेनाओ मे युद्ध बडी भयकरता के साथ हो रहा था उस समय राजा सुस्सल के अश्वारोही सैनिक कटय के पुत्र विजय से यशोराज इधर-उधर, आगे, पीछे हट, बढ कर युद्ध करने मे तल्लीन था। उसका घोडा और कवच उसी रग का था जिस रग के घोड़े और कवच शत्रु-पक्ष वाले धारण किये हुए थे। युद्ध की उत्तेजना से उसके अपने ही वल्लभधारी

सैनिक ने यही समझ लिया कि हो न हो, वह शत्रु-पक्ष का ही कोई योद्धा है। ऐसा समझ कर वह बडे दर्प के साथ बढा और ऐसा वल्लम मारा कि वह सदा से लिए शान्त हो गया।

यशोराज की मृत्यु के सम्बन्ध मे यह भी कहा जाता है कि डामरो ने ही जान-बूझकर उसे मार डाला था। वे सब यह समझ गये थे कि भिक्षाचर को राजसिंहासन पर बैठा देने की शक्ति वह रखता है। आज न सही तो दो दिन के बाद वह अपने प्रयत्न मे अवश्य सफल हो जायगा। किन्तु सफल होने का दुखप्रद परिणाम यह होगा कि समस्त डामरो को मृत्यु की शरण मे जाकर विश्राम करना पडेगा। इसी भय से उन सबो ने उसे युद्ध के समय मे ही समाप्त कर दिया था जिस प्रकार यशोराज ने अपने परम विश्वासपात्र स्वामी के साथ विश्वासघात किया था उसी प्रकार अपने परम-विश्वासपात्र सेवक द्वारा मृत्यु को भी प्राप्त कर लिया था।

यशोराज की मृत्यु हो जाने के बाद पृथ्वीहर ने समस्त डामरो को भिन्न-भिन्न स्थानो मे युद्ध करने के लिए भेज दिया था और वह स्वय क्षिप्तिका तट पर होने वाले आक्रमण का सामना करने के लिए चला गया था। उस अवसर पर नगर के वे सैनिक, जो कि भिक्षाचर के पक्ष मे थे, इतनी वीरता के साथ लडे थे कि विपक्षी-दल के जितने भी सैनिक थे, सभी के छक्के छूट गये थे।

वह एक ऐसा समय था जिसका कि प्रत्येक दिन अग्निदाह, साहसी वीर पुरुषो का सहार तथा अन्य उत्पात इन सबके कारण जन-समूह मे निरन्तर भय उत्पन्न करने लगा। उस समय सूर्य की किरणो से अग्नि की ज्वाला प्रकट होती थी, बारम्बार भूकम्प आदि उपद्रव होते थे और इतनी प्रबलता के साथ तूफान उठते थे कि पहाडियाँ तक हिल जाती थी और वृक्षो के समूह छिन्न-भिन्न हो जाते थे। प्रबल वायु के कारण गगन-मडल मे छा जाने वाली धूलि और बवण्डर के कारण पृथ्वी से सीधी ऊपर जाने वाली धूलि की रेखाएँ ऐसी प्रतीत होती थी मानो आकाश-मण्डल को रोकने के लिए स्तम्भ तैयार कर दिये गये हो।

ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन जिस समय भयकर युद्ध होने लगा था उस समय डामरो ने काष्टील नामक स्थान के किसी घर मे आग लगा दी थी। कहा नही जा सकता कि यह आग वायु के प्रकोप से बढ गई थी अथवा विद्युत् के पतन से प्रबल हो उठी थी किन्तु उसका भीषण परिणाम यह हुआ था कि समस्त नगर अग्निमय हो गया था। सर्वप्रथम माक्षिकस्वामी से हाथियो के व्यूह के समान निकलता हुआ धुआँ वृहत्सेतु से दृष्टिगोचर हुआ था और थोडी ही देर के बाद इन्द्रदेवीभवन नामक बिहार से अग्नि की ज्वालाएँ प्रकट होने लगी थी। इसके बाद ही नगर का नगर अग्नि की भीषण ज्वालाओ से जलने लगा था।

सभी दिशाओ मे इतना धुआँ छा गया था कि न तो पृथ्वी दिखाई पडती थी और न गगन-मण्डल ही दृष्टिगोचर होता था। न क्षितिज प्रान्त की कोई वस्तु दृष्टिगोचर होती थी और न समीप का ही कोई स्थान स्पष्ट रूप से दिखाई पडता था। क्षण भर के लिए सूर्य दर्शन देकर उसी प्रकार धुएँ मे छिप जाता था जिस प्रकार हुडुक्का नामक वाद्य-यत्र के मुख को चमडा बाहर निकल कर पुन उसी मे समा जाता है। समस्त भवन धुएँ से आच्छादित हो गये थे पुन अग्नि के ज्वालाओ के प्रकाश मे अन्तिम दर्शन देने के समान दिखाई पड कर क्षण भर मे ही जल कर स्वाहा हो जाते थे। अपने दोनो तटो के भवनो की अग्नि ज्वालाओ के कारण वितस्ता नदी यमराज की रक्त-रजिता दुधारी तलवार के समान दृष्टिगोचर होने लगी थी।

ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च स्थान तक को छू सकने की स्पर्धा करने वाला अग्नि-ज्वाला वलय स्वर्ण निर्मित छत्र के समान प्रतीत होने लगा था । कभी-कभी ऐसा भी अनुमान होने लगता था मानो सुमेरु का ही आविर्भाव हो गया हो और जो धुंआ ज्वालाओ के ऊपर था वह उस सुमेरु के शिखर पर मँडराने वाला मेघो का ही समूह रहा हो । अग्नि की ज्वालाओ के प्रकाश मे जो भवन सुरक्षित-से दिखाई पडते थे, उन्हे देखकर गृहस्वामी इस भ्रम मे पड जाते थे मानो वे जलने से बच गये हो । वाडवानल के कारण समुद्र को किस प्रकार की यत्रणा सहन करनी पडती है, इसका अनुभव वितस्ता ने उस समय किया था जिस समय जलते हुए भवन उसके प्रवाह मे गिरने लगे थे ।

धुएँ से आच्छादित हो जाने के बाद सुधा के समान श्वेत वर्ण के मन्दिर इस प्रकार दिखाई पडते थे जिस प्रकार सन्ध्या के समय उठने वाले प्रलयकर मेघ-समूह से घिर जाने पर हिमालय के शिखर दृष्टिगोचर होते हैं । अग्नि लग जाने के भय से स्नानागार और नौकाएँ जिनसे पुल बनाये जाते थे, हटा दी गई थी । इतना ही नही, नगर की समस्त जल प्रवाहिनी-धाराएँ भी शून्यता को प्राप्त हो हो चुकी थी । और कहाँ तक कहा जाय ? क्षण भर मे ही वह नगर मठो, मन्दिरो, भवनो, बाजारो और इसी प्रकार के अन्य दर्शनीय स्थानो से रिक्त होकर जलकर भस्म हुये वन के समान हो गया था । वह नगर जलकर राख का ढेर बन गया था यदि वहाँ कोई वस्तु शेष रह गई थी तो वह केवल गोमत बुद्ध की प्रतिमा ही थी धुंए के कारण वह इतनी काली पड गई थी कि देखने से यही ज्ञात होता था मानो कोई जला हुआ वृक्ष खडा है ।

उस भयानक अग्नि-काण्ड से अपने-अपने निवास-स्थानो की रक्षा करने के लिए जिस समय समस्त सैनिक भाग गये थे उस समय राजा सुस्सल के पास केवल एक सौ सैनिक रह गये थे । वितस्ता नदी का पुल पहिले से ही तोड दिया गया था, इसलिए वह नदी के उस पार जा सकने मे सर्वथा असमर्थ था । ऐसे ही अवसर पर शत्रुओ ने असख्य सैनिक के साथ उसे घेर कर उसी समय मारडालने का उत्तम योग समझ लिया था । उस समय राजा सुस्सल भी खिन्न हो चुका था । इसके बाद उसने जिस समय जलकर भस्म हुए नगर की ओर दृष्टिपात किया, अपनी दुर्दशा को ध्यान पूर्वक देखा और प्रजावर्ग के कष्टो पर विवेचनापूर्ण दृष्टि से मनन किया उस समय अपने लिए आसन्न मृत्यु-काल को ही अधिक महत्त्वपूर्ण समझ लिया था ।

जिस समय वह प्रस्थान करने के लिए तैयार हो चुका था उसी समय उसके सामने कमलिय आकर खडा हो गया था और समीप के अन्य व्यक्तियो की ओर सकेत करते हुए कहने लगा था "देव ! किस ओर जाने का विचार किया जा रहा है ?" उसके इस प्रकार कहते ही धैर्यवान् राजा सुस्सल ने तुरन्त अपने घोडे को रोक लिया और उत्तेजनामय हास्य के साथ उसकी ओर मुख फेर कर कहा "क्या तुम अपने पितामह स्वाभिमानी राजा भिज्ज को भूल गये हो । हम्मीर के साथ युद्ध करने के बाद अपने देश के लिए उसने जो कुछ किया था, वही आज मैं भी करने जा रहा हूँ । स्वीकार करता हूँ कि यह भिक्षाचर जिसका कि वश-परिचय आज भी अज्ञात है, मेरा बान्धव कहलाने पर भी मेरा ही विरोधी बना हुआ है । बडे खेद के साथ कहना पड रहा है कि वह जब हम लोगो के ही सामने भागा-भागा फिर रहा है, तब हम अथवा हमारे बन्धु-बान्धवगण किस प्रकार राजा हर्षदेव के कार्यों को समाप्त कर सकते हैं । स्वाभिमानी कहे जाने वाले व्यक्तियो मे क्या ऐसा भी कोई व्यक्ति होगा जो अन्त समय में अपने शरीर के रक्त से धरा को सीचे ही बिना यो ही अपने देश को

छोड़ने से लिए तैयार हो जाय ? कदापि नही। जिस प्रकार व्याघ्र के रक्त से ही तर करके व्याघ्र का चमड़ा निकाला जाता है, उसी प्रकार स्वाभिमानी व्यक्ति के शरीर से निकलते हुए रक्त के द्वारा ही उससे उसके देश को छुड़ाया जा सकता है।

ऐसा कहकर राजा सुस्सल ने घोडे की लगाम छोड दिया और उसके सामने जाकर तलवार को हाथ मे ले लिया। उस समय ऐसा ज्ञात होता था मानो वह अपने दोनो हाथो से घोडे के अग्रभाग को सम्हालने का प्रयत्न कर रहा हो। इसके बाद लवराज के पुत्र कमलिय ने आगे बढकर राजा सुस्सल के घोडे की लगाम को थाम लिया और कहा "सेवको के रहते हुए आगे-आगे जाने का प्रयत्न करना राजा को शोभा नही देता।"

इस प्रकार के सकट मे फसे हुए राजा सुस्सल के समीप पृथ्वीपाल एकाकी आ गया था। यद्यपि वह घायल होने के कारण अपने भवन मे पडा हुआ था तथापि सहसा उच्चाटन होने के कारण वह वहाँ से निकल आया था। उसके आते ही राजा सुस्सल ने उसे हृदय से लगा लिया और उसने उच्च वश मे जन्म लेकर वशोचित गौरव की रक्षा करने का जो प्रयत्न किया था उसके लिए भी उसकी अधिक प्रशसा की थी। इसी प्रकार उसने भी राजा सुस्सल की प्रशसा की थी।

इतने ही समय मे शत्रुओ की सेना ने तीन ओर से व्यूह रचना कर तीरो की वर्षा आरम्भ कर दी थी। राजा सुस्सल जिस स्थान पर खडा था उसी स्थान पर भाग्य के भरोसे खडा रहा। हजारो प्रकार से शत्रुओ ने उस पर तीरो की वर्षा की थी किन्तु सभी व्यर्थ सिद्ध हो गये थे। इसके बाद कुरुक्षेत्र मे अर्जुन की सहायता करने वाले श्री कृष्ण ने जिस प्रकार अपना विश्वरूप प्रकट किया था उसी प्रकार शत्रुओ की तलवारो के ऊपर ज्यो ही राजा सुस्सल का रूप समान रूप से प्रतिबिम्बित हुआ था त्यो ही सख्या मे अल्प होने पर भी उसके समस्त सैनिक प्रकट हो गये थे। जिस प्रकार अकेला बाज असख्य लघु पक्षियो को और सिह असख्य मृगो को भगा देता है उसी प्रकार राजा सुस्सल ने भी अकेले ही असख्य शत्रुओ को युद्ध-भूमि से मार भगाया था।

जिस समय शत्रुओ की सेना भयातुर होकर भागने लगी थी उस समय उसके अश्वारोही सैनिको ने अपने ही पक्ष के पैदल सैनिको को घोडो की टापो से कुचलवा दिया था और अपने ही हथियारो से उन्हे घायल कर दिया था। वास्तव मे बात यह हो गई थी कि वे पैदल सैनिक धीरे-धीरे चल रहे थे इससे अश्वारोही सैनिको को भागने में असुविधा होने लगी थी। जलती हुई अग्नि की ज्वालाओं का प्रतिबिम्ब पडने के कारण सभी योद्धा चाहे घायल हुए हो या मर गये हो, रक्त-सरिता के प्रवाह मे डूबे हुए से रक्त वर्ण के दिखाई पड रहे थे।

सन्ध्या के समय जबकि शत्रुओ की सम्पूर्ण सेना प्राणो की रक्षा करते हुए भिन्न-भिन्न मार्गों और भिन्न दिशाओ मे भाग गई थी, राजा सुस्सल अश्रुपूर्ण नेत्रो से उस नगर मे लौट आया था जिसका कि सब कुछ जल गया था और जो जलने से बच गया था वह भी श्रीहीन हो गया था। इस प्रकार युद्ध करने पर यद्यपि वह पराजित नही हुआ था तथापि उस परम मनोहर नगर के नष्ट हो जाने से उसने शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने की आशा तक को छोड दिया था। इतना ही नही, वह अपने जीवन से भी उदासीन रहने लगा था। फिर तो वह निरन्तर अश्रुपूर्ण नेत्रो से युक्त देखा जाने लगा था। जागते, सोते, चलते, खडे रहते, स्नान करते, भोजन करते और शत्रुओ द्वारा ललकारा जाने पर युद्ध के लिए प्रस्थान करते, अर्थात् जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में उसके नेत्र अश्रुओ से ही पूर्ण देखे गये थे।

प्रबल सौभाग्य ही था। अनेक दिनों के संकटों को सहन करने के बाद वह उससे मिलने की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता के साथ कर रहा था। कष्टों के सहन करने का मधुर परिणाम वह अपनी प्रियतमा रानी के मिलन को ही समझ रहा था। रानी का प्रेम वात्सल्यपूर्ण था, वचनों में पद-मर्यादा का गौरव सुरक्षित रहता था, चतुरता में उसका अनुभव प्रत्यक्ष प्रकट होता था। समुचित व्यवहार और उदारता आदि सद्गुणों को उसने ऐसा अपनाया था, मानो वे सब उसकी ही सन्तान का पद प्राप्त कर लिये हो।

यह जानते हुए भी कि प्रजा का जीवन विनोद से शून्य हो चुका है और उन सबों के लिए जीवन-निर्वाह की समस्यायें भी जटिल हो चुकी है, राजा सुस्सल ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया था। उसके लिए अपना ही जीवन बोझिल-सा हो गया था इसलिए क्या शासन-प्रबन्ध और क्या जीवन-धारण सभी विषयों में तटस्थ-सा हो गया था। जिस समय पटरानी मेघमंजरी ने अपने स्वामी से यह समाचार सुना था कि वह बड़े संकट में फँसा हुआ है, व्याकुल हो उठी थी। उसने बड़ी व्याकुलता के साथ अपने स्वामी से मिलने के लिए काश्मीर की ओर प्रस्थान कर दिया था किन्तु काश्मीर पहुँचने के पूर्व ही फुल्लपुर के समीप उसे परलोक का ही मार्ग ग्रहण करना पड़ा था।

राजा सुस्सल जो कि सर्वप्रथम अपनी प्रियतमा रानी मेघमंजरी से मिलने की आशा में सुख की कल्पना कर रहा था, उसकी मृत्यु का दुःख सम्वाद पाते ही पहले की अपेक्षा कहीं अधिक दुःख के आवेश में पड़ गया था। पटरानी की सेवा करने वाली जो चार स्त्रियाँ थी उनमें उसके प्रति अगाध श्रद्धा थी। पटरानी के जीवित रहने पर भी उन्होंने उसके सभी प्रकार के मृदु और कठोर वचनों को सहन किया था और किसी भी दशा में उसे अप्रसन्न होने का अवसर नहीं दिया था। जब उन चारों ने देख लिया कि उसकी स्वामिनी मृत्यु की शरण में चली गई है तब उन चारों ने भी उसे अनुसरण कर मृत्यु को अपना लिया था।

पटरानी के सेवकों में तेज नामक एक रसोइया था। उसने अपनी अपूर्व श्रद्धा प्रदर्शित करते हुए जो कुछ किया था वह बड़ा प्रशंसनीय था। जिस समय पटरानी की मृत्यु हुई थी उस समय वह कहीं चला गया था। लौट आने पर ज्यों ही अपनी स्वामिनी की मृत्यु का वृत्तान्त सुना त्यों ही वह व्याकुल हो गया था। चूँकि वह पटरानी की मृत्यु होने के दूसरे दिन आया था इसलिए उसे अपनी स्वामिनी का अन्तिम दर्शन भी न प्राप्त हुआ था। फिर भी वह चिता लगाये गये स्थान में पहुँच गया था और वहीं पत्थर से अपने मस्तक को चूर-चूर कर नदी के प्रवाह में कूद पड़ा था और इस प्रकार मृत्युलोक सिधार गया था।

पटरानी मेघमंजरी की मृत्यु से राजा सुस्सल शोक-मग्न अवस्था में जीवन के दिन बिताने लगा था। ऐसे ही समय में शत्रुओं ने उसे युद्ध के लिए ललकार कर उत्तेजित कर दिया था। युद्ध की उस उत्तेजना से उसके शोक का अन्त हो गया था अतएव कहना पड़ता है कि उस समय युद्ध के लिए ललकार कर शत्रुओं ने उसपर अनुग्रह ही किया था। कुछ भी हो, अपनी उस नैराश्यपूर्ण मानसिक स्थिति के कारण राजा सुस्सल ने राजसिंहासन का त्याग कर देना उचित समझ लिया था। और इसीलिए अपने पुत्र को जो अपना बाल्यकाल समाप्त कर चुका था, पुनः लोहर पर्वत से बुला लिया था। लोहर-प्रान्त तथा वहाँ पर सुरक्षित कोष की रक्षा के लिए उसने प्रज्जि के भतीजे मागिक को वहाँ का मण्डलेश्वर बना दिया था।

चूँकि भयानक अग्नि-दाह होने के कारण समस्त भोजन-सामग्री जलकर राख हो गई थी इसलिए वडा कठिन और भयानक दुर्भिक्ष समस्त देश के ऊपर छा गया था। जनता के पास जितना भी सचित धान था वह अधिक समय-व्यापी सकटो के कारण समाप्त हो गया था। जनता के रहने के लिए जो घर थे वे भी अग्नि मे जलकर स्वाहा हो गये थे। नगर के बाहर जो खेतो की उपज थी उसे डामरो ने अपने अधिकार मे कर लिया था और यातायात के मार्गों को भी रोक रखा था। राजकीय परिवार से नियमित धन न पाने के कारण सामन्तो का समुदाय भी उसी दुर्भिक्ष मे नष्ट हो गया था। राजा सुस्सल तो स्वय घोर सकट मे पडा हुआ था। पूर्व मे वर्णन किये गये अग्नि-काण्ड से जो थोडे-से घर बच गये थे, भूखी जनता अन्न की खोज मे दिन-प्रतिदिन उन घरो मे भी आग लगाने लगी थी।

उस समय जनता भयभीत होकर नदी के पुल को पार करती हुई अपनी नासिका को वन्द करने लगी थी। कारण यह था कि नदी के प्रवाह मे जो असख्य शव सड गल रहे थे उनकी दुर्गन्ध से सभी दिशाओ की वायु भी दूषित हो चुकी थी। मास-विहीन नर-ककालो तथा अस्थि-समूह के ढेरो के कारण पृथ्वी का प्रत्येक भाग श्वेत हो चुका था। देखने से यही ज्ञात होता था मानो किसी कापालिक ने अपने व्रत को सिद्ध करने के लिए ही यह समस्त आयोजन कर रखा हो। दुर्भिक्ष-पीडित मनुष्य चल सकने मे भी असमर्थ हो रहे थे। सूर्य की किरणो के ताप से उन सव के लम्वे-लम्वे शरीर काले पड गये थे। उन्हे देखने से यही अनुमान होता था मानो लकडी के वडे-वडे खम्भे जलते-जलते उसी रूप मे शेष रह गये हो।

उसी समय यह मिथ्या समाचार प्रचार मे प्रसार पाने लगा था कि उन दिनो निरन्तर होने वाले युद्धो मे से किसी एक युद्ध मे तीर से घायल हो जाने के कारण पृथ्वीहर मर गया है। वास्तव मे सत्य वात यह थी कि विशेष रूप से घायल हो जाने के कारण पृथ्वीहर चल-फिर नही सकता था। इसलिए उसके सेवको ने वडी सतर्कता के साथ उसे किसी गुप्त स्थान मे सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया था। किन्तु राजा सुस्सल ने वडे हर्ष के साथ उस मिथ्या समाचार को सुनकर सत्य मान लिया था और पुन नवीन उत्साह के साथ युद्ध करने लगा था।

जिस प्रकार पुश्चली (व्यभिचारिणी स्त्री) संकेत-मात्र से ही पुरुष मे उत्तेजना उत्पन्न करती है किन्तु उसकी इच्छा की पूर्ति नही होने देती, उसी प्रकार विजय-श्री भी राजा सुस्सल मे युद्ध करने की उत्तेजना को उत्पन्न करने लगी थी यद्यपि उसकी इच्छाओ की पूर्ति एक वडी विकट समस्या वन चुकी थी। दैव की समस्त लीलाएँ विचित्र हुआ करती हैं। कभी-कभी इतनी विपरीत हो जाती हैं जिनका कि अनुमान कर सकना भी असम्भव है। कभी-कभी वे इतनी कोमल और सुन्दर भावापन्न होती हैं कि मनुष्य विवश होकर उन सब के अधीन हो जाता है और ज्योही वह अधीन हो जाता है और त्योही सकटो का पर्वत उस पर टूट पडता है। जिस प्रकार मेघो का समूह अलौकिक शक्तिशालिनी औषधियो को नष्ट करने के लिए सर्वप्रथम प्रकाश मान विद्युत् को प्रकट कर अन्त मे सम्पूर्ण पर्वत को अन्धकार से आच्छादित कर देता है उसी प्रकार दैव भी किया करता है।

पृथ्वीहर की मृत्यु का समाचार पाकर राजा सुस्सल मे एक प्रकार की अपूर्व स्फूर्ति आ गई थी किन्तु उसी समय उसकी प्रियतमा पटरानी मेघमंजरी को स्वर्ग की देवियो ने अपने लोक मे बुला लिया था। इसमे सन्देह नही कि राजा सुस्सल का प्रधान सहायक देवी स्वरूपिणी मेघमजरी का

प्रबल सौभाग्य ही था। अनेक दिनो के सकटो को सहन करने के बाद वह उससे मिलने की प्रतीक्षा बडी उत्सुकता के साथ कर रहा था। कष्टो के सहन करने का मधुर परिणाम वह अपनी प्रियतमा रानी के मिलन को ही समझ रहा था। रानी का प्रेम वात्सल्यपूर्ण था, वचनो मे पद-मर्यादा का गौरव सुरक्षित रहता था, चतुरता मे उसका अनुभव प्रत्यक्ष प्रकट होता था। समुचित व्यवहार और उदारता आदि सद्गुणो को उसने ऐसा अपनाया था, मानो वे सब उसकी ही सन्तान का पद प्राप्त कर लिये हो।

यह जानते हुए भी कि प्रजा का जीवन विनोद से शून्य हो चुका है और उन सबो के लिए जीवन-निर्वाह की समस्याये भी जटिल हो चुकी है, राजा सुस्सल ने कुछ भी ध्यान नही दिया था। उसके लिए अपना ही जीवन बोझिल-सा हो गया था इसलिए क्या शासन-प्रबन्ध और क्या जीवन-धारण सभी विषयों मे तटस्थ-सा हो गया था। जिस समय पटरानी मेघमजरी ने अपने स्वामी से यह समाचार सुना था कि वह बडे सकट मे फँसा हुआ है, व्याकुल हो उठी थी। उसने बडी व्याकुलता के साथ अपने स्वामी से मिलने के लिए काश्मीर की ओर प्रस्थान कर दिया था किन्तु काश्मीर पहुँचने के पूर्व ही फुल्लपुर के समीप उसे परलोक का ही मार्ग ग्रहण करना पडा था।

राजा सुस्सल जो कि सर्वप्रथम अपनी प्रियतमा रानी मेघमजरी से मिलने की आशा मे सुख की कल्पना कर रहा था, उसकी मृत्यु का दु ख सम्वाद पाते ही पहले की अपेक्षा कही अधिक दु ख के आवेश मे पड गया था। पटरानी की सेवा करने वाली जो चार स्त्रियाँ थी उनमे उसके प्रति अगाध श्रद्धा थी। पटरानी के जीवित रहने पर भी उन्होंने उसके सभी प्रकार के मृत्यु और कठोर वचनो को सहन किया था और किसी भी दशा मे उसे अप्रसन्न होने का अवसर नही दिया था। जब उन चारो ने देख लिया कि उसकी स्वामिनी मृत्यु की शरण मे चली गई है तब उन चारो ने भी उसे अनुशरण कर मृत्यु को अपना लिया था।

पटरानी के सेवको मे तेज नामक एक रसोइया था। उसने अपनी अपूर्व श्रद्धा प्रदर्शित करते हुए जो कुछ किया था वह बडा प्रशसनीय था। जिस समय पटरानी की मृत्यु हुई थी उस समय वह कही चला गया था। लौट आने पर ज्यो ही अपनी स्वामिनी की मृत्यु का वृत्तान्त सुना त्यो ही वह व्याकुल हो गया था। चूँकि वह पटरानी की मृत्यु होने के दूसरे दिन आया था इसलिए उसे अपनी स्वामिनी का अन्तिम दर्शन भी न प्राप्त हुआ था। फिर भी वह चिता लगाये गये स्थान में पहुँच गया था और वही पत्थर से अपने मस्तक को चूर-चूर कर नदी के प्रवाह मे कूद पडा था और इस प्रकार मृत्युलोक सिधार गया था।

पटरानी मेघमजरी की मृत्यु से राजा सुस्सल शोक-मग्न अवस्था में जीवन के दिन बिताने लगा था। ऐसे ही समय में शत्रुओ ने उसे युद्ध के लिए ललकार कर उत्तेजित कर दिया था। युद्ध की उस उत्तेजना से उसके शोक का अन्त हो गया था अतएव कहना पडता है कि उस समय युद्ध के लिए ललकार कर शत्रुओ ने उसपर अनुग्रह ही किया था। कुछ भी हो, अपनी उस नेराश्यपूर्ण मानसिक स्थिति के कारण राजा सुस्सल ने राजसिंहासन का त्याग कर देना उचित समझ लिया था। और इसीलिए अपने पुत्र को जो अपना बाल्यकाल समाप्त कर चुका था, पुन लोहर पर्वत से बुला लिया था। लोहर-प्रान्त तथा वहाँ पर सुरक्षित कोष की रक्षा के लिए उसने प्रज्जि के भतीजे भागिक को वहाँ का मण्डलेश्वर बना दिया था।

पिता से मिलने के लिए पुत्र काश्मीर की ओर और आगे बढकर पुत्र का स्वागत करने के लिए पिता वराहमूल नामक स्थान की ओर चल पडा था। निश्चित स्थान मे जिस समय पिता अपने पुत्र को अपने हृदय से लगाता है उस समय हर्ष और शोक दोनो ही उसके हृदय मे छा जाते हैं। तीन वर्ष के बाद अपने देश मे लौटकर आये हुए राजकुमार ने जिस समय अपने पिता को घोर सकट मे फँसा देखा, उस समय उसे बडा कष्ट हुआ था। जिस प्रकार दावानल से जले हुए वन-प्रदेश के ऊपर वृष्टि करने वाले मेघ झुके रहते हैं उसी प्रकार जल कर राख का ढेर बने हुए उस नगर मे उसने भी शोकातुर होकर मस्तक झुकाये प्रवेश किया।

इसके बाद उसके पिता ने आषाढ की प्रतिपदा को उसका राज्याभिषेक कर दिया था और राजतन्त्र-सम्बन्धी समस्त नीति को बतलाते हुए कम्पित स्वर मे यह कहा था "जिस भार को न मैं सम्हाल सका और न मेरा भाई सम्हाल सकने समर्थ हुआ, वही भार तुम्हे दे रहा हूँ। आशा करता हूँ कि तुम इस भार को सफलतापूर्वक सम्हालने का प्रयत्न अवश्य करोगे। हे पुत्र! तुम असीम साहसी हो और तुममे धैर्य का अभाव नही है इसीलिए तुम्हे यह भार दिया जा रहा है।" दैव के द्वारा विमोहित होने के कारण राजा सुस्सल ने नाम मात्र के लिए ही अपने पुत्र को राजा बनाया था और राज्य-शासनासम्बन्धी समस्त अधिकारो को अपने ही अधीन रखा था।

ज्योही राजकुमार का राज्याभिषेक कर दिया गया था त्योही शत्रुओ द्वारा किया जाने वाला नगरावरोध, अनावृष्टि और दुर्भिक्ष, प्लेग आदि सक्रामक रोग, दस्युओ द्वारा किये जाने वाले लूट-मार के कार्य तथा इसी प्रकार के समस्त उत्पात और शान्त हो गये थे। इतना ही नही, प्रसन्नता की अधिकता के कारण धरती ने भी खेतो की उपज मे वृद्धि कर दी थी। इसलिए श्रावण का महीना आते-आते देश के भीतर जो भयानक अन्नाभाव था, वह दूर हो गया था।

इतने ही समय के भीतर जब कि राजा जयसिंह ने युद्ध-क्षेत्र मे शत्रुओ को नष्ट कर डाला था तब उसके विरुद्ध षडयन्त्र करने वालो ने उसके पिता सुस्सल से यह कहा था कि कि वह उससे द्रोह करने लगा है। उन सबो की बातो पर सुस्सल क्रुद्ध हो गया था और बिना किसी प्रकार का विचार किये उसने उसे बन्दी बनाने के लिए कव्य के पुत्र को भेज दिया था। किसी न किसी प्रकार राजकुमार को भी यह सब समाचार विदित हो चुका था। कोप के आवेश मे आ जाने पर भी वह मन ही मन प्रसन्न होने का-सा भाव प्रकट करने के विचार से मुख-मुद्रा के ऊपर हास्य को आसन दे चुका था। इसलिए विजय स्वय उसके सम्मुख नही गया था केवल उसके भवन पर पहरेदारो को नियुक्त कर उसने सुस्सल के आदेश का पालन किया था। मानसिक पीडा के कारण उस दिन राज-कुमार ने भोजन तक नही ग्रहण किया था और दूसरे दिन पिता के समीप जाकर उसके हृदय के सन्देह को दूर करने का विचार भी कर लिया था।

उधर उसके पिता ने यह सोचकर कि इस प्रकार बन्दी बनाये जाने पर वह सभी आक्षेपो से मुक्त हो गया है, तुरन्त कपट-नीति को अपना लिया था और उसे धोखा देने के लिए मन्त्रियो को भेज कर यह कहलाया था "तुमने अपने लिए जिस मार्ग को उचित समझा है वह सर्वथा अहितकर है। ऐसी दशा मे उचित होगा कि तुम उस मार्ग को छोडकर नीति-मार्ग को अपना लो।" यह सब उसने दिखावे के लिए ही किया था क्योकि उसने अपने मन मे किसी समय अकस्मात् उसके भवन मे प्रवेश कर उसे घेर लेने तथा बन्दी बनाने का दृढ सकल्प कर लिया था और उस सकल्प को पूरा करने के लिए दिन-रात चिन्तित र करता था।

जिस राजसिंहासन के लिए पिता पुत्र को और पुत्र पिता को सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखा करते हैं और जिसके कारण उन्हें रात्रि के समय में भी सुख-पूर्वक सोने का अवसर नहीं प्राप्त होता है, उस राज-सिंहासन को धिक्कार है। जब राजा अपने पुत्र, स्त्री, भाई और सेवक पर ही अविश्वास करने लगते हैं तब भला कौन यह कह सकता है कि उनका वास्तविक विश्वासपात्र कौन हो सकता है।

किसी एक स्थानक का पुत्र उत्पल था। वह स्थानक खलपाल में पहरेदार का काम करता था और साह्य नामक एक छोटे से ग्राम के समीप रहता था। बाल्यकाल में उत्पल डामरों के यहाँ रहकर उनके पशुओं को चराया करता था। शास्त्र-ग्रहण करने के बाद वह टिक्क के सम्पर्क में आ गया था और नित्य उसी के साथ रहा करता था। एक वर्ष तक वह टिक्क के यहाँ सम्वादवाहक का कार्य करता रहा और फिर जब सुस्सल ने शत्रुओं में भेदभाव उत्पन्न करने की नीति को अपनाया था तब उसके पक्ष में आकर उसका विश्वापात्र बन गया था। इसीलिए सुस्सल ने उसे ऊँचे पदाधिकार और ऐश्वर्य देना स्वीकार कर टिक्क के यहाँ रहने वाले भिक्षाचर को मार डालने के बाद टिक्क को भी मार डालने के लिए उससे कहा था। सुस्सल द्वारा दिये गये प्रलोभनों के जाल में पड़कर वह गद्‌गद् हो गया था। इसके बाद उसे बहु मूल्यवान् पारितोषिक दिये गये थे और गजपति (कोषाध्यक्ष) का पद भी प्रदान किया गया था।

सुख-भोग का आकर्षण और स्वामी के साथ भयानक विश्वासघात—ये दोनों ही उत्पल के मस्तिष्क को अशान्त करने लगे थे। दिन-रात निरन्तर सोचने पर भी वह यह निश्चय न कर सका कि उसे क्या करना चाहिए? वह उस भयानक विश्वासघात के कार्य को कर डाले या यों ही पड़ा रहने दे? ऐसे ही समय में उसकी धर्मपत्नी ने एक पुत्र रत्न की जननी होने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया था। पुत्र होने के सुखमय सम्वाद को पाकर अपनी कार्य-सिद्धि को ध्यान में रखते हुए सुस्सल ने उसके पास नाना प्रकार की वस्तुएँ भेज दी थीं और अधिक आनन्द प्रकट करते हुए ऐसा आचरण किया था मानो वही उत्पल की पत्नी की पिता रहा हो अर्थात् नाती के होने पर जिस प्रकार नाना प्रसन्न होता है उसी प्रकार सुस्सल प्रसन्न हुआ था।

सुस्सल द्वारा भेजी गई समस्त वस्तुओं को देखकर उत्पल की स्त्री सन्देह करने लगी थी और हठपूर्वक समस्त वृत्तान्त जानने के लिए प्रयत्नशील हो गई थी। अन्त में उत्पल ने उससे समस्त रहस्य स्पष्ट शब्दों में कह दिया था। सुनते ही उसकी स्त्री ने उसे समझाते हुए कहा "भूल से भी अपने स्वामी के साथ विश्वासघात न करना। मेरा कहना न मानकर यदि तुम ऐसा कार्य करोगे तो यह स्मरण रहे कि कार्य-सिद्ध हो जाने के बाद अवसर पाकर सुस्सल तुम्हें भी मरवा डालेगा। क्योंकि विश्वासघातक समझकर वह तुमसे नित्य सशंकित रहा करेगा। उचित तो यही होगा कि उसके परम विश्वासपात्र बनकर तुम उसी को मार डालो। जैसे ही तुम उसे मार डालोगे वैसे ही अपने स्वामी, स्वामी के पुत्र और स्वामी के परिवार से तुम अपार धन-राशि प्राप्त कर लोगे।"

इस प्रकार समझाकर उसकी स्त्री ने उसके उस विचार में परिवर्तन ला दिया और यह भी कहा कि सुस्सल की हत्या करने के पूर्व उसे टिक्क के साथ पूर्ववत् सम्पर्क स्थापित कर लेना चाहिए। इसके बाद वह विश्वासघातक निरन्तर आता-जाता रहा किन्तु दैव द्वारा विमोहित होने के कारण सुस्सल कुछ भी न समझ सका और जिस प्रकार पिता अपने पुत्र पर विश्वास स्थापित किये रहता है उसी प्रकार वह भी उस पर विश्वास स्थापित किये रहा। वास्तव में जिन पुरुषों का भाग्य क्षीण होने

लगता है वही अपने पुत्र पर सन्देह और शत्रु के सेवक पर विश्वास करने लगते हैं। जिस प्रकार मधुलोभी मनुष्य मधु-मक्खियों द्वारा पहुँचाई जाने वाली पीडा को ही भूल जाते हैं उसी प्रकार निम्न-श्रेणी के मनुष्य जब स्वार्थान्ध हो जाते हैं तब अपने द्वारा किये गये कार्यों से उत्पन्न होने वाले संकटों को भी तुच्छ समझने लगते हैं।

इसके बाद जब सुस्सल और प्रज्जि दोनों ही टिक्क को उत्पीडित करने लगे तब उत्पल ने टिक्क के सामने आत्म-समर्पण कर बडी प्रसन्नता के साथ प्रतिभू (जमानतदार) स्वरूप उसे अपना पुत्र दे दिया। इधर राजा सुस्सल ने जीते हुए देवसरस नामक स्थान को कातिक के महीने मे छोडकर खेरी प्रान्तान्तर्गत वाष्ट्रक नामक ग्राम की ओर प्रस्थान किया। फिर कल्याणपुर के समीप उसने जितने भी युद्ध किये थे उन सबो मे भिक्षाचर तथा कोष्टेश्वर आदि को पराजित कर लज्जित कर दिया था।

सुज्जि ने भिक्षाचर तथा उसके सैनिकों के बीच से काक-वशोत्पन्न साहसी शोमक को जीवित अवस्था मे ही बन्दी कर लिया था। सर्वप्रथम भवक के पुत्र विजय को जीत कर राजा सुस्सल ने कल्याणपुर के समीप बने हुए उसके घरो मे आग लगा दी थी। जब वडोसक जल गया और भिक्षाचर के लिए कही भी सुरक्षित स्थान न रहा तब उस प्रदेश को छोडकर शमाला स्थित काकरूह नामक ग्राम मे चला गया था। भवक के पुत्र विजय का छोटा भाई भयभीत होकर राजा सुस्सल के पक्ष मे मे आ गया था किन्तु उसने क्रुद्ध होने के कारण उसे बेडियाँ पहिनाकर बन्दी बना लिया था। इसके बाद शूरपुर मे शक्तिशालिनी सेना के साथ रिल्हण को स्थापित कर सशंकित रहने वाले राजा सुस्सल ने राजपुरी पर भी आक्रमण कर दिया था।

इस प्रकार उद्दण्ड प्रयोगों द्वारा डामरो को छिन्न-भिन्न कर देने के बाद उन्हे पूर्ण रूप से पराजित करने का तनिक भी प्रयत्न राजा सुस्सल ने नही किया था। शक्ति से क्षीण हो जाने पर शक्तिशाली शत्रु के भय से भिक्षाचर और लवन्यो ने देशान्तर चले जाने का विचार कर लिया था। जिन लोगो ने भिक्षाचर के पक्ष का समर्थन करने का बीडा उठाया था वे सब दुर्दैव के प्रकोप से जीवित दशा मे ही मृतको के समान हो गये थे। सोमपाल की कुटिलता को स्मरण कर राजा सुस्सल ने वर्फ पिघल जाने के बाद राजपुरी को श्मशान बना देने का निश्चय कर लिया था इसीलिए उस समय वह वहाँ से लौट पडा था।

जिस समय राज्य के अन्तर्गत होने वाले विप्लव एक प्रकार शान्त हो गये थे उस समय लोग यही समझने लगे थे कि राजा सुस्सल समुद्र तक पृथ्वी जीतने का निश्चय कर रहा है। देखा गया है कि राज्य मे विप्लव होते ही राजा नष्ट हो जाते हैं। यदि कोई बच जाता है तो उसकी सख्या सौ मे एक ही समझनी चाहिए फिर भी उसके शासन-काल का प्रत्येक वर्ष एक युग के ही समान माना जाता है यही दशा राजा सुस्सल की भी थी। उसके शासन-काल मे शोक, भय, दरिद्रता, प्रियजनो की मृत्यु और इसी प्रकार के अन्य संकटो मे पडकर जनता का जीवन नष्ट प्राय हो गया था। जब यह सत्य हैं कि विधाता के विचित्र विधान पर सफलता अवलम्बित है तब फिर भला मनुष्य अपने बल, पौरुष और कौटिल्य से क्या प्राप्त कर सकता है? दारिद्र्य की गति-विधि निस्सन्देह विधाता के ही समान है। जब कभी कोई अपनी विशालता के साथ उसके सामने जाकर खडा हो जाता है तब वह उसे अन्धकार के समान त्याग देता है और जब कभी कोई उसके समीप से निकल जाता है तब

वह उसकी ओर सिंह के समान देखने लगता है। जब वह कभी किसी राजा को अपने समीप पा लेता है तब मेढक के समान उछल कर उसके ऊपर सवार हो जाता है और फिर उसके ऊपर से उछल कर दूसरे राजा के ऊपर चढ जाता है।

जब तक सुस्सल को राज्याधिकार नही प्राप्त हुआ था जब तक वह अपने भाई उच्चल की निन्दा किया करता था। इतना ही नही, जिन राजाओ पर प्रजा ने कभी अविश्वास नही किया था और जो नष्ट हो गये थे, उन सबकी भी उसने निन्दा की थी। किन्तु जिस दिन से उसे राज्याधिकार प्राप्त हुआ था उस दिन से लेकर बराबर उसे युद्ध मे ही दिन बिताने पडे थे। प्राचीन कथाएँ कहने वालो से उसने विदूरथ आदि जो कथाएँ सुन ली थी उन्ही को वह कहा करता था। न तो उसे हँसने-बोलने का समय मिला, न वह स्त्री-सम्भोग का ही सुख प्राप्त कर सका, न वह किसी को विश्वास पात्र बना सका, और न प्रसन्नता के भावो को ही अपना सका। ऐसा वह राजा सुस्सल उत्पल को अपना विश्वासपात्र समझ कर उसके साथ मित्र के समान व्यवहार करने लगा था। कहा नही जा सकता कि इस स्थल पर किसकी माया विमोहित किये हुए थी। दैव की अथवा अन्य किसी की ?

इधर टिक्क आदि ने उत्पल से कह रखा था कि चाहे वह राजा सुस्सल की हत्या करे अथवा सुज्जि की ? उसके द्वारा किये गये कार्य का मूल्य नही घटेगा। इसके बाद जब प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य सम्पन्न होने मे विलम्ब होने लगा तब राजा सुस्सल क्रुद्ध हो गया था। इसलिए उसे विश्वास दिलाने के लिए वह प्रतिभू स्वरूप अपने पुत्र को देवसरस से ले आया था। साथ ही साथ अपने ही समान भयानक कार्य करने वाले व्याघ्र तथा प्रशस्तराज आदि को भी ले आया था और कहने लगा था "इनके द्वारा आप अपने मनोरथ को सिद्ध करा सकते हैं।" फिर किसी एक समय राजा सुस्सल दुःसाहसिक आक्रमण के समय उपयोगी सिद्ध हो सकने वाले सैनिको मे से चुने हुए तीन-चार सौ पैदल सैनिको के साथ युद्ध-यात्रा के लिए निकल पडा था। उसकी हत्या करने वाले भी निरन्तर अवसर की प्रतीक्षा करते हुए उसी के पास रहा करते थे। बडे खेद के साथ कहना पड रहा है कि वह उत्तम-उत्तम भोजन-सामग्रियो और अन्य उपहारो द्वारा उन सबको प्रसन्न करने लगा था।

उसी समय उसमें सर्वश्रेष्ठ अश्वो के लाभ की प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई थी। भाग्यवश उसे यह समाचार प्राप्त हो चुका था कि नगर में मन्दुरा-चक्रवर्ती नामक सर्वश्रेष्ठ अश्व आया हुआ है। इतना सुनते ही उसने उसे मोल ले आने के लिए अपने सेवको मे से प्रतीहार लक्ष्मक और कव्य के पुत्र विजय आदि को तुरन्त भेज दिया था। इस प्रकार उन सबो के चले जाने पर उसके पास सेवको की सख्या नाम मात्र की रह गई थी।

लक्ष्मक के पुत्र शृङ्गार ने अपने विश्वासपात्र व्यक्तियो द्वारा उत्पल की योजना को सुन लिया था इसलिए राजा सुस्सल को भी उसकी सूचना दे दी थी। किन्तु जिसका मृत्यु-काल समीप आ जाता है वह वध-शाले मे अपने वध किये जाने की सम्पूर्ण तैयारियो को देखने वाले पशु के समान अपने शत्रु को ही मित्र मान लेता है। जब पाण्डवो के वश का अन्तिम समय आ गया था तब न तो दुर्योधन की माता गाधारी के शाप से और न दुर्वासा, विश्वामित्र आदि ऋषियो की क्रुद्ध वाणी से और न अशुभ लक्षणो से और न अपने दिव्य प्रकाश से ही श्रीकृष्ण उसकी रक्षा कर सके थे। इसीसे स्पष्ट है कि भवितव्यता अर्थात् होनहार को रोकने का प्रयत्न करना ही व्यर्थ है।

यही कारण है कि शृङ्गार की बातों को उपेक्षा के साथ सुन लेने के बाद राजा सुस्सल ने कहा था कि यह सब झूठ है। फिर उसी शृङ्गार की ओर लक्ष्य करते हुए सम्मुख उपस्थित उत्पल आदि से भी इस प्रकार कहा था "विश्वासघातक का यह पुत्र नहीं चाहता कि तुम्हारे उद्योग से मेरा कल्याण हो। दूसरे व्यक्तियों के कहने से या अपनी ही इच्छा से यह कह रहा है कि तुम सब के सब दुष्ट स्वभाव के मनुष्य हो।" इतना सुनते ही उन सबों ने अपने आन्तरिक भय के भावों को दबा कर मुस्कराते हुए कहा था "जो हम सबों को कहना चाहिए था उसे श्रीमान् ने ही कह दिया है।"

जब वे सब उस स्थान से चले गये तब राजा सुस्सल कुछ अंश तक सशंकित हो गया था। इसीलिए उसने दौवारिक द्वारा निश्चल विचार वाले सैनिकों में से दो-तीन प्रमुख सैनिकों को बुला लिया था फिर उसने दीर्घ-निःश्वास ली। उसका अन्तःकरण व्याकुल होने लगा था और नेत्रों में अश्रु भर आये थे। इसीलिए होने वाले नृत्य-गीत आदि में उसका मन नहीं लग रहा था। पुण्यक्षीण हो जाने पर स्वर्ग से भ्रष्ट होने का समय आते ही जिस प्रकार देवताओं में मतिभ्रम उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार उसमें मतिभ्रम उत्पन्न हो गया था इसीलिए वह अपने आप्तजनों को भी विदेशीय व्यक्तियों के समान ही समझने लगा था। दुष्टों द्वारा स्वामी के पथभ्रष्ट किये जाने पर उसके आप्तजन भी सशंकित हो गये थे इसीलिए पूर्ण विवेचन किये बिना ही वे उसकी रक्षा के लिए दूसरे किसी पुरुष को बुलाने में तत्पर हो गये थे। प्रायः देखा गया है कि विनाश के समय मनुष्य उन्हीं भूलों को कर बैठता है जिनसे वह सर्वदा सावधान रहा करता है।

इधर उचित अवसर की ताड़ में उत्पल आदि ने अनिमेष नेत्रों से दो दिन बिता दिये। उनके वे दिन बड़े कष्ट से बीते थे। तीसरे दिन जब कि वे उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगे थे तब प्रातःकालीन स्नान आदि से निवृत्त होकर राजा सुस्सल ने उन सबों से कई बार कहा था "तुम सब अपने-अपने घर जाकर भोजन कर आओ।" फिर दैनिक पूजन आदि समाप्त कर दोपहर के समय एकान्त में उत्पल से बातें करने के विचार से उसने सम्वाद-वाहक द्वारा उसे बुला भेजा था। उस स्थान की बिगड़ी हुई दशा से उसने यह भली भाँति समझ लिया था कि वह अपने कार्य में सफल हो जायगा इसलिए वह घबड़ाई हुई अवस्था में राजा सुस्सल के पास पहुँच गया था और उसके साथ के अन्य व्यक्ति द्वार पर ही रोक लिये गये थे। इसके बाद राजा सुस्सल ने उसके छोटे भाई व्याघ्र को भी भीतर बुला लिया था। शेष व्यक्ति बाहर ही खड़े रहे।

जब उसके आप्तजन भी विलम्ब तक उसी के समीप खड़े रहे तब उसने क्रुद्ध होकर इन सत्य वचनों को कहा था "तुम सब यहाँ खड़े-खड़े क्या कर रहे हो। इस समय इस स्थान पर वही खड़ा रह सकता है जो विश्वासघात करने पर कमर कस चुका है।" इतना सुनते ही प्रौढ़ अवस्था प्राप्त एक ताम्बूलवाहक और सान्धिविग्रहिक (विदेश-मन्त्री) विद्वान् राहिल को छोड़कर सभी उस स्थान से चले गये थे। अर्धदेव और तिष्टवैश्य नामक टिक्क के दो दूत भी वहाँ ऐसे खड़े थे मानो उन्हें उत्पल की योजना का कुछ ज्ञान ही न था।

उन्हीं दिनों उत्पल ने भिक्षाचर की सम्मति से आये हुए वडोत्स निवासी सुखराज नामक डामर को अपने शस्त्रधारी पुरुषों के साथ अपनी सुरक्षा के लिए थोड़ी दूर पर नियुक्त कर दिया था। और राजा सुस्सल के चरणों पर झुककर यह कहा था कि यही डामर भिक्षाचर और टिक्क के हत्या-कार्य

को पूरा करेगा। जिस समय राजा सुस्सल ने उन सबों को इस प्रकार रोक रखा था उसी समय राजा सुस्सल से यह कहकर कि प्रशस्त को भी यहाँ बुला लेना चाहिए उसने बड़ी शीघ्रता के साथ उसे भीतर बुला लिया था। उस मण्डप के भीतर आते ही उसने उसे सूना पाया। इसलिए उसने चुपचाप दूसरों की दृष्टि बचाते हुए बन्द कर लिया था। उसी समय स्नान करने के कारण राजा सुस्सल के केश भीगे हुए थे, शीत लगने के कारण वह लम्बा अँगरखा पहिने हुए था, अलग की हुई कटार उसी के समीप पड़ी हुयी थी। उसे उस दशा मे बैठा हुआ देखकर व्याघ्र ने उत्पल से कहा "अब इससे अच्छा अवसर और न मिलेगा। उचित होगा कि तुम राजा सुस्सल से अपने अभिप्राय को प्रकट कर दो।"

इस सकेत से उत्तेजना को प्राप्त कर उत्पल राजा सुस्सल के समीप गया और उसके चरणों के पास बैठने का-सा भाव प्रदर्शित कर उसके आसन पर रखी हुई कटार को उठा लिया। देखते ही देखते राजा सुस्सल के नेत्रो पर भ्राति सी छा गई थी। उद्भान्त नेत्रो से उसने देखा कि वह उसे म्यान से निकाल रहा है। वह अपने को न रोक सका और कहने लगा "इस प्रकार के द्रोह को धिक्कार है। उसने अपने इस वाक्य को अभी पूरा भी न किया था कि इतने में सर्वप्रथम उत्पल ने ही उसकी वही कटार उसके शरीर के बाये भाग मे भोक दी थी। इसके बाद ही प्रशस्तराज ने उसके मस्तक पर आघात किया था। व्याघ्र ने उसके वक्ष पर आघात किया था।

उत्पल ने तो एक ही बार उस पर चोट की थी किन्तु ये दोनो अनेक बार चोट कर उसे छलनी बनाने में लगे हुए थे। चूँकि प्रथम बार की चोट से ही उसकी हड्डी और अतड़ियाँ बाहर निकल आई थी इसलिए उत्पल ने उसे मरा हुआ समझ लिया था। राहिल जो कि खिड़की से चिल्ला-चिल्लाकर सहायको को बुलाने लगा था, पीछे से व्याघ्र द्वारा घायल कर दिया गया फिर भी वह घटा-डेढ-घटा जीवित रहा। दया के वशीभूत होकर उत्पल ने ताम्बूलवाहक अज्जक को अपने पक्ष के मनुष्यो से बचा लिया था। अपने पास के पान के बीडे और अन्य सामान को छोडकर वह प्राणो की रक्षा करता हुआ भाग गया था।

जब भीतर कोलाहल होने लगा तब बाहर खडे हुए टिक्क के सेवक तथा अन्य विप्लवकारी तलवारे ले-लेकर लूट-मार करने लगे थे। यह समाचार पाकर कि राजा सुस्सल ने उत्पल को मार डाला है, राजा सुस्सल के सैनिको ने बाहर खडे हुए उत्पल के साथियो और सहायकों को मारना-काटना आरम्भ कर दिया था। इतने में ही खिडकी से राजा का शव और रक्त-रजित कटार दिखाते हुए उत्पल ने अपने पक्ष के मनुष्यो मे साहस और उत्साह बढाने के उद्देश्य से कहा था "मैंने राजा सुस्सल की हत्या की है। उसके सैनिक कही भी भाग कर न जाने पाये।"

इस दु सम्वाद को सुनते ही राजा सुस्सल के सैनिक और सेवक भयभीत होकर सभी दिशाओ की ओर भाग गये थे और विप्लवकारियो का समूह प्रागण में आकर जमा हो गया था। राजा सुस्सल के शय्यापालक त्रैलोक्य का सेवक जो कि उन समस्त विद्रोहियो की निन्दा कर रहा था वह और एक दौवारिक भी टिक्क के सेवको द्वारा मार डाला गया था। सहजपाल भावुक वश का रत्न था। राजा सुस्सल के सत्वहीन सेवकों मे वही एक उत्कृष्ट आदर्श था।

राजा सुस्सल के मारे जाने का समाचार पाते ही वह ढाल-तलवार लेकर किनारे के द्वार से निकल पडा था।

ऐसे ही समय मे उन हत्यारो ने उसे देख लिया था। फिर उन्ही के सेवकों द्वारा घायल कर दिया गया था जिससे कि वह आगे न बढकर धरती पर गिर पडा था। जिस समय समस्त राजपुत्रो की जाति कलकित हो चुकी थी उस समय उसी ने अपने रक्त से कलक की कालिमा को दूर किया था। नोन नामक एक विद्वान् ब्राह्मण था। उसका रहन-सहन और वेशभूषा आदि विदेशियो की-सी थी इसीलिए जिस समय वह मार्ग पर चल रहा था उस समय हत्यारो के अनुगामिओ ने उसे राजपुत्र समझ कर मार डाला था। जिस समय हत्यारे सकुशल किसी एक ग्राम की ओर दौडे जा रहे थे उस समय क्रुद्ध होने पर भी राजा सुस्सल के सैनिक जिस स्थान पर खडे थे उसी स्थान पर चित्र-लिखित से खडे रह गये। किसी ने भी उन सबका पीछा नही किया।

फिर वहाँ पर राजा सुस्सल के वे बन्धु-बान्धव आये जो कि उसके कृपापात्र बने हुए थे। जो प्रागण सूना पडा था वह उन समस्त स्थूल-शरीर वालो से तुरन्त भर गया था। राजा हर्ष देव की कथा से लेकर यहाँ तक भिन्न-भिन्न प्रकार के कापुरुषो का नामोल्लेख और वर्णन करते-करते हम बोझ ढोने वाले के समान हो चुके हैं, किन्तु अब अधिक वर्णन कर सकने का साहस इसलिए नहीं करना चाहते कि उन सबके कुकृत्यो से पूर्वपेक्षा अधिक कष्ट होने लगा है। राजानुग्रह-प्राप्त कापुरुषो मे जो प्रमुख थे वे यही समझने लगे थे कि प्रागण को पार कर मण्डल मे प्रवेश करना और फिर राजा सुस्सल की हत्या करना-ये दोनो ही कार्य असीम साहसी पुरुष के ही हो सकते हैं।

राजा सुस्सल का शव दातो से रक्त-रजित अधर को दबाये हुए अन्तरात्मा के खेद को प्रकट हुआ सा दिखाई पड रहा था। मैं किस प्रकार वचित हुआ हूँ मृत्यु के पूर्व ही ऐसा सोचते-सोचते उसके नेत्र पथरीले हो चुके थे और मृत्यु के बाद भी वे उसी दशा मे दृष्टिगोचर हो रहे थे। उसके घावो से निकलता हुआ वह, रक्त-प्रवाह जो कि उसके शरीर को काला बना रहा था, ऐसा ज्ञात होता था मानो भीतर ही भीतर बुझ जाने वाली उसकी क्रोधाग्नि ने ही इस प्रकार धूम्र निकालना आरम्भ कर दिया हो। उसका मुख-मडल जिस पर कि रक्त जमा हुआ था ऐसा चित्रित-सा ज्ञात हो रहा था मानो लाल रंग की लाख से उसमे मस्तक का केसर-चन्दन मिश्रित तिलक ही मिटा दिया गया हो। वह वस्त्रहीन अवस्था मे धरती पर पड़ा हुआ था। रक्त-प्रवाह मे भीग जाने के कारण उसके केश चिपटे हुए थे। उसके हाथ-पैर फैले हुए थे और गर्दन कधो पर झुक गई थी। यह सब देखकर भी उन नीच व्यक्तियो ने समयोपयोगी कार्य कुछ भी नही किया किन्तु उत्तेजित होकर उल्टा उसकी निन्दा करते हुए कहने लगे "अब तुम अपने एकाकी जीवन का फल चख लो।"

न तो उन सबो ने राजा सुस्सल के शव को घोडों पर लादा, न डोली मे लादने का प्रयत्न किया और न उसका दाह-सस्कार ही किया। केवल आत्म-रक्षा करने के लिए वहाँ से भागने लगे थे और शव के दाह-सस्कार को विलम्ब से किया जाने वाला कार्य समझ चुके थे। इसलिए जबकि अग्नि भी समीप ही थी तब भी उन लोगों ने उसे उसी दशा में पडी रहने दिया जब कि डामरो का समूह ग्रामो के समीप भ्रमण करने वाले राजा सुस्सल के सैनिको को लूट-मार रहा था उस समय वे राजा के ही घोडो पर सवार होकर भागे जा रहे थे।

जिस समय बर्फ से ढके हुए मार्गों पर वे सब भाग रहे थे उस समय न तो पुत्र पिता को रोक रहा था और न पिता पुत्र को ही रोकने का प्रयत्न कर रहा था। उस समय उनमे से कोई लूट रहा

था, कोई मर रहा था और कोई मारा जा रहा था। ऐसा कोई भी उच्च-पद-गौरवभिमानी सैनिक न था जिसने मार्ग मे मिले हुए शत्रु के सामने अपने शस्त्रो और वस्त्रो का त्याग न कर दिया हो। युद्ध व्यायाम-विशारद लवराज और यशोराज नामक दो ब्राह्मण और कान्द-नरेश-ये तीन योद्धा शत्रु से युद्ध करते-करते हुए स्वर्गधाम सिधार गये थे।

जब उत्पल और उसके साथियो ने समीप जाकर यह देख लिया कि राजा के समस्त सैनिक इधर-उधर भाग गये हैं तब वे तुरत उस मडल मे पहुँच गये और धड से राजा सुस्सल के मस्तक को काट कर धड-समेत उस मस्तक को वहाँ से उठा कर देवसरस की ओर चले गये और वहाँ के ग्रामीणो के सम्मुख ऐसा प्रदर्शन किया मानो किसी चोर या डाकू को मार कर ले आये हो। इस प्रकार अपने जीवन का पचपनवाँ वर्ष समाप्त कर लौकिक सवम्त् चार हाजर दो सौ तीन के फाल्गुण महीने की अमावास्या को राजा सुस्सल विश्वासघातकता के साथ मारा जाने पर परलोक को सिधार गया।

४

राजा जयसिंह की कथा

जिस समय राजा जयसिंह की धात्री के पुत्र प्रेम ने इस दु सवाद को कहा था उस समय वह अपने विलास-शयन मे बैठा हुआ था। पिता के प्रति अधिक अनुराग रहने के कारण शस्त्र समीप न रहते हुये भी उसकी दशा वैसी ही हो गई थी जैसी कि दु'सम्वाद सुनने पर शस्त्रधारी पुरुष की हो जाती हैं। मोह के कारण उसकी स्मृति भी नष्ट हो गई। बडी देर के बाद जब पुन स्मृति का सचार हुआ तब वह एक-एक करके सभी वातो को सोचने लगा और फिर दु ख से अधीर होकर नाना प्रकार से विलाप करते हुए कहने लगा

"जब कि आप मेरे लिए राज्य को निष्कण्टक करने मे लगे हुए थे तब फिर क्यो अधमो के अधीन अपने को कर दिया था। शत्रुता के भावो को मिटाने के उद्देश्य से जिस समय आप शत्रुओ से मिलने लगे थे उस समय नि शस्त्र होने पर भी आप सम्मान के योग्य थे। फिर उन अधमो ने ऐसा क्यो किया? जिस समय आप ने अपने पिता और भाई के शत्रुओ से प्रतिशोध ले लिया था उस समय उनकी क्रोधाग्नि शान्त हो जाने के कारण उन्हें स्वर्ग मे पूर्ण शान्ति मिल चुकी थी किन्तु इस समय स्वर्ग मे आप ही एक ऐसे हैं जिन्हे जलती हुई क्रोधग्नि के कारण कष्ट सहना पड रहा है। जिन अनरण्य कृप, द्रोण और जमदग्नि आदि से उनके ही बन्धु-बान्धवो ने प्रतिशोध लिया था उनके प्रति आप क्षण भर के लिए भी दृष्टिपात न करे। जिस क्रोधाग्नि से आप कष्ट पा रहे हैं, वह मेरे लिए अधिक परिताप का विषय हो रही है। मैं आप की उस क्रोधाग्नि को अवश्य दूर करूँगा, इसके लिए भले ही तीनो लोको पर आक्रमण करना पडे। मैं आपको भूला नही हूँ। इस समय भी आपका मधुर-भाषी, वात्सल्यमय प्रसन्न वदन मेरे नेत्रो के सम्मुख वर्तमान है।

वह जिस समय इस प्रकार विलाप करता हुआ कह रहा था और अपने हृदय की व्यकुलता को गम्भीरता का रूप देकर दबाने का प्रयत्न कर रहा था उसी समय लज्जा, पीडा और भय से मूक हो जाने वाले उसके पिता के आप्तजन सामने खडे दिखाई पडे। उन सब को देखते ही उसने क्रोध की मात्रा बढ़ गई। उसने क्रोध के आवेश में आकर उन्हें धिक्कारना चाहा किन्तु दया-दाक्षिण्य आदि सद्गुणो के कारण वह कुछ भी न कह सका।

किन्तु ज्यो ही शोक की मात्रा मे बाढ-सी आने लगी त्यो ही उसने कुछ अंशो तक उन सद्गुणो को दबा दिया और इस प्रकार के कठोर शब्दो को कहा "सद्वश मे उत्पन्न होने के कारण मेरे पिता ने आप सबो को धन आदि देकर विशेष सम्मान प्रदान किया था किन्तु जब मेरे पिता का अन्तिम समय आया तब आप लोगो ने जैसा अनुचित व्यवहार किया है उसके लिए आप और आपके शस्त्र धिक्कारने के योग्य हो चुके हैं। मेरे चाचा की हत्या होने पर उनके जूठे टुकडे खाने वालो ने जो कुछ किया था वह भी आप जैसे सम्मानित पुरुष न कर सके। अतएव आप सबो को जितना धिक्कारा जाय उतना ही कम समझना चाहिए।"

जिस समय वह दो-तीन शब्दो द्वारा उन सबो को धिक्कारने मे लगा था उसी समय दो-तीन मत्री उसके सामने आकर खडे हो गये। आते ही उन्होने उसके ध्यान को शीघ्र ही किये जाने वाले कर्तव्य की ओर आकृष्ट कर किया उनमे से कुछ ने यह सम्मति प्रदान की कि उसे काश्मीर छोडकर लोहर चले जाना चाहिए। कुछ ने यह भी कहा कि प्रात काल होते ही भिक्षाचर नये प्रकार से उपद्रव करना आरम्भ कर देगा इसलिए तुरत ही भाग जाना चाहिए। कुछ ने यह भी कहा कि लहर-निवासी गर्ग के पुत्र पचचन्द्र की सहायता से राजसिंहासन के लिए युद्ध करना चाहिए। जो भिक्षाचर राजा सुस्सल के न रहने पर अपने ही भवन मे प्रवेश करने के समान काश्मीर मे प्रवेश करना चाहता था, उसे रोकने का उपाय किसी ने भी नही सोचा था। यह जानकर कि उसके मत्री उसके सामर्थ्य पर सन्देह करने लगे हैं राजा जयसिंह को बडा कष्ट हुआ। इसलिए उसने उन सबो से कहा—'क्या करना चाहिए इसे आप सब कल देखेंगे।'

इसके बाद समय और परिस्थिति पर विचार करते हुए उसने पिता की मृत्यु से उत्पन्न होने वाली अपनी व्याकुलता का प्रदर्शन बन्द कर दिया महत्वपूर्ण स्थानो पर कर्तव्य-शील व्यक्तियो को सरक्षणार्थ नियुक्त कर दिया। इधर-उधर चिल्लाते हुए भागने वाले लोगो के शब्दो से समस्त नगर प्रतिध्वनित होने लगा था। जिस प्रकार मत्तवेतालो और पिशाचो से परिपूर्ण रहने से कारण कालरात्रि सभी प्राणियो के लिए भयानक हो जाती है उसी प्रकार वह रात्रि भी भयानक हो गई थी। स्थिर वायु के कारण स्थिर प्रदीपो और चिन्ता के कारण स्थिर मत्रियो द्वारा घिरा हुआ राजा जयसिंह अपने मन मे इस प्रकार विचार करने लगा था

"अनाथ और असहाय व्यक्तियो के समान मेरे जवित रहने पर भी जिस सूने घर मे अन्धकार ही अन्धकार है और जिसके द्वार भी खुले पडे हैं तथा जिससे भयानक वायु निकल रही है, ऐसे घर मे मेरा पिता मृत अवस्था मे पडा हुआ है। कितने बडे कष्ट की बात है। जब तक यह कष्ट नही दूर होता तब तक सभाओं मे सम्मानित पुरुषो को मैं किस प्रकार अपना यह मुख दिखा सकता हूँ? जब कि मार्ग शत्रुओ और बर्फ के कारण आवागमन के योग्य नही रह गया है तब फिर सैनिक पदाधिकारी किस प्रकार वहाँ से आ सकते हैं?

इसी प्रकार चिन्ता मे पडा हुआ तथा कभी-कभी भयभीत होता हुआ-सा उसने वह भयानक रात्रि बिता दी। प्रात काल होते ही नागरिको को आश्वासन देने के लिए उसने चतुष्ठिका मे पदार्पण किया और सैनिको को खोजने के लिए अश्वारोहियो को भेज दिया। मेघो का समूह जो पृथ्वी पर छाया हुआ था वह तुषार-पात द्वारा मार्गों को पूर्ण करने लगा। भेजे गये अश्वारोही अधिक न बढ सके और कष्ट सहन कर आगे बढना भी व्यर्थ समझने लगे अतएव सैनिको का पता लगाये बिना ही सब लौट आये।

उन सब के उस प्रकार लौट जाते ही राजा जयसिंह ने थोडी देर तक विचार किया और फिर नगर भर मे ढिंढोरा पिटवाकर यह घोषणा करा दी "आज तक जिस किसी व्यक्ति ने जो कुछ भी किया हो, उसके उस कार्य पर कुछ भी ध्यान नही दिया जायगा और जिस व्यक्ति ने शत्रु-पक्ष को ग्रहण कर रखा हो अथवा अन्य किसी प्रकार के अपराध के कारण अपराधी रहा हो, उस व्यक्ति को राजक्षमा प्रदान कर दी जायगी।" उसकी इस घोषणा को सुनकर समस्त नागरिक उसके प्रति अनुरक्त हो गये और दौड-दौड कर उसके लिए अपनी शुभकामनाएँ प्रकट करने लगे।

इस प्रकार अभूतपूर्व नीति को अपनाने से उसे उसका मधुर फल तुरन्त मिल गया और ऐसा ज्ञात होने लगा मानो अभी-अभी पूर्व के राजाओ ने जिस धर्महीन नीति को अपनाया था, उसका अन्त हो गया हो। कुछ क्षण पूर्व जिसके समीप एक सौ से अधिक सेवक न थे, वही अब सहानुभूति प्रकट करने वाली जनता से घिरा हुआ था। लक्ष्मक जो कि जनता के सामने प्रिय सम्भाषण के कार्य मे पटु था, और यह भी जानता था कि किस प्रकार उपहारो द्वारा मैत्री-भाव बढ़ाया जाता है, राजा जयसिंह द्वारा प्रधान मंत्री बनाया गया था।

उदारता के भावो को प्रदर्शित करते हुए जिस समय राजा जयसिंह नागरिको को समझाने के कार्य मे अपनी समस्त विद्या, बुद्धि और प्रतिभा को लगाये हुए था, उसी समय दोपहर ढलने के समय नगर मे प्रवेश करने के लिए भिक्षाचर आ उपस्थित हुआ। उस समय उसके साथ डामरो, नागरिको, अश्वारोहियो और लुटेरो की इतनी बडी सेना थी जितनी कि इसके पूर्व और कभी कही नही देखी गई थी। अपने शत्रु की मृत्यु का सम्वाद पाते ही वह जिस समय राजसिंहासन की प्राप्ति की लालसा से चला था उस समय उसे राजा मानकर काक के पुत्र तिलक ने इस प्रकार कहा था "यदि सुस्सल से सभी घृणा करते थे और दैवात् वह मार डाला गया है तो क्या यह सम्भव है कि जनता उसके सद्गुण-सम्पन्न पुत्र को भी त्याग देगी? महाराज! एक दिन के लिए प्रतीक्षा कीजिए। नगर मे प्रवेश करने के लिए शीघ्रता की आवश्यकता क्या है? उचित होगा कि हम सब यहाँ से पद्मपुर की ओर बढ चले और नगर की ओर बढते हुए समस्त शत्रुओ को रोक दे। इतने ही समय मे सुज्जि आदि प्रधान अधिकारी जिनके सैनिक नष्ट हो गये हैं, लौटते हुए दिखाई पडेंगे और मार्ग मे ही या तो मार डाले जायँगे अथवा अपने घोडो और हथियारो के साथ जहाँ तक बढेंगे वही तक बढे रह जायँगे। आगे तनिक भी नही बढने पायेंगे। दो-तीन दिन सकुशल बीत जाने पर जनता ही आपको सिंहासन पर बैठाने के लिए बुला ले जायगी। इस प्रकार निस्सन्देह शान्ति के साथ आप नगर पर अपना अधिकार स्थापित कर लेंगे।"

तिलक के इस परामर्श की उपेक्षा करते हुए भिक्षाचर, कोष्ठेश्वर तथा अन्य विप्लवकारी नेता कहने लगे "इस बूढे ने आवश्यकता से अधिक कहा है।" उसके अपने ही साथी जो कि यह समझ चुके थे कि उसे राजसिंहासन अवश्य प्राप्त होगा, भिन्न-भिन्न प्रकार की नीति को आग्रहपूर्वक कहने लगे थे, इसलिए उसे नगर मे प्रवेश करने के कार्य मे विलम्ब होने लगा था। इसके अतिरिक्त बर्फ के गिरने से उसके सैनिको को कष्ट होने लगा था, इसलिए नगर के समीप रहने पर भी उस समय रुक जाना पडा था।

ऐसे ही समय मे सैन्यहीन राजा जयसिंह के समीप सैन्यसहित गर्ग का पुत्र पंचचन्द्र आ गया था। इसके बाद अपने साथ के अन्य राजपुत्रो को लेकर वह अपने स्वामी की हत्या से उत्पन्न होने वाले कलंक को नष्ट कर देने के लिए बडे साहस के साथ युद्ध करने के लिए बढ़ गया था। भिक्षाचर

के सैनिक उसके इस आकस्मिक आक्रमण को भलीभाँति न देख सके थे, फिर भी युद्ध करने लगे थे। जब वे अधिक सख्या मे मरने लगे तब वे सब इधर-उधर भागने लगे और ऐसा भागे कि भिक्षाचर तथा पृथ्वीहर आदि उन्हे सम्हाल भी न सके । उनकी समस्त सामरिक व्यवस्था नष्ट हो गई और ऐसी नष्ट हुई जैसी कभी नही नष्ट हुई थी।

यदि राजा जयसिंह के पक्षवाले उन सब का थोडा-सा और पीछा करते तो उनमे से सभी क्षण भर मे नष्ट हो जाते। ज्यो ही भिक्षाचर के अनुगामियो ने भागना आरम्भ किया, त्यो ही नवीन राजा जयसिंह के महत्त्व के कारण सौभाग्य ने भी पीडित नगर पर कृपा-दृष्टि करनी आरम्भ कर दी थी। इस प्रकार दो राजाओ मे जय और पराजय का विभाजन हो गया था। जिस प्रकार जल का प्रवाह अपने एक किनारे को नष्ट कर दूसरे किनारे को उन्नत करता है उसी प्रकार कल्पनातीत विधाता भी क्षण भर मे शक्तिशाली पुरुष को नष्ट कर नष्टप्राय मनुष्य को सौभाग्यशाली बना देता है।

जिस प्रकार दावानल के कारण जलते हुए पर्वत से निकल कर आया हुआ सर्प श्रान्त हो जाता है, उसी प्रकार के सकटो को पार कर सन्ध्या के समय आने वाला सुज्जि भी श्रान्त हो चुका था। मेघाचक्रपुर नामक ग्राम मे रहते हुए ही उसने राजा सुस्सल की हत्या का समाचार सुना था और मत्रणा करने के बाद रात्रि मे वही रुक गया था और शूरपुर तथा अन्य स्थानो मे ठहरे हुए रिल्हण आदि अधिकारियो के साथ नगर की ओर निर्विघ्न पहुँचने के लिए उन सब की प्रतीक्षा करने लगा था। रात्रि के अधकार मे कही वे सब भटकने न लगे, इस विचार से उसने रात्रि भर अपने निवास-स्थान के ऊपर मशाले जला रखी थी। उसकी आज्ञाओ का उल्लघन कर इधर-उधर भागने वाले सैनिक रात्रि भर भटकते ही रह गये। उनमे से एक भी लौट कर नही आया था।

सवेरा होते ही ज्यो ही वह वहाँ से चला त्यो ही समीप के डामरो ने उस पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था। जिस प्रकार चरवाहा पशुओ के पीछे-पीछे चलकर उनकी रक्षा करता है उसी प्रकार अपने साथ के आबाल-वनिता-वृद्ध को आगे कर वह उनकी रक्षा करने लगा था। उसके साथ केवल पचास अश्वारोही सैनिक थे। उन्ही की सहायता से वह शत्रुओ से युद्ध कर कुछ समय तक साथ के मनुष्यो की रक्षा कर सका था। इसके बाद अंगूर की लताओ और वृक्षो के फैलाव तथा दुःसाहसी शत्रुओ के आक्रमण जब मार्ग मे बाधा पहुँचाने लगे तब पग-पग पर उसके साथ के मनुष्य नष्ट होने लगे थे। एक-एक करके सभी नष्ट हो गये, केवल वही, जो कि अपने मृत स्वामी और स्वामी के सकटापन्न पुत्र का ऋण चुकाना चाहता था, जीवित रह गया था।

जब यह निश्चित है कि साहसिकता के कार्यों मे मृत्यु अनिवार्य है तब उचित समय की प्रतीक्षा न करके जो व्यक्ति शीघ्रता करने लगते हैं, उनमे और शिकारी पशुओ मे कुछ भी अन्तर नही रह जाता। खडूवी प्रान्त के रहने वाले क्रूर डामरो ने जब यह देखा कि वह पद्मपुर के समीप नष्ट-भ्रष्ट दशा मे चला आ रहा है तब वे उसे मार डालने के विचार से आगे बढ आये। उसी समय खेरी-तलालशा ग्राम से एक बडी सेना के साथ उसी मार्ग मे श्रीबक भी आ गया था। उन समस्त डामरो ने उसी को सुज्जि समझ कर उसी पर आक्रमण कर दिया था तथा उसे मार कर उसके सैनिको को लूट लिया था। उस युद्ध मे मेरु और सज्जन नाम के दो अश्वारोही वीर मारे गये थे। वट्ट का पुत्र मल्ल घायल हो गया था और थोडे ही दिनो के बाद परलोक सिधार गया था।

उदीपपुरवाल नामक एक स्थान है। जल की बाढ आ जाने के कारण वह जलमग्न हो गया था, अतएव उसको पार करना बडा कठिन कार्य था। पद्मपुर के बाहर सैनिको के युद्ध मे फँस जाने पर

जिस समय श्रीवक पग-पग पर युद्ध करता हुआ आगे बढ रहा था उसी समय उसकी गर्दन मे एक तीर लग गया था। जब डामरो ने देख लिया कि वह सुज्जि नही है तब पूर्व की मित्रता को स्मरण कर उन सबो ने उसे छोड दिया था और उसका पर्वस्व लूट लिया था। जिस 'समय वे सब डामर श्रीवक की सेना को लूटने मे लगे हुए थे और कुछ वहाँ से चले भी गये थे, उस समय सुज्जि सकुशल उस मार्ग को पार कर गया था। जब तक सिंह के लिए विधाता के द्वारा दीर्घ जीवन निश्चित रहता हैं तब तक साधारण पथिक के आकस्मिक यातायात से ही शिकारी का जाल और तीर नष्ट हो जाता है और सिंह सकुशल मार्ग को पार कर जाता है।

मौन धारण किए हुए अपने सैनिकों के साथ ज्यो ही पद्मपुर को पार कर सुज्जि उस समय स्थान के समीप पहुँचा त्यो ही डामरो ने उसे पहिचान लिया। वे तुरन्त उसके पैदल सैनिको पर टूट पडे और उनके शस्त्र, वस्त्र तथा अन्य सामान को लूटने लगे। किन्तु, उसने कुछ भी ध्यान न दिया और अपने अश्वारोहियो के साथ उस स्थान को पार करने के लिए जल मे प्रवेश कर गया और कुछ दूर जाते ही उसे घोडो के खडे होने योग्य स्थान मिल गया। जब वह शत्रुओ द्वारा सकट पहुँचाने योग्य स्थान को पार कर गया तब अपनी तर्जनी को हिलाकर भौंहो को चढाकर तथा निन्दनीय शब्दो का प्रयोग कर वह दूर से ही उन समस्त शत्रुओ मे भय उत्पन्न करने लगा।

मार्ग मे उसका सर्वस्व लुट गया था। केवल छत्र ही रह गया था। उसी को साथ लेकर वह शीघ्रगति से नगर मे प्रवेश कर गया और अश्रुपूर्ण नेत्रो से राजा जयसिंह के समीप जाकर खडा हो गया। जिस प्रकार बडे भाई को पाकर छोटा भाई रो-रोकर अपनी वेदना को व्यक्त कर देता है उसी प्रकार सुज्जि को अपने समीप पाते ही राजा जयसिंह फूट-फूट कर रोने लगा था और उसके नेत्रो से जो उष्ण अश्रु निकल रहे थे उनसे यही ज्ञात हो रहा था मानो वह उन्ही के बहाने शत्रु के कारण उत्पन्न होने वाले भय और सकट को प्रकट कर रहा हो।

उसी दिन आते हुए अनन्त के पुत्र महत्तम आनन्द को लोचनोद्धार नामक ग्राम मे डामरो ने मार डाला था। चूँकि उसने मगल्यदण्ड आदि के रूप मे जनता के ऊपर नाना प्रकार के कर लगा दिये थे और जो जनसाधारण के लिए असह्य हो रहे थे, इसलिए जब वह घोर आपत्ति मे पड गया, तब किसी ने भी उस पर दया का भाव नही प्रकट किया था, प्रत्युत् उसके उस प्रकार मारे जाने पर सभी के चित्त मे एक प्रकार का गुप्त हर्ष ही उत्पन्न हो गया था। सुज्जि के भृत्यो मे भास नामक एक भृत्य था। जब वह शत्रुओ से घिर गया तब उसे भाग कर आत्मरक्षा करने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नही सूझा। भागते-भागते वह अवन्तिपुर मे आ गया और वहाँ के अवन्तिस्वामी नाम के विष्णु-मन्दिर में प्रवेश कर गया तथा उसी मन्दिर के प्रागण मे जाकर आश्रय ग्रहण कर लिया। डामरो का समूह भी पीछा करता हुआ चला आ रहा था। उसी मन्दिर के प्रागण मे कम्पनोद्ग्राहक (सेना से सम्बन्ध रखने वाला एक पदाधिकारी) क्षेमेन्द्र भी आश्रय ग्रहण किये हुए था। डामरो के समूह ने उसी मन्दिर को घेर लिया। जिन समस्त डामरो ने उस मन्दिर मे उन दोनो को घेरा था, सभी होलडा नामक स्थान के निवासी थे। उन सब से पार पाना बडा कठिन कार्य था।

कुलराज के वश मे जन्म ग्रहण करने वाला इन्दुराज भी एक सैनिक पदाधिकारी था। बुद्धि-बल और असीम साहस में वह भी किसी से किसी भी अश में न्यून न था। उसे भी ध्यानोद्धार

नामक स्थान मे टिक्क ने घेर लिया था। बच सकने का कोई भी सुगम उपाय नही था। बुद्धिमान् इन्दुराज बडे ही सकट मे पडकर किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा हो गया था। जब बाहुबल व्यर्थ-सा सिद्ध होने लगा तब उसने बुद्धि-बल से काम लेना उचित समझा। टिक्क से युद्ध करने की अपेक्षा उसने उससे मेल कर लेने मे ही अपना अधिक हित अनुमान कर लिया। फिर क्या था, उसने टिक्क के पक्ष को ग्रहण करने का भाव प्रदर्शित कर दिया और इस प्रकार उसमे मेल करने का भ्रमात्मक भाव उत्पन्न कर अपना कार्य सिद्ध कर लिया।

राजा सुस्सल की सेना मे पिचदेव आदि अनेक प्रमुख पदाधिकारी थे। सभी का बल-विक्रम और पराक्रम प्रशसनीय था। किन्तु, जब घोर सकट-काल आ गया तब सभी बल-पौरुष व्यर्थ हो गया। राजा और राज्य की रक्षा करना तो दूर रहा वे सब न तो अपने सैनिकों की रक्षा कर सके और न अपनी ही रक्षा करने को योग उपाय सोच सके। परिणाम यह हुआ कि उन सबका पीछा करने वाले डामरो ने उन सबो को क्रम राज्य मे ही घेर लिया और ऐसे भयानक रूप से घेरा कि वे फिर वहाँ से आगे बढ ही न सके।

इस प्रकार राजा के समस्त सेवक और सैनिक भिन्न-भिन्न स्थानो मे उसी प्रकार घायल हुए और मारे गये जिस प्रकार एक विशाल वृक्ष के गिरते ही उसकी शाखाओ मे बने हुए घोसलो से गिर-गिर कर पक्षियो के शावक घायल होते हैं और मर जाते हैं। कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जिनसे तन पर न तो वस्त्र रह गये थे और न पैरो मे जूते ही। बर्फ से ढँके हुए मार्ग पर चलते-चलते उन सब के पैर जकड गये थे और क्षुधा उन्हें विशेष रूप से व्याकुल करने लगी थी। यद्यपि वे सब अपने-अपने जीवन की रक्षा करने मे तत्पर थे तथापि वे अपनी उस तत्परता मे असफल ही रहे और अन्त मे मृत्यु के आहार बन गये। जो मार्ग सीधा नगर की ओर आता है उस मार्ग पर यदि कोई दृष्टिपात करता तो उसे ऐसे ही मनुष्य दिखाई पडते जिनके शरीर घायल से ही ढँके हुए थे। निकट भविष्य मे मन्त्रिपद जैसे सम्माननीय पद को गौरवान्वित करने वाले चित्ररथ आदि भी जितने गण्य-मान्य पुरुष थे वे भी घायल को उसी प्रकार अपने शरीर पर धारण कर प्रसन्न हो रहे थे, जिस प्रकार उत्सवो पर विशेष प्रकार के वस्त्रो को धारण कर प्रसन्न हुआ करते थे।

वह दिन किसी न किसी प्रकार व्यतीत हो गया था। दूसरे दिन भी मेघो का समूह निरतर वर्फ की वर्षा करता रहा। एक क्षण के लिए भी उसने अपने उस कार्य को बन्द नही किया। उस तुषारपात के कारण मनुष्यो की कौन कहे, पक्षियो का उडना बन्द हो गया था। सभी दिशाओ मे सन्नाटा छाया हुआ था। वनग्राम नामक स्थान मे भिक्षाचर ठहरा हुआ था। वही उसकी समस्त सेनाओ के साथ धन्य नामक एक वीर पुरुष भी था। उसने अपनी समस्त सेना को वही छोड दिया और अकेला ही नगर मे प्रवेश कर राजा जयसिंह के दर्शन-लाभ की इच्छा प्रकट की। उसकी इच्छा को चरितार्थ करते हुए राजा जयसिंह ने उसका उचित स्वागत किया और बडे ही मैत्री-भाव से अपना लिया। उसके इस प्रकार अपनाते ही धन्य ने अपने को धन्य समझ लिया और भिक्षाचर के जितने सैनिक थे, सभी को बडी प्रसन्नता हुई तथा उन सबके हृदय मे भय था वह सब नष्ट हो गया। यह जानकर कि राजा जयसिंह भिक्षाचर के अनुगामियो और सैनिको से भी बडे सद्भावो के साथ मिलता है, वे भी नगर मे आने के लिए तैयार हो गये थे।

जब विरोधी ज्ञाति-वर्ग की शक्ति क्षीण होने लगी थी और सुविधाजनक समय दृष्टिगोचर होने लगा था तब राजा सुस्सल की चार रानियाँ राजभवन से निकल आई थी और अग्नि मे जलकर अपने पति का अनुगमन करने की इच्छा प्रकट करने लगी थी। जनता उस समय भी शत्रुओ के आक्रमण की आशका से भयभीत हो रही थी। साथ ही साथ उस समय जो भयानक तुषार-पात हो रहा था वह भी जनता को आगे बढने से रोक रहा था। इसीलिए दूरस्थ श्मशान-भूमि तक उन चारो रानियो को पहुँचाना जनता के लिए शक्ति से बाहर का कार्य हो चुका था।

अतएव विवश होकर उन चारो रानियो ने राजभवन के समीपस्थ स्कन्दभवन नामक विहार के निकट यथाशीघ्र अपने-अपने शरीर को अग्नि मे जला दिया था। चम्पा की पवित्र भूमि मे जन्म लेने वाली रानी देवलेखा अपने सौन्दर्य मे अद्वितीय थी। उसके सौन्दर्य सम्पादन मे विधाता ने अपनी समस्त शक्ति को लगा दिया था। उसने अपनी बहिन तरललेखा के साथ अग्नि मे प्रवेश कर अपने जीवन और सौन्दर्य दोनो को ही पावन कर दिया था। वल्लापुर के प्रान्त को धन्य करने वाली रानी जज्जला अपने सद्गुणों के कारण अधिक प्रसिद्ध थी। उसने भी उसी स्थान पर अपने जीवन का अन्त कर स्वर्गलोक की देवांगनाओ मे श्रेष्ठ पद प्राप्त कर लिया था। इसी प्रकार गग्ग की पुत्री रानी राजलक्ष्मी ने भी अग्नि-योग से परलोक सिधार कर राजवशोचित गौरव की मर्यादा का सम्मान बढा दिया था।

इधर डामरो ने अपने मन में यही समझ लिया था कि जब तक भयानक रूप से तुषारपात हो रहा है तभी तक राजसिंहासन भी नवीन राजा जयसिंह के अधिकार मे है। तुषारपात बन्द होते ही उनका स्वामी भिक्षाचर तुरत उसके अधिकार से राजसिंहासन को छीन लेगा, इसलिए उन समस्त डामरो ने राजा जयसिंह का नाम 'हिमराज' रख दिया था। इसके बाद राजा सुस्सल का कटा हुआ मस्तक भिक्षाचर के सामने लाया गया। उस मस्तक को देखते ही वह जल गया था। जिस समय वह मन ही मन जला जा रहा था उस समय यही ज्ञात हो रहा था मानो वह उस मस्तक के दृष्टिपात से उत्पन्न होने वाली क्रोधाग्नि की लपटो से ही जला जा रहा हो। उस समय कोष्ठेश्वर तथा ज्येष्ठ-पाल आदि जितने भी व्यक्ति थे सभी उस मस्तक की सत्क्रिया कर देना चाहते थे, किन्तु उन सबो के आसपास जितने और व्यक्ति थे सभी के लिए उनका वह प्रस्ताव असह्य हो गया था तथा भिक्षाचर मे भी वैर-भाव प्रबल हो रहा था, इसलिए उसने और उसके साथियो ने उन दोनो को वैसा करने से रोक दिया था। जब तुषारपात बन्द हो गया था तब नगर की ओर बढकर युद्ध करने के लिए भिक्षाचर उतावला होने लगा था, किन्तु ज्योही उसे यह ज्ञात हुआ कि उसके समस्त अनुगामी शत्रु-पक्ष की ओर झुक गये हैं और इसीलिए उसके प्रति उपेक्षा के भाव प्रदर्शित करने लगे हैं त्यो ही उसने इस प्रकार कहना आरम्भ कर दिया था

"मैं निरन्तर यही सोचा करता था कि यदि पृथ्वीहर जीवित रहेगा तो मैं बल-प्रयोग द्वारा राजसिंहासन को अपने अधिकार मे कर लूंगा और यदि वह मारा गया तो अपने विरोधी ज्ञाति सुस्सल के मरते ही समस्त देश का स्वामी बन जाऊँगा। किन्तु, दैवयोग से विपरीत लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे हैं, क्योकि जैसा मैं सोचा करता था उसका अन्यथा हो रहा है। यह सत्य है कि मेरा विरोधी मार डाला गया है, किन्तु उसके साथ ही साथ राजसिंहासन-प्राप्ति की आशाएँ भी, जो कि मेरे मन मे थी, नष्ट हो चुकी हैं। जो राजसिंहासन केवल भौतिक सुख को ही प्रदान कर सकता है ऐसे राजसिंहासन की आवश्यकता ही क्या है ? मुझ जैसे उच्चाभिलाषी व्यक्ति ने उस पर जैसा अधिकार

स्थापित किया था वैसा अधिकार और कौन स्थापित कर सकता है ? जिसने कुछ समय पूर्व पुरुषों का मस्तक काट कर धरती पर गिराया था, आज उसी का मस्तक मेरे भवन के द्वार पर लुढकता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। कुछ समय पूर्व दस महीने तक जिसने दूसरों का सुख नष्ट किया था उन्ही के सामने मैंने दस वर्ष तक उसे सकटापन्न स्थिति मे ही डाल रखा था। इस प्रकार मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन यथोचित रूप से कर लिया है। जीवन का जो भाग शेष रह गया है, अपने मन से समस्त सन्तापो को दूर कर उसका भी सदुपयोग कर लूंगा।

इस प्रकार की अनेक बाते कहकर वह टिक्क के पास चला गया। जैसे ही टिक्क ने उसे अपने समीप आता हुआ देखा, वैसे ही उसने उसके सामने अपना मस्तक झुका दिया। उसके इस व्यवहार से प्रसन्न होकर भिक्षाचर ने उसे स्वर्णकलश, श्वेतछत्र तथा अनेक प्रकार के अन्य उपहार प्रदान कर दिये। इसके बाद टिक्क के द्वारा आश्वासन दिलाये जाने पर उसके हृदय मे सिंहासन-लाभ की आशा पुन. बलवती हो गई और उस आशा के कारण उसकी दशा पिशाच के अधीन हुए से व्यक्ति के समान हो गई थी। फिर वह मन ही मन विचार करता तथा तुषारपात के शीत को सहन करता हुआ रुक गया था।

हत्या किये गये राजा सुस्सल के मृत शरीर को लवन्यो ने कडे पहरे मे रख छोडा था और उसके साथ शत्रु-भाव से प्रेरित होकर सर्वापेक्षा अधिक अनुचित व्यवहार करने का सकल्प कर लिया था। सज्जक नगरस्थ सैनिक होने पर भी परिस्थिति के अधीन होकर शत्रु-पक्ष मे चला गया था। राजा सुस्सल के प्रति कृतज्ञता के भावो को प्रदर्शित करना अपना कर्त्तव्य समझ कर उसने अपने मन में विचार किया "जबकि स्वामी के जीवन का अन्त हो चुका है तब फिर उसके शव की यह दुर्गति क्यो की जा रही है ?" ऐसा विचार कर उस शव को देखने की उत्सुकता का बहाना कर वह उस शव के समीप पहुँच गया और फिर युद्ध कर समस्त पहरेदारो को वहां से मार भगाया। जब वे सब भाग गये तब उसने उस शव का दाह-सस्कार कर दिया।

इसके बाद ही देवता की प्रेरणा से किसी एक व्यक्ति ने यह घोषणा की थी कि जिस प्रकार राजा सुस्सल की हत्याजनित दुर्घटना हुई है निकट भविष्य मे उसी से मिलती-जुलती एक और दुर्घटना होगी। जनसाधारण मे उस व्यक्ति की बातो पर अधिक विश्वास जमा हुआ था, इसीलिए उसकी भविष्यवाणी का प्रचार बडी शीघ्रता से होने लगा था और लोग उस पर विश्वास करने लगे थे। उस व्यक्ति ने यह भी घोषणा की थी कि राजा सुस्सल पर एक पिशाच का प्रभाव पड चुका था। उसी पिशाच के मायाजाल मे पडकर राजा सुस्सल लौकिक सम्वत् चार हजार एक सौ चौरानबे से अपनी प्रजा का सहार करने लगा था। उपर्युक्त भविष्यवाणी के अनुसार यह देखा गया था कि जिस व्यक्ति ने राजा सुस्सल का मस्तक काटा था और इधर-उधर घुमाया था, वह सुप्त अवस्था मे ही मरा हुआ पडा था।

इधर भिक्षाचर कायरो के समान आचरण करता हुआ सद्‌गुणो को त्यागने लगा था। अपने को प्रचड सिद्ध करने के लिए उसने राजा सुस्सल का मस्तक राजपुरी भेज दिया था। सुस्सल का मस्तक वे ही सेवक राजपुरी ले गये थे जो कि उज्ज्वल की पुत्री रानी सौभाग्यलेखा की सेवा किया करते थे। अपने चाचा के कटे मस्तक को देखकर वह व्याकुल हो गई थी। इतने मे ही उसी के उन सेवको ने उसे भी मार डाला था। इससे राजपुरी मे एक नये प्रकार का उपद्रव खडा हो गया था।

धीरे-धीरे वह मस्तक रानी सौभाग्यलेखा के पति सोमपाल के समीप पहुँचाया गया था। उन दिनों वह अपनी राजधानी से दूर किसी दूसरे स्थान में ठहरा हुआ था।

खशों का स्वामी सोमपाल नित्य मदिरापान किया करता था और उसका व्यवहार भी अशिष्ट मनुष्यों के ही समान था। यह विचार कर कि वह भी एक पशु था, उसके प्रति दया का भाव आवश्यक हो जाता है। पशु होने के कारण ही वह दूसरों के संकेतानुसार चला करता था। जिस समय राजा सुस्सल का कटा हुआ मस्तक उसके समीप पहुँचा था उस समय उसके मंत्री परम स्वतन्त्रता के साथ अपने-अपने चरित्रानुसार विचार प्रकट करने लगे थे। उस समय सोमपाल का भाई नागपाल भी वहीं उपस्थित था। भ्रातृ-स्नेह के कारण ही उसने उसके समीप स्थान पा लिया था। जिस समय उसने राजा सुस्सल के कटे हुए मस्तक को देखा उस समय उसके अन्तःकरण में अपने उपकारी के समस्त उपकार जाग उठे थे, इसलिए उसने उसके मस्तक का यथोचित सम्मान करना ही उचित समझा। जो दूरदर्शी व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे, उन सबों ने भी इस भय से कि कहीं काश्मीर-राज्य से दण्ड न प्राप्त हो, सोमपाल से उस मस्तक की सत्क्रिया करने के लिए कहा था।

यदि कभी किसी ने कहीं सिंह के सम्पर्क में शृगालों को प्रसन्न रहते हुए देखा हो तो समझ लेना चाहिए कि विधाता का विधान पलट गया है। इसके बाद गोपालपुर में उसके शत्रुओं ने ही कालागुरु, चन्दन आदि लकड़ियों से उसके मस्तक की सत्क्रिया की थी। जिस प्रकार राजा सुस्सल ने कई बार राज्याधिकार प्राप्त किया और कई बार उसे खो भी दिया, जिस प्रकार वह युद्धों में भी कई बार पराजित हुआ और कई बार विजेता बना, जिस प्रकार घोर संकटों में पड़ा और उनसे उद्धार पाया, अर्थात् जीवित दशा में जैसा आश्चर्यजनक उसका भाग्य था वैसा ही मृत्यु के समय में भी रहा। मरा कहीं, कटे हुए मस्तक की सत्क्रिया हुई, कहीं और शेष शरीर का दाह-संस्कार किया गया कहीं। ऐसी विचित्र घटना और किसके जीवन तथा मरण के साथ हो सकती है? जिस समय अवन्तिपुर के मार्ग से टिक्क आदि नगर की ओर जाने लगे थे उस समय वे सब अपने पहुँचने से पूर्व वहाँ पर घेरे गये भास आदि को मार डालने के लिए अवन्तिपुर में ही रुक गये थे। वहाँ पर पहुँचते ही उन सबों ने भास आदि पर पत्थर आदि मार कर आक्रमण किया था। मन्दिर के प्रवेश-द्वार को भी तोड़ डाला था, वहाँ पर आग लगा दी थी तथा इसी प्रकार अनेक प्रत्यन किये थे। किन्तु, इतना सब करने पर भी वे उन सबों को पराजित नहीं कर सके थे। देव-मन्दिर का प्रांगण सुदृढ़ प्राचीरों से सुरक्षित था। उसके भीतर जितने भी शत्रु-पक्ष के मनुष्य प्रवेश कर गये थे उन सबों को उस मन्दिर-प्रांगण में आश्रय ग्रहण करने वालों ने तुरत मार डाला था। फिर भी वे न तो वहाँ रुक सकते थे और न वहाँ से हट सकते थे। ऐसी परिस्थिति हो गई थी।

इस प्रकार उन सबों के रोके जाने पर जो थोड़ा-सा समय मिल गया था, उसका बुद्धिमत्ता के साथ सदुपयोग करते हुए राजा जयसिंह ने घूस देकर खड्वी के डामरों को अपने वश में कर लिया था। उन सब से जमानत लेकर उसने भास आदि का तुरत उद्धार करने के लिए पंचचन्द्र आदि के साथ सुज्जि को भेज दिया था। उन सबों से आगे कल्य का पुत्र विजय चल पड़ा था। उसको आया हुआ देखकर टिक्क आदि इधर-उधर भाग गये थे, इसलिए सुज्जि आदि के पहुँचने से पहिले ही वह स्थान शत्रु-समूह से मुक्त हो गया था। ज्यों ही सुज्जि और पंचचन्द्र को भास आदि ने देखा त्यों ही शत्रु-पक्ष के भागते हुए लोगों को मार-मार कर वे सब उनसे मिल गये थे। जैसे ही विजय-लाभ कर

कम्पनेश नगर मे लौट आया था वैसे ही टिक्क को छोडकर इन्दुराज भी अपने समस्त सेवकों के साथ नगर में आ गया था।

फिर राजा जयसिंह ने चित्ररथ को पादाग्र का श्रीवक को द्वार का, भास को खेरी प्रान्त का तथा अन्य व्यक्तियो को भिन्न-भिन्न स्थानो का अधिकारी बना दिया। यद्यपि सुज्जि का पदाधिकार पहले के ही समान था तथापि उसे प्रतीहार लक्ष्मक का मुंह ताकना पडता था। ऐसी दशा मे अन्य मंत्रियो के विषय मे कुछ न कहना ही अच्छा है। राजा जयसिंह को भी प्रतीहार के साथ सोच-समझ कर व्यवहार करना पडता था, क्योंकि वह डामरो की नसो को जानता था और उनमे भेद उत्पन्न करने का कार्य भी किया करता था।

उन असंख्य शत्रुओ मे ऐसा एक भी न था जिसने उसके कहने से राजा जयसिंह के पक्ष को न ग्रहण किया हो अथवा ग्रहण करने की तैयारी न कर चुका हो। राजा होने के भाव को छिपाने के लिए राजा जयसिंह ने चतुरता को अपनाकर ऐसा भाव प्रकट किया था जिससे यह स्पष्ट हो गया था कि वह लक्ष्मक की अनुमति के विना भोजन तक भी नही ग्रहण करता है। इस प्रकार नगर मे पैर फैलाने का पर्याप्त स्थान प्राप्त कर वह उसके फल को पाने की भी लालसा करने लगा था।

ऐसे ही समय मे भिक्षाचर ने विजयेश्वर में समस्त डामरो को एकत्र किया और फिर शिशिर ऋतु का अन्त होते ही नगर को अपने अधिकार मे कर लेने की आशा से नगर की ओर प्रस्थान कर दिया। जिस समय डामरो ने अपने समस्त सैनिको का अभूतपूर्व संगठन देखा उस समय उन्होंने यह समझ लिया कि राज्य भिक्षाचर को मिल जायगा, इसलिए वे उससे सशंकित होने लगे थे। वे यह जानते थे कि अधिक दिनो के सम्पर्क से वह उन सब की सभी बातो को भलीभाँति समझ चुका है इसलिए राज्याधिकार प्राप्त करते ही वह उन सबो पर भी आक्रमण कर देगा। ऐसा सोचकर उन सबो ने मंत्रणा करके गुप्त रूप से सोमपाल के पास दूत भेज दिया और यह कहलाया कि वे उसे काश्मीर का राजसिंहासन दिला देंगे। इस पर उसने भी अपना एक दूत भेज दिया था।

सोमपाल का व्यक्तित्व और उसका चरित्र किसी भी योग्य नही था। वह पशु के ही समान था, इसीलिए डामरो ने स्वयं राज्य का उपभोग करने का विचार कर लिया था। भोग-लाभ की लालसा से मानवोचित सद्गुणो का त्याग करने वाले लुटेरे डामरो ने जैसा सोचा था वैसा विधाता ने नही होने दिया। जो व्यक्ति दास होने के भी योग्य न था, वह भला कब इस काश्मीर देश का राजा हो सकता था! एक क्षण के लिए भी वह यहाँ का राजपद नही प्राप्त कर सकता था। पयाल का बना हुआ मुँहजला मनुष्य पके हुए खेतो की रखवाली करता हुआ छोटे-छोटे पक्षियो मे भय उत्पन्न किया करता है किन्तु यदि उसे वृक्षो की रखवाली के लिए भयानक वनैले हाथियो के सामने रख दिया जाय तो फिर क्या होगा?

सोमपाल का दूत नित्य भिक्षाचर के ही समीप अपने स्वामी के द्वारा उसके लिए दी गई बधाई के बहाने रहता था और गुप्त रूप से सोमपाल के साथ समझौता कर लेने के लिए डामरो को उत्साहित करता था। जिस समय भिक्षाचर ने नगर की ओर प्रस्थान किया था उस समय माघ-फाल्गुण का महीना था। समय बीतते-बीतते वैशाख का महीना आ गया था। शत्रुओ द्वारा आक्रमण किये जाने का समाचार पाते ही सुज्जि ने बडी शीघ्रता के साथ नगर से प्रस्थान कर दिया था और सीधा गम्भीरा के तट पर पहुँच गया था। उसका यह कार्य प्रशंसनीय इसलिए था कि उसने अकेले ही उन

समस्त साहसी पुरुषों से युद्ध करने के लिए साहस किया था। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है कि यदि दैव की इच्छा से युद्ध में एक व्यक्ति द्वारा लाखों मनुष्य पराजित हो जायँ अथवा लाखों मनुष्यों द्वारा किसी एक मनुष्य को पराजित होना पड़े। आश्चर्य तो केवल इस बात का है कि लाखों मनुष्यों का सामना करने के लिए कोई एक व्यक्ति असीम साहस के साथ अग्रसर होता है।

नदी के ऊपर पुल न होने के कारण सुज्जि जिस तट पर था उसी तट पर रुक कर दूसरे तट से बाणों की वर्षा करने वाले शत्रुओं को देखता रहा। दो-तीन रातें इसी प्रकार एक दूसरे को ताकने और आक्रमण के योग्य समय की प्रतीक्षा में बीत गईं। इसके बाद अवन्तिपुर से नौकाओं को मँगाकर सुज्जि ने पुल बनवा लिया और उसी से घोड़े के साथ उस पार पहुँच गया। थोड़े से सैनिकों के साथ जैसे ही उसे नदी को पार हुए शत्रुओं ने देखा वैसे ही वायु से काँपने वाले वृक्षों के समान वे भी व्याकुल होकर काँपने लगे थे। देखते ही देखते वह घोड़े पर सवार हुआ, पुल भी बना, उस पार गया और शत्रुओं का समूह भी तितर-बितर हो गया।

क्या तलवार चलाने वाले, क्या अश्वारोही सैनिक, क्या शूली धारण करने वाले, सभी ऐसा भागे कि उन्होंने फिर पीछे की ओर देखा भी नहीं कि कौन किसके पीछे दौड़ा चला आ रहा है। कोष्ठेश्वर के घोड़े की गद्दी कसी न होने के कारण ढीली पड़ गई थी, इसलिए उसके अश्वारोहियों को क्षण भर के लिए मार्ग में रुक जाना पड़ा था। यथाशीघ्र गद्दी को ठीक कर वे भी सुज्जि के पीछा करने के कारण ऐसा लुप्त हो गये थे जिस प्रकार बवण्डर के कारण आकाश में उठी हुई धूलि लुप्त हो जाती है।

जब शत्रुओं के सैनिक मार डाले गये अथवा लूट लिये गये या इधर उधर भाग गये तब वे सब विपन्न अवस्था में ध्यानोड्डार आदि ग्रामों में जाकर एक दूसरे से मिलने लगे थे। विजयेश्वर के सामने वाले पुल से वितस्ता को पार कर मास भी आगे-आगे पहुँच गया था। उसने भी शत्रुओं को ऐसा मारा कि उन्हें भाग कर ही जीवन की रक्षा करनी पड़ी थी। विजयक्षेत्र में रात्रि बिता कर दूसरे दिन ज्यों ही कम्पनेश ने पदार्पण किया त्यों ही ध्यानोड्डार को छोड़कर शत्रु कहीं अन्यत्र भाग गये थे।

दो-तीन दिन वहाँ रुक कर उसने वहाँ से देवसरस जाने का विचार किया। इतने में ही अपने पक्ष को छोड़कर टिक्क का एक बान्धव उससे मिल गया था। फिर देवसरस जाकर उसने टिक्क के स्थान में भोजक के पुत्र जयराज [और यशोराज को प्रतिष्ठित कर वहाँ का प्रधान बना दिया। इसके बाद उसने शत्रुओं का पुन पीछा करना आरम्भ कर दिया। उसके भय में भिक्षाचर आदि भागकर शूरपुर चले गये थे। कोष्ठेश्वर आदि अपने-अपने प्रान्तों में पहुँच गये थे और उनके समस्त सैनिक इधर-उधर सभी दिशाओं में भाग गये थे।

सोमपाल का दूत भागता हुआ राजपुरी पहुँच गया और अपशब्दों का प्रयोग करते हुए कहने लगा "दासी के पुत्र ने मुझे कहाँ भेज दिया था?" जिस प्रकार शृगाली सिंह-पत्नी के स्थान को पाने की लालसा करने लगे और न प्राप्त कर सके उसी प्रकार उसने अपने स्वामी की लालसा को समझ लिया था। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में शत्रुओं से राज्य को मुक्त कर सुज्जि ने अपने स्वामी के प्रमाद से नष्ट हुए राज्य को पुन अपने स्वामी के पुत्र को दिला दिया था। राजा जयसिंह भी शमाला आदि स्थानों के प्रभावशाली डामरों तथा भिक्षाचर से सम्बन्ध रखने वाले नागरिकों को घूस दे-देकर अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न करने लगा था। वे भी उसके बल-विक्रम की परीक्षा करने के लिए तथा बाद में यथोचित कार्य करने के उद्देश्य से एक स्थान में एकत्र हो गये और युद्ध करने लगे।

दामोदर नामक स्थान मे वह युद्ध हुआ था। सैनिकों के इधर-उधर दौडने से जो धूल उड रही थी उससे सभी आच्छन्न हो गये थे। उस समय ऐसा ज्ञात हो रहा था मानो सैनिक-रूपी अभिनेता रूपी पर्दे की आड मे नाच रहे हो।

कोष्ठेश्वर के वश मे, अपने घायल पिता की रक्षा मे रत सहजपाल की भूरि-भूरि प्रशसा सर्वसाधारण ने की। सिंहदेव और भिक्षाचर दोनो को उस कृत्रिम समर मे अत्यधिक परिश्रम करना पडा और भिक्षु ने मात्र एक दिन के ही श्रम और परेशानी से व्याकुल हो पराजय स्वीकार कर ली। परिणामस्वरूप भिक्षु की सेना के सभी वीर गायव हो गए प्रात दिखायी पडने वाला योद्धा साय और सायं दर्शन देनेवाला वीर प्रात पुन' नही दीख पडा। उसके पश्चात् नागरिको तथा डामरो मे से अनेक योद्धा लाभ एव समुचित सम्मान की आशा मे भिक्षु-पक्ष को छोडकर राजा सिंहदेव से मिल गए। ऐसी स्थिति मे मनुजेश्वर और कोष्ठेश्वर मे लाभ तथा सौख्य के आकाक्षी भिक्षु-पक्षीय जनों मे अधिकांश 'पहले हम, पहले हम' कहकर स्पर्धा-सी करते हुए राजा के पास पहुँचने की उतावली करने लगे। भिक्षाचर ने कावरुह के द्वारा यह समाचार जानकर आषाढ मास मे अपने परिवारसहित विदेश के लिए प्रस्थान कर दिया। भिक्षु के कुछ अनुयायी डामर उसके क्रोधपूर्वक सान्त्वना देने पर भी उसकी उदारता का स्मरण कर उसके साथ चल दिए। भिक्षु उन्हे किसी भी प्रकार रोक न सका। भिक्षु के गमनोपरान्त शीलरहित कुलटा पुत्र कोष्ठेश्वर उसकी (भिक्षु की) रूपवती पत्नी को प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। सिंह की जटा, सर्प के फण की मणि, आग की लपट और तेजस्वी पुरुष की पत्नी को प्राप्त करना सहज काम नही है।

सोमपाल के राज्य मे पहुँचकर भिक्षु ने उसका आश्रय प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु सिंहदेव के साथ सन्धिवद्ध होने से उसने उसे अपना आश्रय नही दिया। मार्ग मे उसकी हत्या कर देने के अनेक प्रयास किए गये। उन सबसे भयभीत और विवश होकर भिक्षु ने उस दुर्गम देश की सीमा का उल्लघन कर सुल्हरी मे आश्रय लिया। भगवान् ने त्रिगर्त देश मे दया, चम्पा मे शील, मद्रमण्डल मे त्याग और दार्वाभिसार मे मैत्री की सृष्टि नही की। भिक्षु के चलते समय उसके मन्त्रियो ने सलाह दी थी "आपके दूरस्थ हो जाने पर राजा जयसिंह निर्द्वन्द्व मन से डामरो को पीडित करेगा। उस स्थिति मे उससे असन्तुष्ट होकर प्रजा आपको ही कश्मीर का राजा बनायेगी। अत. हम लोग आपके लिए आश्रय-प्राप्ति हेतु नरवर्मा के पास जा रहे हैं।" किन्तु, मन्त्रियो की इस युक्ति-युक्त सलाह को उसने अस्वीकार कर दिया। फिर, भिक्षु वहाँ से चलकर अपनी ससुराल पहुँचा। ससुर ने उसे थोडे से परिवार के साथ अपने ही घर मे रहने के लिए कहा। उसने अपने श्वसुर की बात मान ली। फिर उसके साथ गए डामर-भृत्य वापस लौटे।

इधर काश्मीर की राजधानी मे शुभ लग्न और मुहूर्त्त मे राजा जयसिंह का राजकीय जुलूस निकला। उस जुलूस में सम्मिलित डामरगण अपनी बहुमूल्य चमकदार पोशाक से बराती-से जान पडते थे। अश्व, छत्र तथा तुरङ्ग से सुसज्जित उस जुलूस के हर व्यक्ति को राजा से भी अधिक आकर्षक देखकर लोग परलोकवासी राजा सुस्सल के धैर्य और वर्तमान राजा जयसिंह की निष्ठुरता की सराहना कर रहे थे। उदारता, तरुणाई, रूप और वेश-भूषा से सौन्दर्य-धाम बने हुए कोष्ठेश्वर को राजधानी की स्त्रियाँ बडी उत्सुकता से देख रही थी।

राज्य-विप्लव शान्त हो जाने के बाद काश्मीर मे नित्य नये उत्सव के बाजे बजते रहते थे और रात-दिन लवन्य डामरो की तुरुहियाँ बजती रहती थी। सैन्य-सागर के लिए भयकर माने जाने

वाले क्षीर आदि बड़े-बड़े योद्धाओं को मन्त्री लक्ष्मक ने मडव राज्य से लाकर राजा जयसिंह के समीप उपस्थित कर दिया। लक्ष्मक राजा जयसिंह का अत्यन्त विश्वस्त और प्रिय मंत्री था। प्रतीहार-गृह-द्वार पर प्रवेश करने के लिए राजकर्मचारियों को भी उससे अनुमति लेनी पड़ती थी और वह सभी का यथोचित सम्मान किया करता था।

पहले लुटेरे लवन्य डामरों द्वारा गाँव के गाँव लूट लिए जाते थे जिससे राज्य में भुखमरी की स्थिति बनी रहती थी, किन्तु कुबेर के समान ऐश्वर्यशाली राजा जयसिंह के शासन-काल में राज्य में व्यय की अपेक्षा आय अधिक हो गई। डामरों में जो उपयोगी व्यक्ति थे, उन्हें राजा ने राज्य-शासन के भीतरी कार्यों के लिए वैतनिक कर्मचारी नियुक्त कर दिया और साधारण डामरों को ऊपरी काम काज के लिए नौकरी दे दी। राजा जयसिंह ने अपने पिता की हत्या करने वाले तिष्य वैश्य तथा अर्धदेव आदि जातियों के लोगों को राजद्रोही घोषित कर कठोर दंड दिया। इस तरह पिता की मृत्यु-तिथि से लेकर चार महीने के अन्दर राजा जयसिंह ने ऐसी राज्य-व्यवस्था की कि उससे अच्छी शासन-व्यवस्था किसी भी राजा के शासन-काल में नहीं रही। जयसिंह के राज्यारोहण से पहले उस नगर के निवासी बेघरबार और सामर्थ्यहीन थे। राजा के समान प्रभावशाली डामर लोग घेरा डाले हुए थे और राजधानी के समीप ही सब साधनों से सम्पन्न शत्रु स्थायी रूप से डेरा डाले पड़ा हुआ था तथा राज्य के अन्तरंग, बहिरंग, सभी कर्मचारी, सामन्त एवं मंत्री उससे मिले हुए थे। राज-दरबार में अनुभवी बुजुर्गों की सलाह की कद्र नहीं थी, सभी राजकर्मचारी अन्यायपरायण थे और राजद्रोह करना ही उनका मुख्य धन्धा था। किन्तु, राजा जयसिंह के हाथों में शासन-सत्ता आते ही शासन-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो गया। परिवर्तित शासन-व्यवस्था बड़े-बड़े पर्यवेक्षकों और आलोचकों के लिए भी स्मरण रखने की सामग्री बन गई।

उस राजा के अनेक प्रशंसनीय गुणों में से प्रसंगवश कुछ विशिष्ट गुणों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है, क्योंकि पूर्वापर अनुसन्धानरहित कथाएँ दृष्टान्त मात्र बन जाती हैं, इसलिए जब तक उनका गम्भीर अध्ययन एवं मनन नहीं किया जाता तब तक वे कथाएँ और वे गुण सरस नहीं बनाए जा सकते। राजा जयसिंह के यथास्थित गुणों को जैसा हमने देखा है, प्रत्यक्ष अनुभव किया है, उन का निष्पक्ष चुनाव करके हम ईर्ष्याशून्य विवेक से उऋण हो जायेंगे। यह भी सही है कि साधारण आदमी में भी निहित तत्व को पूर्णतया जान लेना, समझ लेना मुश्किल होता है, तब फिर लोकोत्तर गुणों से संपन्न किसी राजा के विषय में पूर्ण ज्ञान कोई कैसे प्राप्त कर सकता है? दूसरे के प्रभाव को भलीभाँति समझने में निपुण लोग तो इस संसार में हैं नहीं। ऐसा एक भी आदमी नहीं दिखाई पड़ता जो आलोचकों द्वारा अपने कुकर्मों के समान ही कुकर्मी न ठहराया गया हो। फिर भी यह कहा जा सकता है कि अपने शुभचिन्तकों, स्त्रियों, सुख-दुःख के साथी, मित्रों और लोकप्रिय राजाओं तथा कवियों के गुण-दोषों के विषय में कुछ निर्णय किया जा सकता है। परिणाम सामने आने पर ही बुद्धि का प्रसार होता है, लेकिन गुण-दोष के विषय में बनी हुई लोगों की निष्ठा पर उस बेचारी बुद्धि का कुछ भी प्रभाव नहीं रहता है। व्यक्ति का स्वभाव ही कुछ ऐसा विषम होता है कि वह भावी परिणाम पर विचार न करके प्रायः गुण को भी दोष समझ लेता है।

आँखों में चकाचौंध पैदा करने वाली बिजली से बहुतेरे लोगों की आँखें खुल जाती हैं। बादलों के कर्कश गर्जन से अनेक वस्तुएँ पैदा हो जाती हैं। किन्तु, मूर्ख लोग बादल की सारी चेष्टाओं को अनु-

पयोगी मानते हैं और आमतौर से साधारण लोग वरमान के अलावा और कोई दूसरा गुण भी मेघ में होता है, यह नही जानते हैं। इसलिए, मेरा विश्वास है कि राजा जयसिंह के लोकोत्तर एव अनुभव-गम्य गुणो को सुनते हुए प्राचीन राजाओ के अद्भुत एव महान् कृत्यों पर अवश्य विश्वास हो जायगा। दिग्गज के समान राजा जयसिंह अपने स्थान से हटे विना ही भौंहे तानते ही पर्वतो को हिला देता है। उसके व्याप्त भय से सैन्य-समुदाय रो पडता था और राजाओ के हृदय उसके प्रखर तेज को उसी प्रकार सहन करते है जैसे समुद्र उवलते हुए वडवानल को सहा करता है। राजाओ में सूर्य के समान राजा जयसिंह के तेज से लुप्त होकर उसके पूर्ववर्ती राजाओ की यश-चन्द्रिका नष्ट हो गई है।

जिस तरह पत्थर पर उकेरी गई देव-प्रतिमा ध्यान करते ही सम्मुख आ जाती है उसी प्रकार जो व्यक्ति उसे जहाँ देखना चाहता है वही वह उसे दिखायी पड जाता है। उसकी प्रसन्नता स्थायी होती है उस का दान अपरिवर्तनीय होता है। शरणागत को वह पूर्ण अभयदान देता है। उसके म्यान से तलवार खीच लेने पर सामने उसकी परछाई के अलावा और कोई नही दिखाई पडता है और जब वह गर्जन करता है तो उसकी प्रतिध्वनि के अलावा और किसी का गर्जन नही सुनाई पडता है। उसके कोप मे नही वल्कि प्रसन्नता मे उसकी वाणी इतनी तीक्ष्ण हो जाती है कि तीखी धारवाली तलवार का काम करती है।

जिसके घर मे अम्लान लक्ष्मी दिन दूनी रात चौगुनी वढती थी उस वश मे उत्पन्न राजा जयसिंह का आश्रय पाए हुए लोग कल्पलता के समान वढते रहते हैं। राजा जयसिंह के दुस्सह माहात्म्य एव गाम्भीर्य प्रभाव को मन्त्रीगण भली-भाँति समझते हैं और राजा भी उन सब की यथोचित सेवा के लिए तत्पर रहता है।

जिस प्रकार एषा नाम की वनस्पति अपने आसपास के वृक्षो को वढते हुए नही सहन कर सकती है उसी प्रकार राजा जयसिंह का प्रतीहार मन्त्री वृद्ध होने पर भी दूसरे मन्त्रियो की उन्नति सहन करने मे असमर्थ था। इसलिए वह लक्ष्मक, तिनको के समान अन्यान्य मन्त्रियो, को लापरवाही से उखाडते हुए भी जनकसिंह को न उखाड सका, क्योंकि जनकसिंह वचपन से ही राजा जयसिंह का स्नेह-भाजन रहा है। वह राजा के सम्पूर्ण व्यवहारो से भलीभाँति परिचित था। उसके कई तरुण पुत्र उसे चारो ओर से रक्षित रखे हुए थे, इसलिए वह अपराजित रहा। किन्तु, छुड्डा नामक उसका छोटा पुत्र किसी कारण पिता द्वारा अपमानित हो जाने पर अभिमानवश अपने पिता जनक सिंह का प्रच्छन्न विरोधी वन गया। वह अपने पिता जनकसिंह के दोषो को देखता हुआ राजा को वताने लगा। इस तरह धीरे-धीरे उसने जनकसिंह तथा उसके पुत्रो के प्रति राजा के हृदय मे द्वेषभाव उत्पन्न कर दिया।

राजा जयसिंह और जनकसिंह दोनो हमजोली थे और राजमाता भी दोनो को समान भाव से प्यार करती थी। शासन का कामकाज भी दोनो मिलजुल कर प्रेम से करते थे। राजा जयसिंह और जनकसिंह के घोडे, पहनने के कपडे, स्नान-विधि और आहार आदि सब एक समान थे। दोनो की प्रीति से राजधानी मे समय वडे आनन्द से कट रहा था। प्रभु के रहन-सहन की वरावरी प्राप्त कर उन्नत वन जाने को उन्नति नही समझनी चाहिए, क्योंकि जल मे उत्पन्न कमल अपनी महिमा से असाधारण उन्नति कर लेते हैं, किन्तु जव उनके समुदाय पर मेढक उछलने लग जाते हैं तो उनकी कितनी वडी विडम्बना होती है। जनकसिंह को भित्ति वनाकर उस पर भलीभाँति चुगली की चित्रकारी की जाने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि राजा जयसिंह मन्त्री जनकसिंह के साथ उसके साथियो से भी द्वेष करने लगा।

एक बार कृतज्ञ राजा जयसिंह विजयी सेनापति सुज्जि का अभिनंदन करने के लिए आषाढ के महीने मे विजयेश्वर-क्षेत्र में गया। इसी बीच पिंजदेव-क्षेत्र से आता हुआ उत्पल जब पहाड के दर्रे को पार कर रहा था, उसी समय शूरपुर के द्रगाधिप राजा ने उसका वध कर डाला और जब पुष्पाणनाड से लौट कर द्रगाधिप अपने अश्व को ढूँढता हुआ उस स्थान पर पहुँचा तो किसी अज्ञात व्यक्ति ने उसके मर्मस्थल पर वाण मार दिया जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई।

सेनापति सुज्जि का स्वागत-सत्कार कर चुकने के बाद जब राजा जयसिंह लौट रहा था तो अवन्तिपुर के द्वार पर पहुँचते ही द्रगाधिप का एक सेनापति शत्रु के रूप मे उसके सामने आया। उसे देखते ही राजा जयसिंह ने उसके मुँह पर ऐसा मुक्का मारा कि खून उगलकर वह वहीं मर गया। उस सेनापति के मुँह से खून निकलने के साथ ही राजा द्रगाधिप की मृत्यु का जो शोक-शकु उसके हृदय मे घुसा हुआ था वह सदा के लिए निकल गया। इस तरह पहली यात्रा मे ही एक प्रधान शत्रु का सहार कर देने के कारण लोग राजा जयसिंह को सभी काँटो को दूर कर देने वाला निष्कण्टक राजा मानने लगे।

जब वह राजधानी पहुँचा तो अनेक विद्रोही भाग खडे हुए और जनकसिंह आदि पकड कर बन्दीगृह में डाल दिए गए। कुछ लोग राजा के भय से नगर छोडकर भाग गए, किन्तु कोष्ठेश्वर आदि विद्रोही उससे प्रतिकूल भाव रखने लगे।

कुछ दिनो के बाद वह क्रियाशील राजा कार्त्तिक के महीने मे शमाला ग्राम गया। वहाँ विद्रोही समुदाय से उसे भयकर युद्ध करना पडा। जिस हाडिग्राम मे राजा जयसिंह के प्रतापी वीर पिता राजा सुस्सल आदि का मान भग हो चुका था, उस ग्राम को सेनापति सुज्जि ने जलाकर राख कर दिया। इस प्रकार कोष्ठक आदि विद्रोहियो ने राजा से सतप्त होकर भिक्षाचर को पुन राजगद्दी दिलाने का लोभ देकर फिर बुलाया। प्रतिदिन पन्द्रह योजन रास्ता तय करता हुआ भिक्षु शिलिका-कोट नामक पहाड़ पर आ पहुँचा। भूख, प्यास, थकावट, भय और रास्ता भूल जाने आदि अनेक कष्टो को नगण्य समझता हुआ स्वाभिमानी भिक्षाचर विजय की आशा लिए रात-दिन दौडता रहा। लेकिन, जब विधाता वाम हो जाता है तो विजिगीषु का बना-बनाया काम उसी प्रकार बिगड जाता है जैसे दौडते हुए रथ का ध्वज-वस्त्र आगे की ओर न उडकर पीछे की ओर उडता है।

किसी का काम आरम्भ होते ही सफल हो जाता है और किसी का काम लाख प्रयत्न करने पर भी सिद्ध नही होता है, जैसे मन्दराचल ने समुद्र को ज्योही मथना शुरू किया त्योही रत्न निकलने लगे, किन्तु हिमालय चिरकाल तक प्रयत्न करने के बाद भी असफल ही रहा।

नदी अपने उद्गम-स्थल से निकल कर समुद्र से मिलने के लिए बडी बेचैनी से भागती है और जब समुद्र के पास पहुँच जाती है तो समुद्र की उत्ताल तरगे उसे ढकेल देती हैं, किन्तु नदी को यही जान पडता है कि उसका उत्थान हो रहा है। सच तो यह है कि विधाता जिसे नीचे गिरा देता है उसका उत्थान कभी नही होता है।

जब भिक्षाचर के दुर्द्धर्ष प्रयत्नो से उसके अभ्युदय का समय निकट आ गया तो विधाता के कुटिल विधान ने उसकी सफलता पर बहुत बडी बाधा उपस्थित कर दी। उसी समय एक बार अँगुली कटाकर युद्धक्षेत्र से भागा हुआ पृथ्वीहर का छोटा भाई वहाँ आ पहुँचा, किन्तु उसे यह नही ज्ञात था कि राजा जयसिंह वहाँ विद्यमान है। कुछ भी कर सकने मे असमर्थ कोष्ठक और पृथ्वीहर का छोटा भाई मत्र द्वारा कीले हुए साँप की भाँति साथ-साथ रहने लगे। कुछ दिनो के बाद वे दोनो वहाँ से

हट कर एक दूसरे स्थान पर अपनी मकान मिटायी और फिर कर्कोट द्रंग के रास्ते से मुल्हनो चले गए। वहाँ दोनों ठहर गए, किन्तु उनकी प्रबल दर्पपूर्ण भुजाओं में कश्मीर पर आक्रमण कर देने की चिन्ता की खुजली उठ रही थी।

जिस तरह बाढ का पानी अपने बहाव का रास्ता ढूँढता है उसी तरह राजा जयसिंह अपने नगर में जाकर शत्रुओं के प्रतिकार का उपाय ढूँढने लगा। जब वह अपने मन्त्री मन्त्रियों में श्रेष्ठ प्रतीहार सेनापति सुज्जि के घमंड और उसकी उग्रता से ऊब कर उसके साथ कूटनीति का व्यवहार करने का अवसर ढूँढ रहा था, तभी उस तेजस्वी राजा जयसिंह का परम विश्वासपात्र और गंगा-स्नान से पुनीत तन-मन वाला धन्य का बडा भाई उदय वहाँ आ पहुँचा। राजा द्वारा प्रभूत सम्मान प्राप्त करते हुए उदय और उनके साथी नगर में रहने लगे, किन्तु उन्हें कोई सम्मानित पद न दिए जाने पर वे चिन्तित और सन्तप्त हुए। उस समय राजा जयसिंह अपने पिता के समय के मन्त्रियों पर उत्तरदायित्व सौंप कर राज-काज कर रहा था, अतएव धैर्यवान्, विचारवान् उदय और उसके साथी अपने लिए उचित पद मिलने की प्रतीक्षा करने लगे। उधर मुख्य मंत्री प्रतीहार सेनापति सुज्जि को किसी भी तरह से नीचा दिखाने के लिए अहितकर और अवाञ्छनीय साधन एकत्र करने में संलग्न था।

कुछ ही दिन बाद राजा जयसिंह अचानक भयंकर चेचक रोग से ग्रस्त हो गया। उसके सारे शरीर में बडे-बडे फफोले निकल आए, देह सूज गई और मंदाग्नि एवं अतिसार भी हो गया। उसकी स्थिति से राज्य के अभ्युदय में उत्पन्न बाधा से सारा देश व्याकुल हो उठा। राजवंश का प्रमुख व्याधि के संकट से ग्रस्त था। शत्रु प्रबल हो रहे थे। ऐसे समय में शत्रुओं को सहायता देने वाले डामर (सशस्त्र लुटेरों का वर्ग) यह चाहने लगे कि संकट बना रहे। ऐसी हालत में वर्तमान और भविष्य का हित सोचकर सेनापति सुज्जि ने महारानी गुणलेखा से उत्पन्न एक मात्र पाँच वर्ष के राजकुमार परमाण्डि को राजा बनाने के लिए राजकुमार के मामा और गर्ग के पुत्र पञ्चचन्द्र से सलाह करने लगा। इसी समय उपयुक्त अवसर जान कर मुख्य मन्त्री प्रतीहार ने राजा से कहा कि सेनापति सुज्जि पञ्चचन्द्र आदि से रात-दिन यही मन्त्रणा कर रहा है कि राजकुमार को राजपद दे दिया जाय। वह गुप्त षड्यन्त्र कर रहा है। मुख्य मन्त्री की इस बात का समर्थन जब धन्य आदि लोगों ने भी किया तो राजा ने उसकी बात को सही मान लिया।

धूर्त लोग बात करने में बडे चतुर होते हैं। वे ब्रह्मा के समान अद्भुत् शैली में अपनी बात कहकर लोगों के हृदय में उत्सुकता भर देते है। ऐसे धूर्तों की बातों में बालक-जैसी बुद्धि रखने वाले मनुष्य या असंतुलित चित्त वाले राजा बहुत जल्दी फँस जाते हैं। शौच-स्थान अथवा मैथुन के स्थान पर रहने वाले भूत-प्रेतों की तरह मायावी पैदायशी धूर्त अपने वचन-कौशल से जिस राजा के मन में प्रविष्ट होकर उसकी बुद्धि बदल दे, उस अविवेकी, अकर्मण्य राजा से प्रजा का कल्याण कैसे संभव हो सकता है। अकारण हँसता हुआ धूर्त राजा के पास जाकर, हृदय में दूषित विचार रख कर ऊपर से आँखों द्वारा प्रेम को छलकाता हुआ, राजा से अनेक प्रकार के प्रश्न करता है। इसके बाद सिर खुजलाते हुए वह ऐसी बात कह देता है कि जिससे राजा के हृदय पर वज्रपात के समान आघात पहुँचता है। राजा का प्रिय धूर्त सर्वसाधारण के लिए बहुत बडा खतरा होता है। वह बडे हावभाव से आ-जा कर राजा के कान में कुछ कहता है, कनखियों से सारे संसार को अवहेलनापूर्वक देखता है और मुँह बिचका कर या मुस्करा कर वह जब लोगों के प्रति घृणा या प्रेम प्रदर्शित करता है तो मानो उन पर उपकार करता है।

इस संसार मे ऐसा कोई राजा नही हुआ है जो धूर्तों द्वारा मतिभ्रष्ट न हुआ हो और धूर्तों के इशारे पर कठपुतली की तरह न नाचता हो। एक सेवक की मूर्खता से सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी प्रजा के पाप से राजाओ की वह कुबुद्धि आज तक ज्यो की त्यो बनी हुई है। पहले की तरह सेनापति सुज्जि राजा के हालचाल पूछने के लिए जब उसके पास गया तो राजा ने अविश्वास-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। यह देखकर सुज्जि को बहुत खेद हुआ। राजा की उदारता को अनुदारता के रूप मे बदलते हुए, सुज्जि ने दर्पण मे परछाई की भाँति देखकर उधर से मुख मोड लिया। धीरे-धीरे उसने राजा के पास आना-जाना कम कर दिया। इस प्रकार धूर्तों ने सुज्जि पर रहने वाले राजा के प्रेम को खीच लिया।

सुज्जि का एक सेवक ब्राह्मण था। वह दुष्ट, राजा के पास आते-जाते प्रतिकूल सलाह देकर सुज्जि के अभ्युत्थान और ऐश्वर्य का बाधक सिद्ध हुआ। जब राजा स्वस्थ हो गया तो लोगो ने देखा कि सुज्जि ने मारे खुशी के बहुत-सा धन लुटाया और भगवान से राजा के कल्याण की प्रार्थना कर वह अपने घर चला गया। किन्तु, विशाल सेना और वाहक से युक्त राजा जयसिंह ने उसे मनाया नही, बल्कि यही सोचता रहा कि किस तरह उस पर आक्रमण कर दिया जाए। अन्त मे राजा ने यही निश्चय किया कि यदि उसे अपने पद और कार्य से मुक्त कर दिया जाए तो वह अपने समर्थको और आश्रितो के साथ स्वय राज्य से चला जाएगा। तदनुसार उसने उसके सब अधिकार दूसरो को बाँट दिए। धान्य को उसने न्यायाधीश का अधिकार दे दिया। उदय को सेनापति का पद प्रदान किया और रिल्हण को खेरी प्रदेश का राज्यपाल बना दिया।

इस प्रकार सुज्जि के प्रति अपने प्रतिकूल मनोभाव राजा ने प्रकट कर उसे जब पदच्युत् कर दिया तो वह अपने अल्पसख्यक साथियो के सहित सावधान और सतर्क हो गया। इतना अपमानित होने पर भी स्वाभिमानी सुज्जि स्वर्गीय राजा सुस्सल के अस्थि-अवशेष लेकर गगा मे प्रवाहित करने के लिए नगर से चला गया। जाने वह इस आशा से राजप्रासाद के निकट से निकला कि जाते हुए शायद कोई उसे रोके, किन्तु उसे न तो राजा ने और न किसी अनुचर ने ही रोका। इस तरह अपमानित होकर जाते हुए सुज्जि के साथ मुख्य मत्री प्रतीहार लक्ष्मक गर्व से फूला न समाया और उसके साथ अपने पुत्र को इसलिए लगा दिया कि वह उसके कोषबल, सैन्यबल का पता लगा सके। "निग्रह और अनुग्रह करने का सामर्थ्य दिखाने के लिए ही लक्ष्मक प्रतीहार ने अपने पुत्र को मेरे साथ कर दिया है।" यह सोच कर सुज्जि को हार्दिक कष्ट हुआ। नगर-द्वार तक सुज्जि को भेज कर लक्ष्मक लौट आया और सुज्जि पर्णोत्स गाँव की ओर चल पडा। लोहर पहुँच कर उसने भागिक को लौटा दिया। वही सुज्जि ने प्रतीहार लक्ष्मक के भेजे हुए धात्री पुत्र प्रेम को लोहर दुर्ग का दुर्गपति बनाकर उसे सब अधिकार सौंप दिए। लोहर का अधिकार त्याग देने के बाद सुज्जि के मन से राजा की ओर से होने वाली आशकाएँ दूर हो गई। लोहर से विदा होकर वह राजपुरी पहुँचा और गर्मी का समय उसने वही विताया। मन्त्रियो को गेंद की तरह ऊपर और नीचे उठाने-गिराने की शक्ति प्राप्त कर प्रतीहार लक्ष्मक ने डामरो को अपने अधीन कर कुछ यश प्राप्त किया। इसके बाद सुज्जि के प्रतिद्वन्दी राजकुल मे उत्पन्न वीर राजमगल को लक्ष्मक ने द्वाराधीश बना दिया। कलुषित हृदय, ईर्ष्यालु लक्ष्मक ने राजमगल को द्वाराधीश इसलिए नियुक्त किया था कि वह सुज्जि के राज्य मे उत्पन्न हुआ था और राजकोष से उसका पालन-पोषण किया गया था, और इससे सुज्जि की कीर्ति को बट्टा लगेगा। लक्ष्मक प्रतीहार ने सुज्जि के सारे अधिकार छीन कर उसे भूख-प्यास से व्याकुल केवल तलवार लटकाए गली-गली

भटकने के लिए विवश कर दिया। योग्य के स्थान पर अयोग्य को बैठा देना तो सरल है, किन्तु अनेक उपाय करने पर भी अयोग्य मे योग्य के गुण नही लाए जा सकते। चन्दन लगाने योग्य अपने शरीर मे शिवजी चिता-भस्म मल सकते है, किन्तु तीनो लोको की सृष्टि और सहार की क्षमता रखने वाले शिवजी उस चिता-भस्म मे चन्दन की सुगन्धि नही पैदा कर सकते हैं। नवनियुक्त पदाधिकारी मे सुज्जि से प्रतिस्पर्द्धा करने का अभाव देखकर लक्ष्मक ने विदेश-स्थित सजपाल को बुलाने के लिए दूत भेजे। इस तरह कश्मीर राज्य जब वीरो से रहित हो गया तो अवसरवादी कोष्ठेश्वर जैसा शत्रु भी राजा जयसिंह का अन्तरग सलाहकार बन गया। राजा का विश्वासभाजन बन जाने के बाद कोष्ठेश्वर ने उसे विविध प्रकार के बहुमूल्य उपहार प्रदान कर वह भी उसी नगर मे रहने लगा। किन्तु, उसे भी चेचक का रोग हो गया।

जिस समय दमन करने योग्य विरोधी समुदाय से राजा जयसिंह मेल-मिलाप कर रहा था, उसी समय सोमपाल आदि राजा के विरोधी सुज्जि को राजा के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए उभाडने लगे। उनके उकसाने पर अपमानित सुज्जि ने केवल छडी दिखाकर कश्मीर को जीत लेने का साहस करके सोमपाल को राजगद्दी दिलाने का वायदा किया। लेकिन, इसी बीच राजा जयसिंह ने सोमपाल के साथ अपनी पुत्री का विवाह तय कर के शत्रु पर शाम और दाम नीति का प्रयोग एक साथ किया। सुज्जि ने राज्य दिलाने और राजा ने लडकी का ब्याह कर देने का वायदा करके शत्रु को घर मे घुसने का अवसर प्रदान कर अपनी-अपनी तुच्छ बुद्धि का परिचय दिया। परिणाम यह हुआ कि राजा जयसिंह के उपाय और अपने भविष्य की उज्वलता देखकर सोमपाल सुज्जि की उपेक्षा करने लगा।

कुछ दिन बाद प्रतिहार लक्ष्मक स्वय राजपुरी जाकर सोमपाल का विवाह कराने के लिए उसे राजधानी ले गया। वहाँ पहुँच कर सोमपाल ने महारानी कल्हणिका की पुत्री अम्बापुत्रिका के साथ विवाह किया। विवाह करके जब सोमपाल लौट गया तो चतुर लक्ष्मक ने सोमपाल की बहिन की लडकी नागलेखा का विवाह राजा जयसिंह से करा दिया। इस तरह राजपुरी और कश्मीर दोनो राज्य एक दूसरे के सबन्धी बन गए।

जब सुज्जि अपना कार्य पूरा होते न देखकर गगा-यात्रा के लिए चल पडा। वहाँ से चलकर वह जालन्धर पहुँचा। वहाँ उसे सुसगठित सैन्ययुक्त ज्येष्ठपाल मिला और उसने सुज्जि को नष्टगौरव भिक्षाचर से मिला दिया। दोनो को मिला देने के बाद ज्येष्ठपाल ने कहा कि "यदि आप दोनो एक सेना के नायक बन जाएँ तो इन्द्र और उपेन्द्र (विष्णु) दोनो मिलकर भी आपको परास्त नही कर सकते। राज्य देने का वायदा करने पर भी जिसने भिक्षु का अपमान किया है तथा राजसिंहासन पर बैठे हुए जयसिंह ने आपका अपमान किया है। हम उन दोनो से बदला चुकाएँगे।" ज्येष्ठपाल द्वारा इस प्रकार प्रेरित किए जाने पर देङ्गपाल के यहाँ ठहरे हुए सुज्जि ने जब भिक्षाचर के पास जाने का इरादा किया तो माणिक ने उसे रोक दिया। उसने कहा कि "जब तक आप अपने स्वामी के अस्थि-अवशेष गगा मे प्रवाहित न कर दे तब तक आप के लिए ऐसा करना उचित नही हैं।" तब सुज्जि ने कोशपानपूर्वक (शपथ खाकर) ज्येष्ठपाल से कहा कि "गगा स्नान करके वापस आने पर उस सबन्ध मे मैं आप लोगो से मिलूँगा।" यह कहकर वह गगा-यात्रा के लिए चल पडा। इधर राजा जयसिंह ने राज्य का समस्त भार प्रतीहार लक्ष्मक को सौंप कर भी राज्य को सुव्यवस्थित नही समझ रहा था, क्योकि उन दिनो जो कोई लडने के लिए उद्यत होता था, प्रतीहार जाकर उससे सधि कर लेता था और फिर उस पर कृपा-दृष्टि बनाए रखता था।

जिस समय प्रगल्भ शासन-कार्य चला रहा था, उसी समय सेनापति उदय ने महान् स्वाभिमानी कालिय-पुत्र 'प्रकट' का छल द्वारा वध कर दिया। इसी बीच महामंत्री लक्ष्मक ने अनियंत्रित एवं उद्धत लवन्य डामरों को सेनापति उदय से कुछ आश्वासन दिला दिया। इधर भिक्षाचर ने सोचा कि जब तक सुज्जि गंगायात्रा से वापस आएगा, तब तक कश्मीर-विजय की मेरी योजना बिखर जाएगी और मैं कश्मीर पुनः न प्राप्त कर सकूँगा। इसी बीच राजा जयसिंह से कुछ डामरों से मतभेद हो गया तो वे फूटकर भिक्षाचर से मिल गए। उन फूटे हुए डामरों की प्रेरणा से भिक्षाचर जाड़े के दिनों में विपलाटा जा पहुँचा। वहाँ से बढ़कर जब भिक्षाचर कश्मीर-मंडल में प्रविष्ट होने के लिए उद्यत हुआ तो एक तो जाड़े की ऋतु और दूसरा महामंत्री लक्ष्मक ये दो प्रतिरोध उसको सामने खड़े दिखायी दिए। उसी समय भिक्षाचर के पास टिक्क पहुँच गया और वह उसे अपने साथ ले गया। क्योंकि पितृद्रोह के कारण वह राजा का विरोधी था साथ ही डामरों की भी सलाह उसे प्राप्त थी।

अब कश्मीर का राज्य प्राप्त करने की आशा से भिक्षु सुज्जि के आने की प्रतीक्षा करता हुआ टिक्क के दामाद एवं खश जाति के राजा मागिक के यहाँ निर्द्वन्द्व रहने लगा। बहुत कम ऊँचे बाणशलि नाम के दुर्ग में रहता हुआ भिक्षाचर अपने दूतों को भेज-भेज कर डामर समुदाय में फूट डालने लगा। इसी बीच मित्रों में हर्ष और शत्रुओं में भय का संचार करता हुआ सुज्जि गंगा-स्नान करके वापस आ गया। राजा जयसिंह ने यह सोचकर कि पहले ही अपमानित भिक्षाचर के साथ यदि दूसरा अपमानित सुज्जि भी मिल गया तो हमारे लिए महान् संकट उपस्थित हो जाएगा। इसलिए किसी बहाने सुज्जि को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न राजा ने किया। जब सोमपाल द्वारा रखे गए राजा के प्रस्ताव को ठुकरा कर सुज्जि भिक्षाचर से मिलने के लिए दृढ़ रहा तो सोमपाल भयभीत हो उठा। दूसरे दिन सुज्जि भिक्षाचर से मिलने के लिए जालन्धर चला गया, किन्तु राजा जयसिंह का दूत उसके लौटने तक वहाँ टिका रहा। इसके बाद ज्येष्ठपाल की प्रेरणा तथा मागिक के मना करने से सुज्जि ने विरोधी दल का पक्ष ग्रहण करने का विचार त्याग दिया। राजा जयसिंह के दूत ने सुज्जि से कहा कि विदेश-यात्रा में आपके ऊपर जो ऋण हो गया होगा उसे राजा स्वयं उतार देंगे और आपका सेनापति-पद पुनः प्रदान कर देंगे। राजा जयसिंह के दूत द्वारा इस प्रकार बार बार समझाए जाने पर तथा सोमपाल द्वारा जोर दिए जाने पर सुज्जि भिक्षाचर से मिलने का विचार त्याग कर कश्मीर की ओर चल पड़ा। वैशाख के महीने में संकट पार कर सेनापति उदय ने खशों के सहित भिक्षाचर से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। सेनापति उदय के पास आरम्भ में सैन्य-संख्या कम थी, किन्तु बाद में बढ़ जाने से भिक्षाचर जिस दुर्ग में रह रहा था उसे घेर लिया गया। उसी समय राजा जयसिंह विजयेश्वर पहुँच कर सेनापति उदय के पास सैनिक टुकड़ियाँ भेजने लगा। मशीनगनों, प्रस्तरवर्षण, बाणवर्षण आदि विविध भाँति के शस्त्रास्त्रों से राजसेना लड़ रही थी और किले के भीतर से भिक्षाचर की सेना पत्थर बरसा रही थी। पत्थरों की वर्षा के साथ ही भिक्षाचर के नाम से अंकित बाणों की भी ऐसी वर्षा हो रही थी कि राजसेना विशाल होते हुए भी भिक्षाचर को पकड़ न सकी। एक महीना से अधिक समय तक युद्ध होने के बाद धन्य ने पानी से भरी हुई खाई से घिरे हुए उस किले को समूल ध्वस्त कर भिक्षाचर तथा उसके साथियों को गिरफ्तार कर लिया। किन्तु, किले के अन्दर रहने वाले सैनिकों को बल-प्रयोग द्वारा जब काबू में नहीं किया जा सका तो राजा जयसिंह ने शत्रु-बाधा दूर करने के लिए दूसरा उपाय धन-प्रलोभन को अपनाया। इस उपाय को सफल बनाने के लिए राजा ने डामरों, सामन्तों, मंत्रियों और राजपुत्रों के साथ प्रतीहार को भेजा। कोष्ठेश्वर और मिल्लक ने यह सोचकर राजा

का प्रस्ताव मान लिया कि संकटग्रस्त भिक्षाचर को मुक्त करा सकेंगे। इसी समय महामंत्री प्रतीहार ने सोचा कि कम ऊँचाई पर स्थित दुर्ग घिरा हुआ है ही, विशाल सेना द्वारा इसे आसानी से फतेह कर लिया जाएगा। ऐसा निश्चय करने के बाद दूसरे दिन महामंत्री प्रतीहार के सैनिकों ने किला को जीतने के लिए युद्ध प्रारम्भ कर दिया। बाहर से राजा के सैनिक जितने पत्थर बरसाते थे उतने ही पत्थर किले के अन्दर से राजसैनिकों पर भी बरसते थे। ऐसा युद्ध देखकर निश्चय हो गया कि युद्ध द्वारा जबरदस्ती किले पर अधिकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उस अल्पकाल के प्रस्तर-युद्ध से सैनिक देह-रूपी वृक्षों से प्रस्तर प्रहार द्वारा बहती हुई मधुधारा के समान सैनिकों के केश-रूपी भौंरों से युक्त मस्तकों से खून की भयकर धारा बह निकली। उस समय कोष्ठेश्वर की तनिक-सी मूर्खता के कारण यह भीषण परिणाम हुआ कि उसी के साथ भिक्षाचर और लवन्य डामरों का विनाश निकट आ गया। 'मेरे समान कोई वीर नहीं है' इस प्रसिद्धि के लिए कोष्ठेश्वर ने जो मूर्खता की वह भिक्षाचर के लिए प्राणघातक सिद्ध हुई।

उस संकट-काल में खश लोग जब उसके विद्रोही बन रहे थे तब वह उसे ढाढस बँधाते हुए बोला कि "आप लोगों का संकट दूर करने के लिए डामरों के सहित मैं सन्नद्ध हूँ। सामने जो विशाल सेना खड़ी है वह हमारे कल्याण के लिए ही है।" यह कहकर कोष्ठेश्वर ने समझाया तो अवश्य, किन्तु परिणाम विपरीत हुआ। खशों ने सोचा कि जब कोष्ठेश्वर जैसा विश्वासपात्र राजा भी शत्रु के बहकावे में आकर धोखा दे सकता है तो औरों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है? उसी समय चतुर मंत्री लक्ष्मक ने अपना काम बनाने के लिए पितृद्रोही टिक्क को अपने घर बुला कर उसकी सब माँगें स्वीकार कर लीं। खश राजा टिक्क को विपुल सोना और गाँव देकर लक्ष्मक ने जब अपनी ओर मिला लिया तब भिक्षाचर का विद्रोह सीमित हो गया। खश राजा टिक्क का साला प्रतीहार के पास कभी-कभी आता-जाता था। उसने एक दिन टिक्क को प्रतीहार के पास ले जाकर उन दोनों की मैत्री करा दी। डामरों तथा टिक्क के साथ प्रतीहार का मिलन देखकर भिक्षाचर ने कोष्ठेश्वर आदि के साथ अपना विनाश निश्चित समझ लिया। मृत्यु के भय से घबराये हुए भिक्षाचर और कोष्ठेश्वर ने अपनी रक्षा के लिए बहुत-सा धन और सोना देकर दूतों को खशराज टिक्क के पास भेजा। धन लिए दूतों को उपस्थित देखकर टिक्क ने सोचा कि भिक्षाचर और कोष्ठक को भ्रम है कि राजा जयसिंह से रिश्वत लेकर मैंने विद्रोह भाव त्याग कर मैत्री कर ली है और अब अपने प्राणों की रक्षा के लिए वे अपनी ओर से मुझे घूस दे रहे हैं।

उधर राज्य प्राप्त कर देङ्गपाल यह सोच रहा था कि अवसर पाकर राजा जयसिंह मुझे मरवा डालेगा। इसलिए प्रयत्नपूर्वक मुझे जयसिंह का पक्ष ग्रहण करना चाहिए। यह सोचकर उसने हत्यारों को इकट्ठा कर उनके अगुवा फलहक से कहा कि भिक्षाचर के पास जाओ। जब वह शौच के लिए निकले तब उसका वध कर डालो। लेकिन फलहक स्वाभिमानी था। उसने सोचा कि कुत्ते की तरह मल-मूत्र को पोतकर कूड़ा-करकट के बीच से होकर जाना और हत्या जैसा घृणित काम करना उचित नहीं। कोष्ठेश्वर की छिपी हुई कार्रवाइयों से उसकी सेना उदासीन हो गई, जिससे कुपित कोष्ठेश्वर को समय की गतिविधि से परिचित प्रतीहार ने धीरज बँधाया। इसके बाद सभी खश एकत्र होकर भिक्षाचर के विनाश के लिए प्रतीहार से विचार-विनिमय करने लगे।

उधर विजयेश्वर में बैठा हुआ राजा जयसिंह दूतों द्वारा प्रतिदिन युद्ध के समाचार सुन-सुन कर व्याकुल हो रहा था। दस वर्षों तक वृद्ध राजा सुस्सल द्वारा लगातार युद्ध करने पर भी जो कार्य

सिद्ध न हो सका उसे डिम्ब तथा राजा जयसिंह के अनुयायी डिम्बगण ने भिक्षाचर को मार डालने का उपाय प्राप्त कर लिया। यह समझ मे नही आ रहा हैं कि उन्हे यह कैसे विश्वास हो गया था कि अभी किट्ट के खशगण आकर भिक्षाचर और उसके साथियो की सारी सम्पत्ति लूट लेंगे और लुट जाने के बाद वे भाग खडे होंगे। हमारी कूटनीति के प्रभाव से कोष्ठक भिक्षाचर से अलग हो गया। मिल्लक कोष्ठक का भाई ही है। भिक्षाचर के उच्छिष्ठभोजी, ये सब उसके मित्र थे। अब कौन ऐसा आदमी है जो यहां आकर राजा की कार्यसिद्धि का सहायक बन सकेगा। राजा द्वारा भेजी गई रसद तो शत्रुओ की ही कार्यसिद्धि मे सहायक बनी।

इस प्रकार मत्रीगण अपने शिविर मे बैठे हुए जब बात कर रहे थे, उसी समय भूखे, नगे, निःशस्त्र सैनिको ने दुर्ग को चारो ओर से घेर लिया। उफ, कैसी विडम्बना है जो भिक्षाचर अपने सेवको, सहायको के लिए दीर्घकाल तक अकेले सकट झेलता रहा। उस वीरव्रती का वध करने के लिए निर्लज्ज सैनिक उद्यत हो गए हैं। उन लोगो ने ही यह बात कही और केश तथा शस्त्र-रूपी लहरो से निर्मल तथा सजग योद्धाओ के नेत्र-रूपी मत्स्यो से परिपूर्ण वह सैनिक-छावनी नीरव निःशब्द हो गयी। उस समय ऐसा जान पडता था कि क्षुब्ध सेना आकाश मे उड जाएगी, हिरनो की तरह छलांग मार जाएगी अथवा दुष्ट मेघ के समान शस्त्र बरसा कर सब को एक साथ मार डालेगी। ऐसी परिस्थिति मे आश्चर्यचकित कर देने वाला शौर्य प्रदर्शित कर भिक्षाचर ने शस्त्र उठाया। उस समय उसका अदम्य साहस देखकर लोग चकित और विचलित हो उठे। उन मत्रियो को तो इतनी ही सफलता मिल सकी। शेष विपत्तियो-विघ्नो की शान्ति, विजयश्री तो राजा जयसिंह के ही प्रताप से मिली।

जिस समय सैनिक ऊपर आंखे उठाकर भिक्षु के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे उसी समय हाथ मे नगी तलवार लिए एक आदमी बाहर निकला। केसरिया रग के दुपट्टे ओढे हुई बहुत-सी स्त्रियां उसे चारो ओर से घेरे हुए रो रही थी। "भागता हुआ भिक्षु पकड कर बांध लिया गया।" इस तरह उचक-उचक कर जब जनता कह रही थी तभी टिक्क सबके सामने आ खडा हुआ। वह यही सोचकर बाहर निकला था कि इस भयकर विद्रोह मे भिक्षु का वध अवश्यभावी है। यदि भिक्षु बच गया तो वह, अन्यथा राजा के सैनिक मेरा वध निश्चित रूप से कर देंगे। "मैं राजद्रोही नही हूँ" यह विश्वास सर्वसाधारण मे पैदा करने के लिए टिक्क ने कटार निकाल कर अपने पेट मे मारना चाहा तो उसके अनुचरो ने रोक लिया। अनुचरो द्वारा रास्ता दिए जाने पर टिक्क राजा की सेना के बीच से भागता हुआ एक पहाडी पर गया और झरने पर बैठ कर सुस्ताने लगा। हांफता हुआ टिक्क कुछ देर बैठने के बाद स्वस्थ हुआ। इसके बाद डामरो की सलाह से उसने फिर अपना माया-जाल फैलाया। "सूर्यास्त हो गया है यदि कुछ देर और भिक्षाचर बच जाता है तो रात मे डामर लोग राजा के आक्रमण को व्यर्थ कर देंगे" उसके यह कहते ही अनेक घातक निकल पडे और खशो के साथ पत्थर बरसाते हुए उन्होंने राजा के मत्रियो को चारो ओर से घेर लिया। किलकारियां मारते हुए, तालियां बजाते हुए उन्हें देखकर घिरे हुए मत्रीगण घबरा गए, और सोचने लगे कि राज्य पर जब कभी विपत्ति आयी तो अपने अधिकार को सुरक्षित बनाए रखने के लिए हम लोगो ने राजा के शत्रुओ को मुक्त किया। शत्रु के मत्रियो को धन प्रदान कर हमने अपना स्वार्थ सिद्ध किया। किन्तु, अब राजकाज और सूर्य दोनो को अस्त होते हुए देखकर मत्री प्रतीहार लक्ष्मक सामने आकर खश के साले से बोला "यह क्या कर रहे हो ?" उसने जवाब दिया "कुम्हार की एक दासी भी किसी योजना

को नष्ट कर सकती है। ऐसी हालत में जब हम वहाँ नहीं हैं तो खशों का मुकाबला कैसे कर सकते है।" यह सुन कर मन्त्री लक्ष्मक ने आनन्द से कहा कि "तुम जाकर खशों के विद्रोह को शान्त करो।"

दूरदर्शी राजा जयसिंह जब देङ्गपाल के घर से विपलाट की ओर चला तो रास्ते में वह सोचने लगा। पहले से ही जिसके लिए लम्बी रस्सी बटी जा रही थी वह प्रधान कोट्टपाल का साला आनन्द पकड़ लिया गया। उस विक्षुब्ध वातावरण में भी प्रधानमंत्री प्रतीहार लक्ष्मक निश्चिन्त था, क्योंकि उसे विश्वास था कि पढ़ाये हुए, रटाये हुए तोते की तरह आनन्द को जिस काम के लिए भेजा गया है उसे वह अवश्य पूरा करेगा, फिर मन्त्री ने उन आतंककारियों से कहा "मैंने जो साहस का काम किया है वह यदि बिगड़ भी जाता है तो मेरी हँसी न होगी। सर्वनाश में खश के साले के मारे जाने पर क्या बिगड़ता है।" अकुण्ठित भाग्यशाली खशराज के साले आनन्द ने दुर्ग के द्वार पर जाकर सब खशों को नियंत्रित कर उपद्रवकारियों को बुलाया। दस्युओं के प्राण हर समय कण्ठ में रहते हैं, मंत्रियों के मस्तिष्क संदेह में रहते हैं और देवांगनाओं की प्रीति उच्च सीमा पर होती है। तदनुसार थोड़ी देर बाद ही वे उपद्रवकारी भी भागकर पर्वत पर चढ़ गए।

राजा भिक्षु के अनुयायी बलिवेदी पर बलिदान होने वालों की भाँति चमड़े का कोपीन और चमड़े का दुपट्टा बाँधते थे। अपने स्वामी की ही भाँति युद्ध में अपने अपने नाम से अंकित बाण चला कर अपने नाम को प्रख्यात करते थे। ताम्बूल से उनके होंठ लाल रहते थे, केश और दाढ़ी सँवारने में उनकी आसक्ति थी। जब उन लोगों ने अपना अन्तकाल निश्चित समझ लिया तो शरण लेने के लिए जल्दी-जल्दी भागकर कोष्ठेश्वर आदि के शिविरों में वे घुस गए। उधर जब प्रतीहार लक्ष्मक द्वारा प्रेरित योद्धा एक-एक करके तरकीब से भागने लगे तो उन्हें देखकर टिक्क ने डरकर अपनी अँगुली काट ली। टिक्क ने जब यह देखा कि उसके रक्षक खश एक-एक करके भाग रहे हैं तो उसे बड़ा मानसिक कष्ट हुआ। उस दिन उसने भोजन नहीं किया। उपद्रवकारियों को युद्ध के लिए उत्सुक देखकर भी भिक्षाचर मन बहलाने के लिए पाँसे खेलता हुआ जानबूझ कर विलम्ब कर रहा था। युद्धोद्यत उपद्रवकारी सैनिक जब भिक्षाचर के प्राङ्गण में आ गए तब वह अपना अधूरा खेल समाप्त कर उठ खड़ा हुआ।

जैसे अपनी कामिनी के साथ पाँसा खेलते समय कामी पुरुष का कोई मित्र पहुँच जाए तो वह बिना किसी क्षोभ के उसका स्वागत करने के लिए उठ जाता है, वैसे ही उपद्रवकारी सैनिकों के उपस्थित होने पर भिक्षाचर बिना किसी क्षोभ के उठ खड़ा हुआ था। 'अब अनेक लोगों के वध से क्या प्रयोजन' यह सोचते हुए भिक्षाचर ने धनुष-बाण छोड़ कर तलवार ग्रहण कर ली और फिर वह बाहर निकल पड़ा। अत्यधिक चिन्ता के कारण भिक्षाचर के लम्बे-लम्बे अश्यामल केश उसके वस्त्राचल से मिलकर चित्रांकित पताका की तरह फहरा रहे थे। उसके कपोलों पर शख-निर्मित सुन्दर आभूषणों की दीप्ति थिरक रही थी, चन्दनलेखा की जगमगाती ज्योति और मुख पर अहंकार-भरी मुसकान थी। वह एक विचित्र ही ढंग से कुछ पग चलकर उलटे पैरों को पटकता और अपने कटार-रूपी नेत्रों की पलकों से उल्का के सदृश दीप्ति बिखेर रहा था। काशाय के अधोवस्त्र और श्वेत वस्त्र से वह आवेष्ठित था, इस प्रकार वह एक वीर केसरी की भाँति, जिसके कन्धों पर जटायें फैली हुई हों मालूम हो, रहा था। नेत्र, मन, हाथ, पैर की सुन्दर गति से मण्डलाकार, धीरे-धीरे, अनेकधा- स्थिर तथा सँभल-सँभल कर एक-एक पग बढ़ाने के क्रम से, बढ़ रहा था। अहंकार के आभूषणस्वरूप, औचित्यसंगत उसकी चाल,

अभिमान के धनी, विभूति-सम्पन्न पुरुषों की नित्य एवं अविनाशिनी वृद्धि से सम्पन्न थी। इस प्रकार की चाल में अलक्षित रीति से उपस्थित विरोधियों के समक्ष घूमते हुए उस भिक्षाचर को सभी जनों ने गर्दन उठाकर देखा। उस समय उसके पीछे-पीछे राजवंश में जायमान मधु के पौत्र कुमारिय तथा ज्येष्ठपाल के भ्राता रक्तिक चल रहे थे। भिक्षु का सहायक गार्गिक एकाकी हीअपनी वाण-वर्षा के द्वारा उन्नतावनत प्रासादों में छिपे हुए शत्रुओं का अवरोधक बना हुआ था। वीर दौड़ रहे थे, उनके धनुषों से वाणों की भीषण वर्षा हो रही थी। देखकर ऐसा मालूम होता था जैसे उपल-वर्षा के साथ पुरवा हवा हाथियों को ढकेल रही हो।

उसके पश्चात् ही अपने प्रतिद्वन्द्वी योद्धाओं को अवरुद्ध करने वाला वह वीर पापी खशों द्वारा फेंके गये प्रस्तरों के प्रहार से घायल हो उठा और उसका धनुष खण्डित हो गया। तथापि वह बड़ी देर तक शत्रुओं से लड़कर तब लौटा। भिक्षाचर के रणस्थल से वापस हो जाने के पश्चात् अनेक ऊँचे-नीचे मार्गों से असख्य योद्धा रणभूमि में आते हुए दिखायी पड़े। तत्क्षण ही अत्यन्त धैर्यशाली एक विशालकाय योद्धा, जो पार्श्व में आयुध को धारण किए हुए था, शूल लेकर भिक्षाचर की ओर तीव्र वेग से दौड़ पड़ा।

अपने आश्रितों के पालक उस भिक्षाचर ने शूल-प्रहार के इच्छुक उस योद्धा के शूल को अपने बायें हाथ से छीना तथा वेग से दौड़कर उसने उसका केश पकड़ लिया। उसने अपनी कटार से प्रहार किया। इस प्रकार जब वह मार डाला गया तो अनेकानेक आयुधों को धारण किए हुए अनेक योद्धा एक साथ समक्ष आकर युद्ध करने लगे। उन सब योद्धाओं से केवल तीन योद्धा ही भिक्षाचर कुमारिय तथा रक्तिक लड़ रहे थे। उन वीरों के शस्त्रों तथा प्रहारों से भयभीत होकर सभी योद्धा इस प्रकार अलक्षित हो गए कि रणभूमि ही शून्य दिखायी पड़ने लगी जैसे कोटर-निवासी अजगर द्वारा लगे मधु के छत्ते का विनाश हो जाने पर वृक्ष सूना हो जाता है। जब वे शत्रु उन तीनों वीरों को खड्ग-सूलादि से मारने में असमर्थ हो गए तो पीछे हटकर दूरी पर स्थित हो गये और वहीं से वाणों की वर्षा करने लगे। नर-शार्दूल उस वीर भिक्षाचर द्वारा जब उन वाण-समूहों का नाश कर दिया गया तो खशों ने प्रासादों की छत पर से पत्थर की भीषण वर्षा प्रारम्भ कर दी।

पत्थरों के भीषण प्रहार से भिक्षाचर का सारा शरीर जर्जर हो गया और उसी समय उस वीर के यकृत्पिण्ड को चीरता हुआ एक वाण उसकी पसलियों में प्रविष्ट हो गया। तदनन्तर शत्रुओं के हृदय में चिरकाल से समाहित अपने भय-रूपी कम्पन को दूर करता हुआ, वह वीर तीन पग पीछे की ओर हटकर धरती पर गिर पड़ा। उसी समय कुमारिय भी वक्ष पर लगे वाण के प्रहार से आहत होकर अपने स्वामी भिक्षाचर के चरणों के समीप गिरा। रक्तिक, मर्म-स्थान में लगे तीक्ष्ण वाण के आघात से ऐसा व्याकुल हो उठा कि जीवित होते हुए भी निर्जीव की भाँति पृथ्वी पर बैठ गया। उस, समय उन कुलीन दोनों वीर पुरुषों के साथ धरती पर निष्प्राण पड़ा हुआ वह वीर भिक्षाचर इस भाँति शोभित हो रहा था जैसे पुष्पित वृक्षों से परिपूर्ण कोई पर्वत लुढ़का पड़ा हो। इतने राजाओं के मध्य, महाराज हर्षदेव का पुत्र राजा जयसिंह मृत भिक्षाचर के सामने मान अथवा अपमान का कोई भी पद प्राप्त करने का अधिकारी नहीं बना। अन्त में नित्य विपरीत रहने वाले विधाता ने भी वीरतापूर्वक शत्रु के सम्मुख तुमुल युद्ध करते हुए उस भिक्षु को साभिमान पराजय प्राप्त करा दी।

वैभव-सम्पन्न बड़े-बड़े प्राचीन राजाओं में से कोई भी ऐसा नहीं जो भिक्षु के उन उदात्त कर्मों

की समानता कर सके। वास्तव मे उन सब राजाओ की गणना उस वीर के समक्ष नगण्य ही है। दूसरी ओर वीर पुरुष कुमारिय के पौरुष से विस्मित हुए शत्रु-योद्धा उसकी ओर बढ रहे थे और आहत तथा व्याकुल वह वीर इतने पर भी उनसे भली-भाँति लड रहा था। वीर कुमारिय यह जानते हुए भी कि पूर्ण स्फूर्ति के साथ लडना चाहिए, शरीर पर लगे अनेक प्रहारो के कारण विवश था। वह लडखडा रहा था। उसकी ऐसी दयनीय दशा को देखकर शत्रुओ ने चारो ओर से घेर लिया और उस पर और भी अनेक प्रहार किए। विपन्नावस्था मे भी उस पर प्रहार करने के कारण निन्दित होने पर भी खशो ने निष्प्राण भिक्षु पर प्रहार किया। युद्ध मे अवेध एव प्रयोग वर्जित तीव्र शस्त्रो द्वारा भी उन अधम योद्धाओ ने मरणासन्न रत्तिक को मारा।

इस प्रकार लौकिक सवत् ४२०६ की ज्येष्ठ कृष्ण दशमी तिथि को राजा भिक्षाचर मार डाला गया। उस समय वह तीस वर्ष नौ मास की आयु प्राप्त कर चुका था। दीर्घकालीन उस महाविप्लव मे जिनका सर्वनाश हो गया था, उनका हृदय भी वीर के उस असाधारण पराक्रम से विस्मित होकर उसकी भूरि-भूरि प्रशसा करता था। मरणोपरान्त भी कुछ क्षणो पर्यन्त सप्राण की भाँति उस भिक्षु का सिर आँखो को फडकाता भृकुटियो को नचाता तथा मुस्कराता रहा। इस भाँति वीरगति-प्राप्त राजा भिक्षाचर का दिव्य देह तो देवागनाओ के साथ विहार हेतु स्वर्ग को प्रस्थित हुआ और दूसरा भौतिक जड शरीर अग्नि मे भस्मीभूत होकर धरती एव जल मे सदा के लिए विलीन हो गया। तदुपरान्त उन तीनो वीरो के खण्डित शीशो को, विजय-स्थल मे शोभित राजा जयसिंह के मन्त्रियो ने उसके समक्ष उपहार स्वरूप ले जाकर उपस्थित कर दिया।

विचित्र स्वभाव वाले क्षीर सागर ने जिस प्रकार लक्ष्मी, अमृत, कौस्तुभमणि, ऐरावत गज, उच्चैश्रवा अश्व तथा चन्द्रमा की उपलब्धि करायी थी, उसी प्रकार राजा भिक्षाचर ने भी समय-समय पर अनेकानेक अद्भुत भाव-क्रियाओ का ससार मे प्रदर्शन करके अपना असीमित और व्यापक प्रभाव स्थापित किया।

अपने समक्ष उपस्थित भिक्षु के मस्तक को देखकर भी राजा जयसिंह हर्ष अथवा अभिमान से विरत ही रहे। न उनको यह सोचकर कि पिता जी द्वारा अपूर्ण कार्य को मैंने कर लिया, अहकार का अनुभव हुआ, और न यह सोचकर कि राज्य का कण्टक समाप्त हुआ, उनको हर्ष का ही अनुभव हुआ। उसे यह सोचकर क्रोध भी नही हुआ कि इसने मेरे पिता के सिर को काटकर चारो दिशाओ मे घुमाया था, अपितु भिक्षु के मस्तक को अपनी आँखो के सामने उपस्थित देखकर उसे अनायास उसके उच्चभाव एव औदार्य्य का स्मरण होने लगा।

स्फटिक मणि में जिस प्रकार स्वच्छता तथा सूर्य के ताप का आभास नही होता है उसी प्रकार उस वीर की आकृति में किसी भी प्रकार के दोष-विकार नही प्रतीत हो रहे थे, बल्कि दिव्य सात्त्विक भावपूर्ण रूप से परिलक्षित हो रहे थे। भिक्षाचर ने अपने उत्कर्ष-काल को तो पूर्णतया देखा था, परन्तु परम खेद का विषय है कि मृत्यु हो जाने के कारण वह अपने शरीर-त्याग के क्षणो की वीरता देखने मे असमर्थ रहा। उसके राज्य-काल मे जो व्यक्ति उसकी कृपा के धनी थे, वे आज तटस्थ की भाँति उसके सिर को देख रहे थे।

राजा जयसिंह ने, इस प्रकार भिक्षाचर के असाधारण सौजन्य का मन ही मन स्मरण किया तथा सेवको को राजोचित सम्मानपूर्वक शीघ्र अन्तिम सस्कार करने का आदेश दिया। उस दिन

राजा जयसिंह रात्रि में भी जब, जिस क्षण निद्रा से विरत होता तो भिक्षाचर के उत्कर्षापकर्ष और ससार की रीति का स्मरण करने लगता था। भिक्षाचर की इस दशा को देखकर सबने यह अनुमान लगाया कि अब राज्य में हजारों वर्षों तक उत्तराधिकार-सम्बन्धी विवाद की स्थित नही उत्पन्न होगी।

विधाता जो तृणराशि को भस्म करके पुन. घनी घासो के रूप में परिणत करता तथा भीषण ग्रीष्म की ज्वाला के पश्चात् जल भी बरसाया करता है, उस चञ्चल निश्चय वाले के कृत्यो और विचित्र नियमो का क्या ठिकाना ? वह किसी भी समय कुछ कर सकता है। मनुष्य जब किसी कार्य को समाप्त करके विश्राम करने की इच्छा करने लगता है, उस समय विधाता उस कार्य से भी गम्भीर किसी अन्य काम का उत्तरदायित्व उसके ऊपर थोप देता है। घोडा जो एक सवार के पैरो की रगड तथा विविध अन्य कलेशो को सहन करता हुआ पडाव पर पहुँच उसके उतरने के पश्चात् कुछ विश्राम भी नहीं कर पाता कि दूसरा सवार उसकी पीठ पर जीन कस देता है। कहाँ तो बेचारा वह घोडा सवार के उतरने पर विश्राम की कल्पना से हर्षित हो रहा था, कहाँ दूसरा सवार तुरन्त रकाब पर पैर रख कर सवार हो गया। यही है विधि का विधान !

विधि की लीला कि राजा जयसिंह केवल एक रात भर ही राज्य को निष्कण्टक देख पाये थे कि प्रात काल एक शोकमूक पत्रवाहक राजा के सम्मुख उपस्थित हो गया। उसको देखकर सभी सभ्य व्याकुल हो उठे और उन्होंने उससे पूछा तो मालूम हुआ 'महाराज जयसिंह का प्रबल शत्रु भिक्षाचर जिस दिन मारा गया, उस दिन ही अन्य शत्रुओ ने राजधानी को अत्यन्त दु खद स्थिति से व्याकुल कर दिया। घटना यह घटी कि महाराज सुस्सल ने सल्हण और लोठन नामक दो सौतेले भाइयो को लोहर पर्वत पर बन्दी बना रखा था। उनमे से ज्येष्ठ भ्राता सल्हण किले के नौकरो द्वारा मार डाला गया तथा लोठन को हठात् आज रात राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया गया।

राज्याधिकारी पाँच अभिमानी पुत्रो तथा भ्रातृपुत्रो सहित उस लोठन को किले के कर्मचारियों ने बन्धनमुक्त कर दिया तथा उसे राज्य एव कोष का अधिकारी बनाया। समाचार को सुनकर राजा किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया, क्या करे ? दु ख से आकुल हो जाय, मूर्च्छित हो जाय, आर्त्त होकर रुदन करे, हाथो को पसारकर धरती पर गिर पडे, सज्ञाहीन हो सो जाय, अथवा आँखे फैलाकर देखता रहे ? उसकी समझ मे नही आ रहा था। दीर्घकालीन क्लेश के कारण राजा जयसिंह यो ही अन्यमनस्क था, इस अत्यन्त दु खद समाचार-रूपी वज्रपात के कारण वह जर्जर हो उठा। उसकी ऐसी परिस्थिति मे दिग्पालो ने भी उस पर मर्मपूर्ण दृष्टिपात किया परन्तु राजा ने आकार, व्यवहार तथा चेष्टाओ के द्वारा अपनी पूर्वावस्था का परित्याग नही किया। अनेकानेक असहनीय क्लेशो से पीडित राजा जयसिंह इस समाचार से जितना क्लेशित हुआ उतना कभी किसी बात से नही हुआ था। जिस राज्य को उसके पिता ने बलात् नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, उसे पुन सम्हाल लिया तथा शत्रुओ का नाशकर पिता के पद को निष्कण्टक बना दिया।

दुर्ग तथा कोष जहाँ नष्ट हो चुके थे तथा जिस बालक का नाम भी लुप्तप्राय था, जो निर्धन और बान्धवहीन मात्र एक उत्तराधिकारी के रूप मे जीवित था, और जिसने एक विप्लवप्रिय देश मे धन तथा मान को नष्ट करने वाले कष्ट को अनेक वर्षों तक सहन किया था। उस राजा जयसिंह के ही अब धन, जन (मित्र) और दुर्ग से सम्पन्न छ विरोधी उत्पन्न हो गये, उसके मन्त्रिमण्डल की एकता समाप्त हो गयी और साथ ही कश्मीर-मण्डल कोष से शून्य निर्धन बन गया। दुकाल की इस कठिन

कसौटी पर अपनी महिमा से खरे उतरने वाले उस राजा की धीरता, भगवान राम की भी धीरता को लज्जित करने वाली थी।

राम के पिता दशरथ ने उनके अन्दर निज अनुरूप गुणों का आभास पाकर उन्हें राज्याधिकार सौंपने की इच्छा की, परन्तु उन्हीं राम को राज्य से निर्वासित करना पड़ा। राज्याभिषेक तथा वनवास दोनों ही अवसरों पर राम की आकृति में किसी भी प्रकार का विकार परिलक्षित नहीं हुआ। स्त्री और अनुज के सहित राम को रमणीक वनों में प्रेषित करते समय पिता दशरथ ने वनवास की अवधि समाप्त होने के पश्चात् पुनः राज्य प्रदान करने का वचन दिया था। इस प्रकार सुख और दुःख के इस द्वन्द्व में राम को मात्र क्षणिक क्लेश का ही अनुभव हुआ था, इसलिए राम तथा महाराज जयसिंह की परिस्थितियों में बहुत बड़ा अन्तर था।

यहाँ तो विधाता ने जैसे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने की लालसा में एक व्यक्ति के सभी उपकरणों को नष्ट कर डाला था। आगे चलकर उस राजा के अद्भुत कार्य बताये जाने वाले हैं, परन्तु सारी सम्पदाओं के विद्यमान रहने से उसे कोई महान् कार्य की कोटि में नहीं गिनेगा।

उसके पश्चात् धैर्य-सिन्धु राजा ने शेष कार्यों की जानकारी के लिए आगत पत्रवाहक से लोहर के किले का विस्तृत वृत्तान्त पूछा। उसने इस प्रकार कहा "मानिक के किला छोड़कर चले जाने के पश्चात् मण्डलेश्वर प्रेमा-सम्पत्ति प्राप्त हो जाने के कारण प्रमत्त हो उठा और सुरक्षा-कार्य को विस्मृत कर बैठा। वह साज-शृंगार, खानपान तथा स्त्री विलास में अनुरक्त होकर मद के कारण अपनी उग्र प्रकृति द्वारा उद्दण्ड व्यवहार करने लगा, और इस प्रकार उसने सेवकों तक को अपना विरोधी बना लिया। जब आपने अपने कुल की मर्यादा की रक्षा के लिए उन बन्दियों को अन्धा अथवा अपंग करने का आदेश नहीं दिया तो वह भी उनके ऊपर करणीय नियंत्रण से उदासीन हो गया।

ऐसी स्थिति में महत्त्वाकांक्षी तथा मायावी कायस्थ उदय, भाजिक प्रतीहार तथा भीमाकार के पुत्र इन्द्राकर, सबने मिलकर विद्रोह करने के लिए प्रेमा का वध करने की चेष्टा प्रारम्भ कर दी। इन लोगों ने उसके वध के अनेकानेक उपाय किये लेकिन उन्हें अवसर नहीं प्राप्त हो सका, परन्तु एक समय प्रेमा किसी कार्यवश किले से अट्टालिका पर चढ़ गया। इसी अवधि में मरणोन्मुख कश्मीर-नरेश ने आदेश दिया है "यह विश्वास दृढ़ करने के लिए किले के सभी कर्मचारियों ने अभिषिक्त होने वाले लोठन की पत्नी के साथ संगठन करके एक जाली दस्तावेज तैयार कर लिया। उसके पश्चात् रात्रि में लोठन को बन्धनमुक्त कर दिया गया और राजस्वामी के मन्दिर पर विष्णुसिंह ने उसका राज्याभिषेक कर दिया।"

दिवंगत राजा सुस्सल की एक क्षुद्र रानी शारदा जो लोहर में ही रखी गयी थी, संयोगवशात् वह भी उनकी सहायिका बन गयी। उस रानी ने उन्हें ऐसे शस्त्र दे दिए कि उन्होंने उनके सहारे अर्गला को खण्डित करके कोषागार में प्रविष्ट हो गए और पर्याप्त मात्रा में धन, रत्न आदि अपने अधिकार में ले लिया। उन चाण्डालों ने घूस देकर उन सभी भृत्यों को भी जो उनके प्रतिकूल थे, अपने अनुकूल कर लिया और इस प्रकार कुल सात व्यक्तियों ने यह दुस्साहसपूर्ण कार्य सम्पन्न किया। समस्त रात्रि नगाड़े और तुरही की ध्वनि होती रही, सारे कोटवासियों की निद्रा भंग हो गयी और प्रातःकाल लोगों ने राजोचित वेशभूषा से सज्जित लोठन को बैठा हुआ देखा। इस प्रकार उदात्त वेश धारण करा देने के कारण लोठन विस्मय में पड़ गया था और उन्हीं सातों में से राजा के मंत्री बने हुए व्यक्ति

मशाल के प्रकाश में वहाँ से उसे ले गए। जब शेष रात्रि और चाँदनी भी समाप्त हो गयी तो वे लोग विरोधियों के आक्रमण से भयभीत होने लगे। उन्हें शंका हो रही थी कि कहीं प्रेमा का युवक पुत्र चर्म तथा पार्श्विक सेनासहित ठाकुरों के साथ न आ धमके।

प्रातःकाल जब प्रेमा ने यह दुःखद समाचार सुना तो क्रोधाधिक्य के कारण तमतमा उठा तथा सूर्य की किरणों से सन्तप्त वह प्रतिरोध करने के लिए आगे बढ़ा। प्रेमा उस समय शत्रुओं का प्रतिरोध करने के लिए राजपथ पर आ गया था जबकि मैं श्रीमान् के पास पहुँचने के लिए प्रस्थित हुआ। परन्तु शत्रुओं के सैनिक उसे पीछे लौट जाने के लिए विवश कर दिए।

इस समाचार को सुनते ही राजा ने उसी समय लोहर के मंत्री लुल्ल और द्वाराधीश आनन्दवर्धन के पुत्र उदय को प्रस्थित करा दिया। ये दोनों उसी देश में जन्म लेने के कारण वहाँ भी भूमिसम्बन्धी समस्त जानकारी रखते थे। इस प्रकार ये लोग अन्नादि के अभाव के साथ अन्य कमजोरियों से लाभ उठाकर दुर्ग को हस्तगत करने के लिए सर्वथा समर्थ थे।

उसके पश्चात् राजा जयसिंह लौटकर जब नगर में पहुँचा तो तमाम सैनिक भिक्षाचर का सिर लिए उसके समक्ष आकर पुरस्कार की याचना करने लगे। राजा ने उन सब को झिड़क कर लौटा दिया और सिर को आग में जलवा डाला। वहाँ के जन समुदाय, विशेष कर स्त्रियों ने पितामह की भूमि में पौत्र (भिक्षाचर) का दाह-संस्कार करके शोक मनाया और फिर शान्तिपूर्वक चले गये।

ग्रीष्म ऋतु में जब सूर्य की किरणें अत्यन्त तीक्ष्ण थीं और सिद्धि की भी कोई आशा न थी, परन्तु उसने रिल्हण को लोहर जाने का आदेश दे दिया। रिल्हण वीरता, स्वामिभक्ति तथा निःस्पृहता इत्यादि गुणों से सम्पन्न था। इसलिए उसके अमोघ प्रारम्भ से ही राजा को लोहर पर पुनः अधिकार प्राप्त होने की आशा हो गयी।

दुर्भाग्य के मोह में पड़कर अथवा दुष्ट मन्त्रियों की प्रेरणा से, उस समय राजा ने सर्वथा अनुचित मार्ग का अनुसरण किया। कारण उसे विश्वास था कि इस भीषण दुस्सह ग्रीष्म में बिना प्रबल सैनिकों और मन्त्रियों की सहायता शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना असम्भव था, क्योंकि शत्रु सर्वसाधन सम्पन्न एवं अडिग थे। केवल सेनापति उदय को छोड़कर शेष सभी मुख्यमन्त्री प्रतीहार लक्ष्मक के साथ राजा के पास से चले गये। राजपुत्र घुड़सवार, डामर और मन्त्रियों से युक्त राजा की सेना चारों ओर फैल गयी। सेना युद्ध की समस्त सामग्रियों से भली-भाँति सनाथ थी। राजा ने अट्टालिका के ऊपरी भाग में अपना शिविर निर्मित करके शत्रुओं के सभी प्रवेशमार्गों को अवरुद्ध कर लिया। उसके पश्चात् दुर्ग के समीपवर्ती ग्राम फुल्लपुर में लुल्ल आदि योद्धा एकत्र हुए। उनकी उपस्थिति से उत्पन्न भय एवं भेद की आशंका ने युद्ध से भयभीत शत्रुओं के हृदय को दहला दिया। राजा सुस्सल ने बहुस्थल के मुख्य अधिकारी शूर के विवाह में लोठन की पुत्री पद्मलेखा को देकर लोठन को जेल भेज दिया था। तत्पश्चात् वही शूर अपने श्वसुर की सहायता करने के लिए वहाँ पहुँच गया और उसके सैनिकों ने क्षण-प्रतिक्षण शत्रुओं की सेना पर भीषण आक्रमण प्रारम्भ कर दिया।

जब राजा के सैनिकों ने उस स्थान पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया तो भयाक्रान्त, अशान्त हृदय लोठन राजा के समक्ष आत्मसमर्पण द्वारा दण्ड सहने के लिए उपस्थित हो गया। उस समय मुख्य मंत्री लक्ष्मक के हृदय ऐसा विचार आया कि सम्प्रति जो कुछ अधिकार में आ गयी, पर्याप्त है। अतः इस प्रतिकूल मौसम में अधिक लाभ की आशा त्याग कर लौट चलना ही श्रेयस्कर है।

ऐसी स्थिति मे कोई भी अपमान नही है। इसके विपरीत शरद् ऋतु के आगम पर नवीन स्फूर्ति एव नव-शक्ति के साथ आने पर निश्चित रूप से आशातीत सफलता का लाभ होगा। लक्षमक द्वारा बार-बार अपने इस विचार को व्यक्त करने पर भी राजा एव उसके मत्रियो ने उससे शठतावश सहमति न व्यक्त की।

उसी समय लोहर के सर्वराज्याधिकारी उदयन ने सोमपाल को पर्याप्त धन प्रदान करके अपने स्वामी की सहायता के लिए आमत्रित कर लिया। वह सोमपाल जाति-च्युत था। निकट सम्बध होने पर भी, भीषण विपत्ति से ग्रस्त कश्मीर-नरेश को प्राय कष्ट ही पहुँचाया करता था। सोमपाल ने सोचा, यदि लोठन मुझे पुष्कल धन प्रदान करे तो अपने पुराने सम्बन्धी की ओर देखने की क्या आवश्यकता? फिर अन्य लोगो के सामने तो मैं धूर्ततापूर्वक यही कहूँगा कि राजा के साथ हूँ। ऐसा सोचकर कपटपूर्ण जाल से सोमपाल आया। उस जाल-मत्रणा मे सुज्जि का भी हाथ था।

भिक्षाचर के पक्ष से, सोमपाल जब अपनी ओर मिलाया गया तो उसने पूर्व प्रतिश्रुत धन अपने ऋणदाताओ को देने के लिए दूतो से माँगा। लेकिन, दूतो को यह मालूम हो जाने से कि भिक्षाचर का जीवित और मृत होना एक समान ही है, उन्होने देने से इनकार करते हुए कहा "सकट-काल समाप्त हो जाने पर तुम्हारी अब क्या आवश्यकता है?" भिक्षाचर का समाचार सुनने के पश्चात् सुज्जि ने जान लिया कि राजा को मेरी आवश्यकता नही है और जब लोहर के पतन का समाचार मालूम हुआ तो वह अत्यन्त बेचैन हो उठा। परन्तु तुरन्त ही जब उसका स्वाभिमान जागा तो उसने क्रोध-पूर्ण शब्दो मे राजा के दूतो से कहा "हम तुम्हारे लिए लोठन से शान्ति प्राप्त कर लेगे।" दूतो से इतना कहने के पश्चात् सुज्जि ने सोमपाल से कहा "हम लोठन को समझाकर उसके द्वारा तुमको सोना दिलवायेगे।" इस प्रकार उसने स्वलाभ-हेतु बलाबल को अपने पक्ष मे परिवर्तित कर लिया। उसके उपरान्त सुज्जि सोमपाल तथा अन्य अनुचरो के साथ सेना के मध्य से इस प्रकार निकल गया कि किसी को पता ही न चल सका। वहाँ से लोग धोरमूलक के लिए चल पडे।

इस प्रकार भोग-लिप्सा के कारण सुज्जि ने अपना विख्यात सत्त्व नष्ट कर डाला। उसकी कीर्त्ति अनौचित्य-रूपी दूषित धूल की वर्षा से अब पूर्णतया कलकित हो चुकी थी। तुषार के कण से युक्त और श्वेत जल के पान और सब प्रकार के स्निग्ध खाद्य पदार्थों के, जो सरलता से पाचक एव प्राप्य थे, प्राप्त होने के कारण वह कश्मीर को त्यागने मे असमर्थ रहा। भूसी मिले हुए सत्तू आदि को न खा सकने के कारण, वह कश्मीर मे प्रविष्ट होने के लिए प्रयास करने लगा।

कश्मीर-निवासी ग्रीष्म से सतप्त हो गये थे और सुज्जि के पुन आगमन का समाचार जानकर व्याकुल हो उठे, क्योकि सुज्जि का कोई काम शेष नही था। उधर महामत्री प्रतीहार के मित्रगण जो स्वच्छ मास खाकर और सुवासयुक्त पुष्पो की हल्की नशा वाली मदिरा का पान कर-करके कहते थे "सुज्जि की मूँछ, पकडकर हम लोग शीघ्र ही रणभूमि मे घसीट लायेगे।" इस प्रकार की अनेक डीगे हाँकते हुए वे सब उसके धन्यवाद-पात्र बन गये। कश्मीरियो, खशो तथा सिन्धियो ने, यद्यपि अनेक भाँति लोभ आदि देकर अपने पक्ष मे लाने की चेष्टा की परन्तु सफल नही हुए।

सोमपाल ने जब पर्याप्त धन-प्राप्ति की इच्छा से दबाव डालते हुए लोठन से कहा "सबसे उत्तम यही है कि तुम राजा जयसिंह को प्रसन्न करने के लिए मेरी माँग के अनुसार धन दे दो। यदि तुम ऐसा करते हो तो मैं अपने भाई के लडके तथा कश्मीर के महाराज का हाथ तुम्हारे हाथ पर

रखकर सम्मानपूर्वक मित्रता करा दूँगा।" इस प्रकार बहुभाँति माँगने पर भी सोमपाल की माँग को लोठन ने अस्वीकार कर दिया। ऐसी स्थिति मे सोमपाल ने तब राजपक्ष की प्रियता दिखायी। उसी के अनुसार सुज्जि के पास जाकर सोमपाल ने इस प्रकार कहा—"शत्रुओ के साथ युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर मेरे श्वसुर जयसिंह की सेना जब व्याकुल हो जायगी, उस समय तुम किस ओर सम्मिलित हो जाओगे ?" उसकी इस प्रकार की धमकीपूर्ण बातो मे आकर अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए सुज्जि राजसेना के पक्ष मे जाकर सम्मिलित हो गया।

शीत ज्वर के भीषण भय की उपस्थिति के कारण आषाढ मास के शुक्ल पक्ष मे लक्ष्मक अपनी सेना लेकर आधी रात के समय भाग चला। कुछ सैनिक इस प्रकार की हुई सैनिक-भगदड का समाचार राजा को सूचित करने के लिए भेज दिए गये तथा कुछ सुज्जि का वध करने की इच्छा से उसका पीछा करने लगे। इसी बीच राजा की सेना दुर्ग की खाई के एक मार्ग से और दूसरे मार्ग से शत्रु की सेना आकर डट गयी। आगे बढते हुए राजसैनिको ने जब देखा कि शारस्वर का मार्ग शत्रुओ के अधिकार मे चला गया तो उस सकटकालीन परिस्थिति मे सेनाध्यक्ष कालेनक ने उस मार्ग का परित्याग करके निकटवर्त्ती दूसरे पथ से उत्तम, मध्यम सभी लोगो को साथ लिए हुए, उसी दिन वनिकावास ग्राम मे पहुँच गया। अन्य लोग भी जो उसका अनुसरण कर रहे थे पार्श्ववर्त्ती ग्रामो मे प्रवेश कर गये। खा-पीकर आधीरात पर्यन्त पूर्ण निर्भीकता के साथ रहे। तदनन्तर सुज्जि ने जो पहले से ही क्षुब्ध था, अपनी सैनिक-टुकडी को यह बता देने के लिए कि शत्रु का आक्रमण शीघ्र ही सम्भव है, तूर्य-घोष कर दिया। तुरही की उस ध्वनि को सुनकर कुछ रात रहते हुए ही वे सैनिक पहाडो के विभिन्न रास्तो से भाग गए। उन्होंने अपने नायक के आदेश को भी अनसुनी कर दिया।

प्रात काल उठकर मत्रियो ने देखा कि उनके सभी बहुमूल्य वस्त्र चोरी चले गये हैं, जैसे पर्वतो की खाडियों को अनेक धातुद्रव भीषण भूकम्प के आगमन पर निगल जाया करते हैं। लूटी जाती हुई सेना की रक्षा के लिए उस समय किसी ने भी शस्त्र न उठाया, क्योकि सभी अपनी सुरक्षा मे व्यस्त थे। इस कारण अन्य किसी की रक्षा का ध्यान ही उनको नही था। कुछ लोग जो लाल लाल वस्त्र धारण किए हुए थे, बन्दरो की भाँति पर्वतो को लाँघते हुए अपना कौशल प्रदर्शित कर रहे थे। और कुछ लोग वस्त्र का परित्याग करके अपने नग्न तथा गौरवर्ण शरीर के साथ वायु-आन्दोलित हरताल की विशाल चट्टान के सदृश भाग रहे थे। कुछ विशालकाय पुरुष जो भाले-सदृश बाँस के वनो से घिरे थे, जोर-जोर से हाँफते हुए हाथी के बच्चो की भाँति भागे जा रहे थे। नामो की गणना अनावश्यक है। इतना ही समझ ले कि कोई भी मत्री ऐसा नही बचा था जो पशुओ के समान धीरज खोकर भाग चला हो। शत्रु के सैनिको ने नौकर के कन्धे पर बैठकर भागते हुए महामूर्खमत्री प्रतीहार को देख लिया। उस समय वह नगा था और उसके कानो मे कुण्डल चमक रहे थे। शत्रु के सैनिको ने जब उसे दौडाया तो उसका हाल और भी बुरा हो चला। अन्ततोगत्वा उनका (शत्रुओ का) एक पत्थर भृत्य को जाकर लग गया, विवश होकर उस सेवक ने उसे (महामन्त्री को) अपने कन्धे पर से उतार दिया। उसी समय शत्रु के सैनिको ने बढकर उसे पकड लिया। अनेक प्रकार के नवीन बन्धनो मे पडने के कारण वह शोकाकुल हो गया तथा उसका शरीर सिकुड कर शारिका के सदृश हो गया। उस समय वह पूर्ण व्याकुल हो गया और आँखें मिलमिलाकर शत्रुओ की ओर देख रहा था। तब उसने सोचा—मेरी ऐसी स्थिति मे सुज्जि मेरा मान तथा धन तो ले लेगा ही, सम्भवतया इससे भी अधिक कोई अत्याचार न कर बैठे।' तभी शत्रु के सैनिको ने प्रतीहार के शेष वस्त्राभूषणो को भी छीनकर उसे

बिल्कुल नग्न बना दिया तथा अनेक प्रकार से उपहास करते हुए अपने कन्धे पर बैठाकर सुज्जि के पास ले गए। प्रतीहार को नग्नावस्था मे देखकर बलवान् सुज्जि ने अपना मुंह ढंक लिया और उसका तनिक भी सम्मान नही किया। बाद मे अपना वस्त्र पहनाने के लिए उसे दिया। वस्त्र पहनने के पश्चात् उसे घोडे पर बैठाया तथा मधुर बाते करके धीरज बँधाकर खूब सान्त्वना भी दी।

महामन्त्री प्रतीहार को, जिसका अश्व, तलवार और धन सर्वस्व छिन चुका था, खशो ने पकडकर सोमपाल के पास उपस्थित किया। देव-वनिताओ की भाँति क्रीडा करने वाली, विद्युत् के सदृश क्षणिक आभा वाली तथा भाग्य-रूपी मेघ की अनुगामिनी ये सम्पदाये कब किसके पास स्थायिनी रही हैं? अर्थात् कही नही। सोमपाल आदि खश-सेवक की भाँति विनम्र भाव से करबद्ध जिसके सामने खडे रहते थे, जिसका दिया हुआ खाते थे तथा जिसके शरीर पर कुंकुम का लेप करते थे, पाँच ही छह मास की अवधि के पश्चात् वही उनका पूर्वकाल का स्वामी प्रतीहार नग्नावस्था मे खडा था तथा वही खश लोग उसको अवज्ञापूर्ण दृष्टि से देख रहे थे।

पकी श्वेत केशावलि और श्याम मुख के कारण वनचर-सदृश लुल्ल भी इसी प्रकार वनान्तर मे पकड लिया गया। शोकातिरेक से उस समय वह मूक हो गया था। सुज्जि द्वारा अर्पित लक्ष्मक को अपने अधिकार मे करके सोमपाल कश्मीर को हस्तगत समझकर, वहाँ से अपने देश को वापस हुआ। उसके पश्चात् लोठन द्वारा प्रेषित सूर तथा माजिक आदि ने सोमपाल के पास पहुँचकर पुष्कल धन के बदले प्रतीहार की याचना की। परन्तु, जब प्रत्येक प्रयत्न करने पर भी प्रतीहार के अनुगामी डामरो ने उसे लौटाने मे सफलता न पायी तो कश्मीरियो ने सोच लिया कि अब लक्ष्मक को कोई नही छुडा पायेगा और वे लोग हताश हो गये। तत्पश्चात् राजा जयसिंह ने भी पर्याप्त मात्रा मे धन प्रदान करके प्रतीहार को सोमपाल से छुडाने का प्रयास किया। लेकिन प्रतीहार के अधीनस्थ कश्मीर राज्य को प्राप्त करने की इच्छा से उसने उसको नही ही छोडा।

इस प्रकार मन्त्रियो के अपमानित हो जाने और प्रतीहार के पकडे जाने के बाद राजा जयसिंह अपनी राजधानी पहुँचा। ऐसी विषम परिस्थिति मे भी उसने अपना धैर्य नही छोडा। पूर्वकाल मे राजा भिक्षाचर ने सेना की सहायता लेकर जिस प्रकार का द्वैराज्य शासन स्थापित किया था तथा राष्ट्र के कुपित होने पर जिस प्रकार का व्यवहार राजा सुस्सल ने किया था, उसी प्रकार जो सेना राजा ने एकत्रित की उसमे से दस सहस्र योद्धा शीत ज्वर के कारण पीडित होकर मृत्यु को प्राप्त हो गये।

उस समय देश मे शान्ति एक मुहूर्त्त तक को भी स्थापित नही हो रही थी। चारो दिशाओ मे बन्धु-बान्धवो का कराहपूर्ण रुदन तथा शवो के साथ बजने वाले वाद्यो की ध्वनि मात्र ही सुनायी पडती थी। भीषण गर्मी पडने के कारण सभी व्यवहार एक प्रकार से समाप्त हो चले थे और इस प्रकार वह अराजकता का काल उपस्थित हो चला था। देश-देशान्तर से आगत कश्मीरियो के निवास के कारण समृद्ध लोहर भी अब एक राजद्वार-सा बन गया था।

अचानक ही काकतालीय न्याय से लोकोत्तर श्री की प्राप्ति के कारण लोठन की सम्पदा अब कुबेर के सदृश हो चली। उसके आकार, उसकी चेष्टा एवं उसकी साम्यवृत्ति के प्रभाव से उसके भ्रातृव्य, भृत्य (सेवक) तथा पुत्रादि सभी जन, समानत लोहर राज्य का सुखभोग कर रहे थे। अनुचित स्थल मे धन-व्यय करने मे प्रवीण, तथा उपयुक्त स्थान मे सँजो कर रखने वाला धनी लोठन वृद्धावस्था आने पर निष्काम-कर्मा बन गया।

छाया यो तो स्वतन्त्र रहती है, लेकिन धूप के सयोग से वही शताधिक रूप प्रदर्शित करती है। ठीक उसी प्रकार दुख भी निरकुश होता है परन्तु सुख के साथ, वही उसमे नाना प्रकार की पीडाये उत्पन्न करके व्यक्ति की चित्रवृत्ति को ही परिवर्तित कर दिया करता है।

अभ्युदय-प्राप्ति के कुछ ही मासोपरान्त लोठन का एक मात्र पुत्र दिल्ह स्वर्गगामी हो गया। एक मात्र पुत्र की मृत्यु के कारण उस शोकरूपी शकु से आहत उसकी पत्नी मल्ला भी रातदिन पुत्र के लिए शोक करती-करती मृत्यु को प्राप्त हो गई। अभिन्न भावो से युक्त पत्नी तथा श्रेष्ठ गुणो वाले अपने पुत्र की मृत्यु के पश्चात् अपनी सम्पत्ति का कोई भी उपयोग लोठन को नही दिखायी दिया। इस कारण अब उसके भी सभी व्यवहार अन्य राजाओ की ही भाँति रुक्ष हो गए। अभी तक तो वह लक्ष्मी के वशीभूत होकर उसकी मोहनी मे पडकर धन मे ही सुख की कल्पना किए हुए था।

उसके पश्चात् समय के पारखी राजा जयसिह ने निर्धनता-ग्रस्त होकर भी, छत्तीस लाख दीनार सोमपाल को देकर महामन्त्री लक्ष्मक को बन्धन से मुक्त करा लिया। उसके बन्धनमुक्त होकर लौटने पर, राजा की मान्य-वृद्धि समझकर नागरिको ने महामन्त्री लक्ष्मक का स्वागत पुष्प-वर्षा द्वारा किया। उसे प्राप्त कर लेने पर किसने यह नही सोचा कि राज्य की लक्ष्मी पुन वापस आ गयी हैं? तदनन्तर लक्ष्मी की महिमा के कारण राजा जयसिह को पराजय की बात विस्मृत हो गयी तथा निग्रह और अनुग्रह के गुणो की क्षमता से सम्पन्न उसका प्रभुत्व पुन चमक उठा। सुज्जि धन के लोभ मे पडकर राजा लोठन का मन्त्रित्व करने लगा, उसे अपना समस्त कौशल विस्मृत हो गया। उसने मागिक की पुत्री का हरण करके लोठन की गृहस्थी पुन बसायी। ऐसा करने से सुज्जि ने लोठन के उन सभी दुखो को दूर कर दिया, जो उसे अपनी प्रियतमा मल्ला के मरण के कारण उठाने पडे थे।

उसके पश्चात् वह राजा पद्मरथ को भलीभाँति समझा-बुझाकर उसकी कन्या का विवाह कराने के लिए लोहर ले आया और इस प्रकार उसने लोठन का सम्बन्ध बडे-बडे लोगो के साथ स्थापित कराकर अपने मन्त्रित्व-पद के ऋण से मुक्ति पा ली। फिर डामरो तथा नये राजा लोठन के अनेक प्रार्थना करने के पश्चात् उसने कश्मीर की राजधानी मे प्रविष्ट होने का विचार किया। तदनुसार सुज्जि ने योजनाबद्ध सभी राजाओ का एक सुदृढ सगठन तैयार कर लिया। और सुस्सल-पुत्र राजा जयसिह ने शत्रुओ को धोखा देने के विचार से एक नयी नीति अपनायी। उसी नीति से बुद्धि-सम्पन्न, गम्भीर, वह द्वारावीश उदय सभी अधिकार रखते हुए भी एक निर्धन बन गया। ऐसी स्थिति मे अकिंचन बनकर भी शत्रु-पक्ष के लोगो को दान-मान से पूर्णतया सम्मान प्रदान करके अपने राजा जयसिह का काम सम्पादित करता था।

अब वह लोहर से थोडी दूर पर स्थित वनप्रस्थ नामक स्थान पर रहते हुए, उदय ने सूत्र-सचालन करके छोटे-मोटे युद्धो से शत्रु-सेना मे पारस्परिक विरोध उत्पन्न कर दिया। दूसरी ओर मांजिक, इन्द्राकर और अन्य राजाओ के हृदय मे उसने लोठन के अभिप्राय से भय की प्रतीति उत्पन्न कर दी। सुज्जि के सारे कार्य-कलाप को देखकर सभी राजे सशकित रहते, कारण, लोठन ने सुज्जि को यह आदेश 'हमारे शत्रु-षड्यत्र करनेवालो को मार डालना' द्वारा पूर्ण निश्चिन्तता प्राप्त कर ली थी।

उन भयभीत राजाओं के पास राजा जयसिह ने सन्देश भिजवाया कि "आप सब के कल्याण के लिए मैं सुस्सल की रानी सेहजा से उत्पन्न पुत्र मल्लार्जुन को लोहर का राजा बना दूँगा। इस

कार्य को पूर्ण करने के लिए आप लोग राजा लोठन को प्रेमा की भाँति अकस्मात् ही पराजित करे। राजा जयसिंह ने यह सन्देश इस व्याज मे भेजा कि अनधिकृत लोहर का दुर्ग पुनः मेरे अधिकार मे आ जाय। अविश्वास रखते हुए भी उन राजाओ ने उसकी इस बात पर विश्वास कर लिया।

जब लोठन को यह मालूम हुआ कि मल्लार्जुन षड्यन्त्रकारियो के साथ हो गया है तो उसने उसी के साथ अन्य षड्यन्त्रकारियो को जेल भेज दिया। तदोपरान्त मशकित राजा लोठन ने राजा सुस्सल की रखैल रानी के पुत्र विग्रहराज को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त कर दिया। उपायपटु लोठन ने व्याज से अपने चाचा के साथ सन्धि करके खोये हुए राज्य को पुन. प्राप्त करने के लिए अनेकानेक उपाय प्रारम्भ कर दिया। सुज्जि के प्रयासो मे राज्य मे शान्ति स्थापित हो जाने पर उसने शूर को विदा करके कुछ मास तक शान्तिपूर्वक निवास किया। सुज्जि, राजा पद्मरथ भी जिस अविवाहिता कन्या को विवाह कराने के लिए लोहर ले आया था, उसके विवाह का प्रबन्ध करने के लिए जब उसकी तेजस्विनी माता पहुँची तो यह समाचार जानकर लोठन अपने मन्त्रियो के साथ उससे मिलने के लिए दर्पितपुर को प्रस्थित हुआ। अब माजिक तथा अन्य राजाओ को बन्दीगृह से निकल भागने का अवसर मिला और उन लोगो ने कोट्टराज के पद पर मल्लार्जुन का राज्याभिषेक कर दिया। सहायता के लिए उन लोगो ने पहले की ही भाँति ठाकुरो को बुला लिया और दुर्ग मे प्रवेश के इच्छुक जयसिंह के सेवकों को उन सबने मार्ग मे ही रोक रक्खा।

इस भाँति लौकिक वर्ष ४६०० की फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी को छह वर्ष पर्यन्त राज्य भोगने के पश्चात् लोठन का राज्य जितनी शीघ्रता से मिला, उतनी ही शीघ्रता से चला भी गया। समाचार पाकर मूर्ख लोठन ने सोचा "उस अविवाहिता कन्या के साथ मैंने न तो विवाह किया तथा न एकत्रित धन के व्यय द्वारा अन्य सुखभोग ही प्राप्त किया। अब वही धन अन्यो के उपयोग मे आयेगा।" तथापि अट्टिलिका आदि स्थानो मे घूमता हुआ लोठन, शक्तिहीन होने पर भी सुज्जि की सहायता से कुछ अवशिष्ट धन प्राप्त करने मे सफल हो गया।

उसके बाद, राजा जयसिंह के सेवको को तिरस्कृत करके माजिक ने मल्लार्जुन को लोहर का निष्कण्टक राजा बना दिया। नवयुवक राजा मल्लार्जुन इतना अधिक व्ययशील था कि एक बार खाने के लिए सुपाडी न प्राप्त होने पर पान मे मोती डाल-डालकर उसने लोगो को खाने के लिए दिया। इस प्रकार उस लम्पट राजा को, जब बुद्धिमानो ने धूर्तो आदि मे धन का अपव्यय करते देखा तो उसकी बडी निन्दा की। उस अत्यधिक अपव्ययी राजा मल्लार्जुन ने, प्रजा को कष्ट पहुँचाकर, सुस्सल द्वारा सचित धन को अपनी इच्छानुसार भलीभाँति लुटाया। अभिमानी उष्ण-प्रकृति और दुर्बुद्धि उस राजा मल्लार्जुन ने अच्छे और बुद्धिमान् जनो को राज्य से निष्कासित करके वेश्याओ, चारणो, द्रोहियो, विटो और चेटको (तन्त्र-मन्त्रवालो) आदि को प्रश्रय प्रदान करने लगा। प्रजा को कष्ट देकर एकत्र किया हुआ राजा का धन, शत्रुओ के उपभोग मे आता है या अहितकारी हस्तगत करते हैं अथवा अग्नि द्वारा भस्म कर दिया जाता है। प्रजा-पीडन द्वारा अर्जित जयापीड के धन को उत्पल आदि उन दासी-पुत्रो ने लुटाया, जिन्होंने उसकी नानी का वध किया था। राज्य वालो को कष्ट देकर राजा शकर वर्मा द्वारा सचित धन का उपयोग उसकी पत्नी के यार प्रभाकर आदि ने किया। राजा पगु (निर्जितवर्मन) की कामातुर पत्नियो ने पाप से अर्जित धन को सम्भोग करने वाले सुगन्धादित्य को प्रदान कर दिया।

अत्यधिक मात्रा में एकत्र किया हुआ राजा यशस्कर का धन उसकी कामातुर पत्नियों द्वारा उन लोगों में बाँटा जाता था जो आलिंगन करके उनके साथ सम्भोग करते थे। पर्वगुप्त के पुत्र क्षेमगुप्त की, जब पूर्वजों के एकत्रित धन की प्राप्ति के पश्चात् मृत्यु हो गयी तो वह धन उसकी पत्नी के यार तुंग आदि को मिला। राजा संग्रामराज ने कंजूसी करके जो बहुत-सा धन संचित किया था, उसे ब्रह्मपूह आदि उन लम्पटों ने लूटा जो श्रीलेखा के मुखकमल का रस भौंरे बनकर पान करते थे। सारे संसार से लाकर एकत्र की गयी अनन्तदेव की सम्पत्ति अग्नि में जलकर भस्म हो गयी। राजा कलश ने जिस कोष को अनेकानेक अधम उपायों द्वारा एकत्रित किया था, उसे उसके पुत्र ने कुपात्रों में तथा उसकी पत्नी ने अपने यारों पर व्यय कर दिया। हर्षदेव जो धन का संचय करने से कभी भी तृप्त नहीं हुआ, वह अपने महल स्त्री, पुत्रादि और समस्त धन के साथ अग्नि में जलकर भस्म हो गया। धर्मात्मा चन्द्रापीड, उज्ज्वल तथा अवन्तिवर्मा आदि के कोष पर कभी किसी प्रकार की कोई आँच नहीं, आयी, क्योंकि वह न्यायोचित ढंग से अर्जित किया गया था। नये राजा मल्लार्जुन के राज्य में चोरों षड्यन्त्रकारियों, सामन्तों तथा वेश्याओं और धूर्तों ने खुल्लमखुल्ला मनमानी लूट की।

राजा जयसिंह की योजना जब उधर सफलीभूत न हो सकी तो शत्रुओं की आँख बचाकर उसने लाहुर पर आक्रमण करने के लिए चित्ररथ को भेजा। द्वाराधीश और पादाग्र के अधिकार को पाकर चित्ररथ अनेक सामन्तों के साथ चला और फुल्लपुर में पड़ाव डाल दिया। उस समय लाहुर के किले में मल्लार्जुन की एक विशाल सेना पड़ी अवश्य थी, परन्तु उस सेना तथा उसके अनुगामियों ने युद्ध जीतने में कोई उत्साह नहीं दिखाया। नये राजा का विश्वासी संवर्धन नामक सेवक ने किले पर चढ़कर कुछ जानकारी करनी चाही, परन्तु उसको मल्लार्जुन के अनुयायियों ने मार डाला। युद्ध के असाध्य होने पर भी मल्लार्जुन के समस्त अनुयायियों ने एक ऐसे किले में प्रवेश कर लिया जहाँ रहने से शत्रु के आक्रमण का भय नहीं था। उधर चित्ररथ की सेना के पीछे कोष्ठेश्वर ने अपनी छावनी डाल दी।

उस समय कर देने का वचन देकर मल्लार्जुन ने चित्ररथ से सन्धि कर ली तथा उसका स्वागत-सत्कार करने के लिए अपनी माता को भेज दिया। अपने वैधव्योचित परन्तु वैभवपूर्ण वेषभूषा से उसकी माता ने चंचल मन वाले कोष्ठेश्वर आदि सबमें उत्कण्ठा संचारित कर दिया। माता के वापस आने के पश्चात् मल्लार्जुन ने दिये हुए वचनानुसार द्वाराधीश चित्ररथ को कर प्रदान कर दिया। उसके पश्चात् राजमाता की नेत्रप्रीति से आकृष्ट होने के कारण, उसके दर्शन के बहाने, कोष्ठेश्वर अपने कुछ अनुगामियों के साथ किले पर चढ़ा। चित्ररथ करस्वरूप प्राप्त धन को लिए हुए कोष्ठेश्वर के साथ नीचे उतरा एवं फिर वहाँ से राजधानी में राजा जयसिंह के पास पहुँचने के लिए चल पड़ा। तत्पश्चात् आहरणशील द्वाराधीश के साथ राजा ने मन्त्रणा करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए एक नयी नीति का प्रयोग किया।

इस प्रकार आक्रमण का भय समाप्त हो जाने तथा लोठन के पद्मरथ के पास चले जाने के बाद राजा मल्लार्जुन को पैर फैलाने का कुछ अवसर मिला।

उसके पश्चात् उसने पद्मरथ की पुत्री सोमला के साथ तथा फिर आगे चलकर नागपाल की कन्या के साथ विवाह कर लिया। अहंकार के वशीभूत वे मूढ सोमपाल आदि राजे अपने कपट-भाव को छिपाकर सेवक का व्यवहार प्रदर्शित करते हुए उससे वेतन लिया करते थे। इसी रीति से अन्य

डाला। भाग्यवशात् जब इस प्रकार कई शत्रु स्वत. समाप्त हो गए तो राजा जयसिंह ने कोष्ठेश्वर से सन्धि कर ली तथा विजय प्राप्त करने के लिए सुज्जि को लोहर भेज दिया।

लोहर का रास्ता वहाँ से तीन घण्टे का ही था, अत वह शीघ्र ही चलकर वहाँ पहुँच गया। उसके पहुँचने से पूर्व ही कोष्ठकेश्वर ने वहाँ पहुँचकर मल्लार्जुन के अश्वों पर अधिकार करके उसे व्याकुल कर दिया था। ऐसी दशा मे आन्तरिक फूट के कारण वह सुज्जि का सामना करने मे समर्थ न हो सका और कोप को लेकर किले से भाग गया। राज्य-च्युत होने के कारण मार्ग मे उसके धन को चोरो ने लूट लिया, जो शेप बचा उसकी रक्षा करता हुआ वह अवनाह की ओर चला। इस प्रकार लौकिक वर्ष ४२०८ की वैशाख कृष्ण द्वितीया को, १८ वर्ष राज्य भोगने के पश्चात् मल्लार्जुन राज्य-च्युत हुआ।

पहले जिन शिवजी ने कृपणता त्याग कर, उदारता से अपने मस्तक पर सर्प होते हुए भी चन्द्रमा की किरणो से निस्सृत अमृत जिस व्यक्ति को पिलाया, तत्पश्चात् अपने ही हाथो उसका सिर काट लिया। फिर उस सिर कटे व्यक्ति का उपकार कौन कर सकता है ? कमलपत्र पर का जल-विन्दु मोती का भान कराता है। इस मिथ्या ज्ञान से यही समझ मे आता है कि ईश्वर की कोई एक ऐसी मोहनी शक्ति है जो उसी के अधीन रहकर धरती-तल के प्राणि मात्र को मोहित करती रहती है।

कुछ लोग वनो मे रहकर अपने अद्भुत शस्त्रो द्वारा प्राणियो का वध करते हैं, कुछ जीव नाक से सूँघकर ही प्राणियो के प्राण हरते हैं, कुछ जिह्वा मे तथा कुछ नेत्रो से ही देखकर मार डालते हैं। लेकिन, राजाओ के महल मे कुछ ऐसे व्यक्ति भी रहते हैं जो अपनी वातो द्वारा ही लोगो का वध कर देते हैं। राजमहल के ये पातकी जीव तब तक किसी को कोई हानि नही पहुँचा सकते जब तक उनकी सुनी न जाय, जैसे सूर्य-किरणे पास सामने पडे हुए ईंधन-राशि को तब तक नही जलाती जब तक सूर्यकान्त मणि के सयोग से उसमे आग न लगे। यदि उन कुटिल व्यक्तियो की राजा के यहाँ सुनवायी होने लगे तो सूर्य की तेज किरणो की ही भाँति तपकर वे सबको भस्म कर डाले। उसके बाद जब सेनापति सुज्जि ने कपिल के पुत्र हर्षट को लाहुर किले का मण्डलेश बना दिया और कोट की भलाई के लिए अच्छे व्यक्तियो की नियुक्ति कर दी, तब दूसरी ओर स्वभावत दुर्जन कुछ व्यक्ति उस मण्डल को फिर से ध्वस्त करने के लिए षड्यन्त्र करने लगे। इस प्रकार उसमे से कुछ डाही लोग राजा के पास पहुँचे और अपनी चुगली की बातो द्वारा उसके हृदय को कलुषित कर डाला।

राजा होने पर कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपने दृढ विचारो के अनुसार कार्य कर सके। कुछ काल के अनन्तर वे राजे धूर्तों की बातो से प्रभावित होकर बच्चे की भाँति उनके सकेत पर नाचने लगते हैं। बाल्य-काल मे ही जब वे धूर्त मिथ्या प्रशसा करके राजा को जड बना देते हैं तो प्रौढावस्था मे उसका सुधार सम्भव नही, जैसे शुभ्र मणि को श्यामवर्ण नही किया जा सकता। अपने सेवकों के अत करण की बात राजा नही जान पाते। परिणाम यह होता है कि निरपराध राष्ट्र दु ख का भागी बनता है। असाध्य कार्य मे हाथ लगाने से लक्ष्मक आदि के सदृश व्यक्तियो की हँसी ही होती है। इसलिए राजा के विश्वस्त लोगो (व्यक्तियो) को सुज्जि ने लोहर जीतने के लिए नियुक्त किया। इस कार्य के अद्भुत रीति से पूर्ण हो जाने के बाद उन पापी राजपुरुषो ने अपनी पिशुन विद्या द्वारा सुज्जि पर ब्रह्मास्त्र-सदृश अमोघ शस्त्र चलाया। उन लोगो ने अपने मनोविकारो को छिपाकर गम्भीर शब्दो से पूर्ण वार्त्तालाप द्वारा राजा के हृदय को कलुषित कर दिया और सेनापति सुज्जि को इसका पता

ही न चल सका । फिर स्वभावत विद्रोही उस सुज्जि के मन मे शका कैसे हो ? उसने तो राजा का बराबर उपकार ही किया था, उस पर अविश्वास कैसे हो सकता था ? लेकिन उन धूर्तों के षड्यत्र के कारण राजा जयसिह का हृदय इतना विपरीत हो चुका था कि सुज्जि का उचित कार्य भी उसको अच्छा नही मालूम होता था, जैसे विरक्त कामी को स्त्री का वार्तालाप अच्छा नही लगता।

दूसरी ओर सुज्जि इस अभिमान से कि मैने राजा के दो अनधिकृत राज्यो पर उसका अधिकार स्थापित कराया है, स्वच्छन्द व्यवहार करता था। राजा के निरकुश सेवक एक ओर अपने बन्धु-बान्धवो के साथ गृह-हरण आदि अपकारो द्वारा प्रजा को सता-सताकर व्याकुल करने लगे ।

कोष्ठेश्वर अपने अपराधो के कारण राजा पर विश्वास नही करता था और अपने चाचा मनुजेश्वर से सतर्क रहता था। कारण कि उसने एक बार चुगली करके राजा को उस पर रुष्ट कर दिया था। सुज्जि के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लेने के कारण प्रजा को कष्ट पहुँचाकर धन का सग्रह कर रहा था। इससे राजा का उसके भी ऊपर विश्वास नही रह गया। राजा के मन्त्री धन्य और उदय सुज्जि की सहायता से अप्रत्यक्ष रीति द्वारा पुष्कल धन ले जाकर राजपुरी मे अपनी स्थिति सुदृढ कर रहे थे। कारण यह था कि बाल्य-काल मे ही शीतज्वर से सभी परिवार वाले मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे तथा मल्लार्जुन के राज्य-च्युत होने पर लम्बी धनराशि उन्हे हस्तगत हो चुकी थी। सुज्जि से द्वेष रहने के कारण, एक समय महामन्त्री लक्ष्मक ने दूत भेजकर जिस सज्जक को बुलवाया था, वह राजपुरी जा पहुँचा। तब सुज्जि और चित्ररथ के समझाने से राजा ने उसे कश्मीर आने की अनुमति नही दी। उसके पश्चात् मल्लार्जुन ने उसे दूत भेजकर अपने यहाँ बुलवा लिया।

मार्ग मे जब वह जा रहा था तो किसी सामत से उसका विवाद हो गया और उसने उसको घायल करके उसका सारा धन छीन लिया। उसके लोहर पहुँचने पर मल्लार्जुन के निर्णायक मन्त्रियो ने यह सोचकर कि राजा उतना सोना न दे सकेगा, जितना इसे देने का निश्चय किया गया है, अत उसकी नियुक्ति का विरोध कर दिया। तब पराधीन राज्य तथा रिल्हण के सौजन्य से प्रच्छन्न रूप मे सज्जक को कश्मीर बुलाया गया तथा वह तुरन्त आ गया। राजपुरी से सज्जक जब चला तो उसे शका हुई कि पहले की भाँति मार्ग मे फिर आक्रमण न हो जाय ? परन्तु ऐसी कोई घटना न घटी जबकि मार्ग शत्रुओ से पूर्ण था। और वह सकुशल कश्मीर पहुँच गया।

कान्यकुब्ज, गौड आदि राजाओ के यहाँ सज्जक को स्पर्धापूर्वक पुष्कल सम्मान प्राप्त हुआ। लेकिन, अपने देश मे मन्त्रियो के नियत्रण के कारण उसे कोई भी सम्मान न मिला। इससे उसे महान् कष्ट हुआ और राजधानी के नागरिको ने देखा कि उसके नेत्रो मे आँसू छलछलाये हुए थे। तत्पश्चात् राजा जब सब मन्त्रियो के साथ नागरिको को दर्शन देने के लिए आया तो उसे भी सामान्य रीति से अपने हाथ से पान का बीडा दिया। सज्जक अकिंचन होते हुए ख्याति प्राप्त कर चुका था। इसलिए जब वह घर से राजदरबार की ओर चलता तो हजारो की सख्या मे दर्शक उसके पीछे-पीछे चलने लगते और यह देखकर उसके शत्रु काँप उठते थे। सज्जक का वार्तालाप, उसका आचरण एव उसके अलौकिक स्वरूप को देखकर मनुष्यो की पहचान करने मे दक्ष सुज्जि अन्दर ही अन्दर कम्पित होने लगा। वह सोचता 'जब राज्य मे इतना भीषण भ्रष्टाचार व्याप्त है तो यह बेचारा अपनी आकृति द्वारा तो शान्ति-व्यवस्था स्थापित कर नही सकता। सुज्जि ने अनेक देशो मे महान् वीर तथा प्रभावशाली व्यक्ति देखे थे। अत मन ही मन सज्जक की उनसे समता करके शान्ति प्राप्त की। तत्पश्चात् कदाचित् भवितव्यता से प्रेरित होकर अथवा अभिमानवश सुज्जि सज्जक की निन्दा करने लगा। जब सुज्जि

अनेक राजवशोद्‌भूत धूर्त, कवि, गायक, गप्पी, योद्धा एव चारण आदि नये राजा मल्लार्जुन को लूटा करते थे। कारण यह था कि उसकी बुद्धि प्रारम्भ से ही कच्ची थी, वह मारा-मारा इधर-उधर घूमता था, और जब वह राजा बना तो धूर्तों ने उसकी मिथ्या प्रशसा करके उसे सर्वगुण-सम्पन्न घोषित कर दिया।

उसकी आकृति केतु के सदृश अमगल सूचक तथा मुखमण्डल तेजविहीन रहता था। अनिष्ठुर आकृति को छोडकर उसमे किसी भी प्रकार का सौष्ठव न था। इस बीच राजा जयसिह ने यह सोचकर कि सुज्जि कही मल्लार्जुन से मिल न जाय, उसे अपने पक्ष मे मिला लिया।

महामन्त्री प्रतीहार ने, जो निर्वासन एव निज पक्ष में प्रवेश कराने के कार्य मे अत्यन्त निपुण था, सुज्जि का सग्रह करने मे तात्कालिक और विशेष शक्ति का प्रदर्शन किया। उसने वह माला जो राजा द्वारा अर्पित तथा सेनाधिकार की द्योतक थी, उसे समर्पित कर दी। लेकिन, जज आदि के कार्यों का अधिकार बिना माला के ही उसे प्रदान कर दिया।

उसी समय लक्ष्मक के घर उससे मिलने की इच्छा से सोमपाल आ गया। प्रसन्नचित्त लक्ष्मक ने जोश मे आकर अपनी जूटस्रज सुज्जि को दे दी। उस माला की प्राप्ति से सुज्जि का हृदय प्रफुल्ल हो उठा तथा उस जूटस्रज को भविष्य मे सम्पत्ति-प्रदायक वृक्ष के रूप मे समझा। रिल्हण ने राजा के हितो का ध्यान करके उसके द्वारा सुज्जि की नियुक्ति का विरोध किया। यद्यपि उदय एव धन्य उसके मित्र थे। इस प्रकार अपने काम पर फिर से आये हुए सुज्जि को राजा सम्मानित करके उदय और धन्य आदि के पास दायित्व लेने के लिए भेजा। राजा ने प्रत्यक्ष रूप से तो उदय-धन्य आदि को पदच्युत कर दिया था, लेकिन हृदय से नही। उसी समय राजा जयसिह का अपराधी कोष्ठेश्वर दरबारियो से यह जानकर कि अवसर मिलने पर राजा घातकों द्वारा उसका वध करा देगा, तुरन्त वहाँ से भाग गया। उस पर आक्रमण करने के लिए राजा जब मनुजेश्वर पहुँचा तो वहाँ अपने पक्ष के व्यक्तियो मे मतभेद देखकर स्वय विदेश चला गया।

दूसरी ओर लोठन ने कुछ ठाकुरो की सहायता पाकर मल्लार्जुन को वप्पनील नामक स्थान मे बलपूर्वक पकड लिया। वहाँ लोठन मे एक असम्भाव्य पौरुष के दर्शन हुए, जिसने स्वय राज्य-भ्रष्ट होकर भी एक राज्यासीन राजा को बन्दी बना लिया। तत्पश्चात् उसने अट्टिलिका बाजार पहुँचकर घोडो को लूटते हुए मार्ग की चौकियो को भी नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। वह राजराज नामक डामक की प्रार्थना करने पर कश्मीर राज्य-प्राप्ति की इच्छा से क्रमराज में पहुँच गया। वहाँ जब उसे यह पता चला कि किसी लवन्य को चित्ररथ ने मार डाला है, तो वह फिर वप्पनील लौट गया। तदनन्तर अट्टिलिका पर उसने कई आक्रमण किये, जिसका प्रतिरोध लोहर के किले मे रहने वाला मल्लार्जुन नही कर सका। तत्पश्चात् राजा जयसिह पर आक्रमण करने की इच्छा से सुसज्ज कोष्ठेश्वर, लोठन और मल्लार्जुन के साथ अपने भतीजे से एक लम्बी धनराशि दिलाकर सन्धि कर ली। तब उसने जाकर लोहर मे पडाव कर दिया, तथा वहीं से लोठन को साथ करके जयसिह से लडने के लिए कश्मीर पहुँच गया।

मार्ग के अनेक पर्वतो को लाँघता हुआ वह कर्कोटद्रग मे पहुँचकर डट गया। वहाँ के अन्य डामरो ने उसका किसी प्रकार प्रतिरोध नही किया। परन्तु उसी समय क्षिप्रकारी जयसिह ने समस्त उपायो द्वारा कोष्ठेश्वर की यात्रा रोक दी। ऐसे ही अवसर पर भयकर रोग के कारण प्रतीहार लक्ष्मक का अचानक देहावसान हो गया। मनुष्य का जब काल निकट आ जाता है, तो स्वल्प पुण्यशाली

व्यक्तियो की आयु अपरिमित धनराशि व्यय करके भी बढायी नही जा सकती। मृत्यु से दूर रहने की इच्छा से अपने घर के सभी दरवाजे तथा खिडकियाँ बन्द करके लोग उसमे रहते हैं, उसका प्रतिरोध करने के लिए पानी की तरह धन लुटाते हैं, तथापि आज तक यह समझ मे नही आया कि नियति वहाँ कैसे पहुँचती है? इसलिए प्रतीहार की पत्नी अपने कमरे की सफाई करने मे लगी थी, उसे लगता था कि रोगी आराम से सोया है, बेचारी को आभास भी न था कि उसके सिर पर यमराज आरूढ है। उसकी पत्नी ने यह सोचा कि महामन्त्री का ज्वर उतर गया है, अतः नीद आ गयी, परन्तु वास्तव मे इस प्रकार सोते-सोते ही वह मृत्यु को प्राप्त हो गया था। लोठन को साथ लेकर जब काष्ठेश्वर चला गया तो कुछ समय तक लोहर मे लोठन और मल्लार्जुन कोई भी नही रह गया। अपने समीपवर्ती उदयन को मल्लार्जुन ने उसी समय मार डाला। कोष्ठक जो उसकी सुरक्षा का उत्तरदायी था, इस मामले मे मध्यस्थ बन गया। इतना गर्हित अपराध करने पर भी जब मल्लार्जुन ने कोई अनुनय-विनय कोष्ठेश्वर से न की, तो उसने लोठन के साथ अपनी सेना लेकर उस पर आक्रमण कर दिया।

मल्लार्जुन ने कतिपय अश्वारोहियो के साथ चल कर पयोष्णी नदी पार किया और शीघ्र ही शत्रु की भूमि पर पहुँचकर उसकी तमाम सेना को नष्ट कर डाला। उसकी सेना के मुख्य खशो तथा मन्त्रियो को कोष्ठेश्वर ने मार डाला, परन्तु मल्लार्जुन को छोड दिया, यदि वह चाहता तो उस समय उसे भी समाप्त कर देता। राजा जयसिंह के साथ शत्रुता होने के कारण ही उसने उसे छोडा। किले के ऊपर चढकर भी, मल्लार्जुन सम्मान के शिखर से गिर पडा और प्रभाव समाप्त होने के कारण उसे पुनः कोष्ठेश्वर के साथ सन्धि करनी पडी। उसके बाद लोठन को कोष्ठेश्वर ने विदा दे दी, और कुछ समय तक निर्वैर भाव से स्वय वहाँ रहा। परन्तु, मल्लार्जुन ने जो धनराशि देने का वचन दिया था उसे पूरा नही किया। इस कारण उन दोनो मे पुन वैमनस्य उत्पन्न हो गया। फिर उस धनराशि को पूर्ण करने के लिए कोष्ठेश्वर ने, राजा की भाँति अधिकारियो की नियुक्ति करके द्रग चौकी की चुगी स्वय वसूलने लगा और सभी कागज-पत्रो पर अपनी सिन्दूरी मुहर लगवानी प्रारम्भ कर दी। उसके पश्चात् उन दोनो मे क्षण-क्षण पर सन्धि-भग होने लगी, जैसे काँच का कलश लाख से जोड दिया जाय तो वह बार-बार टुकडे-टुकडे ही होता रहता है। लोहरेश्वर मल्लार्जुन ने उसी प्रसग मे रुक्ष बातो तथा नीरस व्यवहार के कारण कोष्ठेश्वर को कुपित कर दिया, और कोष्ठेश्वर ने भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया। तत्पश्चात् कोष्ठेश्वर डामर ने उसकी सेना पर आक्रमण करके उसके समस्त मूल्यवान् शस्त्रास्त्रो एव उच्चकोटि के अश्वो को हस्तगत करके अपनी स्थिति दृढ कर ली। मूढ कोष्ठक ने अपने भीषण एव हठी पुरुषार्थ से मल्लार्जुन को इस प्रकार निष्क्रिय बना डाला कि शत्रु के लिए उसका उच्छेद करना सहज हो गया। उसी परिस्थिति मे राजा मल्लार्जुन ने अपने श्वसुर तथा मुख्य अमात्य माजिक का वध करना निश्चय कर लिया। कारण यह था कि उसकी अभी युवावस्था थी, जिससे कामदेव उस पर आरूढ रहता और वह इसी से मल्लार्जुन की माता का उपपति बन बैठा था। उसी के अनुसार जब माजिक भोजन कर रहा था तभी राजा के सकेत से घातको ने प्रहार करके उसका वध कर डाला। प्रहार होने पर माजिक अपने असिपट को ढूंढता हुआ चिल्लाने लगा। लेकिन, कोई भी सैनिक सहायता के लिए नही पहुँच सका और वह चिल्लाता हुआ धरती पर गिर पडा। माजिक का मित्र इन्द्राकर भी द्रोहाग्नि से वचित न रहा और राजा ने विष देकर उसे मार

मण्डव राज्य में था, उसके विरुद्ध वहाँ किसी ब्राह्मण ने कुछ कटु वचन कह दिए थे। अतएव सुज्जि के अनुयायियों ने उस ब्राह्मण का सर्वस्व लूटकर शृगाल की भाँति प्राणों से मार डाला। यह कुकर्म यद्यपि नगर के बाहर किया गया था तथापि नागरिकों में उसके प्रति घृणा के भाव जाग उठे।

उन्हीं दिनों कमलिय आदि ने एक नगण्य एवं कर्मठ जन को, अभिमानवश अपने साथ मिला लिया। ईर्ष्या के कारण सुज्जि ने सोचा 'भले ही यह सत्यपरायण हो, लेकिन मेरे लिए अनुग्रह करनेवाला नहीं हो सकता।' इसलिए उसने उसको एक चारण की कोटि में ही रखा, आगे बढ़ने का अवसर नहीं प्राप्त होने दिया। कमलिय आदि के साथ यौन सम्बन्ध होने से रिल्हण भी सुज्जि की आँखों में खटकने लगा। साधारणतर कारणों से ही सुज्जि एवं कमलिय आदि के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गया और वह फिर दुष्टों और पिशुनों के कारण अनेक शाखा-प्रशाखाओं के रूप में विस्तृत हो गया। स्वभावतः अभिमानी सुज्जि की दर्पभरी बातों को सुन-सुनकर महदेव के पुत्र उल्हण ने उस मतभेद को और भी उग्र रूप दे दिया। उल्हण ने ही शनै-शनै राजा जयसिंह के भी हृदय को विषाक्त कर दिया, जिससे जयसिंह भी यह सोचकर कि 'सुज्जि कृतघ्न है तभी अपनी स्थिति का ध्यान न करके मेरी समानता करता है' रुष्ट रहने लगा।

अब राजा रिल्हण से भी शंकित रहता था, और स्वतन्त्र रूप से वार्तालाप तथा मन्त्रणा के अवसर पर उसे दूर ही रखता था। स्वामी का जब इस प्रकार का रुख देखा तो रिल्हण ने धूर्तता एवं दुर्लक्ष्यपूर्ण ऐसी माया रची कि उससे वह धैर्यवान् भी प्रतीत होता तथा शत्रुओं में भय का सञ्चार भी होता था। समस्त शक्ति का प्रयोग करके रिल्हण ने सज्जक की सभी आकांक्षाएँ पूर्ण करके, उसे अपना मित्र बना लिया। सुज्जि एवं सज्जक की योजनाबद्ध आपसी टक्कर से राजधानी में क्षण-प्रतिक्षण उथल-पुथल की स्थिति उत्पन्न हो जाया करती थी।

राजा दरबार में जब एक बार महीमान उत्सव मनाया जा रहा था, सुज्जि ने उस अवसर पर अपने प्रतिपक्षी जन को अपमानित करने की इच्छा से सज्जक और महाराज जयसिंह की ओर कठोर आक्षेप करके क्षोभ उत्पन्न कर दिया। सुज्जि की गर्दन पकड़कर द्वाररक्षक ने उसी समय नीचे ढकेल दिया। इससे क्रुद्ध होकर सुज्जि ने द्वाररक्षक को एक पत्थर उठाकर मारा तथा गालियाँ दीं। उस अवसर पर उपस्थित सभी सभासद चित्रलिखित से सन्न रहे और सोचने लगे 'देखें राजा इस समय क्या करता है?' राजा ने भी उस काण्ड की उपेक्षा करके दोनों में परस्पर मेल करा देने की चेष्टा की। उसके पश्चात् सान्त्वना देकर राजा ने सुज्जि को अपने निकट बिठाया और ध्यानपूर्वक उसे देखता हुआ सोचने लगा- 'इस व्यक्ति के न रहने पर मेरा सर्वस्व नष्ट हो जायगा।' उस समय ही मण्डव राज्य के सभी ब्राह्मणों ने घोषित करके कि "हम सुज्जि को सेनापति के पद पर नहीं देखना चाहते" और अनशन प्रारम्भ कर दिया। दूसरी ओर मन्त्रणा में दक्ष रिल्हण ने रात भर में ही अपने शत्रु सुज्जि को भयभीत करने की इच्छा से उसके शत्रु पञ्चचन्द्र को ससैन्य बुला लिया। ऐसी स्थिति में सुज्जि सजपाल तथा विशाल सेना से युक्त चन्द्रपाल से भयभीत होने लगा। इन दोनों के अतिरिक्त वह अन्य सबको तो नगण्य की कोटि में गिनता था।

अब वह आक्रमण की शंका से त्रस्त हो गया और एक रात्रि को कुछ अश्वारोहियों को अपने साथ लेकर वह घर से चल पड़ा और सारी रात जागकर सेना एकत्रित करने की योजना बनाता रहा। सुज्जि अब राजा जयसिंह का पूर्ण रूप से विद्रोही हो गया। उसी समय कोष्ठेश्वर भी मित्रता

करके उसका सहायक बन गया। मनुजेश्वर को भी अपनी ओर मिलाने के लिए सुज्जि ने पूर्ण प्रयत्न किया, लेकिन उसको इस प्रयास मे सफलता न मिल सकी। अन्त में रुष्ट होकर उसने उसका वध कर दिया, और अब वह राजा का एक प्रबल शत्रु हो गया। उस दिन की ही अर्द्धरात्रि मे सुज्जि के विरोधियो ने राजा के पास पहुँचकर विद्रोह का सारा कारण एव उसकी सुरक्षा-व्यवस्था का पूर्ण विवरण बता दिया। वह राजा जो मूर्खों की भाँति सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझ लेता है, उसका अर्थ नष्ट हो जाता है, और तब अनर्थ समुदाय उसे पीडित करने लगते है।

तत्वज्ञान से हीन जन दीप्तिमान रत्न को भी अग्नि-स्फुलिंग समझ बैठते हैं और उसका परित्याग कर देते हैं। उन अज्ञानान्धो को अन्य की वस्तु मे निज के भाव दीख पडते हैं और वे मिथ्या को तथ्य एव तथ्य को मिथ्या रूप मे ग्रहण करने लग जाते हैं। उसी प्रकार राजा जयसिंह को सुज्जि के वध के अतिरिक्त उसकी दुष्टता के प्रतिकार के लिए कोई उपाय नही सूझा एव उसने सुज्जि की हत्या का कार्य सजपाल को सौंप दिया। लेकिन, धैर्यशाली सजपाल एक कायर की भाँति उसे मार डालना उचित नही समझता था। इसलिए वह कलहादि के द्वारा उसकी हत्या करने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

अब दोनो पक्षो की ओर से अनेक प्रकार की माया के प्रयोग होने लगे। उसे देख-देख कर राज्य के नागरिको के लिए क्षण-क्षण पर त्रास एव उल्लास का वातावरण उपस्थित होने लगा। रात का समय आने पर प्रहरियो को चिन्ता होने लगी कि सुज्जि किसी भी समय कुछ भी कर सकता है। और इसलिए राजप्रासाद में पूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था की जाने लगी। अन्ततोगत्वा राजा ने रिल्हण की मत्रणा से सुज्जि को निर्वासित करना निश्चय कर लिया, क्योंकि इसके अतिरिक्त अन्य कोई समीचीन मार्ग भी न था।

निर्वासन का निर्णय हो जाने के पश्चात् द्वाराधीश उदय ने राजा को बडी सतर्कतापूर्वक समझाते हुए कहा "सहसा ऐसा हो जाने पर राज्य की प्रजा का एक वर्ग क्षुब्ध हो उठेगा।" आगे फिर कहा "राजन् सुज्जि उल्हण आदि की प्रेरणा से इस प्रकार के उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार किया करता है। वास्तव मे वह चाहता है कि उसका कोई भी प्रतिस्पर्धी न रहे।" सजपाल ने दूसरी ओर, मित्रताभिलाषी सुज्जि के साथ कोशपानपूर्वक मैत्री स्थापित कर ली तथा रात में राजा के पास पहुँच कर समस्त वृत्तान्त बताया। यदि आप मेरे जैसे निद्रोही एव उपकारक जन की बात स्वीकार करे तो रिल्हण को निर्वासित कर दे और धनाढ्य चित्ररथ को बन्दी करा ले। राज्य-क्रान्ति के अवसर पर लोहर मे जो भी कोष एव अश्व-समुदाय श्रीमान् का अपहरण कर लिया गया है, वह सब कोष्ठेश्वर का वध करके मैं वापस ला दूँगा। कार्य के अवसर पर ही सम्बन्ध स्थापित करने वाला जन मैं नही हूँ, बल्कि स्वामी की कार्यसिद्धि हेतु मैं अपने प्राणो तक को तृण के सदृश मानने वाला व्यक्ति हूँ। इस मध्य आप अपने सभी प्रतिस्पर्धी राजाओ पर विजय प्राप्त करके शान्तिपूर्वक राज्य-लक्ष्मी का उपभोग कीजिए। रिल्हण के स्थान पर अपनी सहायता के लिए आप द्वाराधीश उल्हण को नियुक्त कर ले और जब भी कार्याधिक्य हो तो मुझे भी बुलवा लिया करे। कारण यह कि उल्हण का कथन है 'यदि हम और तुम एकमत होकर कार्य करे तो ससार का कोई भी राजा हमारे महाराज की टक्कर नही ले सकता।' तत्पश्चात् रिल्हण से मत्रणापूर्वक सजपाल ने कहा "यदि राजा हमारे कथन के अनुसार कार्य नही करता तो उसके स्थान पर किसी अन्य उत्तराधिकारी को हम नियुक्त कर देंगे।" इसके

पश्चात् गुणों के प्रसार को वाणी से नियन्त्रित तथा दन्तावलि की किरणों को बिखेरते हुए लम्बी साँस लेकर राजा ने कहा "जैसा कि आप कह रहे हैं उस महाभिमानी सुज्जि पर द्रोह, सन्धि तथा उदासीनता आदि किसी भी नीति का प्रयोग करने से कार्य नहीं सिद्ध हो सकता। उसको यदि निर्द्वन्द्व छोड दिया जाय तो फिर उसका उच्छेद करना कठिन नहीं असम्भव-सा हो सकता है और उसके विषय मे सोचना तक विनाश-क्षणो को आमन्त्रित करना होगा। लेकिन, क्रोधावेश मे अथवा एक निद्रोही जन की हत्या के विचार से मुझे अत्यन्त कष्ट हो रहा है। अत आप लोग जैसा उचित समझे वैसा करे। आप लोगो ने जो मन्त्रणा दी है, वह मुझ-जैसे वीरो के लिए अशोभनीय है। इतना अवश्य है कि इस मन्त्रणा को कार्यरूप मे परिणत कर देने पर पुष्कल धन का लाभ होगा। हम लोगो की जडता अथवा अपरिहार्य पुण्यवशात कुछ ऐसे गुणहीन जन हमारे धन का भोग करने के लिए उत्पन्न हो जाया करते हैं। इस प्रकार के मूर्ख जनो को एकत्र करने वाले हम राजाओ के लिए यही प्रायश्चित है कि अपनी मूर्खता का फल भोगे।"

"राजाओ का कार्य (मार्ग) बडा ही अगम होता है। कारण कि, जैसे बाजार मे बोझा ढोने वाले बैलो को सब भार चुपचाप सहना पडता है, उसी प्रकार राजा को भी मूर्खों एव धूर्तों के साथ रहकर राज्य-भार सहना पडता है, अन्यथा कहाँ महान् नीतिज्ञो द्वारा ज्ञेय शासन-कार्य और कहाँ खलबुद्धि जनो की जमात। ये परपिण्डोपजीवी खलजन जो अपनी वाचालता के कारण नियम का उल्लघन करने वाले सदा दूषित वातावरण उत्पन्न करते रहते हैं, फिर ये खलरूपी कुत्ते पता नही कैसे राजा के पास आ पहुँचते हैं। ऐसे खलो के क्रियाकलापो से सन्तप्त तथा भयभीत होकर मैं इस अपरिहार्य कुकर्म से सहमत हो गया हूँ, परन्तु बाद मे मुझको इसके लिए पश्चात्ताप ही होगा।" इस प्रकार कहकर राजा जयसिंह सुज्जि का वध करने के लिए तैयार हो गया। इसके बाद सजपाल को रात भर जागने के लिए बाध्य कर वह स्वय भी जागता ही रहा। इस मन्त्रणा का आभास सुज्जि को हो गया था। अत वह भी हिंसा करने के लिए कटिबद्ध था। सेवक सजपाल के कथन पर विश्वास करके राजा स्वय भी उद्विग्नता का अनुभव करने लगा था। फिर राजा ने रिल्हण तथा सुज्जि दोनो को अपने-अपने घर जाकर स्त्रियो के साथ आनन्द करने का आदेश दिया। इस प्रकार उसने सुज्जि को रिल्हण के साथ प्रेषित कर दिया। सुज्जि का वध करने का पूर्ण विश्वास सजपाल ने राजा को दिया था, लेकिन उसे अवसर ही नही मिला। इसलिए रात-दिन वह बिस्तरे पर पडा करवटे बदलता रहा। अपने एक सम्बन्धी की मृत्यु के कारण सन्तप्त होकर जब वह साहसपूर्ण कार्य को समाप्त करके राजा के पास न जा सका, तो उसे असफलता की शका के कारण महान् कष्ट हुआ। वह बिस्तर पर पडे-पडे दिवगत महाराज सुस्सल तथा उसके भाई कल्याणराज आदि के युद्ध-सम्बन्धी सस्मरणो को स्मरण करने लगा।

व्यायाम-कला मे प्रवीण होने के कारण सेनापति कुलराज प्रसिद्ध हो चुका था। स्वामी के कृपारूपी ऋण से अपने प्राणो को देकर भी मुक्ति पाने की इच्छा से राजा जयसिंह के शोक का कारण उससे पूछा। उसके पूछने पर राजा ने अपनी मनोदशा बताते हुए सुज्जि को अपने पद पर बनाये रखने अथवा उसकी वध-योजना की असमर्थता का सारा वृत्तान्त बताकर सेनापति द्वारा सम्भावित अप्रतीकार्य भय की रूपरेखा भी स्पष्ट कर दी। कुलराज ने कहा "यह कौन-सी बडी बात है जो राजा होकर भी आप इतने चिन्तित हो रहे हैं।" इस प्रकार कहकर उसने सुज्जि के वध का साहसपूर्ण कार्य करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। उसके बाद सुज्जि दो दिनो तक अपने कार्य पर नहीं गया, और न राजा के

किसी प्रतिनिधि ने उसके मरने अथवा सकुशल रहने का कोई समाचार ही जाकर बताया। राजा के एक विश्वस्त सेवक शृङ्गार ने तीसरे दिन यह बताया कि सुज्जि बहुत अपमानित-सा होकर शय्या पर पडा है। शोभोपयोगी राजाओं के भृत्य साहस-सम्बन्धी सलाह देने के लिए अनायास ही उनके पास आ जाया करते हैं। कामदेव के शत्रु शंकर के हाथ में धनुष केवल शोभा के लिए हमेशा रहा करता है। परन्तु, जब त्रिपुरासुर के साथ युद्ध में धनुष की आवश्यकता पडी तो मदराचल ने तत्क्षण उनके सामने पहुँचकर धनुष का काम कर दिया। कुछ क्षणों के पश्चात् कुलराज जब राजा जयसिंह के निकट पहुँचा तो उस समय उसकी आकृति पर कोई भी विकार नहीं था एवं पूर्ण धैर्य की झलक दिखायी पडती थी। तब राजा ने उसे पान लाने के लिए भेज दिया। लेकिन, वह पान स्वर्ण की तश्तरी (पात्र) में न लाया। कारण, उसने सोचा 'इस समय राजा के पास जाकर मैं निश्चित रूप से मार डाला जाऊँगा।' इसलिए वहाँ न जाना ही उचित है। राजा का कष्ट तभी दूर हो सकता है जब कोई अपने प्राणों को देकर उसके कार्य को पूर्ण करे। ऐसा करने की स्वीकृति तो बहुतों ने दी, परन्तु बाद में विचलित हो गये। अत सुज्जि अब चाहे एकाकी मिले अथवा अपने मित्रजनों के साथ, मैं निश्चित रूप से उसका वध करूँगा, क्योंकि उसकी मृत्यु के बिना मेरे स्वामी का कल्याण सम्भव नहीं। ऐसा सोचकर वह चल पडा। मार्ग में उसने पुन सोचा 'वहाँ जाकर भी यदि मैं वह साहसिक कार्य पूर्ण न कर सका तब राजा मेरे भाग जाने की शंका करेगा।' ऐसा सोचते हुए उसका मन विशृंखलित हो गया। अपने स्वामी का कार्य सिद्ध करने की इच्छा से घर से प्रस्थित होकर वह बन्दीगृह के पास आया और वहाँ से दो सशस्त्र प्रहरियों को अपने साथ ले लिया। उस समय एक राजभृत्य ने आकर उसे पान का बीडा देकर कहा "आपके लिए इसे महाराज ने भेजा है।" ऐसा सुनकर उसने पान का बीडा ले लिया और दोनों सशस्त्र प्रहरियों सहित सुज्जि के घर की ओर चल पडा।

उसके घर पहुँचकर कुलराज ने देखा कि कुछ उच्च तथा मध्यमवर्गीय जन उसके निकट उपस्थित थे। मालूम पडता था कि कोई गजराज अल्पसंख्यक हाथियों से घिरा हो। उन लोगों में से एक के हाथ से मुसकराकर सुज्जि ने महाराज का भेजा हुआ पान लेकर राजा का काम-काज पूछा तथा थोडी देर में उसे वापस कर दिया। अचानक किसी अन्य व्यक्ति के आगमन की आशंका से अधीर होकर अपने पार्श्ववर्ती जन से उसने पूछा "कोई अपराधी तथा सशस्त्र कैवर्त्त मिलने आया था? यदि वह आये तो मेरे पास के सभी सेवक हटा दिये जायँ और उसे एकान्त में सादर मेरे पास लाया जाय।" यह कहकर वह क्षण भर सेवक के उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा। सुज्जि के इस गर्वित वाक्य को सुनकर उसके समीपवर्ती सेवक ने उस वचन की अवहेलना करते हुए कहा "उसकी उन कठोर बातों को मैं नहीं मान सकता।" ऐसा कहकर वह क्रोधावेश में चल पडा। सुज्जि के अन्य सेवकों ने बढकर उसे पकड लिया और 'तुमको उसकी बात माननी पडेगी' कहते हुए उसे सुज्जि के पास लौटा लाये। उसके पश्चात् बहुत समझाने-बुझाने पर जब वह कार्य करने को सहमत हो गया तो सुज्जि ने कहा "बाहर जो दो सशस्त्र व्यक्ति खडे हैं, उन भृत्यों को यहाँ भेज दो।" तब विवश होकर उस सेवक ने उन द्रोहियों को अन्दर भेज दिया। अपने सहायकों को पाकर वह व्यक्ति प्रहार करने को तैयार हो गया। वे व्यक्ति जब सुज्जि के समीप पहुँचे तो उसने कहा "तुम सब आज अपने घर जाओ। तुम्हारा काम कल पूर्ण होगा।" इस प्रकार कहकर वह निद्रा के कारण अपनी शय्या पर पड गया। उसके वचनानुसार कुलराज कुछ पग पीछे हटा तथा उसके बाद छुरा निकालकर शीघ्रतापूर्वक उसकी बायीं कोख में भोंक दिया। तत्पश्चात् सुज्जि ने अपना हाथ छुरे की ओर बढाया तो उन तीनों ने एक साथ अपने शस्त्रों

से उसके ऊपर प्रहार कर दिया। तब, सुज्जि उन्हे पहचानने का प्रयास करने लगा, परन्तु उस समय तक उसकी साँस काफी शिथिल हो चुकी थी। उस दशा मे भयभीत होकर उसके सभी सेवक स्वाभिमान का त्याग करके भाग गये, लेकिन अकेला पिजदेव नही भागा और सस्त्र तानकर खडा हो गया। परन्तु, उसके ऊपर भी उन तीनो ने एक साथ प्रहार कर दिया। फलत वह घायल होकर रक्त की धार बहाता हुआ धरती पर गिर पडा। उसी समय सुज्जि के सेवको ने चारो ओर के द्वारो को बन्द कर लिया तथा कुलराज आदि को मार डालने के लिए चारो ओर से घेरा डाल दिया। इस प्रकार घिर जाने के पश्चात् उन तीनो ने मृत सुज्जि के शरीर को उठाकर द्वार पर पडे रूई के गद्दे पर लिटा दिया। उसी समय अनेक जन खड्ग, बाण, शूल, परशु, छुरे तथा पत्थरो की वर्षा करते हुए अनेक मार्गों से अन्दर प्रविष्ट होने का प्रयास करने लगे। उन सब को देखकर कुलराज आदि तीनो व्यक्तियो ने निराश होकर सुज्जि का सिर काट डाला और उसे आँगन मे फेक दिया। अजस्र रक्तस्राव के कारण उसके नेत्र की पलके ऊपरी होठ और दोनो कान श्वेत हो गये एव दोनो नासिकाये बालो से ढक गयी थी। उसकी आँखो मे वहाँ आने-जाने वाले लोगो के प्रतिबिम्ब दिखायी दे रहे थे। उसके नेत्रो की पुतलियो को देखकर यह सम्भावना होती थी कि वे तत्क्षण अपना कार्य प्रारम्भ कर देगी। शीघ्रतापूर्वक गर्दन काटने के कारण उसके मास की सवियो मे गीली हल्दी के समान शुष्क चर्बी की गाँठे उभर आयी थी। उसकी मूँछ के बालो मे धूल भर गयी थी और मस्तक मे लगे केसरिया चन्दन के कुछ चूर्ण भी उन मूछो मे लिपटे हुए थे। कटा हुआ वह मस्तक तिरछा पडा था, जिसके कारण दाँत साफ-साफ दिखायी पड रहे थे। मस्तक को देखकर समस्त राजमहल मे रोदन-कोलाहल मच गया। फलस्वरूप उसका समस्त सेवक-वर्ग भाग गया।

उधर राजा जयसिह, सुज्जि के वध का कार्य घातको को सौप देने के पश्चात् अत्यन्त ही आकुल होकर परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा था। जब उसको बाहर की ओर विशेष शोरगुल सुनायी पडा तो उसे घातको के अपने काम मे सफल होने का विश्वास हो गया। उस स्थिति मे उसने सोचा कि 'चाहे सुज्जि मर गया हो अथवा घायल हो' यह कार्य आवश्यक है। ऐसा निश्चय करके उसने सेना को उसका घर घेर लेने के लिए आदेश दे दिया। तब तक उसने जनसामान्य के मुख से यह सुनकर कि 'सुज्जि व्यर्थ ही मे मारा गया', युद्ध जैसी तत्परता प्रारम्भ कर दी। सुज्जि की मृत्यु का निश्चित समाचार पाकर राजसेवको ने सर्वद्रोही शिवरथ को तुरन्त बन्दी बना लिया। हिल्ला के पुत्र तथा सुज्जि के भाई के श्यालक कलश का कौशल वर्णित करने से आज वाणी पुण्यशालिनी बन गयी। भिक्षाचर आदि राजाओ ने सुज्जि पर अनेकानेक आक्षेप किया, परन्तु वह निश्शक रहकर अपने सदाचार पर दृढ रहा तथा अन्त मे वीरोचित गति को प्राप्त हुआ। सुज्जि को यद्यपि राजमहल में ही इस घटना का आभास हो गया था, तथापि वह वीर भागा नही, और राजा के पास ही उसने प्राण त्याग दिया।

राजसैनिको ने पैर के प्रहार से किसी प्रकार द्वार खुलवाया तथा अन्दर जाकर मृतक का शव हटाने के पश्चात् बडी ही कठिनाई से उन तीनो घातको को बचा पाये। कुलराज आदि तीनो घातक सैनिको के खेमे मे पहुँचकर जैसे पुन· प्राणदान पा गये और राजा जयसिह के पास पहुँचे। वे जब राजभवन के अन्दर प्रवेश कर रहे थे, तभी किसी राजद्रोही ने हठात् भीतर घुसकर उन तीन घातको मे से एक की हत्या कर दी। उस समय ही राजा को पता चला कि इस समय राष्ट्र के क्षुब्ध वातावरण में रिल्हण आ गया है, तत्काल उसने सजपाल को रिल्हण तथा उल्हण दोनो का वध करने के

लिए भेजा। सुज्जि के वध का समाचार जानकर भयभीत हो रिल्हण भागा तथा क्षितिका नदी के तट पर चला गया, परन्तु पता नही क्यो वह पुन वापस आ गया। उसके आते ही सजपाल ने जो वहाँ पहले से ही उपस्थित था, घर से बाहर निकलते उल्हण का मार्ग अवरुद्ध करके उस पर आक्रमण कर दिया तथा भलीभाँति पीटा। इतने मे ही तलवार के एक आघात से उसका दहिना हाथ कट गया, हड्डी अलग हो गयी। मात्र बच रहे चर्म एव नसो की गाँठ बँध गयी, जिसके कौशल से उसका वश अगण्यप्राय हो गया था, देश-विदेश मे उसी ने सर्वत्र पुन प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। फल भोगने का समय जब निकट आया, तभी शौर्य के प्रतीकस्वरूप उस लूले हाथ को लिए हुए उल्हण जीवित रहा। विधाता की इस विधुर इच्छा को धिक्कार है। इस अभ्युदय-काल मे भी यदि विकलाग न हो गया होता तो उसके फल-लाभ से लोग उसकी अद्भुत् अभिलाषा को समझ लेते। अमृतपान के पश्चात् यदि राहु की गर्दन न कट जाती तो ससार भर के जन उस सामर्थ्यवान् महान् वीर की वीरता का दीर्घकाल तक गुणगान करते।

प्राचीन समय मे सहदेव के पुत्र उल्हण ने अपने वृद्ध पितृव्य शील को स्पृहापूर्वक मार डाला था। उसके शरीर मे इसके कारण घाव हो गया और उसी की पीडा से वह सज्जन पुरुष घुल-घुलकर मर गया। पीडाधिक्य के कारण कराहते हुए उस असहाय की सेवा करने के लिए जब उसके अनुगामी जज्जल, यामिक तथा जनगम घर मे प्रवेश कर रहे थे, उल्हण ने उन सब को भी मार डाला। उस वृद्ध के एक बालक को घर के आँगन मे बैठे देखकर घर मे रिल्हण ने आग लगवा दी। उस बेचारे को घर से बाहर नही निकलने दिया। धूम्र के कारण अध हुए उस बालक को जब कुछ प्रमुख सैनिक उठाकर ले जा रहे थे, उस समय घर के द्वार पर पहुँचते ही उस बालक को कुछ नीचो ने मार डाला।

राजा जयसिंह उधर सुज्जि का कटा शीश देखकर भी सन्तुष्ट और शान्त नही हुआ। उसने राज्य भर के विद्रोही प्रवृत्तिवाले प्रमुख अधिकारी वर्ग को समाप्त कर देने की योजना को क्रियाशील रक्खा। जब राजा की आज्ञानुसार उसके सैनिक सुज्जि के समस्त उत्तम-मध्यम सेवको का आवेशपूर्वक वध करना प्रारम्भ कर दिए तो उन सबो ने भी अपने पराक्रम के अनुसार डटकर उनका प्रतिरोध किया। लक्ष्मक (सुज्जि का छोटा भाई) को जब सैनिक बन्दी बनाकर राजा के पास ले जा रहे थे तो राजधानी के आँगन मे उसे भी कुछ नृशस जनो ने मार डाला। सुज्जि के चचेरे भाई सगट को राजप्रासाद के आँगन मे नट की भाँति नचा-नचाकर मार डाला गया। बाण-वशी पापियो ने सुज्जि के उन्मत्त भाई मुम्मुनि को घर मे घुसकर मार डाला। शृङ्गार-वृत्ति की टेढी चाले चलकर घातको ने सुज्जि के श्यालक को भी मार डाला। महान् कुलीन चित्रिय का औचित्य के आधार पर वध हुआ। सगि नामक प्रतीहार घातको द्वारा घायल करके मारा गया। इस प्रकार से सुज्जि के अन्यान्य सभी आश्रित जन विभिन्न स्थलो पर मार डाले गये। उत्तम घोडो के वेग के सहारे वीरपाल इत्यादि दो तीन जन कोण्ठेश्वर के यहाँ पहुँच गए और वहाँ उनका मरण-भय जाता रहा। सगट का भाई शरदिय भी भागा जा रहा था, लेकिन सुभटामठ पर उसका घोडा रुक गया। फलत वह राजा के सैनिको द्वारा बन्दी बना लिया गया। सुज्जि के पुत्र सज्जल, उसके अग्रज पुत्र श्वेतिक तथा उल्हण के पुत्र को बन्दी करके बन्दीगृह मे डाल दिया गया। राजा तथा मन्त्रिमण्डल के पिशुनो के प्रभाव मे पड जाने के परिणामस्वरूप यह विप्लव लौकिक वर्ष ४२०६ की आषाढ शुक्ल पञ्चमी को हुआ था। तब

से राजा जयसिंह के जब कभी भी राजकार्य के संचालन में किसी भी प्रकार का व्यवधान आता तो वह उन मंत्रियों तथा सेवकों का स्मरण करके अपनी करनी पर पश्चात्ताप करता था। शयन में स्थित वेताल को जगाने, खन्दक को लाँघने, विषपान करने, एवं सूर्य का आलिंगन करने से भी कठिन राजा की सेवा करने का कार्य है। इस बात को सर्वथा सत्य जानिए। समस्त सद्गुणों का परित्याग कर देने वाले चक्रवर्ती राजाओं पर, जो अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रख सकते, विश्वास करने वाला जन उसी प्रकार मृत्यु को प्राप्त होता है, जैसे कोई बैलगाड़ी के नीचे दबकर कुचल जाता है।

कुछ दिनों के पश्चात् राजा तथा प्रजा, दोनों को यह अनुभव होने लगा कि सुज्जि का वध अनुचित हुआ और यह घटना राजा की अत्यधिक शक्ति के कारण घटित हुई। तदुपरान्त राजा ने सजपाल को सेनापति के पद पर एवं कुलराज को मुख्य नगराधिकारी के पद पर नियुक्त कर दिया। तभी धन्य तथा उदय मल्लार्जुन का त्याग करके नगर में आ गये, और पहले की ही भाँति प्रेमपात्र बनकर आनन्द लेने लगे। उसके पश्चात् अन्य पुरुषों को त्यागकर, उनके आश्रय से हीन एवं चंचलता छोड़ लक्ष्मी ने समस्त भावों से चित्ररथ के गृह में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। विपुल वैभव से सम्पन्न, दण्ड-नीति द्वारा प्रजा पर शासन करने पर भी राजा ने राज्य में शान्ति स्थापित करने की सफलता नहीं प्राप्त की। तत्पश्चात् घातकों ने गन्धर्वाना ग्राम के समीप टिक्क का वध करके उसका मस्तक जयसिंह को प्रेषित किया। उस शीश को देखकर राजा शोक-सागर के पार पहुँच गया। कारण कि टिक्क वास्तव में राजा का विद्वेषी था, इसलिए दूत ने राजा के पास उसका सिर भेजकर उसको सन्तुष्ट कर दिया।

उन्हीं दिनों अपने कुछ परिजनों के साथ कोष्ठेश्वर और लोठनदेव शीघ्रतापूर्वक रात्रि के समय भागकर हाडीग्राम पहुँच गये। लेकिन उस समय भी राजा जयसिंह अपने पूर्व प्रभाव एवं आतंक के कारण राज्य भर में जैसे खड़ा दिखायी पड़ता था। अतः समस्त डामरों तथा लवन्यों ने राजा के साथ सन्धि कर ली और लोठन के कहने के अनुसार वे दोनों महाकथितकन्था वापस चले गये। परन्तु, राजा उच्चल आदि के सदृश सम्पूर्ण राज्य पर छा जाने के लिए शीघ्रता करने के परिणामस्वरूप राजा जयसिंह जनसामान्य के लिए हास्य-भाजन बन गया। घातकों के उपयोग, सेना में विरोध, और अन्यान्य कई प्रयासों द्वारा कोष्ठेश्वर के वध की उसने चेष्टा की। घातकों द्वारा उसने कोष्ठेश्वर की आँखें निकलवा डालीं। इतने पर भी उसे सन्तोष न हुआ और एक प्रतिस्पर्धी की भाँति राजा जयसिंह उससे युद्ध करने का विचार कर रहा था।

योजनानुसार उसने अपने-अपने प्रदेशों के सेनापतियों को कोष्ठेश्वर के राज्य में प्रवेश करने की आज्ञा करके स्वयं भी उत्तम-मध्यम सेना को साथ लेकर उस पर आक्रमण कर दिया। उधर जब प्रतापशून्य कोष्ठेश्वर को ज्ञात हो गया कि राजा थोड़ी-सी सेना लेकर आ रहा है, इसलिए उसने कपट की नीति का सहारा लिया और ऐसा सोचकर उसने चित्ररथ की विशाल सेना लेकर राजा का सामना किया और इसलिए राजा इस युद्ध में पराजित हो गया। उस अमंगलसूचक पराजय के कारण राजा का पतन प्रारम्भ हो गया और दिन-प्रतिदिन उसका प्रभाव समाप्त होने लगा। इस भाँति साहस बढ़ जाने के कारण कोष्ठेश्वर ने युद्ध में रिल्हण इत्यादि के समस्त अनुगामियों को पराजित करके सन्ध्या-काल में सजपाल की सेना पर आक्रमण कर दिया। उसके भीषण आक्रमण से भयभीत होकर सेनापति की समस्त सेना तितर-बितर हो गयी। सौ से भी अल्प संख्या में स्वामिभक्त

उसके साथ रह गए थे, लेकिन फिर भी वीर सजपाल ने उतने ही सैनिको की सहायता से उस आक्रमण का सामना उसी प्रकार किया, जैसे हाथी के मस्तक-प्रहार का सामना पर्वत करता है। जब युद्ध घमासान होने लगा तो ऐसा क्षण भी आया कि राजा जयसिंह के शरीर पर कवच भी नही रह गया। इस भाँति शत्रु के प्रभाव के कारण राजा जब अपना धैर्य त्याग रहा था तभी त्रिल्लक इत्यादि विशाल सेनावाले कुछ लवन्य राजा से जा मिले। उस विषम परिस्थिति मे वे सब सजातीयता का ध्यान करके तटस्थ रह गए। उससे राजा को कुछ सहारा मिल गया क्योकि उसकी शक्ति काफी क्षीण हो चुकी थी। उस समय राजा सेना को ठीक समय पर सुसज्जित करता, आकुल (निराश) सैनिको को धीरज बँधाता तथा समयोचित रीति से सग्रह तथा त्याग का निर्णय करता था।

प्राप्त हो गयी भूमि को किसी भी दशा मे न त्यागने जैसे गुण से शत्रु भी भयभीत हो जाते हैं। वास्तव मे शक्ति कम होने पर इसी प्रकार के धैर्य की प्रशसा की जाती है। विशाल सेना की सहायता से युद्ध करके विजय प्राप्त करना स्तुत्य नही। राजा के उस आतक से पीडित एव सैनिको मे पारस्परिक मतभेद हो जाने के कारण कोष्ठक भागने की इच्छा से पहाड के नीचे उतर आया। परन्तु, आसामयिक हिमवर्षा के कारण मार्ग मे उसके घोडो को रुक जाना पडा तथा शत्रु जो उसके पीछे-पीछे लगे हुए थे उसके लिए और भी बाधक बन रहे थे। अपमान के कारण सन्तप्त तथा राजा जयसिंह द्वारा राज्य से निष्कासित असहाय कोष्ठेश्वर अपने कुछ परिजनो के साथ गगा-स्नान के लिए प्रस्थित हो गया। उसके बाद पुत्र भूपाल द्वारा सताये जाने से एव द्वैराज्य से कष्टित सोमपाल राजा जयसिंह का शरणागत हो गया। अपने भाई नागपाल के दो पुत्रो को राजा के पास धरोहर के रूप मे रख दिया और तब आश्रितवत्सल राजा ने उसे अभयदान दे दिया। सोमपाल को यह विपत्ति बृहद्राज की कुटिलता के कारण उठानी पडी थी, परन्तु अपनी उदारता के कारण उसने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नही दिया। उसकी सहायता के लिए राजा जयसिंह ने अपनी सेना दे दी जिससे अपने शत्रुओ को पराजित करके उसने अपनी पुरातन प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त कर लिया।

इस बीच गगा-स्नान से लौटकर कोष्ठक मल्लार्जुन के साथ द्वैराज्य स्थापित करने के लिए प्रयास करने लगा। वह सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र गया था और सयोगवशात् लवन्य से वहाँ उसकी भेट हो गयी। लवन्य ने भी कार्यवश आपसी पूर्व वैर को त्याग दिया। उसके पहले मल्लार्जुन ने लोठन को बुलवा लिया था, लेकिन वहाँ जब उसने डामरो के साथ साठ-गाँठ देख ली तो चुपचाप वापस चला गया। दूषित विचारवाले सोमपाल ने यद्यपि विजयेश्वर के सम्मुख कोशपानपूर्वक प्रतिज्ञा की थी तथापि राजद्रोहियो के प्रवेश की उसने उपेक्षा कर दी। परन्तु, सोमपाल के पुत्र भूपाल ने राजा जयसिंह को प्रसन्न करने की कामना से, कुछ ठाकुरो को अपने पक्ष मे मिलाकर राज्य मे पहुँचे कोष्ठेश्वर को लूट लिया।

आपत्ति के मूल कारण और दुराग्रही चित्ररथ को राजपद से पदच्युत कराने के लिए, अवन्तिपुर मे ब्राह्मणो ने उसी बीच अनशन प्रारम्भ कर दिया। अभिमानी राजा ने उन ब्राह्मणो की उपेक्षा कर दी। परिणामस्वरूप अनेको ब्राह्मण धधकती आग की ज्वाला मे कूद पडे। राजा चित्ररथ के भृत्यो ने चरक नामक स्थान पर गायो के चरने की मनाही कर दी, जिससे दुखी होकर एक ग्वाले ने अग्नि मे कूदकर प्राण दे दिया।

उच्चकुलोद्भूत भट्ट के पुत्र पृथ्वीराज का पुत्र युवक विजयराज और उसका भाई, दोनो सकटापन्न होकर विदेश-यात्रा के लिए प्रस्थित हो गये, लेकिन भयकर मार्ग से विचलित होकर रुक गये।

आँसू गिराते हुए विजयराज ने तब अपने छोटे भाई से कहा "उस अनुदार राजा से अधिक उसके धूर्त मन्त्रियों के मायाजाल में पड़ जाने के कारण हमें मरना पड़ रहा है। जिस स्थान पर मन्त्रियों की स्वतन्त्रता के कारण राजा की अवहेलना होती रहती है, वहाँ हम जैसे दीन जनों के कष्ट को दूसरा कौन दूर करेगा, अथवा आपसी ईर्ष्या-द्वेष के कारण जो यह आपत्ति इस राज्य में उपस्थित हो गयी है, उसका अन्त या तो शान्ति के उत्तरदायी राजा को दण्डित करके किया जा सकता है, या अन्य कोई प्रबल राजा दण्ड दे, तभी सम्भव है। विशृंखलित लेकिन बलशाली अन्यायी राजा को विघटित करके शान्ति की स्थापना की जा सकती है, जैसे कि लोहा कभी पत्थर को और पत्थर कभी लोहे को काट देता है। समस्त शुभ्र गुणों से युक्त राजा में किसी एक दोष को देखकर उससे द्वेष नहीं करना चाहिए, लेकिन हर प्रकार से दुर्गुणों के आगार चित्ररथ की हत्या के अतिरिक्त मेरी दृष्टि में राज्य के मंगल-हेतु कोई अन्य उपाय नहीं आ रहा है। अहिंसा-धर्म को जैनी सर्वोपकारी कहते हैं किन्तु उन्हीं के गुरु साक्षात् भगवान महावीर स्वामी ने प्राणियों का घात करने वाले अजकर का वध कर डाला था। हमलोग यदि उस दुराचारी राजा का दमन करने में सफल हो जायँ तो उस दमन-आतंक के कारण फिर कोई भी अधिकारी तेजस्विनी प्रजा को क्लेश पहुँचाने का दुस्साहसपूर्ण कार्य नहीं करेगा। हे भाई! हमारे शरीर के त्याग द्वारा ही यदि अनेक प्राणी सुख-लाभ कर सके तो क्या यह उच्चकोटि का कार्य नहीं हो सकेगा?"

ऐसी बातों को सुनने के पश्चात् जब उसके भाई ने भी सहमति प्रदान कर दी तो चित्ररथ का वध करने के लिए विजयराज पुनः अवन्ति की ओर प्रस्थित हो गया। कलि के प्रभाव से यद्यपि इस समय धर्म निर्बल तथा कलुषित हो चुका है तथापि ब्राह्मणों का प्रताप अब भी अक्षुण्ण बना हुआ है। धरती-तल पर ब्राह्मणों के सदृश पूर्ण पुण्यात्मा कोई भी नहीं है। कारण कि वे धीरतापूर्वक भ्रष्टों एवं दुष्टों का विनाश करने में प्रवीण होते हैं। ब्राह्मणों को दुःख देने वाले सुज्जि का वध ब्राह्मणों ने किया तथा विप्रों को अपमानित करने वाला चित्ररथ भी ब्राह्मणों द्वारा ही मारा गया। उसके कुकर्मों से भयभीत होकर ही ब्राह्मणों ने कृत्या का परित्याग कर दिया और उसने जाकर चित्ररथ के हृदय पर अधिकार कर लिया एवं अनायास उसके प्राणों का अपहरण कर डाला। उन ब्राह्मणों ने ज्योंही (जैसे ही) चित्ररथ के शरीर को अग्निदेव के लिए समर्पित किया, वैसे ही तुरन्त उस राजा के सदृश शत्रुओं ने आक्रमण द्वारा उसके अनुगामियों की इतिश्री कर दी।

पूर्वोक्त विजयराज अपने भाई के साथ जब चित्ररथ की हत्या करने के लिए अवन्ति पहुँचे तो सेना द्वारा सुरक्षित होने से उनको उसके वध का अवसर नहीं मिल पाया, इसलिए उन्हें कई रात तक जागकर अवसर की प्रतीक्षा करनी पड़ी। उसके पश्चात् विजयराज जब राजप्रासाद के निकट पहुँचा, उस समय वहाँ सामन्तों की भीड़ थी। उसके मध्य पड़कर वह कभी दिखायी पड़ता तो कभी लुप्त-सा हो जाता था। अचानक वह आश्चर्यजनक, निष्ठुर तथा निर्दयतापूर्ण प्रचण्ड वेग से सतरियों के मध्य होता हुआ राजप्रासाद के अन्दर प्रवेश कर लिया। वहाँ वह काफी देर तक खम्भे के पीछे छिपा रहा। उसके पश्चात् पूर्ण साहस के साथ अचानक तीव्र वेग से झपटकर सामन्तों के बीच स्थित राजा चित्ररथ के शीश पर अपनी तलवार का प्रहार कर दिया। उस प्रहार के कारण राजा मुमूर्षु के सदृश विह्वल तथा संज्ञाहीन होकर स्थित हो गया, उसकी आँखें नाचने लगीं एवं उसका तेज समाप्त हो गया। इस घटना को देखकर राजा के सभी सहयोगियों ने 'महाराज जयसिंह के आदेशानुसार इसका वध किया गया' इस प्रकार का अनुमान लगाया और उनका साहस छूट गया तथा सभी चित्ररथ को उसी

स्थिति मे छोडकर भाग गए। उसको निष्प्राण जानकर घातक ने उस पर दूसरा प्रहार नही किया एव दूसरी सीढी तक पहुँचे अपने भाई को आगे बढने से रोक दिया। स्वय वहाँ से भागा नही वरन् पुन-पुन यह चिल्लाकर कहता रहा "चित्ररथ की हत्या राजा जयसिंह ने करा दी।" उसके पथ मे कोई व्यवधान न पडा। वे सभी कायर साथी और अनुचर जो चित्ररथ के साथ भूना हुआ मास खाकर एव मदिरापान करके राजभोग का आनन्द लेते थे, क्षण भर के ही अन्दर अन्तर्धान हो गए। चित्ररथ का ज्येष्ठ भ्राता लोठरथ भयभीत होकर भागा और एक नर्त्तकी के घर पहुँच कर उसका स्तन अपने मुख मे डाल, उससे रक्षा की याचना की।

राजा चित्ररथ जब ऐसी दारुण स्थिति मे था तो एक व्यक्ति ने सहसा पहुँचकर उससे पूछा—"भय को त्यागकर आप यह बताइए कि आप पर यह प्रहार किसने किया है?" कहते हुए उसने राजा चित्ररथ को आश्वासन दिया। तत्पश्चात् राजा के आदेशानुसार जब छानबीन प्रारम्भ हो गयी तो पूछे जाने पर विजयराज ने स्पष्ट कह दिया कि 'मैंने मारा है।' उसी समय उस धैर्यवान् वीर ने अपने धैर्य द्वारा उतनी शक्ति सचित कर ली कि उछल-उछल कर बीसो-तीसो योद्धाओ की हत्या करने के पश्चात् स्वय भी मर गया। मृत्यु के समय उसने एक पत्र भी डाला जिसमे यह लिखा था "साधु जनो का त्राण, दुष्ट जनो का सहार तथा धर्म की स्थापना के हेतु मैं प्रत्येक युग मे जन्म ग्रहण किया करता हूँ।" मृत्यु के समय की उसकी इस श्लोकात्मिका वाणी ने समस्त जनो को पवित्र कर दिया। अरुचि उन्माद तथा दीनता से युक्त चित्ररथ-मस्तक की सन्धि मे भयङ्कर व्रण होने पर भी जीवित रहा। वह पाँच-छ मास पर्यन्त सर्वथा कृशकाय होकर बिस्तर पर छटपटाता हुआ पडा रहा। इस बीच ही विप्लवाकाक्षी कोष्ठक ने मल्लार्जुन के निर्देश मे वृक्ष समूहो से आवृत्त एक पर्वतीय किले मे अपना अड्डा बना लिया। उनकी वहाँ उपस्थिति के कारण निकटवर्त्ती जन ऐसी आशका से व्याकुल हो उठे कि कही ये अपनी सेनाएँ एकत्रित करके हम लोगो को ग्रस न ले। कारण कि दो राजाओ के राज्य मे उत्पन्न होने वाली आपत्तियो का उन्हे अनुभव था। असामयिक उदित मेघ तथा हिमपात के कारण जड अग वाले के सदृश वहाँ के निवासियो की शक्ति शत्रुओ के इस चक्रोदय के कारण शिथिल पड गयी। कुछ ही कालोपरान्त कोष्ठक एव मल्लार्जुन ने अपने अमात्यो के साहाय्य से लगभग एक कोस लम्बे-चौडे उस किले के समीपवर्त्ती वनो तथा ग्रामो को घेर लिया।

दूसरी ओर जयसिंह के सेनापति सजपाल ने भी यवनो का साहाय्य लेकर अपना शिविर बनाना प्रारम्भ कर दिया। शत्रुओ के ही समान उन लोगो ने भी अपने शिविर को ऐसे स्थान पर बनाया जहाँ सघन वृक्षावली के कारण वायु तक का प्रवेश दूभर था। सिन्धुगज का शत्रु गन्धगज जिस प्रकार उसका पीछा करता है वैसे ही शत्रु का पीछा करनेवाले धन्य ने अपनी सेना के साथ शिलिका के किले मे आकर पडाव डाल दिया।

उधर रिल्हण ने जयसिंह के साथ आकर गोवास मे छावनी बना लिया। सूर्य जैसे उलूको को अन्धकार मे रहने के लिए विवश कर देता है उसी प्रकार उस वन ने सभी शत्रुओ को अपने सघन अन्धकार मे तिरोहित कर लिया। सर्वशक्तियो से सम्पन्न राजा जयसिंह की इस सावधानी के कारण कोष्ठेश्वर तीन-चार माम पर्यन्त सज्ञाहीन होकर पडा रहा। इस भाँति विदेश के कष्टो से कष्टित, अन्यान्य राजा वर्ग से तिरस्कृत, तथा पारस्परिक मतभेद के कारण व्याकुल कोष्ठेश्वर के समस्त आयोजनो को राजा जयसिंह के भृत्यो ने निष्फल कर दिया।

राजाओं के व्यवहार-ज्ञान से अनभिज्ञ, पैर कट जाने के कारण मूर्खतावश कोष्ठक ने पूर्व के सभी अपराधों को विस्मृत करके राजा जयसिंह के सम्मुख सन्धि का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। अपने स्वामी के क्रोध को शमित करने तथा प्राचीन अपयश को हटाने के लिए स्वामिभक्त सेनापति सजपाल ने कोष्ठक की वह अभिलाषा पूर्ण कर दी। उस शत्रु द्वारा अत्यधिक कष्टित होने पर भी सजपाल ने सन्धि का प्रस्ताव प्रस्तुत करनेवाले कोष्ठेश्वर को वन्दी नहीं बनाया। कारण कि पृथ्वीहर के पुत्र कोष्ठक जैसे वशवालों को मित्र बनाना कोई सामान्य बात न थी। सजपाल एक समय राजा के वैरी को उसके सम्मुख भेजकर और अपने हाथ की अँगुली को काटकर भी राजा के क्रोध को नहीं शान्त कर सका। पगडी अपनी गर्दन मे लपेटकर, शीश पर जूता रखकर काफी देर तक राजा से विनय करके भी उसके क्रोध को शान्त करने में वह असमर्थ ही रहा।

उन्हीं दिनों कोष्ठेश्वर ने राजा के दो-तीन प्रमुख अधिकारियों की अवमानना करते हुए राजादेश की अवहेलना कर दी थी। वह स्वयं को ही राजा मानकर व्यवहार किया करता था। उस बीच राजा जयसिंह को भागे हुए मल्लार्जुन के वन्दी बनाये जाने का भी समाचार मिला। भाग्यशाली जनों को एक के बाद अन्य सफलता मिला ही करती है। जाँघे बेकार होने के कारण मल्लार्जुन मार्ग पर चलने की श्रान्ति नहीं सह सकता था। उसके अनुचर उसको कन्धों पर बैठाकर ले चल रहे थे। मार्ग मे अनेकों भयावह स्थानों को लाँघते हुए वह मल्लार्जुन लोहर राज्य के सार्वणिक ग्राम मे पहुँचा। उस स्थान पर पहले से ही जागिक ठक्कुर के सिपाही (सैनिक) नियुक्त थे। मल्लार्जुन को उन लोगों ने वहीं पर रोक दिया। तत्पश्चात् राजा जयसिंह ने सुना कि मेरा कोई सेवक मिलने आया हुआ है। इसके पूर्व वह किले से भागते हुए शत्रु के पकड मे आकर भी बच गया था, लेकिन अबकी बार उन्हीं लोगों के द्वारा वह वन्दी बना लिया गया। भवितव्यता को उल्लंघित करने की शक्ति किसमें है?

देवलोक से जब गंगा जी उतरी तो जन्हु ने उनको सोख लिया। उनके उदर से किसी प्रकार निकलकर जब उन्होंने समुद्र को पूर्ण किया तो अगस्त्य ने समुद्र का ही पान कर डाला। तात्पर्य यह है कि भावी को मिटाने की शक्ति किसी मे भी नहीं है। वन्दी मल्लार्जुन जब तक राजा के पास पहुँच न जाय तब तक के लिए जग्गिक ने उसके चारों ओर पूर्ण चौकसी का प्रबन्ध कर दिया था। उसी समय महाप्रवीण राजा जयसिंह ने द्वाराधीश उदय को भी सावधान रहने की आज्ञा दे दी। धैर्य, गाम्भीर्य, शौर्य मे अग्रणी तथा अत्यन्त विवेकी उस राजा को स्वयं के अतिरिक्त किसी भी मन्त्री पर यह विश्वास नहीं था कि संकटापन्न परिस्थिति मे मेरी कोई सहायता कर सकेगा। राजा और शत्रु, उभय पक्ष से वेतन भोगी कर्मचारियों द्वारा निर्मित अनेक बाधा वाले मार्गों को लाँघकर, उदय ने किसी गाँव के एक मकान की खिडकी पर खडे मल्लार्जुन को देखा। मल्लार्जुन ने भी उदय को देखकर प्रतिष्ठाहीन धैर्य तथा शौर्याडम्बर दिखाते हुए प्रशंसा की तथा अनेक प्रकार से इधर-उधर की बातें करके फिर कहा "आप विवेकियों मे श्रेष्ठ, सर्वाधिक सम्मान्य हैं तथा स्वामिभक्ति को उच्च स्थान देते है। इसलिए आप जैसे महापुरुष को कुछ लोभी व्यक्तियों ने यहाँ पर ले आने का कार्य किया है। रक्षामणि के सदृश आप-सा कोई मेरा रक्षक यहाँ नहीं था। इस कारण मुझ जैसे कुत्सित शासक को बाल्य-काल से लेकर राज्य-काल तक धूर्त जनों के कारण अत्यन्त हानि उठानी पडी। सिंहासनासीन राजा को देखना बडा दुष्कर होता है, परन्तु पदच्युत हो जाने पर वही बडी सरलता से देखा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार जैसे ग्रीष्मकालीन सूर्य को देखना कठिन होता है, किन्तु हेमन्त ऋतु मे सरल।"

"सूर्य जैसे प्रातःकाल उदय होते समय एवं सन्ध्या को अस्त होते समय रुधिर के समान रक्त-

वर्ण रहता है, ठीक उसी प्रकार जो राजा उदय एव अस्त दोनो कालो मे उग्र तेज धारण करता है, वही वन्दनीय है, जिसे देखकर पौराङ्गनाये क्षुब्ध होती हैं, और अप्सरागण का अवतार धन्य होता है। कारण कि, उदय एव अस्त दोनो समय उसका राग (अनुराग या वर्ण) पूर्ववत् उग्र बना रहता है। एक कुलीन के समान कुछ पदो को जोडकर एव अर्थ करके जिस प्रकार एक मूर्ख स्वय को कवि मान लेता है, उसी प्रकार मैं भी स्वय को एक प्रौढ राजा समझ बैठा था। इसलिए इस समय आप मेरी इस विनीत वृत्ति से सन्तुष्ट होकर मुझे एक वरदान द्वारा मेरे हृदय को शान्ति प्रदान कीजिए।"

इस प्रकार कहने के पश्चात् विश्वास दिलाने के लिए मल्लार्जुन ने उदय के समक्ष पीठसहित एक स्फटिक मणिमय शिवलिंग रख दिया। उस समय उदय ने सोचा कि छलरहित युद्ध मे प्रास, शूल और बाणो की वर्षा करने वाले योद्धाओ के साथ अब वह लडने का इच्छुक नही है। यह सोचने के पश्चात् उसने शिवलिंग का स्पर्श करके वाछित वरदान उसको प्रदान कर दिया। उसके पश्चात् मल्लार्जुन ने फिर कहा "मैं इस समय जिस प्रकार आपके सम्मुख पूर्ण अक्षत स्थिति मे हूँ, ठीक उसी प्रकार आपके राजा के भी समक्ष अक्षत ही रहूँ, ऐसा प्रयास आप कीजिएगा। यही आपसे मेरा विनम्र निवेदन है।"

इस प्रकार दीनतापूर्ण उसके वचनो को सुनकर वर्षा से सिक्त पत्ते के समान सभी जन शीश झुकाकर धरती-तल की ओर देखने लगे। तत्पश्चात् भिक्षाचर की अन्तिम क्षणो वाली सचेतनता का स्मरण करके मल्लार्जुन ने अपने मन को फिर से विकसित किया। उसके बाद वह मनुष्यो द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर चढा। अपने द्वारा पालित अनुचरो की ओर उसने निर्विकार भाव से देखा। भोजन एव नीद की समुचित व्यवस्था रहते हुए भी वह एक पशु की तरह पालकी मे बैठा चला जा रहा था, उसके हृदय मे किसी भी प्रकार के सकल्प-विकल्प नही उठ रहे थे। राजकीय रक्षको द्वारा घिरे एव रक्षित होकर जाते हुए उस मल्लार्जुन को देखकर सभी जनो का हृदय करुणा के कारण द्रवित हो जाता था तथा वे सब राजा जयसिंह के इस कर्म का समर्थन नही कर रहे थे। वे जन परस्पर कहते थे "उच्च कुलोद्भूत, कृपा के पात्र, पितृविहीन अनुज पर राजा द्वारा इस प्रकार क्रूर व्यवहार उचित नही कहा जा सकता। चिक्कण कमल के समान नेत्रो वाले, इस जन के शरीर को किसी भी दयार्द्र-कृपालु जन कैसे कष्ट दे सकता है?" मार्ग के सभी जन जो मल्लार्जुन को देखते, उसके अपराधो को विस्मृत करके पूर्वापर सम्बन्धो का ज्ञान किए बिना ही राजा को बुरा-भला कहने लगते थे। बडे-बडे महापुरुषो की चित्तवृत्ति जब सदा एक-सी नही रहती तो बालक एव बालिश (मूर्खो) की गणना ही क्या है? महाभारत की कथा का श्रवण करते समय जब द्यूतक्रीडा तथा द्रौपदी के केश पकडकर खीचने का प्रसग आता है तो श्रोतागण पाण्डवो पर कम और कौरवों के प्रति अधिक क्रुद्ध होते हैं। परन्तु, कौरवो के रक्त पान करने, और खण्डित-जानु दुर्योधन के शीश पर जब प्रहार होता है तो वे पाण्डवो से द्वेष करना प्रारम्भ कर देते हैं।

पूर्वापर कार्यों का समन्वय बिना किसी मध्यस्थ के कौन कर सकता है? अपने अनुभवो के आधार पर तटस्थ व्यक्ति विभिन्न कार्यो की सगति किस प्रकार बैठा पायेगा? मार्ग के नागरिको को इस प्रकार शोकग्रस्त करता हुआ शिविका मे सवार मल्लार्जुन सन्ध्या के समय नगर मे पहुँचा। वह उस समय अँगुली कटे वाले अपने हाथ से क्रोड मे मिट्टी का एक बर्तन सम्हाले हुए था। इस प्रकार लौकिक वर्ष ४२११ की आश्विन शुक्ल पूर्णिमा की तिथि पर राजा जयसिंह ने मल्लार्जुन को

नवमठ में रखकर रक्षा के लिए प्रहरियों की नियुक्ति कर दी। पाँच-छः दिवस पर्यन्त उसने कुछ भी ग्रहण नहीं किया और बार-बार महाराज के चरण-स्पर्श के लिए अवसर-प्राप्ति हेतु प्रार्थना करता रहा। अन्ततोगत्वा वह राजा के पास गया। वहाँ पहुँचने पर जब उसने राजा को अपने अभिमुख देखा तो कहा कि "अपने सबल शत्रु चित्ररथ तथा कोष्ठेश्वर का वध करा दीजिए।" उसी समय (तत्काल) अपने स्थान को भागने के लिए तैयार कोष्ठक को पकड़ लेने के लिए राजा ने रिल्हण आदि पाँच-छः विश्वासपात्र पुरुषों को नियुक्त कर दिया।

ऐसा आदेश सुनने पर अन्य जनों का उत्साह तो मन्द पड़ गया, लेकिन इस कार्य के लिए राजा को स्वयं प्रयत्नशील जानकर रिल्हण ने कोष्ठक को इस भाँति दोनों हाथों से पकड़ लिया, जैसे ग्राह मछली को पकड़ लिया करता है। रिल्हण ने कोष्ठक को शस्त्रविहीन कर दिया और तब वह रिल्हण के हाथों-रूपी पिंजर में इस प्रकार जकड़ गया कि वह पूर्ण निश्चेष्ट एवं निद्रान्ध सा बन गया। मालूम होता था कि उसके ऊपर किसी भूत ने सवारी भर ली है। उसी समय कुलराज के चचेरे भाई भिखराज ने राजभक्ति के कारण, उसकी गर्दन के पृष्ठ भाग पर अपनी कटार से प्रहार कर दिया। पृथ्वीपाल उसी समय कुठार से उसके शीश पर अघात करने के लिए बढ़ ही रहा था कि राजा जयसिंह ने कोष्ठक को राजवंशज समझकर, पृथ्वीपाल को सक्रोध डाँटकर रोक दिया। गर्दन के पृष्ठ भाग की हड्डी जब कट गयी तो कोष्ठक रक्त में सराबोर हो गया तथा धरती पर छटपटाने लगा। कोष्ठक का सहोदर चतुष्क भी बलशाली कमलिय आदि प्रमुख वीरों के प्रहार से धरती पर गिर गया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे हाथियों ने किसी पर्वत-खण्ड को धराशायी कर दिया है। उस काल मल्लक नामक ब्राह्मण, अपने दो स्वामियों को इस दशा में छटपटाते हुए देखकर, अपनी कटार निकालकर खड़ा हो गया। उसने तुरन्त छोटे-बड़े सभी राजसेवकों पर अचानक प्रहार किया। उस पर राजा जयसिंह की ही दृष्टि सर्वप्रथम पड़ी। मल्लक अन्यान्य योद्धाओं की हत्या करता हुआ, राजा की ओर बढ़ा आ रहा था। उसी समय महातेजस्वी ब्राह्मण की ओर अपनी तलवार लेकर कुलराज भी दौड़ा। व्यायाम-विद्या में प्रवीण कुलराज को जब उसके वध का अवसर इस प्रकार नहीं मिला तो उसने उसको दीवार की ओर से घेर लिया। उस स्थान से हटने, टिकने और अघात करने का अवसर न पाने पर, मल्लक को कुलराज ने वहीं पर रोक रखा। उस अवसर पर बार-बार पैरों के पटकने और हाथ से तल-प्रहार की ध्वनि सुन पड़ती थी, तभी उसने दौड़कर आते हुए पद्मराज को देखा। अवसर देखकर कुलराज ने उसके वक्ष पर प्रहार कर दिया। वह जब मार कर इस प्रकार वापस होने लगा तो मल्लक ने उसका अँगूठा काट लिया। उसके पश्चात् अचानक मल्लक पर विज्जराज टूट पड़ा और बड़ी देर तक दोनों स्वाभिमानी युवक परस्पर ही प्रहार और प्रतिप्रहार करते रहे। इस बीच जब मल्लक ने राजा को देख लिया तो तीनों योद्धाओं से मुक्ति ले वह चतुष्किका के द्वार पर स्थित राजा की ओर बढ़ा। जब कुलराज ने देखा कि वह राजा पर प्रहार करने के लिए लक्ष्य साधना चाह रहा है, तो उसने उसके कूल्हे की हड्डी पर तीव्राघात करके असमर्थ कर दिया। तत्पश्चात् एक साथ ही सभी योद्धाओं ने उसको चारों ओर से घेर लिया। मल्लक उन सब वीरों तथा योद्धाओं को मारता हुआ अन्त में स्वयं भी मर कर रक्त-सिक्त होकर धरती के विस्तर पर सदा के लिए सो गया। इस भाँति जीवित, लेकिन विपत्तिग्रस्त अपने प्रभु के सम्मुख प्राणों को त्याग कर, अन्त में वही सभी वीरों के बीच प्रशंसनीय बन गया। इस घमासान स्थिति में कोष्ठक के अन्य सभी सेवक भाग गये, परन्तु उदारचेता एवं धैर्यशाली जनपचन्द्र नामक

डामर ने उसका साथ नहीं छोड़ा। वह शस्त्रविहीन था। इसलिए एक राजसैनिक से उसका परशु छीनकर उसी से प्रहार करते हुए उसने अनेकानेक राजकीय योद्धाओं को यमलोक भेज दिया। हाथ में परशु धारण किए हुए जनकचन्द्र, सुषुम्णा नाडी का विभाजन करके सूर्यमण्डल में प्रवेश करने के लिए उद्यत हो, जैसे चन्द्रखण्ड के मंडल में समाहित हो गया। किसी भी पति के बन्दी हो जाने पर जो बात कभी न देखी और न सुनी गयी, वहाँ वह भी हो गयी कि कोष्ठक की मानवती भार्या अपने पति के समीप पहुँच गयी। मरणोन्मुख देखकर अपने बान्धवों द्वारा 'जीवित रहोगी, तो तुम्हारा पति तुमको प्राप्त हो जायगा' समझाये जाने पर भी वह उनकी बात को न मानकर अग्नि में भस्म हो गयी। इस प्रकार सप्तर्षि पत्नी के स्पर्श के कारण अपराधी एवं दूषित अग्निदेव, सतीलोक को जाने वाली उस नारी के चरण-स्पर्श द्वारा पवित्र हो गये।

धन्य और उदय के भाई वसन्त की पुत्री ने अपने पवित्र कुल के अभिमानवश डामर-स्त्रियों द्वारा निभाये जाने वाले व्रत का पालन नहीं किया, क्योंकि लवन्य-रमणियाँ विधवा हो जाने के पश्चात् भी धनाभिलाषिणी बनकर ग्राम्य कार्य करती हुई कुटुम्बी जनों के साथ भोग कराती हैं। कोष्ठक-पत्नी ने ऐसा न करने के मतिभ्रमवश संकटापन्न स्वाभिमानी कोष्ठक का मस्तक ऊँचा कर दिया। पुरातन किसी पाप के कारण कोष्ठक के व्रण में कीड़े पड़ गए एवं प्राणान्त के पश्चात् भी वह कई दिनों तक बन्दीगृह में पड़ा रहा। शोक के कारण कृशकाय चित्ररथ तथा मल्लार्जुन को जब कोष्ठक का समाचार ज्ञात हुआ तो उनको अपार कष्ट हुआ।

चित्ररथ की एक मात्र पत्नी सती सूर्यमती पूर्व ही परलोक जा चुकी थी। कारण कि कुमति से कलुषित हृदय वाले अपने पति का कार्यकलाप उस सती-साध्वी स्त्री को रंच मात्र भी अच्छा नहीं लगता था। अतः अपना शरीर त्यागकर वह यहाँ के संताप से भी मुक्त हो गयी। तत्पश्चात् चित्ररथ ने सोचा 'तीर्थ में रहने के कारण मुझ अपराधी पर भी राजा किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करेगा' और ऐसा विचार कर वह किसी बहाने नवमठ से निकलकर मरने के लिए सुरेश्वरी चला गया। इस भाँति चित्ररथ के जाने पर, कुबेर से भी अधिक श्रेष्ठ उसके कुबेर-श्रेष्ठ कोष को, राजा जयसिंह ने मँगवा लिया। उसमें अनेकानेक बहुमूल्य वस्तुएँ भरी पड़ी थीं। स्वर्णखचित वस्त्र, सज्जित अश्व, विविध भाँति के शस्त्र तथा रत्नों से सम्पन्न लक्ष्मी जैसे-जैसे राजकीय कोष में एकत्र की जाती रही, वैसे-वैसे वह जैसे स्पर्धा के कारण बढ़ती जाती थी। इस प्रकार लोहर की विद्रोहाग्नि से शुष्क राजा-रूपी वह वृक्ष, चित्ररथ-रूपी पर्वत से निस्सृत लक्ष्मी-रूपिणी सरिता-जल से सिंचित हो पुनः हरित-भरित हो गया।

विप्लव समाप्त हुए यद्यपि काफी समय व्यतीत हो चुका था, तथापि श्रीकल्याणपुर को उसने उसी प्रकार नहीं त्यागा, जैसे वनवासी के सदृश भयभीत शाल्व ने सौभ को नहीं त्यागा था। तथापि श्वेत छत्र की किरणों की दीप्ति मानो उस पर आकर पड़ गयी हो और वह चिन्ता-भार से पीला पड़ गया, जैसे कि राज्य-लक्ष्मी बन्दिनी बनकर निद्राविहीन दशा में उसके घर में पड़ी हुई थी। उन दिनों ही भव के पुत्र विजय ने राजा जयसिंह के द्वारा नियुक्त किए जाने की शंका से आनन्द नाम के घातक का वध कर डाला तथा उसके हाथों स्वयं भी मारा गया। इस भाँति प्रजापालन में तत्पर राजा जयसिंह की महिमा से समस्त उत्साह से पूर्ण एवं आकांक्षारहित होता हुआ विजय विख्यात हो गया।

चित्ररथ जब तीर्थ मे था, उस समय ही उसके पादाग्रहणाभिलाषी शृंगार तथा जनक नाम के सेवक वहाँ पहुँच गये। उन दोनो ने पहले से ही आपस मे साठ-गाँठ कर ली थी। शृंगार ने प्रचुर मात्रा मे धन देकर जनक को पृथक् करके राजा जयसिंह के पास पहुँचकर अवन्तिपुर मे स्वामी चित्ररथ की राज्य-लक्ष्मी का उपभोग करने का अधिकारी बन बैठा। बहुत दिनो से द्वाराधीश का कार्य करने वाले उदय को शृंगार ने उसी प्रकार अपना द्वाराधीश बना दिया, जैसे वर्षाकालीन सरिता के प्रवाह को तट बना देता है। राजा चित्ररथ ने भोक्तव्य अपने दुष्कर्मों का फल भोगते हुए तथा मार्मिक व्यथा को सहकर आठ मास के पश्चात् अपने शरीर को त्याग दिया।

हास्यास्पद होते हुए भी निर्विकार, विकृत एवं दुर्गन्धपूर्ण होते हुए भी अत्याज्य और अत्यन्त जड (मूढ) होकर भी प्रवचनशील जिस महापुरुष के पूर्वकालीन अनुभावयुक्त विजय की हम स्तुति करते हैं, उसकी स्तुति अतर्कनीय ढंग से करनी ही चाहिए। शृंगार ने बाल्यावस्था मे विशेष दुलार से पलने के कारण विचित्र चित्तवृत्ति वाले चित्ररथ को जुए आदि के निन्दनीय खेल खेलाकर अपने अनुकूल कर लिया था। चित्ररथ की राज्य-प्राप्ति के बाद जिसने रात-दिन सेवा करते हुए राजा की ओर से ताम्बूल प्राप्त करके दूतो के समान दौडकर विभिन्न प्रकार के कार्यों का अनुभव प्राप्त करने के बाद राजा का विश्वास प्राप्त कर लिया। उसके बाद अनेक राजाओं से मेल करके कोषागार पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की। उस समय राजा चित्ररथ के पास कोई मंत्री न था। सज्जक के पुत्र शृंगार ने ही मुख्यमंत्री का पद स्वीकार कर अपनी कुशलता से राज्य को उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था। शृंगार यद्यपि अदूरदर्शी, तुच्छबुद्धि, कुत्सितदृष्टि तथा दुष्कर्मी था, और उसकी सम्पत्ति धनियो के पास चली गयी थी तथापि उसकी वह सम्पत्ति कुत्सित कार्यों मे नही लगी। उसने बहुत-सी स्त्रियो, वस्त्रो और अन्यान्य भोग्य सामग्रियो को एकत्रित करके स्वयं को धनी, वैभवसम्पन्न समझ लिया। वह अपने गुरुजनो के प्रति अन्नदान मे उदारता का व्यवहार करता था। अपनी चाँदी से सुरेश्वरी मे उसने रूपहला सिंहासन निर्मित करवाया तो उस पर सिंहासनासीन होना आवश्यक हो गया। आषाढ पूर्णिमा के अवसर पर उसने नन्दि-क्षेत्र मे प्रचुर धन व्यय करने की एक व्यवस्था कर दी। ऐसी व्यवस्था करने मे प्राचीन राजा भी असमर्थ रहे। सर्वप्रथम चम्पक, फिर अन्य व्यक्तियो द्वारा पथ-निर्देशन मिला और इस प्रकार पाँच-छः वर्षों तक राज्य का निरन्तर उत्थान ही होता रहा। वह व्यक्ति जो हास-परिहास के अवसर पर भी निस्सार ही प्रतीत होता था उसी को स्वामी के स्नेहजनित प्रभाव के कारण अनेक बहुमूल्य अधिकार प्राप्त हो गये, और इस प्रकार वही कल्पनातीत कार्यों का सम्पादन करने लगा। वासुकि नाग जब शंकर जी के गले की माल बना था तो शंका हुआ करती कि युवती पार्वती के नाखूनो से खेल-खेल ही मे उसके कही खण्ड-खण्ड न हो जाये। परन्तु, ऐसा नही हुआ, वरन् वह शिव जी के आदेशानुसार मन्दराचल के लिए रस्सी बना। तो अन्य लोग भी क्यों न अपने प्रभु के प्रताप से शक्तिशाली न बनें। उसके पश्चात रिल्हण तथा धन्य दोनो ने पारस्परिक समझौता करके कुछ घूस देकर जनक एवं शृंगार दोनो का कार्य छीन लिया। एक समय था जब आभूषणो एवं मौक्तिक समेत जनक को शृंगार ने बन्दी बना लिया था और इस प्रकार उसने उसके स्त्री-बच्चो को रुलाया था। जयसिंह ने भी उसी भाँति एक बार उसे अनेको प्रकार से कष्ठ देकर अपमानित कर दिया एवं रूक्ष प्रकृति वाले रक्षको को सौंपकर उससे बहुत-सा धन (उत्कोच) दिलाया था। शृंगार उस समय अँगूठे के नाखून को रगडकर, अनामिका उँगली को नचा-नचाकर, आँखो को टेढी कर और दोनो अधरों को दाहिने-बायें ले जाकर एक विचित्र ढंग की बोली बोला करता था।

भृकुटियो को वक्र करके अनेक प्रकार बल पड़े हुए मस्तक को दिखा-दिखाकर दर्शको को खूब हँसाया करता था। वही उस समय अव्यक्त तथा रूक्ष वाणी का उच्चारण करता हुआ आँखे बन्द करके बहुत ही चिल्लाता तथा ताली बजाकर हँसता हुआ कुछ विचित्र प्रकार का ही दीख पड़ता था। हास-परिहास की सामग्रियो से वह ऐसा सम्पन्न था कि उसकी प्रतिभा का उल्लेख करने ही योग्य होता था। उसका कथा-शरीर न केवल लोक-प्रसिद्धि के लिए पर्याप्त था, बल्कि सहज और सरल जनो के लिए विस्मयोत्पादक भी था। किसी भी योग्यताहीन तथा अवास्तविक काल मे जब लोग तृण की भाँति तुच्छ समझे जाते थे, उस समय भी जयसिंह ने अपनी प्रतिष्ठा स्थिर रक्खी। इस भाँति सर्वथा दृढबुद्धि राजा जयसिंह धर्माचरण के प्रभाव से बड़े-बड़े पुण्यात्माओ मे भी अग्रणी माना जाने लगा।

अपने शत्रु का भी वह जानबूझकर उपकार ही किया करता था, जैसे दावाग्नि से दग्ध जन को चन्दन शीतल किया करता है। वह गुरुजनो, विद्वानो, ब्राह्मणो एव असहायो का तो कुटुम्बी जनो की भाँति पालन-पोषण करता था। उसने विजयेश्वर इत्यादि देव-मन्दिरो पर चूनाकारी कराके कैलाश के सदृश उन्हे धन्य बना दिया। मठो, देवालयो, सरोवरो तथा नहरो आदि के निर्माण और जीर्णोद्धार के लिए वह हमेशा ही तैयार रहता था। कुछ जडप्रकृति जनो की धारणानुसार उसने एक बार अपने सहपाठियो के साथ विद्वेष किया और इस प्रकार वह अत्यन्त ही क्रूर प्रकृति का नरेश था।

किसी समय के किए हुए दुष्कर्म का ही प्रभाव था कि सारे ससार को सन्तुष्ट करने वाला, सातो समुद्रो का भरण एव ब्रह्मादि सभी देवो को तृप्त करने वाला एक श्रेष्ठ कार्य सम्पादित हो गया। उसके कारण देवनदी गगा को कुछ लाघव का अनुभव अवश्य हुआ, लेकिन स्पर्श से राजा सगर के पुत्रो का उद्धार हो गया। कहने का अर्थ यह कि सगर-पुत्रो की अस्थियो का ही प्रभाव था कि गगा जी उस श्मशान-भू पर उतरी और उनके स्पर्श से विश्व के अनेक (अगणित) प्राणियो को मुक्ति मिली। उसी समय परम षड्यन्त्रकारी शिवरथ नामक एक ब्राह्मण भी कायस्थो के मायाजाल मे पड़कर गले मे फाँसी लगाकर मर गया।

इस प्रकार जयसिंह ने राज्य के विभिन्न कण्टको को निर्मूल करके सारे विघ्नो को समाप्त कर दिया तथा अपने सौजन्य के प्रभाव से कश्मीर-मण्डल को सुख लुटाया। शत्रुओ के एकदम नष्ट हो जाने के कारण, उस समय सभी बादलो से अनावृत सूर्य-किरणो की भाँति अत्यन्त प्रभावशाली बन गये। परिणाम मे सुन्दर लगने वाला वह राजा जयसिंह राजाओ के लिए रत्न सिद्ध हुआ, जैसे कि वृक्ष पर ही भलीभाँति परिपक्व द्राक्षाफल अधिक मधुर हो जाता है।

दीर्घावधि तक चलने वाले तथा विशाल दक्षिणा से युक्त अनेक यज्ञो का उसने अनुष्ठान किया। उसी प्रकार विवाह तथा तीर्थयात्रा आदि महोत्सवो को भी उसने सम्पन्न किया। उसने धर्माचरण करने वाले जनो को सामग्री की सहायता प्रदान करके उनसे बड़े-बड़े कार्य सम्पादित कराया, उसी प्रकार जैसे चन्द्रमा अपना तेज प्रदान करके कुल पर्वतो द्वारा औषधि का उत्पादन कराता है। वह राजा पुत्र-पुत्री के विवाह-कार्य एव देव-प्रतिष्ठा आदि के लिए मुक्तहस्त से सामग्री का दान करके सहायता करता था। इमारती लकड़ियाँ राजाओ के लिए कोषवृद्धि की सहायिका होती हैं। इसलिए उसने उनका उपयोग करके सारे नगर को नवीन तथा नागरिको को स्वाधीन बना दिया। वह सदा ही राज्य-कार्य तथा तत्वज्ञान-सम्पन्न जनो के साथ शिवार्चन मे व्यस्त रहता। इसलिए सभी जन उसको विस्मित भाव से देखते तथा मुनि-तुल्य आदरणीय मानते थे।

प्रात से सन्ध्या पर्यन्त कोई भी उसका कार्य ऐसा नही होता था जिसमे विलक्षणता न रहे। अविचार-रूपी अन्धकार मे उस विद्या का प्रकाश ज्योतित रहता था जो जयापीड आदि पूर्वकालीन राजाओ-रूपी मेघो मे चचल विद्युत् के सदृश प्रकाशित थी। रत्नज्योति की भाँति अपनी समस्त स्थावर सम्पत्ति को वितरित करके वह राजा अपने गुण-वैचित्र्य के चित्र मे अविनाशी प्रकाश को स्थापित करने मे सफल हुआ। उस राजा ने युद्ध मे लडने वाले वीरो को राज्य के प्रत्येक क्षेत्र मे नियुक्त कर दिया तथा सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहो के सदृश स्थापित करके वशजो समेत वहाँ का उन्हे स्वामी बना दिया। विद्वानो के लिए तो राजा जयसिंह ने इतने ऊँचे-ऊँचे भवन निर्मित करा दिए थे कि जैसे उनकी छत पर सप्तर्षि आकर उनकी ऊँचाई की माप लेते थे। राजा जयसिंह जैसे सार्थवाह (बनजारो का नेता) को पाकर बुद्धि (प्रतिभाजनित प्रज्ञा) और ज्ञान के मार्ग पर चलनेवाले विद्वान् पथिको की पान्थता निष्कलक बनी रही। शय्या पर शयन करते समय जैसे आर्यराज को शिवजी का अभिषेक कराते समय होने वाली जल की ध्वनि अत्यन्त प्रिय लगती थी। उसी प्रकार राजा जयसिंह वेणु-वीणा आदि वाद्यो को तिरस्कृत करके द्वेषरहित विद्वानों के सयुक्तिक वाद-विवाद को ही अधिक प्रिय समझता था। राजा जयसिंह को वह प्रतिष्ठा अनायास ही प्राप्त हो गयी जो ललितादित्य तथा अवन्तिवर्मा आदि राजाओ को नही प्राप्त हो सकी थी। सभी मठो और देवालयो मे समयानुसार व्यय के लिए उसने समुचित एव एक स्थायी व्यवस्था कर दी। दृढ पद पर स्थित अपने पतिदेव की वल्लभता की भूमि रानी रत्नादेवी द्वारा स्थापित विहार जगती-तल के सभी विहारो से श्रेष्ठ मान्य हो गया। समस्त गुणो मे प्रेमभाव रखने वाला रिल्हण भी सभी मन्त्रियो मे सर्वप्रथम पथिक बना। अपने राजप्रासाद मे भी रहते समय वह राजा, तपोवन, लब्धवर्ण एव धर्मवृद्ध जनो का सम्पर्क कभी भी त्यागता न था। कृष्ण मृगचर्म तथा उभयमुखी आदि प्रमुख दानो और धर्मकन्याओ के विवाहो से उस राजा का समस्त जीवन अशून्य बना रहा। उस महात्मा राजा ने अग्निहोत्रियो के लिए यज्ञ-यागादि के समस्त उपकरण सुलभ कर दिये थे। अत उनकी सारी क्रियाएँ विघ्न-बाधाओ से रहित होकर सानन्द सम्पन्न होती थी। उसके राज्य मे चौंसठ पर्णों के लोग भव्य भोगो का उपभोग करते थे। कारण कि उसका शासन इतना विस्मयपूर्ण था कि उस पर तथा नागरिको पर किसी भी शत्रु की कुदृष्टि पड ही नही पाती थी। उसके दिए हुए विशाल अग्रहार तथा उसके द्वारा निर्मित बडे-बडे मठ और बाँध नगर मे विद्यमान होकर दो विशाल सेनाओ की भाँति प्रतीत हो रहे थे।

राजा के महामात्य रिल्हण ने प्राचीन नगर मे जो शिव-मन्दिर निर्मित कराके रिल्हणेश्वर शिव की प्रतिष्ठा की, वह उस श्रेष्ठ राजा के राज्य-काल की एक गौरवमयी विस्मयपूर्ण घटना थी। उस कुशल राजा ने, परलोक को प्राप्त अपनी प्रियतमा सुस्सला के नाम मलेरक प्रया नामक स्थान मे एक विहार का निर्माण करा दिया। तिर्यग्योनि वाले प्राणियों के लिए उचित स्नेह के स्मरणार्थ एक मार्जारी की मृत्यु के कारण उसी का नाम ससार मे ख्यात हो गया। पति के ईर्ष्यालु हो जाने के कारण उसने उसे त्याग दिया और वहाँ से दूर जाकर रहने लगी। इसीलिए उस प्रदेश में वह क्रीडा-बिडालिका के नाम से एक मानुषी के रूप मे विख्यात हो गयी। सुस्सला जब मरणार्थ तीर्थयात्रा पर प्रस्थित हुई, तभी से उस मार्जारी ने भोजन का त्याग कर दिया और बराबर रोती रही। अन्ततोगत्वा उसी शोक मे उसने प्राणो को त्याग दिया। राजरानियो में रानी दिद्दा और मत्रि पत्नियों में सुस्सला की प्रतिष्ठा अन्तिम सीमा पर पहुँच गई थी। सुस्सला ने चकुण विहार बनवाया था, वह अब नाम मात्र के लिए अवशेष रहा। इसलिए राजा जयसिंह ने अब अनेकों प्रासाद तथा भवन निर्मित कराके

उसका पुनरुद्धार करा डाला। उसे रहट, छात्रशाल, एव प्राकार आदि के द्वारा पूर्ण रूप से सुसज्जित करा दिया गया। प्राचीन राजवंश के अखण्ड स्थण्डिल-व्यापी उस विहार के कारण समस्त नगर नेत्रो को प्रिय लगने लगा। उस विहार की प्रतिष्ठा करने के बाद शीघ्र ही सुस्सला देवी को सुरेश्वरी मे यक्ष्मा रोग का शिकार बनना पड़ा और सायुज्य की दूती के रूप मे रहकर वह मरण को प्राप्त हो गयी।

उसके पश्चात् धन्य ने भी वहाँ अपनी भार्या के नाम पर अग्रहार दिया और मठ का निर्माण करवाया, परन्तु उसको अभीष्ट नाम तथा ख्याति न प्राप्त हो सकी। पूर्वसंचित पुण्य के बिना, किसी को नाम अथवा ख्याति नही मिलती। सेनापति उदय ने भी अपने नाम पर अग्रहार देकर मठ निर्मित करवाया और उसका नाम सदा के लिए अमर हुआ। द्वाराधीश उदय ने ब्रह्मपुरीगण के साथ मठ का जो निर्माण कराया, उससे पद्मसर के तट की शोभा बढ़ गयी। अग्रजन्मा, पुण्यात्मा और तंत्रपति शृङ्गार ने भी श्रीद्वार मे मठ, उद्यान, एव तडाग का निर्माण कराया। उस बृहद् गजाधिप ने भी स्नानकोष्ठ, ब्रह्मपुरी तथा सेतु आदि का निर्माण कराकर धरती को अलकृत किया। वह कवि एव एक असाधारण दानी था। इसलिए उसका त्याग लोक-विख्यात हो चुका था। वह एक पूर्ण वैष्णव था और नृसिंह भगवान् की आराधना करता था। इसलिए उसने वराह-क्षेत्र मे निर्हिस्र हिरण्यकशिपु की प्रतिमा की स्थापना करके गोदान किया। भट्टारक मठ के ही समीप पूर्ण सजधज समेत शृङ्गार-भट्ट का भी मठ निर्मित हुआ था, परन्तु उसकी ख्याति विशेष नही हुई। दार्वाभिसार नामक राजा के सन्धि-विग्रहिक तथा पुण्यकर्मा जट्ट ने अष्ठमूर्त्ति की स्थापना की थी।

ससार के समस्त वृक्ष जाति मे करवीर का भी एक मुख्य स्थान तथा उसकी पुष्पाकर-प्रणय-भूमि-स्वरूपा अपनी एक सुन्दर विभूति है। कारण कि उसके सुमन शकर जी के एक विशेष स्वरूप को सफल बनाते हैं। राजा जयसिंह ने यद्यपि अपनी समस्त सम्पदा का वितरण अपने मन्त्रियो मे समान रूप से किया था, लेकिन उन सब मे जल्ह के अनुज भुट्ट ने सर्वाधिक उत्कर्ष प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त की। कारण यह था कि उस जितेन्द्रिय पुरुष की पूजा को प्रत्यक्ष रूप मे प्रकट होकर बालकेश्वर नामक ज्येष्ठ रुद्र स्वय स्वीकार किया करते थे। उसने विहार, मठ तथा ऊँचे-ऊँचे अनेक भवनो से सम्पन्न पवित्र भुट्टपुर नामक नगर बसाया था। धर्म के दर्पणस्वरूप उस पुण्यात्मा ने नगर के भुट्टेश्वर नामक शिव को प्रतिष्ठित किया तथा मडव ग्राम मे एक तालाब भी खुदवाया। अपने निवास-स्थान के निकट ही अनेक भवनो के साथ वैकुण्ठ-मठ आदि की स्थापना करके रत्नादेवी ने अपना नाम अमर कर दिया। रत्नापुर के अनेक द्वारो के मध्य स्थित वह पवित्र मठ उसके सुकृत-रूपी शुभ्र हस के समान देदीप्यमान् प्रतीत होता था। रत्नादेवी के द्वारा निर्मित तथा अगणित धवल प्रासादो के मध्य स्थित मृत्युञ्जय का मन्दिर देखने से मालूम होता था कि भगवान् ने स्वय जनसामान्य की अनित्यता का उच्छेद करने के लिए श्वेतद्वीप का निर्माण कर दिया हो। महारानी रत्ना ने जिस गोकुल का निर्माण करवाया, उसके समक्ष अनेक गोकुलो के निर्माता शूरवर्मा आदि राजे तृण के समान तुच्छ प्रतीत होने लगे। कारण कि रत्नादेवी के गोकुल मे गायो के स्वच्छन्द गति मे विचरण करने, चरने और निर्मल जल का पान करके स्वस्थ रहने की पूर्ण सुविधा थी। आश्चर्य, सौन्दर्य और औदार्य के आगार-स्वरूप मुकुन्द भगवान् का गोवर्धनधर मन्दिर इतना भव्य था कि उसे देखकर यह दृढ विश्वास हो जाता था कि विश्वकर्मा भी इतना सुन्दर मन्दिर नही बना सकेगे। रत्नादेवी इस

प्रकार मठो तथा जयवन आदि मे सुन्दर विहारो का निर्माण कराके नन्दि-क्षेत्र मे रहने लगी। दार्वाभिसार मे उन्होने अपने पतिदेव के सौंदर्य एव औदार्य के निकेतनस्वरूप उसके नाम पर इन्द्रपुर के सदृश एक भव्य नगर का निर्माण कराया। आश्रितवत्सला उस रानी रल्हादेवी ने राज्य-कार्य का सम्पादन करते हुए मरने वाले प्रमुख अधिकारियो एव मन्त्रियो के नाम पर भी अनेक देवताओ की स्थापना कर दी। इस प्रकार कश्मीर भूमि को अलकृत कर देने के पश्चात् उस महारानी ने धरती के अलकारस्वरूप एक मठ का निर्माण अपने नाम पर भी करा दिया।

सहज एव निरभिमान भाव से राजा ने जो अनेक ग्राम दान मे दिए थे उनमे से मुख्य ग्राम को विज्ञ लोगो ने सिंहपुर के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। कारपथएवेश के दौहित्र ने भूमिदान देकर अनेक सिन्धी, विविड तथा द्राविड ब्राह्मणो को बसाया जो पूर्व मे ही कश्मीर राज्य की छत्रछाया मे निवास करते थे। तो फिर उसके द्वारा निर्मित मठ आदि की प्रशसा करने से कोई लाभ नही, जबकि उसने समस्त कश्मीर-मण्डल के ग्रामो को नवीन रूप मे बसा दिया था। भयकर काल के प्रभाव से जीर्ण-शीर्ण तथा अरण्य के समान उजडे हुए कश्मीर को उसने धन-जन से सम्पन्न करके पुन वसा दिया। राजा जयसिंह ने, अभिलषित दान का व्रत धारण करके आरम्भ से ही उच्चकोटि के शिल्पियो द्वारा मठ और देवालयो का निर्माण कराने मे ही मन लगाया था। उस राजा ने अन्न कोष, वस्त्र तथा रत्न आदि के विषय मे असूयाहीन रहकर राज्य के सभी नागरिको को समान रूप से धनाढ्य बना दिया था। अत वे विभिन्न प्रकार के उत्सव किया करते थे। परन्तु, अचानक हिम-पात और अग्निकाण्ड आदि उपद्रवो के कारण धान की खेती नष्ट हो जाने से वहाँ पहले की भाँति सुभिक्ष नही रह गया। राक्षसो ने रात्रिकाल मे जो अद्भुत बात कही थी, तदनुसार धेनूदय आदि के उपद्रव दृष्टिगोचर तो अवश्य हुए, लेकिन प्रजा नष्ट होने से बच गयी। कोष्ठेश्वर के छोटे भाई छुड्ड ने उन दिनो ही विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। राजा जयसिंह ने युद्धो तथा गुप्त दण्डो द्वारा उसका वध करा डाला। फिर उसने विक्रमराज आदि राजाओ को ध्वस्त करके वल्लापुर आदि के राजाओ गुल्हण इत्यादि को सर्वाद्धित किया। कान्यकुब्ज आदि देश के राजाओ को उस राजा-रूपी सूर्य ने भव्य भूभाग के वैभव का स्वामी बना दिया। दरददेश के नरेश यशोधर को, जो कुत्सित मन्त्रणाओ के कारण कुपथगामी हो गया था, उसने एक वार जीवित दमिन्द्रय का भोग करने वाला विवश करके वना दिया था। दरद देश जो, जयसिंह की भूमि के सन्निकट ही था, के राजा की अनेकधा सेवाओ से आकृष्ट होकर वह वहाँ की आन्तरिक स्थिति से अनभिज्ञ रहते हुए भी प्रजा-वर्ग पर आयी प्राकृतिक आपत्तियो के कारण चिन्ताग्रस्त हो उठा। दरद देशीय राजा यशोधर का एक मत्री विड्डसीह अपनी धूर्त्तता से उसकी रानी का उपपति बन बैठा, और उसके साथ भोग का आनन्द उठाकर उसके एक अबोध बालक को वहाँ का राजा घोषित कर दिया। धीरे-धीरे उस मत्री ने समस्त राज्य और सारी पृथ्वी पर अपना अधिकार करने के पश्चात् उस नाम मात्र से शिशु 'राजा के वध की जैसे ही योजना बनायी, वैसे ही एक अन्य मत्री पर्युक ने यशोधर के दूसरे पुत्र को भी राज्य का राजा घोषित करके स्वय उसका मत्री बनकर शासन सचालित करने लगा। इस प्रकार वे दोनो मत्री, कश्मीर की अवहेलना करके दरद देश मे द्वै राज्य शासन करने लगे। समर्थ कार्यकर्त्ताओ सजपाल आदि मत्रियो को उन्होने पदच्युत् कर दिया।

सज्जि के अप्रौढ पुत्र और अपने छोटे भाई श्रृङ्गार को उस पर्युक मत्री ने अपने लिए प्रमुख सलाहकार नियुक्त कर लिया, और समस्त अधिकार उसी के हाथो मे सौंपकर शासन सचालित करने

लगा। राजा यशोधर को उसकी यह सारी धूर्त्तता ज्ञात रहने पर भी निर्बल होने के कारण उसके द्वारा उसका कोई प्रतिकार नही हो पा रहा था। अपूर्व कश्मीर-मण्डल के अन्तर्गत दरद देश का शासन-सूत्र इस प्रकार हाथ मे आ जाने से, विशालता के कारण तेजस्वी बने नये मंत्री कहाँ कार्य के तत्त्वज्ञ, और स्थिर प्रतिभा से युक्त राजे तथा कहाँ बालकों और मूर्खों के समान व्यवहार-ज्ञान से शून्य प्रजा। हठात् इस प्रकार की स्वच्छन्दता का आचरण करने वाले नरेशो को धिक्कार है। कारण कि वे नरेश स्वार्थी थे और स्वार्थसाधक विपक्षियो की मन्त्रणा के अनुसार राज्य के विद्वानो का विनाश करना चाहते हैं, और वे सेना, भूमि, दुर्ग तथा कोष इत्यादि के ज्ञान करने का प्रयास नही करते। ये पार्श्ववर्ती नरेश अपने सहायको से मात्र प्रतिक्रिया हेतु सलाह की इच्छा करते हैं। इस प्रकार के मित्र-रूपी शत्रु अत्यन्त चिन्तनीय हैं। सहायक युक्ति के साथ जब उनके शत्रु अपनी बात की रक्षा करते हैं, तो मात्र कार्य-सन्दर्भ के ज्ञाता बगुले के सदृश मूर्ख ये राजे क्या कर सकते हैं? पारस्परिक भेद-रूपी तट के ढह जाने से, दरदराज-रूपी महावृक्ष धराशायी हो गया, और तब उन अशिक्षित मन्त्रियो के सम्हालने से वह उसी प्रकार नही सम्हल सका, जैसे कई नदियो के बीच स्थित वृक्ष नही सम्हल पाता। सकटापन्न स्थिति मे आलस्य के कारण पर्युक ने अनेक प्रकार से घूस आदि देकर कार्य साधने का प्रयत्न किया, लेकिन वह दरद राज्यवर्त्ती दुग्धघात नामक किले तक पर भी अपना अधिकार नही स्थापित कर सका। विड्डसीह ने इसी समय पर्युक से सन्धि कर ली और सज्जि-पुत्र शृगार के चले जाने पर तुरन्त कश्मीर-नरेश जयसिंह पर रोष प्रकट करने लगा। प्रधानमन्त्री के पद पर प्रतिष्ठित रहकर कुछ काल पर्यन्त शृङ्गार सर्वाधिकार सुख भोगकर सकटग्रस्त स्थिति मे मृत्यु की कामना करने लगा। एक बन्दर जिस प्रकार वृक्ष पर चढकर उसके फलो के खा लेने पर चल देता है, ठीक उसी प्रकार वह भी समस्त सुखो का भोग करके परलोकवासी होना चाहता था।

लक्ष्मक जब तक प्रधानमंत्री पद पर था, कश्मीर राज्य का समस्त शासन-कार्य निष्कण्टक चला, परन्तु उसके पश्चात् निर्झर जल की भाँति जन शतश मार्गों के राही बन गए। राजा की सम्मति पर चलकर सम्मान प्राप्त करने वाले अन्य मन्त्री भी उसी समय काल के भक्ष्य बन गये। अब उस सहजस्वभाव राजा के विवेक की प्रशसा कहाँ तक की जाय जिसने मृत मन्त्री के पुत्र को मन्त्री-पद पर नियुक्त कर दिया। उसके पश्चात मन्त्रियो के अधीनस्थ कर्मचारियो ने एक नयी युक्ति निकाली और निर्लज्ज होकर वे राजा की लक्ष्मी को अपनी गृहिणी की भाँति खीच-खीचकर अपना घर भरने लगे। उस समय यदि किसी स्वामी की मृत्यु होती तो राजा को बिना कोई सूचना दिए ही सेवकगण मृतक के पुत्र के सरक्षक बनकर उसकी सम्पत्ति स्वय उदरस्थ कर लेते थे। उन सब मे एक सहज नामक भृत्य ईमानदार था, जिसने कोष के रक्षक कर्मचारी विश्व की मृत्यु होने पर सही अर्थों मे सरक्षक का कार्य निभाया। राजा ने यद्यपि उसी को कोष-रक्षक का कार्य स्वीकार करने की प्रार्थना की, लेकिन उसने स्पष्ट अस्वीकार करके विश्व के पुत्र को उस पद पर नियुक्त करा उसी को बौद्धिक सहायता देता रहा। उन स्वामियो को धिक्कार है जो निष्ठाहीन अपने सेवको को भी क्रमश उत्साहित करते रहते हैं।

जो गंगा जी पहले ब्रह्मा के कमण्डल मे मात्र आचमन योग्य थी, बाद मे वही त्रिलोकी को लाँघने के श्रम से व्यथित विष्णु भगवान के लिए श्रमहर्त्री बन गयी और उसके बाद शकर जी ने उन्हे अपने मस्तक पर स्थान दे दिया। ठीक ही है जब कोई स्वामी (महान्) किसी जड पदार्थ को भी

सम्मानित कर देता है तो अन्य स्वामी भी उसका आदर करने लगते हैं। जिस दुर्नीति-वृक्ष की उत्पत्ति सुज्जि के निर्वासन से हुई और जिसको सुज्जि-तनय शृंगार की मूर्खता से विकास प्राप्त हुआ, उसके फल अब दिखायी पड़ने वाले थे। दूसरी ओर लोठन निष्कण्टक राज्य-प्राप्ति की उत्कण्ठा से अपने दूतों द्वारा क्रुद्ध विहुसीह को दो तीन वर्षों तक उसकाता रहा। अभी तक लोठन अपने उत्थान में हताश नहीं हुआ था। वह राजा शूर के संरक्षण में रहकर अपने परिवार के सहित भरण-पोषण हेतु कृषि तथा वाणिज्य आदि कार्य करता था। उसके पश्चात् वह दरद के मन्त्रियों के सम्पर्क वाले अलकारचक्र आदि डामरों के साथ पूरी शक्ति से षड्यन्त्र रचने लगा। वह क्षुद्र जनकभद्र जिसकी सहायता से उसने पर्वतीय दुर्ग पर अधिकार-प्राप्ति हेतु प्रथम यात्रा की थी, मर गया। इस प्रकार प्रस्थित होकर कर्णाढ इत्यादि जिन-जिन स्थानों पर वह पहुँचा, वहाँ के कुछ लोगों ने तो उसे देखकर विद्रोही समझा तथा कुछ ने सज्जन। राजा जयसिंह शठता के कारण उसकी इस प्रकार की आक्रमण के लिए तत्परता देखकर भी उपेक्षा करता रहा। विद्रोह के सहायकों ने जब समस्त आवश्यक सामग्रियों को देकर लोठन को भली-भाँति शक्तिशाली बना दिया, तब महाराज जयसिंह ने अपने द्वाराधीश उदय को प्रेषित किया। उदय, शंकरवर्मा के नगर में जब सेना की तैयारी में लगा था तो उसे मालूम हुआ कि लोठन अलकारचक्र के पास पहुँच गया है। साथ ही उसने यह भी सुना कि सुस्सल के पुत्र विग्रहराज और सल्हण के पुत्र भोज, ये दोनों भी उसके साथ आए हैं। ऐसी स्थिति में उदय ने उनके उत्थान को वहीं पर शिथिल कर देने की इच्छा से कई दिनों के मार्ग को एक ही दिन के अन्दर पूरा कर लिया।

डामर, लोठन के झूठे प्रलोभनों में अपने साथियों को फँसते न देखकर तथा उदय के आक्रमण से विचलित होकर भाग निकला। उस डामर के भाग जाने से लोठन शिरशिला नाम के दुर्ग में चला गया, जो सिन्धु, मधुमती तथा मुक्ताश्री नदियों के बीच में स्थित था। द्वाराधीश उदय, वहाँ पहुँचकर इस चक्कर में पड़ गया कि इस सघन वन वाले किले में लोठन है अथवा नहीं। बड़ी दूर तक का चक्कर काटने के पश्चात् भी वह कोई निश्चय न कर सका। परन्तु, उसको किले पर चढ़ने वालों के पदचिह्न से प्रतीत हुए तो उसे शंका हो गयी। कारण कि उसके स्वामी जयसिंह का प्रभाव देव से भी अजय था। लोठन ने जब आक्रमण की तैयारी के लिए सेना का संगठन किया तो उस संकट-काल में उसके सभी दस्यु साथी उसको त्याग कर उसी प्रकार भाग गये, जैसे बरसात में मछलियाँ छोटी-छोटी तलैयों को छोड़कर भाग जाती हैं। उस समय चतुर मायावी लोठन ने अपने विकार को छिपाने में सशक्त त्रिल्लक आदि से परामर्श करके एक नयी माया फैलायी। उसके अनुसार उसने समस्त गाँवों तथा नगरों में आग लगानी प्रारम्भ कर दी। ऐसा करने में उसे पद-पद पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता, लेकिन उसके साथी उससे बच जाते। कल्पान्त में उदय होने वाले ब्रह्मपुत्र केतु के सदृश लोठन कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ सभी दिशाओं में घूमने लगा।

इस विषम परिस्थिति को दूर करने के उपायों को सोच-सोचकर जब सभी मन्त्रिगण थक गए तथा सन्धि का भी कोई अवसर न देखकर कहने लगे कि अब मडवराज्य की समस्त पृथ्वी कश्मीर-नरेश के अधिकार से चली जायगी। इस भाँति उस वैरी का जब कोई प्रतिकार न हो सका तो दिनोंदिन आक्रमण के लिए उसे उन्मुख देखकर राजा जयसिंह ने धन्य को उदय के सहायतार्थ प्रेषित किया।

उस समय लोगों की ऐसी धारणा बन गयी कि द्वाराधीश ने जिस काम का उत्तरदायित्व लिया है, उसमे उनको या तो लज्जित होकर तटस्थ हो जाना पडेगा अथवा पराजय स्वीकार करनी पडेगी। भिक्षु, मल्लार्जुन तथा लोठन तीनो एक ही थे, परन्तु सारी प्रजा के लुटेरी हो जाने पर दु साध्य स्थिति उत्पन्न हो जाती है। द्वाराधीश उदय महाराज जयसिंह के साथ सदा निष्कपट व्यवहार करता था। इसलिए वह मन ही मन अपनी समस्त प्रसिद्धियो का मोह छोडकर उनकी कार्यसिद्धि के लिए प्रयत्नशील हुआ। एकाकी रहकर भी स्वामी के कार्य मे मूढता न करने वाला अथवा बहुतो के अधीन रहकर उदासीनता न करने वाला और अपने निष्कपट व्यवहार से स्वामी की कार्यसिद्धि के लिए सदा तत्पर रहने वाला मन्त्री या सेवक राजा के प्रचुर पुण्य के प्रभाव से ही उसे प्राप्त होता है। राजा पचचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसके जिस अनुज षष्ठचन्द्र को गद्दी पर बैठाया गया था। वह भी अब कुछ कर दिखाने के लिए तत्पर हो गया। द्विबाहुक आदि मुखिया एव अन्य बाहरी राजोपजीवीगण गायको तथा चारणो समेत धन्य के साथ चल पडे। जब धन्य आदि सभी जन सिन्धुतटवर्त्ती तिलग्राम मे पहुँचे तो व्यक्तियो से मार्ग पूछता हुआ द्वाराधीश उदय प्रज्ञ ग्राम मे पहुँचा। वह युद्ध हठता के साथ प्रवेश योग्य न था। कारण कि उसका नायक निश्छल था और समय व्यतीत करता हुआ शत्रु के धैर्य और गाम्भीर्य को शने-शनै शिथिल कर रहा था। दूसरी ओर धन्य तमाम मजदूरो को लेकर मधुमती तट पर, नगर के मार्गों से स्पर्धा करने वाला (एक) मन्दिर का एक अद्भुत् मार्ग निर्माण कराने मे व्यस्त था। वह मार्ग यद्यपि गहन अन्धकारयुक्त नही था, परन्तु वृक्षो की सघन झाडियाँ अवश्य थी। उस वनस्थली मे यन्त्र-तन्त्र भवन बने हुए थे। उस स्थान पर भी शक्तिशाली धन्य ने समस्त सुख-सुविधाओ से युक्त सैन्य का सगठन कर डाला।

हेमन्त ऋतु के कारण वहाँ अत्यधिक मात्रा मे बर्फ जमी हुई थी, परन्तु राजा जयसिंह के भाग्य से सूर्य का प्रकाश फैल गया और धरती युद्ध के योग्य हो गयी। विजयाभिलाषी राजा जयसिंह का आदेश यद्यपि उस समय द्वैराज्य के कारण कभी-कभी अवरुद्ध हो जाया करता था, तथापि ससार भर मे अद्भुत् गिनी जाने वाली सामग्री उसने रणस्थल मे भेजी तथा उसके इस कार्य मे हस्तक्षेप नही किया।

प्रारम्भ मे ही कुछ बाधाएँ एव भय की शकाएँ अवश्य हुई, कारण कि ऐसे युद्धोद्योग से ग्रामो पर बहुत बडा भार आ गया था, जिससे वे ग्रामीण कराह उठे थे। सेना मे स्थिरता स्थापित करने के लिए उस राजा ने दीर्घकालीन प्रवास से आगत सैनिको पर क्रोध दिखाकर और कार्य मे सलग्न लोगो को पुरस्कार देकर व्यवस्थित किया। इस प्रकार तीन-चार मास पर्यन्त छावनी डाले पडी हुई उस निष्ठुर सेना को वह किला एव उसके निवासी न मिल सके। उन सैनिको ने किले मे जाने वाली अन्न, घास और ईंधन आदि समस्त सामग्री पर रोक लगा दी, परन्तु किले के निवासियो मे किसी प्रकार की दीनता का आभास न मिला और न उनका कोई अहित हो सका। डामर लोग उस किले के भीतर अकुरित पर्वतो के सदृश हेमन्त ऋतु व्यतीत होने पर अपना पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए बैठे हुए थे। उस समय कृषक कृषि-कार्य को और द्विज अपने वेदपाठ को त्याग कर सुसगठित होकर शस्त्रो से सज्जित गाँवो मे तैयार बैठे थे। दूसरी ओर दरद देशीय सैनिक सुसज्जित विशाल अश्व-वाहिनी से सनाथ होकर विजय की इच्छा से मार्ग के राजा बर्फ के पिघलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अपने पडाव मे स्थित राजसेना रूई के ढेर-सदृश तथा कालरूप बर्फ गिरने की सम्भावना से कम्पित हो जाती थी। राजा ने शत्रु के सामर्थ्य का सम्यक् ज्ञान किए बिना जो मिथ्या कार्यवाही कर डाली,

उससे विजय-प्राप्ति की सम्भावना सदिग्ध हो गयी । चातुर्य से तृप्त लोगों को ठगने का एक उचित प्रकार है कि वे अपनी शक्ति पर शंकित होकर मूर्ख शत्रु के प्रति किए जाने वाले विचार से हतोत्साहित होकर विमुख हो जाते हैं । शत्रु के प्रबल परिकरों की अफवाह मात्र के श्रवण से भयभीत हो जाने वाले व्यक्ति की बुद्धि अन्धी तथा कार्य की सिद्धि उसके कर्म से नष्ट हो जाती है । यदि कमल हाथी को डरा सके तो उसे भ्रमर बीध डाले तथा बड़े-बड़े पत्ते उसे घर दबोचें । उसके चिन्ता, सहनशील और मिथ्या-प्रसिद्ध परिकरों समेत साहस जवाब दे दे और वे वर्षा के पूर्व ही उन्छिन्न हो जायँ । लोठन आदि यदि किसी प्रकार कर्णाह-दुर्ग से निकल पड़े तथा अलकारचक्र उनका अग्रणी बन जाय तो राज्य को विजित कर अधिकार-सीमा में ही समझना चाहिए । यूथ के ही लोगों ने इस प्रकार की मिथ्या कल्पनाएँ करके और द्वाराधीश उदय ने व्यर्थ की दौड़-धूप करके शत्रुओं को आक्रमण करके लिए अवसर प्रदान कर दिया ।

राजा के सैनिक जब छावनी में रहने से असमर्थ हो गए तो उन्होंने किला छोड़ देने का विचार किया । दूसरे दिन वह द्वाराधीश उदय स्वयं उन राजकीय योद्धाओं के पास गया । उस दुर्ग के पर्वत का अग्र भाग पतला होकर पानी में प्रविष्ट था और पृष्ठ भाग अत्यन्त विस्तृत । इस प्रकार वह राज-सेना को निगल जाने के लिए एक बगुले की भाँति प्रतीत होता था । गज से रहित गजागार की भाँति भीषण उस पर्वत एवं किले को देखकर राजकीय सैनिकों ने विजय की आशा छोड़ दी तथा मन ही मन अत्यधिक भयभीत भी हो गये । इसी बीच किले के अन्दर वालों ने बाणों तथा पत्थरों की भीषण वर्षा प्रारम्भ कर दी । ऐसा होने से राजकीय सेना में भगदड़ मच गयी । सभी अपने प्राण तथा शस्त्रास्त्र बचाने में लग गये । विरोधियों को भयभीत करके, इस प्रकार उस डामर लोठन ने अपनी स्थिति सम्हाल ली, क्योंकि उस समय उसकी नीति आत्म-रक्षा की थी, न कि आक्रमण की । परन्तु, तिलग्राम में स्थित आक्रमण के लिए तैयार राजा की विशाल वाहिनी का प्रतिकार करने में स्वयं को अशक्त जान किले के अन्दर रहने वाले लोठन के साथी चिन्ताधिक्य से दुर्बल होते जा रहे थे ।

इस प्रकार उनको उदास देखकर असाधारण बुद्धिवाला लोठन अपना काम करने से विमुख डामरों को डाँट दिया करता था । उसका भतीजा भोज नित्य 'शत्रु ने किले पर आक्रमण कर दिया तो क्या होगा, कहता हुआ व्याकुल रहता और व्याजस्तुति के साथ सेवा में रत रहता । लोठन उसे उदास देखकर जब उससे विमुख हो जाता तो महाशठ भोज उसकी सांत्वना का स्मरण करके उसकी मन्त्रज्ञता का कायल हो जाता । जिससे हृदय को कुछ शान्ति मिल जाती थी । भोज कभी-कभी यह भी सोचता कि यदि ये लोग कहीं मुझे छोड़कर यहाँ से भाग गये तो राजा मुझे मार अवश्य देगा अथवा यह भी सम्भव है कि मुझे छोड़ दे । इसलिए लोठन जब भी किले से निकलकर भागने की सोचता तो भोज उसे टोक देता । वह कभी-कभी यह भी कहने लगता कि हमको और आप सबको यदि राजा के सैनिकों ने घेर लिया तथा उसके पश्चात् वे प्रबल शत्रु होने वाले प्रत्याक्रमण से निश्चिन्त और निरुद्यम हो गए, तब वे जो कुछ भी करेंगे उसे हम झेलेंगे । अब आप मुझे छोड़ देने की कृपा करें । इसी बीच यदि अन्यान्य लवन्यों के साथ दरदेश वेगपूर्वक आ गया तो मैं सबको बन्धनमुक्त कर दूँगा । इस प्रकार की युक्तिसंगत बात करके भोज ने लोठन डामर को कुछ सीमा तक अपने अनुकूल कर लिया । उसके पश्चात् डामर ने कहा "आज रात मैं तुमको छोड़ दूँगा ।" रात बीत जाने पर कहा "कल तुम्हें छुटकारा अवश्य मिल जायगा ।" इस प्रकार वह उदार डामर क्षण-क्षण टालता रहा ।

जब मार्ग के अवरोधक राजसैनिक काफी दूर जाकर कुछ निश्चेष्ट हो जाते तो लोठन के सैनिक बाहरी गाँव से अन्न लाकर उस दिन का काम चलाते। किसी प्रकार वे दिन काट रहे थे। दूसरी ओर समय की गतिविधि का अनुमान लगाकर धन्य आदि ने राजा को शत्रु से सन्धि करने की सलाह दी। परन्तु, विभिन्न प्रकार के निमित्तों का स्मरण करके राजा ने सन्धि-प्रस्ताव को अनुचित ठहराकर किले को चारों ओर से घेर लेने का आदेश कर दिया। साथ ही राजा ने अपने बान्धवों के पास यह सन्देश भेजा कि यदि लोठन डामर के यहाँ से भागकर आपके यहाँ पहुँचे और कुछ घूस देकर निकल जाना चाहे तो उसे उलझा रखिए। कारण कि पहले कठोरता का व्यवहार करने के बाद दया दिखाने का परिणाम अत्यन्त बुरा होगा और उस परिस्थिति में शत्रुओं से नीचा देखना पड़ेगा। यदि हर्षदेव ने कई सप्ताह तक अपना उद्यम न त्यागा, तो वह दुग्धधारा प्राप्त कर लेगा, जिसे सुनकर अन्य लोगों को भी सन्ताप का अनुभव होगा। अपने शुभाशुभ कर्मों का फल सबको भोगना पड़ता है। कारण कि कर्मफल समस्त त्रिलोकी के मुख तक जा पहुँचता है। पक्षधारी चींटा पक्ष तथा पैर दोनों के रहने पर भी धरती या आकाश पर न टिककर पगु तथा अन्ध के सदृश गड्ढे में जा गिरता है। ऐसी दशा में यही कहना पड़ता है कि सम्पत्ति प्राणी की गति को नियन्त्रित नहीं कर पाती। सहस्र किरणधारी भगवान सूर्य को गति प्रदान करने के लिए उस से हीन रहकर भी अरुण आगे-आगे चलता है। यदि अरुण के दोनों पैर होते तो इससे अधिक वह और क्या कर लेता। इसलिए अब इस साक्ष्य को त्याग कर चारों ओर से दुर्ग को घेर लीजिए जिससे यहीं पर हमारे तथा उसके व्यक्तियों का निर्णय हो जाय।

अविराम गति से प्रवाहित पवन अग्नि का काम कर देता है और शाश्वत गतिशील जल बड़े-बड़े पर्वतों को छेद डालता है। इसी प्रकार संसार में तन्मयता के साथ किया गया कार्य अतुल वैभव-सम्पन्न तथा असम्भव सिद्धि की भी प्राप्ति करा देता है।

राजा जयसिंह की इस क्रूर आज्ञा को सुनते ही धन्य आदि सभी योद्धा मार्गों को छोड़कर उस किले की ओर बड़ी तेजी से बढ़े। किले के अन्दर स्थित बाणों की वर्षा करने वाले जन, यह सोचकर कौतुक देखने में व्यस्त हो गये कि ये लोग कैसे लड़ेंगे और किस प्रकार टिक पायेंगे। इतने में किले के निम्न भाग में स्थित धन्य ने तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया और किले वालों को पीस डाला तथा नगर के समान उस प्रदेश को निर्जन बना दिया। इस युद्ध में दोनों ओर के योद्धाओं ने अगणित सैनिकों का वध कर डाला और युद्ध क्षण-प्रतिक्षण उग्रतर होता जा रहा था। दूसरे दिन गर्ग-पुत्र षष्ठचन्द्र वहाँ पहुँच गया। वहाँ की देवी शारदा की आराधना करके उसने असंख्य वीरों का वध करके इन्द्र की नगरी अमरावती की जनसंख्या में वृद्धि कर दी। बाह्य राजस्थान (बाहरी कचहरी) के मंत्री अलकार ने अनेक शत्रुओं का वध कर डाला। कारण मानवीय युद्ध में उसे कोई परास्त नहीं सकता था। कहाँ जमीन पर खड़े लोग और कहाँ पर्वत वाले! इनके बीच भला कैसी स्पर्धा? तथापि राजा की अकूत यान्त्रिक सामग्री-सम्पन्न सेना ने असम्भव को सम्भव कर दिया। किले में कुछ थोड़े से और राजसेना में बहुत से लोग थे। अतः किले वाले राजसेना के अनेक वीरों को मार कर भी कोई क्षति न पहुँचा सके। दो ही तीन बार के युद्ध में किले के द्वार बन्द हो गये। उससे ऐसा प्रतीत होने लगा कि भयवश स्वयं किले ने आँखें मूँद ली हैं।

दोनों पक्षवाले पारस्परिक छिद्रान्वेषण में दत्तचित्त थे। परन्तु, धन्य आदि की स्थिति को देख कर किले वालों को अपनी विजय पर विश्वास नहीं हो रहा था। दिन में सभी सोते थे जिससे सारा

किला एकदम सुनसान-सा रहता और रात में पारस्परिक द्वेष के कारण एक दूसरे को जगाने (निद्रा-भंग) करने के लिए चिल्लाया करते थे। रात्रि के समय दोनों ही पक्ष के सैनिक क्षण-क्षण पर दामतूर्य के बजने पर भी ठीक उसी प्रकार भयभीत रहते थे, जैसे घोसले में बैठा गौरैया पक्षी मेघ-गर्जन से डरा करता है। नदी का जल रात-दिन की नौका-दौड से अवरुद्ध हो गया था और राजकीय सैनिक शत्रुओं को हर प्रकार से चक्कर में डाल रहे थे। शत्रु के सैनिक काफी समय तक प्यास का कष्ट तो सहते रहे, लेकिन संचार के अवरोध से जब भोजन में बाधा पडने लगी तो वे अपना धैर्य खो बैठे।

राजा जयसिंह के वे भाग्यवान् कुटुम्बी जन जो राजसी भोग के अभ्यस्त थे, वे इस समय तुच्छ अन्न ग्रहण करके सन्तुष्ट थे। अब उनकी सारी लालसाएँ समाप्त हो गयी थीं। उन्हें जब क्षुधा पीडित करती तो स्वयं और सेवकों के लिये नयी खोजें करते थे। भोज ने उसी समय कहा "हम लोग यदि यहीं पर एकत्र हो जाते हैं तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जायगा।" उसका यह कथन सुनकर अलंकारचक्र ने उसे किले के मध्य भाग से हटा दिया। उनमें से एक लोठन बहुत वृद्ध तथा दूसरा विग्रहराज एक वेश्यापुत्र था। अतः इन्होंने राज्य का भार सम्हालने के लिए भोज को ही सबने समर्थ समझा। अलंकारचक्र को भली भाँति यह ज्ञात था कि शत्रु भोज के बिना भली भाँति प्रयास न कर सकेंगे। यह सोचकर उसने किले के बाहर यह प्रवाद फैला दिया कि भोज भाग गया। सल्हण-पुत्र भोज जो चारों ओर पता लगाया करता था, सुना कि षष्ठचन्द्र के सौन्दर्य को देखकर अलंकारचक्र की पत्नी उससे प्रेम करने लगी है तथा अलंकारचक्र को समाप्त कर देने की इच्छा से उसने सारे गुप्त भेद लोगों को बता दिये हैं। उसके पश्चात् भोज ने अलंकारचक्र को उसकी प्रेमान्ध पत्नी द्वारा भेद बताने का रहस्य बताकर अलंकारचक्र से जाने की अनुमति माँगी। क्षमाशील और जानते हुए भी किसी की त्रुटि पर ध्यान न देने वाले और मैत्री को स्थिर करने में आनन्दानुभव प्राप्त करने वाले अलंकारचक्र ने इस अपराधिनी पर क्रोध उसी प्रकार नहीं किया, जैसे भगवान बुद्ध किसी पर क्रोध नहीं करते थे। प्रियतमा का प्रेमी प्रेमान्धता के कारण अपनी मृत्यु के महान् हेतु को भी उसी प्रकार विस्मृत कर देता है जिस प्रकार अपने पीछे शरभ पर हाथी का ध्यान नहीं जाता।

इसके पश्चात सोये हुए शत्रुओं के मध्य से जब भोज प्रायः बाहर चला गया तो उसका अनुसरण करने वाला, द्रोहेच्छा तथा भय के कारण जिसका साहस समाप्त हो गया था, वह अलंकारचक्र का पुत्र फिर से भोज को लौटाकर किले में स्थित अपने पिता के समीप ले आया। उसे लौटाकर लाने पर अलंकारचक्र ने अपने पुत्र को बहुत डाँटा-फटकारा तथा भोज से कहा कि कल रात में तुम चले जाना। इस प्रकार उसने भोज को छिपाकर सबसे कह दिया कि भोज चला गया। तदुपरान्त धन्य आदि को मालूम हो गया कि भोज चला गया है और लोठन तथा विग्रहराज कल भाग जाने वाले हैं। यद्यपि यह बात अनिश्चित थी तथा वे सारी रात जागरण करते रहे।

रात्रि के समय भोज जब जाने की तैयारी कर रहा था, तो किले के सर्वोच्च भाग पर चढकर देखा कि शत्रु जाग रहे हैं और शिविर के चारों ओर आग जल रही है। उसके स्वच्छ प्रकाश के कारण एक चींटा भी शत्रु की आँखों से बचकर नहीं जा सकता। वे मकान जिन पर शत्रुओं का आधिपत्य हो चुका था ज्वाला के भयानक प्रकाश में हिल-हिलकर ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो साहस करके अपनी गर्दन आन्दोलित कर भोज को जाने से रोक रहे हों। इस कारण जब रात में भोज के

लिए भाग जाना असम्भव हो गया तो रात्रि के समय डामर ने उसकी कमर मे रस्सी बाँधकर नीचे उतार दिया। उसके साथ डामरेश क्षेमराज भी था और ये दोनो एक खड्ड के बीच चौकी के समान शिला पर उतर पडे। वह शिला केवल बैठने भर के लिए ही पर्याप्त थी। इसलिए गिर जाने के भय से उन्होंने पाँच रात और दिन जागकर ही बिताये। सत्तू-पिण्ड ग्रहण करके क्षुधा की तृप्ति की और जैसे पक्षी अपने घोसले से बाहर मल का त्याग करते हैं, तथैव उन्होंने भी पुरीषोत्सर्ग किया। अपनी आकृति को छिपाकर वे बैठे थे। पीठ के पीछे शत्रु-शिविर की अलौकिक शोभा देखकर उनको असीम विस्मय हुआ। उनको प्रबल ठण्ढक के विस्मरण मे राजा जयसिंह की प्रतापाग्नि से बडी सहायता मिली। छठवें दिन उनकी खाद्य-सामग्री समाप्त हो गयी तथा घाव पर नमक छिडकने की भाँति अचानक बादल उमड पडे और तीव्र गति मे बर्फ की वरसा होने लगी। शीताधिक्य से उनकी दाँत-रूपी वीणा बजने लगी तथा हाथ-पैर निश्चेष्ट हो गये। ऐसी स्थिति मे उन लोगो ने सोचा कि क्षुधा तथा शीत से पीडित जाल मे बद्ध पक्षी की भाँति हम लोग आज बन्दी होकर शत्रु के शिविर मे अवश्य पहुँच जायेंगे। फिर वहाँ हम किसके सम्मुख रोयेंगे, अथवा हमे वहाँ पहचानने वाला कौन मिलेगा जो दलदल मे फँसे दो हाथी के बच्चो की भाँति हमे उबारेगा। वे जब ऐसी भीषण कष्ट-कारक स्थिति मे पडे थे तो डामर ने पुन रस्सी की सहायता से उन्हे वहाँ से हटाकर एकान्त स्थान मे पहुँचा दिया। वहाँ उन्होंने पुआल की आँच से अपनी ठण्ढक मिटायी और कई दिनो तक खूब सोकर अपना सारा दु ख मिटा दिया। उन दोनो से भी अधिक कष्ट लोठन एव विग्रहराज को सहना पडा। कारण कि वे जनता की आँखो से बचकर भाग रहे थे, इसलिए किसी की मधुर वाणी भी सुनने को न मिलती थी। छिलके वाले जौ और कोदों के पुए उन्हे खाने पडते थे। नहाने-धोने की सुविधा न होने के कारण उनका शरीर तथा सारे वस्त्र बहुत मालिन हो गये थे। अलकारचक्र की सारी खाद्य-सामग्री समाप्त हो गयी थी। अत होल और यशस्कर दोनो राजद्रोहियो की प्राप्ति के बदले धन्य ने उसको भोज्य-सामग्री देनी स्वीकार कर ली। क्षुधा से पीडित तथा भृत्यो के फूट जाने की शका से डामर अलकारचक्र दूतो के द्वारा राजद्रोहियो का विक्रय करने के लिए तैयार हो गया।

घोर विपत्ति के कारण साहस छूट जाने तथा हृदय के कलुषित हो जाने से उसे अब अधर्म और अपयश का भी भय नही रह गया। राजा के शत्रुओ को पकडवा कर आत्म-रक्षा तथा अपनी ख्याति शुद्ध करने के लिए काश और कुश का उसने अवलम्बन कर लिया। अब वह अपने सेवक उदयन की सहमति से सल्हण-पुत्र भोज एव क्षेमराज को बचाकर शेष सभी लोगो को समर्पित कर देने की उतावली करने लगा। डामर अलकारचक्र ने केवल इन दोनो को राजा द्वारा दण्डित कराना अनुचित समझा और शेष कार्य उचित भोज्य-सामग्री के अभाव मे डामर की विपत्ति देखकर उसके सम्मुख धन्य आदि ने जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया था उसकी सिद्धि मे उनको विश्वास नही था। किसी कारणवश उनकी बुद्धि विपरीत हो उठी, क्योंकि डामर ने अपने केवल दो दामादो को ही सौंपने का वादा किया था। तदुपरान्त दातव्य वस्तुओ को देने और सेनाभग आदि कार्य सम्पादित कराने के लिए अपने भतीजे कल्याण को धन्य ने नियुक्त कर दिया।

अपने क्रोध को छिपाकर सुव्यवस्था द्वारा शत्रु को अपने अनुकूल कर काम बनाना और कुटिल चेष्टा वाले भीषण सर्प को पकडना ये दोनो ही कार्य एक समान हैं। वह मनुष्य जो उचित कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ अनेक कठिनाइयो मे भी दृढता करके कार्य करता है वह समस्त सिद्धियों का

मूलाधार माना जाता है। दूसरी ओर दीर्घकालीन प्रवास के कारण दुःखोंमन सैनिकों ने सारा सौहार्द्र त्याग कर अपने-अपने कामों में शिथिलता प्रारम्भ कर दी। संकटापन्न परिस्थिति में भी अपना कार्य सम्पादित करते हुए जनसामान्य के लिए कहानी बनने वाले मन्त्रिव की प्राप्ति दुष्कर होती है। अतः जब सैनिकों को यह मालूम हो गया कि सन्धि हो गयी तो वे अपने स्वामी की उदारता से भी विमुख होकर निज-निज घरों के लिए प्रस्थित हो गये।

लवन्य ने जब उधर राजद्वेषियों के विक्रय द्वारा अन्न प्राप्त कर लिया तो उसके कार्य की गति मन्द हो गयी। इधर सैनिकों की अल्प संख्या के कारण धन्य आदि अधिकारियों के प्राणों पर संकट आ गया। अभिलषित अभियुक्तों के आगमन की आशा से राजमार्ग पर जिनकी दृष्टि लगी हुई थी, उन राजद्रोहियों को सन्तप्त करते हुए डामर ने उसी दिन सौंप दिया। रथचक्रों की लगातार घरघराहट होती रहने के कारण रात्रि बड़ी कठिनाइयों से व्यतीत हो पायी। कारण कि रात भर जीवन से सन्यास ले लेने के अतिरिक्त और कोई कार्य उसे न दिखायी पड़ा। मन्दबुद्धि होने के कारण प्रयासपूर्वक किया गया कार्य बिगड़ जाने पर सम्भावनावश स्वामी की स्वीकृति तथा मेरी बात को सादर सुनना सामान्य घटना न थी इस प्रकार के नाना वार्तालाप शिविर-निवासी कर रहे थे। उनमें से एक ने कहा "कष्ट-कार्य के लिए शोक करने के बहाने हम लोगों ने जो विविध युक्तियों से उपहास किया है। उसे अक्षम्य कर अन्य मन्त्री कष्ट अवश्य पहुँचायेंगे।" दूसरों ने कहा "यात्रा के लिए हम लोगों ने लज्जा का परित्याग करके जो उतावली मचा रक्खी है तथा कर्त्तव्यपरायणता से हम विमुख हो गये हैं, उसका परिणाम हमें अवश्यमेव भोगना पड़ेगा।" अन्यों ने कहा— 'राजा के शत्रुओं ने परस्पर मन्त्रणा करके ऐसी माया रच डाली है। अपना कार्य सिद्ध करके वह दस्यु अब हमारी मूर्खता पर अवश्य हँसता होगा।"

इसी भाँति अनेक प्रकार के संकल्पों-विकल्पों में शैय्या पर पीठ टेके रात व्यतीत हो गयी और प्रातः हो उठा। राजा का अनुचर अलंकारचक्र प्रात के समय साहस करके किले पर चढ़ा और उसे अपने अधिकार में कर लिया। मात्र एक दिन की अवधि के पश्चात् दूसरे ही दिन उसने निष्ठुरता-पूर्वक लोठन से स्पष्ट शब्दों में कहा— "अब आप यहाँ से जाइये।" ग्लानि धोने में सशक्त उसके कथन को सुनकर लोठन सोचने लगा। कारण कि कुछ स्वाभिमानी अपनी कीर्त्ति-रूपिणी पूँजी पर आघात होते देखकर तिलमिला उठते हैं। सब जनों के नेत्रों के सम्मुख अन्धकार उपस्थित करने वाला विकराल काल ही सच्चे क्षत्रियों के समक्ष नित्य एक निपुण तथा प्रकाशक सहारे के रूप में प्रकट होता है। आकाश के समान श्यामवर्ण तलवार उसी प्रकार देवांगनाओं के साथ क्षत्रिय को सूर्य-मण्डल में पहुँचा देती है।

रणस्थल में लड़कर विजय प्राप्त करने वाले राजे तो मात्र एक राज्य-मण्डल के अधिकारी होते हैं, परन्तु जो युद्धभूमि में प्राण त्यागते हैं वे सूर्य-मण्डल के अधिकारी होकर इच्छानुसार और प्रेमरस से सिक्त देवरमणियों के अगणित कुच-मण्डलों को प्राप्त करते हैं। रणभूमि-रूपिणी इस शय्या पर लोटते समय कठोर धरती से कष्ट नहीं होता, शरीर-ग्रन्थियों से प्राण निकलते समय किसी प्रकार की मार्मिक व्यथा नहीं होती तथा मरण के समय बन्धु-बान्धवों के करुण क्रन्दन का अनुभव नहीं होता। यह मृत्यु तो एक प्रकार से सुख-प्राप्ति की एक विचित्र भूमिका रूप में जैसे उपस्थित होती है। तुम्हारे पिता खड्ग-रूपी लता-वितान वाले सघन वनमार्ग से स्वर्ग गये हैं, तुम्हारे भाई को

संसार के कँटीले वन मे भ्रमण द्वारा सद्गति प्राप्त हुई है। अत अपने कुल की परम्परा द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर पूर्ण उत्साहपूर्वक उदारवृत्ति के साथ आकाश के सूर्य-मण्डल मे प्रविष्ट हो जाओ। ऐसा करने पर तुम तेजस्वियो के लिए हृदयवासी पात्र बन जाओगे। विधाता द्वारा प्रदत्त राज्य को तुमने कापुरुष की भाँति अनेक बार प्राप्त किया तथा शान्ति-सेवनोचित काल मे बालको के समान असख्य खेल खेले हैं। विधि की इच्छा से अब तुमको उसके लिए प्रायश्चित्त करने का अवसर समुपस्थित हुआ है। कही ऐसा न हो कि राज्य के ही सदृश प्रायश्चित्त का यह सुअवसर भी तुम्हारे हाथ से चला जाय। तुमने प्राप्त राज्य को गँवा कर असमान जनो का उच्छिष्ट बाँटते हुए समय बिताया, इसलिए तुम इस दशा मे पहुँच गये हो जहाँ सर्वसहार मुँह फैलाकर स्थित है। इस विषय मे तुम्हे राजा भिक्षाचर को आदर्श मानना चाहिए जिसने अपना शरीर त्यागने के पश्चात् भी सर्वोन्नत पद की प्राप्ति की। उस निस्तेज व्यक्ति ने इस प्रकार उत्तेजित किये जाने पर भी उन बातो को हृदयगम नही किया, क्योकि वानेरन्धन अग्नि मे डालने पर नही जलता। अहभाव के शान्त हो जाने तथा भय का वेग बढ जाने पर लोठन अधरोष्ठ फैलाकर उसी प्रकार रुदन करने लगा, जैसे कोई छोटा शिशु जागने पर करता है।

तत्पश्चात् डामर ने जब उसको भी राज्याधिकारियो को सौंप दिया और राजा के सेवक उसे लेने के लिए आये तो उसकी व्याकुलता को देखकर दयावश उन लोगो ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा "हे भाई! विषाद न करो। विधाता के चन्द्रोदय-तुल्य उज्जवल हृदय मे दया का प्रादुर्भाव न होकर विकार-रूपी अन्धकार ही छाया रहता है। साथ ही वह सौजन्य सुधासिन्धु, स्थैर्य का मन्दरगिरि और शरणागत जनो का सतापहारी चन्दन-तरु है। शरत्कालीन पुनीत शुद्ध गगनगामिनी तारिका जैसी उसकी भव्य मुखाकृति को देखकर तुम्हारे चित्त को शान्ति प्राप्त होगी। वह तुम्हारे निष्कलक पूर्वजो के सम्मान की रक्षा करता हुआ, तुम्हारी इस लाघवतासूचक लज्जा को दूर कर देगा। हमारा राजा जयसिह अपकार करने वाले तथा उदयग्रस्त शत्रुओ को भी अपनी क्षमावृत्ति का परीक्षण करता हुआ उपकारी मान लेता है। इस प्रकार कहने के पश्चात् ही उन्होने देखा कि लम्बी तथा चचल दाढीवाला कन्धे पर कम्बल रखे हुए एक पुरुष उस घर से उसी प्रकार बाहर निकला; जैसे कोई वृद्ध बलीवर्द गोशाला से बाहर निकल जाता है।

उसके पश्चात् आभूषणविहीन शरीर, मलिन वस्त्र तथा हाथ मे शस्त्र धारण किए हुए पुरुष को शिविका मे बैठकर आते देख धन्य ने अपनी गर्दन लज्जाधिक्य के कारण नीचे कर ली। उसकी आँखे बडी-बडी तथा निस्पन्द थी, रूखी, सघन श्मश्रु कन्धों पर लहरा रही थी। देखने से ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई उलूक गिरि-गह्वर से निकलकर चला आया हो। ऐसे लोगो के चलने के कारण वह पर्वत बडा ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था। सेना के शिविर मे आग जलायी जा चुकी थी। इस कारण वह पर्वतराज राजा जयसिह के प्रताप-रूपी स्वर्ण की कसौटी-सा मालूम हो रहा था। उन लोगो के शिविर मे पहुँचने पर आकाश से हिमवृष्टि प्रारम्भ हो गयी। उसी समय जनवर्ग को यह विश्वास हो गया कि राजा जयसिह मनुष्य नही देवता है, क्योकि यह उपलवृष्टि यदि कुछ देर पहले होती हो मार्ग मे ही सभी सैनिक क्षण भर के भीतर बर्फ मे डूबकर मर जाते, जैसे पिसान के गर्त्त मे गिर गये हो।

इस प्रकार लौकिक वर्ष ४२१६ की फाल्गुन शुक्ल दशमी तिथि को साठ वर्ष की आयु मे लोठन पुन बन्दी हुआ। वह निर्मम राजा जयसिह (अपने) दीर्घकालीन प्रवासोपरान्त वापस अपने सैनिको

के स्वागतार्थ अपने उत्तुंग प्रासाद पर चढ गया। उसने वहाँ पर सेना का दान, मान, सम्भाषण और अवलोकन आदि समुचित सत्कार करने के बाद उसे विदा दी। उसी समय धन्य आदि को उसने अपने सम्मुख उपस्थित देखा।

उनके बीच मे राजा ने एक ऐसे व्यक्ति को भी देखा जिसके दोनो हाथ सैनिकगण पकडे हुए थे और वह व्यक्ति नासिका पर्यन्त उच्च वस्त्र धारण किए हुए था और उसी वस्त्र के एक छोर से अपने मुख को ढके था। दाढी के बाल भूषणविहीन उसके कानो मे घुस गये थे। उसके कपोलो पर पडी रूखी सिलवटो के कारण इसकी कृशता का स्पष्ट भान हो रहा था। बीच-बीच मे नागरिकगण, आँखो की पुतलियाँ स्थिर करके कनखियो से उसे देखते हुए उसके विषय मे भाँति-भाँति की उत्तम-मध्यम बाते कर रहे थे। मालूम पडता था जैसे उस पर कातरता, दीनता, भय, श्रान्ति, क्षुधा तथा दुर्भाग्य सब एक साथ कटाक्ष कर रहे थे। उसके शरीरांग कई दिनो तक सोने का अवसर न पाने के कारण शीत से पीडित गाय के समान कम्पित हो रहे थे। पृथ्वी उसे घूमती हुई, पर्वत अस्त-व्यस्त तथा गिरे हुए से दीख पडते थे, आकाश शुष्क दीखता था और उसके अधर अत्यन्त शुष्क हो उठे थे। वह चाह रहा था कि कोई दैवी बाधा उपस्थित हो जाय, भीषण अन्धकार छा जाय अथवा राजप्रासाद तक पहुँचते-पहुँचते इस शरीर को वायु सुखा डाले। बार-बार वह यही सोच रहा था कि सबके उपकारी राजा जयसिंह के समक्ष मैं किस प्रकार खडा हो सकूँगा। ऐसा सोचने के कारण उसके पैर डगमगा रहे थे। अनेक जनो से घिरे होने के कारण राजा को उसकी रंचक झलक मात्र ही मिली, परन्तु तभी प्रतीहार ने आकर लोठन के आगमन का समाचार सुनाया। भृकुटि-संकेत द्वारा आविष्ट लोठन उस राजसभा की ओर अग्रसरित हुआ जो प्रेक्षको के नेत्रो द्वारा चचल कमल के वन की भाँति दिखायी पड रही थी। उसके नेत्र उस समय धरती की ओर थे। निकट पहुँचने पर उसने घुटनो को पृथ्वी पर टेक राजा के चरण कमलो का अपने मस्तक से स्पर्श किया। सम्राट् जयसिंह ने तब अपने दोनो हाथो से उसके नत मस्तक को ऊपर उठाया, रत्नौषधियुक्त हाथो के चन्दन-सदृश राजा के शीतल स्पर्श ने लोठन के मन ताप एव दैहिक दुर्भाग्य का क्षण भर ही मे हरण कर लिया।

पूर्वार्जित अपने पुण्यो के प्रभाव से दयालु नरेश जयसिंह के करुणापूर्ण बर्ताव को देखकर लोठन ने अपने हृदय मे असीम सन्तोष का अनुभव किया। सम्राट् ने उसी समय सदर्प कहा—"भय मत करो अब तुम्हे सुख प्राप्त होगा, विशेष गम्भीर होने के कारण तुम्हारे ऊपर रहने वाला मेरा दोष अब शान्त हो चुका है। उसके इस प्रकार कहने के पश्चात् लोठन की समस्त शत्रुता का अन्त हो गया। तुम मेरे बन्धु हो, अब तक जो कुछ हुआ वह सब क्षणिक परिहास मात्र था। मुझे ज्ञात है कि अपना प्रताप और प्रभाव नष्ट हुए देखकर तुम दुःखी हो रहे हो, परन्तु समयानुसार वह पुनः प्राप्त हो सकता है।" राजा जयसिंह ने और भी कहना चाहा, लेकिन इससे अपने प्रताप मे न्यूनता की सम्भावना समझ उसे वचनों द्वारा आप्यायित नही किया।

उस समय अभयदान का इच्छुक विग्रहराज ने अपने मस्तक को झुकाकर राजा के चरणो का स्पर्श किया तो राजा ने उसके मस्तक का स्पर्श पैर से किया। तदुपरान्त विग्रहराज ने कहा "काम मे आपका सत्कार करने का सामर्थ्य कहाँ है ?" ऐसा कहकर उसने बलात् राजा के हाथो मे पान का बीडा दे दिया। तब उसने अपने समक्ष विनम्रभाव से खडे द्वाराधीश से कहा "आपको बडा परिश्रम करना पडा।" तथा धन्य और षष्ठचन्द्र का उसने दाहिने हाथ से स्पर्श किया राजा जयसिंह की उदारता, दक्षता,

गम्भीरता तथा विनयशीलता को देखकर स्वय को राजोचित गुणो से युक्त समझने वाले लोठन ने अब अपने को निम्नकोटि का राजा समझ लिया। उसके पश्चात् लज्जावनत अपने चाचा लोठन को सात्वना का सदेश देकर उसे उसके घर भिजवा दिया। जो भी अभियुक्त उस राजा के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने जिसको सकीर्ण दृष्टि से देखा, उसके मुख पर पूर्ववत् लाली का सचार हो गया तथा उसको जीवन का अलौकिक फल प्राप्त हो गया।

समुद्र न तो बडवानल के ताप से उष्ण होता है और न हिमालय की नदियो के शीतल जल से उसमे शीतलता ही आती है। कारण कि गम्भीर हृदय वाले जनो की प्रकृति है ही कुछ ऐसी कि वे विषाद और आनन्द दोनो अवसरो पर एक समान रहते है। वे, जिन्होंने प्रेमपूर्वक तथा स्वाभाविक सहज उपचारो द्वारा राजा का सत्कार किया, उनके पुरुषार्थ-भ्रशजनित तथा जीवजनित दोनो प्रकार की लज्जाओ का उसने क्रमश हरण कर लिया। मत्रज्ञ राजा दो दायाद-रूपी ओष्ठो के बीच से अपना राज्य खींचकर उच्छृंखल उस भोज-रूपी सर्प के दाँतो को तोडने के लिए निरन्तर चिन्तित रहा करता था। कारण कि प्रवास के कष्ट से भयभीत बान्धवो ने जिसे त्याग दिया था, वह विजयाभिलाषी भोज अवशेष राजद्रोहियो के साथ मत्रणा करता हुआ रात की रात जागरण करता रहता था। सल्हण-पुत्र भोज उस गर्त से निकलकर एक निर्जन घर मे रहता था। वही पर उसने अपने पितृव्य विग्रहराज के सम्बन्ध मे कुछ प्रवादपूर्ण बाते सुनी। दूसरी ओर राजा को प्राप्त होने वाले डामर अलकारचक्र के पास पहुँच गये। फिर इसका पता चलने पर पुन. शत्रुता सम्भावित हो उठी। उसके पश्चात् भोज ने दूर स्थित होने के कारण उसके विस्तृत क्षेत्रफल को तो नही, परन्तु नगर मे जाने वाले मार्ग पर विशाल सेनामाला की भाँति गुँथी-सी देखा। दूरी के कारण अस्पष्ट रूप से उसके चाचा की पालकी उसे धन्य तथा षष्ठचन्द्र के मध्य जाती हुई दिखायी पडी। देखने पर भोज ने अनुमान लगाया कि यहाँ से प्रस्थित हुई राजसेना मे धन्य और षष्ठचन्द्र के अतिरिक्त यह अन्य तीसरी पालकी हो किसकी सकती है ?

पता लगाने पर किसी से यह ज्ञात हुआ कि पामर तथा भोग-लोलुप लोठन और विग्रहराज सन्धि करके राजा के पास जा रहे हैं। सन्देह तथा ओजवश द्रोह नष्ट हो जाने से, सम्भव है कि भयवश वह राजा के उन्मुख हो गया हो, लेकिन ज्ञाति जन के स्नेह से वह मुहूर्त पर्यन्त के लिए स्तब्ध हो गया। सेना प्रस्थित हो जाने के पश्चात् उस स्थान पर एक प्रकार से शान्ति छा गयी। चिरकाल के बिछुडे पक्षी अब पुन नदी तट पर आकर चहकने लगे। उस वातावरण से उसने कल्पना किया कि लोठन एव विग्रहराज के जाने के कारण ये पक्षी रो रहे हैं। उसने पुन. सोचा लवन्य को यदि ज्ञात हो जाय कि मैं यहाँ हूँ तो सम्भवत धन्य आदि को वह फिर से यहाँ ले आये। तब से ही वह भोज निर्झरो के निनाद श्रवण पर भी बीच-बीच मे सोचने लगता था कि शोर करती हुई यह राजसेना है जो मुझे पकडने के लिए चली आ रही है। उसी समय मेघोदय के कारण सारे ससार मे अन्धकार छा गया तथा इस प्रकार दोपहर ही में अर्धरात्रि के अँधेरे के समान आभास होने लगा।

उसी समय के उमडे बादल पूरे वैशाख मास तक छाये रहे तथा हिम के ढेर से, पृथ्वी को बोहित करते रहे। तभी दस्यु अलकारचक्र भोज के पास पहुँच गया और कहने लगा "मैं विश्वासघाती, अभव्य, अब्रह्मण्य और निर्लज्ज हूँ।" कहकर अपनी निन्दा करता हुआ उसके सम्मुख बैठ गया। उस समय सल्हण के पुत्र भोज ने अपने क्षोभ और कोप पर नियन्त्रण करके उसे सान्त्वना

देते हुए कहा "इस सम्बन्ध मे तुम्हारा कोई अपराध नही है।" आगे उसने और कहा- "उस समय तो तुमने अपनी सन्तति और ज्ञाति बान्धवो की विपत्ति से रक्षा करने के लिए वैसा आचरण किया था। अत उस विषय मे तुम्हे किसी को कोसना उपयुक्त नही है। उस अवसर पर यदि मेरे ही हृदय मे द्वेष-भावना का उदय हो गया होता तो वह निष्ठुरतावश नही, बल्कि समय के अनुरोधवश विवशता कही जाती। हम सब हर्षदेव के कुलवालो की भाँति उच्छेद्य नही है, वरन् राजधर्म के पालक तथा नियम्य हैं। अपनी प्रसिद्धि, लोठन तथा विग्रहराज के कार्यों मे बाधा और नरेश (नृपति) की कुमार्गगामिता को रोकते हुए तुमने मेरी रक्षा की है।" भोज के इस कथन पर उस दस्यु का सिर लज्जा के कम हो जाने से मानो हल्का हो गया और वह बोला "तुम ही केवल मेरे सर्वस्व के साथी हो।" ऐसा कहते हुए वह उसकी प्रशसा करने लगा। तदुपरान्त दस्यु ने कहा "क्षण मात्र के लिए मुझे जाने दो। हिमवृष्टि समाप्त हो जाने पर तुम जैसा कहोगे मैं वैसा ही करूँगा।' इतना कहकर वह चला गया।

उसके जाने के बाद किसी अज्ञात व्यक्ति ने भोज से कहा "तुम्हे भूखा देखकर दस्यु तुम्हारे साथ विश्वासघात करना चाहता है।" तदनन्तर क्षुधित भोज जब दस्यु द्वारा अर्पित अन्न खाने को तैयार हो गया, तो उसे स्मरण हुआ कि यह अन्न मेरे ही ज्ञाति बान्धवो लोठन एव विग्रहराज आदि के विक्रय से प्राप्त हुआ है। इसलिए इसे ग्रहण करना मेरे लिए उनके मांस-भक्षण के समान पापमय होगा।

उसके बाद दस्यु उससे यह कहकर कि हिमवृष्टि समाप्त होते ही मैं तुम्हे घर भेज दूँगा, अपने घर ले गया। लेकिन हिमवृष्टि के बाद भी आज और कल करते-करते दो मास बीतने पर भी उसे नही छोडा। भोज को तब शका हो गयी कि यह हिमवृष्टि रुकने पर मेरी उपस्थिति का समाचार राजा को भेजकर, भीतर ही भीतर सौदा पटा कर मेरा विक्रय कर देगा। सोचकर वह शीघ्र ही निकल भागने की चेष्टा करने लगा। फिर भोज जाने के लिए जो-जो बहाना निकालता, उन सबका उच्छेद करके दस्यु उसे अपराधी सिद्ध कर देता।

राजवदन बलहर का पुत्र था जो तेज और भाद्रमातुर के नाम से भी प्रसिद्ध था। बाल्यावस्था से ही वह लम्बा कम्बल, ओढा करता था। वीरो की परीक्षा के समय वह राजा सुस्सल के द्वैराज्य की सेना मे वह अपने प्रभाव से योद्धाओ का अग्रणी बन चुका था। उसका पिता राजा का विश्वासपात्र था। यही कारण था कि राजा ने उसे आगे बढाया और उसने भी अपने पुरुषार्थ द्वारा एवेन आदि प्रान्तो पर आधिपत्य स्थापित करके अपना प्रताप प्रतिष्ठित कर लिया। उसके बाद खूयाश्रम मे उत्पन्न एक नाग के कारण राजा उससे विमुख हो गया। फिर उसके साथ युद्ध करने के लिए राजवदन ने उस नाग की रक्षा की।

तत्पश्चात् सेवक के प्रति करुण भावापन्न और लवन्य न होने और विश्वसनीय स्थिति के अभाववश सभी जन राजा पर सन्देह करने लगे। इसलिए अलकारचक्र के अनेकश प्रार्थना के विपरीत द्वैराज्य की इच्छावश उस राजवशज नाग को उसे समर्पित नही किया। काफी दूर होने पर भी उदय को अलकारचक्र ने दिखा दिया, परन्तु द्रोह के कारण उसे वह छोडने में समर्थ न हो सका। इस बीच ही जयसिंह ने भोज को अपने अधिकार मे करने की इच्छा से पुष्कल धन प्रेषित करके अलकार दुर्ग मे पहुँच गया। भोज को छोड़कर जब अलकार जाने लगा तो उसने डामर अलकार

से कहा। "तुम यदि मुझे छोड़कर जाओगे तो मैं प्राणों को ही त्याग दूँगा।" अलकार डामर ने कहा। "कल प्रात तुमसे मैं मिलूँगा।" ऐसा कहने के पश्चात् वह रात के चतुर्थ प्रहर मे उसे बिना बताये ही किले के बाहर चला गया।

उस समय घोर वर्षा के कारण मार्ग बडी ही कठिनाई से मिल पाता था। प्रातःकाल भोज जब अलकार को ढूँढने लगा तो उसे ज्ञात हुआ कि रात मे बाहर जा चुका है। समाचार मालूम होने पर अलकार ने उसका पीछा किया, तो देखा कि भोज अपने कुछ साथियो के सहित शारदादेवी के स्थान की ओर चला जा रहा है, परन्तु डामर को उसे रोकने का साहस न हुआ। एक ही जाति वाले दो जनो को स्त्री के बिना एक साथ चलते देख उदारमन भोज की स्थिति विचित्र हो गयी। स्वय को अपराधी मानकर वह न बढ पाता था और न रुक सकता था। अचानक उसके हृदय मे ऐसे विचार आ गए कि उसने अपनी कुलीनता का स्मरण करके आगे का कार्यक्रम पाँच-छ प्रकार से बनाया। तदनुसार अब उसने दुरण्ड जाने का विचार त्याग कर दरद जनो की सहायता से युद्ध हेतु मधुमती तट वाले मार्ग को अपना लिया।

उस पथ पर काले पत्थर के रोडो की नोके उभडी हुई थी, जैसे मृत्यु के विकराल दांत हो, यत्र-तत्र ऐसे खड्ड मिलते थे जहाँ प्रकाश के अभाव मे कालपाश के समान घटाटोप अन्धकार छाया हुआ था। और कही पर बर्फ के बडे-बडे ढूह हाथियो के झुण्ड की भाँति दीख पडते थे। कही-कही निर्झरो की फुहार उडती हुई बाण के सदृश शरीर मे चुभती थी। कही सुखस्पर्शी पवन के सस्पर्श से रक्त-प्रवाहिनी नसे फूटने लगती थी। कही-कही पर सूर्य की किरणे हिमराशि पर पडकर आँखो को चौंधिया देती थी जिससे मार्ग दिखायी नही देता था। कही दूर से कठिन चढाई मालूम पडती, परन्तु निकट पहुँचने पर स्थिति ठीक उसके विपरीत हो जाती थी। कही दूर से देखने पर ढाल मालूम पडती, किन्तु समीप जाने पर ऐसी बात न रहती। हेमन्त ऋतु के कारण उस दुर्गम पथ को छ-सात दिवसो मे लाँघकर भोज दरदराज की सीमा वाले ग्राम मे पहुँच गया।

भोज ने उस समय अपना सारा सामान स्वय को एक अकिंचन सिद्ध करने के लिए छिपा रक्खा था। दुग्धघाट किले के अधिपति ने भोज से जाकर प्रणाम किया और तब वह तुरन्त पूज्य बन गया। दूरस्थ विड्डुसीह जब दूतो द्वारा भोज के आगमन का समाचार प्राप्त हुआ तो उसने उसके लिए तुरन्त राजोचित छत्र आदि सामान भिजवा दिया। तदुपरान्त भोज की आज्ञानुसार कोटपाल ने अपने राज्यकोष पर से राजवशजो का प्रभुत्वाधिकार समाप्त कर दिया। भोज अब एक राजा की भाँति समस्त कार्य करने लगा था। उसी समय भोज की अर्चना के लिए राजवदन का पुत्र राज-प्रासाद मे आया और उसने उसकी पक्षता (पक्ष मे रहने की बात) स्वीकार कर ली। उसके पिता ने ही उसे भोज के पास भेजा था। कारण कि राजवदन कश्मीर-नरेश से उस काल रुष्ट था और सोचा कि भोज राजा के लिए एक सबल प्रतिद्वन्द्वी बन सकता है।

कार्य-गौरव का अनुमान करके भोज ने एक सन्देश देकर उसके पिता के पास दूतो को भेजा। उस सन्देश मे नीतियुक्त कुछ ऐसी बाते थी कि उनसे न अविश्वास प्रकट होता था तथा न तो उसकी बात को स्वीकार अथवा अस्वीकार किया गया था। राजवदन ने सन्देश के उत्तर में दूत से कहलाया "कार्यकाल मे आप देखियेगा कि मैं विश्वसनीय हूँ अथवा नही। इतने ही से आप जान ले कि राजा जयसिंह का मैं अब भी सलाहकार हूँ।"

उसके पश्चात् अपनी दृढता का प्रमाण देने के लिए राजवदन ने राजा के गोत्री का शत्रु बताकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। युद्ध की सामग्री के अभाव मे वह युद्ध बन्द कर देता, एकत्र कर लेने के पश्चात् पुन प्रारम्भ करता और जब प्रचुर मात्रा मे सामग्री को एकत्रित कर लेता तो अपनी पूर्ण शक्ति के साथ आक्रमण कर देता। ऐसा करने से वह यह प्रतिष्ठा प्राप्त करने मे सफल हो गया कि उसकी भूमि-सीमा मे उत्पन्न होने वाले नाग के बन्धु-बान्धव उस अनुपम व्यक्ति की सेवा करने से लज्जा का अनुभव नही करते थे। कारण कि उसमे त्याग, क्षमा, अभिमान और लोभ का अभाव आदि सभी गुण विद्यमान थे। इसीलिए उसकी निरतर उन्नति हो रही थी तथा सब जन उसकी सेवा करने के लिए लालायित रहते थे।

यदि पृथ्वीहर आदि सामान्य जनो मे स्थैर्य था वह कौतुक की बात न थी। परन्तु, निराधार राजवदन का आडम्बर भी स्तुत्य था। उसने, चोरो, वनचरो तथा आभीर के बडे-बडे गुटो (दलो) को मिलाकर अपने समर्थको का एक विशाल दल तैयार कर डाला एव कई ग्रामो पर आधिपत्य स्थापित कर भोज आदि के निर्देशो का पालन करने लगा। परस्पर के सघर्ष, ईर्ष्यालु मन्त्रियो की सलाह अथवा लूटमार मे विशेष रुचि होने के कारण अन्य डामरो ने भी अपनी नीति परिवर्तित कर दी। लोठन के बन्दी हो जाने पर ध्वसक कार्य एव विद्रोह की अभिलाषावश डामरो ने जो नीति निर्धारित की थी वह अब शतश शाखाओ मे विकसित हो चुकी थी।

त्रिल्लक एव जयराज को यद्यपि राजा ने स्वय आगे बढाया था, तथापि उस नये दल मे सम्मिलित होने के कारण विवशतावश वे दोनो राजा की ओर आकृष्ट न हो सके। उलूको के लिए खन्दक के समान, रोगो के लिए क्षयरोग-सदृश, दैत्यो के लिए पाताल तथा जलजीवो के हेतु समुद्र-तुल्य जो दस्युओ को आश्रय देने वाला था, उस मायपटु त्रिल्लक ने देवसरस के राजा को अपने पक्ष मे करके विद्रोह कर दिया। विजयेश्वर मे उसके आक्षेप की इच्छा रखने वाले ब्राह्मणो ने धरती के रक्षार्थ राजा जयसिंह के विरोध मे अनशन प्रारम्भ कर दिया। राजा ने असमय दस्युओ के विद्रोह के कारण विप्रो से अनशन समाप्त करने की प्रार्थना की, लेकिन ब्राह्मणो ने राजा की बात न मानी। उदार राजा ने उनकी सभा मे उपस्थित होने का निश्चय किया। राजा ने जैसे ही जाने की तैयारी की तभी उस विद्रोह का प्रधान प्रवर्तक एव उत्पातक जयराज अचानक मृत्यु को प्राप्त हो गया।

दस्युओ मे से एक प्रमुख की मृत्यु हो जाने के कारण भाग्यशाली राजा के लिए कुछ सुविधा प्राप्त हो गयी और तब वह ब्राह्मणो को प्रसन्न करने के लिए मडव राज्य की ओर प्रस्थित हो गया। अन्यान्य मन्त्रियो के असहमत रहने पर भी, ब्राह्मणो की प्रेरणा और अपनी शठतावश अलकार ने उनके अनशन का पक्षपात किया। जिससे असन्तुष्ट होकर राजा ने उसको मन्त्रिपद से च्युत कर दिया। कारण कि दु.खी तथा ईर्ष्यालु दस्यु-वर्ग को सुव्यवस्थित करने के लिए सदा चेष्टा किया करता था और उनके दोषो का पोषण करता था। तत्पश्चात् मडव राज्य मे जाकर, राजा ने प्रतिज्ञापूर्वक कहा—"मैं द्वैराज्य को भग करके त्रिल्लक को समाप्त कर दूँगा।' और उसने ब्राह्मणो का अनशन समाप्त कर दिया।

यह समाचार सुनते ही त्रिल्लक दहल गया तथा अनेकानेक उपद्रव खडे करके राजा को उसी प्रकार तग करने लगा, जैसे देह मे छिपा हुआ रोग तमाम अन्य रोगो को पैदा करके प्राणी

को सताया करता है। उसके पश्चात् त्रिल्लक के सलाहकार राजक ने उसके भाई के पुत्र यशोराज पर आक्रमण कर दिया, जो जयराज का भ्राता था और राजा ने जिसको उसके पिछले पद पर नियुक्त कर दिया था। तभी राजसेनापति सजपाल अभिमानी शत्रु के वश होकर देवसरस की रक्षा करने के लिए गया, लेकिन उसके पास बहुत ही कम सैनिक थे, इसलिए उसकी विजय सदिग्ध हो गयी। रिल्हण को जब यह समाचार मिला तो उसने तुरन्त वहाँ पहुँचकर घमासान युद्ध प्रारम्भ कर दिया। ऐसा करने से ही रिल्हण को विजय-लक्ष्मी का प्रथम आतिथ्य प्राप्त हो गया, अर्थात् उसको विजय प्राप्त हो गयी।

इस प्रकार जब मन्दराचल-रूपी रिल्हण ने शत्रु-रूपी समुद्र को मथ डाला, तो सजपाल-रूपी मेघ ने शत्रु-रूपी जल को तुरन्त सोख लिया। राजक जब पराजित हो गया तो असहाय होकर यशोराज उसी प्रकार भूमि पर नही टिक सका, जैसे एक बालक निर्जन स्थान मे नही रह सकता। उसकी इच्छा थी कि राजा जयसिंह भी इस राज्य का हिस्सेदार हो जाय और द्वैराज्य के क्रम से देवसरस का शासन सचालित हो। दूसरी ओर पराजित त्रिल्लक अनेक प्रकार की माया रचता हुआ समय व्यतीत कर रहा था। अन्दर ही अन्दर त्रिल्लक ने शक्ति का सचय करके राज्य के समस्त विप्लवकारियों को एकत्रित किया तथा अपने पक्ष के उन विद्रोही कण्टको को साही के कण्टक के सदृश नगर की गली-गली मे फैला दिया।

इसी मध्य पृथ्वीहर का पुत्र तथा कोष्ठक का अनुज चतुष्क कारागार से निकलकर भागा जो भाई के साथ बन्दीगृह मे बन्द था। उसके दामाद ने उसे अपने घर मे छिपा लिया और कुछ दिनो के पश्चात् अगणित डामरो के साथ शमाला भेज दिया। अब तक सभी लुटेरे जो छिपे हुए थे, कुरर पक्षी की भाँति चतुष्क की आवाज सुनकर प्रकट हो गये, जैसे तालाब मे छिपे मत्स्य पानी के मिलते ही प्रकट हो जाते हैं। उसी समय गर्ग के पुत्र षष्ठचन्द्र ने अभिमानी राजवदन को घेर लिया, जैसे प्रलयकालीन समुद्र को तटवर्ती पर्वत घेर लिया करते हैं। उस अवसर पर दोनो पक्ष का सैनिक दल कभी बढ़ता और कभी घट जाता था, जैसे बर्फ और कीचड से पूर्ण पर्वत के दोनो तट घटते-बढ़ते रहते हैं। षष्ठचन्द्र के दो भाई जयचन्द्र तथा श्रीचन्द्र पहले राजा के यहाँ भत्ता पाया करते थे, परन्तु बाद मे निकाल दिये गए। षष्ठचन्द्र जो उनका भाई था प्रमुख कार्यकर्त्ता होने के कारण राजा का प्रिय पात्र था, परन्तु राजा जयसिंह को पता चला कि जयचन्द्र और श्रीचन्द्र भाई षष्ठचन्द्र के साथ रह रहे हैं तो इसे उन्होंने अशुभ समझ लिया।

उन दोनो को भी जब यह बात ज्ञात हो गयी तो दोनो वहाँ से भागकर राजवदन के पास चले गये। इसी बीच राजा जयसिंह के दो श्वसुर भी उसके प्रतिद्वन्द्वी हो गए। तत्पश्चात् राजवदन ने अनेक खशो के सहित भागकर पर्वतीय पथ से जाते हुए भूतेश्वर को लूट लिया। कारण यह था कि पूर्वकालीन राजकोष को हस्तगत करने की लालसा उसकी बडी पुरानी थी। उस समय चोरो और डकैतो के आक्रमण से असहाय हुए निर्बलो को बलवान् मारने लगे जिससे सर्वत्र अराजकता व्याप्त हो गयी और राज्य की दशा दयनीय हो उठी। तब राजा जयसिंह विवशतावश सेनापति उदय और रिल्हण को चतुष्क से लडने की आज्ञा देकर राजधानी वापस चला गया।

असाध्य रोग जिस प्रकार ओषधि से शान्त नही हो पाता उसी प्रकार वह पृथ्वीहर का पुत्र चतुष्क भी दुस्साध्य हो गया। उदय एव रिल्हण की सेना उसका बढना मात्र रोक पायी, लेकिन परास्त न कर सकी। उस समय अपने पक्ष के जनो की असावधानी, शिथिलता अथवा दुर्बुद्धि के

अनुसरण से रिल्हण का प्रभाव मन्द हो गया। विड्डसीह को जब भोज का समाचार ज्ञात हुआ तो अनेक राजाओ के आमंत्रण-हेतु उत्तरापथ मे उसने दूतो को प्रेषित कर दिया।

वे जन जो कुबेर की स्त्रियो के दुराचार का ज्ञान रखते हैं, उनके लिए कन्दराओ मे गानेवाली मृत्युलोक की स्त्रियो के विषय की जानकारी रखना कठिन काम न था। म्लेच्छ राजागण, वालुका-सिन्धु की उष्णता मे शीतलता का अनुभव करनेवाले, तथा हिमशृङ्ग की शिशिर वायु के झोको से उत्तर कुरु प्रदेश के लोगो को सन्तुष्ट करनेवाले हिमालय की तलहटी से दौडते हुए वहाँ आ गए और अगणित अश्वो से उन्होने दरद देश के राजा की छावनी को चारो ओर से घेर लिया।

इस ओर जब दरद देश के राजा ने इस प्रकार अपना सगठन किया तो उस ओर विभिन्न देश के सामन्त भोज के पास आकर एकत्र हो गये। वे लोग गिरिव्रज से आगत जनो की बात का अर्थ बिना समझे ही प्रसन्न हो गये। कारण कि उनकी प्रीति अनोखी थी, उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे प्रेम के कारण अनेकानेक वन्दर पर्वतो से उतर आये हो। राजवदन द्वारा प्रेषित जयचन्द्र आदि और कश्मीर के तमाम राजवशज जन वहाँ एकत्रित हो गये। सल्हण-पुत्र भोज, प्रचुर स्वर्ण का व्यय करके दूर देशो से आए हुए लोगो तथा समीपवर्ती वलहर आदि का खर्च चलाता था। विपक्षियो के पास विशाल सैन्य-दल एकत्र हो जाने से मायाजाल द्वारा जब काम चलना दूभर हो गया तो सन्तप्त राजवदन भोज से मिल गया। दोनो का कार्य और लक्ष्य एक-दूसरे से मिलता-जुलता था। अत. दोनो मे प्रेम-सद्भावना रहते हुए भी शीघ्र ही अविश्वास के अकुर उगने लगे।

भोज ने कभी यह नही सोचा था कि राजवदन शत्रु से मिलने को उद्यत है और दूसरी ओर राजवदन की योजना थी कि यदि कुछ घोडे भोज से प्राप्त हो जायँ तो उन्हे ही मैं दरदराज को भेंट-स्वरूप प्रदान करके उसके पक्ष मे हो जाऊँ। इस पर भोज ने कहा "तुम यदि दरदराज से मिल जाओगे तो हमारी और उसकी सेना का सन्तुलन बिगड़ जायगा। जिससे हम दोनो की शक्ति समान हो जाने के कारण युद्ध का निर्णय असम्भव हो जायेगा। इतना ही नही, हो सकता है कि हमारी सेना मे पारस्परिक फूट भी हो जाय। इसलिए हमारा मत है कि हम लोग सगठित होकर एक साथ युद्ध करे और इस प्रकार एक दिन मे ही विजय और पराजय का निर्णय हो जायगा।"

राजवदन, भोज के कथन को सुनकर मुसकराया और भोज की आनेवाली सेना की उपेक्षा करके, दरदराज के पक्ष मे मिलकर उसकी सेना उसने सामने खडी कर दी। ऐसी परिस्थिति आने पर भोज के सैनिक पीछे हटने लगे और इसी समय भोज को पता चला कि स्वय दरदराज भी आ गया है। उससे मुठभेड के लिए जब भोज की सेना दुग्वघाट किले की ओर बढी तो लहर ने अपनी सेना मातृग्राम मे प्रविष्ट करा दी। उसके पश्चात् प्रकृति से ही धैर्यवान् गर्गपुत्र षष्ठचन्द्र ने देखा कि सभी दिशाओ मे वातमृग के सदृश अश्व-दल दौड रहे हैं, परन्तु इतने पर भी उसने धैर्य नही त्यागा। उस समय नीलाश्व के सभी डामर तथा उसकी सेना के सैनिक शत्रु के पक्ष मे मिल गये और उसकी अवशिष्ट सेना पर आक्रमण करने के लिए आ पहुँचे। उस विषम परिस्थिति मे उसके निजी व्यक्तियो ने वहाँ से हट जाने का आग्रह किया। तब उदासमन उसने कहा "मैं अब स्वामी को अपना मुख नही दिखा सकता। सूर्यवर्मचन्द्र के वश मे कोई भी ऐसा पुरुष नही हुआ जो मल्लो के मुकाबले मे कभी पीछे हटा हो।" उसी समय भोज का समादर करके विड्डसीह ने अपनी सारी सेना और सामन्तो को विजय-हेतु प्रेषित कर दिया।

म्लेच्छों से पूर्ण संसार भर में उथल-पुथल मचा देने वाली वह विशालवाहिनी आगे बढ़ी तो उसके पीछे-पीछे चलनेवाले सल्हण-तनय भोज ने उत्साहाधिक्य के कारण समस्त धरती को हस्तगत-सी समझ लिया। अनेकानेक म्लेच्छ राजाओं की उस दुर्धर्ष वाहिनी ने अश्व-दल की जमघट से भयावने समुद्रधारा नामक स्थान पर अपना पड़ाव स्थिर कर दिया। फिर राजवदन स्वयं को इस दुर्जय सैन्य-दल की सहायता से स्वयं को अधिक शक्तिशाली समझकर षष्ठचन्द्र को मृत्यु के दाँतों तले पड़ा हुआ समझ बैठा।

उस समय ही तेज वर्षा प्रारम्भ हो गयी, जिससे कुछ ही क्षणों पश्चात् वहाँ की समस्त धरती जलमयी होने के कारण एकदम समतल दृष्टिगत होने लगी। तब भूमिरूपी पानपात्र में जलरूपी मदिरा उड़ेलकर वहाँ के वृक्ष-समूह पान करने लगे। वे जल में इस प्रकार मग्न थे कि मात्र शिखा दीख रही थी और दूर से नीलकमल का भान होता था।

राजा जयसिंह को जब षष्ठचन्द्र के संकट का समाचार मिला तो उसने तुरन्त अपनी शेष सेना के सहित द्वाराधीश उदय और धन्य को भेज दिया। वे दोनों वीर सेना के पीछे-पीछे चलते हुए इस प्रकार दीख रहे थे, जैसे शिनी (सात्यकि) तथा पवनात्मज (भीमसेन) अर्जुन के पीछे-पीछे चले थे। उस समय आकाश जल से पूर्ण बादलों से आच्छन्न था और धरती जलमग्न थी। बादलों के बीच कभी-कभी घनघोर गर्जन के साथ बिजली चमक उठती थी। वहाँ पहुँचने पर वह उच्चकोटि की सामग्री और विशाल वाहिनी व्यर्थ होकर मात्र शोभा रह गयी। कारण कि राजा को छावनी डालने के लिए कोई स्थान नहीं प्राप्त हो सका।

उस ओर त्रिल्लक को पराक्रम और ईमानदारी पर रंच मात्र की भी आस्था न रह गयी। इस कारण दरद-नरेश के पास उसने दूतों से सन्देश भेजा। 'अब यहाँ राजवंशजों की कोई भी सेना न भेजिएगा।' उसके पश्चात् पृथ्वीहर-तनय चतुष्क को उत्साहित किया, क्योंकि त्रिल्लक चाहता था कि राजवदन अथवा चतुष्क दोनों में से किसी एक के सामर्थ्य से भोज मेरे वश में हो जाय। उस समय त्रिल्लक ने बिना भित्ति के लिखित चित्र-सदृश बलहर का अलौकिक सामर्थ्य देखा, उसने अपने कौशल में दरदराज की सेना को शत्रु-संकट के स्थलों पर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार ऐसी सुन्दर व्यवस्था कर दी कि जिससे शत्रु को कहीं कोई छिद्र न मिल सके। उस वीर पुरुष ने श्वाविद् वृत्ति (साँही जैसे व्यवहार) का आलम्बन करके चिरकाल तक अपने अंग से रक्षित एवं दुर्धर्ष दूसरे खतरों को भी उसने समाप्त कर लिया।

तदुपरान्त अचानक शूरपुर में पृथ्वीहर-तनय लोठक आ गया, लेकिन उसके पहले ही डामरों की सहायता से त्रिल्लक उस पर अपना अधिकार स्थापित कर चुका था। उसने स्वयं को, उस समय दो पक्षों के बीच रक्खा था। बादलों के कारण घोर अंधकार व्याप्त था। धूल से पूर्ण आँधी चल रही थी। उसने स्थान-स्थान पर सूचकों की नियुक्ति करके दोनों पक्षों का भेद ज्ञात करने की सम्यक् व्यवस्था कर ली थी। राजा के ध्वंसक विविध संकटों के समय पूरी रात जागरण द्वारा उन अनर्थों का निवारण करता था। कारण यह था कि उभय पक्षों में चिरकाल से द्वेष-भावनायें व्याप्त थीं, उन्हें समाप्त करने का वह इसी रीति से प्रयास कर रहा था। जैसे वर्षाकाल में कगार ढह जाने के कारण सरिताओं का पेटा भर जाता है, उसी प्रकार उस काल में उसकी समस्त सेना के साथ मानो समस्त संसार ही, सोये हुए भगवान् विष्णु के उदर से निकल रहा था।

द्रंगाधिपति पिजदेव के साथी और विभिन्न पर्यवेक्षण चौकियों (शूरपुर, द्रंग इत्यादि) पर नियुक्त उसके सेनाध्यक्षों ने अपने कुछ योद्धाओं को सरिता के दक्षिणी पार्श्व (तट) के मोर्चों पर इस प्रकार फैला रखा था कि अल्प होने पर असंख्य प्रतीत होते थे। नदी-तट पर स्थित छावनियों का उजाला रात्रि के समय जब जल पर पड़ता था तो ऐसा मालूम होता जैसे तमाम चितायें दहक रही हों और मृतकों का दाह-संस्कार सम्पन्न हो रहा है।

लोठक ने इस प्रकार मृत्यु का विस्मरण करके एक दिन युद्ध किया। परन्तु, दूसरे दिन उसके विश्वासपात्र मित्रों ने सलाह दी जिससे उसने अपनी सेना पीछे हटा ली। उस निर्जन नगर में चारों ओर से सेना का संगठन करते हुए लोठक को दो-तीन दिवसों में ही नगर पर अधिकार हो जाने की आशा हो गयी। उधर पद्मपुर पर आक्रमण करने का त्रिल्लक ने अपना विचार त्याग दिया, कारण कि उसके पृष्ठ भाग में यशोराज और सेनापति उदय की सेना पड़ी हुई थी जिससे भय व्याप्त था। दूसरी बात यह थी कि शत्रु पक्ष के सभी लवन्य लोठक का आदर-सम्मान करते थे। अत उसके सभी सहयोगी जब तक एकमत न हो जायँ, होलड ग्राम वाले डामर कोई कार्य स्वेच्छा से नहीं कर सकते थे। राजा सुस्सल के द्वैराज्य में इस प्रकार का संकट कभी भी नहीं दिखायी पड़ा, जैसा कि सम्प्रति उसके पुत्र पर आ गया था। ऐसी ही परिस्थिति में राजा जयसिंह ने, पैर के रोग तथा गलगण्ड के सदृश दु खद चतुष्क को हटाने की इच्छा से रिल्हण को प्रेषित कर दिया। उसे हटाने की इच्छा से आगे बढ़ते हुए रिल्हण को शमाला के निवासियों ने उसी प्रकार रोका, जैसे संसप्तकों ने, प्राग्ज्योतिषपुर को जाते हुए अर्जुन को रोक लिया था। परन्तु शत्रु से टक्कर लेने वाले उस वीर ने उन सबकी परवाह न की और आगे बढ़ा, जैसे कमलपूर्ण सरोवर की ओर जाता हुआ गजराज पीछे लगे भौंरों को झटकार देता है। दिवस भर युद्ध करने के पश्चात् श्रान्त रिल्हण ने रात उस शमाला ग्राम में व्यतीत की, जहाँ एक ओर वर्षाकालीन नदी हरहरा रही थी और दूसरी ओर शत्रु की विशाल वाहिनी निनाद कर रही थी।

प्रात काल जब वह कल्याणपुर की ओर जा रहा था तो चारों ओर से आकर सेनाओं ने रिल्हण को घेर लिया। शत्रु की पदाति सेना को, उस वीर ने देखते ही देखते इस प्रकार नष्ट कर डाला, जैसे बकरे को अजगर निगल जाता है। भीषण आँधी के सदृश अमात रिल्हण को देखकर शत्रु की पैदल सेना उसी प्रकार तितर-बितर हो गयी, जैसे वसन्त में वृक्ष के पत्ते उसे छोड़कर उड़ जाते हैं। वे धूर्त उसके सामने से भागने में रंचमात्र भी लज्जा का अनुभव नहीं किए, अपनी देह के रक्षार्थ कुछ भी करना उचित ही है। जब उसके आप्तजनों ने वापस लौटने की प्रार्थना की, तो स्वामिभक्ति का स्मरण करते हुए रिल्हण ने प्रजापति ब्रह्मा के सदृश मधुर स्मित के साथ कहा "लज्जा का अभाव रहते हुए भी जो प्रत्येक जीव की अपनी निज की प्रभुता रहती है, उसका उपयोग करते हुए जो सेवक अपना कर्त्तव्य नहीं निभाता, उसके जीवन को धिक्कार है।"

दाढ़ी के बालों से नीलकमल के पत्र-सदृश दीखनेवाले और जटा-रूपी कुमुदिनी से गौरवर्ण प्रभु के मुखरूपी सरोवर में यदि अखण्ड लक्ष्मी के विलास का अभाव हो तथा कमल-कैरव सूख जायँ तो उसके मुख पर भ्रूभंगरूपी भ्रमरों की शोभा कैसे परिलक्षित होगी? तनिक भी कष्ट का सामना होते ही भयभीत होकर स्वामी की सेवा-विरत होना अथवा स्थायी सौख्य से विमुख हो जाना कापुरुषों का कार्य है, धैर्यवान् वीर पुरुषों का नहीं। यात्री को तीर्थ-जल से ठंडक का भय तभी तक रहता है जब तक वह वस्त्र लपेटे पड़ा रहता है, परन्तु जहाँ साहस से स्नान प्रारम्भ किया कि उसे ब्रह्मानन्द-

सदृश सुख की प्राप्ति होती है। तथैव योद्धा को तभी तक भय का अनुभव होता है, जब तक वह रणांगन मे उतर नही पडता। वहाँ पहुँचकर वीरगति पाने वालो को कैवल्य सुख की प्राप्ति तथा उसके पश्चात् मुक्ति मिल जाया करती है।

सुनहली मूठवाली तलवार के दीप्ति-समूह मे उसके खड्ग का परतलारूपी नर रणरूपी रंग-भूमि हरताल की भांति उज्ज्वल वर्ण होकर शोभित हो रहा था। उसके खड्ग-प्रहार से मृत्यु को प्राप्त हुए जीव-समूह मरणोपरान्त उठकर पुन शत्रुओ से चिपट जाते थे, जैसे तृणग्राही से तृण चिपट जाते हैं। युद्ध-स्थल मे मरकर लोग, उन मृतको का भी अनुसरण करने लगते थे, जीवितावस्था मे जिनसे वे शत्रुता रखते थे। देखते ही देखते उन दोनो के प्राण उसी प्रकार अलक्षित हो जाते थे, जैसे पशुओ के चर लेने के कारण तृण अलक्षित हो जाया करते हैं।

मृत्यु के मुख मे प्राप्त प्राणी मृत्यु के किसी अग मे मार्ग बनाकर बाहर निकल आता था, जैसे तिमि मत्स्य मुँह बन्द करता है तो उसके पेट का पानी कान के रास्ते बाहर निकल जाता है। इस प्रकार युद्धभूमि मे पैतरा बदलता हुआ रिल्हण काफी समय तक जूझता रहा, फिर श्रान्ति दूर करने के हेतु बाहर चला आया। इतने देर मे उसकी तमाम सेना कट चुकी थी, इसलिए उसको शत्रु पर अत्यन्त क्रोध आ रहा था। तभी उसके पीछे से एक विशाल वाहिनी सहित चतुष्क स्वय पहुँच गया। पूर्व समय मे जिसको वह अपना सहायक समझता था, वही अब शत्रु के रूप मे उसके सम्मुख उपस्थित था। उस समय भी वह रिल्हण-रूपी मयूर, उभयमुखी शत्रुसेना-रूपी दोमुँहे सर्प को देखकर युद्ध नही हुआ, वरन् चतुष्क को देखकर वह प्रसन्न मुद्रा मे नृत्य करने लगा। रिल्हण ने अपना मुख तथा पृष्ठ भाग दिखाते हुए दोनो सेना के व्यूहो को काट डाला, जैसे मन्दराचल ने समुद्र-मन्थन के अवसर पर समुद्र के तटो को काट डाला था। अपने अश्व पर चढकर वह दोनो सेनाओ के मध्य कील मे बँधे हुए की भाँति चक्कर काटता हुआ उसी प्रकार प्रहार कर रहा था, जैसे कि जुलाहा भरनी मे सूत भरकर करघा चलाता था।

उसी समय भास भी रणांगन में प्रविष्ट हुआ और दो मे से एक सेना का वेग उसने सम्हाल लिया। वह उस समय उस द्वीप की भाँति दिखायी पड रहा था, जो जल-प्रवाह के मध्य से अचानक निकल पडा हो और उसके एक ओर जल का प्रवाह वेग से बह रहा हो। कुछ ही क्षणो के पश्चात उसने शत्रुसेना को उसी प्रकार जड बना दिया कि उसके योद्धाओ के कुण्डल मात्र शस्त्रास्त्र की भाँति आन्दोलित हो रहे थे। प्रचण्ड गति से युद्ध करते हुए भास के सम्मुख वे अपना पौरुष प्रदर्शित करने मे सर्वथा असमर्थ हो गये। उसने शत्रुओ के मुख को पीला एव स्वेदपूर्ण करके जैसे अपने राजा को पुन अभिषिक्त कर दिया हो। इस प्रकार भास तथा लोठक दोनो रात्रि मे मान्त्रिक तथा वैताल की भाँति शत्रु के छिद्र की टोह लेने के लिए सदा सन्नद्ध रहा करते थे। दूसरे दिन सहायतार्थ आगत राज्य-सैनिको को साक्षी की तरह खडा करके उसने शत्रुओ को जगल के मार्गों से भागने के लिए विवश कर दिया। त्रिल्लक आदि की नीयत मे गडबडी की सम्भावना देखकर सजपाल तीसरे दिन रिल्हण इत्यादि के पास पहुँच गया। राजा के प्रताप की अग्नि मे झुलसकर लोठक उन दोनो के साथ सूख गया, जैसे आषाढ और ज्येष्ठ मास मे जगल का कोई वृक्ष घुनकर क्षीण हो जाय। युद्धरूपी वर्षा से शान्त चिता की अग्नि के सदृश चतुष्क की भी गर्मी उदय के साथ-साथ धीरे-धीरे कुछ कम हुई। उस समय ही दरदराज की सेना के अभिमानी सैनिक सुनहले साज वाले अश्वो पर सवार होकर पर्वतकन्दराओ से युद्ध करने के लिए चलकर युद्धस्थल मे आ पहुँचे। जिन-जिन देशो पर तुर्कों ने

आक्रमण किया था, वहाँ के नागरिकों ने उनके अधीन हो जाने की शंका से, सारी ही धरती को म्लेच्छों से आच्छादित मान लिया था। धन्य तथा द्वाराधीश उदय युद्ध-यात्रा में सम्मिलित नहीं हुए थे कि पृथ्वीचन्द्र ने किसी की कोई सहायता नहीं की। परन्तु जब वे दोनों रण के लिए प्रस्थित हुए तो वह उनके आगे-आगे तलवार लेकर बढ़ा। दमकते हुए सोने के साज-बाज में सुसज्जित शत्रु की सेना को उसने अवरुद्ध कर दिया जैसे ऊँची-ऊँची लपटों वाली दावाग्नि को झरनों वाला पर्वत रोक लेता है। सेना के आगे-आगे चलने वाले जयचन्द्र इत्यादि को ध्वस्त करके बलातिरेक में दृप्त राज्य के सैनिक युद्धभूमि में उतर पड़े। शत्रु के हजारों घोड़ों को गर्गपुत्र पृथ्वीचन्द्र ने अपने बल पर मात्र बीस-तीस घोड़ों की सहायता से पकड़कर रोक दिया। उसका मानवेतर पुरुषार्थ देखते हुए शत्रु योद्धाओं में से प्रत्येक सैनिक ने विष्णु भगवान के सदृश गर्ग के पुत्र को अपने समक्ष उपस्थित देखा। इस परिस्थिति में वे सभी कापुरुष शत्रु सैनिक, घोड़ों की गर्दन पर मुख रखकर किन्नरों की भाँति क्षण भर के ही अन्दर भाग कर पहाड़ों पर चले गये। इस पर जयचन्द्र तथा राजवदन आदि ने रात्रि में अपने सैनिकों से कहा "स्थान की समुचित जानकारी न होने के कारण अचानक यह पराजय हो गयी। इसलिए तुम सब लोग कल इन सबों पर विजय प्राप्त कर लेना।" यह बात दरदराज के सेनापतियों ने बिल्कुल असत्य कह डाली थी। वास्तव में वे वहाँ से भाग जाने की योजना बना रहे थे। उस समय ही बलशाली बलहर ने सोचा कि धन्य और द्वाराधीश उदय को दूर ही रोक कर यहीं पश्चिमी मार्ग को अवरुद्ध कर दूँ। उसके पश्चात् सेना शिविरसहित समस्त राजवर्ग में दरद-निवासियों को यहाँ से तारमूलक भेज दिया जाय। जिस समय बलहर इसकी योजना कर रहा था, उस समय दस्युओं के मध्यवर्ती सल्हण-तनय भोज ने सम्पूर्ण कश्मीर राज्य को अपने अधिकार में प्राप्त समझ लिया। दरद यद्यपि अभी विजय नहीं प्राप्त कर सके थे तथापि अनेक सामन्तगणों के साथ बैठे भोज ने सोचा 'भाग्यशाली होने के कारण मेरी विजय निश्चितप्राय ही है।' इस प्रकार वह दर्प से उत्तेजित हो उठा। हस्ति-समूह अपने तीव्र दाँतों से कमलवन को उसी प्रकार ध्वस्त करने लगे, जैसे सूर्य के प्रतिस्पर्धी चन्द्रमा उदय होकर धीरे-धीरे अपना मण्डल पूर्ण कर लेता है तथा दीप्ति से प्रीति रखने वाले सूर्यकान्त मणि अपना ताप त्याग देते हैं। ठीक ही है आपत्काल में कल्याण तथा अकल्याण अनायास ही समुपस्थित हो जाते हैं। नाग और राजवदन में पहला डामर था। इसलिए जिसने विपत्ति में भी बार-बार भिक्षु की उपेक्षा की थी, जिसका टिक्का के साथ सम्बन्ध था, उसे राजा ने मुख्य विश्वासघाती समझा। लब्ध न होने पर भी राजवदन विचित्र ढंग से आगे बढ़ गया था। विपत्ति के समय सहायता करके उसने राजा का विश्वास प्राप्त कर लिया। इस भाँति एक अद्भुत रीति से स्वार्थ साधन करते हुए दोनों सामान्य हो गए। अपने ही द्वारा संचालित विद्रोह को अन्यों का किया जानकर नाग उसी प्रकार क्षुब्ध हुआ, जैसे किसी कवि की सूझ अन्य कोई व्यक्ति अपना ले।

तत्पश्चात् नाग ने जिसे राजा का विरोधी बना दिया था, उसी भोज को अपने पक्ष में लाने के लिए कपटपूर्ण शब्दों में कहा "तुम राजवदन को छोड़कर मेरे पक्ष में आ जाओ।" आगे उसने और कहा—"रथ पर सवार होकर तेजोबलहर का पुत्र अभी आ रहा होगा, अतः तुम उसकी प्रतीक्षा करो। और एक छोटे सेवक अथवा ड्योढ़ीदार की भाँति खड़ा रहने से कोई लाभ नहीं।" यह सुनकर भोज ने तुरन्त राजवदन-रूपी बकरे का त्याग करके नागरूपी कामधेनु की सेवा करनी प्रारम्भ कर दी। कारण, पूर्व कार्य उसके अनुरूप न था। इसी प्रकार संसार का प्रत्येक प्राणी अपने कार्य

की सिद्धि हेतु प्रिय अथवा अप्रिय जन से अपना सम्पर्क स्थापित करता है। अन्य लोगो से प्रेम या शत्रुता से उसे कोई लाभ नही होता।

अपनी दीप्ति से अन्य दीप्तियो को पराजित करने वाले चन्द्रमा का आदर करने के लिए हाथी के दोनो दाँत वाध्य हैं और मद की सुगन्धि का आनन्द प्राप्त करने के लिए भ्रमर दल को गजराज का गण्डस्थल प्रिय होता है। कमल की सुगन्धि का विरोधी होने के कारण उस पर चन्द्रमा का स्नेह नहीं रहता, परन्तु उससे तृप्ति प्राप्त करने से भ्रमर अपने स्नेही कमल का विरोध कभी नही करता। तदुपरान्त वलहर की प्रतिष्ठा नष्ट करने और राजा जयसिंह का मगल करने के हेतु नाग ने जीवन-पर्यन्त के लिए उससे शत्रुता कर ली। उसके पश्चात् पराजित दरद-सैनिको द्वारा जनसाधारण से कहलवाया "राजा राजवदन को अपने साथ नही ले गया था। वह तो भोज के साथ होकर तुम सबो को नष्ट कर देने को तैयार था।" तदुपरान्त क्षेमवदन और मधुमद्र के साथ सारी सेना दरद-राज के सेनापति द्वारा बुला ली गयी। तब दुर्गपति ओजस ने अपने सलाहकारो से सलाह ली। यह समाचार जानकर भोज पक्ष के जन हँसने लगे।

उस समय ही यह प्रवाद फैल गया कि 'सूर्य-सदृश तेजस्वी राजा को स्फटिक-सदृश देदीप्यमान् किसी सेना ने रोक लिया है और वह वेचारा विड्सीह-रूपी भट्ठी मे जा गिरा है।' इस प्रकार के अनर्थ से उत्पन्न दुश्चिन्तारूपी क्षय रोग से क्षीण होकर वह राजा कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की भाँति कृष्ण दिखायी पडने लगा। उस ओर अपने पृष्ठपोषक स्वामी के रणस्थल मे रुग्ण और भय के कारण जर्जर हो जाने पर, वलहर के भोजन मे दत्तचित्त होने के कारण सभी सैनिक सेनापति सहित अश्वो पर चढकर पहाडो पर भाग गए। इस बात पर विचार करने के पश्चात् कि 'यदि बहुमत वापस आने के पक्ष मे हुआ तो प्रात काल हम लोग पुन आ जायेंगे।' कहकर वे भागने वाले सैनिक भोज को भी साथ लेते गए। विवश होकर उसने उसके साथ कोशपानपूर्वक प्रतिज्ञा की थी, इसलिए वह उनका अनुगामी बन गया। इस तरह कार्यभ्रष्ट होकर भोज खन्दक मे गिर जाने के सदृश विह्वल हो गया।

उसकी शिराओ का रक्त बार-बार खोलकर उफन उठता था। कभी-कभी वह अनुभव करता, जैसे वह किसी सोपान के पत्थर पर खडा है और उस पर गन्दा पानी गिर रहा है। उसको बार-बार ऐसा प्रतीत होता था कि वह आकाश से धरती पर गिर रहा है और जब वह मार्ग पर चलता था, तो उसे कुछ भी नही दिखायी देता था और लज्जा से उसका मुख नत हो जाता था। उसने सोचा 'राजा के प्रभाव को सदा देखने वाले आत्म-ज्ञान से शून्य हम लोगो ने मानव धर्म तक नही जाना। हमे इसके लिए धिक्कार है। जिनकी प्रतिभा प्रखर है, और जिनको सभी तत्त्व ज्ञात हो चुके हैं, वे ही महाकवि ऐसे-ऐसे राजाओ के प्रतापाग्नि का वर्णन करने मे अपने मस्तिष्क को उचित अर्थों मे लगा सकते हैं। राजा के प्रताप-रूपी अग्नि के कण यदि धरती पर न होते तो हम जैसे कवि पदो का विन्यास करने के लिए अधीर क्यो होते। यदि उस राजा मे प्रतापानल की उष्णता न होती तो उस समय जब उसके सैनिक मूसलाधार वर्षा मे भीग गये थे तो उनके आर्द्र अगो को सुखाता कौन ? यदि राजा की प्रतापाग्नि न होती तो आग के धुएँ से भरी आँखो वाले जनो को सही या गलत रास्ता कौन दिखाता ?'

इस प्रकार मधुमती नदी के अन्य किनारे पर स्थित दरद के सैनिको को छोडकर भोज नदी की तरग-रूपिणी जवनिका से आच्छन्न दूसरे तट पर पहुँचकर वही रहने लगा। उसके साथियो ने

समझा-बुझाकर धीरे-धीरे उसके क्षोभ को दूर किया और उसे अपने शिविर में ले गये। वहाँ उन विद्रोही सैनिकों ने सोचा था कि राजा के मन्त्रिगण मेरे साथ सन्धि करने अवश्य आयेंगे।

तत्पश्चात् अपनी नीतिनिपुणता से अपरिमित धनवर्षी राजा की सेवा करने की आकांक्षा फिर उन सबके मन में जागी और वे अपनी रक्षा के आश्वासन पर यह सौदा पटाने को तैयार हो गए। लेकिन राजा की ओर से उन्हें उत्तर यह मिला कि 'अब लड़ाई का अवसर नहीं रह गया। कारण कि हिमवर्षा का समय निकट आ गया है। अब वसन्त काल में पूर्ण तैयार की जायगी।' इस पर उन विद्रोहियों ने यह विचार किया कि यदि यहाँ समय का व्यतीत होना कठिन हो तो भुट्ट-राष्ट्र के मार्ग से होकर हम सब बलशाली त्रिल्लक के यहाँ चले चलें। कारण कि राजवदन राजा के आश्रित हो चुका है और इसलिए यहाँ हम लोगों को पकड़ने के लिए कुछ नराधमों के साथ अवश्यमेव आयेगा।

राजपुरी के लोगों का तो धन्धा ही कुटिलतापूर्ण कार्य का करना हो चुका है। वियोग के दिनों की ही भाँति गर्मी के दिन भी लम्बे हुआ करते हैं। तत्पश्चात् बलहर ने दूतों द्वारा उलाहना दिया कि आप सब ने मुझे एक विचित्र ही मायाजाल में फँसा दिया है। उत्साहाधिक्य के कारण युद्धस्थल में रहते हुए भी उसने गर्ग-तनय पृथ्वीचन्द्र तथा राजा की सेना के आगमन की भी कोई चिन्ता न की। इस प्रकार अचानक दरदराज के सेनापतियों और भोज के भाग जाने का समाचार जानकर भी जो उसका धैर्य स्थिर रहा, उसके लिए बड़े ही महत्व की बात थी।

इस तरह युद्ध का सारा आडम्बर छिन्न-भिन्न हो जाने पर भी जो उसने युद्ध बन्द नहीं किया तथा वीरता से लड़ता रहा। वह कार्य भी उस मानवेतर पुरुष के अतिरिक्त और कौन कर सकता था? समयानुसार आगे चलकर सन्धि के इच्छुक धन्य और द्वाराधीश उदय ने विलम्ब से योजना बनायी। कारण कि उन्हें भोज के स्वतः वापस आ जाने की आशा थी। उसके पश्चात् भोज को ले आने के लिए अलकार स्वयं गया। वहाँ पहुँचकर उसने दरद-सैनिकों के सन्मुख ही उसको अनेक प्रकार से ऊँचा-नीचा समझाया। अनेक प्रकार से समझाने पर भी जब अलकार अपने लक्ष्य में असफल रहा तथा द्रोह-भावना यथावत् ही रही तो उसने कहा "आप लोग जब तक मेरे साथ चलने को तैयार न होंगे, मैं यहीं मार्ग में पड़े-पड़े अपने प्राणों को त्याग दूँगा।" जब उसको सेवकों के साथ मरने के लिए सन्नद्ध देखा तो दरदराज के सैनिक द्रवित हो उठे। इस प्रकार अपने हाथों कलह को समाप्त करने के लिए उद्यत बलहर-रूपिणी सरिता अपने कल्लोल से हाहाकार करती हुई जैसे दरद-सैनिकों की निन्दा करने लगी।' तत्पश्चात् अपनी स्त्रियों द्वारा लज्जित किये जाने पर म्लेच्छ राजाओं में ईर्ष्या का सचार होते और अपनी ही सेना में फूट पड़ते देखकर विड्डसीह ने भोज को अलकारचक्र के साथ जाने की स्वीकृति दे दी। इसके पश्चात् सेतुपालों को आगे करके और उनके द्वारा बाधकों को दूर कराके अलकारचक्र ने नदी पार कर ली तथा तूर्य की ध्वनि से दिशाओं का मौन भंग करता हुआ भोज को लेकर अपने शिविर में जा पहुँचा।

भोज जब चला गया तो विड्डसीह ने अपनी सेना की असहायावस्था को देखकर सन्धि के लिए उत्सुक होने के कारण राजा के दूत को बुलाकर कहा "आपके महाराज का प्रभाव मानवेतर है। उनके उस प्रभाव के समक्ष मुझ जैसे साधारण धीवर का प्रभाव क्या मुकाबला कर सकता है? अनुचित ढंग से उनके प्रभाव का रहस्य जानने की चेष्टा करते-करते हम जयराज के साथ यमलोक

पहुँच जायेंगे तथा वहाँ आपके स्वामी जयसिंह के प्रभाव का वर्णन करेंगे। उस दिव्य प्रभावशाली राजा से यदि मेरी पराजय भी होती है तो वह भी मेरी विजय तुल्य होगी। कारण कि कगार गिरने के कारण भी यदि यात्री तीर्थ मे गिर जायँ तो भी उनकी उन्नति ही है।" तत्पश्चात् विड्डसीह अपने नगर को प्रस्थित हो गया और कुछ समय तक वही निवास करता रहा। ऐसा करने से उसने यमराज के राज्य को लांघ लिया, जहाँ उसके पातको की पताकाएँ फहरा रही थी। दूसरी ओर राजवदन ने भोज के आगमन का समाचार न जानते हुए ही द्वाराधीश उदय तथा धन्य से सन्धि कर ली। तदनन्तर मनस्वियो मे श्रेष्ठ षष्ठचन्द्र अश्व पर सवार हो उन दोनो के साथ राजा जयसिंह के यहाँ पहुँचा। बाद मे अहकार, अज्ञान अथवा अविवेकवश वे लोग सकुशल राजवशज भोज की उपेक्षा प्रारम्भ कर दिए। अनुत्कण्ठित भाव से यद्यपि राजा ने कई बार बुलवाया, परन्तु शत्रुओ को समाप्त करने से पहले रिल्हण वापस नही आया।

काम पूर्ण करने के पहले वह राजा के सम्मुख नही जा सकता था, जैसे अपने स्वामी को प्रसन्न रखने का इच्छुक सूद (पाचक) उसके भोजन करने के पहले नही खाता। युद्धभूमि मे जिसने भीमसेन-सदृश मगधेन्द्र जरासन्ध की सी आकृति वाले पृथ्वीहर के दो पुत्रो को दो भागो मे विभक्त करके व्यर्थ कर दिया, अर्जुन ने जैसे खाण्डव वन मे सर्प को काटकर विवर मे प्रवेश करने के लिए विवश कर दिया था, उसी प्रकार युद्ध मे रिल्हण ने लोष्ठक को माता की कोख के समान धरती पर चले जाने के लिए बाध्य कर दिया। उधर त्रिल्लक के दुर्भेद्य भवन मे सकोचवश दर्परहित चतुष्क ने उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे कच्छप अपने शरीर के खपड़े मे प्रवेश कर जाता है। रिल्हण ने जब अपने पराक्रम के सहारे राजा के सभी कार्यों को पूर्ण कर लिया तो अपने परतले पर प्रभु के चरणो की नखदीप्ति डालने के लिए वह महाराज जयसिंह के पास पहुँचा। कश्मीर-नरेश के प्रताप से यद्यपि वह विद्रोह शान्त हो गया, परन्तु मन्त्रियो के दोष से पुनः अन्य अकुर प्रस्फुटित हो गए।

दण्ड के योग्य राजवदन को धन-प्रदान द्वारा प्रसन्न किया गया था। इसलिए निर्भय होकर आगत भोज को वह पुन. उकसाने लगा। तदनुसार उसने भोज को घूसस्वरूप पुष्कल धन देकर दिन्नाग्राम मे खशो के घर टिका दिया। साथ ही यह भी कहला दिया कि कुछ अनुयायियो सहित द्वाराधीश उदय कल मेरे सम्मुख उपस्थित होगा। जल के प्रवाह मे डगमगाती हुई जैसे कोई तरणी सम्हाल ली जाय, तथैव त्रिल्लक ने अपनी नीति-रूपिणी रज्जु के प्रसार द्वारा भोज को स्थायी बना दिया।

इस प्रकार पुन सकटापन्न स्थिति को देखकर राजा ने सोचा कि जिस धूर्त के कारण पहले व्यवस्था बिगड गयी थी, उसने फिर वही चाल अपना ली। अलकारचक्र, मन्त्रियो के साथ अच्छे पद पर नियुक्त होकर भी वह अजितेन्द्रिय पुरुष के दुराग्रह की भाँति अपना कुटिलता का त्याग नही कर सका। तब जैसे अपक्व रोग की वैद्य उपेक्षा करता है, उसी प्रकार राजवदन आदि की उपेक्षा करके राजा पके फोडे के समान अन्यान्य शत्रुओ को ध्वस्त करने लगा। "हमारे पैर जब उखडने लगे, तो पीछे से तुम आ जाना।" इस प्रकार भोज से कहकर अलकारचक्र विप्लव करने की अभिलाषा से अग्रसर हुआ। उस समय आनन्दवाड का पुत्र दस्यु जयानन्द और क्रम राज्य वाले अन्य योद्धा उसके पक्ष मे मिल गए। राजा का प्रधान न्यायाधीश अलकार सिकता के बाँध-सदृश एक छोटी-सी सेना लेकर उन विप्लवकारियो के सम्मुख आ उपस्थित हुआ, जिनके पास सरिता-प्रवाह-सी असख्य सेना थी। ऐसी

अवस्था मे वह एकाकी कैसे लड सकता था, जब विपक्ष मे अगणित लोग थे। परन्तु इतने पर भी उसने रामिचर आदि अनेक राजाओ के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। मदिरापान से उन्मत्त तथा क्षुब्ध शत्रु-सैनिको का वह प्रवल दल रुधिर की धार प्रवाहित करता हुआ झूम रहा था। फिर क्या था, अलकार की सेना रुई की राशि के समान शत्रु सेना क झोको से उड गयी। तत्पश्चात् अलकार ने रणस्थल मे अपने एक वाण मे आनन्दवाड-तनय जयानन्द को काट डाला तथा उसका माम गृध्रकक आदि पक्षियो को खाने के लिए सौंप दिया।

भोज अपनी उन्नति का अभिलाषी था और राजा जयसिह उसको वन्दी वनाने का। जैसे कोई तीतर दलदल मे भाग रहा हो तथा उसे फँसाने के लिए वहेलिया उसका अनुसरण कर रहा हो। जिस प्रकार उडने मे असमर्थ होकर तीतर श्रान्त हो जाता है, परन्तु दलदल मे फँसता और गिरता हुआ व्याध फिर भी उसका पीछा करता रहता है, उसी तरह उस साहस के प्रसग मे भोज भी थक गया, लेकिन मुग्धबुद्धि राजा ने उसे पकडने का अपना विचार नही त्यागा।

उसके पश्चात् भोज जब दिन्नाग्राम मे था, राजवदन भी वहाँ पहुँच गया। इस प्रकार चोरो तथा चाण्डलो का दल एकत्रित हो जाने पर कल्याण की वात कौन सोच सकता है? शक्तिसम्पन्न डामरो का सब यद्यपि एक बार ध्वस्त हो चुका था तथापि इस वार उन्होने पहले से ही अपना सगठन प्रवल कर लिया। वे सब अकेले द्वाराधीश उदय को आता हुआ देख सहन न कर सके और कलुषित भावना से उसे उद्विग्न करने के लिए वेढगा युद्ध प्रारम्भ कर दिए। उसी समय अपने सहयोगियो की रक्षा तथा उन्नति के लिए पुष्कल धन देकर अलकारचक्र के वुलाने पर सल्हण-तनय भोज वहाँ आ गया।

एक दिन के पश्चात् जब भोज उन लोगो के पास जाने वाला था, तभी द्वाराधीश उदय को यह रहस्य ज्ञात हो गया, क्योकि उस समय वह अपने श्रान्त सैनिको के सहित हयाश्रम मे विश्राम कर रहा था। उदय उसी समय वक्र पथ से चलकर लोगो के अनजान मे तारमूलक पहुँच गया। वह वहाँ भोज से मिला तथा उसके साथ उसने व्याज सन्धि कर ली। भोज जब वहाँ स्थित था, तभी सन्ध्या समय उसने किसी के रुदन की ध्वनि सुनी। वह व्याकुल हो उठा और कुछ बोला। इस प्रकार अकारण भयभीत भोज को देखकर उसके साथियो ने उसका परिहास भी किया, परन्तु वह इतना घवडा उठा था कि उसने तुरन्त घोडे तैयार करने का आदेश दे दिया।

इस घटना से अलकारचक्र भी दहल उठा था और दशग्राम मे शीघ्रता के साथ पहुँचकर और "राजपुत्र भोज कहाँ है?" पूछकर भाग गया। सन्ध्या के समय मुँह-अँधेरे उस सग्राम मे वडे जोरो से तूर्यध्वनि होने लगी और सेना का आक्रमणसूचक कोलाहल भी सुनायी पडने लगा। उसी समय घोरान्धकार मे भोज गुप्त रीति से भाग गया। और अलकारचक्र दूसरे दिन के युद्ध की योजना वनाने लगा। उस अवसर पर ही द्वाराधीश उदय ने पर्वतीय मार्ग पर प्रकाश करने के लिए अग्नि जलवायी जो इन लोगो के लिए विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई।

भोज की प्रतीक्षा में वैठे हुए डामरो को जब उदय के साथ सन्धि हो जाने का समाचार प्राप्त हुआ तो वे सब तितर-वितर हो गए। धैर्यशाली उस भोज ने एक उच्चकोटि का आश्रय प्राप्त कर अपने स्त्री-पुत्रादि का वन्धन तोडे विना ही अलकारचक्र के साथ अमगलकारी युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उस समय आवेशवश भोज ने युद्ध प्रारम्भ तो कर दिया, परन्तु सामर्थ्य के अभाव मे पीछे हटने लगा। इसलिए भोज को वहाँ भी आहार आदि का सुख नही प्राप्त हो सका।

शकरजी ने जब त्रिपुरासुर को भस्म किया, उस अवसर पर उनके सर्प को बाणाग्नि का और समुद्र-मन्थन के समय मन्दराचल के साथ सम्पर्क होने से वडवानल का ताप सहन करना पडा था। इस तरह शकरजी के मित्र फणीश को कही भी मैत्री का सुख-लाभ नही हो सका। तत्पश्चात् भूख-प्यास और श्रान्ति मिटाने के लिए भोज पुन भागकर अपने देश जा पहुँचा और अलकारचक्र के पुत्रो से सन्धि करनी चाही। पिता की सहमति अथवा अपनी बुद्धि से ही अलकारचक्र के पुत्रो ने भोज के साथ सन्धि कर ली। तदुपरान्त कार्यमर्मज्ञ भोज ने वलहर के ही साथ काम करने का निश्चय करके अन्यान्य लवन्यो से अनास्थावान् होकर फिर से दिन्नाग्राम पहुँच गया। यद्यपि वह द्वाराधीश उदय के शत्रुओ का उद्धार करने का इच्छुक था, परन्तु अचानक उसके नेत्रो मे कोई रोग हो गया जिससे वह सर्वथा असमर्थ हो गया।

उस स्थिति मे डामर अलकारचक्र ने अपनी जिन दो कन्याओ को भोज के साथ विवाहित करने की इच्छा की थी, युद्ध मे पराजित होने पर उसने उसमे से एक कन्या का विवाह पर्मालिड से और दूसरी का गुल्हण से कर दिया। दण्डनीति के प्रयोग करने का अवसर जब आया तो रोग की तीव्रता के कारण विवश होकर द्वाराधीश उदय ने सामनीति का सहारा लिया और राजधानी वापस चल पडा। आक्रमण के ठीक समय पर समस्त युद्ध का भारवाहक गर्गपुत्र पष्ठचन्द्र भी दुर्नामक (ववासीर) रोग से पीडित होकर घर चला गया। वह जब रोगग्रस्त अवस्था मे शय्या पर पडा था तो उसके दो उद्दण्ड भाई जयचन्द्र तथा श्रीचन्द्र आक्रमण जैसे अनेक उत्पातो से प्रजा को सताने लगे। उस अवसर पर युद्धार्थ-सन्नद्ध एक मात्र त्रिल्लक अन्य प्रबल जनो से अपना सम्पर्क दृढ कर रहा था। उसने राजा के सान्त्वनापूर्ण प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया।

जब पष्ठचन्द्र की मृत्यु हो गयी, और द्वाराधीश रोगग्रस्त हो गया, तब राजा जयसिंह ने धन्य को उसके कार्य को सम्पादित करने के लिए नियुक्त कर दिया और तुरन्त तारमूलक की ओर प्रस्थित हो गया। तत्पश्चात् राजा ने विचार किया कि कही भोज इन जनो के हाथ से निकल कर अन्य किसी शक्तिशाली से मिलकर प्रबल न हो जाय, अथवा यह देश छोडकर कही अन्यत्र चला जाय जहाँ से फिर न मिल सके, इसलिए साम आदि किसी भी युक्ति से उसे अपने अधिकार मे करने के लिए उसने धन्य को निर्देपित किया।

राजा ने उस विषम एव दूषित नीति का प्रयोग परिणाम की जानकारी के बिना ही कर दिया था जिससे वह नीति उसके लिए उसी प्रकार घातक प्रतीत हुई, जैसे बिना कटी पूँछवाली सर्पिणी को विवर से बाहर खीच लेने पर आपत्ति आ जाती है। अब राजवदन को शक्तिवान् और राजा जयसिंह को शक्तिहीन देखकर बाहरी तथा आन्तरिक शासक मनमाना व्यवहार करने लगे। बडे खेद का विषय है कि दण्डनीति मे पाताल-रन्ध्र के समान अनेकानेक छिद्र सदा सुलभ रहते हैं। वे छिद्र एक से अनेक होकर बराबर फैलते रहते हैं। जिसके फलस्वरूप प्राणी तथ्य को जाने बिना ही किसी अतर्क्य नियमानुसार पतनाभिमुख हो जाता है।

राजा ने जब वलहर से भोज को मुक्त कर देने के लिए कहा तो उसने उत्तर दिया कि भोज इस समय धनहीन हो गया है और इसलिए यदि आप उसकी धन आदि से सहायता करे तो शायद वह चला जाय। राजवदन ने जब देखा कि राजा पर उसकी माया काम कर गयी, अर्थात् उसे प्रचुर-मात्रा में धन की प्राप्ति हो गयी तब उसने नीति-नैपुण्य के सहारे अन्य युक्तियो को सोचना प्रारम्भ कर दिया। वलहर इत्यादि के साथ पद-पद पर सन्धि करके तथा बार-बार आ-जाकर धन्य जनसाधा-

रण के सम्मुख उपहास का पात्र बन गया। उस राजा ने नित्य परिभ्रमणशील राजकार्य की कोई भी अवधि नही प्राप्त की, जैसे रहट मे बंधे घटीमत्र की रस्सी के सिरे को कोई पकड नही पाता। चक्र के सदृश परिवर्त्तनशील उसके क्रियाकलाप यद्यपि तीक्ष्ण थे तथापि बाण के समान उसकी नीति का भेदन करने या बढाने योग्य न थे।

राजा जयसिंह ने लोठन तथा विग्रहराज ये दो राजे और बना लिए थे। इसलिए वह असहाय होकर एक शत्रु के साथ चल रहे युद्ध से व्याकुल था, जैसे शतरज के खेल मे खिलाडी दो राजा रखते हैं और तीसरे के लिए व्याकुल रहते हैं। खेल की कोई योजना उसने नही बनायी थी। अतएव अन्यो को देने के लिए उसके पास कुछ भी नही था जिससे उसके शत्रु उसके अश्वारोहियो, अश्वो, तथा पदाति सैनिको को तोड-फोडकर अपने पक्ष मे ला रहे थे। दूसरी ओर शत्रुगण (दस्युगण) सगठन करके शीतकाल व्यतीत करने की प्रतीक्षा मे थे। उसी समय वलहर को नाग के द्वारा अपना सर्वस्व नष्ट हो जाने की आशका हो गयी। वह पहले स्वय को साधारण शक्तिशाली तथा प्रबल शत्रु प्रदर्शित करता था, इसलिए जब नाग और धन्य ने एक साथ उस पर आक्रमण कर दिया तब वलहर कम्पित हो उठा।

तत्पश्चात् राजा जयसिंह ने भोज के साथ मत्रणा करके राजवदन के द्वारा धन्य के पास यह सन्देश भेजा कि यदि तुम नाग को बन्दी बनाकर मेरे पास भेज दो तो मैं भोज को तुम लोगो के अधिकार मे सौंप दूंगा। सकटापन्न स्थिति से ग्रस्त धन्य ने यह सन्देश सुना तो बडे असमजस मे पड गया। राजा का अनेक कार्य करने वाला नाग शत्रु के सदृश बन्दी करने योग्य कैसे हो गया, वह राजा की इस युक्ति का कोई निर्णय न निकाल सका। बाद मे उसने सोचा कि यह कोई नयी बात नही है। प्राय राजागण स्वार्थान्धितावश अपनी तत्वज्ञानहीन बुद्धि से कभी-कभी गलत काम भी कर डालते हैं। भगवान राम ने भी पत्नी को प्राप्त करने के लिए व्यग्र होकर सुग्रीव को तो अपनी ओर ले लिया और स्वार्थान्धितावश असाधारण वीर बालि की हत्या कर दी। उसी प्रकार सत्य की नित्यता को एक ओर करके धर्मराज युधिष्ठिर ने राज्याभिमान के कारण विवेकहीन होकर द्रोणाचार्य का वध करा दिया था।

राजा का जब भिक्षाचर के साथ युद्ध छिडा था, तब से नाग बराबर राजा के साथ द्रोह करता आ रहा था, परन्तु स्वार्थी राजा ने तटस्थ होने के कारण कुछ नही कहा। लेकिन अब भोज को सौंपने के लिए कोई भी शर्त न लगाकर वह राजा उसे योंही दे देना चाहता है। अचानक वह उस पर क्यो रुष्ट हो गया, यह समझ मे नही आता, अथवा बुद्धिमानो का क्रोध कदाचित् ऐसा ही होता होगा। ऐसा भी हो सकता है कि भविष्य मे होने वाली भलाई का ध्यान करके ऐसा निर्णय उसने लिया हो। यदि सोच-विचार कर यह आदेश राजा ने दिया हो तो इसे अमानुषी बुद्धि कहेगे।

भोज जब शत्रु था, उस समय उसने नाग को सन्देश दिया था कि 'वलहर तुम्हारी जमानत पर मुझे राजा के हाथो सौंपना चाहता है।' धन्य ने अन्ततोगत्वा उस सन्देश पर अनास्था रखते हुए सोचा 'नाग को बन्दी बनाने की बात उचित नही प्रतीत होती। हो सकता है कि राजा ने किसी कार्य मे मध्यस्थता करने के लिए इसे बुलवाया हो।' षष्ठचन्द्र के मरणोपरान्त राजा जयचन्द्र के द्वारा नाग को बुलवाया और उसने उसे ले जाकर राजा के समक्ष उपस्थित कर

दिया। 'राजा ने यदि उसे अपने पक्ष मे मिला लिया तो भयभीत होकर यह हम सबको मार डालेगा।' ऐसा सोचकर चलते समय भोज ने मन्त्री जयचन्द्र को सावधान कर दिया था। तब नाग ने दूतो से कहलवाया। "मुझे ज्ञात है कि आप लोगो का कहना यथार्थ है। तथापि ऐसा कुछ हो गया है कि मैं एक असहाय की भाँति लोगो द्वारा खिंचा जा रहा हूँ।" भाग्यरूपिणी नदी के पेटे मे डूबते हुए प्राणी के विषय मे यदि कोई तटस्थ जन कुछ कहता है तो वह सुनने के लिए ये कान समर्थ नही होते।

इस नाग मे वन्दी हो जाने पर उसके समस्त कुटुम्बी जनो ने मायापटु बलहर का सहारा ग्रहण किया, फिर उसके बाद बलहर का दर्शन दुर्लभ हो गया। भोज के मूल्य पर बिकने वाले नाग को लेकर रिल्हण के साथ भागता हुआ धन्य बलहर के पास पहुँच गया। उस समय मन ही मन हँसते हुए बलहर ने कहा कि "आप लोग पहले मुझे नाग को दे दे, तब मैं भोज को दूँगा।" इस प्रकार उसने दोनो को चक्कर मे डाल दिया। अब भलीभाँति जड प्रबल हो जाने के कारण दुर्धर्ष बलहर ने धन्य तथा रिल्हण दोनो की सेना व्यर्थ कर दी। वर्षा और युद्ध के अपमान से क्षुब्ध धन्य तथा रिल्हण से उसने कहा—"आप दोनो यदि यहाँ से चले जायँ तो मैं आपकी बात मान लूँगा।"

तदनुसार जब वे दोनो वहाँ से चल पडे और एक पडाव पर विश्राम कर रहे थे तब कार्य की चपेट मे डाल और भ्रमवश उन्हे बलहर ने फिर विवश कर दिया, क्योकि बलहर मे पराक्रम तथा धैर्य पर्याप्त मात्रा मे था जो आजकल विरले वीरो ही मे प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यात्रा भग करके साहस सहित अपने पास आने वाले धन्य और लोभवश आने वाले भोज के साथ बलहर का कोई द्रोह नही था। उसने सोचा था कि 'यदि मोहवश मन्त्रिगण नाग को मुझे दे दे तो मैं उसे पुनः समझा-बुझाकर मत्रिपद पर बिठा दूँ।' उस समय ही नाग के दूर रहने के कारण प्राप्त समृद्धि को दृढ करने के विचार से विकार को छिपाये हुए उसके भ्रातृज लोष्ठक ने धन्य आदि के द्वारा नाग की हत्या करवा दी।

इस प्रकार शत्रुओ द्वारा मोहित सचिवो ने अकारण नाग का वध कर दिया जिससे अपने तथा पराये सभी जन राजा की दुर्मन्त्रणा की निन्दा करने लगे। तदनन्तर स्वजातीय के वध से क्रुद्ध होकर सभी डामर और नाग के अनुयायी बलवान् बलहर की ओर जा मिले। मनुष्य जब दुःख मे पडने वाला होता है तो विवश होकर वह कुपथगामी होकर कुकर्म करने लगता है और उसी समय विधाता अपना कार्य सिद्ध कर लेता है।

धनाभाव मे जब प्राणी के सम्मुख दुस्सह परिस्थिति उपस्थित हो जाती है, तब सावधानी रखने पर भी मन अटपटे मार्गो पर भ्रमण करता हुआ बडे वेग से किसी दुःखरूपी गर्त मे गिर पडता है तथा उसी मे चक्कर काटने लगता है। तदनन्तर वह किसी अन्य पुरुष की सहायता से प्राप्त धनकोष्ठ की पीठ पर लोटने लगता है, उसके अगो मे घाव हो जाते हैं। परन्तु, इस प्रकार सुन्दर उलट-फेर करने वाला विधाता सहसा उसकी दुर्गति का अन्त कर देता है। इस प्रकार बिना सोच-विचार के राजा जयसिंह के मन्त्रियो द्वारा नाग के वध की बात भोज को मालूम न थी। तथापि उसे भय हुआ और सोचने लगा कि यह विश्वसनीय बात नही हो सकती कि इस असम्मानित विषय पर राजा ने मन्त्रणा की हो या उसने इसका अध्ययन किया हो, और किसी निष्कर्ष पर पहुँच गया हो। जिस राजा ने युद्ध का अवसर उपस्थित होते ही बडी व्यग्रता के साथ मुझे सहर्ष प्राप्त

किया था, वही अब मुझे किसी अन्य पुरुष के हाथ मे सौंप दे, ऐसा नही हो सकता । निश्चित रूपेण इसमे राजवदन की कोई चाल है । उसी ने मनमाना सदेश देकर धन्य, रिल्हण और मुझको चक्कर मे डाल दिया । भिक्षु के विद्रोह से लेकर अब तक शान्ति तथा सुभिक्ष का बाधक राजवदन क्या लोभवश धरती को अपने अधिकार मे नही करना चाहता होगा । तदुपरान्त शकालु-हृदय भोज का भय दूर करने के लिए रक्तिम चर्म से पैर ढाँककर खशो ने कोशपान किया । जिस भोज की आकृति पर भय के लक्षण स्पष्ट दीख रहे थे और जिसे रक्षक वर्ग घेरे हुए था, उसे विश्वास दिलाने के लिए बलहर एकाकी उसके पास पहुँचा ।

इधर अपने मन्त्रियो की जड बुद्धि के कारण कार्य नष्ट हो जाने पर कार्यमर्मज्ञ राजा जयसिंह ने बडी सावधानी से अगले कार्यक्रम के सम्बन्ध मे विचार करना प्रारम्भ कर दिया । चैत्र मास वृक्ष-समुदाय का, वर्षागम से नदी के जल का, सत्कार गुणगौरव का, समीप रहकर की जाने वाली सेवा नयनप्रीति का, महान् उद्यम ऐश्वर्य का, पूर्ण प्रसन्नता विजय-प्राप्ति का और राजा जयसिंह कर्त्तव्य का पालक था । ऐसे अवसर पर वह म्लान नही होता था ।

कार्य का प्रवाह जिस व्यक्ति को हठपूर्वक अपने पेट मे लिए जा रहा हो, वह यदि प्रवाह के विपरीत तैरे तो उसे कदापि पार नही कर सकता । अतएव शत्रुओ द्वारा धूर्त तथा मूढ समझा जाने-वाला वह राजा उन्हे अपनी मूर्खता दिखाता हुआ चक्र रचने लगा । कभी-कभी कुछ देकर भोज के आसपास की स्थिति का पता लगाते हुए राजा ने उसके चारो ओर अपने अविश्वसनीय मन्त्र का सचार कर दिया ।

हस्ति-समूह के मद से सुवासित एव अवरुद्ध नदियाँ भी प्रज्वलित जैसी दिखायी पडती हैं । अनेक छिद्रो से युक्त नीड में अवस्थित पक्षी को चारो ओर से भय बना रहता है और जब वह बहेलिये के द्वारबद्ध जाल मे बन्द हो जाता है तो उसमे निकलने पर गिरने का भय रहता है । ऐसे चक्र मे पडकर जैसे पक्षी दुखी होता है उसी प्रकार भोज को भी अन्तरग जनो पर विश्वास नही था और बाहर जाने पर सैनिको द्वारा अवरुद्ध मार्ग पर राजभय बना रहता था । उस समय भोज ऐसे सकट मे पडा हुआ था कि क्षण, भर को भी दोनो लोको के लिए उपयोगी मनोविनोद का कोई साधन उसे दिखायी न पडता था ।

उग्र तिरस्कार से पूर्ण पराया दुख भी मनुष्य को विशेष आर्द्र भावापन्न करके पीडित कर देता है, जैसे सम्पुटित कमल मे, आबद्ध भ्रमर वियोग के कारण करुण क्रन्दन करने वाले चक्रवाक् युग्म का आर्त्तनाद सुनकर भी दुखी हो उठता है । उसी समय भोज ने एक दुखी ब्राह्मण को देखा । रण मे उसके शरीर पर अनेक घाव हो गये थे और उनसे निकला हुआ रक्त सूख गया था । उसके केश बिखरे हुए थे और मुँह से फेन उगलता हुआ जोर-जोर से चिल्ला रहा था । भोज ने जब उससे रुदन का कारण पूछा तो उसने कहा "विप्लवी डामरो ने मेरा सर्वस्व लूट लिया तथा मार-मार कर मुझे घायल कर दिया ।" ऐसा कहता आत्मरक्षा करने मे असमर्थ वह अपनी निन्दा करने लगा । अपने ही दुख से दुखी भोज का मन उसका दुख सुनकर और भी आर्द्र हो उठा । इस प्रकार घाव ताजा हो जाने के कारण व्यथित होकर भोज ने सान्त्वना देते हुए उससे कहा "हे ब्रह्मन् ! मैं स्वय भीषण आपत्ति से ग्रस्त एक निद्य प्राणी हूँ अत सम्प्रति मैं ही आपके अनुग्रह का इच्छुक हूँ । तब ब्राह्मण बोला—'हे राजपुत्र ! आप एक स्वाभिमानी एव उच्चकुलोद्भूत जन हैं और सार असार

तत्त्वों के ज्ञाता हैं। ऐसी दशा में आप इस दुराग्रह से क्या लाभ चाहते हैं, बताइए। प्राणों को संशय में डाल और अधम जनों को प्रणाम करके प्रजावर्ग के लोगों को क्लेशित कर आप कौन-सा काम सिद्ध करना चाहते हैं ? आप क्या अपने उस शत्रु को नहीं जानते जिसे पराजित करने के इच्छुक हैं ? दावाग्नि से झुलसकर जैसे क्षुद्र मृग पराये शौर्यरूप अग्नि में जल जाता है, शस्त्र की सलाई भी जहाँ नहीं प्रविष्ट हो सकती, वह कार्य आप उसी प्रकार करना चाह रहे हैं, जैसे कमल-दल से स्फटिक मणि कोई बींधना चाहता हो। शत्रु को पराजित करने वाले पृथ्वीहर इत्यादि कितने योद्धा ऐसे भी हुए हैं जो इस संघर्ष में कंगाल नहीं हो गये हैं। दो नरेशों के राज्य में जीवन-यापन करने वालों का कर्तव्य जानते हुए भी सेवक-भाव को स्वीकार करके लोग सँपेरे द्वारा पकड़े गये सर्प की भाँति भोगी बनकर अभिमान का अनुभव करते हैं। पृथ्वी को धारण करने वाले नागकुल में जन्म धारण करने वाले सर्प बड़े हर्ष से सँपेरे द्वारा मुँह खोलकर ग्रास ग्रहण करते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि सँपेरा उनसे भीख मँगाकर अपनी जीविका चलाने के लिए उनको पालता है, उनकी ख्याति के लिए नहीं पालता। ठीक उसी प्रकार प्रजा वर्ग पर आतंक स्थापित करने के लिए कुछ योद्धाओं को पाल कर लोग उन्हीं की कमाई से मशक के सदृश अभिमान से फूलकर घूमते हैं।" तत्पश्चात् ऐसा कहने वाले ब्राह्मण को सान्त्वना देकर भोज ने विदा कर दिया और उसी समय उसका विवेक-रूपी कमल सहसा खिल उठा।

शान्त रस के महत्व को बढ़ाने का मुख्य कारण रमणीयता (भव्यात्मकता) ही होती है। यही भावों की मृदुता और क्रूरता की परिचायिका मानी जाती है, क्योंकि भव्य चन्द्रमा के अमृतमय प्रकाश से परिपूर्ण किरणों का संस्पर्श पाकर पाषाण चन्द्रकान्त भी तुरन्त द्रवित हो जाता है। राज-कुल में जन्म तथा निर्लज्जता से अपरिचित भोज बार-बार अपने और राजा जयसिंह में विद्यमान महान् अन्तर पर सोचने लगा—'शौर्य, नीति, त्याग, सत्य तथा बल में उस राजा ने समस्त पूर्ववर्ती राजाओं को भी नीचा दिखा दिया है, फिर हम जैसे क्षुद्र जन उसके साथ कैसे स्पर्धा कर सकते हैं ? उसका प्रभाव जब प्रदीप्त था, तब भी उसकी क्षमामयी शीतल शक्ति क्षीण एवं जड़ पुरुषों में भी बिना विशेष ऊष्मा उत्पन्न किये अपना समस्त कार्य करती रहती थी।'

दावाग्नि से झुलसे और दल के दल विषैले सर्पों से घिरे रहने पर भी उच्च चन्दन तरु में शीतलता रहती है। शीतकाल में जब तीव्र शीत पड़ा करता है, उस समय भी गहरे कूप में भीषण गर्मी रहा करती है। किसी भी व्यतिक्रम से सुपुष्ट उस राजा के बिना काम नहीं चल सकता। उसे प्राप्त करने के बाद उसकी मानसिक अशुद्धि किसी प्रकार बाधक नहीं हो सकती। पर्वतीय निर्झर से गिरा शुभ्र जल अपने महत्त्व के कारण आदृत होकर विरले भाग्यवानों को ही सुलभ होता है, लेकिन आकाश से गिरने वाला मलिन जल सर्वत्र प्राप्य रहता है, लेकिन कलुषित दोष के कारण वह जल उतना उत्कृष्ट नहीं रहता। इसी प्रकार देवनदी गंगा का भी जल यद्यपि बादलों से ही आता है, लेकिन हिमालय के विभिन्न पर्वतों की हिमराशि को प्राप्त कर वह जल विशेष पवित्र हो जाता है। अतएव ग्रन्थिहीन हृदय वाले उस महात्मा के विषय में जिन-जिन अनर्थों का आरोप किया जाता है, उनकी सफाई देने के लिए यदि उसमें निवेदन करूँगा तो वह रुष्ट नहीं होगा। जिसने उसका ताप बढ़ाने के लिए उस स्वस्थ पुरुष के हृदय में दावाग्नि प्रज्वलित की थी, वह व्यक्ति स्वयं उस आग में जलकर मर जायगा। कोई व्यक्ति यदि चन्दन वृक्ष में लगी दावाग्नि को शांत करने जाय और उसकी शीत-लता न प्राप्त हो सके तो उसके परिश्रम से क्या लाभ ? सारी दुर्दशा को सहन करने में अशक्त, राजा

का उद्धार और उपकार करने मे तत्पर और धैर्यशाली धन्य पुन -पुन प्रशसा का पात्र है। इस प्रकार राजा को प्रसन्न करने का अवसर ढूँढने वाले भोज ने एक राजदूत को वलहर के पास जाते हुए देखा।

किसी अवसर पर दरद देश जाते समय उसे इसके पूर्व भी भेट हो चुकी थी। अत उसने देखते ही उसको पहचान लिया। तव प्रणाम करता हुआ दूत जब उसके सम्मुख पहुँचा तो भोज ने मुसकाकर कहा "राजा को अन्यान्य जनो से सन्धि करने की क्या आवश्यकता? यदि सन्धि ही करनी हो तो मेरे साथ करे, क्योकि वैद्य की ओषधि रुग्ण व्यक्ति को ही दी जाती है।" अपने प्रति अश्रद्धा-वान् उस दूत से भोज ने अनेक विश्वासोत्पादक बाते कही, जिससे उसे कुछ विश्वास हुआ। उसकी वात समाप्त हो जाने पर दूत ने तनिक निकट आकर उसकी स्तुति की, क्योकि भोज की निष्कपट वातो से उसके हृदय मे उसके लिए श्रद्धा जागृत हो गयी थी। उसने कहा "राजपुत्र! जो जन कुलीन होते हैं, उन्हे ही मेरे महाराज की चरण-छाया सुलभ होती है, जैसे कल्याणमयी प्रकृति के पुण्य-शालिनो को ही सुमेरु पर्वत के दर्शन मिल पाते हैं। अत्यन्त ही मृदुल भाव से सेवा करके उसके विकार दूर किए जा सकते हैं, जैसे शरत्कालीन सूर्य की किरणो से सन्तप्त जल चन्द्रमा की चाँदनी से शीतल हो जाता है। यह आपको स्मरण ही होगा कि मै महाराज का दूत हूँ। पिछले समय जव आप दरद देश मे प्रविष्ट हुए तव मैं ही आगे-आगे चला था।"

वहाँ से लौटकर महाराज को आपका मुख्य-मुख्य समाचार सुनाने के बाद समय बिताने के लिए वात को लम्वी करते हुए मैंने कहा "देव! भूख, प्यास तथा मार्गजनित श्रान्ति से खिन्न अपने अनुचरो को आपकी निन्दा करते देख भोज ने उन्हे डाँटा और मेरी ओर देखकर कहा 'महाराज जयसिंह हमारे लिए देवता-तुल्य हैं मेरे कुल के तो अलकार हैं। हम लोग अभागे हैं, इसी से हमे उनकी चरण-सेवा का सुयोग नही मिलता। अत हम सव उसी प्रकार व्यर्थ हैं, जैसे अपनी सुगन्धि से चन्दन का भ्रम उत्पन्न करनेवाला काष्ठ व्यर्थ होता है।"

मेरी ऐसी वात सुनते ही महाराज की मुखाकृति पर दयार्द्रभाव दिखायी पडने लगे। वाद मे पिता की भाँति उन्होने पूछा "मेरे विषय मे भोज और क्या कह रहा था?" यह सुनते ही भोज का हृदय द्रवित हो गया और नेत्रो मे आँसू भरकर वह ऐसा अनुभव करने लगा मानो महाराज स्वय आगे आकर स्वय सान्त्वना दे रहे हैं। कोई मनुष्य यदि अत्यन्त सरल स्वभाव का हो और सीधी-सादी वात ही समझ सके तो वह औरो के अन्त करण की वेदना न समझने के कारण स्वय को परित्यक्त होने से वचित नही रख सकता।

उसकी इच्छा पर श्रद्धा न रखते हुए भी विना किसी कठिनाई के भोज ने उस दूत से जव सम्पर्क स्थापित किया तो धन्य ने उस वात पर विश्वास नही किया, जिस प्रकार नाग के प्रसग मे उसे नीचा देखना पडा था। उसकी पुनरावृत्ति न होने देने के लिए धन्य ने राजा को भ्रम मे डालने की माया फैलायी। वलहर से एकान्त मे उसने कहा "यह अपने हाथ से निकलने न पाये।" उधर वना-वटी सज्जनता का प्रदर्शन करते हुए भोज राजा से सन्धि करने के लिए उतावला होने लगा। ठीक समय पर उचित मन्त्रणा मे प्रवीण धन्य ने तत्काल अपने देश के एक लडके को दूत के कार्य पर नियुक्त करा दिया। वलहर को यह आशका नही थी कि वालक भोज कोई चक्र रच सकेगा। उधर राजा जयसिंह उस विश्वासी सन्धि-दूत की प्रतीक्षा मे था। उसी समय दूत ने वहाँ पहुँच कर भोज का मन्तव्य सुना दिया।

उस समय भोज के पास कोई विश्वस्त जन न था। अत उसने स्त्री होने के कारण प्रतिभा-हीन नोना नामक अपनी धाय को राजा के पास प्रेषित किया। भोज के माता-पिता जब मर गये थे, तो उसी ने उसका पालन-पोषण किया था। इसलिए वह उसकी माननीया धाय माँ थी। वह महा-रानी कल्हणिका को विशेष चाहती थी। उसी ने राजा और रानी का सम्बन्ध प्रगाढ किया था। उसके हृदय मे ईर्ष्या की भावना नही थी। वह सदा राजा को प्रसन्न करने का प्रयास करती रहती थी। ह्रास या उल्लास का कोई भी काम पडने पर वह तत्काल उचित निर्णय कर देती थी। राजा ने उसे एक सम्भ्रान्त क्षत्राणी के रूप मे कभी नही देखा था। जब उसके श्वसुर एव प्रजा वर्ग ने राजा का अभिषेक किया तो उसी धाय ने महारानी का पट्टबन्ध सम्हाला था। पुत्र-प्रेम, विविध भोग-लोभ और स्वामी द्वारा प्रेरित होने पर भी उसकी बुद्धि कभी किसी कुकृत्य की ओर अग्रसर नही हुई। अपने स्वामी की अभिन्नहृदया नोना निजी तथा अन्य लोगो का मनमुटाव दूर करके परस्पर मिलाने की चेष्टा करती रहती थी। भाग्योदय-काल मे भी उसे अभिमान नही हुआ था तथा उसने अपने पतिव्रत को कदापि खण्डित नही होने दिया था। बाल्यावस्था से ही वह अपने प्रभु के मनोभावो को जानती थी, परन्तु कभी भी कुपथ पर चलते समय उनका साथ नही दिया। कार्यकाल मे अपने सम्मान की रक्षा करती हुई वह अपने कुल के कार्य मे हाथ बँटाती थी। जब राजा अपने महल को जाने लगा था, तब सीमान्त तक वह भी उसके साथ गयी थी। मध्यवर्ती जनो के बहुमूल्य धन तथा अपने स्वर्णपूर्ण कोष की रक्षा एव पाथेय के लिए और उच्च कुलोत्पन्न अपने आठ पुत्रो के भरण-पोषण हेतु महारानी ने जो धनराशि निर्धारित की थी, वह समस्त नोना की ही देखरेख मे भोज के पास आयी थी।

भोज का सन्देश लेकर जब नोना पहुँची, तो उसे धन्य ने महाराज जयसिंह से मिलाया। नोना को कार्यसिद्धि की पूर्ण आशा थी, लेकिन धन्य सोचने लगा कि 'राजधर्मज्ञ राजा इसकी बात पर तत्काल विश्वास कर लेगा।' ऐसा सोचते ही उसका हृदय दोलायमान हो गया। उसने निर्विकार मन से सोचा 'वैराग्योत्पादन अथवा किसी अन्य माया के सहारे इस सकट से राजा को मुक्त करना है। यदि देर हुई तो वह शत्रु के चगुल मे पड जायगा। समस्त मेघ-समूह जब तक नष्ट नही हो जाता तब तक सूर्य का प्रकाश नही फैलता। उसी प्रकार जब तक समस्त क्लेशो का अन्त नही होता, हृदय मे चिरस्थायी विवेक उदित नहीं हो पाता।

फिर सहसा उसको अपनी उस मूर्खता का स्मरण आ गया, जिससे नाग का वध हुआ था और उसके काम मे भी व्यवधान पडा। अत अच्छी तरह सोच-विचार कर उसने एक माया रचा। लब्धलक्ष्य, अपरिक्षीण, सशक्त, युवागणाश्रित और क्षात्रधर्मपरायण किसी व्यक्ति मे ऐसा विवेक नही दीख पडता। केशर पुष्प बिना वल्लरी के पौधो मे फूलता है, फूल लगे बिना ही खिरनी मे फल लगते हैं, और महात्मा पुरुषो मे बिना नियत समय के ही वैराग्य आ जाता है। यह राजपुत्र त्यागा न जाय, माया का यदि यही लक्ष्य हो तो उसे अवश्य देखना चाहिए। यदि नही देखा तो आँखो के अस्तित्व से क्या लाभ ? मृदुल प्रकृति वाली रानी, राजा एव राजपुत्र सबको प्रतिष्ठा-हानि का भय है। इस प्रतिष्ठा को बचाने के लिए प्रयास करने के अतिरिक्त इन्हे कोई काम ही नही है। टेढी-मेढी बहने वाली नदी का उद्गम सब लोग नही जानते, जैसे स्त्री के केश से टपकने वाले जलबिन्दु का कोई क्रम नही रहता। इस भाँति राजधर्म की पर्यालोचना करके धन्य और रिल्हण ने अन्य सभी लोगो को हटाकर सत्य तथा प्रज्ञा से युक्त कार्यक्रम बनाया।

तदनुसार एक दूत ने आकर धन्य से कहा कि "अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए भोज आपसे मिलना चाहता है।" यह कहकर वह दूत धन्य को अपने साथ लेकर चला गया। सन्धि करने के लिए सन्नद्ध भोज भयभीत न हो जाय, यह सोचकर धन्य कुछ ही अनुचरों को अपने साथ लेकर गया और भीमा नदी के एक द्वीप में उसकी प्रतीक्षा करने लगा। पहले वह भीमा नदी धूप से बर्फ पिघलने वाले जल के कारण घुटने भर की गहराई वाली थी, लेकिन सहसा पानी बढ़ गया और उसकी लहरें आकाश का स्पर्श करती दिखायी देने लगीं। अतएव वह हाथियों द्वारा भी पार करने योग्य नहीं रह गयी। इस प्रकार उस नदी के द्वारा अवरुद्ध होकर धन्य छिद्रान्वेषी शत्रुओं के अधिकार में हो गया। उस द्वीप के दोनों ओर जल भर जाने से श्वेत वस्त्रधारी धन्य और उसके साथी [illegible] की भाँति दिखायी पड़ने लगे।

उस समय ही सहस्रों खश भोज की सेना में आकर मिल गए, और वैसी विषम परिस्थिति से घिरे धन्य को मारने के लिए नदी-तट पर आ पहुँचे। भय के कारण घबड़ाहट (आकुलता) और दीनतापूर्ण दृष्टि से उन्हें देख और उनका पाप शान्त करने के लिए पुण्यशाली भोज ने अपने सैनिकों को धमकाकर उनके कान में कहा—"इस निर्भ्रम, विश्वस्त तथा प्राण-रक्षा हेतु आतुर हुए धन्य का वध करने से बड़ा ही अनर्थ हो गया, और अन्त में नरकगामी बनना पड़ेगा। फिर उसे मार डालने से इसके प्रभु की सारी शक्ति तो क्षीण हो नहीं जायगी, जैसे गरुड़ के एक-आध पर के गिर जाने से उनके वेग में कमी नहीं आ सकती। इनके अतिरिक्त इस विश्वस्त पुरुष का वध करने से राजाओं में हमारी अपकीर्त्ति फैलेगी। अतः जो अपने सम्मुख जिस भाव से आए, उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। हठात् उसका वध कर देने से क्या लाभ होगा? जिस प्रकार जीविका के लिए यह राजा की सेवा कर रहा है, उसी प्रकार मैं भी तो उस राजा की सेवा करना चाहता हूँ।"

यद्यपि भोज ने उन सबों को भलीभाँति समझाया लेकिन वे अपने निश्चय पर अडिग रहे। उन सब ने इस प्रकार का आग्रह करने से भोज को रोक दिया, किन्तु भोज ने उन्हें पुनः समझाया। रात्रि के समय धन्य की रक्षा का प्रयास करते हुए भोज ने अपने साथियों से कोशपानपूर्वक प्रतिज्ञा करवायी कि अब वे उसके वध का विचार त्याग देंगे। तत्पश्चात् धन्य ने वहाँ से लौटकर जब राजा जयसिंह को सब समाचार सुनाया तो वह धैर्यशाली राजा शान्त हृदय से इस समस्या पर विचार करके इस निश्चय पर पहुँचा कि 'सन्धि होने में अब सन्देह है।' उसने जब देखा कि अन्य लोगों के द्वारा यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता तो उसने कुछ मन्त्रियों सहित रानी कल्हणिका को तारमूलक प्रेषित करने का निश्चय किया। राजधर्म की क्रूरताओं से सशंक होती हुई भी रानी ने राजा का आग्रह स्वीकार कर लिया और कहा "महाराज! इन असाधारण मन्त्रियों के रहने पर भी यदि शत्रुदल के जन कोई उपद्रव समुपस्थित कर दे तो क्या होगा, आप इस पर विचार कर ले, शत्रुओं का क्या विश्वास? अथवा उनमें यदि किसी प्रकार की अमानुषी बुद्धि का प्रादुर्भाव हो गया तो उसका प्रतिकार किस प्रकार किया जायगा? मानव धर्म के नाते ऐसा होना स्वाभाविक भी है। मैं अपने प्राणों को निछावर करके भी आप का उपकार करना चाहती हूँ। सती धर्म का यह मेरा निजी सिद्धान्त है जो राजधर्म की दृष्टि में अनुचित है। उससे आप निरन्तर द्वेष करते रहे और आपके असत् आचरण तथा कलुषित कृत्यों का उसे भली प्रकार ज्ञान है। इसलिए हे देव! उसने अब हिमालय पर्वत की चोटी पर बर्फ का विक्रय प्रारम्भ कर दिया है। प्रायः अधम लोग उग्र मददोष के कारण अपने तथा दूसरे में कोई भी अन्तर न मानकर शान्त नीति का आश्रय नहीं ग्रहण करते। जब बुद्धि कलुषित

हो जाती है तो सदाचार रत नरेश भी क्रोधवश अपने विश्वस्त बाधक पुत्र और मन्त्री इत्यादि का वध करने को सन्नद्ध हो जाता है। समयातिक्रमण न करने वाले अपने अमोघ वचन द्वारा आप अवश्य इस त्रिलोकी-रूपी पात्र मे मेरे साथ यशरूपी मद्य का पान करेंगे। जो रक्षणीय हैं उन प्राणो की उपेक्षा करके मैं आपकी आज्ञा का पालन करती हुई पुनः आपको पूर्वस्थिति मे पहुँचा दूँगी।" इतना कहकर जब रानी कल्हणिका शान्त हो गयी तो सत्यप्रतिज्ञ राजा ने उसकी सारी शकाओं का समाधान करके उसे उस काम मे लगा दिया।

समस्त अनीतियो से रक्षा का प्रबन्ध करके उसने व्यय के लिए पर्याप्त धनराशि भेजते हुए यह भी सोच लिया कि और कौन-कौन-सी कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं। रानी को भेजने के समय तक राजा ने सभी उपायो का प्रयोग कर लिया। इसलिए अब कोई भी उपाय ऐसा शेष नही था जो उसने उपयोग मे न लिया हो। अपने पक्ष मे भेद पड जाने के कारण प्रबलता तथा निर्बलता के परीक्षण हेतु मध्यस्थ रूप में जो लोग राजा के पास थे, वे छोटे रहे हो या बडे— सब ने ही उदारता की श्रृङ्खला तोड डाली तथा सभी डामरो ने भोज से सम्पर्क कर लिया। उन्होंने द्वै राज्य मे तटस्थता भग न करने का परिणाम भोग लिया था। अत भोज के सिर उठाते ही उन्होंने मध्यस्थता का तुरन्त त्याग कर दिया। त्रिल्लक ने तत्काल अपने पुत्र को भोज के पास और पुष्कल सेनासहित चतुष्क को शमाला भेज दिया। भिक्षु के विप्लव-काल मे जो राजा की उदारता के कारण रक्षित थे, वे नीलाश्व के डामर भी विरोधी पक्ष मे मिल गए।

अब राजा के पास लहर, देवसरस और होलडा के एक-एक करके मात्र तीन डामर और नीलाश्व की एक डामरी बची। उधर हिमपात समाप्त भी नही हुआ था कि लवन्यो तथा भोज की सेना पर गम्भीर गर्जन करने वाले समुद्र की भाँति वर्षाऋतु उपस्थित हो गयी। भोज ने जब रानी कल्हणिका के आगमान की बात सुनी तो उसने बलहर से स्पष्ट बता दिया कि मैं राजा के साथ सन्धि करना चाहता हूँ।

अब तक पुरुष पुरुष को नचाया करता था, अब जब अपने कुल की महारानी स्वय मध्यस्थता करने आ रही हैं तो उनकी उपेक्षा कौन कर सकता है? जब मेरे कुल-चूडामणि जब स्वय सन्धि-प्रस्ताव करे तो हम जैसे नगण्य व्यक्ति उसकी उपेक्षा करते हुए शठता का व्यवहार कैसे कर सकते है? इस समय भी आप जिस माया की बात कर रहे हैं, वैसी माया से कई बार मैं धोखा खा चुका हूँ। अब उन्हे विश्वास दिला कर मैं अपयश का पात्र नही बनना चाहता। एक साथ मिलकर के भी आप सब लोग विजय की आशा नही कर सकते, क्योकि मैंने इस प्रकार के अनेको व्यूह देखे हैं और उनसे मेरी अवनति ही हुई है। दृढ निश्चय और युक्तियुक्त रीति से उसने ऐसी तमाम बाते कही, किन्तु बलहर इत्यादि भोज को अपने निश्चय से डिगा न सके।

दो-तीन दिन के पश्चात् जब शत्रुसेना की हलचल बढ गयी तो बलहर-पक्षीय राजाओ ने भोज से कहा "हमारे परिश्रम का परिणाम जब निकट आ गया तो ऐसी गडबडी आप क्यो कर रहे हैं। रानी जब उधर तारमूलक पहुँची तो धन्य तथा रिल्हण अपनी विशाल वाहिनी और अनेक राजपुत्रो के साथ पचिग्राम मे जा पहुँचे।"

भोज को जब यह समाचार मालूम हुआ कि धन्य तथा रिल्हण आकर नदी के दक्षिणी तट पर पडाव डाले हुए हैं तो भोज भी उत्तरी तट के जगल मे उनके पास पहुँच गया। विभिन्न दिशाओ

से आने वाली राजसेना के सैनिकों को देखकर उन वलहर इत्यादि विपक्षियों की राजा के साथ सन्धि करने की रचमात्र भी इच्छा नहीं हुई। हठात् प्रविष्ट एव निकलने मे असमर्थ थोडे से सैनिकों के साथ आये धन्य आदि का वध करने के लिए राजवदन बार-बार सकल्प करने लगा। तदनुसार राजा की सेना को समाप्त करने के लिए उन लोगों ने सुय्यपुर का पुल तोड डाला और कुछ योद्धा महापद्म सरोवर की नौ.ाओं मे जाकर बहने लगे। अन्य पतनोन्मुख शत्रु-सैनिक अपने-अपने मार्गों पर राजा के साहसिक कार्यों की सूचना को एकत्र करने मे लग गए। उस ओर शकरवर्मा के नगर मे भागिलेय आदि डामर एकत्र होकर शमाला तथा क्षितिका को हस्तगत करने के लिए आक्रमण करने का विचार करने लगे। महानदी के तट पर अधिकार करने के लिए त्रिल्लक आदि योजना करने लगे और नीलाश्व के डामरों ने नगर के मध्य मे पहुँचने की योजना बना डाली। और अधिक कहाँ तक कहा जाय राजगृह मे जितने भी सेवक थे वे सब भी उसी प्रकार हो प्राणघातक हो गए, जैसे जल के अन्दर कारण्डव पक्षी शत्रुओं से घिर गया हो। जैसे किसी सन्देहास्पद विषय भी शिक्षा पाने के पश्चात् सभी विषय समान प्रतीत होने लगते हैं, उसी प्रकार ग्रहों का योग परिवर्तित होने से वर्षा रुक गयी।

पद-पद पर वलहर की सेना राजसैन्य के मार्ग पर बढने का प्रयास करती थी, लेकिन भोज उसका परिश्रम व्यर्थ कर देता था। क्षण-क्षण मे वलहर कोई न कोई चाल चलना चाहता था, परन्तु भोज उसकी हर चाल को व्यर्थ कर दिया करता था। दोनों सेनाओं के मध्य जब भी कोई विरोध उत्पन्न होता था तो भोज अपनी शक्ति से तुरन्त शान्त कर देता था। जो जन राजा के गुप्तचर और खुशामदी थे वे कठिनाई आने पर मारे डर के व्याकुल हो गए।

एक ओर जो बात डुग्गी पीटकर कही जाती थी, उसी को दूत जाकर राजा के कानों मे कहते थे। वे वह बात शरीर नत कर करुण भाव से कहते जिससे वह लज्जित हो जाय। उनके कथन का ढग इतना मर्मस्पर्शी और श्लाघापूर्ण होता था, जैसा कोई शत्रु भी नहीं कह सकता। उस समय राजा के साथी वे ही जन थे जो शठता एव मूर्खता के आगार थे। राजा के टुकडों पर तुकबन्दी करने वाला कन्था कवि जो पहले नाट्यशाला मे भँडैती का कार्य करता था, अब गली-गली राजा के प्रति निन्दा से पूर्ण कटु बाते कहने लगा। जो कुत्ते की भाँति राजा की गोशाला का रक्षक था वह खटाकु और पर्वत-कन्दराओं और राजमहल के निवासी अन्य अनुचर सभी मिलकर राजा पर आक्षेप करने लगे, जैसे तालाब से निकाले हुए कछुए विचित्र ढग से उछल-कूद करने लगे।

जब दिन का प्रकाश ऊँची-ऊँची पहाडियों पर जाकर छिप गया, तभी सूर्य की गर्मी के ही साथ राजा की ऊष्मा भी शान्त हो गयी। सूर्य ने अपना काम अनूरु सारथी को सौंप दिया और फिर अनूरु अपने भ्राता प्रभात के साथ ऊँचे पर्वतों पर विश्राम करने चले गए और सूर्य का रक्त-मण्डल शनै-शनै नेत्रों से ओझल हो गया। जनसाधारण के लोग तब हाथ जोड-जोडकर दिन रात्रि की मध्यस्थता करने वाली देवी सन्ध्या करने लगे। जब चन्द्रमा उदय होने लगा और राजा का अभ्युदय होने को हुआ तो हाथी अपने दाँत की चमक दिखाने लगे, साथ ही चन्द्रकान्त मणि द्रवित एव सिन्धु उफनाने लगा। जब कमल उदास और सम्पुटित हो गए, तब निम्नकोटि के ढग से जीविकोपार्जन करने वाले भ्रमर हाथियों के गण्डस्थल पर जाकर डट गए। भीषण विपत्ति मे पडे हुए मत्रियों ने जब देखा कि अभी कार्य का कोई अन्त नहीं है तब वे अपनी-अपनी सैन्य-टुकडियों के साथ नदी-तट पर जाकर पश्चात्ताप करने लगे। किसी भी स्थान पर

उन्हें कोई सहारा नही मिला, जैसे जल-प्रवाह मे प्रवाहित व्यक्ति को सभी वस्तुएँ छोटी और घूमती हुई दिखायी देती हैं।

नदी के दूसरे तट पर स्थित वलहर ने बार-बार आक्रमण करने की इच्छा की, परन्तु हर बार उसे भोज ने रोक दिया। समय व्यतीत होने के कारण मत्रियो की वे छोटी-छोटी सैन्य-टुकडियाँ बलहर की वढी हुई शक्ति के समक्ष अनायास ही छिन्न-भिन्न होने योग्य हो गयी। वितस्ता एव सिन्धु नदियो के सगम पर एक मेला लगा हुआ था, उसमे रात-रात भर लोग नगर की भाँति घूमते रहते थे। विभिन्न पत्रो और अन्यान्य भीतरी और बाहरी लोगो के बहकाने पर बहुतेरे राजपुत्र डामरो के सगठन को छिन्न-भिन्न करने के लिए भोज की छावनी मे जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन लोगो ने अनेक शठतापूर्ण कार्यो से परस्परिक कलह अवश्य उत्पन्न कर दिया, लेकिन वे धैर्यशाली भोज को उसके धैर्य एव दृढ निश्चय से विरत नही कर सके। वहाँ एकत्रित सामन्तो पर अविश्वास की भावना से भोज ने धैर्य के साथ कहा "यदि वलहर निकाल दिया जाय तो यह क्रोधावेश मे तुरन्त आक्रमण करके अनर्थ उपस्थित कर सकता है और इसे काट डाला जाय तो इसके पक्ष वाले डामर दस्यु अनशनकारी ब्राह्मणो के समान चारो ओर से आकर एकत्रित हो जायेगे।" इसलिए एक विश्वासघाती के समान अभिनय करते हुए भोज ने सान्त्वना प्रदानसहित वलहर से कहा "रात व्यतीत होते ही हमे आक्रमण कर देना चाहिए।" मेरे कार्यवश आगत डामरो ने भोजन नही किया है ऐसा सोचकर उदारतावश और अपने वंशीय जनो पर ममता प्रदर्शित करते हुए भोज ने भी भोजन नही ग्रहण किया।

उधर भोज से अपनी सहमति न देखकर राजा के मत्रियो का उस पर विश्वास नही रह गया और उन्होंने समझा कि यह हमारे साथ विश्वासघात कर रहा है। पक्षी जब पख फडफडाने लगे और मछलियाँ जल मे उछलने लगी, तो ऐसा प्रतीत हुआ कि शत्रु दौडे आ रहे है तथा शीघ्र ही आक्रमण होने वाला है। फिर ऐसा सोचकर कि शत्रु पराजित हो गया है उन्हे यह विश्वास हो गया कि पदी के उस पार चक्रवाक के अतिरिक्त अन्य कोई भी दु खी नही है। भगवान राम के दूत हनुमान जब समुद्र लाँघने लगे थे, तो उनके पिता पवन ने सहायता की थी। उसी प्रकार इस समय पवन ने उनके दूतो को उस पार जाने मे सहायता पहुँचायी।

नदी के तटवर्ती वृक्ष पवन के झोंके से इतना हडहडा रहे थे कि उनकी ध्वनि से शत्रुओ के कान वधिर हो गए, जिससे उन्हे दूतो के आने का पता नही चला और उन दूतो ने उन्ही के पास जागकर रात व्यतीत किया। प्रात काल जब पर्वतो के स्वर्ण-कुन्डल-स्वरूप तथा उदयोन्मुख भगवान सूर्य की किरणे नही निकली थी, विरही चक्रवाक पक्षी के शोक का अन्त नही हुआ था और वृक्षो की नयी-नयी कोपलो पर रात के ओस-कण नही गिरे थे, उस समय ही थोडे से पदाति सैनिको को साथ लेकर वह वृक्षो के झुरमुट से निकला और युद्ध वाले अश्वो के मस्तक पर पैर की एड लगाकर उन्हे तेजी से भगाता, डामर योद्धाओ को नेत्र के सकेत से रोकता और इधर-उधर दौडने वाले सैनिको को हतोत्साहित करता हुआ सुन्दर वेशभूषा से सुसज्जित एक युवक सहसा सब लोगो के समक्ष प्रकट हुआ एव योद्धा वर्ग के देखते ही देखते नदी के तट पर आ गया। मस्तक पर श्रीखड-चन्दन और केसर लगाए उस अदृष्टपूर्व युवक को देखकर उन लोगो ने समझ लिया कि यह भोज है। राजवदन को समझाते हुए उसने वही रात्रि को व्यतीत किया तथा प्रात काल उससे अनुमति लेकर लौटने को तैयार हो गया। रथारूढ भोज का अश्व जब जल मे तीव्र गति से दौड रहा था, उसी समय बडे हर्ष के साथ धन्य इत्यादि ने दौडकर उसे घेर

लिया। दोनो सेनाओ मे तुमुलघोष होने लगा। एक ओर आक्रमण के कारण हाहाकार और दूसरी ओर आनन्द के कारण जयजयकार हो रहा था। उस घोर निनाद को सुनकर डामरो ने युद्ध का प्रारम्भ समझकर चारो ओर से दौडना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु जब वहाँ पहुँच कर उन्होंने भोज को शत्रुओ मे सम्मिलित देखा तो सहसा डामरो ने उसके मस्तक पर प्रहार कर दिया। हर्षोत्फुल्ल धन्य आदि राजमन्त्रियो ने निरन्तर भोज के अभिनन्दन का आयोजन किया था। वेग से प्रवाहित मानसिक प्रसन्नता को रोककर हर तरह भोज को प्रशसित करते हुए धन्य ने कहा 'राजपुत्र ! आप सदृश स्थैर्यवान्, देवताओ जैसे तेजस्वी पुरुष अथवा सुमेरुगिरि से यह धरती धन्य हो गयी है। निर्विकार भावोच्चरित आपकी वाणी उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, जैसे क्षीर समुद्र से उत्पन्न कामधेनु का दूध पवित्र समझा जाता है। पुस्कोकिल के समान आपके अतिरिक्त मध्यम स्वरेण आलाप करके कौन पुरुष अपने कुलरूपी पवित्र सरोवर मे अवगाहन करके उसकी विरुदावली का वर्णन भली-भाँति कर सकेगा ? पहले ही आपने सदाचार का जो मार्ग निर्मित कर दिया है, उस पर हम लोग आपसे तीव्रगति मे चल रहे हैं, इसमे कोई आश्चर्य नही है।" इस प्रकार अनेक वाक्यो द्वारा उसका अभिनन्दन करके विजय से उल्लसित एक घोडे पर सवार कराके विविधि भाँति स्तुति करते हुए वे अपने साथ लेकर चले।

उस समय कुछ लवन्य रोते तथा कोसते हुए वहाँ एकत्र हो गए और अपने कुल वालो के द्वारा उसे ले जाये जाते देखकर उसी प्रकार कोलाहल करने लगे, जैसे अपने घोसले मे पले कोकिल को ले जाते समय काक-वर्ग शोर मचाता है। इस प्रकार लौकिक वर्ष ४२२१ के ज्येष्ठ कृष्ण दशमी तिथि को तैंतीस वर्षीय युवक भोज को राजा जयसिंह ने अपने वश मे कर लिया।

भोज जब महारानी कल्हणिका को प्रणाम करने लगा, तो उसने अपने प्रिय पुत्र के सदृश समझकर उसका अभिनन्दन किया तथा तुरन्त उसके लिए भोजन की व्यवस्था की। चन्द्रवशी राजाओ के समस्त गुण उसमे देखकर रानी पहले न देखने वाले अपने नेत्रो को ठगे गये से मानने लगी। शाठ्यहीन औदार्य-माधुर्य आदि स्वाभाविक गुणो से युक्त राजा जयसिंह को भोज ने महारानी से भी अधिक गुणवान् समझा। मुख की श्री मनोवृत्ति का, द्वार की स्वच्छता घर का और पति के स्वभाव एव आचार पत्नी के गुणो का परिचायक होता है।

सायकाल के समय जिसकी मुखाकृति पर मार्ग की श्रान्ति स्पष्ट प्रतिभासित हो रही थी, वह भोज जब उठने लगा तो उदारतावश किसी ने उससे यह नही कहा कि "अब महाराज के पास चलिए।" किसी प्रकार मध्यस्थो की विमति दूर होने पर राजा की ईर्ष्या शान्त हो गयी और आदेश के स्वर मे उसने मन्त्रियो से कहा—"अब राजा के पास चलिए।" इस वचन की भूमिका के रूप मे कहा गया राजा का यह वाक्य भोज के कर्ण-कुहर मे शकु के समान चुभ गया। मर्मस्थल पर पहुँची वह चोट बडी देर तक रही। तब आश्वस्त होकर उसने देखा कि मध्यस्थो का स्थैर्य औदार्य-वश उनके अधरो पर विद्यमान है। रूक्षभाषी राजा के द्वारा सान्त्वना प्राप्त करके प्राण त्यागने को सन्नद्ध मन्त्रियो ने विनयपूर्वक मस्तक नत कर प्रणाम करते हुए अपने मन के विकार को शान्त किया। कुछ रूक्ष होने पर भी आचारवान्, न्यायनिष्ठ तथा वाक्पटु उस महापुरुष की बातो का उत्तर देकर कोई भी उसको विजित करने मे समर्थ न हो सका।

तदुपरान्त अपने हृदय मे विद्यमान स्वामी के प्रति विवशता के भाव को अपनी दन्तज्योति से प्रकट करते हुए धन्य ने स्नेहपूर्वक कहा "राजधर्म-विहित सदाचार के मार्ग पर चलने वाले

और सब कुछ समझते-बूझते हुए भी आपको परम्परागत वस्तुओं से इस प्रकार मोह क्यों हो रहा है ? जिसमे सन्धेय तत्त्व विद्यमान हो, ऐसी कौन-सी सन्धि है, जिसे सम्पन्न किये बिना जाने वालों में से आपने हमें क्यों मान लिया था ? महाराज ! आप मे सनातन से राजसुलभ नृतत्त्व विद्यमान रहा है। शक्ति से उज्जवल आपकी जाति तथा धर्म के प्रति आस्था को जानते हुए भी कौन आपकी आज्ञा का वशवर्ती न होगा। दम्भ, मद-जड़ता, अप्रीति, अस्थैर्य तथा खलोचित वाणी का तो सर्वथा आपमे अभाव है। आदर-दान के कौशल में तो आपकी समता कोई एक श्वास की अवधि तक भी नही कर सकता। आपकी जो उपजीविकात्मिका श्री है वह साम्राज्य-प्राप्ति से नही आयी है, क्योंकि सूर्य मे जो प्रकाश रहता है, वह प्रज्वलित दीपक मे कहीं आ सकता है ? परलोक-सम्बन्धी गोष्ठियों मे निष्ठा, शान्तात्मा मुनियों के साथ सत्सग तथा कोई भी परिषद् ऐसी नही हो सकती जिसमे आप न प्रतिबिम्बित न दिखायी देते हों। इस प्रकार आपके घर मे ही समस्त सुख-सुविधायें सुलभ रहने के कारण लक्ष्मी यह सोचकर आपके पास आयी है कि अब अन्य राजाओं की क्या आवश्यकता ? समय के अनुसार अपने कुण्ड का जल त्याग देने वाले लोग उन सर्पों से कम मूर्ख नही होते जो गर्मी मे शीतल चन्दन तरुओं में लिपटे रहते है, और माघ मास के आते ही किसी पुरानी तथा गर्म विवर में प्रविष्ट हो जाते हैं। रानी तथा राजपुत्र राजा के प्राणों के उपकरण होते हैं। राजा के हितार्थ यदि उन उपकरणों पर कोई अनुचित कार्यवाही की जाय तो वह भी उचित ही मानी जाती है। जिस जल का उष्णता-रूपी विकार दूर कर दिया गया हो, उस क्वथित शीतल जल की भाँति आपका विशुद्ध हृदय अनुताप करने से फिर नीरस हो जायगा।" इस प्रकार अर्थसगत वाणी का अपनी शक्ति भर प्रयोग करके अपने अन्तर्मन में वर्त्तमान शठता को कुछ नष्ट करने के पश्चात् वह वहाँ से प्रस्थित होने के लिए उद्यत हुआ।

भोज जब वहाँ से चला तो उसने मार्ग मे अगणित नागरिकों को स्तुति करते हुए खडे देखा। इससे उसकी अन्तरात्मा सदाचार पर और दृढ हो गयी। उसके साथ चलने वाले पदाति सैनिकों के पद-चापों से उडी धूल गगन-मण्डल पर छा गयी जिससे ऐसा प्रतीत हुआ मानो धरती ने आकाश से सन्धि कर ली है। विज्ञतर भोज ने सोचा कि मैं कैसे राजा को शीघ्र प्राप्त कर लूँ। सम्भव है विलम्ब होने से उनका दर्शन भी दुर्लभ हो जाय। अपने प्रभु की आराधना करते समय कहीं ऐसा न हो कि धूर्त जन हमारे और उनके बीच कोई बाधा उपस्थित कर दे, क्योंकि स्वामी के सम्मुख अपने गुणों को प्रकट करने का अवसर यदा-कदा ही मिल पाता है।

वडवानल के ताप से पीडित समुद्र इसीलिए बढता है कि अपना शीतल जल प्रसारित करके उसका प्रेमपात्र बन जाय। हिमालय के जल से प्रवाहित सरिता जैसे ही समुद्र मे प्रवेश करती है, वैसी ही वहाँ के तिमि उसे उदरस्थ कर लेते हैं। इस प्रकार उस पर आघात ही पहुँचा करता है। इस प्रकार की अनेक चिंताओं से व्याकुल होने के कारण वह नागरिकों के क्षोभ आदि को भी देख न सका। तभी सेना के घोडों से घिरे हुए महल को देखकर समझ लिया कि यही राजमहल है। न बहुत ऊँचा, न दुर्बल, सूर्य की किरणों-सा श्यामल, कमल-कर्णिका-सदृश गौरवर्ण, परिपुष्ट शरीर, ककुत्सम्पन्न वृषभ की भाँति चौडे स्कन्ध, विशाल वक्षस्थल, छोटी-छोटी मूछों से व्यक्त होने वाले उन्नत गण्ड-स्थल, ऊँची नासिका, पक्व बिम्ब के समान अधर, और विस्तृत केशराशियुक्त भोज वक्र दृष्टि से देखता हुआ अत्यन्त गम्भीर भाव मे मन्दगति से चल रहा था। उसके मस्तक पर उच्चकोटि के वस्त्र की पगडी बँधी थी और ललाट पर श्रीखण्ड-चन्दन लगा था। चन्द्रमा के सदृश एक श्वेत

रेख उसके सीमान्त भाग का स्पर्श कर रही थी। वह अश्वारूढ था और राजमहल के सचिव उसे घेरे हुए थे। उस मूर्तिमान् कामदेव-सदृश सुन्दर भोज को राजा जयसिंह ने आते हुए देखा। प्रेम से विस्फारित नेत्रों वाले राजा से पूछकर वह ठसाठस भरी हुई राजसभा में प्रविष्ट हुआ। उस समय सभी जन सिर उठा-उठाकर उसे देखने लगे।

उसने पहुँचते ही राजा के चरणों का स्पर्श किया। राजा ने अपने हाथों से उसको एक दिव्य आसन पर बैठाया। तत्पश्चात् भोज ने अपने हाथ की तलवार और कटार राजा की कुर्सी के सम्मुख रख दी। तब सर्प के फण की भाँति अपने पंजे की दो अँगुलियों को चिबुक पर रखकर राजा ने कहा "वत्स! न तुम युद्ध में पकड़े गये हो, और न तुम्हारे ऊपर किसी का नियंत्रण है। ऐसी स्थिति में तुम्हारे द्वारा समर्पित शस्त्र को कैसे ले सकता हूँ।" भोज ने कहा "देव! स्वामी अथवा निज-रक्षा हेतु ही शस्त्र धारण किया जाता है। श्रीमान् जब स्वयं अपनी प्रतापाग्नि से समुद्र पर्यन्त विस्तृत धरती की रक्षा कर रहे हैं तो अपने शस्त्र को सेवा का अवसर कदाचित् ही मिल सके। आपके श्रीचरण तो परलोक में भी रक्षा कर सकते हैं, तो इस लोक में रक्षा के अन्य उपकरणों की क्या आवश्यकता?" राजा ने तब कहा "इस स्पर्धा में आप ही सब कुछ हैं। मुझे अब कुछ नहीं करना है।" भोज बोला—"महाराज! मैं अपनी उदारता अथवा मुँहदेखा उपचार प्रदर्शित करने की दृष्टि से यह नहीं कह रहा हूँ। आपने कौन-से दूषित विचार नहीं किए, और कौन-सा अप्रिय कार्य नहीं किया? जो काम नहीं बना वह प्रकाश में नहीं आया। मल्लवंश में आप क्या किसी विशेष कारणवश उदित नहीं हुए हैं? हाँ पहले मैं अपने चर्मनेत्रों से आपको अपने कुल का एक राजा मात्र समझता था। किन्तु हे देव! जब कभी भी मैंने आपका अहित करना चाहा, धरती बड़े वेग से बार-बार कम्पित होने लगी है। हे महाराज! जहाँ तक कवियों की प्रतिभा जा सकती है, वहाँ तक मैं गया और सर्वत्र आपका तेजस्वी प्रभाव विद्यमान मिला। पर्वतशिखर, कन्दरा, बीहड़, हिमराशि और वन-निकुंज सर्वत्र मैंने आपके प्रताप की उष्णता पायी। उस समय ही मेरी इच्छा हुई कि आपकी शरण में पहुँच कर श्रीचरणों की स्तुति करूँ। ऐसी दर्शनाभिलाषा उत्पन्न होने पर मेरे द्वारा यदि कोई कलुषित प्रयास हुआ होगा तो वह केवल अपना अस्तित्व व्यक्त करने के लिए, न कि युद्ध हेतु। उसी सम्बन्ध से आज मैं दिग्दिगन्त के नरेशों के लिए दर्शनीय बना हूँ, जैसे गंगा जी के सम्बन्ध से काँच का घर भी पूज्य बन जाता है। आज भी शाही वंश में उत्पन्न अगणित क्षत्रिय सभी दिशाओं में विद्यमान दिखायी पड़ते हैं। इस समय भी कितने ही लोग आपके प्रताप से भयभीत होकर पर्वतों पर भाग गये हैं और वे कुत्सितान्न ग्रहण कर दुःखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।" इस प्रकार अनेकधा वन्दना करने के पश्चात् 'आगे के लिए आपके श्रीचरण ही प्रमाण हैं।' कहते हुए अपना मस्तक उनके चरणों पर रखकर उसने पुनः प्रणाम किया।

प्रणाम करते समय शीघ्रता में उसका उष्णीष कुछ अस्त-व्यस्त हो गया। उसके उठने पर स्वयं महाराज जयसिंह ने तुरन्त अपनी पगड़ी पहना दी। तदुपरान्त, भोज ने जो तलवार अभी-अभी जयसिंह को अर्पित की थी, उसको उन्होंने सान्त्वना देते हुए उसकी गोद में रख दी और कहा "मेरे प्रति आदर व्यक्त करते हुए अथवा मेरे देने के कारण इसे तुम अंगीकार कर लो और जब तक मैं आदेश न दूँ, तब तक शस्त्र-त्याग की बात भी मन में न लाना।" इस प्रकार राजा का अमोघ आदेश प्राप्त कर समय के पारखी भोज ने दोनों तलवारें अपनी गोद में रखकर पुनः वन्दना की।

तदनन्तर नियन्त्रण के अभाव, राजा की कृपा, अथवा उसनी सान्त्वना पाकर भोज, महाराज जयसिंह का एक चिरसेवक की भाँति कृपा-पात्र वन गया।

कुछ क्षणो के उपरान्त विनम्र वाणी मे भोज ने अपनी अर्चना को विमल करते हुए कहा "महाराज ! आपके गुण को श्रवण किए विना मेरे प्राण, मेरा धन, तथा मेरा निर्विकार मन, ये सव व्यर्थ प्रतीत होते हैं। इसलिए आप मेरे लिए कोई-न-कोई काम ढूँढिए। कारण कि स्वामी का सत्कार किए विना आत्मा को सन्तोष नही प्राप्त होगा।" तव राजा ने कहा "इसके लिए अधीर होने की आवश्यकता नही है, तुम कभी भी वेकार नही रहोगे। मैं शीघ्र ही तुम्हारे अनुरूप कार्य ढूढने का प्रयास करूँगा। प्रणामोपरान्त भोज ने सौजन्य आदि गुणो से सम्पन्न उस रानी को देखकर उस राजारूपी पारिजात को कल्पलता से युक्त समझा। तव राजा ने कहा "देवी ! भोज सौजन्य और ज्ञाति-सम्वन्ध के कारण यहाँ आया है। इसको हमे अपने पुत्रो से अधिक उच्च स्थान देना चाहिए। तत्पश्चात् सौजन्यागार राजा जयसिंह भोज को साथ लिए हुए उन रानियो के महलो मे गया, जिनके ऊपर रनिवास का उत्तरदायित्व था। वहाँ निपुण रानी कल्हणिका ने मुसकराकर राजा के साथ आते हुए भोज से कहा "अव तुम एकाएक महाराज के विश्वस्त मित्र वन गये। स्वागत वचनो के साथ प्रणाम करती तथा लज्जावश मन्द स्मितसहित रानी कल्हणिका ने भोज की ओर सकेत करके कहा "आर्यपुत्र ! यह कभी भी न भूलिएगा कि अपने विश्वस्त साथियो की मन्त्रणा को ठुकराकर अपने वान्धवो के प्रति प्रेम-प्रदर्शनपूर्वक इसने आपकी शरण ली है। कमल जैसे अपने उपकारी जल के सम्पर्क मे रह कर वरावर वढता रहता है, उसी प्रकार आप लोगो को चाहिए कि अपने कुलरूपी कमलो को नित्य वढाते हुए अपने वश मे रखे। यदि यहाँ न आया होता तो हम लोग विभिन्न विपत्तियो मे डूवते-उतराते रहते। उस परिस्थिति मे न हमारे अभ्युदय की रक्षा होती और न हम यहाँ आ पाते। नदी के तट का रक्षक वृक्ष कदाचित् वाढ मे ढह जाय तो उस पर लसी हुई लता भी उसी के साथ धराशायिनी हो जाती है। स्त्री की उपयोगिता इसी मे है कि वह पति की अनुगामिनी रह कर अपने रक्षण के अन्य साधनो को विस्मृत कर दे।" राजा ने कहा "देवि ! तुम सदा मेरे समस्त क्रिया-कलापो की साक्षिणी रही हो और इस विषय मे मेरे भी यही विचार हैं जो तुमने अभी कहा है। मैंने सुज्जि और मल्लार्जुन को यद्यपि दण्डित कर दिया है तथापि मेरी आत्मा को अव तक शान्ति नही मिली।"

तदनन्तर जव राजा ने भोज से अपने अनुचरो के साथ एक वहुमूल्य भवन मे रहने का अनुरोध किया, तव उसने सोचा कि अव राजधानी के अतिरिक्त अन्यत्र कही भी मेरा स्थायी निवास नही हो सकता। वाद मे उसके ध्यान मे यह वात भी आयी कि यदि दूर रहा जाय तो उसकी रक्षा और प्रचुर दर्शन से वचित रहने के कारण राजा की सेवा भलीभाँति नही की जा सकती। तत्पश्चात् उसने राजा से रक्षको को लेकर उसी भवन मे रहने की सारी व्यवस्था कर ली। अनीति समझ कर उसने राजा के द्वारा दी हुई सुरासेवन आदि सुविधा को स्वीकार नही किया। भोज के इस मनोभाव को देखकर राजा वडा प्रसन्न हुआ और अपनी राजधानी मे ही भोज के लिए समस्त उपकरणो के परिपूर्ण एक भव्य भवन का प्रवन्ध कर दिया। राजा स्वय भी ममतापूर्ण प्रेम से अपने और अन्यो से सेवित भोज के प्रति अधिक आकृष्ट हो गया, जैसे वह उसका वडा पुराना सेवक हो। खान-पान तथा आश्चर्यजनक वस्तु को देखकर वह पुत्र के समान उसका स्मरण करके दूतो द्वारा उसे वुलवा लेता था। अपनी प्रतिज्ञा की लाज रखते हुए वह उसे भोजन आदि के समय अपने

दाहिने बिठाता था और सस्पर्श, आह्लादन तथा भोज्य इत्यादि के अवसर पर उसे वह कदापि नही छोडता था। राजा जयसिंह पिता के समान उससे स्वाभाविक प्रेम रखता हुआ अपने छोटे-छोटे बच्चो के साथ उसको दुलराता था। उसी स्नेह के अनुरूप भोज भी व्यवहार करता हुआ जैसे-जैसे राजा की अन्तरात्मा के निकट आता था वैसे-वैसे राजा का भी उस पर विश्वास बढता जाता था। जो लोग राजा के पार्श्ववर्ती, अन्तरग, अथवा जो इसी प्रकार के द्वैध वृत्ति वाले थे, उन सबका उसने भोज से परिचय करा दिया। इसके बाद राजा ने वैर-भाव और शत्रुओ के आधिक्य पर ध्यान देना छोड दिया।

कार्यकर्त्ताओ तथा मन्त्रियो की सभा मे भोज उनकी बातो का सीधी-सीधी बातो से समाधान करता था, इसलिए वह न तो जड, न धृष्ट, और न वकव्रती (मौनी) ही समझा जाता था। राजा यदि किसी समय प्रमाद के कारण हीन अथवा कोई उत्तेजनापूर्ण बात कह देता था, तो भोज किसी महाकवि की क्षुद्र कविता के समान उसकी उपेक्षा कर देता था। पराक्रम-सम्बन्धी कथोपकथन के अवसर पर वह अपने दानादि की बातो को बढा-चढाकर नही कहता था। पुरानी बातो को भी वह बिना पूछे दुहराता नही था। विचारशील राजा की भाँति कुल आदि की बाते उभाड कर वह व्यर्थ चाटुकारी नही करता था। धैर्ययुक्त और अधृष्ट दृष्टिपात से राजा के देखने पर वह अपनी बात नही कहता था। इस प्रकार राजा से भरपूर समादर पाकर भी वह मनमानी नही करता था। इसलिए धूर्त्त, हास्यरस भी बात कहने मे परम पटु, हँसोड एव चुगुलखोर जन किसी भी प्रकार का भेदभाव नही कर सके। यदि वह कभी क्षुब्ध वातावरण वाले जनसमुदाय के बीच पहुँचता था तो उस विकट स्थिति मे वह भयभीत नही होता था।

जैसे-जैसे भोज पर विश्वास बढता जाता और राजा का आग्रह शिथिल होता जाता था, वैसे-वैसे सुशिक्षित अश्व के समान वह औद्धत्ययुक्त होकर नही दौडता था। वह सदा राजा के आगे-आगे चलता था, किन्तु निषेध न करने पर भी राजा के रनिवास और मत्रणागार जाने के अवसर पर रुक जाता था। भोज सदा सशक रहता हुआ ज्ञातव्य मर्म की बातो का सग्रह करने के लिए अनुरोध करने से पहले ही, बिना किसी सहायता के, सारी बाते मालूम कर लिया करता था। असमय मे उसके अगरक्षक भी उसके पास नही जाते थे और उसके स्वप्न तक की बात राजा को अज्ञात नही रहती थी। मन्त्रियो तथा अन्त पुर के पारस्परिक कलह की बात को कभी न कहकर वह बुरे स्वप्न की तरह उसे एकदम भुला दिया करता था। कभी-कभी धूर्त्तगण उसके समक्ष हँसी-मजाक के प्रसग मे अश्लील बाते कह देते थे, किन्तु युवक होने पर भी वह उन बातो से प्रभावित हुए बिना ही उन्हे उस प्रकार की बाते कहने से मना कर देता था। इस प्रकार उसके शुद्ध विचार से प्रसन्न होकर कर्म का मर्मज्ञ राजा जयसिंह भोज पर पुत्र से भी अधिक स्नेह करने लगा। कलिकाल के राजाओ द्वारा कठिनता से अपने कुल की मर्यादा रक्षित होने की सम्भावना देखकर उस राजा ने भोजरूपी एक नया सेतु तैयार कर दिया था।

इस प्रकार सारे उपद्रवो के समाप्त हो जाने पर त्रिल्लक ने अग्नि मे सर्वस्व जल जाने पर भी राजा जयसिंह के पुत्र- स्वस्थ हो जाने के कारण ध्यान दिया। उसने सोचा कि 'इस समय हिमपात बन्द है। अतएव अभी आक्रमण करने पर राजा को भागने के लिए अनेक मार्ग मिल जायेंगे और उससे अपना काम दु साध्य हो जायगा।' यह सोचकर वह अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय बिना विचार किए ही सजपाल ने धावा बोल दिया। उसके पास अच्छे योद्धा बहुत कम

थे, तथापि देवसरस के उद्भटों की भारी संख्या वाली सेना लेकर वह मार्तण्ड जा पहुँचा और उसने वहीं पडाव कर दिया। उस स्थान पर उसका निर्विरोध प्रवेश हो गया। कारण कि वह प्रदेश ही ऐसा था, लेकिन अभिमान के कारण उसने यह ध्यान नहीं दिया कि बाहरी योद्धा निस्सार होते हैं। त्रिल्लक के भी कुछ सैनिक उसकी सेना में थे, परन्तु धनुष बाण धारण कर उन्होंने अपनी शक्ति नहीं गँवाई थी।

उसी समय अपने असीम सैन्य के साथ लवन्य उससे जा भिडा और समस्त शक्ति लगाकर सजपाल के साथी डामरों पर भीषण प्रहार करने लगा। इस प्रकार के आक्रमण से जब देवसरस वालों का समस्त धन नष्ट हो गया तो वे सजपाल को छोडकर भाग गए। इस प्रकार शत्रु की सेना में उसके सारे सैनिक डूब गए, परन्तु उसकी सुरक्षित सेना के कुछ योद्धा अब भी शेष थे जो पर्वत सदृश अचल होकर डटे थे। वे शत्रु के प्रबलतर आघात को सहते रहे। इस प्रसंग में उन्होंने बहुतों को मारा और अनेक मर गए। इस प्रकार रण में सब सैनिकों के मर जाने पर उनमे मुख्य मार्तण्ड भी कम घायल नहीं हुआ। युद्ध-स्थल में सबके मर जाने पर सजपाल का पुत्र गयापाल विशेष रूप से चमका। उसके तीन-तीन घोडे मार डाले गये। फिर भी उसे पैदल चलते किसी ने नहीं देखा। उसके छोटे भाई जर्ज द्वारा किया गया प्रथम श्रेणी का युद्ध देखकर वे वीर भी विस्मित हो गए, जो जीवन में तमाम युद्ध देखे थे। उस सेनापति के बायें हाथ ने जो कौशल दिखाया वह दाहिना हाथ न कर सका था, जैसे सूर्य बडे-बडे हाथियों को ताप मात्र पहुँचाता है और चन्द्रमा उनके दाँत तोड देता है। अश्व पर आरूढ़ अपने एक हाथ में शस्त्र धारण किए हुए वह पक्षयुक्त पर्वत पर विद्यमान धूमदण्डधारी दावानल के समान प्रतीत होता था। शत्रुओं के बीच तुमुल युद्ध करने वाले उस वीर का शरीर जब शस्त्रास्त्रों के आघात से लोहित हो गया तो उसके दो पुत्र उसे शत्रुओं के मध्य से उठा ले गए। कवच के भारसहित गिरने पर धरती के आघात से वह संज्ञाशून्य हो गया। इस प्रकार मार्तण्ड के प्रांगण में सेना के सर्वथा नष्ट हो जाने पर वे उसे वहीं छोडकर चले गए। उसी समय विशाल वाहिनी समेत राजा जयसिंह का सेनापति वहाँ पहुँचा और डामर तथा शेष सेना को घेर लिया।

राजा जब विजय-क्षेत्र में पहुँचा तो घेरा तोडकर सजपाल ने त्रिल्लक के घर में आग लगा दी। लेकिन, जब राजा ने सजपाल की ओर वक्र दृष्टि उठायी तो पर्वतों पर अनायास ही भोजन की प्राप्ति होने के कारण अदरिद्र सजपाल की दशा बडी बुरी हो गयी। उसके सभी साथियों ने उसका साथ छोड दिया जिससे वह असहाय हो गया और उसके सेवक ही उसकी पाण्डित्य-सुलभ ख्याति की भर्त्सना करने लगे। उस राजारूपी कवि ने उसके हाथ कटवा लिए और असहाय मस्तक-रूपी फल की इच्छा करने लगा। तत्पश्चात् राजा जयसिंह ने रड्डादेवी के पुत्रों में सबसे बडे पुत्र गुल्हण का लोहर राज्य में अभिषेक करा दिया। कारण कि उस छह-सात वर्ष के ही बालक राजपुत्र ने अपने गुणों से अधिक वयवाले राजाओं को उसी प्रकार परास्त कर दिया था, जैसे आम का नन्हा पौधा उपवन के बडे-बडे वृक्षों को पराजित कर दे। गुल्हण का अभिषेक कराने के लिए रड्डादेवी लोहर पहुँची तो राजाओं ने अपने किरीट पर जटित लालमणियों की दीप्ति के स्पर्श से उसके महावर से रँगे हुए लाल-लाल चरणों को और भी लाल कर दिया। उस राजपुत्र का जिस समय अभिषेक हुआ, उस समय जैसे महारानी के भावों का अभिषेक करते हुए मेघ भीषण अनावृष्टि से शुष्क धरती पर जल बरसाने लगे। कुछ दिनों के पश्चात् जब राजवदन पुनः विद्रोह करने के लिए लालायित हुआ तो राजा जयसिंह की आज्ञा से उसने दुष्ट जयचन्द्र पर आक्रमण कर दिया। नाग के भतीजे लोष्ठक के

सधि गर्गपुत्र जयचन्द्र के पीछे-पीछे आने वाली सेना को एक सकीर्ण मार्ग मे पाकर उसने वही नष्ट कर डाला।

इस पराजय से म्लानमुख होकर जयचन्द्र कुछ दिन शान्त बैठा रहा। फिर सहसा आक्रमण कर उसने नाग के भ्रातृ-पुत्रो मे अग्रणी लोष्ठक को बन्दी बना लिया। औरो के द्वारा अनाक्रम्य एव दुर्गम दिन्नाग्राम मे बडे वेग से जाकर उसने आग लगा दी और तुरन्त वापस लौट आया, तथापि राजवदन का शौर्य न्यून नही होने पाया। उसने न जयचन्द्र के साथ सन्धि की और न क्रोध किया, क्योकि वह वहाँ से अपनी इच्छानुसार निकल आ सकता था।

इस प्रकार दिनोदिन सेना के नष्ट होते रहने पर जयचन्द्र के मुख पर चिरस्थायी विषाद दृष्टि-गोचर होने लगा। उसी समय तीव्र नखोवाले और विशाल बाहुओ से युक्त राजा जयसिंह ने युद्धस्थल मे गुप्त घातको द्वारा उसका वध करा दिया। उसका शीश कटकर जब धरती पर गिरा तो जमीन मे लुढकते-लुढकते उसके शतश खण्ड हो गए, जैसे सद्य -अकुरित कोई पौधा टूटकर सैकडो टुकडो मे हो जाय। पृथ्वीहर के कुल को निर्मूल कर देने के लिए कटिबद्ध राजा जयसिंह ने गुप्त रीति से दण्ड-नीति के प्रयोग द्वारा लोठन की भी हत्या करा दी।

एक बार त्रिल्लक ने राजा को घेर लिया था, परन्तु अपनी नीतिकुशलता के कारण वह बच निकला था। मल्लकोष्ठ, क्षुर, जय्य, सड्डचन्द्र आदि उस राजा के वैरी दारिद्रय दुख से दलित होकर जीवन्मृतक के समान हो गए। असीम शक्तिसम्पन्न राजा उच्चल के ऐश्वर्य-मद से मत्त होकर वहाँ की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी थी और इसीलिए उसे प्राणो से हाथ धोना पडा था। विभिन्न राजाओ से प्राप्त उस मठ के कोष का हिसाब कराके राजा जयसिंह ने वहाँ का समुचित प्रबन्ध कर दिया। अपने पितृव्य के सुल्ला विहार, पिता के तीन देवालयो और अपूर्ण अर्थसिद्धि-प्रासाद को उसने पूर्ण कराया। उसने गाँव-गाँव की सीमाओ पर पर्याप्त धन व्यय करके बडे-बडे बाजार लगाये तथा निर्दोष पचो का निर्वाचन कर अच्छी पचायते स्थापित कर दी।

उसके अन्त.पुर मे जब चन्द्रवदना चन्दला नाम की रानी मर गयी, तो उसके नाम पर राजा ने पुष्कल धन खर्च कर एक विशाल मठ बनवाया जिसमे यह व्यवस्था की कि कोई भी अतिथि द्वार से निराश न लौटने पाए। पहले जब नगर मे अग्निकाण्ड हुआ था तो सूर्यमतीमठ भी जल गया था। राजा ने अब उसे और भी सुन्दर रूप मे निर्मित करा दिया। सेनानायक सजपाल जब मर गया तो उसका पुत्र गयापाल उस पर नियुक्त कर दिया गया। सजपाल अन्तिम क्षणो मे यद्यपि क्षीणशक्ति हो गया था तथापि उस सौम्य-पुत्र गयापाल के कारण वह उस समय भी शत्रुओ के लिए दुर्जय था, जैसे शरत्कालीन सूर्य चन्द्रमा के सहारे असह्य हो जाता है। ग्रीष्मकालीन ऊष्मा को अनायास सहन करने वाले नदी-तटवर्ती वृक्ष पर यदि वर्षाकाल मे बिजली गिरे और वह नष्ट हो जाय तो नदी का प्रवाह उससे अपने जल की समृद्धि नही मानता। भिक्षु के मरण और भोज के सैन्य-भग पर्यन्त जिसने राजा के विशाल कार्यभार का उत्तरदायित्व ग्रहण किया था, वह राजा का अनन्य भक्त, प्रेमी तथा राज्य के कण्टको को नष्ट करने वाला धन्य स्वर्गगामी हो गया। उसके दिवगत हो जाने पर ताम्बूलवाहक के सदृश सुपरिचित तथा धन्य के निजीपुत्र मधुरावट्ट को राजा ने उसके पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

समस्त जगतीतल के प्राणियो के प्राण देकर के भी उस राजा की रक्षा करनी चाहिए जो पद-पद पर विपत्ति मे पडकर प्रजा का उद्धार करने के लिए तत्पर रहता हो। धन्य जब बीमार

पडा, तब अत्यधिक स्नेह के नाते वह कृतज्ञ राजा रात-रात भर जागरण करता हुआ उसके निकट बैठा रहा और अन्त तक नही हटा। उस लोकप्रिय राजा के मन्त्रियो मे कुछ दिनो के लिए विपरीत भावना आ गयी थी, परन्तु वह जनसाधारण के लिए जीवनदायिनी सिद्धि हुई। मान्धाता इत्यादि प्रसिद्ध राजाओ की मृत्यु पर प्रजा को जो कष्ट हुआ था वह राजा जयसिंह के शासन-काल मे नष्ट हो गया और प्रजा को परम सुख प्राप्त हुआ। दो राजाओ की चपेट मे पडकर राज्य की प्रजा जब भीषण सकट मे पडी थी तो नये-नये राजाओ का मन्त्री बनकर धन्य ने निर्विघ्न मन्त्रित्व किया और सभी कष्ट दूर हो गये। बलशाली काल ने अपने वशवर्ती लोगो मे से किसके पूर्वापर आचार-व्यवहार को नही विस्मृत कर दिया ? भगवान् विष्णु शेष-रूप से पृथ्वी का भार वहन करते हैं, और हिरण्याक्षरूप को वराह-रूप से विदीर्ण करके पृथ्वी को छीन लाते हैं। पूर्वकाल मे सुज्जि की मृत्यु पर जो नगर का मुख्याधिकारी बना, उस कुलराज ने चिरकालीन अव्यवस्था को दूर किया। कुप्रबन्ध के कारण क्रय-विक्रय के व्यवहार मे दीनार की कीमत कम हो गयी थी, उस पर नियत्रण करके दीनार को पुन. मूल्यवान् सिक्का बना दिया। पहले गृहस्थो के घर मे विवाहित स्त्रियो मे भी दुराचार प्रविष्ट हो गया था, परन्तु उसने दण्ड की ऐसी व्यवस्था की जिससे उसका अन्त हो गया। कुलराज ने नगराधिकारी का पद प्राप्त कर आरम्भ मे तो प्रजा का बडा हित किया, लेकिन फिर प्रजा को सताने लगा। उसने बन्दीगृह की अनेक वेश्याओ को मुक्त कर दिया, वे छलपूर्वक गृहस्थो के घर मे विवाहिता बन बैठी। बाद मे कुलराज ने उन गृहस्थो को दण्डित किया। जो जन समर्थ हो, उनके सम्बन्ध मे तुष-चिन्तन की भाँति कुछ सोचना भी व्यर्थ होता है।

किसी समय वह भिक्षु और मल्लार्जुन के आश्रय मे था। किन्तु, उन दिनो उसने न अपने स्वामी के हित पर आघात किया और न अपनी जीविका के लिए उन दोनो को मारा ही। समृद्धि काल मे भी उसने कोई व्यय विशेष नही किया और मृत्योपरान्त अपने दाहकर्म के लिए कोई विशेष धन नही छोडा। उस राजा की कृतज्ञता के विषय मे अधिक क्या कहा जाय, जिसने अपने आश्रितों के साथ ऐसा व्यवहार किया कि जैसे वे मरकर पुन जीवित हो गए। मृत्यु के पूर्व ही धन्य ने अपनी दिवगता प्रिय पत्नी विज्जा की स्मृति मे विज्जामठ बनवाना प्रारम्भ किया था, परन्तु उसी बीच वह मर गया। क्या उसने अपनी शक्ति भर चेष्टा नही की थी कि वह मठ बनकर स्थायी हो जाय, पर वह पूर्ण नही हुआ।

राजा की धार्मिकता से जिन लोगो ने इतना पुण्य अर्जित कर लिया था कि जिसके समक्ष इन्द्र भी क्षुद्र प्रतीत होता था। एकमात्र युद्ध की आजीविका वाले ऐसे लोग भी उसके प्रभाव से पुण्य-कर्मा बन गए। कमलिया के भाई सगिया ने अपने नाम से बाणलिंग की स्थापना की। वह क्षत्रिय-कुलोद्भूत था और तुरुष्क (तुर्की) मे रहा करता। उसने अपनी जीविका के लिए शत्रु पर क्रूरता करने के अतिरिक्त कुछ भी नही सीखा था। जब राजा सुस्सल के शत्रुओ ने आक्रमण कर दिया तो उसे कश्मीर मे नौकरी प्राप्त हो गयी थी। वितस्ता नदी के तट पर उसने जिस बाणलिंग की स्थापना की थी, उसको देखकर गंगातटवर्त्ती विमुक्ततीर्थ (काशी) का स्मरण हो आता था। तपस्वियो से अलकृत उसके मठ को देखकर रुद्रलोक के अवलोकन की लालसा शान्त हो जाती थी। उस शुद्धबुद्धि पुरुष ने निर्धनो से धन प्राप्त कर लोठन मे अन्यान्य प्रतिष्ठानो की नीव नही रक्खी। सेनापति उदय की भार्या चिन्ता ने भी एक विहार बनवाकर वितस्ता नदी की तटवर्त्तिनी भूमि को विभूषित किया।

उस विहार में उसने जो पाँच भवन निर्मित कराये थे, वे साक्षात् धर्म के उठे हुए हाथ की पाँचों अँगु-
लियों जैसे दिखायी पड़ते थे।

अलंकार का सहोदर मस्तक जो राज्य का विदेश-मन्त्री था, उसने एक मठ और मन्दिर बनवा-
कर श्रीकण्ठ शिव की स्थापना की। मठ, भूदान तथा देवालयों के जीर्णोद्धार इत्यादि शुभ कार्यों से
रिल्हण का अनुज सुमना भी सब धर्मात्माओं के समकक्ष हो गया। उसने भूतेश्वर और विजयेश्वर में
एक एक मठ निर्मित करवाया और वितस्ता नदी से पापसूदनवाहिनी नाम की एक नहर निकलवायी। उसी
के जल से अपने पितरों का तर्पण किया। काव्यपागार प्रदेश में नील नाम की एक नदी उत्पन्न होकर
गंगाजी को पराजित करती हुई-सी पूर्व की ओर बहती है। उस पर गौ आदि को पार करने के लिए
उसने एक सेतु का निर्माण कराया। उसका वह निर्मल कार्य संसार-सागर को पार करने में सहायक
हुआ। नगर में भी अपने नाम से एक मठ और शिव-मन्दिर का निर्माण कराया जिसमें अनेक शिव-
लिंग स्थापित किया। उसने सम्मेश्वर शिव के लिए स्वर्ण-छत्र अर्पित किया और सोमतीर्थ का निर्माण
करवा के एक ऐसा उपवन बनवाया जिसमें नहर से निरन्तर पानी आता रहता था। उन दिवसों इस
वंश के राजे ईर्ष्यावश अपने मन्त्रियों की सम्पत्ति, जीवन, उच्च पद, धन-धान्य छीनकर उनके प्राण
तक ले लेते थे।

नये राज्य का अधिकारी होने पर ईर्ष्या और क्रोधवश देवराज इन्द्र ने महाराज मान्धाता को
स्वर्ग से बाहर फेंक दिया था। किन्तु, बुद्धिमान राजा जयसिंह धार्मिक कृत्य करके भृत्यों को दिनो-
दिन आत्मोन्नति करते देखकर उनसे अपने महत्त्व की वृद्धि समझता हुआ प्रसन्न होता था। उसके
सेवक रिल्हण ने जब अपनी बुद्धिमत्ता से राजा कलश की खोज करके राज्य के स्वर्ण-छत्र को ऊँचा
किया तो उसे बड़ा हर्ष हुआ। सुरेश्वरी के मन्दिर में एक साथ विराजित शिव-पार्वती के ऊपर उसने
जो स्वर्ण छत्र लगवाया था, उनमें दीपक की छोटी छोटी घण्टियाँ और प्रकाश फैलने के लिए,
कटोरे लगे थे।

हिमालय का प्रिय सम्बन्धी सुमेरु, जैसे उस स्वर्ण छत्र के छल से पुत्री पार्वती एवं जामाता
शंकर का मस्तक सूँघने के लिए वहाँ आकर उपस्थित हो गया था। उस स्वर्ण-छत्र के व्याज से जिन
शिवजी के नेत्र से उत्पन्न अग्नि की लपटें ऊपर की ओर उठ रही थी, उन शिवजी ने कहा "जिस
उद्देश्य को लेकर कामदेव प्रयत्नशील था, उसके पूर्ण होने के पूर्व ही मैंने उसे भस्म कर डाला। बाद में
उसका करुण प्रयत्न सफल हुआ, पार्वती के साथ जब मेरा सम्बन्ध हो गया।" रिल्हण ने रुक्मणीपति
कृष्ण के मन्दिर पर एक विशाल स्वर्ण-छत्र लगवाया था। वह बहुत अधिक चमक रहा था। उसे
देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो साक्षात् विष्णु वह दृश्य देखने के लिए वहाँ आ गए हों।
अथवा जैसे विष्णु का सुदर्शन-चक्र दानवों का रुधिर पीने के पश्चात् मदमत्त होकर गायब हो गया हो
और अब पुनः विष्णु भगवान ने उसे ढूँढ निकाला हो।

'सुरेश्वरी की तपोभूमि देखकर प्रेम के ईश्वर शिव और गरुड़ पर सवार भगवान विष्णु की
मैत्री का आभास मिलता है। एक ओर शिव पर लगे हुए स्वर्ण-छत्र तथा गंगा में उगे कमल के पराग
पर उनके आभूषणस्वरूप सर्प विचरते दीख रहे हैं। दूसरी ओर भगवान विष्णु की केशराशि के
पीछे मेघगत विद्युत्-तुल्य तेजस्वी मण्डल देदीप्यमान् हो रहा है। स्वर्ण ब्रह्माण्ड के खप्पर में पिटारे
की आकृति का विशाल अर्घा बना हुआ है। उस पर छत्र के सदृश विस्तृत एक चँदवा तना है, जिसमें

चन्द्रमा की भाँति किरीटयुक्त कैटभ-रिपु विष्णु की श्यामल आभा शोभित हो रही है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो दो समुद्रों को ढाँकने के लिए वह स्वर्ण-छत्र लगा हुआ है। उस लोहर-नरेश का रड्डादेवी के चार-चार पुत्र (जो गुणी तथा सर्वथा निपुण थे) अनुसरण करने लगे। जैसे लक्ष्मण भगवान राम का साथ देते थे, उसी प्रकार गुल्हण के साथ अपरादित्य रहता था। वे दोनो लोहर में अभेद भाव से रहते हुए उत्तरोत्तर समृद्ध हो रहे थे। ललितादित्य देव जयापीड नाम के बालक का उसी प्रकार पालन करता था, जैसे भरत शत्रुघ्न का करते थे।

राजा के सूर्यदेव को नमस्कार करने से उन चार राजाओं के मध्य बालसूर्य के समान देदीप्यमान् तथा राजधर्म से परिपूर्ण यशस्कर नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अपने चचल शैशव, श्रद्धापूर्ण सौष्ठव और स्नेहातिरेक से बालक ललितादित्य भित्तियों को भी द्रवीभूत कर दिया करता था। लाल अधरों से युक्त उसके गौर मुखमण्डल पर रक्षा के लिए काजल का एक काला बिन्दु लगा रहता था जिससे वह बालातप मे भृङ्ग के द्वारा अकित स्वर्ण-कमल के सदृश लग रहा था। माहात्म्य से सराबोर और बाल्यावस्था के कारण अस्फुट होते हुए भी उस बालक के वचन मध्यमान क्षीरसागर के अमृत-सी आर्द्र ध्वनि के समान मधुर लगते थे। एक महान् एव उच्च कुल मे उत्पन्न वह राजपुत्र बाल्य-काल मे अपने भव्य प्रभाव से भविष्य के अभ्युदय की उद्घोषणा कर रहा था।

जिसने अपनी शिखा का अलकार (कलँगी) नहीं त्यागा है और जो जल का स्पर्श सहन करने मे असमर्थ अपने पक्षसमूह की भगिमा द्वारा एक अनुपम सौन्दर्य बिखेर रक्खा है, वह मयूर अपनी चेष्टाओं मे निजी मनोभाव की महिमा एव मनोहर वर्ण का भाव व्यक्त करता और बावली मे जलपान कर इठलाता हुआ अपने मार्ग पर चला जाता था। तत्पश्चात् राजा जयसिंह के यहाँ मोनिला, राजलक्ष्मी, पद्मश्री तथा कमला नाम की चार कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उन चारो का स्वभाव आदरणीय था। आनन्द लेने के लिए निर्मित उपवनो और सदाप्रिय उन बच्चो से राजा तथा रड्डादेवी दोनो वर्षा एव वसन्त ऋतु के सदृश सुन्दर लग रहे थे।

बडे-बडे तीर्थों के कारण पवित्र कश्मीर-मण्डल मे अखण्डित धनराशि के व्यय होने पर रड्डादेवी के भाग्य से समस्त विभूतियाँ एकत्र हो गयी थी। वह रानी जब देवयात्रा के लिए निकलती थी तो अनेक राजमत्रियो तथा सामन्तो के साथ रहने के कारण साक्षात् राजलक्ष्मी के समान दिखायी पड़ती थी। इस सती देश मे वह जब तीर्थ स्नान करने लगती थी तो उसके साथी पृथक् हो जाते थे। कारण कि स्नान के समय उस सती का दर्शन अनुचित था। उस विचित्र समय मे यात्रा करते समय कभी-कभी वृष्टि भी हो जाया करती थी। तब ऐसा मालूम होता था कि रानी के रूप मे साक्षात् वर्षा ऋतु चल रही है और मत्री आदि के रूप मे मेघगण उसके पीछे-पीछे चल रहे हैं।

जब रड्डारानी सारी पृथ्वी के तीर्थों की यात्रा के लिए चली तो उसे यात्रा करते देखकर देवलोक के तीर्थ ईर्ष्यावश वर्षा के व्याज से उसे देखने लगे। यात्रा-काल मे तीर्थ दर्शन की उत्सुकतावश वह सुकुमार रानी मार्ग के गगनचुम्बी पर्वतो और बढ़ी होने के कारण तट से टकराकर प्रवाहित नदियो की दुर्गमता की ओर तनिक भी ध्यान नही देती थी। विभिन्न तीर्थों मे देवो की स्थापना और जीर्णोद्धार आदि सुकर्मों को करके उस धैर्यशालिनी तथा प्रवीणा रानी ने पूर्वकालीन पगु दिद्दारानी को भी पराजित कर दिया। आज भी हिलोरे लेते हुए क्षीरसागर की कान्ति सदृश देदीप्यमान् उपमन्यु के वरदाता, दारिद्र्यनाशक चूने के समान उज्जवल श्वेत, प्रस्तर-घटित, कश्मीर के अलकार तथा रुद्रेश्वर नाम से प्रसिद्ध वे रुद्र भगवान् विराजमान् हैं जिनको उस रानी ने समस्त संसार के

सौन्दर्य का सारस्वरूप स्वर्णमलसार नामक स्वर्ण का अलंकार विशेष अर्पित किया था और यात्रियों के विश्राम हेतु वहाँ एक भव्य प्रासाद बनवाया था।

राजा जयसिंह जब कभी सेवकों के किसी अनाचार से क्रुद्ध होकर वडवानल का रूप धारण कर लेता था, तब रड्डारानी ही उसे शान्त करती थी, जैसे क्षुब्ध समुद्र का कोप भगवती गंगा शान्त करती हैं। जब राजा प्रसन्न रहता था, उस समय भी अन्यान्य राजाओं के निग्रह एवं अनुग्रह का अधिकार एक मात्र उस रानी के ही हाथों में रहता था। आगे चलकर जब राजपुत्री मेनिला का विवाह राजा सोमपाल के पुत्र भूपाल के साथ हो गया, तो इस विवाह से भूपाल का महत्त्व बहुत बढ़ गया।

जिसका उच्च कुल में जन्म हो और जन्म के साथ ही नृपतित्व प्राप्त हो जाय, उसका अत्यधिक प्रभाव बढ़ जाना स्वाभाविक है। जिन सूर्य भगवान् के तेज का व्रत अन्धकार का नाश करता है, उसके तेज से उद्भूत तेज भी अन्धकारराशि का नाशक ही होगा। जगती-तल के अद्भुत साम्राज्य के रक्षण हेतु राजा सोमपाल को भी एक अद्भुत सहायक की आवश्यकता थी। इसलिए मेनिला के साथ विवाह हो जाने के पश्चात् पिता सोमपाल ने हृदय से सारा कल्मष दूर करके निष्कपट भाव से अपना राज्य-भार भूपाल को सौंप दिया। बहुत दिवसों पूर्व प्राजिधर के युद्ध में राजा भूपाल का अनुज घटोत्कच शत्रुओं द्वारा मार डाला गया था। उस वैर का बदला लेने के लिए उसने तैयारी की। तदनुसार उसने रड्डा देवी से सहायता मांगी। इससे उसे पर्याप्त सहायता मिल गयी, जिससे उस राज्यश्री को प्राप्त करके उसकी राजलक्ष्मी पराकाष्ठा को प्राप्त हो गयी। राजा जयसिंह के मंत्रियों ने भी भूपाल की पूरी सहायता की, जिससे उसने प्रज्जि, अंगद और भ्रातृद्रोही पंचवट को राज्य-च्युत् कर दिया। रानी की सहायता के प्रभाव से उसकी शक्ति बढ़ गयी और उसने खड्गवल्ली स्वरूपा उस नदी को पार कर लिया जो शत्रु के समक्ष विद्यमान थी। उरशा के द्वितीय राजा ने अपने ही कर्मों से संसार में अकीर्त्ति फैलायी थी, उसने अब राजा जयसिंह के प्रभाव से अग्रणी योद्धा बनकर अत्यग्रपुर को हस्तगत कर लिया। चन्द्रमा के सदृश शुभ छत्र धारण करने वाले अनेक सेनानायक अब उसके प्रशंसक बन गए। इस प्रकार राजा जयसिंह ने अपने राज्य-काल के बाईस वर्ष व्यतीत किया, अर्थात् लौकिक वर्ष ४२२५ समाप्त हुआ। प्रजा के पुण्य से इतनी लम्बी अवधि का शासन-काल किसी अन्य राजा का नहीं देखा गया है। उसके परिपक्व शासन का सुयश कल्प-पर्यन्त स्थिर रहेगा।

बहता हुआ जल भी कभी-कभी वज्र बन जाता है, मृदु वस्तु पत्थर बन जाती है, पत्थर पानी होकर चलने लगता है और वह प्रवाह कभी बहुत प्रबल हो जाता है, क्योंकि कराल काल का दुर्दम प्रभाव सर्वत्र व्याप्त रहता है। विधाता की शक्ति से घटित एवं अद्भुत प्रभुत्वसम्पन्न मार्ग में कौन वस्तु या कौन प्राणी स्वभावत स्थायी रह सकता है। कलिकाल के जब ६५३ वर्ष व्यतीत हुए थे, उस समय गोनन्द कश्मीर का राजा था। पार्थों की सेवा करके उसने यह पद प्राप्त किया था। उसका पुत्र दामोदर और पत्नी यशोमती थी। उसका अन्य पुत्र द्वितीय गोनन्द के नाम से विख्यात हुआ और उसने अपने प्रभाव से सभी राजाओं पर आधिपत्य कर लिया। तत्पश्चात् कश्मीर-मण्डल में अज्ञात-नामा पैंतीस राजाओं के बाद लव नामक राजा हुआ और उससे कुश की उत्पत्ति हुई। उस कुश के पुत्र और प्रपौत्र और खगेन्द्र तथा सुरेन्द्र हुए। उसके अन्य कुल में गोधर उत्पन्न हुआ तथा उसका पुत्र सुवर्ण हुआ। सुरेन्द्र का पुत्र जनक और जनक की भार्या शची से शनीचर जायमान हुआ। उसके पश्चात् शनीचर के पितृव्य का पुत्र अशोक कश्मीर का राजा हुआ। अशोक का पुत्र जलौका और

सन्दिग्धवंशज दामोदर हुआ। तदनन्तर हुष्क, जुष्क और कनिष्क ये तीनो तुरुष्क-वंश में उत्पन्न हुए। उसके बाद अभिमन्यु, तृतीय गोनन्द और उसका पुत्र विभीषण हुआ। उसका पुत्र इन्द्रजीत और उसका पुत्र रावण हुआ। उसका पुत्र द्वितीय विभीषण हुआ। उसके सिद्ध और उत्पलाक्ष हुए। उनके पुत्र हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकुल हुए। हिरण्यकुल का पुत्र वसुकुल हुआ। वसुकुल का पुत्र मिहिरकुल कश्मीर का एक प्रख्यात राजा हुआ और तीन कोटि प्रजा पर अपना शासन किया। मिहिरकुल का द्वितीय पुत्र बक तथा उसका पुत्र क्षितिनन्द हुआ। उसका तनय वसुनन्द हुआ। वसुनन्द का पुत्र नर, उसका अक्ष, अक्ष का पुत्र गोपादित्य और उसका पुत्र गोकर्ण हुआ। गोकर्ण का पुत्र नरेन्द्रादित्य और उसका अन्य युधिष्ठिर हुआ। उसके देहावसान पर मंत्रियो ने अन्यगोत्रज पुत्र प्रतापादित्य को कश्मीर का राजा बनाया। उसका पुत्र जलौका हुआ।

राजा जलौका का पुत्र तुजीन हुआ। उससे कोई पुत्र न था। अत उसके मर जाने पर अन्य कुल मे जायमान विजय राजा बना। विजय का पुत्र जयेन्द्र हुआ। जयेन्द्र को जब कोई सन्तति नही हुई तो सचिव सन्धिमान् कश्मीर का नरेश बना। तदुपरान्त गोनन्द-कुलोद्भूत मेघवाहन राजा बना जो सूर्यादित्य का पुत्र और युधिष्ठिर का पौत्र था। तदनन्तर द्वितीय प्रवरसेन कश्मीर का शासक बना जो तोरमाण का पुत्र तथा हिरण्य का भतीजा था। प्रवरसेन का पुत्र द्वितीय युधिष्ठिर हुआ। तत्पश्चात् क्रमशः नरेन्द्रादित्य और रणादित्य नाम के दो राजे हुए। रणादित्य का पुत्र राजा विक्रमादित्य हुआ। उसके पश्चात् रणादित्य का द्वितीय पुत्र बालादित्य राजा बना। फिर बालादित्य का दामाद दुर्लभवर्धन कश्मीर का नरेश हुआ। उसका पुत्र दुर्लभक और उसका चन्द्रापीड राजा बना। उसका ज्येष्ठ भ्राता तारापीड और अनुज मुक्तापीड था। उसका पुत्र कुवलयापीड राजा हुआ, और फिर उसका सौतेला भाई वज्रादित्य कश्मीर का शासक हुआ।

तत्पश्चात् वज्रादित्य के दो पुत्र पृथिव्यापीड तथा संग्रामापीड ये दोनो क्रमश यहाँ के शासक बने। संग्रामापीड का पुत्र जयापीड एव उसका मंत्री जज्ज था। जयापीड के पुत्र ललितापीड तथा संग्रामापीड हुए। तदनन्तर चिप्पट जयापीड राजा बना जो ललितापीड की पुत्री का पुत्र था। उसको, उत्पल आदि उन मामाओ ने मिलकर आभिचारिकी क्रिया द्वारा मरवा डाला, जिन्हें राज्य नही प्राप्त हो सका। उसके पश्चात् अजितापीड राजा बना, जो जयापीड के एक भाई का पुत्र था। उसके बाद संग्रामापीड का पुत्र अनगापीड कश्मीर का शासक बना। उसे उखाडकर अजितापीड के पुत्र उत्पलापीड ने गद्दी पर अधिकार किया। कुछ समय के पश्चात् मंत्री शूर ने उसे हटा दिया और सुखवर्मन के पुत्र एव उत्पल के पौत्र अवन्तिवर्मन् को राजा बनाया। उसका पुत्र शंकर वर्मा और उसका गोपाल हुआ।

तत्पश्चात् राह मे मिला हुआ उसका भ्राता संकटा यहाँ का शासक बना। कुछ समय के बाद उसकी माता सुगन्धा ने मार डाला। उसने शूरवर्मा के प्रपौत्र पार्थ को सिंहासन पर बैठा दिया। फिर उसके मंत्रियो ने निर्जितवर्मा को यहाँ का राजा बना दिया। उसके पुत्र चक्रवर्मा तथा शूरवर्मा थे। उसके राज्य-काल मे अनेक परिवर्त्तन हुए। अन्त मे शम्भुवर्धन ने वहाँ की स्थिति सम्हाली। तत्पश्चात् राजा शम्भुवर्धन की उसके मंत्री चक्रवर्मा ने हत्या करदी और स्वय शासक बन बैठा। उस चक्रवर्मा के बाद पार्थ का तनय उन्मत्त अवन्तिवर्मा राजा हुआ। उसका पुत्र शूरवर्मा जब राज्य-च्युत् हुआ तो ब्राह्मणो ने उसके मंत्री यशस्कर का राज्याभिषेक कर दिया।

तदुपरान्त प्रपितृव्य के पुत्र वर्णट का राज्याभिषेक किया गया। उसके बाद यशस्कर-पुत्र

वक्षाध्र संग्राम राजा बना। फिर उसे मारकर मंत्री पर्वगुप्त शासक बना। उसका पुत्र क्षेमगुप्त था। क्षेमगुप्त का तनय अभिमन्यु मर गया जो दिद्दारानी की देखरेख मे रहता था। उस क्रूर रानी ने जब अभिमन्यु के पुत्र नन्दिगुप्त एव अपने पौत्र त्रिभुवन और भीमगुप्त का भी वध करा दिया तो वह स्वय कश्मीर की शासिका बनी और मरते समय अपने भाई के पुत्र संग्रामराज को राजा बना गयी।

तत्पश्चात् संग्रामराज के पुत्र हरिराज और अनन्तदेव ने राज्य किया। उसके बाद अनन्त-तनय कलश ने शासन सम्हाला। फिर कलश के पुत्र उत्कर्ष एव हर्ष राजा बने। बाद मे हर्षदेव को पराजित करके उच्चल ने राज्य प्राप्त किया। वह उसी कुल मे उत्पन्न मल्ल का पुत्र और दिद्दारानी के भाई जस्सराज का पौत्र था। उच्चल की जब उसके सेवको ने क्रूरतापूर्वक हत्या कर डाली तो सेवको मे सर्वश्रेष्ठ रड्डा ने शखराज के नाम से कुछ समय तक राज्य किया। गर्ग ने जब रड्डा का वध करवा दिया तब राजा उच्चल का सौतेला भाई सल्हण राजा हो गया। राजा उच्चल के भाई और मल्ल के शक्तिशाली पुत्र सुस्सल ने सल्हण को बन्दी बनाकर शासनसूत्र अपने हाथ मे ले लिया। उसके बाद वहाँ के भृत्यो ने सुस्सल को सिंहासन से च्युत करके हर्षदेव के पौत्र भिक्षाचर को छ: मास के लिए कश्मीर का शासक बना दिया। तदनन्तर राजा सुस्सल ने उसे हटाकर पुन अपना राज्य प्राप्त किया, फिर अभिमानी लवन्यो ने विद्रोह करके राजा सुस्सल का वध कर डाला। तत्पश्चात् राजा सुस्सल के पुत्र जयसिंह ने समस्त लवन्यो के साथ भिक्षाचर का वध कराकर राज्य प्राप्त कर लिया और असीम शक्तिसम्पन्न वह राजा पृथ्वी को आज आनन्दित कर रहा है।

गोदावरी नदी जैसे सात मुखो से निस्तृत होकर अपनी ऊँची-ऊँची लहरो को उछालती हुई समुद्र में जाकर विश्राम करती है। उसी प्रकार राजाओ की नदी यह राजतरंगिणी अपने पूर्व के सात तरंगो के साथ बहती हुई उच्चकुलोद्भूत श्रीकान्तिराज-रूपी समुद्र में विश्राम करने के लिए प्रवेश कर रही है।